श्रीधन्वन्तरये नमः

व्यासोपाख्य-राजवैद्य-महाकविभट्ट-
श्रीकृष्णरामगुम्फिता

सिद्धभेषजमणिमाला

(तच्छिष्यभिषगाचार्यश्रीलक्ष्मीरामस्वामिकृतटिप्पण्यलङ्कृता)

सेयम्

तत्पौत्र राजवैद्य भट्टश्री र. कलाधरकविरत्नेन (भू. पू. पुनर्वसु आयुर्वेद महाविद्यालय प्रध्यापकेन) विरचितया 'वैश्वानराख्यया' हिंदीविवृत्या समुद्भासिता संपादिता संप्रकाशिता च

मूलग्रंथस्य पंचमावृत्तौ

भाषानुवादस्य प्रथमावृत्तिः

मुद्रणस्थलम् :— निर्णयसागरमुद्रणालयम्, मुंबई २

संवत् २०२४] [सन १९६७

प्रकाशक:—
आर के भट्ट,
संस्कृत-चिकित्सा (जयपुर),
सुरेन्द्र निवास, दादाभाई रोड, विले पार्ले (पश्चिम),
मुंबई नं ५६

पुस्तक-प्राप्तिस्थान—

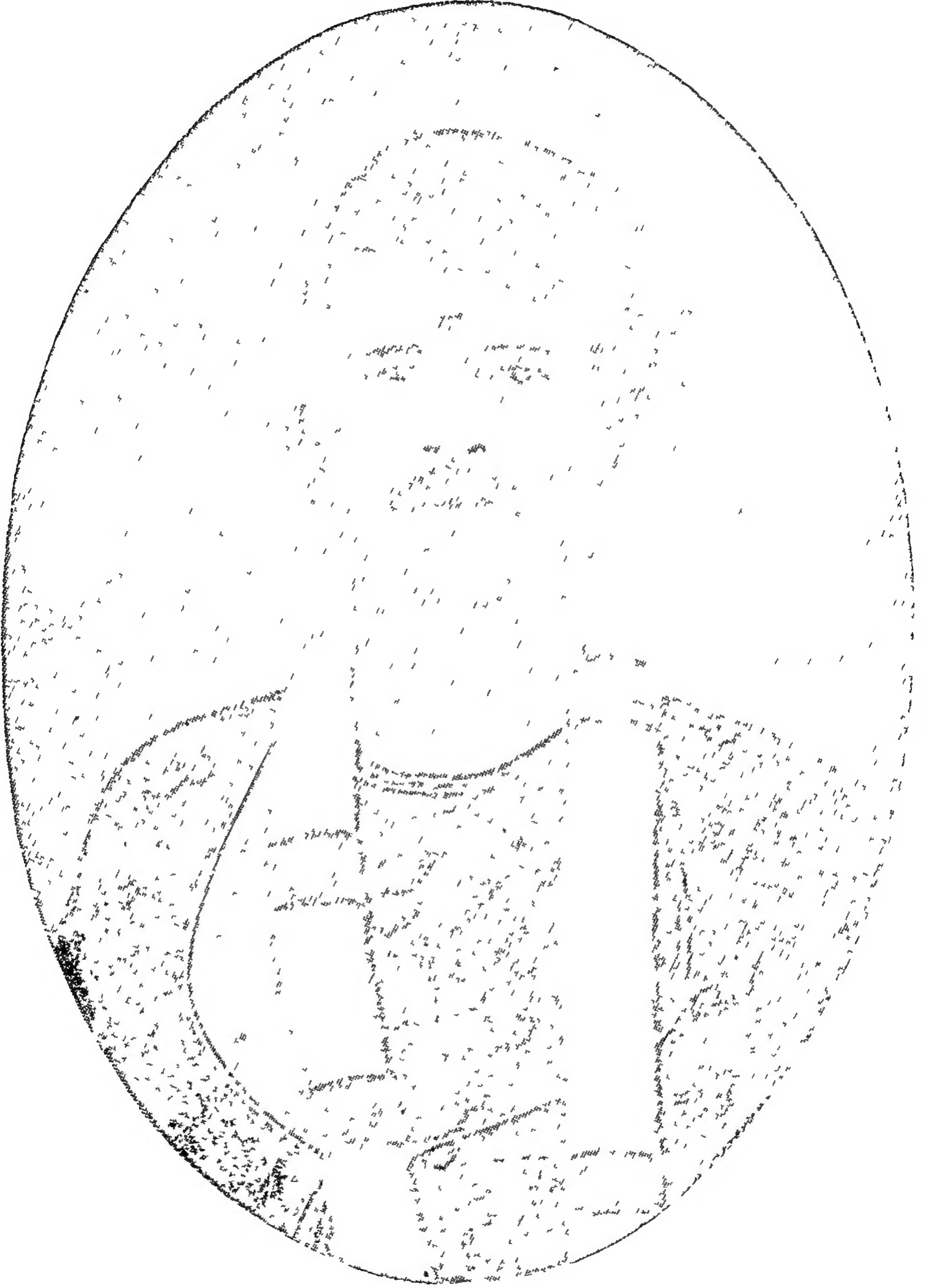
१ प्रकाशक के उपरोक्त-पते से

२ श्रीब्रह्मकुमार गिरिजाशंकर जोशी, बी कॉम ज्योतिर्विद्-भास्कर
रायपुर, हजीरानी पोल,
अमदावाद-१

३ भिषगाचार्य श्रीरामप्रकाशस्वामी एम् ए
'आयुर्वेदमार्तण्ड श्रीस्वामिलक्ष्मीरामचिकित्सालय'
जयपुर

प्रिन्टर:—
लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी,
निर्णयसागर प्रेस, २६।२८ डॉ एम् बी वेलकर स्ट्रीट, मुंबई नं २

वैद्य - कुल - गुरवः



स्वर्गताः सर्वतंत्रस्वतंत्रा रा. वै. महाकविभट्ट - श्रीकृष्णराममहाभागाः

प्रार्थना



अस्ति श्रीमाधवाधीशकृपाभूरिसमृद्धिमत् ।
प्रभाऽवधीरिताशेषपत्तनं जयपत्तनम् ॥ १ ॥
तत्राप्यपारपाण्डित्यसौजन्यप्रमुखैर्गुणैः ।
विराजमानैर्विद्वद्भिः पाठशाला विराजते ॥ २ ॥
तत्राज्ञानतमोराशिभास्करं नित्यमङ्गलम् ।
बुधं कविं द्विजपतिं वैद्यविद्याबृहस्पतिम् ॥ ३ ॥
श्रीकृष्णरामनामानं गुरुं शरणमाश्रितः ।
समस्तमायुषो वेदमविदं तत्प्रसादतः ॥ ४ ॥
क्रमेण तत्र तिस्रोऽपि परीक्षास्ता महत्तराः ।
समुत्तीर्याभवं सद्यस्तत्कृपाभाण्डतल्लजः ॥ ५ ॥
अनन्तरं तदाज्ञप्तस्तत्कृतेर्गुम्फपूर्वकम् ।
लेखनं शोधनं चैव टिप्पणीं कर्तुमारभे ॥ ६ ॥
पूर्णां निजाज्ञामालोक्य गुरुणा कीर्तिचारुणा ।
प्रसन्नमनसा दत्तां शुभाशिषमवाप्नवम् ॥ ७ ॥
तच्छुभाशीःप्रभावेण प्रधानासनमास्थितः ।
अध्यापयामि सततं चिकित्सितपटून् बटून् ॥ ८ ॥
सोऽहं कृताञ्जलिर्भूत्वा भूयो भूयो विमर्षितुम् ।
दोषं संप्रार्थये मुग्धो विदग्धप्रवरान् बुधान् ॥ ९ ॥
अल्पीयानपि मान्यो भवति हि लोके महान्तमाश्रित्य ।
गुरुकृतिचरणन्यस्ता मत्कृतिरभितश्चमत्कुरुताम् ॥ १० ॥

विद्वत्कृपाकामः श्रीलक्ष्मीरामः,
जयपुरराजकीयसंस्कृतपाठशालायामायुर्वेदप्रधानाध्यापकः ।

•••⋙⋘•••

भूमिका

-※-

विदाङ्कुर्वन्तु तावत्सकलविद्यापारपारावारावगतान्तास्तत्रभवन्तो भवन्त इह किल सकलधरणिवल्ललाटायमाने भारते वर्षे तिलकायमान स्वकान्तितिरस्कृतनिखिलनगराभिमान श्रीमथुरापुष्कराख्यप्रसिद्धतरक्षेत्रद्वयान्तरालवर्तिमत्स्यदेशप्रतिष्ठमान सर्वसम्पत्समेधमान श्रीसूर्यवंशीयश्रीरामचन्द्रात्मजकुशकुलजमहाराजाधिराजपाल्यमानमस्ति जयपुराभिधान पुर पुराणम् ।

तत्र श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीप्रतापसिंहदेवराज्यसमयेऽधीतायुर्वेदो गुर्जरभूमिनिवासान्तर्गतभट्टमेवाडजातीय स्वयश प्रख्यापनकृतमतिर्लक्ष्मीरामनामा सुमतिरहम्मदाबाद नामकप्रसिद्धपुटभेदनादाजगाम । पुन्य च रोगिनैरोग्यसम्पादितप्रसिद्धिर्भूमिपतेरपि समानमवाप । अथ ल्लुरामनामा तदात्मज पितृसमान स्वल्पेनैव कालेन महाराजाधिराजप्राप्तराजवैद्यप्रतिष्ठ श्रीयशसामेक निधानमभवत् । अथ तस्य पौत्र श्रीवैद्यकुन्दनरामपुत्र श्रीकृष्णरामनामा च मे पितासीत् । य खलु—

श्रीमन्माधवसिंहभूपसमितौ लब्धप्रतिष्ठास्पद
साहित्याम्बुधिकुम्भसम्भवमुनिर्धन्वन्तरिर्वैद्यके ।
कीर्तिर्यस्य दिगन्तगा च, कवने य कालिदासोपम
सोऽय राजभिषग्वरो विजयते श्रीकृष्णशर्मा गुरु ॥

अथ धर्मादयश्चत्वार पुरुषार्था पुरुषै स्वस्वजीवनपर्यन्त सम्पादनीया इति निखिलागमपुराणधर्मशास्त्रादीना दृढतरसम्मतम् । ते च सर्वथा शरीरस्थितिनैरोग्याधीना । न हि शरीरस्थितिमन्तरा नैरोग्येण विना च कस्यापि धर्मादिसाधनमुपलभामहे । पूर्वस्मिन्नपि काले दृढतरशरीरसामर्थ्येनैव सम्पाद्य तपस्तीव्र महर्षयोऽनेकानेका सिद्धीरलभन्त । न हि वैद्यशास्त्रमन्तरा शरीरस्थितिनैरोग्ययो कारणमिति तत्कर्तारो धर्मशास्त्रादिसंहिताकर्तृभ्योऽप्यधिकतर मान्या वन्दनीयाश्च । वर्तन्ते च चरकसुश्रुतादिसंहिता सर्वलोकमान्या अतिगम्भीराशया , परतु तासामतिश्रमसाध्यत्वाद्दुर्विज्ञेयत्वाच्च सर्वैरेवाधुनोपकर्तृत्व सघटते । किंच सन्ति तादृश्यपि गूढान्यौषधानि लोके यानि संहितादिग्रन्थेष्वलिखितान्यप्यनेकेष्वसाध्येषु रोगेषूपयुज्यन्ते । न हि तेषा दृष्टफलानामद्यावधि संग्रह कुत्रापि मुद्रितो दृश्यते, इति मत्पितृचरणा यावज्जीवन यत्र कुत्रापि मिलितो वैद्याजटिलाश्च काव्यकथाकथनेन द्रव्यप्रदानेनाध्यापनेन सेवास्वीकारेण वाऽन्यैश्चानेकैरुपायै सतोष्य सतोष्य तान्यतिचमत्कारीणि गूढौषधानि सगृह्य सगृह्य चरकादिसंहितातोऽपि परीक्षितान्यनुभूय चौषधान्येकीकृत्येमा सिद्धभेषजमणिमाला गुम्फितवन्त । या च—

"उपासते येऽनुभवन्ति ये च ध्यायन्ति ये भेषजसिद्धमालाम् ।
प्रयोगनित्या सुखजीवदानाल्लोकद्वये ते शुभमाप्नुवन्ति" ॥

तत्राप्यरसाया मालाया न हि लोके आदरणीयता दृश्यते इति काव्यरसोऽपि सिक्तः। पञ्चगुच्छात्मकेऽस्मिन् ग्रन्थे प्रथमगुच्छे पूर्वपीठिका, द्वितीयस्मिंश्च पक्वान्नादीनां गुणाः, तृतीये च रोगिणश्चेतः स्वास्थ्यसंपादनायानेकानि कौतूहलानि, चतुर्थे सर्वरोगोपशमनं, पञ्चमे रसप्रक्रिया, इति क्रमोऽत्र प्रकटीकृतः।

एतद्ग्रन्थसमाप्तिसमनन्तरमेव कश्चिदसाध्यो व्याधिः श्रीपितृचरणानां समुत्थितः- येन शरीरस्थितिमविज्ञायैतद्ग्रन्थस्य मुद्रापणं शीघ्रं प्रारब्धम्। परंतु समाप्तिमकृत्वैवाध्यापयितुमिवाश्विनीकुमारौ दिवं गताः। स्वर्यातेषु पितृचरणेषु अतीवोपयोगितया एतद्ग्रन्थस्य मुद्रणमत्यावश्यकमिति मत्वा स्वेनैव द्रव्यव्ययेन मयाऽयं ग्रन्थो मुद्रापितः। इति मत्परिश्रमसाफल्याय ग्रन्थस्वीकारेण स्वेषामन्येषां चारोग्यसंपादनेन सामन्यांश्च कृतार्थयन्तु श्रीमन्त इति विज्ञापयति—

श्रीकृष्णरामात्मजः—व्यासोपाख्यराजवैद्यभट्टगङ्गाधरशर्मा,

जयपुरसंस्कृतपाठशालायामायुर्वेदाध्यापकः।

प्रस्तावना

लेखकः – वैद्य-मूर्धन्य पं. हरिदत्तशास्त्री आयुर्वेदाचार्य

(भूतपूर्व-डायरेक्टर ऑफ आयुर्वेद महाराष्ट्र प्रांत; प्रधान वैद्य तथा अन्वेषक 'यूनीवर्सल हेल्थ् इन्स्टीटयूट् हॉस्पिट्ल, मुंबई;-संप्रति, डायरेक्टर एम्. सी. के. आर-हॉस्पिटल, न्यू दिल्ली।)

'सिद्ध-भेषज-मणिमाला' संस्कृत-साहित्य में, विशेषतः आयुर्वेद-वाङ्मयमें, एक अद्वितीय, अनुपम, अन्यत्र-अलभ्य, सचमुच अमूल्य ग्रंथरत्न है–गुरुपरंपरा से प्राप्त, अनुभव सिद्ध-भेषजरूपी मणियों की यह माला ही है। इसके निर्माता वैद्यकुल-गुरु, संस्कृत-वाङ्मय के प्रखर पंडित, स्वभाव-सिद्ध-महाकवि, जयपुर के परंपरागत राज्य वैद्य स्व-नामधन्य पुण्यश्लोक श्रीभट्ट श्रीकृष्णरामजी थे।

महामहिम श्रीभट्टजीने, आयुर्वेद-विज्ञानमय इस ग्रंथ-श्रेष्ठ की रचना, अपनी स्वभाव-सिद्ध रमणीय काव्योचित-शैली सें की थी। संप्रति, काल-प्रभाव से विलीन होती हुई संस्कृत-भाषा से अनभिज्ञ-आधुनिक-वैद्य-समाज, इन सिद्ध-भेषज-मणियों की अपार समुज्वलताका–उनकी उपादेयताका–यथार्थ मूल्यांकन करने में प्रायः असमर्थ हो चुका है। वैद्योंकी इसी असमर्थता की निवृत्ति के लिये, अपेक्षित प्रकाश-दानमें समर्थ 'विश्वान् नरान् नयति, विश्वे वा नरा एनं नयन्ति'–(यास्क) इस अन्वर्थ से युक्त 'वैश्वानर' नामक हिंदी विवृति, ग्रंथकारके अभिप्राय का अनुसरण करते हुये, प्रकरणानुसार समयोचित विचार के आधारपर, प्रकट की गयी है।

किसी भी 'टीका' की उत्तमता की कसौटी 'नामूलं लिख्यते किंचित्-नानपेक्षित मुच्यते' समझी जाती है-अर्थात् 'टीका' निर्मूल न हो, साथ ही, वृथा वागाडम्बर भी न हो। प्रस्तुत 'वैश्वानर' विवृति में, पाठक यत्र तत्र सर्वत्र, मूल के गुप्त रहस्यों का, गुरुपरपरा से प्राप्त, अपेक्षित-समुचित-विवरण पायेंगे। तदुपरात, विवृति कारने, इस ग्रथ में, महर्षि अग्निवेश प्रणीत 'गागर में सागर' रूप 'अंजन-निदानम्' का सक्षिप्त किंतु सुबोध, प्रानऊ-हिंदी भाषा मे भाषानुवाद निवेशित करके, कुशलता पूर्वक, 'रोगमादौ परीक्षेत तदनन्तरमौषधम्' इस प्रसिद्ध-सिद्धान्त के प्रतिपादन के साथ साथ, प्रस्तुत ग्रथ की उपादेयता में अधिकाधिक अभिवृद्धि करदी है। जहा कहीं मूल-प्रोक्त-प्रयोग में अपेक्षा समझी गयी, वहा, अनुवादक ने अपने पू पितारूप गुरु से प्राप्त रहस्य को भी, नि सकोच प्रकट किये हैं। जिज्ञासु को इसके उदाहरण पुस्तक के प्राय प्रत्येक पृष्ठपर प्राप्त होंगे-'हाथ कगन को आरसी क्या?

मूल ग्रथ 'सिद्ध-भेषज-मणिमाला' के निर्माता, विविध काव्य-विधाता, अभिनव-पारद सस्कारानुसधाता, अभिराम कविता-धाम भट्ट श्रीकृष्णरामजी महाकवि ही नहीं किंतु धन्वन्तरि सम अद्वितीय चिकित्सक एव पारद-सस्कार-प्रकारों में दूसरे सिद्ध नागार्जुन ही थे-'सूते गधकजारणावधि कृता येन क्रिया नैकदा'। सौभाग्यवश, उनके सुपुत्र श्री कलाधर भट्टजी भी पितातुल्य मेधावी, सुकवि तथा पडित-प्रकाड थे। इनको तथा इनके ज्येष्ठ भ्राता षड्-शास्त्री श्री गगाधर भट्टजी को चरक-सहिता अनुलोम-विलोम गति से कठगत थी!!! श्रीकलाधरजीने बाल्यावस्थामें ही अपने पू पिताजीसे स-रहस्य आयुर्वेदशास्त्रसहित प्रस्तुत ग्रथ का अध्ययन किया था।

सौभाग्यवश श्रीकलाधर भट्टजीके सुपुत्र श्रीरणछोड कलाधर भट्ट (आर कलाधर भट्ट) भी जन्मसिद्ध आशुकवि तथा सस्कृत-वाङ्मय के उद्भट विद्वान हैं। आपश्री ने महामहोपाध्याय श्रीदुर्गाप्रसादजी से ज्योतिष-शास्त्र का तथा उनके ही शिष्य श्रीचद्रशेखरजीसे व्याकरण, साख्य तथा न्यायसहित सपूर्ण सस्कृत-साहित्य का बाल्यावस्थामे ही अध्ययन कर लिया था। इन्होंने अपने पिताश्री ने ही विधिवत् समग्र आयुर्वेद शास्त्र पढा है। 'अष्टाग-हृदय' वाग्भट जैसे सुप्रसिद्ध सहिता-ग्रथ आद्योपात स्मृति से ही आप आज भी पढाते है!!! मुबई का वैद्यसमाज आपकी इस विचक्षण-स्मृति को अनमा चुका है। आप एक अच्छे सफल-चिकित्सक भी है। यही नहीं, अग्रेजी साहित्य में भी आप एम ए एल एल बी पद प्राप्त हैं। आप व्यवहार-वाणिज्य-विद्यापटु होते हुये, औद्योगिक कारखानों के स्थापक तथा सचालक हैं। धी एव श्री समन्वित इस विचक्षण महानुभाव में अपने पिता एव पितामह के उत्तम-गुणों का अवतार हुआ है। प्रस्तुत 'सिद्ध भेषज-मणिमाला' की दुरूहता अच्छे अच्छे सस्कृतज्ञों को भी अखरती है-अतएव इसका उत्तरोत्तर

प्रचार संकुचित हो रहा है। वर्तमान में, 'एकमात्र श्री आर. के. भट्टजी ही इसपर अपेक्षित हिंदी टीका लिखकर प्रकाशित करें" ऐसी मेरी विनयोक्ति को स्वीकारकर श्रीभट्टजीने हिंदी टीकायुक्त इस ग्रंथको, भली प्रकार संपादित करके, प्रसिद्ध निर्णय-सागर प्रेस में, स्वकीय द्रव्य-व्यय पूर्वक, उत्तमोत्तम कागजपर छपाई सहित सोत्साह प्रकाशित किया है। अपने इस स्तुत्य कार्य के लिये श्रीभट्टजी, वर्तमान तथा भावी वैद्योंद्वारा, धन्यवाद के पात्र हैं।

चरकोक्त पंचाशत्-महाकषायों के गद्य-प्रघट्टकों का उत्तमोत्तम अनुष्टुप्-श्लोकों में सुख-स्मरणीय रमणीय अनुगुंफन, आपकी आशु कवित्वशक्ति के मूर्त उदाहरण रूप से, इस ग्रंथ के अंतिम प्रकरण में प्रकट है। पाठक महाभाग इससे प्रसन्न होंगे ही। इति शम्

विजयादशमी
सं २०२४. नयी दिल्ली } वैद्य हरिदत्त शास्त्री

रा. वै. भट्ट श्री श्रीकृष्णरामजी

मुगल राज्य के चरम-विकास के धुरि-रूप मानसिंह के पुत्र, छत्रपति शिवाजी के समकालीन तथा सम्राट् औरंगजेब के महासेनाधिपति कच्छवंश शिरोमणि जयसिंह ने जयपुर नगर का निर्माण किया था। श्रीजयसिंह विचक्षण प्रतिभासंपन्न महापुरुष थे। इन्होंने भारत के सुदूर प्रांतों में से चुनेहुये उत्तमोत्तम कलाकार, कवि, ज्योतिर्विद्, प्राणाचार्य, संगीतज्ञ, स्थपत्य-कला-विशारद, चित्रकार आदि विद्वानों को अपने यहां प्रश्रय दिया था। उनके वंशज महाराजाओंने यह संग्रह कार्य गतिमान रखा। परिणामतः, जयपुर, भारतीय संस्कृति, संस्कार तथा विद्याओं का, अभीतक, एक सजीव केन्द्र माना जाता है।

उपरोक्त महाराजाके वंशज श्रीप्रतापसिंहदेव के शासनकाल में, अहमदाबाद निवासी, आयुर्वेद-शास्त्रके परम ज्ञाता, वेद-शास्त्रपारंगत श्रीव्यास श्रीलक्ष्मीराम भट्टने जयपुर में प्रश्रय प्राप्त किया। हल्दी-घाटी के सुप्रसिद्ध रणप्रांगण में अपने शौर्य की यशोगाथाओं से समुज्ज्वल भट्ट-मेवाडा जाति के आप ब्राह्मण थे। बप्पा रावल के गुरु श्री हारीत ऋषि भट्ट-जाति के पूर्वज माने जाते हैं। श्रीभट्टलक्ष्मीराम के चिकित्सा नैपुण्य से सु-प्रसन्न महाराजा प्रतापसिंहदेव ने इनका प्रचुर सन्मान किया। इनके पुत्र श्रीलल्लुराम-अपरनाम श्रीविष्णुराम-पिता के समान ही असाधारण प्रतिभा से संपन्न थे। वेदवाङ्मय के साक्षात्-प्रतीक रूप, प्रकृतितः परमउदार एवं दयालु श्रीविष्णुराम के चिकित्सा-शास्त्र में अगाधज्ञान से मुग्ध श्रीप्रतापसिंहदेवने आपश्री को 'राज-वैद्य' पद प्रदान किया। इनके पुत्र, चरित्र में वस्तुतः कुन्दन

श्रीकुन्दनराम अपने पिताके समान ही उद्भट विद्वान थे-आपने यावन चिकित्सा शास्त्र को छन्दोबद्ध किया। 'हिकमत्-मदारग्रन्थ' नाम से सुप्रसिद्ध यह काव्यमय शास्त्र इनके निर्माता की विचक्षण प्रतिभा का बोध करा देता है। आयुर्वेद-ज्ञान के प्रकाशद्वारा सपूर्ण भारत को समुद्भासित करनेवाली वर्तमान जयपुर राजकीय-सस्कृत पाठशाला की प्रदीप-शिखा को, इसी पंडितप्रकांड ने आयुर्वेद के आद्य-अध्यापक के रूप में, प्रथम ही प्रथम प्रज्वलित की थी।

श्रीकुन्दनरामजी की प्रथम पत्नी से, क्षीरोदधि से साक्षात् धन्वन्तरि के समान, विक्रमाब्द १९३२ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी की पुण्य-तिथि में पुण्यश्लोक श्रीकृष्णरामजी अवतीर्ण हुये। द्वितीय पत्नी से, इनके अनुज 'कविमल्ल' श्रीहरिवल्लभजीने जन्म लिया, जिन्होंने 'जयनगरपचरगम्, कान्ताक्षोजशतोक्त्य' आदि रसमय काव्यों की रचना की। गुजरात के सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य श्रीआनन्द शकर ध्रुव इनके कुछ कालतक अन्तेवासी रहे थे।

परममेधावी श्रीश्रीकृष्णरामने, बाल्यकाल में ही अपने पूज्यपिताश्री से समग्र आयुर्वेद, व्याकरण, न्याय, वेदात आदि शास्त्रों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करलिया था। आपने, उस कालके अप्रतिम पंडित श्रीजीवनाथ गुरु से काव्यप्रकाश के आशयसहित सपूर्ण सस्कृत साहित्य का तथा श्रीचन्दनदास साधुसे सगणित छन्दशास्त्र का विशेष अध्ययन किया। इस तरह युवावस्था में पदार्पण करने के साथ ही साथ, धी एव श्री दोनों ने आपका मानों सर्वात्मना वरण कर लिया था।

सर्वतोमुखी विचक्षण प्रतिभा से सपन्न, ज्ञानप्रौढ, पचीस शरदानिक्रात युवक श्रीश्रीकृष्णरामको, उनके पिताश्री कुन्दनरामने, जयपुर-राजकीय-सस्कृत-पाठशाला का, अपना आयुर्वेद अध्यापन कार्यभार सुपुर्द करदिया 'गुणा पूजास्थान गुणिषु न च लिङ्ग न च वय'।

श्रीभट्टजी के अध्यापन नैपुण्यकी कीर्तिगाथा से मुग्ध होकर भारत के दूर दूर प्रांतों से, पजाब, बगाल, नेपाल, बर्मा, सीलोन आदि प्रदेशों से, छात्रसमूह जयपुर आने लगे। आपही के एक पृथक् निवासस्थान में, इनके रहने का, भोजन का तथा अध्ययन का नि शुल्क सुप्रबध किया गया। सपत्ति तथा सरस्वती का, मुक्त हस्त एव मुक्तहृदय से, इस तरह वितरण करने के अतिरिक्त अन्य और कौनसा उपयुक्त विनियोग कहा जा सकता है? पाठशाला में, पाठशाला से अवकाश मिलने पर, घर में, अनवरत एकनिष्ठा से श्रीभट्टजी इन ज्ञान-तृषातुरों को अपनी अलौकिक प्रतिभापीयूष से आप्यायित करते रहते थे। आज भी, ऐसी कोई दिशा नहीं, ऐसा कोई देश नहीं, ऐसा नगर नहीं जहा इनकी परिपल्लवित शिष्यपरपरा उपलब्ध न होती हो। 'न सा दिङ् न स देशोऽपि न च तन्नगर क्वचित्-यत्र श्रीकृष्णवैद्याना शिष्यैर्नैव विजृम्भ्यते'। राजस्थानके प्रकांड आयुर्वेदीय विद्वान्-चिकित्सक चूडामणि श्रीश्यामजी तथा भिषगाचार्य श्रीलक्ष्मीराम स्वामीजी-आपही के निकटतम अन्तेवासी थे। पू श्रीभट्टजी के

स्वर्गारोहण उपरांत, उनके शिष्य महानुभावों ने, अपने पूज्य गुरुमहाशय के आयुर्वेद प्रचारकार्य को उसी निष्ठा से यथावत् गतिमान् रखा था। इस शिष्यपरंपरा के पांडित्य एवं निःस्वार्थ भावना की अप्रकंप्य पार्वतीय नींव पर निर्मित भारतीय आयुर्वेद तथा संस्कृति आज अनश्वर बन चुकी है। पू. श्रीश्रीकृष्णराम रूपिणी मंदाकिनी में से निःसरित शिष्यप्रशिष्यरूप अनेकों नहरोंकी शाखा-प्रशाखाओं से परिसिंचित आयुर्वेद वसुंधरा निरंतर शस्यशामला रहेगी। पू. भट्टजी के अद्यावधि स्मारक के अभाव में यह कार्य ही उनका एक अमिट, अमर एवं दिव्य स्मारक बना रहेगा।

'सिद्ध-भेषज-मणिमाला' ग्रंथरत्न, पू. श्रीभट्टजीकी, अक्षर से संबंध रखनेवाली, कीर्तिमय देह है। इस रूपमें भी उनकी सरस्वती तथा संपत्ति का वितरणकार्य निरंतर गतिमान है और रहेगा। पाश्चात्य-चिकित्सा शैलीके प्रारंभिक विकासकाल में पू. श्रीभट्टजीका जन्म हुआ था। अपनी सद्यःफलदायिनी औषधियों के चमत्कारी प्रभाव से, जनसाधारण, उपरोक्त चिकित्सापद्धति की तरफ आकर्षित हो रहा था। संप्रति, पाश्चात्य-चिकित्सापद्धती के अन्तर्गत शल्यचिकित्सा अत्यधिक विकसित हो रही है, साथ ही, वैज्ञानिक आधारपर रोगों के निगूढ हेतुओं की शोध करके, उनके सद्यःप्रतिकार के लिये अमोघ भेषजों का निर्माण किया जा रहा है। पाश्चात्य चिकित्सा की सर्व प्रियता के अनेकों हेतुओं में से, उपरोक्त हेतुद्वय मुख्य हैं। प्रश्न यह है कि क्या आयुर्वेदीय शल्य-चिकित्सा अपूर्ण थी? क्या आयुर्वेद में रोग का सद्यः प्रतिकार करनेवाली औषधियों का अभाव है? आयुर्वेदीय शल्य-चिकित्सा, सुश्रुतकालमें वस्तुतः विकसित हो चुकी थी। नासादि-संधान कर्म, सुश्रुतकाल की अपूर्व मौलिक गवेषणा थी। पाश्चात्य-देश की 'प्लास्टिक सर्जरी,' वस्तुतः सुश्रुतोक्त शल्यचिकित्सान्तर्गत-संधान-कर्म का एक अंग मात्र है। आयुर्वेद के इस विकसित अंग को अपने मूलस्वरूप में उपस्थित करने की, विशेषतया वर्तमानयुग में, नितांत आवश्यकता है।

पू. श्रीभट्टजीने, अपने समय में, काय-चिकित्सा-गत रोग का सद्यः प्रतिकार करनेवाली औषधियों के शोध का भगीरथकार्य प्रारंभ किया। रोग की सद्यो निवृत्ति के विषय में आयुर्वेद, आधुनिक पाश्चात्य-चिकित्सा के सिद्धांत से सहमत नहीं है। पाश्चात्य-चिकित्सा, रोग का सद्यः प्रतिकार अवश्य करती है, किंतु, उससे प्रायः अन्यविकार उत्पन्न हो जाते हैं। एक विकार को शमन करनेवाला किंतु अन्यको उत्पन्न कर देनेवाला प्रयोग, आयुर्वेद के मत में, अशुद्ध है। 'प्रयोगः शमयेत् व्याधिं योऽन्य-मन्यमुदीरयेत्। नाऽसौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेत् यो न कोपयेत्'। 'एतीत्यायुः' जो सतत गत्वर-शील हो उसे आयु कहते हैं। इस गत्वर-शील-अस्थिर आयु को अधिकाधिक स्थिर बनाकर, मानव किस तरह अपने अभीप्सित पदार्थों का यथावत् उपभोग कर सकता है? इसी प्रयोजन को लेकर आयुर्वेद की अवतारणा की गयी। कृत्रिम फुफ्फुसवाला, नकली दंतपंक्तियुक्त, अन्यान्य अंगों से विकल, आयुर्वेदीय

परिभाषा के अनुसार, स्वस्थ नहीं। इन्द्रियों की स्वस्थता, मानसिक स्वस्थता का हेतु है। मानसिक स्वस्थता की सपूर्णता मे ही, इन्द्रियसमूह की, अपने विषयों से यथावत् रसोपभोग करने की, सामर्थ्य निहित है। अत आयुर्वेद, रोगकी चिकित्सा के साथ साथ रोगी की चिकित्सा पर अधिक भार देता है। रोग की आगति की अपेक्षा उसकी निर्गति-उलीचवत्-अल्पाल्पम्प से मानी गयी है। अत रोग का सहसा निवारण आयुर्वेद को इतना सम्मत नहीं है। तथापि, अमुक अवस्थाओं मे, स्वसिद्धात मे अवरोध न आता हो वहा, शीघ्र-चिकित्सा का आदेश भी आयुर्वेदने दिया है। 'धारयेदन्यथा शीघ्रमग्निवत् शीघ्रकारि यत्'।

रोग के आशु-निवारक प्रयोगों का वर्णन सहिताग्रथों मे मिलता अवश्य है, किंतु सग्रहरूप से नहीं, यत्र तत्र प्रकीर्णरूप से ही उपलब्ध होता है-जैसे अतिसार चिकित्सा के अनेको प्रयोगो में से कौनसा आशुफलप्रद है? कौनसा नहीं? इसका निर्णय प्राय नही किया जा सका। रोगियोंपर सतत प्रयोग के द्वारा ही औषध के प्रभाव की प्रतीति निर्णयात्मक रूप से की जाती है। इस प्रकारकी गवेषणा के अभाव में, अनुभूत योगोका शास्त्रीय आलेखन आयुर्वेद मे अल्पप्रमाण मे ही उपलब्ध होता है। 'सिद्ध-भेषज-मणिमाला' इस क्षेत्र में, एक सर्वांग, नूतन शास्त्रीय-ग्रथ है। रोग के सद्य प्रतिकार के सदर्भ में, आयुर्वेद के जो नि सदिग्ध-वैज्ञानिक सिद्धात हैं, उनके अनुरूप-अविरुद्ध-मौलिक-प्रयोगो का सकलन इस ग्रथ मे हुआ है, साथ ही शास्त्रीय प्रयोगो को भी, जहा आवश्यकता हुई, परिवर्तित अथवा सशोधित करके इसमें स्थान दिया गया है। आयुर्वेद के मूर्तिमान् विग्रह पू श्रीभट्टजी में, उनका हृदय एक आदर्शछात्र की अतृप्त-जिज्ञासा वृत्ति से समन्वित था। जिज्ञासा मानव के विधायक तत्व के प्रकर्ष की जननी है, तथा उसकी मौलिक-वृत्तियों को सस्फुरित रखती है। 'सिद्ध-भेषज-मणि-माला' आयुर्वेदीय आशु चिकित्सा का, तत्सबधी औषधीय द्रव्यों का तथा पारदादिरस प्रक्रियाओं का मौलिक शास्त्र है। वातादि दोषों को शमन एवं कोपन करनेवाले, तथा उनके प्रति उदासीन रहनेवाले द्रव्यों की विवेचना, तथा साथ ही, इस प्रकार के कुल सत्तावन द्रव्यो की शोध, श्रीभट्टजी की, आयुर्वेद जगतको, अपनी ही एक गवेषणात्मक मौलिक भेट है। ॥५७॥

तदुपरात, आयुर्वेदोक्त औषधीय द्रव्यो को भिन्न भिन्न वर्गों में विभक्त करके, प्रत्येक वर्ग में, रोग-प्रतिरोध में प्रभावातिशय दर्शाने वाले विशिष्ट द्रव्यो का ही इस ग्रथ में, सकलन किया गया है। सतत अनुसधानपूर्वक औषधीय द्रव्यों का यह सिद्ध सचयन पू श्रीभट्टजी के अगाध परिश्रम एव मति-वैमल्य का निगूढ-परिचय करा देता है। रसो की तथा दोषों की परम-जटिल-विस्तार विधि को जिस सरल, सुदर एव चमत्कार पूर्ण शैली में समझाया गया है वह अन्यत्र सहिता-ग्रथों में विरल रूपसे ही उपलब्ध होती है।

चतुर्थ-गुच्छ में सर्व रोगोपशमन के सिद्ध प्रयोगों का संकलन है। प्रत्येक योग अनुभूत है। 'सिद्ध-भेषज-मणि-माला' गत इन योगों के, मेरे पास, पू. श्रीभट्टजी के श्रीहस्त से आलेखित अनेकों जीर्ण-पत्र हैं। प्रत्येक योग के नीचे प्रायः इस तरह लिखा हुआ मिलता है–'अजमा कर देख लीनी छे-सही छे'। इससे इतना सुनिश्चित है कि इन योगों को, उनकी, यथा रोगपर प्रयोगद्वारा, सिद्धि की दृढ प्रतीति होनेपर ही पद्य-बद्ध करके, इस ग्रंथ में, स्थान दिया गया है। ये योग अत्यंत सरल हैं। इनके घटक द्रव्य प्रायः सर्वत्र अनायास उपलब्ध होनेवाले अल्प-व्यय साध्य हैं। घर में या वन में, वैद्य इन योगोंद्वारा सस्ती किंतु सद्यःफलदायिनी चिकित्सा कर सकता है। इस ग्रंथरत्न को अपने हस्तगत रखनेवाला वैद्य वस्तुतः 'पीयूष-पाणि' है।

शास्त्रीय योगों का निगूढ-रहस्य, पू. श्रीभट्टजीने गुरु परंपरा से भी प्राप्त किया था–तदुपरांत, अन्यान्य चमत्कारिक-प्रयोगों को उन्होंनें, साधुओं से तथा अनुभवी वृद्धजनों से सेवा-शुश्रूषाद्वारा, अपने शिष्यों से स्नेहद्वारा, ग्रामीण जनों से द्रव्य, उपकार, प्रभाव, परिश्रम तथा अन्यान्य साधनोंद्वारा, प्राप्त किये थे। जिन जिन महानुभावों से इस तरह के योग प्राप्त हुये, उनके नामों का उल्लेख उन योगों के साथ करके, पू. श्रीभट्टजी उनको भी अपने ग्रंथ के साथ अमर कर गये। पू. श्रीभट्टजी की कृतज्ञतामयी यह मनोवृत्ति वैद्य-समाज का एक अनुकरणीय गौरवान्वित आदर्श है।

इसी तरह, पंचम-गुच्छ-गत पारद-प्रक्रिया पर भी, आपश्री ने, अपनी निजी मौलिक पद्धति प्रस्तुत की है। पारद की, गर्भयंत्र द्वारा अन्तर्धूम 'जारणा' विधि, तेजो-जल का निर्माण, लौह को वह्नि-क्षम बनाने का प्रकार आदि इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं। यह सिद्ध वैद्य, स्वयं अपनी ही पद्धतिद्वारा, पारद-प्रधान सभी रसों का निर्माण करता था। शास्त्रों का आधार लेकर, अध्ययनात्मक व्याख्या कर देना एक बात है। किंतु, शास्त्रोल्लिखित प्रयोग को क्रियात्मक रूप में प्रत्यक्ष करके, प्रत्यक्षी-कृत उसी सत्य को, उसके मौलिक स्वरूप में, अपने अनुभव का पुट लगाकर प्रस्तुत करने से, आर्ष-शास्त्रों के प्रति श्रद्धा में अभिवृद्धि होती है–और इसी में, उस ज्ञान को प्रस्तुत करने वाला अपनी कृतकृत्यता समझता है। आत्मज्ञान से साक्षात् करने वाले, ब्रह्म-सूत्र के व्याख्याता श्रीशंकराचार्य, वेदव्यास से कदापि न्यून नही हैं। आयुर्वेद विज्ञान-वारिधि स्व. श्रीभट्टजी नागार्जुनादि रस वैज्ञानिकों की समकक्षा के उद्भट विद्वान् थे। क्योंकि, वीसवीं शताब्दि में सर्व प्रथम यही एक ऐसा रस-विद्या-वैज्ञानिक रहा, जिसने रस-ज्ञान के विषय में अपना यह परिचय दिया–'सूते गंधक-जारणाद्यधिकृता येन क्रिया नैकशः"।

आयुर्वेद शास्त्र का विवेचन, चरकसंहितादि के अमुक अंशों को छोडकर, अधिकांश में पद्य-बद्ध मिलता है। कदाच्, छात्र की सुख-स्मृति के लिये इस शैली का आग्रह रहा हो। किंतु, आयुर्वेद कदापि काव्य का विषय नहीं बनाया जा सकता

यदि बनाया जा सकता है तो 'संस्कृत-वाङ्मय' में यह एक नूतन एवं अनुरूप शैली मानी जायेगी। पू. श्रीभट्टजी की जन्मसिद्ध काव्य-प्रतिभा के विषय में पृथक् निबंध लिखना होगा। कच्छ-वध आदि महाकाव्यों के प्रणेता श्री श्रीकृष्णरामजी 'अनामिका सार्थवती बभूव' इस उक्ति के अपवाद रूप हैं। वह अपने युग के वस्तुतः कालिदास ही थे। श्रीभट्टजीके समकालीन महामहोपाध्याय श्रीदुर्गाप्रसादजी ने उनके विषय में 'कवने य कालिदासोपम' कह कर उनका यथानुरूप परिचय दिया था।

आयुर्वेद को काव्य का विषय सर्वप्रथम पू. श्रीभट्टजी ने बनाया। इस प्रसंग में, आपका 'पलाण्डुराजशतकम्' आयुर्वेद-वाङ्मय में एक परम नूतन एवं रमणीय काव्य है। काव्यारंभ कन्द-प्रकाण्ड पलाण्डुराज के दिग्विजय-प्रस्थान वर्णन से किया गया है। समग्र कंदजाति के एकमात्र अधिपति पलाण्डु जो श्वेतवर्ण हो गये वह अपने ही यशोविपाक से!!! 'प्रतापपराजीकृतसर्वकन्दो यशोविपाकेन विशिष्य पाण्डु ।' पलाण्डुराज के सेनापति, विभग्न का संधान करने में निपुण, अमृत-बिन्दु से उत्पन्न अत एव रस-मय स्वयं रसोन हैं—'समन्ततो मर्मपिनद्धवर्मा विभग्नसंधानविधानिदग्ध । पफाण पीयूषपृषत्समुत्थो रसं दधानो मिषतां रसोनः'। अरि संहार में कृत प्रतिज्ञ परमवीर सूरण, सेनाग्रभाग को अलंकृत कर रहे हैं—'सामर्षमर्शोरिपु-बद्धदीक्षो विरूढशस्त्रव्रणकर्कशाङ्गः । स सूरणः सद्गुणपूरणश्रीरमुष्य नासीरमलंचकार'। ऊंटोंपर आरूढ, दोषत्रय-नाशक बाल 'मूलक' सेना के साथ साथ प्रस्थान कर रहे हैं। क्रमेलकानामुपरि क्रमेण विस्तार्य हंसच्छदतूलकानि । आरुह्य दोषत्रयघस्मराणि प्रतस्थिरे बालकमूलकानि'। कितना रमणीय है यह काव्य!!! पलाण्डु, रसोन आदि कंदवर्गीय-शाक मात्र न रहकर, अपने अपने विशिष्ट-गुणों से युक्त मानों सजीव योद्धाओं के रूप में उपस्थित हो गये हो!!! भाव के साथ भाषा का मधुर संमिश्रण दर्शनीय है। आपश्री के सभी काव्यों में से, अक्षर अक्षर में से, पद पद में से एक अनिर्वचनीय मधुरता, सजीवता एवं अनूठापन छलकता हुआ प्रतीत होगा।

इनकी साक्षात् प्रतीति के लिये 'सिद्ध-भेषज-मणि-माला' का कोई भी पद्य ले सकते हैं। यह ग्रंथ स्वयं काव्यमय आयुर्वेद है।

'कवित्व' साधनोंद्वारा प्राप्त की जानेवाली वस्तु नहीं है-यह एक स्वयंभू मानसिक वृत्ति है। नैसर्गिकी प्रतिभा के साथ साथ निरंतर अध्ययनशीलता से ज्ञान की अतिविमलताद्वारा काव्य की संपदा में वृद्धि की जा सकती है। किंतु काव्य-गत 'चारुत्व' की निष्पत्ति के लिये 'व्युत्पत्ति' की प्राप्ति इतनी सुलभ नहीं।

'नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतञ्च बहु निर्मलम्। अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसंपदः ॥
कवित्वं जायते शक्तिर्वर्द्धतेऽभ्यासयोगतः । तत्र चारुत्वनिष्पत्तौ व्युत्पत्तिस्तु गरीयसी ॥

व्युत्पत्ति समन्वित ही महाकवि कहलाता है। पू. श्रीभट्टजी महाकवि थे। 'सिद्ध-भेषज मणि माला', 'चारुत्व' के प्राचुर्य से मानों उभराती है। यवानी

(अजवायन) कृशोदरी यवनी के समान 'तीक्ष्ण' होती हुई भी 'रुचिकर' क्यों न होगी ?

'तीक्ष्णाऽपि रुच्या नवला सवातला प्रदीपनी शुक्रहरी कृशोदरी ।
हिनस्ति जंतून् द्रवभावभाविनी लघुर्यवानी यवनीव भासते' ।

सिद्ध-भेषज-मणि-माला में ऐसा एक भी पद्य नहीं जो अनुप्रास रहित हो—यमक, अर्थालंकार, सामयिक अनूठि उपमायें, संगीतमय भाषा में मनोगतभाव की अभिव्यक्ति, नैसर्गिक कोमलकांत पदावलि आदि काव्यसंपदा से चकचकित यह मणिमाला वस्तुतः परम-स्पृहणीय बन गयी है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

'पलाण्डुकन्दपानीयमानीय द्विपलं पिबेत्' । 'कर्षन्ति कार्श्यं क्रमशः कृशानोः' ।
'पित्तास्रमारुतविदाहरुजोविदारी-स्तन्या विदारयति दाररतिं ददाति' ।
'कटुरसपरिपुष्टं तिक्तभावेन जुष्टं, पवनविजयतुष्टं शुक्रकारि प्रदिष्टम् ।
विधमति बहु दुष्टं श्लेष्मवीसर्पकुष्ठं, श्वसनकसनकष्टं दुःसहं हन्ति 'कुष्ठम्' ।

'भक्तं मिथोविभक्तं साधय सितशर्करासमासक्तम् ।
तद्धरति-रक्तपित्तं वेश्याचित्तं यथा वित्तम्' ॥

'अरुणधवलचलकिसलयनवकिसलयपुटविपक्वफणिफेनम् ।
अतिसरणमसुहरणमपि हरिसरणमिव रुणद्धि संसरणम्' ॥

'रसायनः सर्वरसो विशारदः पराक्रमासौ भजतां विहारदः ।
त्रिदोषनुद्योगवहोऽतिपारदः करोति कुष्ठक्षपणानि पारदः' ।

"गुडकर्पूरवटिका श्वासं सद्यो व्यपोहति । प्रभा प्रभाकरस्येव संकोचं सरसीरुहाम्' ॥

'शूलं समूलं हरति प्रसह्य कूलं यथा निर्झरिणी-प्रवाहः' ।
'हरन्ति मेहानपि दीर्घकालजान्-गुरूपदेशा दृढसंशयानिव' ॥

'नस्यं कृतं मत्कुणजैरसृग्भिर्हरत्यपस्मारमुदग्रवेगम् ।
मदीयकाव्यं सितया समानं वृथाभिमानं द्विषतां कवीनाम्' ॥

"निहन्ति जठरान्तकं कृतघ्न इव सौहृदम्' ।
"मधु मधुरं गव्यं पयः कुन्दसहोदरदन्ति । त्रुटिमधुकप्रतिसारितं कण्ठगदं लघुहन्ति' ॥
'करालङ्कृतावग्रतो विस्फुरन्त्यामपेक्षा भवेत् किं पुनर्दर्पणस्य' ।

'खलजनता स्तुतिभिरहो विनीतभावं दधाति न क्वापि ।
नवनीतभाविता किं लोहशलाका मृदुर्भवति' ॥

'हेमन्तकालेऽत्र वियोगिकाले शीतस्य रुक् पश्य न तस्य यस्य ।
अङ्के हसन्ती दयिता हसन्ती पार्श्वे हसन्ती वसनानि सन्ति' ॥

कोमलकान्त पदावलियुक्त अतिसार के असाध्य लक्षणोंवाली समस्यापूर्ति पठनीय है:—

'सोऽसाध्यः परिकीर्तितोऽतिसृतिमान् यस्येति सार्येतविण्
नीलाभाऽधिकनिर्मलाग्रविलसत्सौरभ्यसंभारयुक् ।

अन्तर्दुष्टितयाऽतिविभ्रमलिना बद्धा सिरातन्तुभि-
र्जम्भूवत् जलबिन्दुवत् जरजवत् जम्मालवत् जालवत्' ॥

जिस वृत्त मे रचना की गई हो उसमे तद्वचनामोल्लेखन-रूप रचना कौशल दर्शनीय है –

'गोमूत्रे कथित स्नुहीपयसि च न्यस्तमत क्षालितो-
मद्य सन्मदिराभिषेकविधित सिद्धोऽग्निना खर्परे ।
मान्द्यश्लेष्मसमीररुक्रूपनरश्वासामहिकाज्वर-
क्लैब्यातङ्कतुरङ्गकेषु तुरगे शार्दूलविक्रीडितम्' ॥

इत्यादि । शिखरिणी छन्द में शिखरेणी (दही-निर्मित-लेह्य) का वर्णन कितना रुचिकर बन गया है –

मरुल्लीला लीना भवति च नवीना रुचिरल-
समुद्रिक्त पित्त मलिनयति चित्त क्षयभिया ।
बलाख कि हाम प्रभति बलतो बल्गति बल
समीक्ष्योच्चैरेलोपणशशिवयस्या शिखरिणीम् ॥

आयुर्वेद के निगूढ ज्ञान की प्राप्ति के साथ साथ दुर्लभ काव्य-रस की आनन्दानुभूति के लिये, अब, आप 'सिद्ध-भेषज-मणि-माला' को ही क्यों न धारण करें ?

पू श्रीभट्टजी ने अपने अगाध ज्ञानको, देव-वाणी-पर अपने अप्रतिम वर्चस्व के अनुरूप शैली में अभिव्यक्त किया है अत यह ग्रथ अपने आपको समझाने मे, समझने वाले के सपूर्ण पाण्डित्य की एकाग्रता माग लेता है । जिन्होंने इस ग्रथ का गुरुपरपरा से अध्ययन किया हैं वही इसे समझ सकते हैं-अन्य कदापि नहीं । बहुत से प्रयोग ऐसे हैं जिनका सपूर्ण रहस्योद्घाटन नहीं किया गया। अमुक प्रयोग कूट-पद मे कह गये हैं-तो अमुक प्रयोग के घटक-द्रव्य अनुक्त रहे है । अमुक स्थलोंपर औषधीय द्रव्यों के क्लिष्टातिक्लिष्ट पर्यायों का उपयोग किया गया है–'यथा मानदल, रूक्ष, घननाद, त्रिगर्तिक आदि जिसका टिप्पणी में भी स्पष्टीकरण नहीं मिलता। औषधियों के मान 'कटपयादिक्रम' को जानने वाला ही समझ सकता है। कहीं 'गुरुक्त-विधि' अनुक्त ही रही है तो कहीं कहीं अर्थ तिरोहित सा रहा है।

मेरे मत में, इस ग्रथका सपूर्ण अनुवाद एक परम-दुरूह कार्य है–तथापि पू पिताजी की आज्ञासे श्रीगणेश कर ही दिया, प्रारभ के दो गुच्छों का विवरणसहित अनुवाद समाप्त हुआ ही था कि उस दिन पू पिताजीने मुझे बुलाकर कहा कि बेटा ! आज हम 'अमरपथ' की यात्रा करेंगे । मैं किंकर्तव्यविमूढ था–पू पिताजी को कोई रोग-विशेष नहीं था। उन्होंने मुझे अपनी नाडी बताई और कहा इस तरह जब नाडी चलती हो तब समझना कि व्यक्ति चार प्रहर के पीछे देह त्याग करदेगा। अपने अंतिम समयतक मेरे पिता मुझे ज्ञान देते रहे ।

पिताजी के साथ साथ इन दो गुच्छों के अनुवाद की भी उपरति हो चुकी थी, किंतु, मेरे 'कल्याण-मित्र' वैद्य-मूर्धन्य पं. श्री. हरिदत्तजी शास्त्री की सतत प्रेरणा एवं नियोग से, मैंने अवशिष्ट अनुवाद संपूर्ण कर ही दिया- किंतु मुझे संतोष जो नहीं हो रहा वह इसलिये की विस्तृत-व्याख्या मांग लेने वाले अमुक प्रयोगों के प्रति पुस्तक के कलेवर में अभिवृद्धि के भय से, न्याय नहीं कर सका। 'चितादग्धं खवास्थि' 'तक्षककलेडिकातल पर्पटिका' उन प्रयोगों में से कुछ हैं।

महर्षि अग्निवेश-प्रणीत अंजन निदान के हिंदी अनुवाद का संयोजन इस ग्रंथ-रत्न की उपादेयता में अभिवृद्धि करेगा। इसकी मूलप्रेरणा पं. श्रीहरिदत्तजी से ही प्राप्त हुई। महानुभावों की सत्संगति मानव के अभ्युदय का मंगलमय सोपान है। पू. श्रीशास्त्रीजी ने प्रूफ संशोधन से लेकर शुद्धिपत्र के निर्माण-सीमातक इस ग्रंथ के संपादन में जो अपना अमूल्य समय-दान किया उसके लिये मैं उनका तथा उतनी ही मात्रा में-अपनी संस्कृत एवं आङ्ग्ल-साहित्य पंडिता-पत्नी श्रीमती चंद्रा भट्ट एम्. ए. का हृदय से कृतज्ञ हूं। अंत में, विद्वानों से प्रार्थना है कि यदि अनुवाद में कहीं कुछ संदिग्धता प्रतीत हो तो परिशिष्ट गत शुद्धि-पत्र अवश्य देखलें। गुरु परंपरा से प्राप्तबोध के अनुरूप ही यथामति, मैंने, यह अनुवाद किया है। अधिकांश में यह स्वतंत्र अनुवाद है—अतः कहीं कहीं मूल में अनुक्त द्रव्य, मान आदि स्पष्ट करके, इसमें, लिख दिये हैं। ग्रंथ-गत, विशेषतया, विष-प्रधानयोगों का उपयोग अनुभवी वैद्योंद्वारा ही कराना हितावह होगा।

पू. श्री. श्रीकृष्णरामजी ने इस ग्रंथ-रत्न की संपूर्ति करके, इसका मुद्रापण कार्य शीघ्र ही प्रारंभ करादिया था। किंतु, हाहन्त, इसी समय, विक्रम संवत् १९५४ वैशाखकृष्ण प्रतिपदा के दिवस, ४९ वर्ष की अवस्था में आप यशःशेषता को प्राप्त हो गये। स्वर्गारोहण से कुछ समय पूर्व, चिकित्सा-गत अनुसंधान-कार्य को अक्षुण्ण रूप से गतिमान रखने के अभिप्राय से, आपश्रीने, 'संस्कृत चिकित्सालय' के नाम से एक संस्था स्थापित की थी। अपने अनुसंधानकार्य में उत्तरोत्तर वृद्धिंगत यह संस्था स्व. पू. श्रीभट्टजी का एक सजीव-स्मारक बन गया है।

स्व. पू. श्रीभट्टजी के कुल में, पुत्र-पौत्र तथा प्र-पौत्र-वंशजो में-आयुर्वेद-शास्त्र के अविस्मरणीय विद्वान् हैं तथा होगये। षड्शास्त्री भट्ट श्रीगंगाधरजी-आशु-कवि भट्ट श्रीकलाधरजी एवं प्रसिद्ध चित्रकार श्रीघनश्यामजी आपकी संतान-त्रयी मूर्तिमान् बृहत्त्रयी थी। मेरे प. पू. पितृव्य श्रीगंगाधरजी-आयुर्वेद महासम्मेलन पनवेल के सभापति-अपने पिता के समान ही आयुर्वेद तथा संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे। मेरे स्व. प. पू. पिताश्री को चरक-संहिता-अनुलोम-विलोम गति से कंठाग्र थी।

स्व. पू. श्रीभट्टजी के निकटतम पट्टशिष्यों में से, साधु श्रीलक्ष्मीरामस्वामी, एवं आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध पंडित श्रीनन्दकिशोरजी के पिता श्रीश्यामजी विशेष उल्लेखनीय हैं।

'सिद्धभेषज मणिमाला' के टिप्पणीकार-भिषगाचार्य श्रीलक्ष्मीरामस्वामी, पू श्री भट्टजीरूप ज्ञान-प्रदीप से प्रवर्तित अपर प्रदीप ही थे। मणि-माला पर, श्रीस्वामिजीकी टिप्पणी उनकी एक अमर साहित्यिक कृति है। श्रीस्वामिजी-वाग्भट के सुप्रसिद्ध टिप्पणीकार अरुणदत्त एव हेमाद्रि से कदापि न्यून नहीं थे। 'टिप्पणी' में उनके मधुर कवित्व एव आयु शास्त्र-गत अगाध-पाण्डित्य का स्वत परिचय मिल जाता है। टिप्पणी गत प्राय प्रत्येक पक्ति पद्य-वद् अथवा कोमल-कांत-पदावलि समन्वित है—'फाणितप्रवर ऐक्षवद्वान्तावप्यत्राचार्यते'—'लोके यस्या. चाङ्गेरीति प्रसिद्धि'—'द्वैगुण्य स्यादौषधान्मादिकस्य'—'लोके मज्जा' 'एलिया' चास्य मात्रा प्राय यावल्यङ्गुलीपर्वयुग्मात्'। श्रीस्वामिजी के किसी स्वतत्र काव्यमय-प्रबध के अभाव में-पू श्रीभट्टजी पर स्वरचित प्रशस्ति के केवल सार्धश्लोकद्वय उनको महाकवि रूप से अमर करदेने मे पर्याप्त होंगे—

"तत्राऽज्ञानतमोराशिभास्कर नित्यमगलम्।
बुध कविं द्विजपतिं वैद्य-विद्या-बृहस्पतिम्॥"

श्रीकृष्णरामनामान गुरु शरणमाश्रित॥

श्रीस्वामिजी के श्रीगुरु अलौकिकत्वसे समन्वित थे। अज्ञानरूप शनि तथा तमो-राशि रूप राहु केतु के लिये साक्षात् सूर्य थे। आप द्विजपति (चद्रमा), मगल मय, बुध (विद्वान्), बृहस्पति तथा कवि (शुक्र) थे। नवग्रह-मय इस श्लोकसहित श्रीस्वामीजी को वन्दन हो!!!

'वन्दे सर्वस्वहरण प्रवण भव-तारणे। साधूनामेकशरण श्रीकृष्णचरण नुम'॥

यह है काव्य! यथार्थ चारुत्व!! नैसर्गिकी प्रतिभा!!! अष्टाग-हृदय का आद्योपात-मुख पाठ सुनकर इस ग्रथ के अनुवादक को 'जन्म-सिद्ध-प्राणाचार्य' की पदवी अर्पण करने वाले, विद्वत्ता, साधुता एव सहृदयता के, साक्षात्-प्रतीक, सर्वत्र-पवित्र-वृत्तिमय साधु श्रीलक्ष्मीराम स्वामीजी की मधुरस्मृति पूर्वक इस लेख को, मैं व्यग्रा सपूर्ण करता हू।

विजयादशमी
१९६७

— विनयावनत —
रणछोड कलाधर भट्ट



स्वर्गताः रा. वै. भट्ट श्रीकलाधरमहाभागाः

॥ श्रीः ॥

समर्पणम्



त्रयीमयाय प्रतिभाप्रभाणां
गुणापगानां वरुणालयाय ।
क्रियाविधौ सिद्धसुधाकराय
प्रणौमि संपूर्णकलाधराय ।

*

श्री १०८ गुरुवर्य-पितृतीर्थश्रीकलाधरभट्टमहाभागानां
चरणारविन्देषु



परमादरेण प्रणम्य
प्रस्तुतग्रंथरत्नानुवादरूपपुष्पाञ्जलिं
सा नु न यं
समर्पयति

तत्रभवद्वशंवदः
रणछोडभट्टः

॥ श्री ॥

आयुर्वेद-वाचस्पति,
वैद्य राम-प्रकाश स्वामी एम ए भिषगाचार्य, दर्शनशास्त्री
आचार्य गवर्नमेंट आयुर्वेद कालेज, जयपुर

—सम्मति—

आयुर्वेद के उद्भट विद्वान एवं अनेकशास्त्रों के मर्मज्ञ रा वै महाकवि स्व भट्टश्री श्रीकृष्णरामजी प्रणीत 'सिद्ध-भेषज मणिमाला' आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान पर, एक नूतन एवं अनुसधानात्मक मौलिक शास्त्र है।

श्रीभट्टजी के पट्ट शिष्य, आधुनिक आत्रेय स्व श्रीलक्ष्मीरामजी स्वामी ने अपनी अनुपम टिप्पणीद्वारा, इस ग्रंथोत्तम की सिद्धि के निगूढ रहस्य का-तत्-गत भेषज रूप मणियों के यथार्थ वैभवका, वैद्य समाज को परिचय दिया एवं इस तरह अपने पू गुरु महाशय की ज्ञान-धारा को अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान रखा।

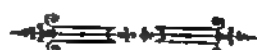
कालप्रभाव से, सर्वस्पर्शी पाण्डित्य के उत्तरोत्तर ह्रास के कारण मणिमाला के सर्वोपयोगी प्रयोगों से आधुनिक चिकित्सक वर्ग अपरिचित सा होता जा रहा है, इनके अवबोध के लिये, स्व श्री भट्टजी के पौत्र जन्म-जात 'प्राणाचार्य' श्री आर के भट्ट ने मणिमाला पर 'वैश्वानर' नामक हिंदी विवरण लिख कर, वैद्य जगत का अतिशय उपकार किया है। चरकोक्त महाकषायों के पद्यबद्ध निरूपण में, श्री आर के भट्टकी, कुल परंपरा प्राप्त, कवित्व प्रौढी का दर्शन होता है। तदुपरांत, 'अंजन-निदानम्' के हिंदी रूपांतर को सन्निविष्ट करके, आपने इस ग्रंथ रत्न को अधिकाधिक उपयोगी बना दिया है।

यत्र तत्र वैमत्य का दिग्दर्शन भी किया गया है जो कि भविष्य में समाधेय होगा। यह ग्रंथ सग्रहणीय है और इस कृति के लिये श्री आर कलाधरभट्ट का प्रयत्नस्तुत्य है। 'वैश्वानर' टीका अज्ञानान्ध को भस्म करके ज्ञानालोक का प्रसार करेगी।

वैद्य राम प्रकाश स्वामी

अनुक्रमणिका





॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमहागणाधिपतये नमः ।

सिद्ध - भेषज - मणि - माला

व्यासोपाख्य - राजवैद्य - भट्ट - श्रीकृष्णरामकविगुम्फिता ।

तत्पौत्र राजवैद्य भट्ट श्री आर्. कलाधर कविरत्न - विरचितया

'वैश्वानराख्यया' हिंदीविवृत्या समलङ्कृता ।

प्रथमो गुच्छः

आविर्बभूव कलशं दधदर्णवाद्यः पीयूषपूर्णममरत्वकृते सुराणाम् ।
रुग्जालजीर्णजनता[2]जनितप्रशंसो धन्वन्तरिः स भगवान् भविकाय भूयात् १

परागमहितौ[3] सदालिभिर[4]तीव संसेवितौ
स्वतापपरिशान्तये प्रवरराजहंसा[5]दृतौ ।
प्रकामम्रृदुलारुणोदरतया चमत्कारिणौ
वयं गुरुपदौ स्तुमः कमलसंपदां लुण्ठकौ ॥ २ ॥

हिं दी अ नु वा द

मंगलाचरणम्-

सुदक्षं संस्तुत्ये मदमथननृत्ये फणिपतेः समादिग्धं स्निग्धं पशुपयुवतीनां कुचमदैः ।
स्वकीयान् गोवत्सानुचरितुमुत्कंठितमहो प्रभोः पद्मासद्माऽवतु मुदितपद्माङ्घ्रियुगलम् १

संस्मृत्य वाक्यान्यपरो हि कृष्णो नैरोग्यधर्माभ्युदयाय जातः ।
पायादपायात् स तनोर्निकायात् श्रीकृष्णरामो भविकाय भूयात् ॥ २ ॥

क्षीर-सिंधु से हुये प्रकट अमि मय घट धरकर, करने, परमकृपाल, देव गण को अजरामर
रोग–जाल से जीर्ण–जगत–वंदित विश्वंभर धन्वन्तरि भगवान करें कल्याण निरंतर ॥१॥

अपनी अत्यंत मृदुता तथा तल गत अरुणिमा से कमल के सौंदर्य को परास्त करने वाले, गुरु के चमत्कारपूर्ण चरण युगल को, हम प्रणाम करते हैं; जो चरण

श्रीकृष्णरामशिष्यो लक्ष्मीरामः प्रणम्य तं भक्त्या । तत्कृतनिबन्धसमयं व्यक्तीकुरुते यथाबुद्धि ।
न सा दिङ् न स देशोऽपि न च तन्नगरं क्वचित् । यत्र श्रीकृष्णवैद्यानां शिष्यैर्नैव विजृम्भ्यते ॥

१–इह खल्वस्मद्गुरवः श्रीकृष्णरामपादाः "कीर्तिरक्षरसम्बद्धा स्थिरा भवति भूतले" इत्युक्तेर्भेषजमालां ग्रथ्नन्तः शिष्टस्थितिपालनार्थं ग्रन्थस्य निर्विघ्नपूर्वकं समाप्त्यर्थं च द्वाभ्यां पद्याभ्यां मङ्गलमाचरन्ति—आविरित्यादि । २–जनसमूहः । ३–परागमहितौ, परागम-हितौ । ४–सदा अलिभिः, सतामालिभिश्च । ५–राजहंसैः, राजतल्लजैश्च ।

आयुर्वेदवचःप्रपञ्चचतुरो विद्यावतामग्रणी
सङ्ख्यातीतगुणाश्रयो गदहृतौ साक्षाद्धि धन्वन्तरिः।
विश्वस्मिन्नुपकारबुद्धिरर्थिकं कल्पद्रुवत्प्रेष्टदः
श्रीमद्भट्टवरेन्द्रगुर्जरकुले श्रीलछुरामोऽभवत् ॥ ३ ॥

तस्मादिन्दुरिवाम्बुधेः समभवद्वेदार्थपारङ्गमः
प्रौढः कर्मसु सर्वविद्वदगदङ्काराग्रणी कुन्दनः।
यो रामक्षितिपेन पाठनिलये सत्कृत्य संस्थापितः
सर्वेषां गदगञ्जनाय हिकमन्मन्दारयन्थं व्यधात् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णस्तनयस्ततः समजनि श्रीपाठशालासन-
स्थायी नैकविचित्रकाव्यरचनाप्राप्तप्रतिष्ठाभरः।

कमल पराग की महिमा से युक्त अथवा परा ज्ञान की प्राप्ति कराने में समर्थ है, जो सदा भ्रमर समूह से अथवा सज्जनों से ससेवित है, एवं जिनका समाश्रय-सम्मान, अपने सताप की हानि के लिये, उत्तम राजहंस अथवा श्रेष्ठ राजपुरुष करते हैं ॥ २ ॥

मेरे पितामह श्रीमद् लछुरामजी (अपर पर्याय श्री विष्णु रामजी) ने श्रीभट्ट श्रेष्ठ-गुर्जर कुल में जन्म लिया-आप आयुर्वेद वाङ्मय में परम विद्वान, विद्वद् समाज में अग्रगण्य एवं अनत गुणों से समलङ्कृत थे। रोग निवारण विधि में साक्षात् धन्वन्तरि के समान तथा अपनी परमोदार-वृत्ति के कारण अभीष्ट-पूर्ति करने में स्वय कल्पवृक्ष ही थे ॥ ३ ॥

इनसे, महासमुद्र में से चन्द्रमा के समान, श्रीकुन्दनराम-पुत्र-रत्न ने जन्म लिया। आपका अपर नाम श्रीजीवनराम भी है। आप वेदार्थ में पारगत, चिकित्सा शास्त्र में प्रौढ तथा पडित एव वैद्य समाज में सर्वश्रेष्ठ थे। आपको 'सस्कृत विद्यालय' में सस्थापित करके श्रीरामसिंह भूपति ने आपके प्रखर-पाडित्य का प्रचुर सम्मान किया था। सर्व-प्राणियों को रोग-मुक्त करने के लिये आपने यावन-चिकित्सा-शास्त्रपर 'हिकमत्-मदार' नामक काव्य-मय मौलिक ग्रथ की रचना की थी ॥४॥

इनसे पुत्र-रत्न श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुये। श्रीसस्कृत पाठशाला में पदारूढ, अनेकों उत्तम-काव्यों की रचना द्वारा प्रचुर प्रतिष्ठा एव यश को प्राप्त वही मैं श्रीकृष्ण विद्वान

१—श्रीविष्णुरामापरपर्याय । २—श्रीजीवनरामापरपर्याय । ३—यवनशास्त्रानुसारेण सदर्भविशेषम्। वैद्यविद्या यवनैर्हिकमच्छ देनोच्यते। उक्त च—"विद्येषा हिकमत्प्रोक्ता नज्मी अस्लीति सा द्विधा" इति (हिकमत्प्रकाशे)। ४—श्रीगुरुचरणरचितेषु बहुषु काव्येषु चमत्कारप्रधानानि कियन्ति काव्यानि प्रत्यभिनार्थं चतसृभिरार्याभिः प्रदर्श्यन्ते—

आर्यालङ्कारगन पञ्चमहाकाव्यसारशतक च। जयपुरविलासकाव्य मुक्तकमुक्तावली नाम ॥१॥
श्रीकच्छवाहवंश छन्दोगणित पलाण्डुदिग्विजयम्। गोविन्दभट्टभङ्ग तथैव होलोत्सवो भाण २
जयपुरमेलस्फुतुक गप्पसमाधानमद्भुत तद्वत्। नाथस्तव कनीयान् काशीनाथस्तोऽपि तथा ३

सम्राट्सुताभिनन्दन-माधवपाणिग्रहोत्सवावञ्छौ।
गोपालगीतपत्रप्रशस्तिमुख्यानि खण्डकाव्यानि ॥ ४ ॥

सोऽहं संप्रति सिद्धभेषजमणीनाहृत्य मालामिमां
गुम्फामि स्फुरदच्छगुच्छरुचिरां विद्वद्भिषक्प्रीतये ॥ ५ ॥
श्रीकच्छवाहकुलपुष्कर चित्रभानुर्मानो बभूव नृपतिः प्रथिताभिमानः ।
यः काबुलावधि विजित्य महीं महाब्धावक्षालयद् द्विपदसृक्कलुषं कृपाणम् ६
तस्यान्वये समभवज्जयसिंहवर्मा धर्मादरः समधिकं हयमेधकर्मा ।
उच्चैश्चतुष्पटिविचित्रचतुष्पथं यः शिल्पित्रजैर्जयपुरं परमं व्यधत्त ॥ ७ ॥
जातस्तस्यान्ववाये महति महितधीर्दूषणध्वंसदीक्षः
श्रीरामः प्रौढकामः सुकृतमतिरसत्सम्प्रदायप्रमाथी ।

वैद्य-समाज की प्रीति के लिये, सिद्ध-भेषज रूपी मणियों को एकत्रित करके-समुज्वल निर्मल-गुच्छों में विभक्त इस रमणीय-माला की रचना प्रारंभ करता हूं ॥ ५ ॥

परम-मनस्वी मानसिंह-भूपति, श्रीकच्छवाह-वंश-कमल के लिये साक्षात् सूर्य के समान थे-जिन्होंने काबुल-पर्यंत-पृथ्वीपर विजय प्राप्त करके शत्रुओं के रक्त से रंजित अपनी कृपाण को महासमुद्र में धोकर स्वच्छ की थी ॥ ६ ॥

इनकेही वंश में श्रीजयसिंह वर्मा उत्पन्न हुये। धर्म में प्रगाढ-श्रद्धोपेत इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। कुशल शिल्पियों द्वारा सुंदर-चतुष्पथों से समन्वित, दीर्घ राजमार्ग वाले रमणीय नगर जयपुर का निर्माण इन्होंने ही किया ॥ ७ ॥

इसी महावंश में, उत्तम-प्रतिभा-संपन्न, पुण्य-मतिवाले, असत् संप्रदाय के विनाशक, दूषणरूपी दूषणासुर के संहार में कृत-निश्चयी; लोक के योग-क्षेम की

१—अनेन प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यर्थमभिधेयोक्तिस्तथा भिषक्प्रसादः प्रयोजनम्। मुख्यप्रयोजनमनायासेनारोग्यमित्यपि ज्ञेयम्। २—सूर्यः। ३—श्रीमानसिंहः। अयं च महावीरतया जगत्प्रतीतः श्रीमदकबरशाहदिल्लीदुश्च्यवनस्य प्रधानसेनापतिः कच्छवाहवंशमहाकाव्ये सपरिवारो वर्णितः। प्रसङ्गात्तत्रत्यं कञ्चिदेकं श्लोकं विलिख्य दर्शयामः—

मातुं मानमहांस्यतीव न गुरुः प्रौढोऽपि सन् स्वर्गुरुः
सा गीर्गायति किं तु नान्तमयते काव्यस्य कक्षा कुतः ।
वल्मीद्वीपभवौ कवी तु जरठौ का मादृशानां कथा
यत्संख्याकलन-क्रियासु विकलः शेषोऽपि शिष्यायते ॥

इत्यष्टमसर्गसमाप्तौ श्रीगुरुकृतिर्द्रष्टव्येति ।

४—अयमपि तत्रैव महाकाव्ये दशमैकादशसर्गयोः सव्यासं वर्णितः। यथा—

'राज्यं वर्धितमाहवेषु विजितं स्वच्छं यशोऽप्यर्जितं
शिल्पिक्षुण्णमयस्मयं जयपुरं निर्माय विख्यापितम् ।
येनायाजि तुरङ्गमेधविधिना द्रव्यं द्विजेभ्योऽर्पितं
सोऽयं श्रीजयसिंहवीरनृपतिः स्यात् कस्य वाग्गोचरः ।'

इत्यलमप्रस्तुतेन। ५—अस्य पुनर्वर्णनं जयपुरविलासे द्रष्टव्यम्। ६—व्यधापयत्। ७—दूषणध्वंसे दूषणनामरक्षोविनाशे दीक्षा यस्य स तथा। एतेन श्रीरामचन्द्रौपम्यं ध्वनितम्।

योगक्षेमक्षमर्षिः शशिविशदयशा राजराजेश्वरीतो[२]
यो "जी, सी, एस, आई" [३] त्वलभत परमा नीतिशस्त प्रशस्तिम् ॥ ८ ॥

महति तस्य पदे तदनु प्रभुर्विनिहित सचिवैर्न तदाज्ञया ।
सुरपुरीं मघवेव महामहा जयपुरीमधुनाऽवति माधव ॥ ९ ॥

सोऽय चिरं स्फुरतु विस्फुरितप्रतापप्रौढानलाहुतसपत्नपतङ्गपङ्क्तिः ।
कन्दर्पदर्पदलनक्षमयौवनश्रीर्विद्वत्सु कल्पितकृपो नृपमाधवेन्द्र ॥ १० ॥

हंहो माधवसिंहो द्विपद पुनरपि सदा द्विपद ।
जगति प्रसिद्धनागो नागो यस्य प्रसिद्धिमुपयाति ॥ ११ ॥

तदन्नोदकमास्वाद्य श्रमं शास्त्रेषु कुर्वत ।
ममात्र साहस किंवा शक्तिरित्यवधार्यताम् ॥ १२ ॥

सामर्थ्य से युक्त, चन्द्र-ज्योत्स्ना के समान विस्तृत यशवाले, नीतिज्ञों से प्रशसित साक्षात् श्रीराम के समान श्रीरामसिंह ने जन्म लिया। आंग्ल-महाराज्ञी श्रीमति विक्टोरिया ने इनको जी सी एस आई, का परमोच्च पदवी प्रदान किया था ॥ ८ ॥

उपरोक्त महाराजा के आसन पर उनकी यथा आज्ञा, सचिव फतेसिंह वर्मा ने, श्रीमाधवसिंह को अभिषिक्त किया। वर्तमान में यही माधव-इन्द्र के समान-स्वर्ग-भूमि जयपुर नगरी का परिपालन कर रहे हैं ॥ ९ ॥

कदर्प के लावण्याभिमान का विदलन करने वाली यौवन-सपद् से सुशोभित, अपनी दिगन्त-व्याप्त-प्रताप की प्रचड पावक मे शत्रुओं की पक्तिरूपी पतग-समूह को भस्म करनेवाले, विद्वद्-जनों के प्रति कृपा-कटाक्षवाले-श्रीमाधवेन्द्र नृपति चिरकालतक देदीप्यमान रहे ॥ १० ॥

अहो! आश्चर्य! श्रीमाधवसिंह द्विपद हैं, क्योंकि वे नित्य द्विप-हाथीयों का दान करते हैं। जगत में, अपने पराक्रम से नाग-गजेन्द्र के यश को प्राप्त श्रीमाधवेन्द्र वस्तुत नाग है—अर्थात् न-आग-दोषों से रहित हैं। (कविता में एकही पदकी पुन आवृत्ति-पुनरुक्ति दोष कहलाती है। इस श्लोक में, द्विपद तथा नागशब्द की पुन आवृत्ति होने से, आपातत पुनरुक्ति दोष जैसा लगता है वस्तुत यहा पुनरुक्ति-वदाभास अलकार है ॥ ११ ॥

यहा यह जानलेना चाहिये, कि भूरि श्रम से, अनेकों शास्त्रों के अभ्यास पूर्वक-इस सिद्ध-भेषज-मणि-माला ग्रथ के प्रणयन का जो साहस किंवा शक्ति मेरे में है, वह केवल इसी नरेश के अन्न और जलके उपभोग की परिणति है ॥ १२ ॥

१—योगोऽलब्धलाभादिभि सबन्ध, क्षेमस्तेषा चौर्याद्युपद्रवरक्षणम्। २—श्रीविक्टोर्याया सकाशात्। ३—'G C S I' हिन्दुस्थानस्य महती तारेत्यर्थ। ४—निभिर्वर्तमानमहाराजवर्णनम्। ५—फत्तेसिंहवर्मणा। ६—द्वे पदे यस्येति। ७—द्विपान् गजान् ददातीति पौनरुक्त्यव्युदास। ८—न आग इति छेद। ९—घोषणम्।

विद्विषां रोषपोषार्थं तोषार्थं माधवप्रभोः ।
रोगिरोगप्रमोषार्थं मालेयं ग्रथ्यते मया ॥ १३ ॥
अपारमगदङ्कारं[२] कथङ्कारं मयोच्यताम् ।
न्यक्कारार्थं विकाराणां सारं सारं प्रसारितम् ॥ १४ ॥
विगुणाऽपि[३] मदुक्तिर्वो हर्षायैव भविष्यति ।
केषां न मोदमाधत्ते गद्गदं बालजल्पितम् ॥ १५ ॥
सुमवर्षिणीति नाम क्वापि न घटते यथा प्रमार्जन्याः ।
अस्माकमसर्वविदां वैद्यत्वं तद्वदेव जानीत ॥ १६ ॥
खलजनता स्तुतिभिरहो विनीतभावं दधाति न क्वापि ।
नवनीतभाविता किं लोहशलाका मृदुर्भवति ॥ १७ ॥
भवेदियं व्यासतया[४] निरर्था धियं विधायेति न जातु हेया ।
यद्वा परोद्योगनिरर्थकत्वे सन्तो न सज्जा इह तत्किमुक्तैः ॥ १८ ॥
नानानिबन्धेष्वपि विस्फुरत्सु सिद्धाः क्रियाः ख्यापयितुं समन्तात् ।
कुर्वेऽहमेतं कमपि प्रबन्धं क्षिपन्त्विहार्याः करुणाकटाक्षान् ॥ १९ ॥

विरोधियों के क्रोध में अभिवृद्धि करने के लिये, माधव प्रभु के संतोष के लिये तथा रुग्णके रोग-शमन करनेके लिये मैं इस माला को गूंथता हूं ॥ १३ ॥

आयुर्वेद-शास्त्र अपार है. अतः विकारों के शमन में परम उपयोगी मुख्य मुख्य सारभूत प्रयोगों के आलेखन के अतिरिक्त और मैं कर ही क्या सकता हूं ? आप ही बताइये ! ॥ १४ ॥

मेरी वाणी, गुणों से रहित होती हुई भी आपको अवश्य हर्षान्वित करेगी, बालक की गद्गद् जल्पना किसको प्रमुदित नहीं करती ! ॥ १५ ॥

पुष्प-वर्षिणी नाम जिस तरह प्रमार्जिनी (झाड़ू) में कदापि नहीं घटता उसी तरह सबकुछ न जाननेवाले हमारे जैसोंके लिये 'वैद्यत्व'का प्रयोग है ॥ १६ ॥

प्रशंसा-प्रशस्ति से भी दुष्ट-जन कभी विनीत नहीं होते. नवनीत से भावित लोह शलाका क्या कभी मृदु हो सकती है ॥ १७ ॥

यह केवल एक संग्रहात्मक-ग्रंथ है. अतः निरर्थक है यह मत स्थिर करके इस ग्रंथ की कभी अवहेलना मत करना । अथवा, यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं होगी कि अन्य-जनद्वारा आचरित उद्योग के निरर्थक होजाने पर भी क्या सन्त-जन स्वोद्योग से उसे सार्थक करने में तत्पर नहीं बनेंगे ? ॥ १८ ॥

अनेकों ग्रंथों में बिखरे हुये चमत्कारिक-सिद्ध प्रयोगों का एकत्र उपचयन करके उनकी उपयोगिता प्रकट करनेके लिये मैं इस अद्भुत ग्रंथ की रचना में प्रवृत्त हुवा हूं। इसलिये सहृदय-जन अपने कृपा-कटाक्ष से मुझे अवश्य अनुग्रहीत करेंगे ॥ १९ ॥

१–प्रयोजनान्तरदर्शनम् । २–आयुर्वेदशास्त्रम् । ३–विनयोक्तिः । एवमग्रेऽपि ।
४–विस्तृततया, व्याससंबन्धितया वा ।

निबन्धेऽत्र दृष्टे प्रयोगा पर ते परिस्फूर्तिमेष्यन्ति ये स्यन्ति रोगान् ।
करालङ्कृतावग्रतो विस्फुरन्त्यामपेक्षा भवेत् किं पुनर्दर्पणस्य ॥ २० ॥

गुच्छैरच्छाऽऽमुखद्रव्यचित्रोपायरसाह्वयै· ।
भैषज्यमणिमालाऽसौ कण्ठस्था क्रियतां बुधैः ॥ २१ ॥

श्रीलछुरामात्मजकुन्दनाद्यो लेभे जनिं कृष्णकवेर्हितं तस्य ।
भैषज्यरत्नस्रजि सद्गुणाया गुच्छोऽयमच्छ प्रथम समाप्तः ॥ २२ ॥

॥ इत्युपोद्धातगुच्छ' प्रथम' ॥

इस निबध में आलेखित प्रयोगों की विशेषता तभी चरितार्थ हो सकेगी जब ये रोगों का नाश करदे-इसमें यदि शका हो, तो इनका प्रयोग करके देखले। हाथ कङ्गन को आरसी क्या ? ॥ २० ॥

आमुख-गुच्छ, (उपोद्धात) द्रव्य-गुच्छ, चित्र-गुच्छ, (पताका आदि प्रस्तार) उपाय गुच्छ (चिकित्सा) तथा रस-गुच्छ (पारदादि रस) इस तरह स्वच्छ पाच गुच्छों से युक्त इस भेषज-मणि-माला को विद्वद्-जन कण्ठस्थ करें ॥ २१ ॥

श्रीलछुरामजी के पुत्र कुन्दनरामजी से उत्पन्न, उपकार-वृत्ति से युक्त श्रीकृष्ण कविद्वारा गुम्फित इस सुदर-गुण युक्त (गुण=धागा) भेपज-मणि-माला का यह प्रथम स्वच्छ-गुच्छ सपूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

–प्रथम उपोद्धात-गुच्छ समाप्त–

१–'पोऽन्तकर्मणि' इत्यस्य प्रथमपुरुषबहुवचनम् । नाशयन्तीत्यर्थं । २–लोकोक्ति-रियम् । ३–चिकित्सा । ४–पादपूरणार्थं, हितस्येति गुरुविशेषण वा ।

य प्राचां भिषजा निवेद महितास्तिस्रोऽपि ता सहिता
साहित्य च सधर्मशास्त्रमभित स्वच्छन्दवाक्छन्दसि ।
लक्ष्मीरामसुधी स एष भिषगाचार्यप्रशस्तिं वहन्
व्याचष्ट प्रथम गुलच्छममल भैषज्यरत्नस्रज ॥ १ ॥

इति लक्ष्मीरामसुधीकृते सिद्धभेषजमणिमालाव्याख्याने
प्रथमो गुच्छ समाप्त ॥



अथ हरीतक्यादिवर्णनं नाम द्वितीयो गुच्छः ।

[1]स्फुरत्प्रभामण्डलमण्डिताङ्गीं पुण्यैकलभ्यां दुरितापहन्त्रीम् ।
शूलिप्रियां[2] पर्वतजां[3]मपर्णां[4] महौषधिं[5] कामपि भावयामि ॥ १ ॥
द्रव्ये[6] गुणा यत्र समीरिता ये त एव तस्यावयवेऽपि दृष्टाः ।
भेदे विकारेऽपि ततोऽत्र कुर्यां द्रव्यप्रभेदैः किमु तुन्दिलत्वम् ॥ २ ॥

–द्वितीयो गुच्छः–

परम-पुण्यसे प्राप्य दुरित करती जो खंडित । प्रभा पुंजसे अंग अंग जिसके परिमंडित ॥
पर्वतजा, अतिदिव्य, अपर्णा, इष्टशूलि को । करता सविनय-नमन किसी उस महा-मूरिको १

मैं किसी उस अनिर्वचनीय महौषधि (भगवती महादेवी) का ध्यान करता हूं जिसका उत्पत्ति-स्थल हिमपर्वत (पार्वती) है, जो पत्रसे रहित (अपर्णा) है, जिसके अंग उद्दीप्त तेजोमंडलसे देदीप्यमान है, जो केवल पुण्य-बलसेही प्राप्त की जा सकती है, जो दुरित (रोग) का नाश करनेवाली एवं शूलसे युक्त (महादेव) को पथ्य (प्रिय) है ॥ १ ॥

(विशेष—वाल्मीकि-रामायणमें इस महौषधि का वर्णन मिलता है 'हरयस्तु विजानन्ति पार्वतीं तां महौषधीम् ॥ संजीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम्' । युद्धकांड ५० सर्ग).

शास्त्रमें जो द्रव्य जिन गुणोंसे युक्त माना गया है प्रायः वही गुण उस द्रव्यके अवयवोंमें (स्कंध-फल-मूल-पत्र-पुष्पआदिमें), उसके भेदोंमें (सजातीयद्रव्योंमें) एवं

कलितविविधस्वरूपा विगलितदोषा मुदं वितन्वाना ।
स्फुरतु सदायतिसुखदा (क) श्रीपथ्या (ख) सर्वजनपथ्या ॥ १ ॥

१–अथ हरीतक्यादिद्रव्यगुलच्छं जुगुम्फिषवः समुचितमङ्गलमाचरन्ति—स्फुरदित्यादि । २–शूलरोगी, शिवश्च । ३–पर्वतरोहिणीम् । ४–पर्णरहितामिति लक्षणनिर्देशः । भवन्ति तथाविधा अपि महौषधयः । यथा मन्थानभैरवागमे–सोमवल्लीव निष्पत्रा कज्जलाभरसाश्रिता । अपर्णाऽसौ भवेद्विन्ध्ये नात्युच्चा रसबन्धिनी" इति । सुश्रुतचिकित्सिते निवृत्तसंतापीयेऽपि–" निष्पत्रा कनकाभासा मूले द्व्यङ्गुलसंमिता । सर्पाकारा लोहितान्ता श्वेतकापोतिरुच्यते ॥ पक्षे भगवत्याः संज्ञा । ५–भवज्वरोपशयतया भगवत्या अपि महौषधित्वं संगच्छतं एव । ६–प्रायोवादमाश्रित्यैवमुक्तिः सर्पस्य सविषत्वेऽपि तन्मणेर्विषघ्नत्वात् । पटोलपत्रस्य पित्तघ्नत्वेऽपि वल्लीप्रभृतीनां भिन्नगुणत्वात् । यदाह माधवः–"पटोलपत्रं पित्तघ्नं वल्ली चास्य कफापहा । फलं त्रिदोषशमनं मूलं तस्य विरेचनम् ॥" उक्तं च–"ये यत्रोक्ता गुणा द्रव्ये ते तस्यावयवेष्वपि । भेदेष्वपि विकारेषु अपवादादृते मताः ॥"

(क) हरीतकीपक्षे सत्या शोभनया आयत्या उत्तरकालेन सुखदा, पक्षे सदा सर्वदा यस्या विच्छेदसंज्ञिकया सुखदा पक्षे सदा यतीनां यतात्मनां सुखदेति ।

(ख) हरीतकी, पथ्यार्या छन्दोविशेषः, भगवती चेति त्र्यर्थेयमार्या । स्पष्टमन्यत् ।

द्रव्यं यत् पित्तकफौ व्यस्तसमस्तौ न हन्ति नो कुरुते ।
शुद्धं वा मिश्रं वा निहन्ति वातं तदस्ति वातघ्नम् ॥ ३ ॥

शुद्धं निहन्ति वातं शुद्धं मिश्रं करोति वा पित्तम् ।
वातघ्नपित्तलं तद्द्रव्यमिह द्रव्यवेदिभिर्विदितम् ॥ ४ ॥

वातघ्नपित्तलमिव शेषमेतद्द्वयं यथा ।
वातघ्नश्लेष्मलं वातजित्पित्तश्लेष्मवर्धनम् ॥ ५ ॥

शुद्धं वा सान्वयं पित्तं न करोति न हन्ति यत् ।
वातं निहन्ति वातघ्नपित्तोदासीनमस्ति तत् ॥ ६ ॥

उसके विकारोंमें (स्वरस, क्वाथ, कषाय आदिमें) भी उपलब्ध होते हैं । इसलिये, यहां मैं, द्रव्यके उपरोक्त अनेकविध भेदोंकी कुछ विस्तृत चर्चा करूंगा ॥ २ ॥

(तात्पर्य यह है कि जिस द्रव्यमें जो गुण होते हैं वही गुण प्रायः उस द्रव्यके अवयवोंमें, विकारोंमें और जातियोंमें भी पाये जाते हैं यह शास्त्रका सिद्धांत है. 'ये यत्रोक्तगुणा द्रव्ये ते तस्यावयवेष्वपि ॥ भेदेष्वपि विकारेषु ह्यपवादादृते मता' । इस सिद्धांतके अपवाद भी हैं—'पटोलपत्रं पित्तघ्नं वल्ली चास्य कफापहा ॥ फलं त्रिदोषशमनं मूलं तस्य विरेचनम्' अर्थात् पटोलका पत्र पित्तघ्न है, उसकी लता कफघ्न है, फल त्रिदोष-शामक है तथा मूलमें विरेचन गुण है ।)

जो द्रव्य केवल पित्तका, या केवल कफका, अथवा संसर्गरूपसे कफ पित्त का न शमन करता हो न प्रकोप, किंतु जो केवल वायुका ही शमन करता हो, अथवा जहां पित्तसह वात हो, अथवा कफसह वात हो-वहां भी केवल वातका ही शमन करने वाला हो वह द्रव्य 'वातघ्न' कहलाता है ॥ ३ ॥

जो द्रव्य केवल वात का शमन करता हो, किंतु शुद्ध या मिश्र पित्त का प्रकोपक हो, उस द्रव्यको-द्रव्य वैज्ञानिक वातघ्न पित्तल कहते हैं ॥ ४ ॥

वातघ्न पित्तल की तरह, वातघ्नश्लेष्मल तथा वातघ्नपित्तश्लेष्मल इन अवशिष्ट दो भेदोंकी भी योजना कर लेनी चाहिये ॥ ५ ॥

जो द्रव्य शुद्ध या मिश्र पित्तका न शमन करता हो, न प्रकोप, किंतु केवल वातका शमन करता हो वह वातघ्न पित्तोदासीन कहलाता है ॥ ६ ॥

१–अथ पञ्चदशभिर्वातघ्नादिसप्तपञ्चाशद्भेदान् यथाक्रमं दर्शयन्ति । यद्द्रव्यं शुद्धं मिश्रं वा कफं पित्तरूपं वा न निहन्ति नापि करोति किं तु शुद्धं मिश्रं वा वातं हन्ति तद्वातघ्नमिति । २–यच्छुद्धं वातं निहन्ति शुद्धं मिश्रं वा पित्तं करोति तद्वातघ्नपित्तलम् । ३–वातघ्नपित्तलवद् वातघ्नश्लेष्मलं वातघ्नपित्तश्लेष्मलं च बोध्यम् । ४–यच्छुद्धं मिश्रं वा पित्तं न करोति नापि हन्ति किंतु वातं हन्ति तद्वातघ्नं पित्तोदासीनम् ।

एवमेव समीरघ्नश्लेष्मोदासीनमौषधम् ।
वातघ्नसितरद्वन्द्वोदासीनं चापि कीर्तितम् ॥ ७ ॥
वातघ्नं[2] श्लेष्मलं पित्तोदासीनं पुनरष्टमम् ।
वातघ्नं पित्तलं श्लेष्मोदासीनं नवमं स्मृतम् ॥ ८ ॥
पित्तघ्नस्य[3] कफघ्नस्य भेदा वातघ्नवन्नव ।
वातपित्तापहं द्रव्यं त्रिप्रकारमुदीरितम् ॥ ९ ॥
वातपित्तापहं[4] वातपित्तघ्नश्लेष्मलं तथा ।
वातपित्तापहश्लेष्मोदासीनं चेति भेदतः ॥ १० ॥
मारुतपित्तापहवद्वातश्लेष्मघ्नपित्तकफहभिदाः[5] ।
दोषनुदेकं दोषत्रितयोदासीनमप्येकम् ॥ ११ ॥
यद्द्रव्यं पित्तकफौ व्यस्तसमस्तौ न हन्ति नो कुरुते ।
शुद्धं वा[6] मिश्रं वा करोति वातं तदस्ति वातकरम् ॥ १२ ॥

वातघ्न पित्तोदासीनकी तरह, वातघ्नश्लेष्मोदासीन औषधीय द्रव्य है। इसी तरह वातघ्नपित्तश्लेष्मोदासीन द्रव्यभी है ॥ ७ ॥

इसी तरह वातघ्नश्लेष्मल पित्तोदासीन, तथा वातघ्नपित्तलश्लेष्मोदासीन क्रमशः आठवां तथा नवमां द्रव्यभेद हैं। इसी तरह वातशामक द्रव्यके भी नौ भेद हैं ॥ ८ ॥

वातघ्न-द्रव्य की तरह, पित्तघ्न-द्रव्य की भी योजना कर लेनी चाहिये, उसके भी इसी तरह नौ भेद हैं। इसी तरह कफघ्न द्रव्य के भी नौ भेद बनते हैं। इस तरह वातघ्न पितघ्न तथा कफघ्न-इन तीनोंके-पृथक् पृथक् नौ नौ भेद के अनुसार-कुल सत्ताईस भेद होते हैं। सम्मिलित दोनों दोषों के शामक द्रव्यों में से वातपित्तघ्न-द्रव्य तीन प्रकारके हैं ॥ ९ ॥

यथा—वातपित्तघ्न-वातपित्तघ्नश्लेष्मल-वातपित्तघ्नश्लेष्मोदासीन ॥ १० ॥

वातपित्तघ्नकी तरह-वातश्लेष्मघ्न एवं पित्तश्लेष्मघ्न-द्रव्योंके-प्रत्येक के पृथक् पृथक् तीन तीन-भेदों की योजना समझनी चाहिये। इसके अतिरिक्त द्रव्यके दो भेद ओर होते हैं यथा-एक त्रिदोषघ्न तथा दूसरा दोष-त्रयोदासीन ॥ ११ ॥

जो द्रव्य, केवल पित्तको-अथवा केवल कफको-अथवा (संसर्ग रूपमें) पित्त-कफ दोनों को न शमन करता है और न प्रकुपित, किंतु केवल वातको, अथवा संसर्ग

१—वातघ्नपित्तलवद्वातघ्नश्लेष्मोदासीनं तथा वातघ्नपित्तश्लेष्मोदासीनमिति । २—एवं वातघ्नश्लेष्मलपित्तोदासीनं, वातघ्नपित्तलश्लेष्मोदासीनमिति नव वातघ्नद्रव्यभेदा व्याख्याताः । ३—वातघ्नवत् पित्तघ्नश्लेष्मघ्नयोरपि प्रत्येकं नव भेदाः । एवमेते । मिलित्वा सप्तविंशतिर्भवन्ति । ४—द्वन्द्वघ्नेषु वातपित्तघ्नं तावत्त्रिविधम् । वातपित्तघ्न—वातपित्तघ्नश्लेष्मल—वातपित्तघ्नश्लेष्मोदासीनभेदादिति । ५—वातपित्तघ्नमिव वातश्लेष्मघ्न-पित्तश्लेष्मघ्नयोरेवमेते द्वन्द्वघ्नभेदा नव, दोषघ्नमेकं, दोषत्रयोदासीनमप्येकम्, इत्येकादशभेदाः पुनरन्ये फलन्ति । ६—यच्छुद्धं मिश्रं वा पित्तं कफं पित्तकफं वा न हन्ति नापि करोति किंतु शुद्धं मिश्रं वा वातं करोति तद्वातलम् ।

शुद्ध वो सान्वय पित्त न करोति न हन्ति यत् ।
वात सूते पवनल पित्तोदासीनमेव तत् ॥ १३ ॥
एव वातकरश्लेष्मोदासीनमवगच्छत ।
चतुर्थ वातलं श्लेष्मपित्तोदासीनमित्यपि ॥ १४ ॥
पित्तकृच्छ्लेष्मकृद्द्रव्यं वातकृद्वच्चतुर्विधम् ।
द्रव्याणि द्वन्द्वकारीणि द्विद्विभेदानि मन्महे ॥ १५ ॥
अस्ति पवनपित्तकर श्लेष्मोदासीनवातपित्तकरम् ।
एव वातश्लेष्मलपित्तश्लेष्मपदार्थभेदौ स्त ॥ १६ ॥
एकं दोषलमित्येते सप्तपञ्चाशदीरिता ।
अनन्ता स्यु पुनरमी तारतम्यादिभेदत ॥ १७ ॥

स्थिति में भी अर्थात् कफ वात एव पित्तगत में भी अकेले वात को ही प्रकुपित करता हो वह 'वातकारक' कहलाता है ॥ १२ ॥

जो द्रव्य, केवल पित्तको अथवा वातसह पित्त एव कफसह पित्तको (अर्थात् ससर्ग रूपमें भी स्थित केवल पित्तको) न शमन करता हो और न प्रकुपित, किंतु केवल वातको प्रकुपित करता हो, वह 'वातलपित्तोदासीन' है ॥ १३ ॥

वातलपित्तोदासीन की तरह, वातलश्लेष्मोदासीन की योजना करनी चाहिये, इसी तरह चतुर्थ भेद वातलश्लेष्मपित्तोदासीन समझना चाहिये ॥ १४ ॥

वातल द्रव्यो की तरह पित्तल तथा श्लेष्मल द्रव्योंके भेद समझले (इस योजनामें वातल द्रव्योकी तरह पित्तल तथा श्लेष्मल, द्रव्योंके-प्रत्येक के चार चार भेदसे कुल आठ भेद होते हैं। इसी तरह द्वन्द्वल द्रव्योंके (प्रत्येकके दो दो भेदोंके अनुसार) छह भेद होते हैं। यथा वातपित्तल, वातपित्तलश्लेष्मोदासीन, वातश्लेष्मल, वातश्लेष्मल पित्तोदासीन, पित्तश्लेष्मल, पित्तश्लेष्मल वातोदासीन। इसी तरह 'त्रिदोषल' भी द्रव्यका एक अलग भेद है। इस तरह द्रव्यके कुल सत्तावन भेद हैं। ये द्रव्य तरतम भेद से अनगिनत प्रकारोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। १५-१६-१७, द्रव्योंके सत्तावन भेदोंकी सोदाहरण तालिका नीचे दी जाती है ॥

१—यच्छुद्ध मिश्र वा पित्त न करोति न हन्ति किंतु वात करोति तद्वातलपित्तोदासीनम्। २—वातलपित्तोदासीनवद्वातलश्लेष्मोदासीन, वातलपित्तश्लेष्मोदासीनमिति चत्वारो वातलभेदा । ३—वातलवत् पित्तश्लेष्मलयोरपि पृथक् चातुर्विध्यम्। द्वन्द्वल द्रव्य तावद् द्विद्विभेदम्। यथा—वातपित्तल वातपित्तल-श्लेष्मोदासीनम्, इति षड् द्वन्द्वलभेदा, दोषलमेकमिति सप्तपञ्चाशद्वातलादिभेदा विशदीकृत्य प्रदर्शिता । ४—तरतमादिभेदास्तथा वातन्नपित्तलाल्पश्लेष्मलादिभेदाश्च अनन्तत्वादुपेक्षिता । एषामुदाहरणजिज्ञासा चेत् पश्य सिद्धमन्त्रप्रकाशमिति ।

१ वातघ्न–तिन्दु, कपास, तालमखाना, एरंडफल आदि । २ वातघ्नपित्तल–अम्ल, तक्र, तैल-सिद्ध-पूरि आदि । ३ वातघ्नश्लेष्मल–हडजोड (अस्थिशृंखला) मीठा पालेवत, जीरा आदि । ४ वातघ्न पित्तश्लेष्मल-कौंच के बीज, बिदाम अखरोट, करंज फल आदि । ५ वातघ्नपित्तोदासीन–पूरणीय । ६ वातघ्नश्लेष्मोदासीन–पूरणीय । ७ वातघ्न-पित्तश्लेष्मोदासीन–मसूर, गेहूं, कुलत्थ, मूंगका यूष तथा अजामांस यूष । ८ वातघ्न-श्लेष्मलपित्तोदासीन–प्याज, पक्व आम्र, इलायची आदि । ९ वातघ्नपित्तलश्लेष्मो-दासीन–तिलका तैल आदि । १० पित्तघ्न–चंदन, कदली, कास, वंशलोचन आदि । ११ पित्तघ्न वातल–एरका, वशिर-फल, तडाग जल आदि । १२ पित्तघ्नश्लेष्मल–शाल्मली, कमल, शाली आदि तथा उबालकर शीतल किया गया दूध । १३ पित्तघ्नवातश्लेष्मल–मानकन्द, आलू, शृंगाटक, कसेरु आदि । १४ पित्तघ्नवातोदासीन–पूरणीय । १५ पित्तघ्नश्लेष्मोदासीन–बिम्बी (कटुतुण्डिकेरी) । १६ पित्तघ्नवातश्लेष्मो-दासीन–काकोदुम्बरिका–फल (कठूमर) । १७ पित्तघ्नश्लेष्मलवातोदासीन–पूरणीय । १८ पित्तघ्नवातश्लेष्मोदासीन–पालक्या आदि । १९ श्लेष्मघ्न–शाल, शमी, कदंब, शिंशिपा, मदनफल, धत्तूरा, लताकस्तूरिका आदि । २० श्लेष्मघ्न-पित्तल–रक्तशि-ग्रुके अंकुर, बडवाका दही आदि । २१ श्लेष्मघ्नवातल–लाङ्गली, कुसुंभ, क्षार आदि । २२ श्लेष्मघ्नवातपित्तल–द्रोणपुष्पी, चक्रमर्द, वेणुयव, टंकण आदि । २३ श्लेष्मघ्न-वातोदासीन–पूरणीय । २४ श्लेष्मघ्नपित्तोदासीन–मेषीघृत । २५ श्लेष्मघ्नवातपित्तोदा-सीन–अरिष्ट । २६ श्लेष्मघ्नपित्तलवातोदासीन–उद्दालक तथा मधु की शराब । २७ श्लेष्मघ्नवातलपित्तोदासीन–उद्दालक, यवनाल, श्यामाक तथा ईखकी शराब आदि । २८ वातपित्तघ्न–शाक, मुलहटी, शतावरी, प्रियंगु, रजत आदि । २९ वातपित्तघ्नश्ले-ष्मल-अष्टवर्ग, विदारी, कदलीफल, नारिअल आदि । ३० वातपित्तघ्नश्लेष्मोदासीन–फालसा, काश्मर्य, गोधूम, मिश्री आदि । ३१ वातश्लेष्मघ्न–देवदारु, कट्फल, स्नुही, गुग्गुल, रास्ना आदि । ३२ वातश्लेष्मघ्नपित्तल–वरुण, अगरु, शिग्रु, आकडा, राई, नागवल्ली आदि । ३३ वातश्लेष्मघ्नपित्तोदासीन–बिल्व, आर्द्रक, अम्लदाडिम आदि । ३४ पित्तश्लेष्मघ्न–जांबु, खदिर, पिप्पल, उदुम्बर, भूर्ज, कुटज, आदि । ३५ पित्तश्लेष्मघ्न-वातल–निंब, अगस्ति, वासा, पर्पटक, सूरण, अमलतास आदि । ३६ पित्तश्लेष्मघ्नवातो-दासीन–कारवेल्ल, बहेडा, कदली-कन्द, मधु आदि । ३७ त्रिदोषघ्न–ब्राह्मी, काश्मरी, शिरीष, अशोक, गुडूची, तामलकी (भुंई आंवला) । ३८ दोषत्रयोदासीन–मधुयुक्त दही, हिम का पानी, रागखांडव आदि । ३९ वातल–खोल (पिन्याक), शाक, कुल्माष आदि । ४० वातलपित्तोदासीन–पूरणीय । ४१ वातलश्लेष्मोदासीन–पूरणीय । ४२ वात-लपित्तोदासीन–पूरणीय । ४३ पित्तल–शमीफल, तैलपक्वमांस । ४४ पित्तलवातोदासीन–पूरणीय । ४५ पित्तलश्लेष्मोदासीन–चौड्यजल । ४६ पित्तलवातश्लेष्मोदासीन–पूरणीय । ४७ श्लेष्मल–शाल्मली–गोंदकी पेया, पायस आदि । ४८ श्लेष्मलवातोदासीन–पूरणीय । ४९ श्लेष्मलपित्तोदासीन–पूरणीय । ५० श्लेष्मलवातपित्तोदासीन–पूरणीय । ५१ वातपित्तल–कच्चा आम्र तथा विरूढ अन्न । ५२ वातपित्तलश्लेष्मोदासीन–कच्चा

कासश्वासविशोषशूलजठराध्मानव्रणार्शोऽग्निरु-
ग्वैस्वर्यज्वरकामलाग्रहणिकाहिक्काप्रमेहापहा ।
गुल्मप्लीहहृदामयोदिशमनी दोषत्रयोन्मूलिनी
चक्षुष्याऽतिरसायिनी लघुसरा मेध्या शिवाऽऽयुःप्रदा ॥ १८ ॥
केश्यं कषाय नयनामयघ्न स्पर्शे हिम भेदि हितं स्वरेऽपि ।
वीर्योष्णरूक्ष मधुर विपाके विभीतकं पित्तकफप्रमाथि ॥ १९ ॥
हरीतकीवामलकीफलं मतं पर तु पित्तास्रहर विशेषत. ।
अपि त्रिदोषोन्मथन त्रिदोषकृत् प्रसिद्धतत्तद्गुणयोगदर्शनात् ॥२०॥

कैथ, वशाङ्कुर । ५३ वातश्लेष्मल—सूप, शाक, तिन्तिड, पुत्रजीवक आदि के फल । ५४ वातश्लेष्मलपित्तोदासीन—सुवर्चला, वास्तुका (वशपत्रिका नाम का शाक—चक्रपाणि) ५५ पित्तश्लेष्मल—आम्र, पुष्पकरिणी का जल, शाण्डाकी। ५६ पित्तश्लेष्मलवातोदासीन—कुसुमतैल । ५७ त्रिदोषल—सर्षप का शाक, मन्द-दही, भेड का दही, फाणित आदि ।

(वातादिदोषों को शमन एव कोपन करने की तथा उनके प्रति उदासीन रहने की भी अपनी भिन्न भिन्न विशिष्ट वृत्ति के कारण द्रव्यो के कुल सत्तावन भेदो का उल्लेख करके अब उन द्रव्यो के, तथा, विशेष करके, अधिक उपयोग में आने वाले प्रमुख द्रव्यों के भी सामान्य गुणो का, उनके वीर्य, विपाक तथा प्रभाव आदि का काव्यमयी चमत्कृत शैली में सविशेष व्याख्यान ग्रथकार करते हैं) ।

हरीतकी—स्वास्थ्य तथा आयुप्रद, अत्यत रसायिनी, मेधाकर, कुछ सारक गुण से युक्त, आखो को हितकर, त्रिदोष उन्मूलक, गुल्म, प्लीहा तथा हृदय के रोगादि से उपकारक, कास, श्वास, क्षय, शूल, उदर, आध्मान, व्रण, अर्श, अग्निमाद्य, ज्वर, कामला, ग्रहणी, हिक्का तथा प्रमेह आदि को मिटानेवाली एव स्वर्य है ॥ १९ ॥

(हरीतकी को वाग्भट ने 'रूक्ष' कहा है। चरकने रूक्ष भोजियोंके लिये हरीतकी को अपथ्य माना है—'अजीर्णिनो रूक्षभुज स्त्रीमद्यविषकर्षिता । सेवेरन् नाभयामेते क्षुत्तृष्णोष्णार्दिताश्च ये' । सुश्रुतने 'कषाय दीपन चाम्ल चक्षुष्य चाभया-फलम्' अभया को कषाय बताते हुये उसके रूक्षत्व गुण का निर्देश किया है। प्रस्तुत श्लोक में, हरीतकी के रूक्षत्व गुण का जो उल्लेख नहीं किया गया वह यह मानकर कि अभया कषाय वर्ग की औषध है। अत उसमे रूक्षत्व है ही। उल्लिखित गुण बड़ी हरडे के हैं—छोटी के नहीं। छोटी में रसायन-गुण न्यून हैं। हरीतकी की क्रिया पचन-यत्र पर साक्षात् होती है। दोनो ही मृदु विरेचक हैं। छोटी हरडै अजीर्ण जन्य-अतिसार, पेचिश, जीर्ण आव तथा जीर्ण कब्ज में विशेष गुण दिखाती है—क्योकि उसमें

१—अग्निसाद । २—हृद्रोग । ३—हरीतकी । ४—अपिर्भिन्नक्रम ।
उक्तं च तन्त्रान्तरे—

"हन्ति वात तदम्लत्वात् पित्त माधुर्यशैत्यत । कफ रूक्षकषायत्वात् फल धात्र्यास्त्रिदोषनुत्॥ कुर्यात पित्त तदम्लत्वात् कफ माधुर्यशैत्यत । वात रूक्षकषायत्वादेव किं न विपर्यय ॥ धात्र्यास्त्रिदोषहन्तृत्व प्रभावान्मुनिभिर्मतम् । सभावनावशादुक्ता रसादेरपि हेतुता" इति ।

योज्याऽभयैकैव विभीतकौ द्वौ फलानि चत्वारि तथाऽऽमलक्याः ।
नेत्रार्तिमेहज्वरकुष्ठपित्तकफार्तिहन्त्री त्रिफलेयमुक्ता[1] ॥ २१ ॥

कषायत्व गुण अधिक है—वस्तुतः छोटी हरडै, बडी हरडै का बाल-स्वरूप ही है। विरेचन के लिये बडी हरीतकी की मात्रा तीन से छह माशा है—रसायन गुण के लिये १½ से ३ माशा है। बडी हरडै का चूर्ण उसकी गुठली निकालकर बनाना चाहिये।)

विभीतक (बहेडा), केशों को हितकारी, कषाय, नेत्र-विकारों को नष्ट करनेवाला, उष्णवीर्य, स्पर्श में शीतल, भेदन, स्वर को उत्तम करनेवाला, रूक्ष एवं विपाक में मधुर है। यह पित्त एवं कफ का शमन करता है ॥ २० ॥

(सुश्रुत ने 'विभीतकमनुष्णं तु कफपित्तनिबर्हणः' बिभीतक को 'अनुष्णं' कहा है। वाग्भट भी 'कटुपाके हिमं केश्यमक्षमीषच्च तद्गुणम्' विभीतक को उष्ण नहीं मानते । इसके विरुद्ध 'राज-निघण्टु' 'बिभीतकः कटुस्तिक्तः कषायोष्णः कफापहः' इसे उष्ण बताते हैं। यही अभिप्राय धन्वन्तरी-निघण्टु का है 'चक्षुष्यं कटुरूक्षोष्णं, पाके स्वादुकफास्रजित्'। वस्तुतः सुश्रुत तथा वाग्भट ने जो इसे हिम कहा उसका तात्पर्य 'स्पर्शे हिमम्' से है। निघण्टुकारों ने जो इसे 'उष्ण' बताया उसका अर्थ 'वीर्ये-उष्णं' से है। मानों इन दोनों दलों के परस्पर विरुद्ध कथनों के समाधान रूप में ग्रंथकार ने, इस श्लोक को रचा हो !! इसमें विभीतक को 'स्पर्शे-हिमम्' तथा 'उष्ण-वीर्यं' बताया गया है। इस कथन को मदनपाल के इस श्लोक से मिलाइये 'उष्णवीर्यो हिमस्पर्शो भेदनः कासनाशनः'। इन अवतरणों का मनन करने पर वाग्भट के टीकाकार 'अरुणदत्त' ने जो विभीतक को शीतवीर्यं' माना (पाके कटुकं शीतवीर्यं) वह कहां तक सुसंगत है? बेहडा केशों को श्याम बनाता है। इसकी मुख्य क्रिया गले एवं श्वास नलिका पर होती है। इसकी मींगी मादक (Sedative) है। तथा इसका तैल खाज में लाभ देता है।)

आमलक के गुण हरीतकी के समान हैं। विशेषतया यह रक्त-पित्त में परम उपकारक है। यह त्रिदोषकारक होता हुआ भी अपने प्रभाव से तीनों दोषों का शमन करता है। इसका यह प्रभाव इसकी प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया से स्वतःसिद्ध है ॥ २० ॥

१—आयुर्वेदप्रसिद्धा पारिभाषिकीयं संज्ञा । नचैवं संख्यावैषम्ये—
"पथ्याविभीतधात्रीणां फलैः स्यात्त्रिफला समैः ।"

इति भावस्य साम्यकथनं विरुध्यते। यतो हरीतक्यादिफलानां मिथो मानभेदाद्यथोक्ताकृतिमानेन गृह्यमाणानामेव साम्यं संभवति । विभीतकामलक्योर्हरीतक्या समं तोलने द्विचतुष्फलग्रहण एव साम्यम् । तथा हि हरीतकीफलं

"नवादिगुणयुक्तत्वं तथैकत्र द्विकर्षता । हरीतक्याः फले यत्र"

इत्युक्तेर्द्विकर्षमितं, विभीतकं च कर्षप्रमाणं भवति, एवमामलकेऽपि द्रष्टव्यमिति ।

उष्णा विपाकमधुरा कटुकाऽपि वृष्या
स्निग्धा लघुः स्वरहिता रुचिदाऽस्ति शुण्ठी ।
दुर्नाममान्द्यवमिशूलविबन्धकास-
श्वासामवातकफशोफहृदामयघ्नी ॥ २२ ॥

(आंवले के विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है। 'हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्यशैत्यतः । कफं रूक्षकषायत्वात् फलं धात्र्यास्त्रिदोषनुत्' ॥ 'कुर्यात् पित्तं तदम्लत्वात्, कफं माधुर्यशैत्यतः । वातं रूक्षकषायत्वात् एवं किं न विपर्ययः ॥ धात्र्यास्त्रिदोषहन्तृत्वं प्रभावान्मुनिभिर्मतम् । सभावनावशात् उक्ता रसादेरपि हेतुता ॥' अर्थात् आंवला अपनी अम्लता से वात को, माधुर्य एवं शैत्य से पित्त को तथा रूक्षता और कषायत्व से कफ को हटाता है–किन्तु इसी अम्लता से पित्तका, माधुर्य एवं शैत्य से कफ का तथा रूक्ष एवं कषायत्व से वात का प्रकोप भी करता है। यह विरोध क्यों ? वास्तव में मुनियों ने आंवले में जो त्रिदोषशामक गुण माना है वह उसके प्रत्यक्ष प्रभाव के कारण से। अपने इसी प्रभाव से वह त्रिदोष का शमन करता है न कि प्रकोप)।

हरीतकी केवल एक, बिभीतक दो तथा आंवले के चार फल इन सब के एकत्रित चूर्ण को 'त्रिफला' कहते हैं। (त्रिफला की यह आयुर्वेदीय परिभाषा है–पथ्या-बिभीतधात्रीणां फलैः स्यात् त्रिफला समैः ' इस श्लोक में तीनों के फलों को समान भाग में लेने का उल्लेख है। यह साम्य कथन उपरोक्त श्लोक से विरुद्ध प्रतीत होता है। किंतु ऐसा नहीं है। उत्तम हरीतकी वही कहलाती है जो नूतन हो तथा वजन में दो कर्ष भर हो। बिभीतक फल का अपर पर्याय अक्ष है, अक्षका अर्थ है एक कर्ष, तदनुसार हरीतकी के एक नग का वजन, बिभीतक फल के दो नग के बराबर होगा, इसी तरह एक धात्री फल का वजन करीब छमाशा भर होता है। अतः इस के चार फल दो कर्ष के बराबर होंगे। इसी को लक्ष्य में रखकर उपरोक्त श्लोक में फल की संख्या का उल्लेख किया गया है। उपरोक्त संख्या में ग्रहण करने पर तीनों फलों का प्रायः समान वजन ही उतरेगा। बिभीतक तथा आमलक के फल-हरीतकी के एक फल के समान वजन में तभी आ सकेंगे, जब उनको क्रमशः दो तथा चार की संख्या में लेंगे। कैयदेव निघण्टु से उपरोक्त श्लोक मिलाइये–'एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ । चत्वार्यामलकानीति त्रिफला प्रोच्यते बुधैः ') त्रिफला–नेत्र विकार, प्रमेह, ज्वर, कुष्ठ, पित्त तथा कफ का नाश करता है ॥ २१ ॥

शुण्ठी उष्ण होती हुई भी विपाक में मधुर है, कटु होती हुई भी वृष्य है, स्निग्ध होती हुई भी लघु है। स्वर को हितकारी, रुचि देने वाली तथा अर्श, अग्निसाद, वमन, शूल, विबन्ध, कास, श्वास, आव, वात, कफ, शोफ तथा हृदय रोग को दूर करती है ॥ २२ ॥

नारायण[1]गजरम्भाप्रथमाक्षरनिर्मितस्य निर्यूहः ।
प्रथमतृतीयातङ्कं हन्त निहन्ति द्वितीयसखः ॥ २३ ॥
रामठ[2]लवणविलोडितदधिलुठितानां तपेन शुष्काणाम् ।
भृशमाज्यभर्जितानां विश्वदलानां गुणा न कैः कलिताः ॥ २४ ॥
श्रुत्वा धुनोति न शिरस्तांस्तान् विश्वागुणान्नरः ।
गतादिवर्णविश्वैव[3] साक्षात् स विबुधैः स्मृतः ॥ २५ ॥
विश्वावदार्द्रं तु गुरु प्रभेदि पटु[4]प्रपन्नं पवनप्रकम्पि ।
पथ्यं परं भोजनपूर्वकाले विशोधि जिह्वागलयोर्मनोज्ञम् ॥ २६ ॥
लघुर्वृष्याऽनु[5]ष्णाऽनिलकफहरा पाकमधुरा
कटुः कासश्वासज्वरजठरमेहाममथिनी ।
कणाऽऽर्द्राऽपि[6] स्निग्धा कलयति कफं शीतमधुरा
गुडोन्मिश्राऽजीर्णारुचिकसनपाण्ड्वादिषु हिता ॥ २७ ॥

'नारायण, गज, रम्भा' इन तीनों पदों के प्रथमाक्षरों के (नागर) नामवाले द्रव्य से सिद्ध किया गया कषाय प्रथम और तृतीय का (वात तथा कफ का) शत्रु है तथा द्वितीय का (पित्तका) मित्र है। अर्थात् शुण्ठी का कषाय वात तथा कफ के रोगों का शमन करता है। किंतु पित्त का सहायक है ॥ २३ ॥

आर्द्रक की चार तोला भर पतली पतरियां संवार लें। फिर, दही के सर में इनको भिगोकर, एक माशा भर हींग तथा चार तोला भर सैंधव मिश्रित चूर्ण में आलोडित कर, सूर्य-ताप में सुखा, घी में अच्छी तरह भूनलें। इस प्रकार से सिद्ध शुण्ठी-पातरों के गुणों की प्रशंसा किसने नहीं की? ॥ २४ ॥

विश्वा के (अर्थात् शुण्ठिके) अनेकविध प्रसिद्ध गुणों की प्रशस्ति सुन कर भी जो मनुष्य प्रशंसा से अपना मस्तक नहीं हिलाता, वह पंडितों के मत में 'विश्वा के प्रथमाक्षर से रहित साक्षात् 'श्वा' (श्वान) ही है ॥ २५ ॥

आर्द्रक शुण्ठी के समान गुणवाला किंतु गुरु है। मल का भेदन करता है। सैंधव से युक्त आर्द्रक वात का नाश करता है। भोजन से पूर्व इसका उपयोग अत्यंत पथ्य माना गया है। जिह्वा तथा गले का शोधन करने में प्रशस्त है ॥ २६ ॥

(सोंठ तथा अदरक का उपयोग आबाल वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता सब के लिये निर्भय पूर्वक किया जा सकता है। आचार्यों ने इसे 'विश्वभेषज' तथा 'महौषध'

१—निर्मितसंज्ञस्य नागरस्येत्यर्थः। अत्र प्रथमतृतीयद्वितीयशब्दा वातकफपित्तपराः। मुक्तकमुक्तावलौ परार्ध परिवर्त्य लिखितेयमार्येति ज्ञेयम्। न च वातकफघ्नत्वं पूर्वपद्योक्तमत्र पुनरुच्यते, भङ्गीविशेषलाभात्। पश्य नैषधीये प्रागेव 'निपीय' इत्यादिपद्यद्वयम्। माघे च तृतीयसर्गे 'प्रसाधितस्य' इत्यादिपद्यद्वयमिति। २—पत्तलीकृतशुण्ठीपले हिङ्गुमाषिकं पटु द्विपिचु दधिसरमित्युपदेशः। ३—श्वैव। ४—सैन्धवचर्चितम्। ५—ईषदुष्णा। अन्यथा वाग्भटविरोधः स्यात्। ६—अपिशब्दाच्छुष्काऽपि स्निग्धा। तथा च वाग्भटः—

"सा शुष्का विपरीताऽतः स्निग्धा वृष्या रसे कटुः।" इति

क्रुमिहित¹ मरिचं कटु पित्तलं श्वसनशूलहरं कफवातजित्।
मधुरमार्द्रमिदं न च पित्तलं न च कफं कुरुते चलितं² गुरु ॥ २८ ॥

संज्ञा दी है। इसके 'जिह्वा-कण्ठ विशोधन' गुण को क्षीरी ने बराबर पहिचाना है। तदनुसार यह गले के एक विशेषरोग में जिसे आधुनिक चिकित्सक Relaxed-Throat कहते हैं-उपयुक्त होती है। उदरशूल की यह उत्तम औषधि है। अपने इस गुण के कारण यह विरेचन औषधियों का प्रधान अंग बनी हुई है। कफवृद्धि, कफज्वर, कफ कास आदि में अदरक के रस में मधु मिलाकर सेवन करने से उत्तम लाभ होता है। अदरक के कवोष्ण रस की दो तीन बूंद टपकाने से कर्ण-शूल मिटता है। ठण्डी के कारण उत्पन्न शीर्ष वेदना में सोंठ को जल में घिसकर कपाल पर लगावें। शुष्क कास तथा निद्रानाश में सोंठ का उपयोग अपथ्य है।) पिप्पली लघु, कुछ उष्ण, वात तथा कफ को दूर करने वाली, पाक में मधुर तथा कटु है। कास, श्वास, ज्वर, उदर तथा प्रमेह का मथन करती है। आर्द्र पिप्पली भी स्निग्ध, शीतल, मधुर तथा कफ कारक है। गुड़ में मिलाकर सेवन करने से, अजीर्ण, अरुचि, कास तथा पाण्डु आदि रोगों में हितकारी है ॥ २७ ॥

(टिप्पणीकार श्रीस्वामीजी ने अनुष्णा का अर्थ 'ईषदुष्णा' किया है। उनका मन्तव्य है कि यदि यह अर्थ न किया जाये तो वाग्भट से विरोध आयेगा। 'ईषद् उष्ण' अर्थ करने पर भी वाग्भट से विरोध तो रहेगा ही-क्योंकि वाग्भट ने इसे 'उष्ण' कहा है ईषद् उष्ण नहीं। उनके मत में आर्द्र पिप्पली शीत है। शुष्क पिप्पली उससे विपरीत अर्थात् उष्ण है-'श्लेष्मला स्वादु शीतार्द्रा गुर्वी स्निग्धा च पिप्पली। सा शुष्का विपरीताऽत स्निग्धा वृष्या रसे कटु।' ग्रंथकार का 'अनुष्ण' सुश्रुत तथा चरक से मिलता है। सुश्रुत ने पिप्पली को 'पित्ताविरोधिनी' कहा है। 'शुष्का कफानिलघ्नी सा वृष्या पित्ताविरोधिनी' तथा चरक ने 'नात्यर्थं स्निग्धोष्णा।' कहा है (वि स्था अ १ श्लो १८) पिप्पली में दाहक गुण होनेसे आचार्यों ने एक वर्ष पुरानी उपयोग में लाने का विधान कहा है। वर्धमान पिप्पली का प्रयोग मांस-वर्धक, स्वर्य, आयु प्रद मेध्य तथा वय स्थापक है। भगवान आत्रेय के मत में, दो पिप्पली के चूर्ण-कल्क में शहद तथा घी मिला कर एकवर्ष पर्यंत नियमित प्रात काल लेने से रसायनोक्त गुणों का लाभ होता है। शोढल के कथनानुसार पिप्पली चूर्ण को शहद में मिलाकर मसूढ़ों पर घिसनेसे छोटे बच्चोंके दांत विनाकष्ट निकलते हैं। पिप्पली चूर्ण को शहद के साथ दो वार नियमित सेवन करने से दो चार मासमें ही मेद तथा कफ का ह्रास हो जाता है। पिप्पली विशेषत कफ वात-प्रधान विकारों में व्यवहृत

१-"द्रुमामये भवेत् पुंसि कीटे च कृमिवत् क्रिमि" इति रभस। २-चल-ग्रहणादीपप्रकोपोऽभिप्रेत, अन्यथा "स्वादुपाक्यार्द्रमरिच गुरु श्लेष्मप्रकोपि च।" इति विरोध अकारप्रश्लेषो वा।

व्योषं विदुर्विश्वकणोषणानि संदीपनं पीनसगुल्मनुत् तत् ।
सश्लीपदश्वासकफप्रमेहत्वग्रोगमेदःकसनानि हन्ति ॥ २९ ॥

शमयति कफवातौ पाचयत्यन्नमग्निं द्विगुणयति कटुत्वं लाघवं च व्यनक्ति ।
श्वसनजठरगुल्मप्लीहजन्तुक्षयार्तिं क्षपयति मगधाया मूलमारोग्यमूलम् ३०

होती है। पित्त-प्रधान व्याधियों में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।)

काली मिर्च-कटु, कृमिघ्न तथा पित्तकारक है। श्वास, शूल, वात तथा कफ का शमन करती है। आर्द्र मिरच, गुरु तथा मधुर है न अधिक पित्त करती है न अधिक कफ। ('नच कफं कुरुते बलिनं गुरु' यहां टिप्पणीकार ने बलिनं का अर्थ 'बल-ग्रहणात् ईषत् प्रकोपोऽभिप्रेतः' किया है। यदि यह अर्थ न किया जाये तो उनके मत में, सुश्रुत से विरोध होता है। 'स्वादुपाकार्द्रमरिचं गुरु श्लेष्मप्रकोपि च' टिप्पणीकार ने जो सुश्रुत का यह श्लोक उद्धृत किया उसका शुद्ध पाठ 'श्लेष्म-प्रसेकि' है न कि 'श्लेष्म-प्रकोपि'। 'श्लेष्म-प्रसेकि' का अर्थ होता है, कफ निःसारक। आर्द्र मिरच सुश्रुत मत में, कफ निःसारक (Expectorant) है। निघंटुकार भाव मिश्र का भी यही भाव है। 'तदार्द्रं मधुरं पाके नात्युष्णं कटुकं गुरु-किंचित्ती-क्ष्णगुणं श्लेष्म प्रसेकि स्यादपित्तलम्'। अर्थात् आर्द्र-मिरच संचित कफ का स्राव करती है तथा नूतन संचय को रोकती है। 'नच कफं कुरुते बलिनं' का अर्थ यही है कि मरिच कफ के बल का ह्रास करती है तथा उसे बलवान नहीं होने देती। काली मिर्च, वस्तुतः उसका सुखाया हुआ अर्ध पक्व फल है। संपूर्ण परिपक्व फल की ऊपरि त्वचा को उतारने पर श्वेत मिर्च बनती है। श्वेत मिर्च चक्षुष्य है तथा 'युक्त्या चैव रसायनम्' पथ्य आहार विहार पूर्वक इसका सेवन रसायन गुण दिखाता हैं। चरकाचार्य ने शहद तथा घृतमिश्रित काली मिर्च के चूर्ण को कास की उत्तम औषध बताया है। श्वेत मिर्च को दधि मंड में घिसकर प्रातः सायं अंजन करनेसे रतौंधि दूर होती है। यह वाग्भट का मत है। मुख के पक्षाघात में (अर्दित में) काली मिर्च के चूर्ण को जिह्वापर घिसने से उसका खिंचना बंद होता है।) ॥ २८ ॥

सूंठ, काली मिर्च तथा पिप्पली, इस संमिश्रित त्रयी को 'व्योष-त्रिकटु' कहते हैं। व्योष अग्निप्रदीपक तथा पीनस, गुल्म, श्लीपद, श्वास, कफ, प्रमेह, त्वचा के रोग-मेद तथा खांसी को नष्ट करता है। (सूंठ, मिर्च, पिप्पली तथा पिप्पलीमूल इनके योग को 'चतुरूपण' कहते हैं। इसके गुणभी व्योष के समान ही हैं।) ॥२९॥

पिप्पलीमूल आरोग्य की मूल है। कफ वात का शमन करती है। इससे अन्न का पचन सम्यक् होता है। यह अग्निवर्धक, कटु तथा लघु है। श्वास, उदररोग, गुल्म, प्लीहा, कृमि तथा क्षय का क्षय करती है। (पिप्पलीमूल की क्रिया फुफ्फुस और गर्भाशय पर विशेष रूप से होती है। शीत तथा कफप्रधान रोगों में इससे लाभ होता है। प्रसवोत्तर काल में पिप्पलीमूल का फाँट देने से जरायु सरलता से नीचे गिर जाता है। प्रसूतिज्वर, कफज्वर, आमवात तथा शीतज्वर में शहद के साथ पिप्पली-मूल का प्रयोग लाभदायी है। इसकी मात्रा ४ रत्ती तक है) ॥ ३० ॥

अपि श्वासं निष्कासयति सविकाशं कटुतया
कृशानौ नो कार्श्यं कलयति भृशं किं तु महति ।
बलासे सहासे तिरयति विलासानिभकणा-
ऽतिसारं निःसारं विरलयति पित्तं प्रथयति ॥ ३१ ॥

कटुर्विपाकेऽग्निकरो विपाचनो लघूष्णरूक्षो ग्रसते कफानिलौ ।
क्षिणोति सार्शोग्रहणीरुजः कृमीन् सकुष्ठकासश्वयथूनुपर्बुधं ॥ ३२ ॥

कणाकणामूलकचव्यचित्रकैः सभागैः स्यादिह पञ्चकोलकम् ।
पित्तप्रधानं कफमारुतापहं प्रदीपनं नाशितशूलगोलकम् ॥ ३३ ॥

तीक्ष्णाऽपि रुच्या नवलासजातलौ प्रदीपिनी शुक्रहरी कृशोदरी ।
हिनस्ति जन्तून् द्वैधभावभाविनी लघुर्यवानी यवनीव भासते ॥ ३४ ॥

गजपिप्पली, अपनी कटुता से प्रवृद्ध श्वास को भी निकाल देती है। मनुष्य की जठरानल की कृशता को सर्वथा दूर कर देती है (अर्थात् अग्निप्रदीपक है।) वात तथा कफ को मिटा करही, अपने विलासों को स्थगित करती है। अतिसार को निसार बना कर उसके प्रभाव को विरल करती हुयी पित्त की अभिवृद्धि करती है। (धन्वन्तरीय निघण्टु के मत में गजपिप्पली-चव्य का फल है। 'तस्या (चविकाया) फलं विनिर्दिष्टं श्रेयसी गजपिप्पली'। अमुक गजपिप्पली के काण्ड को चव्य कहते हैं)॥३१॥

चित्रक विपाक में कटु, अग्निप्रदीपक, पाचक, लघु, उष्ण तथा रूक्ष है। कफ वात का शमन करता है। अर्श तथा ग्रहणीरोग सहित कृमि, कुष्ठ, कास तथा गुदशोथ का नाश करता है। (चित्रकमूल की छाल को उपयोग में लेनी चाहिये—नई छाल ही गुण दिखाती है। अधिक मात्रा में चित्रक साक्षात् अग्नि तथा विष का सा असर दिखाता है। जननेन्द्रिय की शिथिलताजन्य नपुंसकत्व में चित्रक लाभ देता है। विधिपूर्वक सेवन करने से चित्रक रसायन गुण दर्शाता है। कृष्ण-वर्ण-पुष्पों वाला चित्रक अधिक गुण युक्त माना गया है। यह वाग्भट का मत है। इन्होंने पुष्पभेद में तीन प्रकार के चित्रक माने हैं। 'यथास्वं चित्रकः पुष्पैर्ज्ञेयः पीतसितासितैः। यथोत्तरं च गुणवान् विधिना च रसायनम्'। इसके योग की चित्रकहरीतकी प्रसिद्ध है।) ॥ ३२ ॥

पिप्पली, पिप्पली-मूल, चव्य, चित्रक तथा शुण्ठी इसके योग को 'पचकोल' कहते हैं। पचकोल पित्तप्रकोपक, कफवातशामक, दीपन, शूल तथा गुल्म का शमन करने वाला है। (इसमें प्रत्येक द्रव्य का प्रमाण एक एक कोल-तोला होता है। इसीलिये इसे पचकोल संज्ञा दी गयी है।) ॥ ३३ ॥

यमानी (अजवायन) यवनी (म्लेच्छ तरुणी की तरह स्वभाव में) तीक्ष्ण होती हुई भी रुचिकर है। (काम) अग्नि उद्दीपक तथा वीर्य नाशक है। उदर को कृश

१-चित्रक । २-प्रत्येकं कोलप्रमाणयोगादस्य पञ्चकोलकमिति यौगिकी संज्ञा। ३-न बलासवातला, पक्षे नवला सवातला। ४-क्रिमीन् पक्षे छागादीन्। ५-भिन्न-भिन्नका पक्षे स्नेहार्द्रमानसेत्यर्थ ।

तीक्ष्णा वागिव दुर्जनस्य शिखिनो भस्त्रेव संदीपिनी
किं च प्रौढविलासिनीव वलदा[1]ऽत्युष्णा शिखेवाग्निजा ।
गुल्म[2]घ्नी प्रबला[3]निलाहतिरिव व्यालीव भुङ्क्तेऽनिलं
काकीव ग्रसते कफक्रिमिवमीर्नेत्र्याऽजमोदा मता ॥ ३५ ॥

शोफपाण्डुकफपित्तदरिद्रा चर्मदोषमपहन्ति हरिद्रा ।
किं च वक्त्रनयनार्तिहरी द्राक्कान्तिमर्पयति दारुहरिद्रा ॥ ३६ ॥

करने वाली (कृशोदरा) है । कफ-वात नाशक (पक्ष में अवला तथा वातल स्वभाव की) है । (हिंसक प्रकृति के कारण) कृमियों का नाश करती हुयी भी स्निग्ध है । मल-भेदक तथा लघु (हलकी) है । (इस श्लोक में तथा अन्यत्र भी ग्रंथकार की अलौकिक कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है । अजवायन में एक उड्डयनशील तैल होता है जो ठंडकसे जम जाता है । इसी को अजवायन के फूल (Thymol) कहते हैं । अजवायन का कभी क्वाथ नहीं करना चाहिये क्योंकि उससे इसमें स्थित तैल उड जाता है । इसके अर्क, तैल, बीज तथा सत्व उपयोगमें लाये जाते हैं । दो सेर अजवायन में पांच सेर पानी डाल कर चार सेर के करीब अर्क निकालने का विधान है । प्रसूतास्त्री को अजवायन देने से कमर का दर्द कम होता है । भूख खुलती तथा पाचन होता है । सूतिका ज्वर में यह हितावह है । श्वास में इसके धूम्र पानकी विधि है । इसका सत्व उत्तम कृमिघ्न तथा कोथ-प्रशमक है ।) ॥ ३४ ॥

अजमोदा दुर्जन की वाणी के समान तीक्ष्ण, धोंकणी के समान अग्नि-प्रदीपक, प्रौढा युवति के समान बल का क्षय करनेवाली, अग्नि शिखा के समान उष्ण, गुल्म (लता-गुल्म-आदि) का नाश करने में साक्षात् बवंडर तुल्य है । सर्प के समान वायु का और काक के समान कफ, कृमि तथा वमन का भक्षण करती है एवं नेत्ररोग में उपकारक है । हरिद्रा, शोथ, पाण्डु, तथा पित्तसे दरिद्रा है । (अर्थात् इन रोगों को नष्ट करती है ।) यह त्वचा के विकारों को दूर करती है । दारु हरिद्रा मुँह तथा नेत्र की पीडा को शीघ्र हरनेवाली एवं वर्ण को उत्तम करके शरीर को तेज देनेवाली है ।

(हरिद्रा श्लेष्मल त्वचा में रूक्षता लाती है । अतः जब कफ का अधिक स्राव होता हो तब हरिद्रा की योजना करनी चाहिये । नेत्राभिष्यंद में हलदी के क्वाथ का आश्च्योतन करने से तथा स्वच्छ वस्त्र को उससे सिक्त करके चक्षु पटलपर रखने से ठंडक होती है । पूय-स्राव न्यून हो जाता है । आखोंमें से बालको निकाल कर उसे साफ करता तथा पीडा का शमन करता है । व्रणपर हरिद्रा चूर्ण छिटकने से वह संकुचित होता है । मख्खन मिश्रित हरिद्रा-चूर्ण के उद्वर्तन से त्वचा कोमल तथा कांतिमय हो जाती है । नेत्राभिष्यंद में दारुहरिद्रा उत्तम क्रिया करती है । इसके फूलको यूनानीमें झरिष्क

१—बलं द्यति ददाति वा ।　२—रोगविशेषः । एकमूलाः संघातजाताः शरेक्षुकाश-प्रभृतयश्च । ३—वात्या ।

श्वासो नोच्छ्वासलेशं सृजति न लभते क्वापि कास. प्रकाशं
तृष्णा तैक्ष्ण्यं न धत्ते सरति च सरणं दाहमाप्नोति दाहः ।
दोषा सर्वेऽपि दुष्टिं परिजहति रुचिश्चीयते मेहनान्त-
र्मूत्र नो मात्यवृष्ये मधुरपरिणतौ धान्यके सेव्यमाने ॥ ३७ ॥
अरोचरेत कफवातहारिणी विपाचिनी शोणितपित्तकारिणी ।
मेदोऽक्षिनिद्रानिलमान्द्यदारिणी विसूचिकां कृन्तति पित्तकारिणी ॥३८॥
कटुर्दीपनपाचनोष्णरूक्षमतिसारज्वररुक्कफानिलघ्नम् ।
हृदयङ्गममेध्यवृष्यदृश्यं जरणाना त्रितयं रुचिं चिनोति ॥ ३९ ॥

कहते हैं। यह शीतल तथा आमाशय की गरमी को शांत करनेवाले माने जाते हैं। उत्तम-मात्रा में दारुहरिद्रा पाली के ज्वर को रोकती है। दारुहल्दी के मूल और काढ के नीचे के भाग की पीत रंग की लकडी को उपयोग में लेना चाहिये।) धनिया विपाकमें मधुर है। इससे श्वास का उच्छ्वास बंद होता है। कास को कहीं भी प्रकाश नहीं मिलता। तृष्णा अपनी तीक्ष्णता का त्याग कर देती है। अतिसार सरक जाता है। दाह का दहन हो जाता है। सभी दोष अपनी सदोषता त्याग देते हैं। रुचिका उपचय होता है। प्रमेह नि संदेह दूर होता है। बस्तिमें मूत्र नहीं माता, वृषता कृशता को प्राप्त होती है। (धनिया त्रिदोषहर, शीतप्रशमन तथा ज्वरनाशक है। हरा धनिया सुगन्धियुक्त एव हृद्य है। विशेषत, पित्त-शामक है। ज्वर में धनिये का हिम लाभ देता है। उदर वेदनामें इसका तैल प्रशस्त माना गया है-सिरदर्द में तथा मिरानेके सेवन से उत्पन्न दाह एव शोथ में धनिये के लेप का विधान है।) लाल मिर्च अरुचि, शुक्र, कफ तथा वात का नाश करती है। पाचक है, रक्तपित्त करती है। मेद, नेत्र, निद्रा और अग्निमांद्य को दूर करती तथा विसूचिकामें लाभ देती है ॥ ३५-३८ ॥

जीरा तीनों प्रकारका रुचिकारक है। कटु, दीपन, पाचन, उष्ण, रूक्ष है-अतिसार, ज्वर, कफ तथा वायु का नाश करता है-हृद्य, अमेध्य, अवृष्य तथा चक्षुष्य है। (तीन प्रकारका जीरा होता है। श्वेत छोटे, बडे के भेदसे-दो प्रकार का तथा कृष्ण जीरा। जीर्णज्वर में जीरा देने से भूख बढती है। नूतनज्वर में प्रयोग करने से शरीर का तथा मूत्र का दाह कम होता है। प्रसवोत्तर काल में इसके क्वाथ का सेवन करने से गर्भाशय सकुचित होता है-तथा दूध बढता है। काला जीरा रज -स्रावकारी है। अत रज कृच्छ्रता तथा रजोरोध मे उपयुक्त होता है। त्वचा के रोगों में इसका प्रलेप कण्डू, दाह तथा वेदना को दूर करता है।) ॥ ३९ ॥

१-गच्छति। २-अतिसाराख्यो रोगविशेष। ३-हेतुद्वयाध्युभयहेतुत्व प्रतिपादितमनेन तथा च शोणितदुष्टौ पित्तकोपे तद्वदेव च रक्तपित्तव्याधावपि निदानमित्यर्थ। ४-'लाल मिरच' 'पित्तमारी'नाम्ना लोके प्रसिद्धिमावहति। ५-अग्नि पचति तस्य पचतो ये विरुधादयो भवन्ति तान्निषिध्य पाटवमादधान पचेति प्रयुङ्क्ते इव तत पाचयतीति पाचनमुच्यते। हेतुमण्णिजन्तात् पचेर्बाहुलकात् कर्तरि ल्युट्। "यदुपयुक्तमन्नपानौष समामाना धातूनां पाचने समर्थं तत् पाचनम्" इत्यरुण। ६-श्वेतमहल्लघुकृष्णप्रभेदतो जीरकत्रितयम्।

कलवञ्जिका[1] पाचनदीपनी परं संधानयोग्या[2] कफवातवारिणी ।
प्रवर्तयत्यार्तवमुष्णवीर्या भक्तेऽपि भक्तिं बहुलीकरोति ॥ ४० ॥

गृह्णाति वर्चः शिशिरं व्यनक्ति प्रसादयत्यस्त्रमुदीर्णवेगम् ।
निहन्ति दाहज्वरमुष्णवातं[3] बलावलम्बीश्वरबोलसंज्ञः[4] ॥ ४१ ॥

आनाहविष्टम्भबलासवायुहृद्बस्तिबाधां न निहन्ति किं नु ।
तीक्ष्णं मनोज्ञं पुरुपित्तसंपत् कटु प्रपाकेऽपि रसेऽपि हिङ्गु ॥ ४२ ॥

कलौंजी - उत्तम दीपनपाचन, संधान में उपयोगी तथा कफ वात कारक आर्तव - जनन एवं उष्णवीर्य है। इसके सेवन से रुचि बढती है। (कलौंजी कृष्णजीरकका ही एक भेद है। इसको संस्कृत में उपकुंची कहते हैं। इसके बीज संधान में व्यवहृत होते हैं। यह मेध्य, वृष्य तथा गर्भाशयशोधक है। यह त्वचा, स्तन तथा मूत्रपिंड के मार्ग से बाहर आती है अतः त्वक् रोग में लाभ देती हुई मूत्रपिंड को साफ करती तथा प्रचुर मात्रा में दूध बढाती है। इसको विरेचन द्रव्यों के साथ मिला कर देने से पेट में मरोड नहीं आती। इसके प्रयोग से आर्तव साफ आता है) ॥ ४० ॥

ईश्वरबोल (इसबगोल) मलावरोध दूर करता है, शीतल है, रक्त की उष्णता को दूर करता है। दाह, ज्वर, तथा सौजाक को मिटाता है तथा बलकारक है। (इसबगोलको घी में मसल कुछ गरम करके लेने से अतिसार तथा प्रवाहिका में लाभ होता है) ॥ ४१ ॥

हींग-आनाह, विष्टंभ, कफ, वायु, हृदय तथा बस्ति के रोगों का नाश करनेवाला, तीक्ष्ण, रुचिकर पित्तल तथा रस एवं विपाक दोनों में कटु है। (हींगमें तैलयुक्त राल तथा गन्धक उपलब्ध हुआ है—हींग में स्थित तैल श्वासनलिका, त्वचा तथा वृक्क-मार्ग से बाहर निकलता है तदनुसार कफ पतला होता है, तदन्तर्गत कीटाणु नष्ट होते तथा दुर्गंध दूर होती है। हींग को पानी में घोलकर पीने से फुफ्फुस रोग में लाभ होता है। शीत-ज्वर में भी हींग उपयोगी है। हींग को गुड में मिला कर खिलाने से स्नायुक मर जाता है। फुफ्फुस रोग में कच्चा तथा पेट के रोग में घी में भूनकर हिंग देने का विधान है। हृदय की धडकन, हृत्पीडा तथा घबराहट में 'हिंगु कर्पूर-वटिका' का प्रयोग प्रसिद्ध है। इस वटिका में $\frac{1}{2}$ भाग कस्तूरी मिलाने से विशेष लाभ होता है। 'हिंगु-कर्पूर-वटिका' में १ भाग हींग १ भाग कपूर मिलाना चाहिये। मात्रा १ से २ रत्ति है। चिरकारी उदर रोग की हींग उत्तम औषध है। अपस्मार तथा मनोविकार में भी यह लाभ करता है) ॥ ४२ ॥

१—स्थूलकृष्णः 'कलौंजी'नामा जीरकविशेषः। जीरकत्रयेऽपि कलवञ्ज्या विद्यमानतया पुनर्विशेषगुणलाभार्थं जानीत प्रतिपादनम्। २—आम्रसंधानादिष्वतीवोपयोगिनी। ३—अयं च लोके 'सौजाक' इति गीयते। ४—'इसरबोल', 'इसबगोल' इति च ख्यातः सूक्ष्मपत्रस्छत्राकारस्तस्य च बीजानि व्यवह्रियन्ते।

पित्तला कटुरसा ज्वरशूलश्लेष्ममारुतदृगर्तिषु शस्ता ।
दीपिनी व्रणहरा शतपुष्पा, मेथिकाऽनिलबलासहरोष्णा ॥ ४३ ॥
ज्वरानिलश्लेष्मदृगर्तिशूलव्रणक्रिमिच्छर्दनरुक्षु शस्ता ।
उष्णा कटु पित्तकरी शताह्वा वैश्वानरं दीपयति प्रसह्य ॥ ४४ ॥
लघीयसी किं च हिमा विशेषतो न कासिनी[1] किं नयनप्रकाशिनी ।
विदाहपित्तज्वररक्तकामलाकृशत्वनैर्बल्यवता प्रशस्यते ॥ ४५ ॥
विशेषमधुरा परा दृशि वरा स्वशुक्रस्वरा
पराजितदवज्वरा गुरुतरा बलासोद्धुरा ।

सोया (शतपुष्पा) पित्तकारक, दीपन, रस में कटु, ज्वर, शूल, कफ, वायु, नेत्ररोग, तथा व्रणको मिटाता है। मेथी उष्ण है। वात तथा कफ नाशक है। (सोया के बीज तथा दल उपयोग में लिये जाते हैं। प्रसूता को सोया सेवन कराने का विधान है। योनि शूल की यह उत्तम ओषध है। बालकों की उदर पीडा तथा आध्मान में सोया का अर्क (Dill water) सुधा मद (Lime water) के साथ देते हैं। पीडा युक्त अवयवोंपर इसका क्वाथ का स्वेदन लेने से लाभ होता है। सोया-बीज तथा मेथी को घी में भूनकर देने से अतिसार मिटता है। कष्टार्तवमें गुड के साथ मेथी का सेवन उत्तम लाभ देता है। यह अनुभूत प्रयोग है। पित्तप्रकृति वालेको यदि कब्ज रहता हो तो मेथी का शाक खिलाने से दस्त साफ आता है। व्रण शोथ में पत्ती के लेपसे दाह तथा शोथ दोनों ही न्यून होते हैं। वनमेथी विशेषतया वात व्याधि पीडित घोडों के लिये लाभदायी है) ॥ ४३ ॥

शताह्वा (सौंफ), उष्ण, कटु, पित्तकारक, अग्निप्रदीपक, ज्वर, वायु, कफ, नेत्र-विकार, शूल, व्रण, कृमि तथा वमनरोग में प्रशस्त है। (सोया तथा सौंफ दोनों गुणधर्म में समानही हैं।) ॥ ४४ ॥

कासिनी नेत्र-ज्योति प्रकाशिनी (बढानेवाली) है, लघु किंतु विशेषतया शीतल है। दाह, पित्त, ज्वर, रक्तविकार, कामला, कृशता तथा निर्बलता में प्रशस्त है। (कासिनी ग्रीष्मऋतु में सौंफ के पौधों के साथ साथ उत्पन्न होनेवाली वनस्पति है। इसके बीज खरैटी के बीज जैसे होते हैं। सौंफकी सबीज ताजी कोमल हरी टहनियों के साथ साथ इसको जन साधारण चूसते हैं। गुर्जरदेश में यह बहुत मिलती है) ॥ ४५ ॥

मधु यष्टी (मुलेठी) विशेष करके मधुर है। नेत्र के लिये उत्तम, स्वयं एव शुक्रल है। दाह तथा ज्वर को दूर करती है। अत्यत गुरु है। कफ को नष्ट कर देती है। विष, व्रण, वमन, क्षय, शोथ, रक्तपित्तकी व्यथा, तृषा तथा पवन को मार भगाने में मधुयष्टी सचमुच यष्टी (लकडी) का काम करती है (मधु-यष्टी दो प्रकारकी कही गयी है। मधुयष्टी तथा क्लीतक। क्लीतक-मुलेठी आनूप-अर्थात्

[1] एतन्नाम्नाऽत्र विख्याता बलासदशनीजिकाम्। प्रायो ग्रीष्मे घयन्तीमा शताह्वासंगता जना ॥

विषव्रणवमिक्षयश्वयथुरक्तपित्तव्यथा-
तृषापवनतर्जने मधुकयष्टिका यष्टिका ॥ ४६ ॥
कटुरसपरिपुष्टं तिक्तभावेन जुष्टं
पवनविजयतुष्टं शुक्रकारि प्रदिष्टम् ।
विधमति बहु दुष्टं श्लेष्मवीसर्पकुष्ठं
श्वसनकसनकष्टं दुःसहं हन्ति कुष्ठम् ॥ ४७ ॥

जल बहुल प्रदेश में होती है। इसीलिये भावप्रकाशमें 'अन्यत् क्लीतनकं तत्तु भवेत्तोये' जलीय प्रदेशमें होनेवाली मुलेठी को क्लीतक कहा है। चरक संहिता में भी मधु-यष्टी के दो भेद कहे गये हैं। एक आनूप-जलीय-प्रदेशोद्भव दूसरी स्थल प्रदेशोद्भव 'आनूपं स्थलजं चैव द्विविधं क्लीतकं स्मृतम्' (सू. अ. १)। क्लीतक, यष्टीमधुक से अपेक्षाकृत, मधुर माना गया है। मधुरं यष्टिमधुकं किंचित् तिक्तं च शीतलम्—क्लीतकं मधुरं (राजनिघण्टु)। दूध के साथ मुलेठी चूर्ण रसायनार्थ प्रयुक्त होता है। 'रसायनार्थं क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् (च. चि. अ. १)। चरकचिकित्सास्थान द्वितीय अध्याय में वाजीकरण में भी इसका प्रयोग उल्लिखित हुआ है। 'कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम्। पयोनुपानं यो लिह्यात् नित्यवेगः स ना भवेत्'। मुलेठी मूत्रजनन तथा व्रणरोपण है, मूत्राशय के क्षत में, जलन में, तथा मूत्रकृच्छ्र में इसका प्रयोग होता है।) ॥ ४६ ॥

कुष्ठ (कूठ) तिक्त तथा कटुरस से परिपुष्ट है। वायुपर विजय प्राप्त करके ही संतुष्ट होता है। शुक्र-वृद्धिमें प्रदिष्ट होता है तथा अति दुष्ट कफ, वीसर्प और कुष्ठ को नष्ट करता है। श्वास और कास के कष्टसे मुक्त करता है। (वापीमें उत्पन्न होने के कारण कुष्ठ का अपर नाम वाप्य भी है। अपक्व व्रण पाचक होने से इसे पाकल तथा मनोविकार नाशक होने से इसे 'व्याधि' भी कहते हैं। कूठ के मूल सुगन्धित होते हैं। यह शुक्र का शोधन तथा आर्तव-शूल का शमन करता है। कांजीमें पीस कर कुष्ठचूर्ण का लेप करने से शिरोवेदनामें लाभ होता है। इसके चूर्ण का मसूढों पर शनैः शनैः मर्दन करने से उनकी पीडा दूर होती है। यह उत्तम वेदनास्थापक है। यह परम कफघ्न है अतः खांसी में कफाधिक्य हो तब इसका उपयोग करना चाहिये। उन्माद, अपस्मार, संन्यास आदि विकारों में यह प्रशस्त है। कूठ का उत्पत्तिस्थल काश्मीर है। शाल कंबल आदि वस्त्रों में कूठ के टुकडे रखने से उन पर कीट असर नहीं कर पाते हैं। चक्रपाणि के मत से जिस कूठ को तोडने से जरा भी भाग रजवत् नीचे न गिरे और जो हरिण के शृंग की आकृति का हो वह उत्तम है। 'भंगे मनागपि न चेन्निपतति ततः कषाः, मृगशृंगोपमं कुष्ठम्।' कूठ का मलहम क्षत में लाभ देता है) ॥ ४७ ॥

१—विपूर्वकस्य 'ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः' इत्यस्य रूपम्। 'दृशादेः पश्यादिः' इति धमादेशः।

पौष्करं कफमरुज्ज्वरशोफपार्श्वरुक्कृच्छ्रश्वसनकासवमिघ्नम् ।
शृङ्गिका क्षयसमीरबलासश्वासतृट्कसनहिक्कनहन्त्री ॥ ४८ ॥

कट्फलं तुवरकं कटु तिक्तं हन्ति मेहकसनश्वसनादीन् ।
गुल्मरक्तकफपीनसशोथश्वासकासपवनानथ भार्गी ॥ ४९ ॥

विकिरति कफं कासह्रासं समारभते रुचिं
स्फुटयति हृदातङ्कं मध्यात्युदीरयति स्वरम् ।
दयति मरुदपस्माराध्मानान् प्रदीपनपाचनं
गिलति गलजान् व्याधीन्मेध्यं कुलिञ्जनमीरितम् ॥ ५० ॥

उदरग्रहणीगुदजान् सहसाऽनिलपित्तपरानपहन्ति रुषा ।
जनितज्वलना सकषायरसा ह्युर्वी गुरुरेव किमत्र मृषा ॥ ५१ ॥

पुष्करमूल—कफ, वायु, ज्वर, शोथ, पार्श्वपीडा, श्वास, कास तथा वमन का नाश करता है। शृंगिका (काकडासींगी) क्षय, वात, कफ, श्वास, कास, तृष्णा तथा हिक्का को दूर करती है। (पुष्करमूल आकार प्रकार में कूठ से मिलता जुलता है। चरक ने पुष्करमूल को 'हिक्काश्वासकासशूलहराणाम्' में परिगणित किया है। श्वास, श्वासनलिकाशोथ, फुफ्फुस, फुफ्फुसावरणशोथ, क्षय तथा पसली के दर्द में इसका उपयोग होता है। काकडासींगी कफरोग में उत्तम कार्य करती है। नूतन अथवा जीर्ण श्वासनलिका के शोथ में इससे जमा हुआ कफ बाहर निकलता है तथा नया उत्पन्न नहीं होता।) ॥ ४८ ॥

कट्फल (कायफल) कषाय, कटु तथा तिक्त है। प्रमेह, श्वास, कास आदि का नाश करता है। भार्गी (भारंगी) गुल्म, रक्तविकार, कफ, पीनस, शोथ, श्वास, कास तथा वायु का शमन करती है। (कायफल की छाल का उपयोग चूर्ण या क्वाथ के रूप से होता है। यह शुक्रशोधन तथा वेदनास्थापन गण की औषधि है। राजनिघण्टु इसे प्रतिश्यायहर तथा मुख रोग का नाश करनेवाली मानते हैं। इसके चूर्ण के उपयोग से मसूडे दृढ होते हैं ॥ ४९ ॥

कुलिंजन कफ को काट डालता है, श्वास का ह्रास करता है तथा रुचि को उत्पन्न करने वाला है। हृदयरोग में हितकर एवं स्वर्य है। वायु, अपस्मार तथा आध्मान को नष्ट करनेवाला, गले की व्याधियों को निगल जानेवाला, दीपन पाचन तथा मेध्य है। (कुलिंजन रास्ना का ही एक भेद है। अमुक वैद्य पान के मूल को ही कुलिंजन कहते हैं। यह अतिमूल्यक है। कुलिंजन एलाजातीय औषधि है। इसके मूल गाठदार, रक्तवर्ण तथा सुगंधित होते हैं। धन्वन्तरीनिघण्टु में इसी को 'अगस्त्य' वच कहा है।) ॥ ५० ॥

हाऊबेर वात तथा पित्त प्रधान उदर, ग्रहणी तथा गुदा के रोगों का शीघ्र विनाश कर देता है। इसको अग्नि प्रदीपक, रस में कषाय तथा भारी कहा गया है इसमें जरा भी असत्य नहीं।

१—कुष्ठविशेष । २—वचाभेद । ३—'हाऊबेर' इति लोके विख्याता ।

कटुत्वरूक्षत्वलघुत्वतैक्ष्णान्युरीकरोति प्रतनोति वह्निम् ।
आध्मानकोष्ठक्रिमिबन्ध[1]वायुबलासशूलादिहरं विडङ्गम् ॥ ५२ ॥
कटूष्णतिक्तो रुचिदोऽग्निदीप्तिदो हितोऽक्षिकर्णोदररुक्षु किं गुरुः ।
क्षणात् क्षिणोति श्वसनप्रभञ्जनौ कफक्रिमिप्लीहरुजोऽपि तुम्बरुः[2] ॥५३॥
पित्तास्रक्रिमिगणतृड्विषातिसारे धातक्या लघु मदकारि पुष्पमुक्तम् ।
गुल्मार्शोहृदयभगार्तिकृच्छ्रमेहप्लीहाश्मव्रणशमनो हिमोऽश्मभेदः ॥ ५४ ॥

(हाऊबेर के मटर के समान बडे कुछ श्यामता को लिये हुये किरमिजी रंग के फल होते हैं। इसमें मत्स्य के समान गंध आती है। इसीलिये इसे मत्स्यगंधा भी कहते हैं। इसकी लकडी कलम बनाने के काम में आती हैं। यह लेखन तथा शोषक होने के कारण जलोदर, हृदयोदर, एवं श्वेत प्रदर में उपकारक है।) ॥ ५१ ॥

वायविडंग कटु, रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण तथा अग्निवर्धक है। आध्मान, कोष्ठगत कृमि विबन्ध, वात, कफ तथा शूल आदि को दूर करता है। (वायविडंग उत्तम कृमिघ्न तथा रसायन है। 'विडंगं कृमिघ्नानाम्'। बच्चों की चिरकारी बद्ध कोष्ठता तथा तीव्र कास में पिप्पली चूर्ण के साथ इसे देने से लाभ होता है। जुलाब लेने के उपरांत एक तोला भर विडंग चूर्ण लेकर तथा उस पर पुनः जुलाब देने से गोल तथा चपटे कृमि मर कर गिर जाते हैं। विडंग के फलों को मसल कर उसके ऊपर के रक्ताभ रजःकणों को उतार कर एकत्र किया जाता है। इसे ही कम्पिल्लक या कबीला कहते हैं।) ॥ ५२ ॥

तुंबरु (तेज-बल) कटु, उष्ण, तिक्त, रुचिकारक, अग्नि प्रदीपक, नेत्र, कर्ण तथा उदररोग में हितावह एवं गुरु है। श्वास और वात को ही नहीं, कफ, क्रिमि, तथा प्लीहा की व्याधि को भी यह एक ही क्षण में क्षीण कर देता है। (तेजबल के वृक्ष के फल को तुंबरु कहते हैं। इसके फल, धनियां के आकार जैसे बीजों से युक्त होते हैं। औषधार्थ फल का उपयोग, बीजों को निकाल कर ही करना चाहिये।) ॥ ५३ ॥

धातकी (धाय) पित्त, रक्तविकार, कृमि, तृषा तथा मलाधिक प्रवृत्ति में लाभ देता है। इसके पुष्प लघु तथा मादक हैं। अश्म-भेद (पाखानभेद) गुल्म, अर्श, हृदय तथा योनि-रोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, प्लीहा, अश्मरी तथा व्रण का शमन करनेवाला एवं शीतल है। (धायके फूल आसवादि में खमीर उठाने और रंग लाने के लिये उपयोग में आते हैं। इसीलिये इसका एक नाम मद्यपुष्प भी है। यह संग्राहक है। अत्यार्तव, अतिसार तथा जीर्ण आंव में फूल देते हैं। पाखानभेद पत्थर मय चट्टानों में पैदा होता है। यह अश्मरी की अमोघ औषधि मानी जाती है। उदर शूल में, इसके पत्र स्वरस में लवण मिला कर देने से आशु-लाभ होता है। यह आंतों को शक्ति देता है, अतः आंव तथा अतिसार में उपयोगी है।) ॥ ५४ ॥

१—वन्धो विवन्धः। २—मरिचवद्व्यात्तमुखं फलमिति।

स्निग्धा हिमा वनप्सा तत्कायो ज्वरमपस्मृतिं जयति ।
अथवा यष्टिसहायः श्वयथु लेपाद्विलोपयति ॥ ५५ ॥

पिनष्टि पित्त श्वसन सुनोति कासं च निष्कासयति प्रसह्य ।
विबन्धबाधां विरलीकरोति रूक्षस्वभावा चिरपूर्वपोटिका ॥ ५६ ॥

लघुस्तिक्तक सारको रूक्षशीतस्तृषाकुष्ठजन्तुव्रणश्लेष्मगीत ।
निहन्ति ज्वरश्वासकासान्किरात सपित्तास्रशोफान्यथैणान्किरात ॥५७॥

हिमकटु त्रिमलोन्मथन ज्वरक्रिमिगुदोद्भवकुष्ठविसर्पहृत् ।
रुधिरमारुतशूलभरश्रमातिसृतिनाशनमिन्द्रयव नवम् ॥ ५८ ॥

वनप्सा स्निग्ध तथा शीतल है, इसका क्वाथ ज्वर तथा अपस्मार को दूर करता है। मुलहठी के साथ इसके लेप से शोथ का विलयन होता है। (वनप्सा रक्तकी ऊष्मा को शमन करता है-तथा निद्रा लाता है। कण्ठ की रूक्षता मे हितकर है। वस्ति-शोथ मे इससे परम लाभ होता है) ॥ ५५ ॥

चिरपूर्वपोटिका (काकमाची) पित्त को पीस डालती है, श्वास का ह्रास तथा कास का बलात् नाश कर देती है। विबन्ध का बन्धन तोडनेवाली एव रूक्ष स्वभावकी होती है। (मकोय के पत्र गरम करके लगाने से वेदना तथा अण्डकोष की सूजन मे लाभ होता है। काकमाची के रस को मिट्टी के पात्र मे गरम करके छान कर पीने से मूत्र सरलता से उतरता है। यह रस विविध प्रकार के चर्मरोग मे लाभप्रद पाया गया है। वाग्भट ने इसे स्वर्य तथा रेचक कही है 'काकमाची सरा स्वर्या'।) ॥ ५६ ॥

किरात (चिरायता), मृग समूह का किरात की तरह, रक्तपित्त, शोथ, ज्वर, श्वास तथा कास का, सहार कर देता है। यह लघु, तिक्त, सारक, रूक्ष, शीतल तथा तृषा, कुष्ठ, कृमि, व्रण एव कफ विकारो मे लाभ कारक है। (यह भूनिंब नामसे भी प्रसिद्ध है। यह गर्भ कालीन वमन को रोकता है—स्तन्य शोधक तथा उत्तम ज्वरघ्न है। यह आनुलोमिक अत एव दस्त को साफ लानेवाला है। आमाशय की शिथिलता में यह परम औषधी है।) ॥ ५७ ॥

नूतन इन्द्रयव शीतल, कटु, त्रिदोषहर, ज्वर, कृमि, गुदा के विकार, कुष्ठ तथा वीसर्प को दूर करता है। रक्तविकार, वायु, शूल, श्रम तथा अतिसार को मिटाता है। (इन्द्रजौ के मूल तथा बीज उपयोग में लेने चाहिये। चरक (कल्पस्थान) के टीकाकार ने पुकुटज तथा स्त्रीकुटज भेद से दो प्रकार के कुटजो का उल्लेख किया है। पुरुष जाति का श्वेत तथा स्त्री जाति का कृष्णवर्ण कहा गया है। श्वेत कुटज तिक्त तथा श्याम कुटज मधुर होता है। दृढबल के मत में उभय जाति समान गुणवाली है। सुश्रुत टीकाकार डल्हण श्वेत कुटज को गुण मे अधिक मानते है। श्वेत कुटज-त्वक्

१-यवनभाषानुसारेण सुप्रसिद्धतरमिद नाम द्वीपान्तरीयघासविशेष इति 'कराबादीन सफाई', केचित्तु-काश्मीरदेशोत्थो घासविशेष इत्याहु, अन्ये पुनस्त्रायमाणामेदमाहु ।
२-चिरपोटिका-काकमाची, 'मको' इत्युर्दूभाषाया, 'पीलूडी' इति गुर्जरभाषाया च प्रसिद्धा ।

रूक्षा हिमा लघुसरा दहनप्रबोध-
दक्षा विपाककटुका कटुकाऽतितिक्ता ।
हर्त्रीं प्रमेहकसनक्रिमिकुष्ठपाण्डु-
श्वासास्त्ररुग्दवथुपित्तकफज्वराणाम्[1] ॥ ५९ ॥

उद्गाढपित्तरुधिरोद्धुरशूलकालः
प्रध्वस्तहृद्गदमरुज्ज्वररोगजालः ।
संत्रोटितातिमलसंभृतकोष्ठतालैः[2]
स्वादुर्हिमो गुरुतरस्तरुजातिपालः[3] ॥ ६० ॥

रक्तातिसार की उत्तम औषध है। गुद कील में इससे लाभ होता है। प्रसवोत्तर-कालीन योनि तथा गर्भाशय की शिथिलता में यह उपकारक है। इसके पत्ते चबाने से दन्त शूल का शमन होता है। जीर्ण आंव में ताजी छाल का क्वाथ असर कारक है। हमेंशा ताजी छाल ही उपयोग में लेनी चाहिये, सूखने पर इसके गुण में न्यूनता आ जाती है। इन्द्रयव का फांट रक्तार्श में लाभ दिखाता है।) ॥ ५८ ॥

कटुका (कुटकी) रूक्ष, शीतल, उत्तम-सारक, दीपन, विपाक में कटु तथा तिक्त है। प्रमेह, कास, कृमि, कुष्ठ, पाण्डु, श्वास, रक्तविकार, दाह, पित्त, कफ एवं ज्वरको हरनेवाली है। (इसके मूल का उपयोग होता है। गुडूची की तरह यह भी काण्डरुहा है। स्वाद में अति तिक्त होने से यह कटुका नाम से प्रसिद्ध है। तोडने से इसके पर्व के ऊपर मत्स्याकृति तथा गोलाकार चिह्न दीख पडते हैं। अतः इसके चक्राङ्गी तथा मत्स्यरोहिणी नाम भी है। ग्रंथकार ने इसे 'लघुसरा' कहा है। अधिक मात्रा में यह स्रंसन गुण दिखाती है। कामला में अपने पित्त निःसारक गुण के कारण यह उत्तम लाभ देती है। विषम ज्वर में यह परम उपकारक है।) ॥ ५९ ॥

तरुजातिपाल (अमलतास) शूलका काल तथा अतिप्रवृद्ध पित्त एवं रक्तविकृति से मुक्त करता है। हृदय रोग, वायु एवं ज्वर के जाल को नर्जरित कर देता है। मल संग्रह से ठसा ठस भरे हुये कोष्ठ के तालेको तोड डालता है। स्वादु शीतल तथा गुरु है। ('चतुरङ्गुलो मृदु विरेचनानाम्' अमलतास मृदु विरेचन औषधियों में श्रेष्ठ है। यह नव ज्वर में भी विरेचनार्थ प्रयुक्त की जा सकती है। यह कोष्ठ शुद्धि की परम औषध है। पित्त की प्रधानता में इमली के साथ, शीत की प्रधानता में निसोथ के साथ एवं यकृत् विकृति में मकोय के साथ इसका उपयोग होता है। गले की ग्रंथिशोथ में, गो दुग्ध अथवा मकोय रस के साथ इसकी छाल का क्वाथ शनैः शनैः पीते रहने से लाभ होता है। अमलतास का गूदा आंतों से चिपक जाता है अतः इसका प्रयोग बदाम तैल के साथ करना चाहिये। इसके गूदे को कभी नहीं उकालना चाहिये। गरम पानी को उतार कर फिर उसमें गूदा मिला कर उपयोग करने से यथावत् लाभ होता है।) ॥ ६० ॥

१–"कर्तृकार्य्ययोरक्तादौ कृति षष्ठी" इत्यनुशासनात् कर्मणि षष्ठी। २–द्वारपिधान-साधनम्। ३–राजवृक्षः।

यकृत्क्रिमिप्लीहविबन्धगुल्मशूलादिकेष्वेलेमुशन्ति वैद्याः ।
केचित् पुनः संभवमेतदीयं कुमारिकायाः स्वरसाद्वदन्ति ॥ ६१ ॥
विस्फोटरक्तातिसृतिप्रमेहव्रणज्वरग्रन्थिविषामहन्त्री ।
भिनत्ति मूत्रस्य परं निरोधं गुर्वी हिमा रेवतिका प्रदिष्टा ॥ ६२ ॥
रूक्षोष्णा शोधिनी बाढं वातश्लेष्मविरोधिनी ।
शस्ता सनामकी नाम मनाक् पीततनुच्छदा ॥ ६३ ॥

एल-एलिया यकृत, प्लीहा, विबन्ध, गुल्म, शूल आदि में लाभदायी है-ऐसा वैद्य लोग कहते हैं। अमुक इसकी उत्पत्ति घी कुवार के रस से मानते हैं। (एलिया को मुसब्बर कहते हैं। प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। मुसब्बर घी कुवार के रस से बनाया जाता है जिसे 'सेकोटॉइन्' कहते हैं। सेकोटॉइन् मुसब्बर के अतिरिक्त 'बारबेडियन्', जाफराबादी, मसूरी मुसब्बर भी बनाये जाते हैं। ग्रंथकार का, मुसब्बर के विषय में, वक्तव्य यथावत् है। बच्चों के नाभिप्रदेश में एरंड तैल के साथ मुसब्बर का मर्दन करने से कोष्ठशुद्धि होती है। अर्शरोग जनित स्राव युक्त रक्तस्राव में यह परम उपयोगी है।) ॥ ६१ ॥

रेवतिका-रेवन्दचीनी (पीतमूला, अम्लपर्णी), विस्फोट, रक्तविकार, अतिसार, प्रमेह, व्रण, ज्वर, ग्रंथि, विष तथा आम का नाश करती है। मूत्रकृच्छ्र में हितावह, गुरु तथा शीतल है। (रेवंद फारसी नाम है, आङ्ग्लभाषा में इसे 'रुबार्ब' कहते हैं। इसकी एक छोटी जाति काश्मीर में भी होती है जिसे रेवास कहते हैं। रेवंद अल्प मात्रा में ग्राही है। अधिक मात्रा में मरोड के साथ यह जुलाब का काम करती है। इसलिये इसका उपयोग शुण्ठि अथवा सौंफ के अर्क के साथ ही करना चाहिये। पहिले जुलाब लाकर पीछे से कब्ज का काम करनेवाले दो औषधीय द्रव्य हैं। एक एरंड तैल दूसरी रेवंद। भेद इतना ही है कि एरंड क्षार स्वभावी नहीं है, अतः पेट की अम्लता इससे दूर नहीं होती। रेवतिका अम्लता दूर करती है। रेवंदका क्षार स्वभाव अल्प है। अतः इसमें थोडी सर्जिका क्षार मिलानी चाहिये। यूनानी मतसे रेवंद मूत्रल है और यही मत ग्रंथकार का है।) ॥ ६२ ॥

सनामकी (सनाय) कुछ पीताभ पतले पत्तोंवाली, रूक्ष, उष्ण, उत्तम, शोधन गुणवाली वात तथा कफ की विरोधी है।

(सनाय हरे पीले पत्तों की एक लता जातीय औषधिका नाम है, इसे 'मीठी आवल' भी कहते हैं। अमुक इसे ही मार्कंडी लता बताते हैं। इसके पत्ते राक्षा से

१-'एलिया' इत्यस्य सुप्रसिद्धं नाम। २-अप्रतिविद्धत्वात् स्वाभिमतमपि। ३-'रेवत(न्द)चीनी' इति प्रसिद्धा पीतवर्णा। 'रुबार्ब'इत्याङ्ग्लभाषायाम्। ४-'सनाय', 'मीठी आँवल' इति प्रसिद्धा हरितपीतपत्रा काचिल्लता। केचिदेता मार्कण्डीलतामाहुः। अपरे च-रास्नासदृशपत्रत्वात् सर्पक्षुगन्धत्वाच्च रास्नाभेदं 'नाकुली' संज्ञमाचक्षते।

विड्जन्तुजालक्षपणान्यपानावर्तोदरातङ्कनिषूदनानि ।
कटूनि सोष्णानि विपाचनानि बीजानि कालाञ्जनिकाञ्जनूंषि ॥ ६४ ॥
सुस्निग्धं गुरु रेचि पित्तकफनुन्नेपालबीजं[2] रसे
पाके स्वादु जयेत् क्षतक्षयमरुद्दाहास्रकासापदः ।
उष्णा स्वादुरसा त्रिवृन्निगदिता तिक्ता समीरापहा
पित्तश्लेष्मगदोदरश्वयथुजिद्रूक्षा मलक्षालिनी ॥ ६५ ॥
तत्तादृशानुल्वणवृक्कशूलदृगामयान्[3] हन्तुमतीव वीरः ।
कल्याणकारी मलरोधहारी प्रशस्यते मध्यबिलो ममीरः[4] ॥ ६६ ॥

मिलते हैं-और सर्प-सुगन्ध के कारण रास्ना के एक भेद 'नाकुली' नाम से भी यह प्रसिद्ध है। सनाय रेचक है। इससे पेट में ऐंठन होती है अतः शुण्ठी अथवा सोंफ के साथ इसका उपयोग किया जाना चाहिये। सनाय दूधके द्वारा बाहर आती है, अतः धावन काल में माता को सनाय देने से बालक को भी जुलाब होता है। पित्त-ज्वर में सनायका अमलतास के साथ जुलाब देना शास्त्र सम्मत) ॥ ६३ ॥

काला दाना मल-संग्रह तथा कृमि समूह को बाहर निकाल देता है। अपान तथा उदावर्त के आतंक का अंत करता है। यह कटु, उष्ण तथा पाचक है। (काले दाने की क्रिया निसोत के समान हैं। इसके लेप से किलास तथा झांई में लाभ होता है।) ॥ ६४ ॥

त्रिवृत् (निशोथ) उष्ण, रस में मधुर, तिक्त, वात, पित्त, कफ, उदररोग तथा शोथ को दूर करने वाली, मलनिःसारक एवं रूक्ष है। नेपालबीज (जमालगोटा) स्निग्ध, गुरु, रेचक, रस तथा पाक में मधुर, पित्त, क्षत, क्षय, वात, दाह, रक्त विकार तथा कास को उत्पन्न करता है। (निशोथ की लता होती है। मूल का उपयोग तत्-गर्भ-गत-काष्ठ को निकाल कर ही करना चाहिये। निशोथ श्वेत और श्याम भेद से दो प्रकार की मानी गयी है। अरुण-मूल वाली निशोथ अधिक गुणयुक्त होती है। 'मूलं तु द्विविधं तस्याः श्यामं चारुणमेव च—तयोर्मुख्यतरं विद्धि मूलं यदरुणप्रभम्। सुकुमारे शिशौ वृद्धे मृदुकोष्ठे च तच्छुभम्'। निशोथ को 'रेचनी' भी कहते हैं। त्रिवृत् सुखविरेचनानाम्। हरीतकी के साथ त्रिवृत्, आमवात, पक्षाघात, मनका अवसाद, वातशोथ तथा कुष्ठ रोग में लाभ दिखाती है। जमालगोटा तीव्र रेचक तथा अधिक मात्रा में विष है। जब रक्तगत जलांश कम करना हो, अथवा हृदयोदर में हृदय पर के पानी के दबाव को न्यून करना हो तब जमालगोटा देते हैं। इसके तैलकी एक बूंद से पानी जैसे पतले बहुत से दस्त हो जाते हैं। यदि विरेचन अधिक हो तो कत्था पानी में मिलाकर या निंबू का शर्बत देना चाहिये।) ॥ ६५ ॥

ममीर, अति वृद्ध वृक्क-शूल तथा नेत्र रोग में अत्यंत हितकर है। स्वास्थ्य की

१—'मिरचाई', 'कालादाना, इति च प्रसिद्धानि। २—दन्तीबीजं 'जयपाल, जमाल गोटा' इति च ख्यातम्। ३—तत्तादृशानिति च्छेदः। ४—आन्ध्यहर्ताऽतीव दुर्लभो ग्रन्थिलः काष्ठौषधविशेषः। 'यस्य स्पर्शात् काकपक्षमपि कालिमानं जहाति' इति वृद्धजनश्रुतिः।

पुनर्नवोष्णा मधुरा सतिक्ता सरा कषाया कटुका च रूक्षा ।
विषार्तिपाण्डुश्वयथूदरार्शोवातव्रणश्लेष्मगदेषु पूज्या ॥ ६७ ॥
ब्राह्मी तिक्तकषायशीतमधुराऽऽयुष्या सरा बुद्धिदा
स्वर्या शोफविषज्वरास्रकर्सनी पाण्डुप्रमेहौ हरेत् ।
छिक्रोष्णा कटुकाऽग्निदाऽरुचिमरुच्छ्लेष्मास्रजन्तुप्रणु-
द्गोजिह्वाऽनिलकृद्धिमातिसृतिहृन्मेहे कफे स्याज्ज्वरे ॥ ६८ ॥

सुरक्षा करनेवाला एवं मलावरोध हटाता है। मध्य भाग में छिद्र युक्त ममीर ही प्रशस्त कहा गया है।

(हरिद्रा जाति की छोटी ग्रंथियुक्त जड को ममीर कहते हैं। इसके वृक्ष काश्मीर जैसे पार्वत्य देशों में पाच हजार फीटकी ऊचाई पर पाये जाते हैं। यह आध्य-दूर करनेवाली ग्रंथियुक्त, काष्ठ-गर्भा दुर्लभ औषधि है, जिसके स्पर्श से काक के पक्ष की कालिमा भी दूर हो जाती है' यह मत इस ग्रंथके विद्वान् टिप्पणीकार का है। ग्रंथकर्ता के पुत्र श्री कलाधर राजवैद्य के मत में ७१ वर्ष पुरानी जंगली चमेली (पुष्पलता) की जड़ में भी यही गुण है। अपने इसी गुणधर्म के कारण यही ममीर कहलाती है) ॥६६॥

पुनर्नवा-उष्ण, मधुर, तिक्त, सारक, कषाय, कटु, रूक्ष तथा विष, पाण्डु, शोथ, उदावर्त, अर्श, वात, व्रण एवं कफ जन्य विकारों में परम पूज्य है। (पचांग, विशेषतया मूल उपयोग में लाये जाते हैं। यह ऊची जलार्द्र भूमि में, वर्षाकाल में, परिवर्धित होती हैं इसीलिये इसका एक नाम 'वर्षाभू' भी है। श्वेत तथा रक्त भेद से यह दो प्रकार की होती है। फल पाकान्त पर इसका क्षुप सूख जाता है-किंतु मूल नही सूखते। शोथघ्न होने से इसे 'शोथघ्नी' भी कहते हैं। यह मूत्रल है इसका प्रलेप विषाक्त कीट दंशमें विशेषतया वृश्चिक दंश में महौषधी का कार्य करता है।) ॥ ६७ ॥

ब्राह्मी, तिक्त, कषाय, शीत, मधुर, आयु तथा बुद्धि को बढाने वाली, सारक तथा स्वर्य है। यह शोफ, विष, ज्वर, रक्त-विकृति, पाण्डु, तथा प्रमेह में लाभ देती है। छिक्का नकछिकनी, उष्ण, कटु, दीपन, रुचिकर तथा वात, कफ, रक्तविकार तथा कृमि को दूर करने वाली है। गोजिह्वा (बनगोभी) वात-कारक, शीतल, अतिसार, हृदयरोग, प्रमेह तथा कफ ज्वर में प्रशस्त है। (ब्राह्मी का समग्र क्षुप औषधार्थ उपयोग में आता है। यह मूत्रल, मृदु रेचक तथा बल्य है। मूत्राघात में कोष्ठबद्धता भी हो तब ब्राह्मी के उत्तम गुण की प्रतीति हो जाती है। वातज दौर्बल्य, शुक्रक्षीणता तथा अपस्मार में इसका उपयोग होता है। नकछिकनी, जलार्द्र भूमि में अधिक होती है। इसे सूघनेसे लगातार छीक आने लगती है, अतः इसका एक नाम 'घ्राणदु:खदा' भी है। हिक्का-तथा प्रतिश्याय आदि नासिका जन्य रोगो में इसका शिरोविरेचनार्थ प्रयोग प्रशस्त है। इसके तैल का प्रयोग खुजली में लाभ देता है।) ॥ ६८ ॥

१-शोफादीनां शासिनी 'शसि गति शासनयो इत्यस्माद्युट्। टित्वान् ङीप्।

त्रायन्ती तुवरा सरा कफहरा नश्यद्गरा विज्वरा
पित्तच्छेदकरा भृशं भ्रमभराऽत्युग्राऽस्रनाशोद्धुरा।
विध्वस्तप्रदरज्वरा गुरुतरा स्निग्धाऽतिशुक्रोत्तरा
विट्सारं स्यति सारिवाऽल्परुधिरा दोषोत्किरा भो नराः! ॥ ६९॥
उष्णा विपाकमधुरा कटुका कषाया तिक्ता लघुर्ज्वरहरा बलदा गुडूची।
दोषत्रयामवमिमेहविदाहकासतृट्पाण्डुविट्सरणवेधविधानसूची[1] ॥ ७० ॥
वरं बालं बिल्वं कटुतुवरतिक्तोष्णमुदितं
मरुन्मान्द्यश्लेष्माञ्छ्लथयति च पित्तं रचयति।

त्रायन्ती (त्रायमाणा) तिक्त, सारक, कफ तथा गरविनाशक, विषमज्वर तथा पित्तकी छेदक, भ्रम हारक तथा उग्र रक्त विकृति की विघातक है। सारिवा, अनन्तमूल-प्रदर तथा ज्वरका नाश करने वाली, भारी, स्निग्ध तथा अत्यंत शुक्रल है। मलनिःसारक तथा रुधिराल्पताजन्य विकारों की संहारक है।

(त्रायमाणा शिमले के सोलन गांव के पर्वतों की चोटी पर होती है; यहां इसे कडू नाम से भी पुकारते हैं। जम्मू में वैश्नवीदेवी के पहाडों पर भी उपलब्ध होती है। यहां यह तीता नाम से प्रसिद्ध है। 'मुहिते-आजम' में गॉफिस् का संस्कृत नाम त्रायमाण दिया है। यह सूतिकाशूल का नाश करती है। इन्द्रलुप्त रोग में इसके प्रलेप से लाभ होता है। यह पित्त स्राव कराती है तथा उत्तम मूत्र विरजनीय औषधि है। सारिवा, श्वेत, कृष्ण भेद से दो प्रकारकी होती है। सारिवा के मूल सुगंधित तथा उड्डयनशील तैल से युक्त होने हैं, अतः इसे अधिक नहीं उकालना चाहिये। सारिवा के यह गुण उसके मूल में है–तत्-गर्भ-गत-काष्ठ में नहीं, अत एव काष्ठ रहित ताजे पतले मूल को ही उपयोग में लेना चाहिये। शास्त्र में जहां सारिवा लेने को कहा हो वहां अनन्तमूल ही ग्रहण करना चाहिये–जहां सारिवा-द्वय लिखा हो वहां श्वेत एवं कृष्ण दोनों प्रकार की ही सारिवा लेने का शास्त्रीय विधान है। चरकज्वरचिकित्सा में शिवदास कहते हैं कि 'यत्र सारिवैका पठ्यते तत्रानन्तमूलमेव'। सारिवा रसायन तथा रक्त के विकारों में विशेष उपकारक है। उपदंश अथवा सुजाक से वारंवार गर्भ-पातकी स्थिति में सारिवा मूल का सेवन अत्यंत प्रशस्त है ॥ ६९ ॥

गुडूची (गिलोय) ऊष्ण, पाकमें मधुर, कटु, कषाय, तिक्त, लघु, ज्वरनाशक, तथा बलकारक है। त्रिदोष, वमन, दाह, खांसी, प्यास, पाण्डु तथा अतिसार को गुडूची, सूची की तरह विद्ध कर देती है।

(गिलोय की लता को कहीं भी रख दिया जाये-उसमें से नूतन लता प्रस्फुटित हो आती है अतः इसे अमृता कहते हैं। इसके टुकडे करने पर भी इसमें से पुनः नये अंकुर निकल आते हैं। अतः यह छिन्नोद्भवा भी कहलाती है। शुष्क की अपेक्षा आर्द्र गिलोय में अधिक गुण होते हैं। गुडूची का बल्य, ज्वरघ्न एवं मूत्रल गुण सर्वत्र प्रसिद्ध है।) ॥ ७० ॥

१–दोषत्रयादिविट्सरणान्तानां गदानां वेधविधाने सूचीव सूचीत्यर्थः।

अथो वासा वातस्वरवलकरा तिक्ततुवरा
लघुर्हृद्या शीता ज्वरवमनतृष्णाकसननुत् ॥ ७१ ॥
उष्णो ज्वरश्वसनशूलकफाग्निसादान् हन्याद्गुणौघबृहती बृहती सवातान् ।
पार्श्वार्तिपीनसहृदामयजन्तुषु स्याद्रूक्षा सरा तदुपमा लघुकण्टकारी ॥७२॥
लघुर्यवासो मधुरः कषायः सरो हिमः पित्तकफानिलास्रे[1] ।
तृड्भ्रान्तिमेदोभ्रमकुष्ठकासज्वरास्रवीसर्पमदान् धुनोति ॥ ७३ ॥

बिल्व अपक्व ही श्रेष्ठ है, कटु, कषाय तथा तिक्त है। पकाहुआ बिल्व वातकारक, अग्नि मंद करने वाला, कफ को पतला बना देने वाला तथा पित्त प्रकोपक है। वासा, अरडूसा वातकर, स्वर्य, तिक्त, कषाय, लघु, हृद्य, शीतल, तथा ज्वर, वमन, तृष्णा और खासी को मिटाने वाला है।

(बिल्व का मूल, त्वचा, पत्र तथा फल का गुदा औषधार्थ व्यवहृत होते हैं। दशमूलादि कषायों में मूल या त्वचा का उपयोग करना चाहिये। इसका मूल मादक तथा ज्ञान तंतुओं पर शामक असर करने वाला माना जाता है। अतः यह निद्रानाश आदि में प्रशस्त है। कच्चा बिल्व-फल सौंफ तथा वचा के क्वाथ सह, आंव में विशेष लाभ देता है। द्राक्ष, आंवला, हरीतकी आदि फल शुष्क होने पर अधिक गुण वाले होते हैं। बेल फल के अतिरिक्त अन्य फल पकने पर उत्तम गुण वाले होते हैं। बेल कच्चा ही उत्तम माना गया है। अडूसा, उत्तम कफ निःसारक है पत्र की अपेक्षा मूल में यह गुण अधिक है। कफको पतला करके खासी के वेग को न्यून करना यह अडूसा का प्रधान कर्म है। रक्त पित्त तथा क्षय में तथा फुफ्फुस में से रक्त-स्राव में, रक्तार्श तथा रक्त प्रदर में अडूसा का पत्र स्वरस पीना चाहिये। अडूसाकी शुष्क पत्तियों में कुछ धत्तूर पत्रका चूर्ण मिलाकर धूम्र पान से श्वास के वेग में शांति मिलती है ॥ ७१ ॥

बृहती, बडी कण्टकारी उष्ण, ज्वर, श्वास, शूल, कफ, अग्निमांद्य तथा वातरोग की नाशक गुणयुक्त औषधि है। लघुकण्टकारी भी बडी के समान रूक्ष तथा सारक है एवं पार्श्व शूल पीनस, हृद्रोग तथा कृमि में उपयोगी है। (इस क्षुपका पचांग औषधार्थ व्यवहृत होता है। श्वेत पुष्पयुक्त कण्टकारी लक्ष्मणा के समान गर्भ कारक किंतु अप्राप्य है। दोनों प्रकार की कण्टकारी स्वेद जनन, उष्ण, मूत्र जनन तथा कफ-निःसारक है। इसका प्रयोग गले एवं श्वास नलिका के शोथ की प्रथमावस्था में होता है ॥ ७२ ॥

यवास, जवासा लघु, मधुर, कषाय, सारक, शीतल तथा वात-रक्त में प्रशस्त है, यह तृषा, भ्रांति, मेद, वमन, कुष्ठ, कास, ज्वर, रक्त विकार, विसर्प तथा मद का नाश करता है। (वर्षा ऋतु में जब अन्य औषधियां उत्पन्न होती जवासा जल जाता है। इस विषय में, ग्रंथकार की एक सुंदर रचना है–'घनासा चौमासा घन घन-घटा

१–अत्र रसस्यानुक्तावपि रौक्ष्यौष्ण्यादियोगात् ऋतुतिक्तमात्रमवगन्तव्यौ। २–'शम्' इति शेषः ।

तुहिनतुवरतिक्तः कुष्ठकण्डुप्रमेह-
श्वयथुरुधिरपित्तश्लेष्मपाण्डुप्रहारी ।
ज्वरभरवहुमेदोऽरोचकासद्विजार्तिं
तिरयति खदिरोऽसौ शुक्रलस्तस्य सारः ॥ ७४ ॥

मायाफलं[1] मनागुष्णं कषायं पवनास्रजित्[2] ।
केशसात्म्यं वितनुते संकोचं[3] प्रतिसारणात् ॥ ७५ ॥

सावन घुटी-जवासा का रासा जलकर जरासा रह गया। हरासा ये घासा वन-बिच भरासा गुथ रहा-तमासा है खासा त्रिभुवन पिपासा मिट गई। धमासा भी जवासा के समान ही है-भेद इतना है कि धमासा के फल होते हैं जिसके उपर एक तीक्ष्ण कांटा रहता है जवासा के फलियां लगती हैं। दुरालभा, धन्वयास आदि धमासा के संस्कृत नाम हैं। जवासा उत्तम कफघ्न है। श्वास में जवासा का धूम्र-पान करने से लाभ होता है। जवासे के क्षुपको वस्त्र के ऊपर आलोडित करने से उसपर श्वेत रज-कण जैसा द्रव पदार्थ जम जाता है इसे आयुर्वेद में यासशर्करा तथा यूनानी में 'तुरंजबीन' कहते हैं। चरकसंहिता में यासशर्करा के गुण मिलते हैं 'कषायमधुरा शीता सतिक्ता यासशर्करा'। सुकुमार-प्रकृतिवालों के लिये यह उत्तम-विरेचन औषधि है। यह पित्त को सरलता से बाहर निकाल देता है।) ॥ ७३ ॥

खदिर-शीतल, कषाय, तिक्त है-तथा कुष्ठ, खुजली, प्रमेह, शोथ, रक्तपित्त, पाण्डु, ज्वर, मेद, अरुचि, एवं दंतपीडा को दूर करता है। खदिर का सार, खैर-सार शुक्रल है। (खैर की लकडी से कत्था बनाया जाता है। खैरसार वृक्ष के मध्य भाग में स्वतः उत्पन्न होता है। कत्था संग्राहक है-किंतु इससे पाचक-रस का क्षय होता है। गर्भाशय की शिथिलता से उत्पन्न प्रदर, रक्त-स्राव तथा योनि-शैथिल्य में समभाग कत्था तथा बोल गुणकारी है। काकडे (Tonsils) के कष्ट में खैरसार के रस को चूसने से लाभ होता है। यह रसायन एवं शुक्रल है। खदिर की अन्य दो जातियां और हैं-एक सोमवल्क या श्वेत खदिर दूसरा विट्खदिर या इरिमेद-यह दुर्गंधयुक्त होता है।) ॥ ७४ ॥

मायाफल, मांजूफल-कुछ उष्ण, कषाय, वात-रक्त-नाशक तथा केश्य है। इसके प्रतिसारण से योनि-संकुचित होती है। (यह फल नहीं एक प्रकारका कीट-गृह है; यह अति-कषाय होता है। मांजूफल को पानी में घिसकर गले में लगाने से टॉन्सिल के शोथ में तथा इसके क्वाथ के गण्डूष लेने से दांतों और मसूढों के शैथिल्य में लाभ होता है। योनि-शैथिल्य में इसके चूर्ण की कपडे में पोटली बांधकर योनि में रखते हैं-अथवा इसके क्वाथ की उत्तर-बस्ति देते हैं।) ॥ ७५ ॥

१-'मांजूफल' इति नाम्ना प्रसिद्धं हरिद्वर्णं वर्तुलं च। २-पालित्यादिहरत्वात्। ३-योनिसंकोचम्।

शीतो निम्बतरुर्विपाककटुकस्तोतुष्यते पित्ततृड्
हृल्लासज्वरजन्तुकुष्ठकसनच्छर्दिप्रमेहव्यथा. ।
रूक्षस्तिक्तकषायकः क्रिमिकफच्छर्दिप्रमेहास्रविद्-
सारप्रौढरुजो रुणद्धि च महानिम्बोऽपि दुर्नामहृत् ॥ ७६ ॥
लोध्रः कषायः शिशिरो लघिष्ठः सग्राहको नेत्रगदेष्वपीष्टः ।
बलासपित्तप्रदरप्रहर्ता दाहस्य शोथस्य विनाशकर्ता ॥ ७७ ॥
त्विषा जितविषा विषं हृतविषा सुतैं रहसा
प्रसारितरुषा कृशानुगदशातिनी कि न सा ।

निंब शीतल, विपाक में कटु तथा पित्त, तृषा, हृल्लास, ज्वर, क्रमि, कुष्ठ, कास, वमन और प्रमेह को मिटानेवाला है। महानिंब-रूक्ष, तिक्त, कषाय है तथा क्रमि, कफ, वमन, प्रमेह, रक्तदोष और अति प्रवृद्ध अतिसार को रोकता है विशेष-तया यह अर्श का नाश करता है। (नीम के सभी अंग औषधार्थ व्यवहृत होते हैं। निंब का तैल उसके सभी अंगों से अधिक गुणयुक्त माना जाता है। यह कुष्ठ में उत्तम लाभ देनेवाला तथा रसायन है। नीम की अन्तर्छाल का ज्वर प्रतिबंधक गुण सिंकोना की छाल के समान ही है। अन्तर्छाल का करीब ३ माशा चूर्ण सौंफ के अर्क के साथ लेने से आशु-असर होता है। संधि-शोथ तथा आमवात में तैल की मालिश करते हैं। महानिंब देखने में निंब जैसा ही है-इसके पुष्प सुगंधित तथा श्वेत होते हैं। इसे ही बकायन कहते हैं। इसके गुण-धर्म निंब के समान ही हैं। बकायन का प्रयोग वाग्भट ने अर्श में किया है-'लवणोत्तमहिंगुकलिंगयवान्-चिरजिल्वमहापिचुमन्दयुतान् पिब सप्तदिनं मथिताल्लुडितान् यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुहान् ') ॥ ७६ ॥

लोध्र-कषाय, शीतल, अतिलघु, संग्राही, नेत्रों को हित कर तथा कफ, पित्त, प्रदर, दाह एवं शोथ का नाश करनेवाली है। (लोध्र-ग्राही, रक्तस्तंभक तथा शोथघ्न है। इसकी मुख्य-क्रिया छोटी रक्तवाहिनियों पर होती है-उनके संकुचित होने से रक्त-स्राव बंद होकर शोथ उतरती है। गर्भाशय शैथिल्य से श्वेतप्रदर तथा अत्यार्तव में लोध्र-चूर्ण से लाभ होता है। यह योनि-रोग में उपकारक, स्तंभक तथा वर्ण्य है। प्रसूतावस्था में योनिक्षत में इसका लेप करते हैं अथवा क्वाथ की उत्तर-बस्ति देते हैं। आंख की खाज और सूजनको उतारने के लिये-आंख की पलक पर इसका लेप किया जाता है।) ॥ ७७ ॥

विषा, अतिविषा अतीस-अपने प्रभावसे विष-नाशक, अतिसार में आशुलाभ देने वाली, अग्निमांद्य-विकारो की विनाशक, अति कटु-रस से पूर्ण, अन्न-रस में से

१-अतिविषा। सा च त्रिविधा भवति शुक्लकृष्णारुणकन्दभेदात्। तथा च राजनिघण्टु "त्रिविधाऽतिविषा ज्ञेया शुक्ला कृष्णा तथाऽरुणा। इति" तत्र प्रशस्ततया शुक्लभेदुरकन्दाया गुणाः। त्विषा जितविषेति।

भृशं कटुरसा विशादयति सामपित्तं रसात्
प्रशान्तवमिसाध्वसा ज्वरतृषार्तकूलङ्कषा[1] ॥ ७८ ॥
दुष्टव्रणास्रहन्त्री कटुका शीता विषस्य संहर्त्री ।
शृङ्गाकृतिर्विशेषात् प्रशस्यते [2]निर्विषा नाम ॥ ७९ ॥
गुदकीलकपित्तबलासतृषारुधिरातिसृतिप्रलयप्रबलः ।
जठरज्वलनं ज्वलितं कुरुते कटुकः कुटजस्तुवरः शिशिरः ॥ ८० ॥
पाठोष्णा कटुका कफानिलहरी तीक्ष्णा लघुर्ग्राहिणी
शूलच्छर्दिविषज्वरक्रिमिमहाश्वासव्रणध्वंसिनी ।

अपक्व पित्त को निकाल देने वाली, वमन में हितकर तथा ज्वर-जन्य-तृषा से आकुल के लिये साक्षात् निर्झरिणी-सरिता है। (राज-निघण्टु में शुक्ल, श्याम तथा रक्त भेद से तीन-प्रकार की अतीस कही गयी है। अतीस के मूलके चूर्ण की मात्रा दो रत्ती से दो माशा तक है। इसके विष-नाशक गुण का वर्णन राज-निघण्टु ने किया है। मदनगोपाल ने इसके लेप को श्वयथु में लाभ-प्रद कहा है। 'लेपात् श्वयथुनाशिनी'। चक्रदत्त ने इसे ज्वरातिसार में उपयुक्त बताया है। अतीस बल्य, वृष्य तथा ज्वर प्रतिषेधक है। विडंग के साथ लेने से अंत्रस्थ कृमि बाहर निकल आते हैं। समभाग अतीस और दाडिम के पुष्पचूर्ण को बच्चों के दस्त बंद करने के लिये देते हैं। अतीस, शुद्ध भांग तथा वचा चूर्ण का प्रयोग अतीसार में लाभ करता है।) ॥ ७८ ॥

निर्विषा, जदवार—शृंग के समान आकारवाली, कटु तथा शीतल है। दुष्ट व्रण, रक्तपित्त तथा विषका नाश करती है। (जद्वार एक बूंटी की जड का नाम है—जो वच्छनाग के समान श्रृंगाकार होती है। जद्वार उष्ण-प्रकृतिवालों के लिये अहितकर है। इसका निवारक धारोष्ण दूध है। यह सभी प्रकारके विषों को हरने वाली असर कारक औषधि है। दंशज विषों में दंश-स्थानपर मद्य में घिसकर इसका लेप करते हैं। यह वेदना-स्थापक है। खाने तथा लेप करने से बाह्य तथा आन्तर पीडा में लाभ देती है। जद्वार प्रतिश्याय आदि कफ रोगों में प्रयुक्त होती है। यह अपस्मार तथा त्वक्-शून्यता में उपकारक है।) ॥ ७९ ॥

कुटज-कषाय, शीतल, कटु है तथा गुद-कील, पित्त, कफ, तृषा, रक्त दोष और अतीसार का प्रचंड-प्रलय कर देता है—तथा जठर की अग्नि-ज्वाला को प्रदीप्त करता है। (कुटज-मूल की ताजी छाल के चूर्ण को खट्टी-छाश में पीसकर-५ तो. मात्रा में ४-४ घंटे के अंतर से देने पर ज्वर, अतिसार तथा मल में से रक्त स्राव दूर हो जाता है। रक्त-प्रवाहिका में कुटज-मूल की छाल के तुल्य अन्य-औषधि नहीं है।) ॥ ८० ॥

पाठा, पाढ-उष्ण, कटु, तीक्ष्ण, लघु, ग्राही है-तथा कफ, वात, शूल, वमन, विष, ज्वर, कृमि, महाश्वास और व्रण का नाश करता है। मूर्वा (मरोडफली), भारी, सारक और मधुर है। यह तृष्णा, हृदय-रोग, प्रमेह, पित्त, रुधिर-विकार,

---

१—ज्वरतृषार्तानां कूलङ्कषेव कूलङ्कषेति। "कूलङ्कषा निर्झरेणी" इति कोशः।
२—'निर्विषी' तथा 'जदवार' इति नाम्ना प्रसिद्धा कृष्णवर्णा प्रायो लेपेन ग्रन्थ्यादिषूपयुज्यते।

तृष्णाहृद्दमेहपित्तरुधिरव्यापत्त्रिदोषज्वरान्
कण्डूकुष्ठमखान् हरेद्गुरुसरा स्वादुर्हि मूर्वा मता ॥ ८१ ॥
शीता विषव्रणविसर्पविदाहलूता-
भूतातिसारविनिवारणपण्डिताऽस्ति ।
रक्तं तत हठतया विदधाति रिक्तं
शस्ता मरालपदिकाऽऽपदि पित्तजायाम् ॥ ८२ ॥
एरण्डो मधुरगुरु सरो निहन्यादानाहश्वयथुकफज्वरामवातान्
गुल्मार्शोयकृदुदरकिमिव्रणार्तो स्यादर्कः कफपवमानकण्डुकुष्ठे ॥ ८३ ॥
अष्ठीलोदरकफवातगुल्महर्ता सेहुण्ड• कटुगुरुरेचनोष्णतीक्ष्ण ।
धत्तूरो मददहनानिलप्रकोपी यूकाव्रणविषकुष्ठनाशशूर ॥ ८४ ॥

त्रिदोष, ज्वर, खुजली तथा कोढ का नाश करती है। (पाढ की छोटी और बड़ी ऐसी दो जातिया हैं। बड़ी को राजपाठा तथा छोटी को लघुपाठा कहते हैं। चरकचिकित्सा अध्याय १८ के व्यूषणादि घृतमें 'द्वे पाठे' ऐसा उल्लेख है। इसकी व्याख्या में चक्रपाणि-दत्त लिखते हैं कि 'द्वे पाठे इत्यनेन स्वल्पपत्रा द्वितीया पाठा ग्राह्यन्ति' पाठा की लता होती है, अत्यत-तिक्त होने के कारण इसे 'वरतिक्तिका' भी कहते हैं। इसके रस को मिलाने से पानी जमकर सान्द्र हो जाता है।) ॥ ८१ ॥

मरालपदिका, हसराज-पित्तज-विकारों में प्रशस्त है। शीतल है तथा विष, व्रण वीसर्प, दाह, लूताविष, भूत-बाधा और अतिसार के निवारण में पडिता है ॥ ८२ ॥

एरड-मधुर, भारी तथा सारक है। यह आनाह, शोथ, कफ, ज्वर और आम वात को दूर करता है। अर्क, आकडा-गुल्म, अर्श, यकृत्, उदर रोग, कृमि, व्रण, कफ, वात, कण्डु तथा कोढ में प्रशस्त है। (एरड-तैल सौम्य-स्रसन तथा वातहर है। यह आतों की श्लेष्मल-त्वचा को मृदु बनाता है जिससे मल की गाठे नीचे सरकती हैं। एरड तैल को प्रात आर्द्रक-रस में मिलाकर खाली पेट लेना चाहिये। कटि-शूल, गृध्रसी, पार्श्व-शूल, हृदय-शूल, आमवात तथा सधि शोथ में एरड-तैल एव अल्प-मात्रा में शिलाजीत मिला कर देते हैं। स्तन पर एरड तैल लगाकर उसका पत्र बाधने से स्तन-शोथ कम होता है।) ॥ ८३ ॥

सेहुण्ड, स्नुही, डडा थोर कटु, गुरु, रेचन, उष्ण तथा तीक्ष्ण है। अष्ठीला उदर रोग, कफ, वात और गुल्म को दूर करता है। धत्तूरा मादक, दीपन तथा वातकर है। यूका, व्रण, विष और कुष्ठ का नाश करनेवाला है। (थूहरका दूध तीक्ष्ण विरेचन है अत मृदुकोष्ठवालों पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये-तीक्ष्ण एव अधिक काटे दार, दो या तीन वर्ष पुराने वृक्ष का ही क्षीर ग्रहण करना चाहिये। 'ता विपाट्य हरेत् क्षीर शस्त्रेण मतिमान् भिषक्-द्विवर्षां वा त्रिवर्षां वा शिशिरान्ते

१-'मरोडफली' इति वैद्या —इय धनुर्गुणोपयोगिनी । 'मूर्' इति महेश्वर । 'मोरवेल' इत्येके ।-२-'हसराज' नाम्ना प्रसिद्धो रक्तवर्णस्तृणविशेष प्रायो जलसमीपे भवति ।

किं स्तम्भनमाफूकं कसनश्वसनापहं किमाफूकम्।
किं शोषणमाफूकं बलासपवनापहं किमाफूकम् ॥ ८५ ॥
सहास्यरङ्गां मदमोहतुङ्गां विट्सारभङ्गां पृथुपित्तसङ्गाम्।
उच्चैरनङ्गां हरिदङ्गरङ्गां क्षुधोत्तरङ्गां स्पृहयामि भङ्गाम् ॥ ८६ ॥
आवर्तमानपयसि क्षिप भङ्गाज्यं विधत्स्व दधि तस्य।
तज्जं पुनस्तदाज्यं स्वच्छमगन्धं ददीत सुमकन्दे ॥ ८७ ॥
स्यात् सैन्धवं स्वादु हिमं मनोज्ञं सूक्ष्मं लघु स्निग्धमतीव हृद्यम्।
त्रिदोषनुद्दीपनपाचनं च सर्वेषु मुख्यं लवणेषु वृष्यम् ॥ ८८ ॥

विशेषतः'-दृढवल। दृढबल ने दो प्रकार के सेहुण्ड बताये है-'द्विविधः स मतो यैश्च बहुभिश्चैव कण्टकैः-सुतीक्ष्णैः कंटकैरल्पैः प्रवरो बहुकंटकः'। इसकी जड सर्पदंश में हितकर है। सुश्रुत ने कुत्ते के विष में धत्तूरे का उपयोग बताया है। धत्तूरे के पत्र स्वरस में अफीम और पुनर्नवा मूल पीस कर लेप करने से वात-वेदना तथा हाथ-पैर का शोथ दूर होता है।) ॥ ८४ ॥

आफूक, अफीम-शुक्र पुरीष आदि का स्तंभन करनेवाली कौनसी वस्तु है? अफीम। श्वास तथा कीटनाशक कौन है? अफीम। शरीर का शोषण करनेवाली कौन है? अफीम। कफ का तथा कफावृत वायु का नाश करनेवाली कौन है? अफीम। (किसी द्रव्य-विशेष के गुण दोष का वर्णन इतनी प्रभावोत्पादक काव्य-मय शैली में क्वचित् ही पढने में आता है) ॥ ८५ ॥

भांग हास-विलास के रंग को जमानेवाली, मद तथा मोह में अतिवृद्धि करने वाली, विट्संग्रह की भेदक, पित्ताधिक्यवाली, अनंग-रंग तथा क्षुधा की तरंग को बढानेवाली हरित-रंग के अंगवाली भांग स्पृहणीय है। भांग से सिद्ध किये गये घृत को दूध में मिला कर उसका दही जमा देवें-फिर उसको मथकर घृत निकाललें। इस स्वच्छ तथा निर्गंध घृत का गुलकंद के साथ सेवन करें। (भांग का सुजाक और ग्रहणी में प्रयोग किया जाता है। गुद-प्रदेश पर भांग का लेप करने से अर्श वेदना में लाभ होता है। भांग धनुस्तंभ तथा विषूचिका की लाभदायी औषध है।) ॥ ८६-८७ ॥

सैंधव कुछ मधुर, शीतल, रुचिकर, सूक्ष्म, लघु, स्निग्ध, नेत्रों को

१-शुक्रपुरीषादीनाम्। २-केवलश्लेष्मणस्तथा श्लेष्मावृतवायोश्च नाशकम्। श्लेष्मणा मार्गावरोधाद्यो वायुकोपस्तत्रोपशयम्। तदुक्तं—"वायोर्धातुक्षयात् कोपो मार्गस्यावरणेन च।" इति। न तु स्वतन्त्रपवनापहं, धातुशोषणात्तथा निद्रानाशजृम्भादिवातकार्योत्पादनादनुभवाच्च वातवर्धनोपपत्तेः। ३-हास्यविलासाभ्यां सहिताम्। ४-रङ्गशब्दोऽत्र देशीवर्णमात्रवाचकः। ५-प्रसङ्गाद्भङ्गाघृतस्य संस्कारः प्रतिपाद्यते। ६-अविपुष्पवर्गे वक्ष्यमाणकर्तव्यताके। ७-लवणद्रव्यत्वादनुक्तोऽपि लवणरसः प्राधान्येन समुच्चीयते, तेनेषत्स्वादुत्वम्। तन्त्रान्तरेऽपि—त्रिदोषघ्नं समधुरं सैन्धवं लवणोत्तमम्।" इति। तत्र समधुरमितीषन्मधुरम्। ८-सूक्ष्मस्रोतोऽनुसारित्वात्।

सौवर्चलाख्यं विशदं लघूष्णं प्ररोचनोद्दीपनपाचनं च।
आनाहविड्बन्धसमीरशूलनाशप्रपञ्चप्रवणं प्रसिद्धम् ॥ ८९ ॥
सक्षारतीक्ष्णोष्णलघु व्यवायि रुच्यं सरूक्षं सरमग्निकारि।
विष्टम्भहृद्रुग्गुरुताविबन्धश्लेष्मानिलघ्नं[1] विडमामनन्ति ॥ ९० ॥
तिक्तं विपाके मधुरं विभेदि नात्युष्णपित्तं कफलं मरुन्नुत्।
वह्निप्रदं गुर्वविदाहि वेद्या: सामुद्रसंज्ञं[2] लवणं लपन्ति ॥ ९१ ॥
अत्यर्थमुष्णं लघु भेदि तीक्ष्णं व्यवाय्यभिष्यन्दि समीरहारि।
सूक्ष्मस्वभावं कटुकं विपाके गडाभिधं[3] पित्तविकारकारि ॥ ९२ ॥

ग्रहण्यर्श:शूलश्वसनकसनश्लेष्मगलरुङ्
मरुत्पाण्डुप्लीहान् व्यपनयति गुल्मामसहितान्।
यवक्षारः स्निग्धो लघुरतुलवैश्वानरकर-
स्त्वथ स्वर्जिक्षारो विलसति यवक्षारसदृश: ॥ ९३ ॥

अत्यंत हितकर, त्रिदोष-शामक, दीपन पाचन, हृद्य तथा सभी लवणों में उत्तम है। (सैंधव को ईषत् मधुर अन्यत्र भी कहा गया है 'त्रिदोषघ्नमधुरं सैंधवं लवणोत्तमम्'।) ॥ ८८ ॥

सौवर्चल, काला नमक-विशद, लघु, उष्ण, रुचिकर तथा दीपन-पाचन है। आध्मान, मलावरोध, वायु तथा शूल आदि के प्रपंच का नाश करने में परम प्रशस्त है ॥ ८९ ॥

विड् नमक कुछ क्षार-स्वभावी, तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, व्यवायी, रुचिकर, रूक्ष, सारक तथा दीपन है। विष्टंभ, हृद्-रोग, गुरुता, मलावरोध, कफ तथा वात-नाशक है ॥ ९० ॥

समुद्र लवण पाक में तिक्त, मधुर, भेदक, किंचित् उष्ण, किंचित् पित्त तथा कफ करने वाला, वातनाशक, दीपन, गुरु और विदाही है ॥ ९१ ॥

गड्-नमक, साभर देशोद्भव-शाकम्भरीय-नमक अत्यंत-उष्ण, लघु, भेदक, तीक्ष्ण, व्यवायी, स्रोतों को रुद्ध करने वाला, वातनाशक, सूक्ष्म-स्वभावी, विपाक में कटु तथा पित्त विकार करनेवाला है। (गड्-लवण ही शाकम्भरीय-लवण है-'शाकम्भरीय कथितं गडाख्यम्।) ॥ ९२ ॥

यवक्षार-स्निग्ध, लघु, तथा उत्तम दीपन है। ग्रहणी, अर्श, शूल, श्वास, कास, कफ, गल-रोग, वायु, पाण्डु, प्लीहा तथा गुल्म सहित आम का नाश करता है।

१-श्लेष्मानिलघ्नमिति च तयो सूक्ष्ममार्गप्रापकत्वात्, यदुक्त—
"विडं सक्षारमूर्ध्वाध: कफवातानुलोमनम्।" इति। २-दक्षिणसमुद्रे भवतीति सामुद्रम्। ३-साम्भरिदेशोत्थ लवणं 'गड' नाम्ना कथ्यते। यथा—"शाकम्भरीय कथितं गडाख्यम्" इत्यादि।

सावुक्षारस्तैलचूर्णाम्बुजन्मा स्फीतच्छायो बस्तिवासोविशोधी ।
नक्तान्धत्वं विस्रतामण्डकण्डूं सोदावर्तं जन्तुजालं निहन्ति ॥ ९४ ॥

इति हरीतक्यादिवर्गः ॥ १ ॥

सर्जिका-क्षार, गुणधर्म में यवक्षार के समान ही है। (जब यव परिपक्व हो जाये तब ताजी अवस्था में ही क्षुप को उखाड कर सुखाना चाहिये। फिर इसे जला कर इसकी राखको पानी में भिगोते हैं। इस तरह क्षार भाग पानी में घुल जाता है। इस जलको धूप में सुखा देने पर क्षार अवशिष्ट रह जाता है—यही यवक्षार है।) ॥ ९३ ॥

साबु-क्षार, कलिका चूर्ण में घुले हुये पानी को नितार कर उसको तैल में मिलाने से, तैयार होता है। श्वेत-वर्णवाला यह साबु-क्षार बस्ति तथा वस्त्र को स्वच्छ करता है—अंजन से रात्र्यंधत्व दूर करने वाला, अंडकोष पर मालिश से उसकी खुजली को मिटानेवाला तथा बस्तिद्वारा उदावर्त सहित कृमि-समूह का नाश करनेवाला है। (इसकी निर्माण-विधि-चिकित्सा-गुच्छ में दी गई है।) ॥ ९४ ॥

हरीतक्यादि-वर्ग समाप्त हुआ ॥ १ ॥

अथ पौष्टिकवर्गः ।

रसायनी स्वादुरसा गुरुर्हिमा हिता दृशोः स्तन्यकरी शतावरी ।
बलप्रदा मारुतपित्तरक्तरुकृशानुसादश्वयथुव्यथाहरी ॥ ९५ ॥
स्निग्धा हिमा समधुरा स्वरदाऽतिवृष्या मूत्रप्रदा गुरुरतीव रसायनी च ।
पित्तास्रमारुतविदाहरुजो विदारीस्तन्या विदारयति दाररतिं ददाति ॥९६॥

पौष्टिक-वर्ग ।

शतावरी-रसायन, बलकारक, रस में स्वादु, गुरु, शीतल, स्तन्य, नेत्रों को हितकर, वायु, पित्त, रक्तपित्त, अग्निमांद्य तथा शोथ को हरनेवाली है ॥ ९५ ॥

विदारीकंद, स्निग्ध, शीतल, कुछ मधुर, स्वर्य, अत्यंत वृष्य, मूत्र-जनन, भारी, एवं उत्तम रसायन है। पित्त, रक्तविकार, वायु और दाह का विदारण करता है तथा वाजीकर है। (क्षयातंत्र में विदारीकंद उत्तम लाभ देता है।) ॥ ९६ ॥

१—अस्य कर्तव्यताविधिश्चिकित्सागुच्छेऽनुसंधेयः। २—अञ्जनेन। ३—म्रक्षणेन। ४—वस्तिविधया। इति हरीतक्यादिवर्गः। ५—पुष्ट्यर्थमवश्योपादेयानि सुखग्रहणार्थं कानिचिद्द्रव्याणि पृथग्वर्गनिर्देशेन समुच्चिन्वन्ति। ६—विशिष्टरसजनकत्वेन जराहरीत्यर्थः। ७—वाराहीकन्दः, भूकूष्माण्डीकन्दो वा। ८—वाजीकरत्वात्।

पवमानबलासचर्मचित्रक्षयमाकर्षति वीर्यवृद्धिदात्री ।
बलदाऽतिरसायिनी कषाया हयगन्धा गदिता बुधैः सतिक्ता ॥ ९७ ॥
नारीषु वाजिनमिव प्रबलं मनुष्यं सद्यः करोति कुपितं पवनं पिनष्टि ।
श्लेष्माणमुत्क्षिपति पित्तभयं भिनत्ति प्रौढं बलं वितनुते कपिकच्छुबीजम् ९८
कषायतिक्तः कटुको रसायनः सरोऽनिलार्शःकफशोफमेहहा ।
बलाग्निशुक्रस्वरशान्तिकारकः प्रियो न केषामिह वृद्धदारकः ॥ ९९ ॥
मधुरा बलदा युवभावकरी गुदजानिलकोपहरी मुशली ।
उपभुज्यत एव हि येन सदा भुवि तेन परं सदृशो मुशली ॥ १०० ॥
इक्षुरस्तु मधुरस्तुहिनोऽम्लः स्निग्धपित्तलगुणो बहुवृष्यः ।
तिक्तको मरुदसृग्गदतर्षानाममप्यनिबलं विनिहन्ति ॥ १०१ ॥

अश्वगंधा, असगंध-वीर्यवर्धक, कषाय, तिक्त, बलकारक तथा उत्तम रसायन है। यह वात, कफ, श्वेत-कुष्ठ तथा क्षय का नाश करती है। (औषधार्थ इसके मूल का उपयोग किया जाता है। असगंध अवसादक है। इसके मूल का चूर्ण दूध के साथ देने से बालकों के शरीर का अच्छा विकास होता है।) ॥ ९७ ॥

कौंच के बीज-यह उत्तम वाजीकरण है। कुपित वात को पीस डालता है। कफ को बाहर निकाल फेंक देता है। पित्त-भय का भेदन करता है एवं परम बल-कारक है। (इसे आत्मगुप्ता भी कहते हैं। चरक (सू. ४ । ८) के बल्य-वर्ग में इसका वर्णन ऋषभी शब्द से किया गया है—कौंच के बीज आर्तव जनन तथा बल्य हैं। प्रदर, कष्टार्तव तथा आर्तव की अनियमितता में इसका उपयोग होता है।) ॥ ९८ ॥

वृद्धदारक (विधारा)—कषाय, तिक्त, कटु, सारक तथा रसायन है। वात अर्श, कफ, शोथ, प्रमेह का नाश करता है। बल, अग्नि, शुक्र, तेज तथा स्वर को उत्तम करने वाला वृद्धदारक किसे प्रिय नहीं है? ॥ ९९ ॥

मुशली-जो व्यक्ति सतत मुसली का सेवन करता है-उसके समान, भूतल पर मुशली (बलराम) ही है। मुसली मधुर, युवावस्था देनेवाली, गुद-रोग तथा वातकी नाशक है ॥ १०० ॥

इक्षु, तालिमखाना-मधुर, शीतल, अम्ल, स्निग्ध, अत्यंत वृष्य, पित्तल-गुण-युक्त तथा तिक्त है। यह वात, रक्तदोष, तृषा तथा प्रवृद्ध आमवात को नष्ट करता है। (कोकिलाक्ष के बीज, मूल, पत्र तथा पचांग के क्षार का उपयोग होता है। यह शुक्र शोधक तथा अश्मरीघ्न है। यह संतर्पण औषधियों में उत्तम है। इसके बीज कामोत्तेजक कहे गये हैं। मूल का क्वाथ सुजाक तथा बस्तिशोथ में देते हैं।) ॥ १०१ ॥

१-पवमानो वायु "पवमान प्रभञ्जन" इति कोशात्। २-"चर्मचित्रं श्वेतकुष्ठं" इति शब्दार्थचिन्तामणि। ३-अश्वगन्धा। ४-सा च श्वेतकृष्णभेदाद् द्विविधकन्दा। ५-बलराम। ६-'तालमखाना' इति प्रसिद्ध। ७-अनामशब्देन आमवात परामृश्यते।

क्षयज्वरश्वाससमीरकामलातृडस्रपित्तानि निहन्ति शीतला ।
अलं बलं यच्छति वंशलोचना नृणां नवीनेव कुरङ्गलोचना ॥ १०२ ॥
त्वक्क्षीरी[1] स्वादुशिशिरा हृद्या रुधिरशोधिनी ।
पित्ततापप्रशमनी गुणतः शर्करासमा ॥ १०३ ॥
सालिमो मैसरः[2] कन्दः स्वादुरच्छच्छविर्गुरुः ।
वातपित्तहरो बल्यः संस्विन्नः[3] शुक्रलः परम् ॥ १०४ ॥
करोति रेतः परिपूरितं जनं निषेविता भञ्जयति प्रभञ्जनम् ।
बलासजित्पित्तकरी जराहरी प्रमेहपीडाप्रगुदस्ति तोदरिः[4] ॥ १०५ ॥
कसेलिका[5] मेदुरसूक्ष्मवल्कप्रभेदतोऽत्र द्विविधा प्रदिष्टा ।
कयाऽपि[6] युक्त्या नियमेन भुक्ता स्त्रीणां पुनर्यौवनमादधाति ॥ १०६ ॥

इति पौष्टिकवर्गः ॥ २ ॥

वंशलोचना–नवयौवना कुरंगलोचना के समान मनुष्यों को पर्याप्त बल देती है। यह शीतल है–क्षय, ज्वर, श्वास, वात, कामला, तृषा, रक्तदोष तथा पित्त का नाश करती है ॥ १०२ ॥

त्वक्क्षीरी, तवाखीर-मधुर, शीतल, हृद्य, रक्त-शोधक, पित्त और दाह शामक तथा गुणमें शर्करा के समान है ॥ १०३ ॥

सालम मिश्र-देश में उत्पन्न होने वाला कंदविशेष है। यह भारी, स्वच्छ वर्ण-वाला, स्वादु, वात-पित्त-नाशक एवं बल्य है। क्षारादि द्रव्योंद्वारा खिन्न करके इसका उपयोग करने से यह शुक्र की अत्यंत वृद्धि करता है। (सालम-मिश्री मस्तिष्क तथा नाडियों को उत्तेजन देता है। यह उत्तम वाजीकर तथा स्तंभन द्रव्य है। पचन नलिका के दाहयुक्त-रोगों में हितकर है। अतिअभ्यास, अतिमैथुन तथा प्रसवोत्तर कालीन दुर्बलता में अथवा थकावट में यह अपना गुण दिखाता है। इसके चूर्ण को १॥ या २ माशा भर मात्रा में, बकरी या गाय के मधुर दूध के साथ लेना चाहिये।) ॥१०४॥

तोदरी का सेवन करने वाले मनुष्य का शुक्र प्रचुर मात्रा में वढता है। यह वात-नाशक तथा पित्तकारक है, वृद्धावस्था को दूर करती है। कफ तथा प्रमेह में हितकर एवं वेदना शामक है। (तोदरी श्वेत, रक्त तथा पीतवर्ण के भेद से तीन प्रकार की होती है। औषधार्थ इसके बीजों का उपयोग होता है। यह शुक्र को गाढा करती है।) ॥ १०५ ॥

कसेलिका–स्थूल एवं सूक्ष्म छाल के भेद से दो प्रकार की कही गयी है। इसका पाक अथवा मोदक बनाकर नियम-पूर्वक सेवन करने से स्त्रियों को पुनः यौवन प्राप्त होता है ॥ १०६ ॥

पौष्टिक-वर्ग समाप्त ॥ २ ॥

१–'तवाखीर' इति ख्याता। २–मिसरदेशोद्भवः। ३–क्षारयोगादियुक्त्या। ४–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा बीजरूपा श्वेतारुणभेदाद् द्विविधा च। ५–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा। ६–पाकमोदकादिस्वरूपया।

अथ सुगन्धिवर्गः।

कर्पूरो' लघुलेखनोऽथ मधुरो वृष्यो नमस्यो गुणै-
श्चक्षुष्यः क्षिपति प्रदाहजनुषा पूरं सुदूरं रुजाम्।
वैरस्यं विधुनोति कर्षति तृषं मथ्नाति मेदोगदं
पित्तश्लेष्मविषं विदारयति स स्वसौरभ्यतः श्लाघ्यते ॥ १०७ ॥
कर्पूरमर्धस्फटिकासहाय समुद्गके ताम्रमये निरुद्धम्।
निपक्वमन्तः कृशरं प्रमाणाद्विवर्धते क्वापि मया श्रुतं भो ॥ १०८ ॥
इन्दुं न्यस्य शरावे तदुपरि संमुद्य करकमधरास्यम्।
दीपाग्नौ खलु दत्ते सिध्यत्युड्डीय हीररुचिरिन्दुः ॥ १०९ ॥

सुगन्धित द्रव्य वर्ग।

कर्पूर अपने गुणों के कारण वन्दनीय एवं उत्तम सुगंध के कारण प्रशंसनीय है। यह लघु, लेखन, मधुर, वृष्य, चक्षुष्य, पित्त, श्लेष्म तथा विष को दूर करता है। दाह से उत्पन्न रोगों को बहुत दूर फेंक देता है। मुख के वैरस्य को मिटाता है, तृषा का शमन करनेवाला तथा मेदो-रोग का मन्थन करता है। (कपूर अल्पमात्रा में वाजीकर किंतु अधिक मात्रा में कामावसादक है। औषधीय मात्रा से अधिकमात्रा में कपूर दाह-जनक तथा मादक-विष है। उष्णता अथवा अन्य कारणों से उत्पन्न हृदय की विकृति में कपूर देने से लाभ होता है—इसी कारण कपूर को हृदय का रक्षक कहा गया है। अपक्व कपूर, पक्व-कपूर की अपेक्षा अधिक गुणयुक्त कहा गया है।) ॥१०७॥

कर्पूर तथा इससे प्रमाण में अर्धभाग जितनी स्फटि इन दोनों को मिला कर एक ताम्र की डिबिया में संपुटित कर दें, इस डिबिया को खिचड़ी में रख कर पकाने से कर्पूर अपने प्रमाण से अधिक हो जाता है। यह मैंने कहीं भी सुना है ॥ १०८ ॥

भीमसेनी कपूर बनाने की विधि-कपूर को शराव में रख कर, उस पर मिट्टी के करवे को औंधा ढककर दोनों के संधि-भाग को सुदृढ-संपुटित कर दें।

१-अथ पौष्टिकेषु प्रयोगेषु कर्पूरादीनां प्रायो नियतत्वात् सुगन्धिवर्गारम्भः। २-"कर्पूरमस्त्रियाम्" इत्यनुशासनात् पुल्लिङ्गोऽपि। ३-"भेषजस्नेहलवणगन्धधान्यगुडादिषु। पण्येषु प्रक्षिपन् हीनं पणान् दाप्यस्तु षोडश।" इति स्मृत्युक्तदण्डयोग्यैः साहसिकैरधिकलाभाय क्रियमाणप्रकारस्य प्रदर्शनं भिषजामवधानेन प्रवर्तनार्थम्। ४-'करवा' इति लोकप्रसिद्धमुत्तानविशेषम्। "करकांश्च हिरण्मयान्" इति। वाल्मीकिः। ५-अष्टमांशं किंचिदधिको वा सिध्यति। स च लोके "भीमसेनी कपूर बरास" इति। योगरत्नाकरेऽपि—
"सुधांशोर्वेदभागाः स्युरेलाभागद्वयं तथा। चन्दनं चाब्धिफेनं च बीजं कतकसंभवम् ॥
रसाञ्जनं भद्रमुस्तं प्रत्येकं कर्षसंमितम्। सर्वं दुग्धे विमर्द्याथ पिण्डं गोधूमपिष्टवत् ॥
कृत्वा पात्रे निधायाथ पिधेत् पात्रं तथोपरि। अथ प्रज्वालयेद्दीपं वर्त्याऽङ्गुष्ठसमानया ॥

त्रुटिशीतभूतकेशीप्रभृति[2] नियोज्यं गुरूक्तमार्गेण ।
उपयुक्तमत्र यन्त्रावरणमसकृदार्द्रवस्त्रखण्डेन ॥ ११० ॥

मेषीपयोभिर्मसृणीकृतस्य विधोर्विधेया गुलिका सरन्ध्रा ।
माला तदीया शिशिरा मनोज्ञा गले ललन्ती दवथुं निहन्ति ॥ १११ ॥

इसके नीचे तिल तैल के दीपक की तीन घंटे तक अग्नि दें, ऊपर के करवे में हीरक मणि-तुल्य स्वच्छ द्रव्य लग जायेगा। यही सिद्ध भीमसेनी कपूर है। इसे बरास भी कहते हैं ॥ १०९ ॥

उपरोक्त शराव में कपूर के साथ इतने द्रव्य और मिला देवें; स्थूल तथा छोटी दोनों प्रकारकी इलायची, जटामांसी, चंदन, उशीर, वांशी, कपूरकाचरी, तुत्थ, कस्तूरी, केसर, अंबर, शीतल मिर्च, टंकण, सौरा, शिलारस, मुरा, शिरीष, पिप्पली, हरिद्रा, केतकी, गुलाब, स्फटी, मिश्री, शिलाजित, मुस्ता, लताकस्तूरी, लविंग, अगुरु, मुलहठी, त्वक्, जायफल, चम्पा, नख, शल्लकीसार, कंकोल, प्रियंगु, दूर्वा, तांबूल, तुलसी, कदली-स्तंभ-रस और गोदुग्ध। शराव संपुटवाले उपरी घट पर तीन चार तह किया हुआ आर्द्र वस्त्र पुनः पुनः रखते रहें। दीपक की अग्नि तीन घंटे से अधिक नहीं देनी चाहिये; अधिक अग्नि लगने से घट लग्न द्रव्य पुनः नीचे गिर जाता है। अतः तीन घंटे के उपरांत यंत्र को नीचे उतार कर, ऊपरी घट-संलग्न कपूर निकाल लेना चाहिये। शराव में स्थित कपूर यदि संपूर्ण उडकर ऊपरी घट में जमा नहीं हुआ हो तो उसे पुनः उडा लेना चाहिये) ॥ ११० ॥

भेड के दूध में कपूर को पीसकर मणके जैसी छोटी गोल-गुटिकायें बना लें, इनमें छिद्र करके-तथा सूत्र में पिरोकर माला बनालें। सौंदर्य-प्रसाधन रूप से गले में धारण की गई यह माला शीतलता देती एवं दाह का शमन करती है। भेड के दूध में पीसने से कपूर उडता नहीं है ॥ १११ ॥

एवं प्रहरपर्यन्तं वह्निं कुर्याच्च युक्तितः । पात्रस्योपरिभागं तु शीतलं रक्षयेद्बुधः ॥
सदाऽऽर्द्रचैलखण्डेन शीतलेन च वारिणा । स्वाङ्गशीतं ततो ज्ञात्वा पश्चात् कर्पूरमाहरेत् ॥
स्फटिकाकारमत्यच्छं श्वेतं हीरमणिप्रभाम् । भीमसेनाख्यकर्पूरमौषधेषु प्रयोजयेत् ॥" इति ।
केचित् पुनः—"पक्वात् कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम् ।" इति वदन्ति ।

१—त्रुटिः स्थूला सूक्ष्मा च द्विविधाऽत्र विवक्षिता । २—"वांशी गन्धसठी तुत्थं कस्तूरीकुंकुमाम्बरे । कवावा टङ्कणं चण्डी (क) सौरकं शिह्लकं मुरा । शिरीषं पिप्पली नक्तं केतकी तरुणी स्फटी । सिताकेसरशैलेयोशीरमुस्तकपाणिजम् (ख) ॥ लवङ्गागुरुयष्टी-त्वग्जातीकोषं सचम्पकम् । पत्रिका (ग) शल्लकीसारः कङ्कोलं च प्रियङ्गुका ॥ दूर्वाताम्बूल-तुलसीरम्भावारि पयो गवाम् । एतान् कर्पूरसंस्कारे यथालाभं प्रयोजयेत् ॥" इति—प्रभृतिशब्दार्थः । (क) लताकस्तूरी । (ख) नखम् । (ग) 'पनडी' इति लोके ।

कस्तूरिका परितनोति दधाति हन्ति
मुष्णाति नाशयति शोषयति क्षिणोति।
शुक्रं कटुत्वमनिलं सकफं विषार्तिं
वान्तिं विशोषमपि शीतभरं क्रमेण ॥ ११२ ॥

अम्बर नाम किमपि गन्धद्रव्यं समीरितम्।
शैत्यजित् पित्तलं हृद्यं ग्रहघ्नं चपलासखम् ॥ ११३ ॥

कस्तूरी—शुक्र को बढाती है-कटुता देती है, वातको कफ सहित नष्ट करती है। विषपीडा को दूर करती है, वमन को बन्द करती है, शोष का शोषण करती तथा शीत-भार को कम करती है। (असली कस्तूरी की परीक्षा-जो कस्तूरी, पिंजर वर्ण युक्त केतकी पुष्प की सी सुगन्ध-वाली, स्वाद में तिक्त अथवा कटु, वजन में हल्की, मसलने से चिकनाहट देने वाली, दग्ध किये जाने पर भी न जरने वाली, अग्नि पर डालने से चिमचिम करनेवाली-अथवा मानो चर्म जल रहा हो ऐसी गंध देनेवाली हो, वह असली है। परीक्षण की दूसरी विधि—कस्तूरी को हथेली में रख कर उसमें थोडे जलबिंदु डाले, यदि कुछ समय पीछे वह जल आरक्तता लिये पीले रंग का हो जाये तो समझना यह कस्तूरी कृत्रिम है। 'ईषत् क्षारानुसागन्ध्या दग्धा याति न भस्मताम्। पीता केतक गंधा च लघु स्निग्धा मृगोत्तमा'।) ॥ ११२ ॥

अंबर एक सुगंधित द्रव्य-विशेष का नाम है। पिप्पली-चूर्ण के साथ यह शीत को जीतता है—पित्तल एवं हृद्य है। ग्रहों के अनिष्ट को यह दूर करता है। (यावन निघण्टु में अंबर के विषय में यह वर्णन है-'द्वीपान्तरीयस्य वृषस्य फेनो रोमन्थनो ह्यंबरनामधेय। सारभ्यमपत्रतृणाशनाय कस्तूरिकातुल्यगुणाकर स्यात्।') ॥ ११३ ॥

१—परीक्षणमेतदीयं यथा—

"या गन्धं केतकीनां वहति समधिकं वर्णेन पिंजराभा
स्वादे तिक्ता कटुर्वा परिलघु तुलिता मर्दिता चिक्कणा स्यात्।
भस्म च नैति दग्धा चिमिचिमि कुरुते चर्मगन्धा हुताशे
सा शुद्धा शोभनीया वरमृगतनुजा राजयोग्या प्रदिष्टा ॥"

अन्यदपि—

"करतलजलमध्ये स्थापयित्वा मद्बिन्दुं पुनरपि तदवश्यं चिन्तनीयं मुहूर्तम्।
भवति यदि सरक्तं सज्जलं पीतवर्णं न भवति मृगनाभिः कृत्रिमोऽसौ विकारः ॥"
"ईषत्क्षारानुसौगन्ध्या दग्धा याति न भस्मताम्।
पीता केतकगन्धा च लघु स्निग्धा मृगोत्तमा ॥" इत्यपि कथितम्।

२—इदं च द्वीपान्तरीयवृषविशेषफेनरूपम्। तथा चोक्तं यावने निघण्टुविशेषे—

"द्वीपान्तरीयस्य वृषस्य फेनो रोमन्थजो ह्यम्बरनामधेयः।
सारभ्यसपत्रतृणाशनाय कस्तूरिकातुल्यगुणाकरः स्यात् ॥" इति।

लुनाति[1] मथ्नाति रुणद्धि हन्ति ददाति चोत्कृन्तति कुङ्कुमाख्यम् ।
व्यङ्गं त्रिदोषं वमनं व्रणौघं कान्तिं रुजां मस्तकजां प्रसह्य ॥ ११४ ॥

विषक्लमश्लेष्मविकारभञ्जनं विदाहपित्तास्रतृषादिगञ्जनम् ।
सतिक्तशीतं लघु चित्तरञ्जनं सुगन्धि वृष्यं स्मरबोधि चन्दनम् ॥ ११५॥

[3]अगुरु [4]नगुरु वातश्लेष्मशीतेषु शस्तं
कटुरसमतिहृद्यं पित्तलं तिक्ततीक्ष्णम् ।
श्रवणनयनरुक्त्वग्दोषरोषप्रमोषि
प्रवरमगुरु नीरे मज्जनं यत् करोति ॥ ११६ ॥

पद्मकं शिशिरतिक्तकषायं वातलं वमिहरं लघु रुच्यम् ।
दाहकुष्ठकफपित्ततृडस्रस्फोटरुग्व्रणविसर्पविनाशि ॥ ११७ ॥

केसर–व्यङ्ग को काटता है, त्रिदोष का मंथन करता है, वमन को रोकता है, व्रण-समूह को हटाता है, कान्ति को बढाता है, शीर्षवेदना को हठात् नष्ट कर देता है ॥ ११४ ॥

चंदन–विष, क्लम तथा कफ के विकारों को तोडनेवाला एवं विदाह, पित्त, रक्त-विकार तथा तृषा आदि को दूर करता है । तिक्त, शीतल तथा लघु है । चित्तको प्रसन्न करने वाला, वृष्य, सुगंधित तथा कामोद्बोधक है ॥ ११५ ॥

अगुरु–गुरु नहीं है, यह वात, कफ तथा शीत-जन्य विकारों मे प्रशस्त, रस में कटु, अत्यंत हृद्य, पित्तकारक, तिक्त तथा तीक्ष्ण है । यह कर्ण, नेत्र तथा त्वचा के उग्र विकारों का नाश करता है । जो अगुरु जल में न डूबे वही उत्तम है–और ऐसे ही अगुरु को औषधि-व्यवहार में लेना चाहिये ॥ ११६ ॥

पद्मक-शीतल, तिक्त, कषाय, वातकर, वमि में हितकर, लघु, रुचिकारक तथा दाह, कुष्ठ, कफ, पित्त, तृषा, रक्त विकार, विस्फोट, व्रण और वीसर्प का नाश करने वाला है । (पद्माक की नयी लकडी ही काम में लेनी चाहिये । इसकी छाल में एक विशेष प्रकार का विषैला सत्त्व मिलता है । स्तंभन तथा कटु पौष्टिक गुण इसकी लकडी में है । किंतु वेदना स्थापन गुण इसकी छाल में ही उपलब्ध होता है । आमाशय के क्षत में इसका उपयोग किया जाता है । हृदय पर मेद बढ जानेपर एक प्रकारकी कास उठती है, इस में यह गुण कारक है । पद्माख का क्वाथ करने से इसका सत्त्व उड जाता है । अतः गुनगुने पानी में इसका फांट बनाकर देना चाहिये । पद्माख को जल में घिस कर लेप करने से सूखी खाज में लाभ होता है ।) ॥ ११७ ॥

१–अत्रापि क्रमेणान्वयः । २–मुखच्छायाम् । ३–"काकतुण्डाकृतिः स्निग्धो गुरु, श्चैवोत्तमोऽगुरुः ।" इति परीक्षा । "अगुरुः पुंस्यपि" इत्यमरटीका । ४–लघु इत्यर्थः ।

स्यात्तिक्तं ग्राहुशीरं लघु हिममधुरं छर्दितृष्णास्रकृच्छ्रे
मांसी[1] शीता कषाया द्युतिमतिबलदा दोषवीसर्पकुष्ठे ।
शैलेयं[2] शीतहृद्यं कफदवथुविषास्राश्मरीकुष्ठकष्टे
मुस्ता संग्रहविद्धा कृमिकफपवनारोचतृष्णाज्वरास्रे ॥ ११८ ॥

कङ्कोलमुष्णं लघु तीक्ष्णतिक्तं रुच्यं मनोज्ञं श्वसनप्रहारि ।
कामप्रदं हन्ति बलासवेगं हृद्रोगदौर्गन्ध्यमरुद्विदारि ॥ ११९ ॥

हिक्कामकण्डुकफमारुतरक्तशोथ-
श्वासप्रमेहगदपीनसरुक्षु चारु ।
तन्द्राविबन्धशमनो मथनो ज्वरस्य
स्निग्धोष्णतिक्तकटुकं किल देवदारु ॥ १२० ॥

जातीफलं[3] कटुकतिक्तलघूष्णतीक्ष्ण-
स्वर्यप्रदीपनसुगन्धिमनोज्ञरुच्यम् ।
कुर्यात् तृषाविषवमिक्रिमिशोषकास-
श्वासार्तिमारुतकफानभिधावशेषान्[4] ॥ १२१ ॥

उशीर–तिक्त, लघु, शीतल तथा मधुर है। यह वमन, तृषा, रक्तपित्त तथा मूत्रकृच्छ्र में हितावह है। जटामासी शीतल, कषाय तथा बल्य है। यह शरीर के तेज को तथा मति को बढानेवाली, त्रिदोष नाशक, वीसर्प तथा कुष्ठ को शमन करनेवाली है। शैलेय, छारछरीला शिलापुष्प शीतल तथा हृद्य है। कफ, दाह, विष, रक्त, पित्त, अश्मरी तथा कुष्ठ को दूर करता है। मुस्ता, नागरमोथा-मल को बाधता है। कृमि, कफ, वात, अरुचि, तृष्णा, ज्वर एवं रक्तपित्त-विकार में उपकारक है ॥ ११८ ॥

ककोल–उष्ण, लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, रुचिकर, मन को प्रिय, श्वासहर, कामोत्तेजक, तथा कफ, हृद्रोग, दुर्गंध और वात का नाशक है ॥ ११९ ॥

देवदारु–स्निग्ध, उष्ण, तिक्त तथा कटु है। हिक्का, आम, खुजली, वात, रक्त-विकार, शोथ, श्वास, तथा प्रमेह में उत्तम लाभ देता है। तन्द्रा तथा विबन्ध का शमन और ज्वर का मथन करता है। (इसका सार, काष्ठ तथा काष्ठ को जला कर निकाला हुआ तैल, औषधार्थ प्रयुक्त होते हैं। देवदारु का तैल तिक्त, कटु, कषाय, दुष्टव्रण शोधक, कृमि, कुष्ठ तथा वात का नाशक है। जीर्ण त्वचा के विकारों में इसका तैल खाने तथा लगाने से लाभ होता है। ज्वर में इसके प्रयोग से स्वेद आता तथा मूत्र का प्रमाण बढता है। जीर्ण आमवात में यह उपकारक है।) ॥ १२० ॥

जातीफल, जायफल कटु, तिक्त, लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, स्वर को उत्तम करनेवाला, मन को आह्लादक, सुगन्धित, रुचिकर तथा दीपन है। यह तृषा, विष, वमन, कृमि, शोष, कास, श्वास, वात, एवं कफ का संपूर्ण नाश कर देता है ॥ १२१ ॥

१–मासी पिङ्गलजटाकृतिरिति । २–शिलापुष्पं 'छारछरीला' इति लोके ख्यातम् । ३–"जातिफलं सशब्दं च स्निग्धं गुरु च शस्यते" । ४–नाममात्रावशेषान् ।

जाविन्त्रिका लघु स्वाद्वी कटूष्णा रुचिवर्णदा ।
कासश्वासक्रिमिवमिनाशिनी सुरभिः सरा ॥ १२२ ॥

हिक्काशूलश्लेष्मपित्तास्रतृष्णाच्छर्द्याध्मानश्वासकासक्षयघ्नम् ।
रुच्यं नेत्र्यं स्वल्पशीतं लवङ्गं तिक्तोदग्रं पाचनं दीपनं स्यात् ॥ १२३ ॥

कबाबचीनी[2] शिशिरा प्रमेहप्रहारिणी किंचिदिवौष्ण्यदाऽपि ।
संग्राहिणी तूर्णवितीर्णमूत्रा लवङ्गभद्रत्रिपुटावदुक्ता ॥ १२४ ॥

एला[3] कासश्वासहृल्लासवाते पित्तास्रार्शोमूत्रकृच्छ्रेषु शस्ता ।
शीता लघ्वी वक्त्रसौगन्ध्यकर्त्री हृद्या वृष्या पाटवं च व्यनक्ति ॥ १२५ ॥

त्वक्[4] स्यादुष्णा तिक्ता स्वाद्वी कट्वी लघ्वी रूक्षा रुच्या ।
जन्तावामे वातव्याधौ श्लेष्मोद्रेके पाण्डौ पूज्या ॥ १२६ ॥

जावित्री - हलकी, स्वादु, कटु, उष्ण तथा रुचिकारक है । वर्णको उत्तम करती है। कास, श्वास, कृमि एवं वमन का नाश करने वाली, सुगंधित तथा सारक है ॥ १२२ ॥

लवङ्ग, (लौंग)—हिक्का, शूल, कफ, पित्त, रक्तदोष, तृषा, वमन, आध्मान, श्वास, कास तथा क्षय को दूर करती है । रुचिकर, नेत्र को हितकर, कुछ शीतल, अत्यंत तिक्त तथा दीपन-पाचन है ॥ १२३ ॥

कबाबचीनी, शीतल मिर्च—शीतल तथा कुछ उष्ण है, प्रमेह को हरती है । यह संग्राहक, शीघ्र मूत्र लानेवाली, लौंग तथा इलायची के समान गुणवाली है । (इसके बीज और तैल उपयोग में आते हैं। बीज को चबाने से एक विशेष प्रकार की मनोज्ञ, तीक्ष्ण गंध आती है । स्वाद चरपरा होता है । और जीभ पर कुछ ठंडक प्रतीत होने लगती है । जीर्ण सुजाक और अर्श पर यह उत्तम औषधि है । मुखपाक में कबाबचीनी लाभ करती है । यूनानी मत में यह ध्वजोच्छ्राय-जनक तथा वातानुलोमक है । इसके प्रयोग से दांत तथा मसूढे मजबूत होते हैं ।) कंकोल एवं कबाबचीनी को बहुत से वैद्य एक ही मानते हैं। वस्तुतः यह दोनों भिन्न भिन्न औषधीय द्रव्य हैं ॥ १२४ ॥

एला (इलायची)—कास, श्वास, हृल्लास, वात, पित्त तथा मूत्रकृच्छ्र में प्रशस्त है। शीतल, लघु, मुखको सुगन्धित करने वाली, हृद्य तथा वृष्य है । स्वास्थ्य की सुरक्षा करती है । (पाटव का अर्थ स्वास्थ्य भी होता है ।) (पचन नलिका की शिथिलता तथा प्रदाह-प्रधान विकारों में एला प्रचुर लाभ दिखाती है। अंत्र-रस कम उत्पन्न होता हो-तथा पित्त-स्राव उचित मात्रा में नहीं होता हो तब इलायची देते हैं। नाडीशूल में - २-३ ग्रेन कुनैन के साथ इलायची का प्रयोग उपकारक है ।) ॥ १२५ ॥

त्वक्, (दालचीनी)—स्वादु, उष्ण, तिक्त, कटु, लघु, रूक्ष तथा रुच्य है । क्रिमि, आम और वात - व्याधि में, श्लेष्मा की अधिकता में तथा पांडु - रोग में पूज्य है ॥ १२६ ॥

१—जातिपत्री । २—अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा कृष्णमरिचाकृतिः । 'शीतलमरिच' इत्यपि कुत्रचिदुच्यते । ३—एला सूक्ष्मफला श्रेष्ठा । ४—'तज-दालचीनी' इति ख्याता ।

उष्णं तीक्ष्णं पिच्छिलं स्वादु पत्रमर्शोवातश्लेष्महृल्लासादि ।
उष्णं रूक्षं नागपुष्पं कषायं तृष्णाछर्दिश्लेष्मवातामनाशि ॥ १२७ ॥
एलापत्रत्वग्भिरुक्तं त्रिजातं चातुर्जातं नागपुष्पेण युक्तम् ।
रुच्यं रूक्षं तीक्ष्णमुष्णं बलासवातौ हन्यात्तद्द्वयं वह्निकारि ॥ १२८ ॥
हिमं ज्वलनदीप्तिदं रुचिकरं सरौक्ष्यं लघु
ज्वरातिसृतिनाशनं रुधिरपित्तविध्वंसनम् ।
कफव्रणरुजाहरं पृथुलदाहवेगापहं
विपाचनमवेहि तृड्व्यथितपालकं बालकम् ॥ १२९ ॥
कटूष्णं कर्चूरं कफकसनकुष्ठश्वसनक-
व्रणार्शोगुल्मोग्रक्रिमिपवनमान्द्यानि जयति ।
मरुत्कासश्वासारुचिकफगदामाग्निमृदुता-
क्षयान् गुल्मं दूरे क्षिपति लघु तालीसकमिदम् ॥ १३० ॥
गुच्छौघपुष्पं शिशिरो दृगङ्गदाहास्रपित्तक्षतनुत् सुगन्धि ।
तालादिदोषक्षपणो व्यनक्ति रागं मनोज्ञं करपाददत्तः ॥ १३१ ॥

पत्र, (तेजपात)-उष्ण, तीक्ष्ण, पिच्छिल तथा स्वादु है। अर्श, वात, कफ और हल्लास को दूर करता है। नागकेसर उष्ण, रूक्ष, तथा कषाय है। तृष्णा, वमन, कफ, वात तथा आव का विनाशक है ॥ १२७ ॥

त्रिजात-इलायची, तेजपत्र तथा तज इन तीनों के एकत्र-मिश्रण को त्रिजात कहते हैं। इसमें नागकेसर मिलाने से- यह चातुर्जात कहलाता है। यह दोनों ही रुचिकर, रूक्ष, तीक्ष्ण, तथा उष्ण हैं, कफ-वात नाशक तथा दीपन हैं ॥ १२८ ॥

बालक (सुगंध वाला)-शीतल, जठरानल-प्रदीपक, रुचिकर, कुछ रूक्ष, लघु, ज्वर तथा अतीसार नाशक, रक्त-पित्त-संहारक, कफ-पित्त शामक, अत्यंत दाह के वेग का निवारक, पाचक तथा तृषा से व्यथित का पालक है ॥ १२९ ॥

कर्चूर-कटु, उष्ण, कफ, कास, श्वास, कुष्ठ, व्रण, अर्श, असह्य गुल्म, क्रिमि, वात तथा अग्निमांद्य का नाशक है। तालीस-पत्र-वायु, कास, श्वास, अरुचि, कफ विकार, आव, मंदाग्नि, क्षय तथा गुल्म को मिटाता है और लघु है। (तालीसपत्र आक्षेप-निवारक है तथा अपस्मार में लाभ दिखाता है।) ॥ १३० ॥

गुच्छौघ-पुष्प (मेंहदी)-शीतल तथा नेत्र और अंग के दाह को शमन करती है। रक्तपित्त तथा व्रण को मिटाने वाली एवं सुगंध-युक्त है। अशुद्ध हरताल

१-तेजपत्रम्। २-तालीसपत्रम्। ३-'मेंहदी' इति नाम्ना लोके व्यवह्रियते।
किंच— "पालाशपीतं हि यदीयपत्रं पिष्टं पयःशावितमङ्गनाभिः ।
प्रलिप्यते पाटलपाणिपादे (क) म्लेच्छैस्तु पालिप्पलायनार्थम् ॥"
४-अशुद्धहरितालादिभक्षणजनितकुष्ठव्रणादिदोषशमन इत्यर्थः । (क) अत्र निमित्ते सप्तमी।

बलासवातग्रहवान्तिहिक्काशिरोर्त्तिशैथिल्यमयं[1] निमित्तम् ।
भेत्तुं क्षमः स्निग्धवलक्षतीक्ष्णो मया प्रयुक्तः खलु लोहवाणः[3] ॥ १३२ ॥

त्वच्यः कटुः किं च विशेषतीक्ष्णः पाने विलेपेऽपि हिमस्वभावः ।
पित्तं बलासं दरमप्युदीर्णं यूकां ज्वरं कुन्दरुकः[4] क्षिणोति ॥ १३३ ॥

कट्टीरसंज्ञको[5] गुन्द्रः संग्राही कटुको हिमः ।
रूमजो[6] मस्तकीगुन्द्रो[7] दशनस्थिरताकरः ॥ १३४ ॥

यस्य वृक्षस्य यो गुन्द्रः स प्रायस्तद्गुणागुणः ।
विशेषात् पुष्टिदो ग्राही गुरुरस्थिबलप्रदः ॥ १३५ ॥

रुन्धन् दोषगतिं जयन् स्वरगदं पामां क्षिपन् दूरतो
वह्निप्लुष्टरुजं हरञ्छिशिरतां तन्वन् गुरुत्वं दधत् ।

आदि के सेवन से उत्पन्न विकार को मिटाती है। हाथ एवं पावों में लगाने से अरुण-वर्ण अर्पण करनेवाली तथा चित्तकी आह्लादक है ॥ १३१ ॥

लोहवाण (कोडिया लोवान)-यह स्निग्ध, श्वेत तथा तीक्ष्ण लोहवाण कफ, वात-विकार, वमन, हिक्का, शिरोवेदना तथा स्वकर्म-जन्य उपस्थ के शैथिल्य का भेदन करने में साक्षात् वाण के समान है। यह अनुभूत प्रयोग है ॥ १३२ ॥

कुन्दरुक (शल्लकी-निर्यास), त्वचा को हितकर, कटु, सविशेष-तीक्ष्ण, पान तथा लेप में शीतल, पित्त, कफ, ज्वर, यूका तथा वेदना का शामक है। (यह शल्लकी-वृक्ष का गोंद है, वर्ण में श्वेत होता है। यह गन्धाविरोजा का ही एक भेद है, गुण भी दोनों के समान हैं।) ॥ १३३ ॥

कट्टीर-गुन्द्र (कतीरा गोंद), ग्राही, कटु तथा शीतल है। रूमी-मस्तकी गोंद, दांतों को स्थिर (मजबूत) करता है ॥ १३४ ॥

जिस वृक्ष का जो गोंद होता है वह प्रायः गुण-दोष में भी उसी वृक्ष के गुण-दोष के तुल्य होता है। विशेष करके संपूर्ण-प्रकार के गोंद पुष्टिकारक, ग्राही, भारी तथा अस्थियों को बल देने वाले कहे गये हैं ॥ १३५ ॥

राल-दोषों की गति को रुद्ध करती हुई, स्वरभंग पर विजय प्राप्त करती हुई, पामा को दूर फेंकती हुई, अग्नि से दग्ध की वेदना को हरती हुई, शीतलता देती हुई, गुरुता को लिये हुये शूल के भय को भेदती हुई, व्रण को अभिभूत करती, विसर्पादि

१–हस्तक्रियादिजनितमुपस्थशैथिल्यमिति । २–लक्ष्यं भेद्यमिति यावत् । "निमित्तादपराद्धेषो" इति माघः । ३–अयं निर्यासविशेषो यव(जावा)द्वीपभवो लोके 'कोडिया लोवान' इति प्रसिद्धो धूपादिप्वतीवोपयोगी । पद्यमत्र रत्नमालायाम् । ४–शल्लकीनिर्यासः । ५–'कतीरा गोंद' इति प्रसिद्धः । ६–रूमदेशोत्थः । ७–'मस्तकी गोंद' इति प्रसिद्धः पीतवर्णः ।

भिन्दञ्छूलभयं व्रणानभिभवञ्छिन्दन् विसर्पादिका-
त्रालो भाति समाचरन्नतिसृतौ शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १२६ ॥

इति सुगन्धिवर्गः ॥ ३ ॥

को छेदती तथा अतीसार को रुद्ध करती हुई शार्दूल-विक्रीडित का अनुसरण करती हैं। (ग्रंथकार ने 'शार्दूल-विक्रीडित' वृत्त में 'राल' के बहुविध गुण-धर्म का यह वर्णन किया है। शार्दूल-विक्रीडित का शब्दार्थ है 'सिंह-क्रीडा'। राल की गुण धर्म-मय क्रियाओं को वैद्य महाकवि श्रीकृष्णरामजी ने 'शार्दूलविक्रीडित' के समान बताते हुये-छंद का नामोल्लेख भी साथ ही साथ कर दिया है। यह पद्धति वाग्भट ने भी अपनायी है। यथा-हिंगूग्राविडङ्गुण्ठ्यजाजिविजयावाक्याभिधानामयैश्चूर्ण कुम्भनिकुम्भमूलसहितैर्भागोत्तर वर्धितैः । पीतं कोष्णजलेन कोष्ठजरुजो गुल्मोदराद्यानयं शार्दूलं प्रसभं प्रमथ्य हरति व्याधीन् मृगौघानिव'। यहां 'शार्दूलविक्रीडित' वृत्त में 'वृत्त का नाम' 'शार्दूल' भी उल्लिखित हुआ। इसे रचना-कौशल कहते हैं। अस्तु, शक्कर के साथ राल का चूर्ण आव तथा रक्तातिसार में उत्तम लाभ दिखाता है। उपजिह्वा के बढ़ने पर इसके चूर्ण का मर्दन उपकारक है।) ॥ १२६ ॥

सुगन्धि-वर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

अथ पुष्पवर्गः[3] ।

दाहोदन्यास्रविस्फोटविसर्पगरलादिषु ।
मृद्नाति मधुरं वर्ण्यं कमलं कम्[4]लं न हि ॥ १२७ ॥

पुष्प-वर्ग ।

कमल तृषा, दाह, रक्तपित्त, विस्फोट, विसर्प, गरल आदि में से किसे यथेच्छ नष्ट नहीं करता? यह मधुर है एवं वर्ण को उत्तम करता है। (श्वेत कमल को पुंडरीक, रक्त कमल को कोकनद या राजीव एवं नीलकमल को इन्दीवर कहते हैं। श्वेत की अपेक्षा रक्त एवं नीलकमल न्यून गुण वाले होते हैं। सूर्य-विकासी कमल के बीज को कमलगट्टा कहते हैं। रात्रिविकासी कमल को कुमुद कहते हैं। इसके फल-कोष में सरसों के समान आरक्त दाने होते हैं जो सूखने पर कृष्णवर्ण हो जाते हैं। इसके लड्डू हलके तथा शीघ्रपाची होते हैं। कमल पुष्पों की पखुडियों के बीच बीच पीताभ जीरे जैसा द्रव्य कमल-किंजल्क, केसर कहलाता है, एवं पीतवर्ण के धूलिकण कमल-रेणु रज कहे जाते हैं। फूलों के पूर्ण विकास काल में एक कोष की उत्पत्ति होती है

१-शालनिर्यास । २-सिंहचेष्टित छन्दोविशेषश्च । इति सुगन्धिवर्गः । ३-घ्राणेन्द्रियसतर्पकत्वेन पुष्पवर्गः सुगन्धिवर्गानन्तरं सदर्भ्यते । ४-कम् अलमिति च्छेदः क नाल मृद्नातीति योजना ।

लघुशिशिरगुणाऽथ शुक्रकर्त्री कटुकरसा रुचिरा त्रिदोषहर्त्री ।
पृथुतररुधिरातिसारहन्त्री बलमहसोः शत[1]पत्रिका सवित्री ॥ १३८ ॥

त[2]रुणी शिशिरा हृद्या शुक्रला स्रंसिनी मनाक् ।
त्रिदोषशमनी वर्ण्या दाहपित्तास्रनाशिनी ॥ १३९ ॥

जा[3]तीयुगं मस्तकनेत्रवक्त्ररदार्तिकुष्ठास्रविषेषु शस्तम् ।
यू[4]थीयुगं चापि तथैव किं तु व्रणं विशेषाद्विकलीकरोति ॥ १४० ॥

कफानिलासृग्विषजन्तुकृच्छ्रपित्तापदो गन्धफ[5]ली पिनष्टि ।
दन्त्यो विषश्वित्रकृमिव्यथाघ्नोऽनुष्णः कषायो हरिकेस[6]रोऽपि ॥ १४१ ॥

कषायलवणस्वादुर्नीपो रूक्षो हिमो गुरुः ।
बलासस्तन्यपवनप्रदो विष्टम्भकः सरः ॥ १४२ ॥

जिसमें वीज निकलते हैं। इन्ही कच्चे बीजों को कमलगट्टा कहते हैं। इसकी पेया से वमन, हिचकी तथा प्रदर बंद होता है। कमल की पंखुडियां हृदय संरक्षक तथा रक्त-संग्राहक है। रक्तार्श, अत्यार्तव और दाह में कमल-केसर, मिश्री तथा मक्खन के साथ देते हैं। गर्भिणी के गर्भाशय से रक्तस्राव में कमल के फांट से लाभ होता है। कमल के फूल, चंदन, रक्त-चंदन, खस, मुलहठी तथा नागरमोथा का क्वाथ मिश्री के साथ, पित्तज्वर की उत्तम औषधि है।) ॥ १३७ ॥

शत-पत्रिका (सेवन्ती गुलाब) लघु, शीतल, शुक्रल, रस में कटु, रुचिर, त्रिदोष-शामक तथा तीव्र-रक्तातिसार का नाशक है। बल तथा तेज को बढाता है ॥ १३८ ॥

तरुणी (गुलाब पुष्प) शीतल, हृद्य, शुक्रल, कुछ सारक, त्रिदोष शामक और वर्ण्य है तथा दाह, पित्त एवं रक्त दोष को दूर करता है ॥ १३९ ॥

जातीपुष्प (श्वेत तथा पीत चमेली और सोन चमेली दोनों ही) मस्तिष्क मुख, नेत्र तथा दांत की वेदना को मिटाता है। कोढ, रक्त-विकार तथा विषमें लाभ-दायी है। दोनों प्रकार की जूही-जुही तथा सोनजुही भी गुण में चमेली के समान ही हैं। विशेषतया व्रण में उपकारक हैं ॥ १४० ॥

गन्धफली (चम्पा पुष्प) कफ, वात, रक्तदोष, विष, कृमि, मूत्रकृच्छ्र तथा पित्त व्याधि को पीस डालता है। हरिकेसर (बकुल पुष्प) दन्त्य है, विष, श्वित्र तथा कृमि की व्यथा मिटाने वाला, अनुष्ण एवं कषाय है ॥ १४१ ॥

नीप (कदंब पुष्प) कषाय, क्षारयुक्त, स्वादु, रूक्ष, शीतल, तथा गुरु है। कफ तथा वातकर, विष्टंभी, सारक एवं स्तन्य है ॥ १४२ ॥

१–श्वेतपुष्पा तरुणी 'सेवन्ती गुलाव' इति प्रसिद्धा। २–लाक्षापुष्पा तरुणी 'गुलाव' नाम्ना लोकव्यवहृता। ३–श्वेतपीतपुष्पभेदात्। 'चमेली-सोनचमेली' इति प्रसिद्धम्। ४–इदमपि तथैव 'जुही-सोनजुही' इति मालाकारैराकार्यते। ५–चम्पक-कलिका। ६–बकुलः 'बोलसरी' इति प्रसिद्धः।

केतकैस्तिक्तकटुकलघुभावात् कफापहः ।
तिक्तोष्णामोदबहुला नेत्र्या काञ्चनकेतकी ॥ १४३ ॥
रक्तपित्तशिरोबाधाविषघ्नः प्रतिविष्णुकैः ।
माध्याह्निकैस्तु सग्राही कफहृद्वातपित्तहृत् ॥ १४४ ॥
हृद्या सग्राहिणी केश्या कफमारुतजिज्जपा ।
सुलभा पवनश्लेष्मकुष्ठकृच्छ्रास्रशूलनुत् ॥ १४५ ॥

केतक (केवडा) तिक्त, कटु, लघु और कफहर है। काचन केतकी तिक्त, उष्ण, अत्यत सुगधयुक्त तथा नेत्रों को हितकर है। (केवडे के मूल, पुष्प तथा फल व्यवहार में आते हैं। मूलक्षार १-२ माशे, पुष्प प्राय ५-१० तोले मात्रा में लेना चाहिये। केवडा घर्मकारक तथा आक्षेपनिवारक है। मूर्च्छा तथा भ्रम में इसका प्रयोग होता है। जीर्ण तथा नूतन शिरोवेदना में लाभदायी है। कर्णशूल अथवा पूतिकर्ण में इसके तैलबिंदु डालने से शाति मिलती है। केतकी के मूल को दूध के साथ पीस कर सेवन करने से गर्भस्राव की शका नहीं रहती। यह शीतवीर्य है। ज्ञानेन्द्रिय, हृदय एव मस्तिष्क को बल देता है। रक्त की तीक्ष्णता एव हृदय की धडकन में लाभदायी है।) ॥ १४३ ॥

प्रति-विष्णुक (मुचुकुन्द, क्षत्रवृक्ष)-रक्तदोष, शिरोवेदना तथा विष का नाश करता है। माध्याह्निक (दुपहरिया, बप्पोरियो)-ग्राही, कफनाशक तथा वात-पित्तनाशक है ॥ १४४ ॥

जपा (गुडहल)-हृद्य, ग्राही, केश्य, कफ-वात शामक है। सुलभा (तुलसी) वात, कफ, कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, रक्तदोष तथा शूल को दूर करती है। (गुडहल के पुष्प प्रयोग में आते हैं। पुष्प-कल्क १-२॥ तोला तक लिया जा सकता है। गुडहल के फूलों को कृष्ण-गाय के मूत्र में पीसकर लगाने से सिर की गज में लाभ होता है तथा बाल बढते हैं। जपा-पुष्प की १०-१२ कलिया दूध में पीस छान कर पीने से, तथा केवल दूध पीकर रहने से-प्रदर मिटता है-'कृष्णगवीमूत्रयुतैः पिष्टैरालेपितैर्जपाकुसुमैः ॥ शतमखलुप्त नश्यति भवन्ति केशाश्च तत्र घना' रा निघण्टु। 'कलिका क्षीरसपिष्टा जपाविटपजा पिबेत्। दश द्वादश वा, नारी प्रदरार्ता पयोऽशनी' -गदनिग्रह। तुलसी शीत-प्रधान रोगों में दी जाती है। ज्वर में इसका स्वरस काली मिर्च के चूर्ण के साथ, सर्वांग-वेदना एव सधिशोथ में अजवायन और सभालु के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। इसका स्वरस वमन बद करता तथा दस्त साफ लाता है। अश्मरीशूल, तथा बस्तिशोथ में इसके बीजका हिम दूध तथा शक्कर के साथ दिया जाता है।) ॥ १४५ ॥

१-क्रकचच्छदः 'केतकी, केवडा' इति ख्यातः । २-मुचुकुन्दः । ३-'दुपहर्‍यो', 'बप्पोरिओ' इति च ख्यातः । ४-सुकुमाराऽतिलोहितपुष्पा 'ओडल, जासूल' इति प्रसिद्धा । ५-तुलसी।

विषशूकप्रभृतिविषक्रिमिकुष्ठबलासवातजिन्मरुकः[1] ।
ग्रहकुष्ठरक्तकण्डूविषत्रिदोषापहो दमनः[2] ॥ १४६ ॥
सेवन्तीतरुणीसहस्रमिहिरव्याघ्रीबलाधातकी-
पीकादण्डसुवर्णशाल्मलिजपाफूकाम्रबब्बूलजाः[3] ।
स्वस्वप्रत्ययगैर्विशिष्य[4] सुमनःकन्दा अमन्दा गुणैः
किंतूच्चै रुचिसौमनस्यमहिताः सौम्याः सितासङ्गतः ॥ १४७ ॥
प्रसूनकन्दविषये[5] पुष्पेभ्यस्त्रिगुणा सिता ।
वर्षं सूर्यातपः सिद्धौ त्रुटिक्षेप इति स्थितिः ॥ १४८ ॥

मरुक (मरवा) विष-शूक आदि विषाक्त जन्तुओं के विषका, कृमि, कुष्ठ, कफ तथा वात का नाश कर देता है। दमन (दमनक) ग्रह, कुष्ठ, रक्तदोष तथा त्रिदोष को दूर करता है ॥ १४६ ॥

सेवतीगुलाब, गुलाब, सूरजमुखी, आकडा, व्याघ्री, बला, धाय, सेहुण्ड, अमलतास, सेमल, गुडहल, अफीम, बबूल आदि के पुष्पों से तथा आम्र की मंजरी आदि से बनाये गये गुलकंद, अपने अपने पुष्पों के गुणों के समान ही गुणयुक्त होते हैं। किंतु, यदि इनमें मिश्री मिला दी जाये तो ये विशेष रुचिकर, सुगन्धयुक्त तथा गुणों में अधिक हो जाते हैं ॥ १४७ ॥

गुलकंद बनाने में पुष्प से तिगुनी मिश्री लेनी चाहिये। एकवर्षपर्यंत सूर्य-ताप में पकने से गुलकन्द तैयार-सिद्ध होता है। इस तरह सिद्ध हो जाने पर इलायची का चूर्ण इसमें डालना चाहिये ॥ १४८ ॥

१—'मरवा' इति प्रसिद्धः पर्णाशभेदः। २—दोनाप्रसादः। ३—सितया सह पुष्पकलिकादिम्रक्षणजातस्य 'गुलकन्द'नाम्ना यवनवैद्यैः प्रसिद्धीकृतस्य साधारणो गुणज्ञानोपायः; अत्र च सहस्रं 'गैन्दहजारा' इति प्रसिद्धम्। मिहिरोऽर्कः। इषीका 'तुलियाथोर,' दण्डः 'दण्डाथोर' इति। सुवर्णः कृतमालः। आफूकम् अफीमपुष्पम्। ४—स्वस्वोपादानगतैरित्यर्थः। ५—तत्साधनार्थं परिभाषेयम्। निघण्टुसारे त्वन्यथा परिभाष्यते यथा—

"पिष्ट्वादौ कलिका द्विघ्ने स्वादौ क्षिप्त्वा करैस्ततः।
घृष्ट्वा घृतेऽभ्रेऽहोरात्रैः खाब्धिसंख्यैः प्रजायते।
तत्तद्वृक्षगुणः कन्दो नूत्नः श्रेष्ठो गुणाधिकः।" इत्यादि

होलामहोत्सवे मुक्तकमुक्तावलौ वा श्रीगुरुभिर्देशभाषाबन्धेन मादकोऽपि सुमकन्दः स्वीयदेशभाषावृत्तेन वर्णितः। यथा—

"मिश्री लेकर वंशलोचन सही तामें मही डारिकै
भङ्गाको घृतदे गुलाबदल औ एला मिला दीजिये।
पीछे पात्रविषे पचीसदिन लों नीके जमा कीजिये
लीजे ये गुलकन्द फेर अगरो कीजे कलाकन्दतैं" इति।

गुलाबादिप्रसूनोत्थः स्नेहः कोऽप्यत्तरं[1] स्मृतः ।
सौरभप्रीणितघ्राणो यज्जातस्तद्गुणागुणः ॥ १४९ ॥

इति पुष्पवर्गः ॥ ४ ॥

गुलाब आदि पुष्पों में से निकाला गया स्निग्ध-द्रव्य-सार 'इत्र' कहलाता है। इत्र अपनी सुगन्ध से घ्राणेन्द्रिय को परितृप्त करनेवाला होता है। जिस पुष्प का जो 'इत्र' होता है, उसके गुण-धर्म उस पुष्प के तुल्य ही समझने चाहिये ॥ १४९ ॥

पुष्प-वर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

अथ फलवर्गः[2] ।

शिशिरमधुरा गुर्वी नेत्र्या सरा बहुबृंहिणी
ज्वरमरुदसृक्पित्तश्वासक्षयार्तितृषः क्षिपेत् ।
दवथुमदरुङ्मूर्च्छामूत्रापहोऽपि च गोस्तनी[3]
प्रविलसदसृक्पित्तोष्णाऽऽमा मताऽम्लरसाधिका ॥ १५० ॥

वमिमददवभ्रान्तिश्रान्तिज्वरास्रमरुत्तृषा-
रुचिसृतिमहामूर्च्छापित्तापहं मधुरं लघु ।
प्रकटयति कफेऽप्यौदासीन्यं हिमं बलशुक्रलं
परिणततरं बालं हीनं ततो वरदाडिमम्[4] ॥ १५१ ॥

फल-वर्ग ।

गोस्तनी (पक्व अंगूर) शीतल, मधुर, भारी, नेत्र्य, सारक तथा अत्यंत बृंहण है। ज्वर, वायु, रक्तविकार, पित्त, श्वास, क्षय तथा तृषा को मिटाती है। दाह, मद, मूर्छा एवं मूत्र कृच्छ्र को भी नष्ट करती है। अधिक अम्ल रस से युक्त एवं अपक्व अंगुर उष्ण तथा रक्त पित्त कारक है ॥ १५० ॥

परिपक्व दाडिम (अनार), वमन, मद, दाह, भ्रम, मानसिक तथा शारीरिक थकान, ज्वर, रक्त-विकार, वायु, तृषा, अतीसार, महामूर्छा और पित्त का नाश करने वाली, मधुर, रुचिकर, कफ से उदासीन, शीतल एवं बल और शुक्र की वर्धक है। कच्ची अनार में परिपक्वकी अपेक्षा न्यून गुण हैं ॥ १५१ ॥

१—अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धो न च केवलं प्रसूनोत्थ एव किं तु अम्बरोशीरपनडीचन्दनादिसुगन्धिद्रव्यसंयोगेनापि जायते । प्रायो गान्धिकापणेषु मिलति । २—पुष्पानन्तरमेव फलोत्पत्तिदर्शनात्तदनन्तरं फलसंग्रहः । ३—द्राक्षा मुनक्का । ४—वरमिति विशेषणात् साम्बुलं परिणतं सदुक्तगुणं, बालं सत्तत् परिणताद्धीनगुणमिति ।

वहति तुवरं बालं बद्धास्थ्यपि त्रिमलोदयं
परिणत[1]मसृक्शोफश्लेष्मातिपित्तलमीरितम् ।
मधुरममरुत्पित्तं स्निग्धं विपक्वतमं हिमं
तृषि सदवथौ पथ्यं त्वाम्रं रसः स्मरदः सरः ॥ १५२ ॥
अपित्तं खर्बूजं[2] विरचयति रेतो गुरु हिमं
मरुन्माथि स्वादु श्रमजिदतिसारं त्वरयति ।
समानं तर्बूजं[3] तदपरिणतं स्यादितरथा
कषायं संग्राहि प्रथितपवनं जाम्बवफलम् ॥ १५३ ॥
दशाङ्गुलस्य प्रतनूनि कृत्वा खण्डानि खण्डेन विमिश्रितानि ।
पित्तप्रतापक्षपणक्षमाणि कामं लिहन्तो धनिनोऽपि धन्याः ॥ १५४ ॥
विष्टम्भि सुस्वादु सरं समीरसमीरणं क्षुत्क्षपणं सुगन्धि ।
गुणौघवित्तं परिजित्य पित्तं मुदं किमूद[4]ञ्चति नामरूदम् ॥ १५५ ॥
बलासवीर्यपात्राणि दात्राणि दवसंपदाम् ।
प्रायशः स्वादुमात्राणि गण्डगात्रा[6]णि मन्महे ॥ १५६ ॥

कच्चा आम्र कषाय, कच्ची गुठलीवाला त्रिदोष कारक, पक्व किंतु खट्टा रक्तविकार, शोफ और कफ करनेवाला, पक्व मधुर, वात-पित्त नाशक तथा स्निग्ध होता है। अत्यंत परिपक्व आम्र शीतल तथा तृषा और दाह में पथ्य है। आम्र का मधुर रस सारक तथा कामोद्बोधक है ॥ १५२ ॥

खर्बूज पित्त न करने वाला (अर्थात् किंचित् पित्तकारक) शुक्र-वर्धक, भारी शीतल, स्वादु, वात-नाशक, श्रमहारक तथा सारक है। तर्बूज भी खर्बूज के समान गुणयुक्त है। किंतु कच्चा तरबूज इससे गुणों में विपरीत होता है। जाम्बवफल (जामुन) कषाय, ग्राही तथा वात-कारक है ॥ १५३ ॥

खरबूज के छोटे छोटे टुकडे करके, उसमें शर्करा मिलाकर यथारुचि सेवन करने वाले धनिक वस्तुतः धन्य हैं। खरबूज का यह पानक पित्त प्रभाव का नाश करने में समर्थ माना जाता है ॥ १५४ ॥

अमरूद विष्टंभी, सुस्वादु, सारक, वातकारक, भूख को मिटानेवाला और सुगंधित है। अपनी गुण संपदा से पित्त को जीतकर एक विशेष आल्हादमय तृप्तिकी अनुभूति कराता है। (कच्चे अमरूद को स्वच्छ शिलापर पानी से थोडा घिसकर उसका लेप करने से 'आधा सीसी' अर्धावभेदक में तत्काल शांति मिलती है।) ॥ १५५ ॥

सीताफल मधुर, कफकारक, शीतवीर्य और दाह शामक है। (सीताफल को 'गण्डगात्र' तथा 'कृष्ण बीज' भी कहते हैं। इसके बीज के कल्क का मस्तक पर

१–दरपक्वं मध्यं तु पित्तलमिति दर्शनात्। २–दशाङ्गुलं वल्लीजं फलं प्रायो ग्रीष्मे प्रचरति। ३–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धम्। क्वचिच्च 'मतीरा' इति ख्यातं खर्बूजान्महत्तरं जलबहुलम्। 'कालिङ्गम्' इति देववाण्यामुच्यते। ४–अन्तर्भावितण्यर्थमिदम्। तेन प्रापयतीत्यर्थः। ५–'जाम्फलम्' इति गुर्जराः। ६–गण्डा गात्रे यस्येति आतृप्यं सीताफलमिति यावत्।

अतिसारभ्रमच्छर्दिपिपासापित्तघस्मरम् ।
मधुराम्लरसं रुच्यमेलचीफलमीरितम् ॥ १५७ ॥
कफं वितनुतेऽनिलं प्रबलयत्यपक्वं ततः
परं मधुरमम्लकं किमपि वायुवारि स्मृतम् ।
अथो परिणतं वमिश्रममदाशि बल्यं सरं
नियच्छति तृषं भृशं बदरमालयोत्थं वरम् ॥ १५८ ॥
कसेरुद्वयं क्षुण्णपित्तं पिपासाप्रमेहाक्षिपीडाविदाहेषु दद्यात् ।
कषायं गुरु ग्राहि मिष्टं तुषारं मरुत्स्तन्यशुक्रक्रिमिश्लेष्मकारि ॥ १५९ ॥

लेप करने से जूयें मर जाती हैं। कल्क का प्रलेप करके मस्तक को एक स्वच्छ महीन वस्त्रमें बाध देना चाहिये। एक प्रहर पीछे सिर को धो डालें। साफ करते समय, पानी आखों में न चला आये इसकी सावधानी रखनी चाहिये।) ॥ १५६ ॥

एलची फल मधुर, रस से अम्ल, रुचिकारक तथा अतीसार, भ्रम, वमन, तृषा और पित्त का नाश करनेवाला है। (एलचफल बलरुत्ते का प्रसिद्ध फल है। यह पिण्डिकाओं से युक्त, हरितारुण वर्णवाला तथा वर्तुलाकार होता है।) ॥ १५७ ॥

अपक्व-बदर कफ-कारक तथा वायु को प्रबल करनेवाला है। किंचित्-पक्व बदर-फल स्वाद में मधुर और अम्ल तथा वात-नाशक है। संपूर्ण परिपक्व गृहबदर वमन, श्रम और मद को दूर करनेवाला, बलकारक, सारक तथा तृष्णाधिक्य में उपकारक है। (बदर की बहुत सी जातियां हैं, जिनमें राज-बदर सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अरबी-भाषा में इसे उन्नाब कहते हैं। राजनिघंटु में इसके गुण यह कहे गये हैं-"राजबदरं सुमधुरं शिशिरं दाहार्तिपित्तहरम् । वृष्यश्च वीर्यवृद्धिं कुरुते शोषश्रमं हरते"। उन्नाब खासी में लाभ देता है। उन्नाब, कतीरा गूंद, गुलाब और शक्कर इनके घन की गोलियां मुंह में रखने से कास में शाति मिलती है। राजबदर के अतिरिक्त बदर की अन्य जातियों में सौवीर, कोल, कर्कन्धु, गोप-घोण्टा (क्षुद्र बदरी-सुश्रुत) आदि मुख्य हैं-इनके गुणधर्मों में यत्किंचित् ही विभिन्नता है। बेर के बीज हिक्का तथा नेत्र विकार में, ताजी पत्तियों का लेप ज्वर-जन्य-दाह में तथा त्वचा का लेप विस्फोट में लाभकारी है। 'बदरस्य पत्रलेपो ज्वर-दाह विनाशनः। त्वचा विस्फोटशमनी, बीजं नेत्रामयापहम्'-रा. नि.।) ॥ १५८ ॥

दोनों प्रकार के कसेरू पित्तनाशक, भारी, कषाय, ग्राही, मधुर तथा शीतल हैं। वीर्य, स्तन्य, क्रिमि, वात और कफ को बढाने वाले तथा प्यास, प्रमेह, नेत्ररोग और विदाह में उपकारक हैं। (कसेरू दो प्रकार के होते हैं, एक राजकसेरू जो प्रमाण में बड़ा होता है, दूसरा चिचोड जो छोटा होता है।) ॥ १५९ ॥

१-"हरितारुणवर्णाभिः पिण्डिकाभिरिवाचितम् ।
वर्तुलं मलिकाताया प्रसिद्धं फलमेल्चम् ॥" इति ।
२-गृहबदरमश्नन्ति धनिन इति प्रशंसाश्रवणात् । ३-जलमध्ये जायते ।

प्रमेहार्शःश्लेष्मानिलगदनुदाॡर्निगदितो
हिमाऽदोषा क्षीरी प्रकटितवला पिच्छिलतरा ।
भवेदामाऽम्लीका पवननुदपित्ता परिणता
त्वशुक्रं निम्बूकं दृगरुचिमरुन्मार्दवजयि ॥ १६० ॥

विभावनीयं शुचि भूरिवारानूर्जेऽम्बरं निम्बुकजाभिरद्भिः ।
तदम्बु भैषज्यविभावनायां दद्यादलाभे सति निम्बुकानाम् ॥ १६१ ॥

लुङ्गं स्यान्मुखशोध्यरोचकहरं वह्निप्रदं वल्कलं
जन्तुश्लेष्ममरुत्प्रणुन्मतमतिस्वादूष्णतिक्तं गुरु ।

आरुक (आलूबुखारा) प्रमेह, अर्श, कफ और वात का नाश करता है। दोनों प्रकार की खिरणी, शीतल, त्रिदोषघ्न, बल्य और अत्यंत पिच्छिल है। कच्ची इमली वात-शामक तथा परिपक्व इमली पित्त तथा शुक्र-नाशक है। निंबू नेत्र विकार, अरुचि और वायु का नाश करता है। (आलूबुखारा की चार जातियां होतीं है-'विद्यात् जातिविशेषेण तच्चतुर्विधमारुकम्'। आडु, आलूबुखारा, आलुबालु और आलुचा। स्वल्प, दीर्घभेद से खिरणी दो प्रकार की होती है। खिरणी के बीजों के प्रलेप से गर्भस्राव होता है। तथा बीजों का तैल-मादक है। पित्त-ज्वर में दाह शमन के लिये तथा मलावरोध दूर करने के लिये इमली का पानक देते हैं-'पूर्वं तोये वासरं वासितानां चिंचाऽस्थीनां दुग्धकल्कीकृतानाम् ॥ पीत्वा कर्षं सुंदरीपूरुषौ द्रागस्थिस्रावात् सोमरोगाच्च मुक्तौ' ॥ एक तोले भर इमली के बीजों को रात्रिपर्यंत जल में भिगोकर फिर प्रातः त्वचा निकाल दूध में पीसकर कल्क बनालें। इसको लेने से अस्थिस्राव तथा सोमरोग में विलक्षण लाभ होता है। कल्क में विदारीकंद तथा वृद्ध-दारुक का चूर्ण मिलाकर देने से श्वेत-प्रदर में यह परम उपकारक सिद्ध हुआ है। हमारे यहां का यह अनुभूत प्रयोग है।) ॥ १६० ॥

कार्तिक मास के फालवाले निंबु लेकर उनके रस में शुद्ध वस्त्र को पुनः पुनः विभावित करके हिफाजत से रखलें। अब, आवश्यकता होने पर इस वस्त्रपट को स्वच्छ जल में भिगो कर मसल लें। फिर निचोड लें। किसी भी ऋतु में इस तरह प्राप्त निंबु-जल का, निंबु-रस के अभाव में, औषधादि निर्माण कार्य में, निर्भय उपयोग करें ॥ १६१ ॥

बीजपूर (मातुलुंग) मुखको स्वच्छ करने वाला, रुचिकर और अग्निप्रदीपक है। इसकी छाल तिक्त, उष्ण, भारी, दुर्जर, अत्यंत सुस्वादु तथा वात, कफ और कृमि का

१-'आरू, आरुक' इति लोकैरुद्घुष्टो मधुरकषायः फलविशेषः । २-राजादन-फलं 'खिरिणी, रायण' इति ख्यातं दीर्घाकृति स्वल्पं फलमिति । महत्स्वल्पभेदाद् द्वेधा । ३-निम्बूरससाध्यकार्यार्थं सर्वेष्वृतुषु तद्रसलाभोपायप्रदर्शनमेतत् । ४-कार्तिके । ५-बीजपूरकम् ।

तन्मध्य गुरु बृहणं हिममसृक्पित्तानिलोन्मूलनं
ग्राही तस्य तु केसरो जठरजिद्वीज भवेद्गर्भदम् ॥ १६२ ॥
अम्लवेतसमत्यम्ल गुल्मामारुचिशूलजित् ।
जम्भो न्यूनस्ततोऽन्यद्यदम्ल श्लेष्मविबन्धनुत् ॥ १६३ ॥
निम्बूकंमुक्त मधुर पिपासापित्तारुचिच्छर्दिविपास्रनाशि ।
स्वाद्वम्लशीत कफमारुतघ्न सग्राहि रुच्य लघु कर्मरङ्गम् ॥ १६४ ॥
हरेद्धिम गुर्वतिसारनिन्दक प्रमेहपित्ते सकफे च तिन्दुकम् ।
सगौरव स्यात् कदलीफल वर हिम सपित्तास्रदवव्यथाहरम् ॥ १६५ ॥
सक्षोद्य सम्यक् कदलीफलानि सर्पि सिता चाप्युपरि प्रकीर्य ।
यथेच्छमास्वादयता नराणा कदाऽपि वीर्यस्य न हानिरस्ति ॥ १६६ ॥
हिक्काहृदम्ल मधुर कपित्थ विट्सारपित्तानिलतृट्सु पथ्यम् ।
विष्टम्भ्य वात गुरु नारिकेर रोगे हित नो किमु पत्तिकेऽरम् ॥ १६७ ॥

नाश करने वाली है। बिजौरा का गूदा भारी, बृहण तथा शीतवीर्य है। वात और रक्तपित्त का उन्मूलन करता है। इसका केसर ग्राही तथा उदर रोग नाशक है। बीज गर्भप्रद है ॥ १६२ ॥

अमलवेत अत्यत खट्टा तथा गुल्म, आम, अरुचि और शूल का नाश करने वाला है। ('अम्लवेतसो भेदनीयदीपनीयानुलोमिकवातश्लेष्महराणाम्' । चरक) जम्भीरी निबू अमलवेत की अपेक्षा न्यून गुणवाला है। अम्लता को लिये जम्भीरी निबू कफ और विबन्ध को दूर करता है ॥ १६३ ॥

मधुर निंबू तृष्णा, वमन, विष तथा पित्त का नाश करनेवाला, रुचिकर और रक्तशोधक है। कमरख स्वादु, अम्ल, शीतवीर्य, कफ और वात नाशक, ग्राही, रुच्य तथा लघु है ॥ १६४ ॥

तिंदुक (तेंद) शीतल, भारी, कफकर तथा अतीसार, प्रमेह और पित्त को हरनेवाला है। परिपक्व केला गुरु, शीतल तथा रक्त, पित्त एव दाहजन्य वेदना का नाशक है ॥ १६५ ॥

केले को अच्छी तरह कूटकर उसमे घृत तथा शक्कर मिलाकर यथेच्छ सेवन करने से वीर्य कदापि न्यून नहीं होता ॥ १६६ ॥

कपित्थ मधुर, अम्ल तथा हिक्कानाशक है। अतीसार और तृषा में पथ्य कारक तथा वात पित्त हारक है। नारियल विष्टम्भी, भारी तथा वात-शामक है। पित्तज विकार में इससे अधिक उपकारक अन्य औषधि नहीं है। (मेदोवृद्धि मे खोपरेल का सेवन करने से मेद का ह्रास होता है।) ॥ १६७ ॥

१–त्वक्केसरयोर्मध्यभागस्य गूदापदवाच्यम् । २–मिष्टनिम्बूगुणा । ३–'कमरख' इति प्रसिद्धम् । ४–'तेंदू–जींदू' इति । ५–पैत्तिके रोगे अरं किमु नो हितमित्यन्वय ।

अञ्जीर[1]नारङ्गपरूषचार[2]खर्जूरतूदा[3]नि ससेवकानि ।
वृष्याणि पित्तानिलरक्तदाहहराणि बल्यानि हिमानि सन्ति ॥ १६८ ॥
मुकूला[4]क्षोटबादामचारवो[5] गुणचारवः ।
बल्या वृष्याः सरा उष्णा गुरवः स्वादवोऽप्यलम् ॥ १६९ ॥
इति फलवर्गः ॥ ५ ॥

अंजीर, संतरा, फालसा, चारोली, खर्जूर, शहतूत और सेव यह सभी वृष्य, बल्य, शीतल, रक्तपित्त और दाह के शामक तथा वात-पित्त को दूर करनेवाले हैं ॥ १६८

पिस्ता, अखरोट, बादाम और चिरौंजी उत्तम-गुण देनेवाले, बल्य, वृष्य, उष्ण, भारी, सारक तथा परम सुस्वादु हैं ॥ १६९ ॥

फलवर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

अथ धान्य[6]संग्रहः ।

सर्वोऽपि शा[7]लिः शिशिरोऽल्पवातबलासकारी मधुरो मनोज्ञः ।
बल्यः सशुक्रो लघुरस्तपित्तः संबद्धविट्को रुचिदः प्रदिष्टः ॥ १७० ॥
गोधूमकः स्वादुसरोऽसमीरपित्तो गुरुः शुक्रबलप्रकर्षी ।
यवः कषायो मधुरः सशीतो विलेखनः पाककटुः सवातः ॥ १७१ ॥

धान्य-संग्रह ।

खेत में उगे हुये अन्न को सस्य कहते हैं, परिपक्व-सतुष सस्य 'धान्य' कहलाता है। यही निस्तुष, 'आम' शब्द से जाना जाता है। स्विन्न किया गया आम 'अन्न' कहाता है।

सभी जाति के चांवल शीतल, किंचित् कफ-वात कारक, मधुर, पथ्य, बल्य, शुक्रवर्धक, हलके, पित्तशामक, मल को बांधनेवाले तथा रुचिकर कहे गये हैं। (श्वेत चांवल को शालि कहते हैं।) ॥ १७० ॥

गेहूं स्वादु, सारक, भारी, पित्त-हर, शुक्र और बल के वर्धक हैं। यव कषाय, मधुर, शीतल, लेखन, पाक में कटु तथा वात कारक हैं ॥ १७१ ॥

१–काष्ठोदुम्बरिकाफलमिति वृद्धाः। २–चारं फालं 'चिरौंजी, चारोलि च'। ३–'तौत, सेंतोंत' इति च प्रसिद्धम्। ४–निकोचफलम्। लोके 'पिस्ता' इति। ५–चारुचारमित्यनर्थान्तरम्। मुकुलादिवर्गेऽपि चारुपाठादञ्जीरादीनामपि प्रकृतिभेदेन सरत्वमविरुद्धं, न पुनः पुनरुक्तिरिति। इति फलवर्गः। ६–पेयादिपथ्योपयोगित्वेन भेषजान्तःपातित्वाद्धान्यप्रस्तावः। "सस्यं क्षेत्रगतं प्राहुः सतुषं धान्यमुच्यते। आमं वितुषमित्युक्तं स्विन्नमन्नमुदीरितम् ॥" इति वशिष्ठः। ७–"क्षुण्णः सितः स्मृतः शालिः" इत्यरुणदत्तः।

मृदितविरलसर्पि शुद्धगोधूमचूर्णं
सलिलनिविडवद्धं गोमयाग्नौ विपक्वम् ।
तितंउशुचि घृतेन प्लावित शर्कराढ्य
त्रुटिसुरभि सुहृद्भिर्भुज्यता चूर्णमेत्यम् ॥ १८१ ॥
अत्युज्वलैरवयवैर्मृदुता दधाना
भुक्ताऽऽवल वितरति स्मरदानदक्षा ।
स्निग्धाशया गुरुगुणग्रथिता मनोज्ञा
फैणी नवीनललनेव मुदं ददाति ॥ १८२ ॥
जलवलिवैलयानि प्रौढपित्तक्षयानि
क्षतपवनभयानि प्रोल्लसद्विस्मयानि ।
मधुररसमयानि श्लाघनीयानि यानि
स्फुरदरुचिजयानि प्रेमतो वर्णयानि ॥ १८३ ॥
संपक्व मृदुवह्निना चणकज चूर्णं समाने घृते
क्षेप्य खण्डजकर्दमे द्विगुणिते स्थाल्यामिद ढालयेत् ।

उत्तम गेहूं के आटे में घी का मोयन देकर अच्छी तरह, पानी से गूंधे । फिर इसे कंडों की अग्नि (अंगारे) में सेकें । अच्छी तरह सिक जानेपर कूट पीट कर चालनी से सूक्ष्म चूर्ण छानले । इस चूर्ण को प्रथम घृत से प्लावित करके फिर उसमे शक्कर मिलादें । सुगधि के लिये ऊपर से इलायची चूर्ण यथा मात्रा बिखेर दें । इस 'चूरमे' का सन्मित्र मडली सहित आस्वादन करें ॥ १८१ ॥

अपने अत्यत उज्वल अवयवों से परम कोमल, उपभोग करने वाले को यथेच्छ बल देनेवाली, काम-भाव अर्पण करने में निपुण, स्निग्ध-आशय से युक्त, गुरु गुणों (दीर्घसूत्रों) से ग्रथित, मनको प्रिय, फीणी नवीन नवोढा-रमणी की तरह आह्लाद देती है ॥ १८२ ॥

प्रवृद्ध-पित्त का क्षय करने वाली, क्षत और वात के लिये साक्षात् भय-रूप, अपनी आकृति से विस्मय-भाव को जगाने वाली, अरुचिपर जय करनेवाली, मधुर रसमय जलवलिवलय (जलेबी) की हम यह सप्रेम स्तुति करते हैं ॥ १८३ ॥

चने का आटा तथा घी दोनों को समान-भाग में लेकर, मदाग्नि से अच्छी तरह पकालें । फिर द्विगुणित-शक्कर की चासनी में इसे मिलाकर एक थाली में

भिधाय तद्विशेषाणा भक्ष्यादीना गुणा अभिधीयन्ते । अत्र केषाचिद्गुणाभिधान प्रसिद्धत्वादुपेक्षितम् । तच सुधीभि स्वयमूह्यमिति ।

१–"चालनी तितउ पुमान्" इत्यमर । २–लोके 'चूरु, चूरमो' इति, तच माषसूपेन सह भुञ्जते जयपुरीया इति । ३–भक्षिता, पक्षे संभुक्ता । ४–फेणिका समिताकृता । लोके 'फीणी' इति नाम्ना प्रसिद्धा । ५–कुण्डलिनी । लोके 'जलेबी' इति ख्यायते । ६–लोट्लकारस्योत्तमपुरुषैकवचनम् । ७–त्रिगुणे चतुर्गुणे वा लोकस्य भिन्नरुचित्वात् ।

कर्पूरत्रुटिकुङ्कुमैः कतलिकां कृत्वा शुभां भक्षयेत्
सैषा मानसमोहिनी बहुगुणा श्रीमोहनस्थालिका[1] ॥ १८४ ॥

पतति पवनगर्वो हीयते पङ्गुपित्तं
विलसति बलमग्निर्वामनत्वं व्यनक्ति ।
प्रसरति कफराज्यं सेवितायां हि यस्यां
जगति सुकृतवद्भिर्लभ्यते लप्सिका[2] सा ॥ १८५ ॥

सर्वाशनं यत्पुरतो वराकं प्राप्नोति यो भाग्यमृते सदा कम् ।
स्पर्धां विधत्ते सुधयाऽपि साकं सखे तमास्वादय दुग्धपाकम्[3] ॥ १८६ ॥

मज्जानं नागरङ्ग पच हविषि सितासङ्गतं तत्र पक्के
निक्षिप्य क्षीरमर्धक्कथितमथ समुद्धूलय द्राविडीभिः[4] ।
नारङ्गक्षीरणीयं सुरपतिभिरपि प्रार्थिता वातपित्त-
व्यापत्तिं हन्त हन्ति प्रथितगुरुगुणा सौमनस्यं प्रसूते ॥ १८७ ॥

भुक्ताऽपि वाञ्छां बहुलीकरोति कान्त्याऽक्षिसौख्यं दधती जनानाम् ।
समुन्मिषद्गन्धरसा[5] नवीना वासौदिका स्त्रीव[6] मुदे न कस्य ॥ १८८ ॥

डाल दें । कर्पूर, इलायची तथा केसर के चूर्ण का ऊपर से प्रक्षेप करके-अच्छी तरह जमजाने पर उसकी सुंदर चकत्तियां बनाकर भक्षण करें । यही अनेक-गुणों से पूर्ण, मन को मुग्ध करनेवाली 'मोहनस्थालिका' है ॥ १८४ ॥

जिसके सेवन से वायु का गर्व-खंडित हो जाता है । पित्त पंगुवत् हीन हो जाता है । बल का विकास होता है, अग्नि क्षीण हो जाती है, तथा कफ में वृद्धि होती है ऐसी लप्सिका (लापसी) जगत् में पुण्य-शालियों को ही प्राप्त होती है ॥ १८५ ॥

जिसके समक्ष अन्य सभी भोज्य-व्यंजन तुच्छ हैं, जो विना भाग्य हमेंशा प्राप्त नहीं होता और जो अमृत की स्पर्धा करता है-उस दुग्ध-पाकका, हे मित्र ! आस्वादन करें ॥ १८६ ॥

नारंगी के भीतरी गूदे को मिश्री चूर्ण में मिलाकर घी में पकावें । पक जाने पर, इसे अर्धक्कथित दूध में डाल दें। ऊपर से इलायची-चूर्ण का प्रक्षेप करें। इस तरह नारंग क्षीरणीय सिद्ध होता है । अपनी सुगंध से मनको प्रिय, अनेकों गुणों से युक्त, यह क्षीरणीय, वात-पित्त का नाश करता है ॥ १८७ ॥

तृप्ति-पूर्वक उपभुक्त होने पर भी, अधिकाधिक सेवन करने की लालसा को बढाने वाली, अपनी कांति से मनुष्यों के नेत्रों को आनन्द देने वाली नवीन वासौदिका (बासुंदी) नवीना रमणी के समान रस तथा गंध को वितीर्ण करती हुई किसे आह्लाद नहीं देती ॥ १८८ ॥

१–'मोहनथाल' इति प्रसिद्धा। २–'लापसी' एषा गुर्जरे बहु प्रचरति । ३–सतन्दुल-दुग्धकृतो लेह्यविशेषः। 'खीर, तस्मै' इति च मध्यदेशे प्रसिद्धः । ४–एलाभिः। ५–समुन्मिषन्तौ गन्धरसौ यस्याः सा तथा। पक्षे समुन्मिषन् गन्धरसः सुगन्धिवस्तुविशेषो यस्या इति । ६–नवीना स्त्रीवेति संवन्धः ।

ऊधस्यमावर्त्य विधाय पिण्ड शनै सितातन्तुलिकाविमर्दितम् ।
पश्चाद्धिस्थालि घृतेन ढालित नाम्ना कलाकन्दमिति प्रचक्ष्महे ॥१८९॥

धाराभिरुत्तमघृतस्य कृताभिषेका
गोधूमजा शरदखण्डितचन्द्रवृत्ता ।
सिद्धाढकीदलगुडप्रतिपूरितेयं
श्रीपोलिका जगति कस्य मुद न धत्ते ॥ १९० ॥

स्थालीपुटस्य जठरे पिहिता दलाभ्या
वातामभज्ञसितयोर्विनिवेश्य पोलीम् ।
अङ्गारकैरुपरि सनिचितैर्विपक्वा
मित्रै समं रहसि भुङ्क्ष्व सुधासपत्नीम् ॥ १९१ ॥

पयोभिरार्द्रा सकलप्रियाणा दाल्यो घृतान्तस्तलिता प्रियाभि ।
पटूपणक्षोदचमत्कृता स्युस्ता भक्तदाल्यो रुचये न केषाम् ॥ १९२ ॥

मरल्लीला लीना भवति च नवीना रुचिरल
समुद्रिक्तं पित्तं मलिनयति चित्त क्षयभिया ।

दूध को उकाल कर उसका खोवा बनावें। फिर इसे शक्कर की चासनी में अच्छी तरह मिलाकर एक थाली में ढाल देवें। इसे कलाकन्द कहते हैं ॥ १८९ ॥

सिद्ध की गई अरहर की दाल तथा गुड को परस्पर अच्छी तरह मिलाकर पिट्टी बनालें। इस पिट्टी से परिपूरित गेहू के लोये बेलकर, शरद के पूर्ण चन्द्रमा जैसी वृत्ताकार रोटिया पकालें। उत्तम-घृत की धारा से अभिषिक्त यह पोलिका (पूरण-पोली, वेढमी) जगत में किसे आल्हाद नहीं देती ॥ १९० ॥

बादाम की मज्जा तथा शक्कर को अच्छी तरह मिलाकर-उसकी पूरी बना स्थाली सपुट में रखकर अगार-राशि पर अच्छी तरह पकाले। अमृततुल्य इस बादामपूरी को, कागज मे लपेट कर (दृष्टिदोष न लग जाये इस कारण) एकात में मित्र मण्डली के साथ खावें ॥ १९१ ॥

दूध मे सिक्त, प्रियतमाओ द्वारा घृत मे तली हुई चने की दाल में नमक तथा मिरच के चूर्ण को प्रक्षेप करके सेवन करें। ये भक्तदाल (भक्तादाल) किसे रुचिकर नहीं है ॥ १९२ ॥

प्रतिक्षण पर्याप्त रुचि उत्पन्न करनेवाली, इलायची, मरिच तथा कर्पूरके चूर्ण से मिश्रित शिखरिणी को देखते ही वात-की लीला विलीन हो जाती है।

१–'चासनी' नाम। २–'बर्फी' इति प्रसिद्धम्। ३–उत्तमत्व गव्यत्वे सति नव्यत्वम्। ४–उपलक्षणमिद, तेन शर्करादिभि पूरण भवतीति बोध्यम्। ५–दक्षिणे 'पूरण-पोली', गुर्जरे 'वेढमी' इति प्रसिद्धा। ६–'कागज' इति प्रसिद्धाभ्याम्। ७–अतिसौन्दर्यवत्तया दृष्टिदोषभयात्। ८–"चणको हरिमन्थ स्यात् सकलप्रिय इत्यपि" इति निघण्टु। उपलक्षण चेदम्। सर्वशमीधान्यस्येति। ९–'भक्तादाल' इति प्रसिद्धश्चर्व्यविशेष।

वलासः किं ह्रासं व्रजति वलतो वल्गति बलं
　　समीक्ष्योच्चैरेलो[1]षणशशिवयस्यां शिखरिणीम्[2] ॥ १९३ ॥
वाह्लीकजीरार्द्रलवङ्गसौरभास्तक्रे निमग्ना जलधाविवेन्दवः ।
जिह्वालताग्रे वटका मनोहराः कल्लोलयन्ति त्रिदिवौकसामपि ॥ १९४ ॥
　　लवणमरिचदो[3]र्बीहिङ्गुधान्याकजीरैः
　　　　पयसि चणकचूर्णैर्लोलयित्वा विपक्कम् ।
　　घृतमसृणतलायां ढालयेत् स्थालिकायां
　　　　भवति दधिनिमग्नः पित्ततोडः[4] पितोडः ॥ १९५ ॥
कचवलि[5]का विष्टभ्य प्रायो जीर्यति गुरुर्मरुज्जयिनी ।
पूरी पुनरूरीकृतबला विदूरीकरोति पित्तबलौ ॥ १९६ ॥
कृतानि धेनोः सलिलेन माषमकुष्ठमुद्गान्यतमोद्भवानि ।
रुचे[6]रपि द्रागभिसार[7]काणि समर्मरं भक्षय पर्पटानि ॥ १९७ ॥

वृद्धिंगत-पित्त अपने नाशके भयसे विकल-चित्त हो जाता है। कफ का ह्रास तथा बलका पूर्ण विकास होता है। (शिखरिणी छंद में शिखरिणी का वर्णन-कवि के रचना कौशल को प्रकट करता है। शिखरिणी-पानी से रहित दही-निर्मित लेह्य विशेष का नाम है। इस में शक्कर तथा कर्पूर, मरिच आदि का चूर्ण मिलाकर खाने से रुचि के साथ जठराग्नि प्रबल होती है।) ॥ १९३ ॥

हींग, जीरा, आर्द्रक तथा लवंग की सुगंध से परिपूर्ण, तक्र में निमग्न-अत एव मानों समुद्र-मग्न-चंद्रमाओं के समान, मनोहर वटक, देवताओं की भी जिह्वा-रूपी लताग्र भाग पर कल्लोल करते हैं ॥ १९४ ॥

नमक, मरिच, हरिद्रा, हींग, जीरा तथा धनियाँ मिलाकर चने के आटे को पानी में अच्छी तरह गूंध कर अग्निद्वारा पकावें। सान्द्र होने पर, घृत-लिप्त अत एव सचिक्कन तल-वाली थाली में इसे ढाल दें। इस तरह, पित्त-तोड पितौड सिद्ध होता है। दही में डुबोकर इसका सेवन किया जाता है ॥ १९५ ॥

कचौरी भारी, विष्टंभी, वात-हर तथा विलंब से पचनेवाली है। पूरी पूरा बल देती तथा पित्त के बल को दूर करती है ॥ १९६ ॥

उडद, मकोय, मूंग इनमें से किसी के भी, गोमूत्र से सिद्ध, पापड को मर्मर-शब्द पूर्वक खायें। यह रुचि को शीघ्र बढाने वाले तथा संधानकारी है ॥ १९७ ॥

१–एलादीनामुद्धूलनत्वाच्छाणम् । उक्तं च—"शुद्धशर्करया युक्तं निर्नीरं द्विगुणं दधि । शाणमुद्धूलनं देयमेतन्मानं बुधैः स्मृतम् ॥" इति । २–दधिजो लेह्यविशेषः । अत्रोभयथापि शिखरिणीति चित्रम् । दुग्धखण्डगालितं निरेलं दधि द्रवन्ती व्यवह्रियते । उक्तं च—"दध्यम्बुरहितं पात्रे खण्डदुग्धेन गालितम् । कर्पूरमरिचोन्मिश्रं द्रवन्ती परिकीर्तिता ॥" इति । ३–हरिद्रा । ४–पित्तं तोडति । 'तुड तोडने' इत्यस्मात् कर्मण्यण् । ५–लोके 'कचोरी' नाम । ६–अवधारणार्थो भिन्नक्रमश्च । ७–अभिसारकाणीति विशेषणेन रुचौ नयिकात्वं पर्पटेषु च संधानकारित्वं ध्वन्यते ।

खर्बूजवल्कशकलानि विशोषितानि निर्व्याजमाज्यतलितानि तलोदरीभिः[1] ।
योग्यैर्मरीचलवणैरवधूलितानि स्युर्मर्मराणि रुचिराणि तथा सराणि ॥१९८॥

भ्रष्टा[2] स्याल्यामनणुकणिका शुद्धगोधूमजाता
सिद्धा किंचित्पटुनि पयसि व्यस्तपर्यस्तसिक्था. ।
सर्पि·स्निग्धास्तदनु नितरामाढकीसूपसिक्ता-
स्थुलीसंज्ञा शमितपवना गौरवं न त्यजन्ति ॥ १९९ ॥

दायादवद्यच्च मिथो विभक्तं गव्येन नव्येन घृतेन सिक्तम् ।
पृक्तं सिताभिर्गुणशालि भक्तं निवेद्य देवाय मयापि भुक्तम् ॥ २०० ॥

विशेषपथ्योऽखिलवैद्यकथ्यो गुणौघपूर्णः कलिताम्रचूर्णः ।
सशालनाभ्यां[3] घृतरामठाभ्यां प्रदत्तधूपो वरमुद्गसूपः ॥ २०१ ॥

गन्धविह्वलभवा[4] घृतप्लुता पूर्णचन्द्रपरिवेषवर्तुला ।
तुष्टिपुष्टिबलवीर्यवर्धिनी फुल्लिका[5] मधुभिदे निवेद्यताम् ॥ २०२ ॥

खरबूजे की छाल के छोटे छोटे टुकडे करके धूप मे सुखालें । कृशोदरी रमणियों द्वारा-घृत में सहज तले गये तथा यथारुचि नमक और मरिच-चूर्ण से युक्त यह मर्मर रुचिकारक तथा सारक होते हैं ॥ १९८ ॥

उत्तम गेहू को कूट कर उनके सूक्ष्म कण बनालें । इनको थोडे से घी में समलकर बराबर सेंके । फिर किंचित् नमक युक्त जल में इसे सिद्ध करलें । इस तरह से सिद्ध, इधर उधर बिखरे हुये सिक्थों से युक्त इस थुली में घृत तथा अरहर के सूप को यथेच्छ मिलाकर इसका उपभोग करें । यह वातशामक किंतु भारी है ॥ १९९ ॥

गाय के नूतन घृत से सिक्त, सिता-चूर्ण-युक्त, गुणों से भरपूर भक्त (भात) का, भगवान को भोग लगाकर, दायाद में प्राप्त अपने भक्त (भाग) की तरह आपस में विभक्त करके, मैंने भी उपभोग किया है । (यहा भक्तशब्द में श्लेष है । 'भक्त' के अर्थ दायाद में प्राप्त 'भाग' तथा स्विन्न 'भात' दोनो ही होते हैं ।) ॥ २०० ॥

घृत तथा शुण्ठिचूर्ण जैसे शालन द्रव्यो से सुवासित, आम्रचूर्ण से युक्त, गुणो में परिपूर्ण, उत्तम मुद्ग-सूप को सम्पूर्ण-वैद्य-समाज ने सभी पथ्यों में विशिष्ट माना है ॥ २०१ ॥

गेहू के आटे से निर्मित, घृत से ओतप्रोत, पूर्ण चन्द्र-मडल के समान वर्तुलाकार तथा तुष्टि, पुष्टि बल और वीर्य को बढाने वाली फुल्लिका (फुलका) भगवान् श्रीकृष्ण को निवेदित करें ॥ २०२ ॥

१–कृशोदरीभिः । २–मनाग्घृतेन म्रक्षिता कृत्वा भर्जनमिति । ३–शालनं नाम तत् यदुपदंशेषु भुज्यते येन च व्यञ्जनं वास्यते । उक्तं वाग्भटेन—"कुठेरशिग्रुसुरससुमुखासुरिभूस्तृणम् । फणिज्जार्जकजम्बीरप्रभृति ग्राहि शालनम् ॥" ४–गोधूमभवा । ५–फुलकाशब्दवाच्या ।

आम्रास्थिविक्षालनवारि शालनप्रमोदपूर्णं घटतप्तसर्पिषि ।
निक्षिप्य निक्वाथ्य पिबन्तु सौषधं नभोजनानामपि लोभि भो जनाः ॥२०३॥
चूर्णेन किंचिद् घृतसौरभेण सुजातगोधूमभुवा प्रणीताः ।
भ्रष्टा हसन्त्यां प्रियया हसन्त्या मण्डा घृताक्ता मम सन्ति सात्म्याः ॥२०४॥
क्वथिता कथिता प्रचुरं रुचिरा कफमारुतसंशमने चतुरा ।
अपि पित्तमुदीरयति प्रवरा लघुरम्लसरा शिखिमान्द्यहरा ॥ २०५ ॥
अभिनवघृतपात्रीसिञ्चनस्निग्धगात्री
रजसि सितसिताया लोठिता मन्दमन्दम् ।
अगणितगुणगुर्वी पावकव्यापदुर्वी
प्रबलयति बलासं सेविका सेवकानाम् ॥ २०६ ॥
समाज्यसिद्धः समितासमुद्भवः खण्डेन युक्तो द्विगुणेन मुद्भवः ।
अत्यर्थमन्दीकृतकोष्ठपावको वृद्धोपयोगी गुरुरेष पावकः ॥ २०७ ॥

परिपक्व आम्र की गुठली को पानी से अच्छी तरह प्रक्षालित कर लें। इस प्रक्षालित पानी को घट-गत गरम घी में छोंक दें। तथा शालन द्रव्य (मसाले) मिलाकर इसे सुवासित कर लें। अब, इसको अच्छी तरह उकाल, शुण्ठिचूर्ण मिलाकर पीयें। हे मनुष्यो! यह पेय देवों को भी दुर्लभ है।' (इसे आम्रका अडबंगा अथवा गुर्जरभाषा में 'केरी का फजीता' कहते हैं।) ॥ २०३ ॥

किंचित् घृतयोग से सुरभित गोधूम-चूर्ण को पानी से गूंध कर उसके लोये बनाकर अंगीठी के अंगारों पर अच्छी तरह सेक लें। प्रसन्न मुख प्रियाद्वारा सिद्ध किये गये, घृत से सिक्त, ये मण्डा (मंडक्या, अंगार-मंडक) मुझे सात्म्य हैं। ('अत्युष्ण मंडकाः सात्म्याः' इस कथन के अनुसार गरम गरम मंडके सात्म्य माने गये हैं। श्लोक-गत 'हसन्त्या' का यमक भी किस कवि को सात्म्य नहीं?) ॥ २०४ ॥

कढी कफ और वात के शमन में चतुर, पित्त-वृद्धि करने में प्रवर, तथा प्रचुरमात्र में रुचिर कही गयी है। यह अग्नि-प्रदीपक, लघु, अम्ल तथा सारक-गुण से युक्त है ॥२०५॥

ताजा घी के लिये (मानों साक्षात्) अग्नि-कुंड, घृत-सिंचन से स्निग्ध-गात्र-वाली, मिश्री के सूक्ष्म-चूर्ण में मन्द मन्द आलोडित, अनेकों गुणों के भार से भारी तथा अग्निमांद्य रोग की जन्मभूमि सेविका (सेव), अपने सेवकों के कफ में वृद्धि करती है ॥ २०६ ॥

मैदे में से बनाया गया, घी में सिद्ध किया गया, द्विगुणित शर्करा से युक्त, आनन्द-जनक-पावक (सीरा), कोष्ठगत-पावक (जठरानल) को अत्यंत मंद

१—सनागरम्। २—देवानाम्। ३—अंगारमण्डका 'मडक्या, अंगाकडा' इति; सिद्धसारे चोक्तम्—"अत्युष्णा मण्डकाः पथ्याः" इति। ४—कढी। ५—अग्निमान्द्य-भूमिः। ६—'सेव' इति प्रसिद्धा समितया काष्ठफलके क्रियते। ७—प्रमोदयोनिः। ८—संयावो लोके 'सीरा' इति प्रसिद्धः। घृतपूतत्वात् पावकसंज्ञा।

रौज्यक्तजातं रुचिरं समीरबलासजिद्व्यञ्जनसार्वभौमम् ।
अजस्रमिष्टान्नजडस्य जिह्वातलस्य तारल्यमपि व्यनक्ति ॥ २०८ ॥
विट्सारभाजामहिता न लाजा धाना तु रूक्षा गुरुताप्रधाना ।
पृथुप्रभावा पृथुकाः प्रथन्ते न जातु चित्ते पृथुकाय देयाः ॥ २०९ ॥
प्रमृष्टपट्टा विजनं स्रजोऽच्छा धूपः सुगन्धिर्व्यजनं वयस्याः ।
रम्भापलाशानि समस्तमेतद्विभूषणं भोजनमण्डपस्य ॥ २१० ॥
चूर्णयुजि पूर्णपायसि धात्रीफलसेवगर्जराम्राणि ।
त्रुडितानि द्वित्रिदिनं चतुरस्रं शङ्कुनिद्धानि ॥ २११ ॥
सस्वेद्य सपरीक्ष्य प्रक्षाल्य भृशं पटेन निष्पीड्य ।
अधिसान्द्रसितातन्तुलि चिरतोष्मणि विनिमज्जयेन्मङ्क्षु ॥ २१२ ॥

करनेवाला तथा वृद्धजनों का हितैषी है। (वृद्धावस्था में दांत गिरजाने पर सीरा परम उपयोगी भोजन माना गया है।) ॥ २०७ ॥

रायता रुचिकर, वात और कफ का नाशक तथा सभी भोज्य-द्रव्यों में सर्वोपरि है। तथा सतत-मिष्टान्न-लोलुपता-सुलभ-जडता को प्राप्त जिह्वा-तल में तरलता उत्पन्न करता है ॥ २०८ ॥

लाजा अतीसार से पीडित का अहित नहीं करता, धनियाँ रूक्ष और भारी हैं। पृथुका (पौंआ) स्थौल्य उत्पन्न करते हैं। दुर्जर होने के कारण बालकों को पृथुका प्रशस्त नहीं है ॥ २०९ ॥

साफ पोंछे हुये पाटे, एकान्तता, उत्तम पुष्पमालायें, धूप, सुगन्धि, पखा, समवयस्क मित्र-मडली, कदली पत्र यह सभी भोजन-भवन के विभूषण हैं ॥२१०॥

आमलक, सेव, गाजर तथा आम्र इनके फलों को, सुधाचूर्ण युक्त जल में सपूर्ण रूप से निमग्न करदें, दो तीन दिवस पीछे इनको निकाल कर चारों ओर से सोये से विद्ध करें। फिर इन्हें उबाल लेवें। तदनन्तर, धोकर, साफ करके, वस्त्रादि से पोंछ इनके पानी को सुखालें। शक्कर की गाढी चासनी में, शीतल होनेपर शीघ्र

१-लोके 'रायता'नाम्ना प्रसिद्धम्। २-पूनां चिडवा चेति। ३-पृथुको बालस्तस्मै न देया, दुर्जरत्वात्। ४-'पाटा, पाटला'। ५-भोजनशालायाः। ६-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धफलविशेषः। "मुष्टिप्रमाणं बदरं सेवं सिञ्चितिकाफलम्।" इत्युक्तरूपो भावेन। ७-'गाजर' इति प्रसिद्धः काष्ठगर्भोऽरुणकन्दविशेषो नतभक्ष्यप्रकरणपठितो गृञ्जनसञ्ज्ञोऽयम्। "पलाण्डुं विड्वराहं च छत्राकं ग्रामकुक्कुटम्। लशुनं गृञ्जनं चैव जग्ध्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥" इति स्मृतौ गृञ्जनं लशुनाकारं लोहितसूक्ष्मकन्दमिति व्याख्यातं विज्ञानेश्वरभट्टारकेण। तदस्मिन्नत्र गणस्थानवस्थानात्। तथा शब्दार्थचिन्तामणावपि। "गन्धाकृतिरसैस्तुल्यं सूक्ष्मनालं पलाण्डुना। इत्युक्तम्। तथा चास्य पलाण्डुसदृशगन्धाकृतिरसाभावाद्गृञ्जनादन्य एवायं स्वादुकन्दः, पलाण्डुशतकेपि—स्वमाधुरीरञ्जितसज्जनानि प्रभञ्जनारम्भविभञ्जनानि। सेवापराणां गदगञ्जनानि जग्मुर्जवाद्गर्जरगृञ्जनानि ॥ इति भेदेनैव समुपात्त इत्यलम्। ८-जलशोषणार्थम्।

गतवति सति सप्ताहे पूर्वकृतां तन्तुलीं द्रवीभूताम् ।
तेभ्यो विस्राव्य पृथक् तत्र सितां तत्क्षमां क्षिप्त्वा ॥ २१३ ॥
संसाध्य दृढं पश्चान्निमज्जयेदिति फलावलेहः स्यात्[1] ।
प्रातर्वा सायं वा तत्तद्गुणलब्धये लिह्यात् ॥ २१४ ॥
द्रव्याढके[2] स्फटीतः शाणो बिल्वं पुराणचूर्णस्य ।
उपयुक्ता इह पेश्यो हृतत्वचां गर्जराम्राणाम् ॥ २१५ ॥

इन फलों को, डुबोदें। एक सप्ताह व्यतीत होने पर, पूर्वापेक्षया चासनी कुछ तरल हो जायेगी। इसको अलग नितार कर यथोचित मात्रा से, इसमें और शक्कर मिलाकर गाढी चासनी बना लेवें। अब, इसमें उपरोक्त फलों को पुनः डाल देवें। फिर इन्हें स्वच्छ चीनी की बरणी में भरकर उसका मुह बंध करके रखदें। इस तरह फलावलेह (मुरब्बा) सिद्ध होता है। प्रातः अथवा सायंकाल को तत् तत् फल गत विशेष-गुण की प्राप्ति के लिये तत् तत् फल का अवलेह सेवन करें। एक आढक-द्रव्य के उपयुक्त चासनी में तीन माशा स्फटी डालें। सुधा-चूर्ण पुराना चार तोला भर लेवें। गाजर तथा आम्र को, उनके छिलके तथा भीतर की अस्थि निकाल कर तथा गूदे के टुकडे बनाकर, उपयोग में लें ॥ २११-२१५ ॥

अथ संधानम् ।

आम्राणामर्धपक्वानां कुर्यात् पेशीर्हृतत्वचाम् ।
मनाग्विशोध्य भाण्डान्तः संभारेऽस्मिन् विनिक्षिपेत् ॥ २१६ ॥
आम्रपादो गुडः किं च तत्पादं पाटवं रजः ।
तत्तुल्ये मेथिकासुर्यौ[3] भ्रष्टे सर्षपतैलतः ॥ २१७ ॥
तथाऽत्र तच्चतुर्थांशा[4] तलिता पित्तकारिणी ।
रात्रिस्ततोऽपि[5] तुर्यांशा हिङ्गु राज्यष्टमांशकम् ॥ २१८ ॥
कटाहपक्वकटुकतैले योग्ये सरामठे ।
गुडं विनैव संभारं सर्वमेवावचारयेत् ॥ २१९ ॥

अर्धपक्व आम्रफल के छिलके उतार कर गूदे के टुकडे बनालें। फिर एक कढाई में इन्हें थोडा उबाल कर, निम्नलिखित पद्धति से निर्मित संभार में इन टुकडों को डाल दें। आम्रफल के टुकडों से चतुर्थ-भाग गुड, गुड से चतुर्थांश लवण, लवण तुल्य सर्षप-तैल में सिद्ध मेथी और राई, मेथी से चतुर्थांश जितनी तली हुई पितकाली (लाल मिर्च का चूर्ण), पितकाली चूर्ण से चतुर्थ भाग हरिद्राचूर्ण तथा हरिद्राचूर्ण से अष्टमांश भाग हींग लेवें। गुड के अतिरिक्त, इन सभी मसालों को एकत्र करके तथा इनमें उचित-मात्रा से शुण्ठिचूर्ण मिलाकर, कढाईगत पक्वतैल में डाल देवें।

१-'मुरब्बा' इति लोके प्रसिद्धः। २-तत्साधनार्थ परिभाषेयम्। ३-मेथीराज्यौ मिलित्वा लवणतुल्ये ग्राह्ये न तु पृथक्। ४-मेथिकातश्चतुर्थांशा इति पाठः साधुः। ५-पित्तकारिणीतः।

पक्कीकृत्य समुत्तार्य गुडं प्रविकिरेदनु ।
न्यसेत् पिधाय भाण्डास्यमिति संधानपद्धति ॥ २२० ॥
सिद्धं स्यादाम्रसंधानमतिक्रान्तत्रिमासकम् ।
उद्यके रसनाजाड्यमोचनं भक्तरोचनम् ॥ २२१ ॥
मेथीलवणनिशाभिः सभृतगर्भेऽधितैलमामुक्ते ।
ज्वालामरिचशैलाटुनि मिलति निमीलति पराऽप्यरुचिः ॥२२२॥
मांसं[1] संग्राहिवातं गुरु मधुररसं शुक्रलं बल्यमुच्च-
र्हृद्यं साग्नि द्विधा तज्जगति निगदितं जाङ्गलानूपभेदात् ।
मेहघ्नं स्वादु रूक्षं रुचिमदतिलघुच्छर्दिवातप्रमाथि
स्निग्धं मन्दाग्न्यपथ्यं कफि गुरु मधुरं पिच्छिलं वृष्यमन्यत् ॥२२३॥

अच्छी तरह मिलजाने पर नीचे उतार लेवे। अब इस समार में गुड भी मिला दे। इन सभी को एक पात्र में भरकर उसका मुख बन्द करके रखदे। इसे ही संधानपद्धति कहते हैं। तीन मास पीछे इस तरह 'आम्रसंधान' सिद्ध हो जाता है। यह आम्र संधान जिह्वागत जड़ता को मिटाता, भुक्त अन्न का पाचन करता है। हरी (ताजा) पितकाली के अन्तर्भाग में मेथी तथा लवण और हरिद्राचूर्ण भर दे। फिर इन्हें तैल में निमग्न कर दे। इनके सेवन से परम अरुचि भी आख मींच लेती है, अर्थात् रुचि उत्पन्न होती है ॥ २१६–२२२ ॥

सभी प्रकार के मांस प्रायः संग्राही, वातहर, भारी, रस में मधुर, शुक्रल, अत्यन्त बलकारक, हृद्य तथा अग्निसंदीपक होते हैं। जगत में मांस, जांगल और आनूप भेद से, दो प्रकार के कहे गये हैं। इसमें जांगल मांस प्रमेह-नाशक, स्वादु, रूक्ष, रुचिकर अत्यन्त लघु तथा वमन और वात-विकार का नाश करने वाला माना जाता है। आनूप मांस स्निग्ध, मंदाग्नि में अपथ्य, कफकारक, भारी, मधुर, पिच्छिल, तथा वृष्य कहा गया है ॥ २२३ ॥

अथ शाकानि ।

वास्तूकं[5] द्वितयं विपाककटुकं बल्यं सरं क्षारलं
दुर्नामासृगरोचकाग्निमृदुताप्लीहत्रिदोषापहम् ।
पोताकी[6] कफलाऽस्रपित्तपवनारोचापहा शुक्रदा
पालङ्क्या कफवातला गुरुहिमा विष्टम्भिनी भेदिनी ॥ २२४ ॥

शाक-वर्ग

क्षुद्र तथा बृहद् पत्रभेद से दोनों प्रकार का बथुआ विपाक में कटु, बल्य, सारक, क्षारयुक्त तथा अर्श, रक्तपित्त, अरोचक, अग्निमांद्य और तीनों दोषों को नष्ट करता है।

१–'अचार, अथाणू' इति प्रसिद्धम्। २–पित्तकारिण्या "आमे फले शलाटुः स्यात्" इत्यमरः। ३–स्वागे फलश्रवणान्न विशेषगुणाभिधानप्रयोजनमस्येति सतोष्यम्। ४–"भक्ष्यार्थे सह भोज्यत्वाच्छाकवर्गोऽभिधीयते"। इति। ५–बृहदल्पपत्रभेदात्। ६–उपोदिका 'पोई' इति ख्याता।

पित्तघ्नस्तन्दुलीयो लघुशिशिरसरोऽसृक्कफघ्नोऽतिरुच्यो
लोणा[2] रूक्षाऽम्लगुर्वी कफपवनहरी दीपनी शीतलाऽपि ।
चुक्रा[3] स्वाद्वी सपित्ता रुचिकृदपवना श्लेष्मलाऽम्ला लघिष्ठा
मेथी हृद्याऽग्निदात्री क्रिमिकफपवनध्वंसिनी बद्धविट्का ॥ २२५ ॥
किंचित्सरा शीततरा सवातश्लेष्मा सरौक्ष्या मधुरा च नीली ।
दद्रुघ्नपत्रं मृदुलं क्रमिघ्नं श्वासे च कासे कथितं कफघ्नम् ॥ २२६ ॥
सवह्निमान्द्यारुचिबन्धकानि साष्ठीलिकाशूलकफानिलानि ।
आध्मानगुल्मश्वयथूदराणि क्षिणोति सेहुण्डदलस्य शाकम् ॥ २२७ ॥
पौनर्नवं किसलयं नयनामयार्ह
श्वासक्षयश्वयथुपाण्डुकफज्वरघ्नम् ।
विध्वस्तपित्तरुधिरक्षयकासमेह-
च्छर्दिज्वराणि नववासकपल्लवानि ॥ २२८ ॥
गुडूचीपत्राणां जनितदहनानां ज्वरहृतां
लघूनां बल्यानां त्रिमलमथनानां जिततृषाम् ।
प्रमेहे पथ्यानामतिसृतिहराणां रुचिकृतां
कथङ्कारं यामो गुणगणनपारं वयमपि ॥ २२९ ॥

पोतकी (पोई) कफकारक, शुक्ल तथा रक्तपित्त, वात और अरुचि को दूर करती है। पालंक्या (पालक) कफ-वात-कारक, गुरु, शीतल, विष्टंभी और भेदक है ॥२२४॥

तांदलजा (चौलाई) पित्तघ्न, लघु, शीतल, सारक, रुचि-उत्पादक तथा रक्त-पित्त और कफ का नाश करनेवाला है। लोणा (लूणख्यो) नोनिया रूक्ष, अम्ल, गुरु, कफ-वात-नाशक, दीपन और शीतल है। चुक्रा (चूको) स्वादु, पित्तकर, रुचिकर, श्लेष्मल, अम्ल, लघु तथा वात-नाशक है। मेथी हृद्य, अग्निप्रदीपक, मलको बांधने वाली तथा क्रिमि, कफ और वात का विध्वंस करनेवाली है ॥ २२५ ॥

नीली किंचित् सारक, अत्यंत शीतल, वात-कफकारक, रूक्ष और मधुर है। दद्रुघ्न-पत्र कोमल तथा क्रिमिनाशक है। कफप्रधान कास तथा श्वास में प्रशस्त कहा गया है। सेहुण्ड के पत्तों का शाक अग्निमांद्य, अरुचि, विबन्ध, अष्ठीला, शूल, कफ, वात, आध्मान, गुल्म, शोथ तथा उदर-रोग का नाश करता है। पुनर्नवा के नूतन पत्तों का शाक नेत्र-विकार, श्वास, क्षय, शोथ, पाण्डु, कफ और ज्वर को नष्ट करता है ॥ २२६–२२८ ॥

दाहयुक्त ज्वर को हरने वाले, लघु, बलकारक, त्रिदोष को मथनेवाले, तृषा को जीतनेवाले, प्रमेह में पथ्य, अतीसार के नाशक तथा रुचि के उत्पादक गुडूची पत्रों के गुण-गणना का पार हम भी नहीं पा सकते ॥ २२९ ॥

१–'चौंलाई' इति मध्यदेशे 'तांदलजो' इति गुर्जरे प्रसिद्धा। २–'लूणख्यो' इति प्रसिद्धा। ३–'चूको' नाम।

वरं भङ्गाशाकं मदयति न हा कं कफहरं
निहन्याद्विट्सारं हुतवहविकारं लघुतरम् ।
कफार्तो वार्ताकं वरमनिलवार्तां न सहते
करोत्युग्रं पित्तं ज्वररुचि विरक्तं सरमपि ॥ २३० ॥

कूष्माण्डशाकं कफकार्यनुष्णं गीतं भिषग्भिर्गुरु कान्तिपीतम् ।
प्रहारि पित्तस्य हुताशकारि चेतः स्थिरं मेदि करोति रेतः ॥ २३१ ॥

किं वर्णितुं वीतकफा नु तुम्बी शस्येत शिम्बी गुरुरेव बिम्बी ।
धातुं विधातुं दवथुं विहातुमेता हि मान्या जगतीह नान्या ॥ २३२ ॥

अमरुद्गुरु रक्तद्वेषि पित्तप्रमोषि
ज्वरहरमतिसारि प्रौढवह्निप्रसारि ।
कृमिकवलनकारि श्लेष्ममेहप्रहारि
प्रकटितकटुभावं कारवेल्लं ब्रवीमि ॥ २३३ ॥

अनुभव हिमभावं पित्तत शत्रुभावं
कुरु पवनकफाभ्यां मित्रभावं भजस्व ।

भाग का शाक उत्तम है, अनीसार और अग्निमांद्य को दूर करने वाला, कफ-हर तथा लघु है । अरे ! यह किसको उन्मत्त नहीं करता ? वार्ताक (बैंगन) कफ-जन्य वेदना में उपकारक है । यह वात की बात भी सहन नहीं कर सकता, पित्त को उग्र कर देता है–तथा ज्वर के प्रति विरक्त और सारक है ॥ २३० ॥

वैद्योंने, कूष्माड क शाक को कफकारक, गुरु, शीतल तथा शरीर को स्वर्णाभ पीतकांति अर्पण करनेवाला माना है । यह पित्तप्रहारक, अग्निप्रदीपक, चित्त-स्थैर्य-कारक, वीर्योत्पादक तथा भेदक है ॥ २३१ ॥

कफ से रहित तुम्बी (घीया, दूधी) तथा शिंबी (फली) का कहां तक वर्णन करें ? बिंबी गुरु ही है । शुक्र की वृद्धि तथा दाह के ह्रास में इनके अतिरिक्त विश्व में अन्य कोई भी मान्य नहीं है ॥ २३२ ॥

कारवेल्ल (करेला) वातहर, लघु, रक्तविकार और पित्त का नाशक, ज्वरहर, सारक, जठरानल का उत्तम प्रसारक, क्रिमिका कवल करजानेवाला, कफ और प्रमेह का प्रहारक तथा कटु-भाव का प्रकाशक माना गया है ॥ २३३ ॥

रानकोपातकी (गिलगिल तोरूयू) के समक्ष शीतल स्वभाव की दीक्षा ले ।

१–अतिसारम् । २–अग्निमान्द्यम् । ३–पित्तकर्तृत्व चास्य जीर्णविषय, तेन 'हृद्य रुच्य-मपित्तलम्' इति मा स्वोक्त बालविषय न विरुध्यते । तथाहि—"सा बाला कफपित्तघ्नी पक्वा सक्षारपित्तला" इति । तन्त्रान्तरेऽपि—"तद्बाल कफपित्तघ्न वृद्ध पित्तकरं लघु ।" इति । ४–अनतुरागि ज्वरघ्नमित्यर्थ । ५–'घीया' 'दूधी' इति प्रसिद्धा । ६–'फली' ७–'कुन्दूरी, गीलोडा' इति । ८–शुक्रम् । ९–लघु ।

ज्वरमपहर कासं किं करोषि प्रकाशं
दमय दवथुभीतिं राजकोषातकीतः ॥ २३४ ॥

कोषातकी[2] स्यात्तुहिनावशेषा सश्लेष्मदोषाऽपि लघुर्विशेषात् ।
वृष्यं पैटोलं[3] ज्वरनाशलोलं कासापहं खण्डितवन्धगोलम् ॥ २३५ ॥
कर्कोटकं[4] कीर्तितमग्निकारि कासज्वरश्वासविकारहारि ।
हृलासकुष्ठारुचिकष्टनाशि प्रभेदि पाके कटु शैत्यराशि ॥ २३६ ॥
अर्शांसि विदधती क्षयमग्निं कुर्वती बलमलं कलयन्ती ।
जन्तुगुल्मविषपित्तविलासान् डोडिका[5] विलसति क्षपयन्ती ॥ २३७ ॥
अगस्त्यसूनं ज्वररोगमूनं करोति तिक्तं कफपित्तरिक्तम् ।
पुष्पं कदल्या गुरु रक्तकुल्या[6]पित्तक्षयघ्नं पवमानविघ्नम् ॥ २३८ ॥
कदलीमध्यमदण्डश्चण्डः पित्तास्रसंहरणे ।
प्रदरार्तिकालदण्डो मान्द्यमरोचं च खण्डयति ॥ २३९ ॥
त्रिदोषकालं हिमभेदि बालं वृद्धं तु मूलं त्रिमलानुकूलम् ।
तदीयपत्रं कफकृच्चरित्रं पित्तस्य मित्रं स्वगुणैः पवित्रम् ॥ २४० ॥

पित्त से शत्रुभाव तथा वात कफ से मित्र भाव रखें। ज्वर को हटा दें। दाह के भय का दमन कर दें तथा कास के प्रकाश को समेट लें ॥ २३४ ॥

कोषातकी (तुरई) संपूर्ण शीतल तथा कफ दोष से युक्त होते हुये भी विशेषतया लघु है। पटोल (परवल) वृष्य, ज्वर-नाशक, कासहर तथा विबन्धको दूर करनेवाला है। कर्कोटक (कंकोडा) अग्निप्रदीपक, कास, ज्वर और श्वास विकार का विदारक, हृल्लास, कुष्ठ और अरुचि के कष्ट का संहारक, भेदक, पाक में कटु तथा अत्यंत शीतल है। डोडीका अग्निवर्धक, अत्यंत बलकारक तथा अर्श, क्रिमि, गुल्म, विष और पित्त के विलास को खत्म करदेने वाली है। अगस्त्य-पुष्प ज्वर (विशेषतया चातुर्थिक) नाशक, तिक्त तथा कफ-पित्त हारक है। कदली पुष्प (केले का फूल) भारी, रक्त-संग्राहक,[7] तथा वात पित्त और क्षय को नष्ट करनेवाला है। केले के मध्यभाग का दंड (कदली स्तंभ) रक्त-पित्त का प्रचंड संहारक, प्रदर रोग के लिये साक्षात् कालदंड तथा अग्निमांद्य और अरुचि को खण्ड खण्ड कर देनेवाला है ॥ २३५–२३९ ॥

छोटी मूली शीतल, भेदक तथा त्रिदोष नाशक है। बडी मूली त्रिदोष करती है। मूली के पत्र अपने चरित्र से कफको काटनेवाले, पित्त के मित्र और गुणों से पवित्र

१–'गिलगिलतोन्यूं, गलकातूरिआ' इति च प्रसिद्धवल्लीफलशाकविशेषः । २–तद्भेद एव । ३–'परवल' इति प्रसिद्धं फलशाकम् । ४–'ककोडा' कारवेल्लाकृति । ५–अनेनैव नाम्ना गुर्जरे प्रसिद्धा शास्त्रे तु 'जीवन्ती' इति । ६–रक्तप्रवाहः । तेन रक्तपित्त-रक्तातिसार-प्रदरादिहरमित्यर्थः । ७–उक्तं च पलाण्डुराजशतके– "क्रमेलकानामुपरि क्रमेण विस्तार्य हंसच्छदतूलकानि । आरुह्य दोषत्रयघस्मराणि प्रतस्थिरे बालकमूलकानि ॥" इति ।

अलं समीरं कफयुद्धवीरो वेणो करीरः किल दाहधीरः।
सौष्ण्य सकण्डु सकटु सवह्निः स्याच्छूरणोऽर्शः कफकोपहन्ता॥२४१॥
अतीव बल्या रुचिदा बलासविबन्धविष्टम्भकृदालुकी स्यात्।
आलूनि भेदीन्यपि दुर्जराणि सश्लेष्मवातानि महाबलानि ॥ २४२ ॥

वातध्वंसविशारदः कफकलासंवर्धकः शीतलो
बल्यः स्वादुरसो न पित्तबहुलः प्रोक्तः पलाण्डुर्बुधैः।
पित्तार्शोऽस्रकफानिलग्रहणिकारुग्गञ्जनं गृञ्जनं
तीक्ष्णोष्णं लघु तिक्तकं हुतवहप्रोद्बोधि संग्राह्यपि ॥ २४३ ॥

माने गये हैं। (वैद्य बृहस्पति श्रीकृष्णराम महाकवि कृत 'पलाण्डुराजशतकम्' में मूली के काव्यमय शैली में उपवर्णित आयुर्वेदोक्त गुण धर्मों को अवश्य ही पढ़ें, भिषग् श्रेष्ठ श्रीलक्ष्मीरामने उन्हें अपनी टिप्पणी में नीचे उद्धृत भी किये हैं) ॥ २४० ॥

वेणु के अङ्कुर वात को नष्ट करने में समर्थ तथा कफ युद्ध के विजेता वीर हैं। सूरण उष्ण, कण्डूप्रद, कटु, अग्निप्रदीपक तथा कफ के कोप को नष्ट करनेवाला है। आलुकी (अरवी) अत्यन्त बलवर्धक रुचिकर तथा कफ, विबंध और विष्टंभ करनेवाली है। आलू भेदक होते हुये भी दुर्जर कफ-वात-कारक तथा अत्यंत बलदायक हैं ॥ २४१-२४२ ॥

बुद्धिमान् वैद्योंने, पलाण्डु (प्याज) को, 'वातविध्वंसविशारद', कफ कला का संवर्धक, शीतल, बल्य रस में मधुर तथा अधिक पित्त नहीं करनेवाला कहा है। (महाकवि श्रीकृष्णरामजी की 'पलाण्डुराजशतकम्' एक परमोत्तम कवितामय मौलिक कृति है। आयुर्वेदवाङ्मय में इस तरह का यह प्रथम ही नूतन-सम काव्य

१-'अर्शोघ्न सूरण कन्द' इति कोश। उक्तं च पलाण्डुराजशतके—"माम-र्षमर्शोवधवद्धदीक्षो निरूढशस्त्रव्रणकर्कशाङ्गः। स सूरणः सद्गुणपूरणश्रीरमुष्य नासीरमलं चकार॥" इति। २-'अरी, अल्वी' च। ३-एषामभक्ष्यत्वमुक्तं धनपतिमिश्रैः। तथा च तत्पाठः—"कन्दो बहुविधो लोकैरालुशब्देन भण्यते। कचालु चैव घण्टालु पिण्डालु शर्करादिकम्॥ द्वङ्गैर्जर्यन् समानीतं निलातीपदपूर्वकम्। कोशादिषु न दृष्टं यद्भक्षितं चाविवेकिभिः॥ निघण्टौ नास्य पर्याया न गुणाः परिकीर्तिताः। स्मार्तैरेतद्यत्नहतमभक्ष्यं तद्विसार्थिभिः॥ सानूदाना यथाऽभक्ष्यस्तथैतत् कथितं बुधैः। निजधर्ममजानद्भिर्गृहीतं नालिशैर्यथा॥" इति। ४-'प्याज, डुगली' इति प्रसिद्धः कन्दविशेषः। स च श्रीगुरुभिः पलाण्डुराजशतकाभिधानेन विचित्रप्रबन्धेन वर्णितः। तस्मान्निमोऽयं श्लोकः—"तदा प्रभृति वैदिकैः स वरवर्णिनीसत्कृतः पलाण्डुरुपसेवितः पटुचमत्कृतिः स्नेहतः। चिरं रुचिमुदञ्चयन् धुरि रसायनानां स्थितो गदानहह संहरन्निह दधातु कामं सताम्॥" इति। ५-'सलगम' इति ख्यातः पलाण्डुभेदः। उक्तं च वाप्यचन्द्रेण—"गन्धाकाररसैस्तुल्यो गृञ्जनस्तु पलाण्डुना। सूक्ष्मनालाग्रपत्रत्वाद्भिद्यते तु पलाण्डुतः॥" इति। अस्य नपुंसकलिङ्गत्वं चिन्त्यमिति।

दोषोत्सारिणि धीप्रसारिणि महानैर्बल्यसंहारिणि
श्लेष्मच्छेदिनि वातभेदिनि भृशं भग्नास्थिसंमेलिनि ।
रक्तोद्रेकिणि पित्तहेलिनि लघावप्यौषधीनां गुरौ
दुर्गन्धः सुगुणे किमत्र लशुने धातस्त्वया स्थापितः ॥ २४४ ॥

गुणेष्वेको दोषो बहुषु नियतं मज्जति यथा
करेष्विन्दोरङ्कः श्रुतिरियमलीकेति कलये ।
तथा ह्युच्चैः पित्तं कफहृदमरुद्भेदि लशुनं
महावृष्यं लोकैरसुरभितया त्यज्यत इह ॥ २४५ ॥

स्फट्या समं स्वेदनविप्रमुक्ततिक्तत्वनिम्बच्छदसिद्धशाकः ।
वलासपित्तज्वरकुष्ठजन्तुच्छर्दिप्रमेहारुचिदृग्गदघ्नः ॥ २४६ ॥

है । भट्ट श्रीकृष्णराम की लोकोत्तर प्रतिभा के जिज्ञासुओं से साग्रह निवेदन है कि वे इस सर्वांग रसमय काव्य का एकबार अवश्य पारायण करें ।) ॥ २४३ ॥

लशुन दोषों का उत्सारक, मेधा का प्रसारक, अत्यंत निर्बलता का संहारक श्लेष्मा का छेदक, वात का भेदक, भग्न अस्थियों का संमेलक, रक्तवर्धक तथा पित्त का प्रेरक है । लघु होता हुआ भी औषधियों का गुरु है । (अपने गुणों के कारण गुरुवत् पूज्य है) इन अनेकविध उत्तम गुणों से युक्त लशुन में, हे विधाता ! तू ने न जाने क्यों यह दुर्गंध दोष रख दिया है ?) ॥ २४४ ॥

शास्त्र का यह वचन कि बहुत से गुणों में एक दोष विलीन हो जाता है जैसे चंद्रमा की समुज्वल-किरणों में उसका काला धब्बा- वह इस कलिकाल में असत्य है । (महाकवि कालिदास ने अपने 'कुमार-संभव' महाकाव्य में कहा है कि-'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः' ग्रंथकार इसी भाव को यहां उद्धृत करते हुये-लशुन में यह उक्ति चरितार्थ नहीं होती यह स्पष्ट करने के लिये कहते हैं कि) क्योंकि, लशुन पित्त का भेदक, कफ- का छेदक तथा वात का नाशक एवं परम वृष्य है । इतने गुणों से युक्त होते हुये भी यह अपने एक ही दुर्गंध- दोष के कारण जन- समाज से परित्यक्त है ॥ २४५ ॥

नीम के पत्तों को स्फटी डालकर उबाल लेवें; इस तरह करने से उनकी कटुता जाती रहती है । इन पत्तों से सिद्ध किया गया शाक कफ, पित्त, ज्वर, कुष्ट, कृमि, वमन, प्रमेह, अरुचि तथा नेत्र- विकार को नष्ट कर देता है ॥ २४६ ॥

१-अस्यापि तत्रैव शतके वर्णनम् । यथा-"समन्ततो वर्मपिनद्धमर्मा विभग्नसंधानविधाविदग्धः । पफाण पीयूषपृषत्समुत्थो रसं दधानो मिषतां रसोनः ॥" इति । २-'एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः' इति । कुमारसंभवोक्तेराक्षेपः । ३-दुर्गन्धितया । कार्यवशाद्भुक्तस्यास्य दुर्गन्धापनयनप्रकारो ग्रन्थान्तरोक्तः "कुष्ठैलवालुकैलामुस्तकधान्याकयष्टिमधुकवलः । हरति मुखपूतिगन्धं रसोनमदिरादिगन्धं च ॥" इत्यनुसर्तव्यः ।

अरोचवैरस्ययकृद्विकिमिप्रभञ्जनश्लेष्मगदप्रभञ्जनः ।
रूक्षस्तयोष्ण. सुरभी रज प्रद पोटीनक कल्कविधौ प्रशस्यते ॥ २४७ ॥
क्षीरे स्नुहीजे प्रतिभावितस्य सस्वेद्य धौतस्य मुहुर्जलेन ।
दध्ना तथा हिङ्गुपटूषणाद्यैश्चमत्कृत स्याल्लवणस्य शाकम् ॥ २४८ ॥

पोदीना अरुचि, मुख की विरसता, यकृत्-विकार, वमन, कृमि, वात और कफ को दूर कर देता है—यह रूक्ष, उष्ण, सुगंधित तथा आर्तव-जनन है। इसका उपयोग चटनी आदि में प्रशस्त है ॥ २४७ ॥

लवण को थुही क्षीर की तीन बार भावना दे—फिर पानी में पुन पुन उकाल कर इसे प्रक्षालित करते रहें। अन्त में, दहि तथा हींग, मिरच, नमक, आदि मसाले मिला कर लवण-शाक सिद्ध कर लें। यह शाक चमत्कार-पूर्ण गुण दर्शाता है ॥ २४८ ॥

अथ तैलम् ।

तैल तैल व्यवायि व्रणहृदपवनश्लेष्म चोष्णं विकाशि
त्वग्गर्भागारशोधि प्रकटयति बल केश्यचक्षुष्यवृष्यम् ।
मेध्य मिष्टं प्रमेहक्रिमिजठरशिर कर्णरुग्भङ्गपथ्य
सूक्ष्म तिक्त कषाय सरमुरदहन रक्तपित्तप्रकोपि ॥ २४९ ॥
तीक्ष्णोष्ण लघु सार्षप कटुरसं पित्तास्रसदूषण
मेदोर्श कफमारुतश्रुतिशिरोरुकुष्ठकोठापह ।
कण्डूजन्तुगणव्रणान् विजयते तैल न पथ्य दृशो
राजीतैलमतीव तीक्ष्णकटुकं तद्वत्तुवर्या अपि ॥ २५० ॥

तैल-तिलका तेल व्यवायी, विकाशी, उष्ण, सूक्ष्म, तिक्त, कषाय, मधुर, मेध्य, केश्य, बल्य, चक्षुष्य, वृष्य, त्वच्य, गर्भाशय-शोधक, उर में दाह का उत्पादक, रक्तपित्तकारक तथा प्रमेह, क्रिमि, उदर, मस्तक और कर्णरोग में पथ्य है। सर्षपतैल तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, रस में कटु, रक्तपित्तदूषक, तथा मेद, अर्श, कफ, वात, कुष्ठ, कर्ण और मस्तक के रोग, कोढ, खुजली, क्रिमि और व्रणसमूह का नाशक है। मालिश करने से तैल त्वचा तथा नेत्र को लाभ करता है। यही खाने से त्वचा तथा नेत्र को हानि-कारक है। राई का तेल अत्यत तीक्ष्ण तथा कटु है। तुवरी का तैल भी गुणधर्म में राई तेल के समान ही है। अलसी का तैल उष्ण रक्तपित्त प्रदूषक, कफकारक तथा

१—प्रभञ्जनो वायु "पवमान प्रभञ्जन" इति कोशात्। २—'चटणी' इति प्रसिद्धे। ३—निहुत्य इति शेष। ४—पुष्कलजले समाध्येत्यर्थ। ५—शाकसस्कारप्रयोज्यत्वात्तदनु तैलगुणाभि धानम्। ६—तिलोद्भवम्। ७—त्वच शुद्धिकरत्वमभ्यङ्गेन, न पानाभ्यासेन। "त्वग्दोषपकृदचक्षुष्यम्," इति वाग्भटोक्ते। ८—पश्चिमार्णवतीरजो वृक्षविशेष।

तैलं त्वतस्याः पवनप्रकम्पि कफास्रपित्तप्रदमुष्णमुक्तम्।
ऐरण्डमुष्णं सरमामवातकोष्ठार्तिगुल्मज्वरशोथसादि ॥ २५१ ॥

रालस्य तैलमकफानिलकुष्ठपामा-
विस्फोटकं गुरु कुसुम्भभवं सदोषम्।
अन्यत् स्वयोनिसदृशं गुणतः प्रदिष्टं
श्रीवाग्भटेन तदिहापि विचारणीयम् ॥ २५२ ॥

वातनाशक है। एरण्ड तैल उष्ण, सारक तथा आमवात, कोष्ठगत विकार, गुल्म, ज्वर और शोथ को नष्ट करनेवाला है। राल का तैल कफ, वात, कोढ, पामा और विस्फोट को दूर करता है तथा भारी है। कुसुंभतैल त्रिदोषकारक है। जो तैल जिस द्रव्य में से निकाला गया हो वह तैल उसही द्रव्य के गुणधर्म के समान होता है। 'तैलं स्वयोनिवत्' यही वाग्भट का मत है ॥ २४९–२५२ ॥

अथ दुग्धादि[2]।

मदभ्रान्तिश्वासानिलरुधिरपित्तप्रशमनं
गरिष्ठं संदिष्टं तुहिनमतिमिष्टं कफकरम्।
क्षये[3] कुद्धं स्निग्धं रचयति विबुद्धं मनसिजं[4]
सुधामुग्धं दुग्धं बलविधिविदग्धं पिब विभो ॥ २५३ ॥

पयः पीत्वा पीनो भव कफविलासाञ्छ्रय लभ
प्रभां पित्तातङ्कं जहिहि बहु दूरं क्षिप जराम्।
शतं स्त्रीणां शश्वद्रमय शमय प्रौढमनिलं
धियं तीक्ष्णां धेहि प्रकटय शरीरे निबिडताम् ॥ २५४ ॥

गवां दुग्धं स्निग्धं कफि गुरु सरं जीवनतरं
मरुत्पित्तच्छेदि श्रममदविदाहभ्रमहरम्।

दूध आदिः-मद, भ्रांति, श्वास, वात और रक्त-पित्तविकार का शामक, कफकारक, क्षयनाशक, कामप्रबोधक, गरिष्ठ, शीतल, अत्यंत-मधुर, स्निग्ध, बल देने में निपुण तथा सुधा को भी मुग्ध करनेवाले दुग्ध का, हे भगवन्! आप पान करें! दूध का पान करके पुष्ट होइये, कफ के विलास-केन्द्र बनिये, तेज प्राप्त कीजिये, पित्त के आतंक को नष्ट करिये, वृद्धावस्था को सुदूर फेंक दीजिये, शतरमणियों के साथ रमण कीजिये, प्रवृद्ध वात को दबा दीजिये, बुद्धि को तीक्ष्ण कीजिये, तथा शरीर में दृढता प्राप्त करिये ॥ २५३–२५४ ॥

१–'अलसी' इति प्रसिद्धायाः। २–तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिवेत्" इति नियमस्मरणाद्दुग्धगुणाः, तत्साहचर्याच्च संतानिकादधितक्रादेश्च गुणाः प्रोच्यन्ते। ३–क्षये क्रुद्धं क्षयघ्नमित्यर्थः। ४–कामम्।

विपास्रघ्नं जीर्णज्वरविजयि रेतो वितनुते
हिमं वल्यं स्तन्यं प्रचुरयति कृच्छ्रं शमयति ॥ २५५ ॥
कृष्णाया पवनापहं गुणकरं पीतप्रभाया मरु-
न्मायुर्हन्ति विचित्ररक्तवपुषो धेनोरवात पयः ।
शुक्लायाः कफि कि च वत्सवियुजो दोषत्रयीदूषकं
बल्यं वष्कयिणीभव त्रिमलजित् सतर्पणं भेद्यपि ॥ २५६ ॥
शीतं स्याद्गुरु माहिषं बहुबलं सुस्वादभिष्यन्दवलं
निद्राशुक्रहुताशमार्दवकरं गव्यादतिस्नेहलम् ।
छागक्षीरमदोषलं लघु हिमं सग्राहि पित्तास्रतृट्-
कासश्वासमदक्षयज्वरगदप्रोत्सारि सर्वोत्तमम् ॥ २५७ ॥

गाय का दूध स्निग्ध, कफकारक, गुरु, सारक, जीवनीय, वात-पित्त का छेदक, श्रम, मद, विदाह और भ्रम का नाशक, वीर्य-वर्धक, विष, रक्त-विकार तथा जीर्ण ज्वर को नष्ट करनेवाला, शीतल, बल्य, अत्यंत स्तन्य तथा मूत्रकृच्छ्र शामक है। कृष्ण गाय का दूध वातशामक तथा गुणकारक है। पीतगाय का दूध वात पित्त-शामक है। चित्रित तथा रक्ताभ गाय का दूध वातहर होता है। श्वेत-गाय का दूध कफकारक तथा जिस का वत्स मर गया हो उसका दूध त्रिदोषकारक कहा गया है। बाखडी गाय का दूध बलकारक, सतर्पक, भेदक तथा तीनों दोषों को दूर करने वाला है ॥ २५५—२५६ ॥

भैंस का दूध शीतल, भारी, अत्यंत-बल-कारक, मधुर, अभिष्यंदी, निद्राप्रद, शुक्रल, जठरानल की तीक्ष्णता को मंद करने वाला तथा गोदुग्ध की अपेक्षा अधिक स्नेहयुक्त होता है। (गाय के दूध की अपेक्षा भैंस के दूध में अधिक-स्नेह होता है 'गव्यात् स्निग्धतर गुरु'- यह सुश्रुत का मत है। चरक मतानुसार भैंस के दूध की अपेक्षा गाय का दूध अधिक स्नेहवाला कहा गया है। यह परस्पर विरुद्ध कथन है। खरनाद भी गोदुग्ध में माहिष-क्षीर की अपेक्षा, अधिक स्नेह मानते हैं। 'गव्य स्नेहोत्तम क्षीरं, गव्याद्य पयस पय । यथोत्तरं स्नेहहीन औरभ्रच्छागमाहिषम्' ॥

१—मृतवत्साया । २—'बाखडी' इति ख्याताया धेनोर्दुग्धमिति । ३—गव्यदुग्धमपेक्ष्य महिषदुग्धे मानत स्नेहाधिक्यमित्यर्थ, तथैव प्रत्यक्षसिद्धत्वात्, "स्निग्धतरम्" इति सुश्रुतदर्शनाच । न च तथात्वे चरकविरोध । "महिषीणां गुरुतरं गव्याच्छीततर पय । स्नेहादूनमनिद्राणामत्यग्नीनां हित च तत् ॥" इति । यत स्नेहादूनमित्यस्याथविवेचनाया "माहिषस्य स्नेहोनत्व हृद्यादिगुणविषयम् । महिषीक्षीरजात् स्नेहादूव्यक्षीरज स्नेहो हृद्यादिभिर्गुणैरधिक इत्यर्थ " इति हेमाद्रि । "तस्मादत्र गव्यस्नेहादूनमिति योज्यम् । तेन महिषीक्षीरं गव्यस्नेहाद् हृद्यादिविषये न्यून हीन, गव्यक्षीरात् पुन स्नेहे विषयेऽधिकमेवेत्यर्थ " इति च चन्द्रिकाकार ।

सुधावद्धारोष्णं[1] त्रिमलहरमुष्णं न हि पयः
स्मृतं धाराशीतं भवति गुरु पीतं त्रिमलकृत् ।
अभिष्यन्दि त्वामं गुरु कफि कृतामं पुनरिदं
शृतोष्णं वातघ्नं जितदवथुविघ्नं स्मृतिकरम् ॥ २५८ ॥
सितासहायं कफि वातहारि शृतं सितायुक्तमदोषि वृष्यम् ।
पित्तं कफं वा तरलीकरोति पयो गुडाढ्यं विनिहन्ति कृच्छ्रम् ॥ २५९ ॥
बल्यं प्रभातेऽग्निहरं कफाय मध्याह्नकाले कफवातबाधि ।
प्रायोऽपराह्णेऽनिलनुन्निशायामायुःप्रदं रोगहरं बलाय ॥ २६० ॥
अर्धाम्बु दुग्धमवशिष्टपयोविभागं
दोषापहं लघुतरं वरमामनन्ति ।
नीरं विना बहुशृतं सघनं[2] यदास्ते
मन्दाग्नि तत्तु बलकारि सरं ससारम्[3] ॥ २६१ ॥
फणामि फेनं[4] पयसः समीरबलासपित्तास्रनिरासशूरम् ।
क्षये विरेकेऽप्यरुचौ ज्वरेऽपि कृशेऽपि वृद्धेऽपि शिशौ प्रशस्तम् ॥ २६२ ॥

संभव है चरक-कालीन गाय के दूध में अधिक स्नेह उतरता रहा होगा। बकरी का दूध त्रिदोष-हर, लघु, शीतल, संग्राही तथा रक्त पित्त, प्यास, कास, श्वास, मद क्षय और ज्वर का नाश करनेवाला तथा सर्वोत्तम माना गया है ॥ २५७ ॥

धारोष्ण दूध (माताके स्तनकी तरह सीधा मुंहद्वारा पीया गया) अमृततुल्य गुणों से युक्त होता है। जो दूध दुह लेने पर शीतल हो गया हो, वह धाराशीत कहलाता है। गाय का धाराशीत दूध भारी तथा तीनों दोषों को प्रकुपित करनेवाला होता है। कच्चा दूध अभिष्यंदी, भारी तथा कफ और आम को बढानेवाला है। गरम किया हुआ दूध वात और दाह का नाशक तथा स्मृति देनेवाला कहा गया है। दूध को गरम करके तदुपरांत शक्कर मिलाकर पीने से कफ की वृद्धि तथा वात का ह्रास होता है। शक्कर के साथ उकालकर गरम किया गया दूध त्रिदोष-शामक तथा वृष्य माना जाता है। गुड-युक्त दूध कफ पित्त के प्रभाव को मिटाता तथा मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है। प्रातःकाल में दूध का सेवन, अग्नि को मंद करनेवाला तथा कफवर्धक कहा गया है। दूध में, उससे आधा जल डालकर उकालें जलभाग निःशेष होने पर, अवशिष्ट दुग्धभाग, दोषनाशक, अत्यंत हलका तथा उत्तम होता है। बिना जल के ही खूब औटाया गया मलाईवाला दूध मंदाग्नि करनेवाला, बलदायक तथा सारक होता है ॥ २५८—२६१ ॥

धारोष्ण दूध को मथकर निकाला गया फेन वात, कफ, तथा रक्त-पित्त को

१—मुखमेव यस्य पात्रम्। २—'रबडी' इति प्रसिद्धम्। ३—सन्तानिकासहितम्। ४ धारोष्णदुग्धजं, रात्रावाकाशे चन्द्रनक्षत्रशीतीकृतस्य पयसः प्रातर्मन्थनदण्डेन युक्त्या समुत्थापितं वा।

जातीजातीफलैलाघुसृणपरिचया मातुलानी विनीय
क्षीरे पादाशनीरे परिपचत समुल्लोलदोलाधिरूढाम् ।
क्षीरस्यार्धावशिष्टा स्थितिमनुभवत शर्कराढ्यस्य साय
स्फारा द्वित्रि॰कटोरा पिवत यदि चिर चन्दितुं युष्मदिच्छा २६३

दानादग्नेरुत्फणदुग्धमार्द्र॰ काञ्चीशाखाकूर्चकैश्चालनेन ।
लब्ध्वा साम्य सिद्धगोधूमचूर्णैर्वर्त्ते सर्पि खण्डतो लड्डुभावम् ॥ २६४ ॥

सांय भृत्वा कनककलशीं क्षीरसतानिकाभ्या-
मास्ये तस्या॰ सुपिरसुपम मल्लक चापि धृत्वा ।
कोष्णैरच्छच्छगणभेसितैरागलं संपिधेहि
प्रातर्वृष्या रसय सितया सान्द्रसतानिकां ताम् ॥ २६५ ॥

किंचिद्विपाचयित्वा सर्पिषि संतानिकां सान्द्राम् ।
मज्जय रसे सिताया निवेद्य देवाय मात्रया भुङ्क्ष्व ॥ २६६ ॥

नष्ट करने में शूरवीर एव क्षय, अतीसार, अरुचि और ज्वर में तथा कृश, वृद्ध और बालक सभी के लिये प्रशस्त है ॥ २६२ ॥

भाग में जावित्री, जायफल, इलायची तथा केसर यथामात्रा मिलाकर दोलायन्त्र में रख उसे दूध में उससे चतुर्थांश पानी मिलाकर, खूब औटावें। फिर अनुमान से यह जानकर कि अब दूध औटकर आधा रहगया है उसे उतारलें। यदि दीर्घ काल तक की आनन्दमयता प्राप्त करनी हो तो शक्कर युक्त इस दूध के छलकते हुये दो तीन कटोरे सायकाल को पीयें ॥ २६३ ॥

अग्नि पर खूब उफलते हुये दूध को बला की ताजी मोटी टहनी से जल्दी जल्दी हिलाते रहें। इस तरह करने से दूध, सिद्धगोधूम चूर्ण जैसा सुर्ख हो जायगा। इसमें घी और शक्कर मिलाकर लड्डु बनालें। इसे दूध का चूरमा कहते हैं ॥ २६४ ॥

सायकाल को स्वर्ण कलश में दूध की मलाई भरकर उसके मुख को छिद्रपूर्ण मालसे से ढकदें। इस कलश को सरकडो की गरम गरम भोभल में आकठ

१–जावन्त्रिका २–कुङ्कुमम्। ३–भङ्गाम्। ४–'कटोरा' इति प्रसिद्धान् पानविशेषान्। "कटोरा स्त्री स्वनामख्याते पात्रे" इति ब्रह्मवैवर्तपुराणम्। जैमिन्याश्वमेधिके पर्वणि नवमाध्यायेऽपि–"रम्यान्न देवकीदत्त पात्रे काञ्चननिर्मिते। कटोराणा चतु षष्टि पानस्योभयत स्थिता ॥" इति 'कटे ओलच्। रल्योरैक्यम्' इति चिन्तामणि। ५–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धो वलभेद। ६–'दुग्धका चूरमा' इति प्रसिद्धम्। ७–वल्लभसांप्रदायिकै क्रियमाणोऽय प्रकार। ८–'रचने का दरिद्रता' इति भाव। ९–'मालसा' इति प्रसिद्धमावरक मृत्पात्रविशेषम्। १०–'भोभल' इति प्रसिद्धे। ११–प्रातराशसमये, न तु प्रातरेव श्लेष्मभयात्। १२–ख्याताम मज्जमनुरणां 'मलाई' नाम्ना सनाख्याताम्। १३–'चाशनी' इति लोकप्रसिद्धे।

आपूरित कर देवें। प्रातःकाल इस वृष्य गुणयुक्त घट्ट बनी हुई मलाई को सिता-निर्मित चासनी में डालकर भगवान को निवेदित करके फिर यथामात्रा इसका सेवन करें। (वल्लभसंप्रदाय में वस्तुतः रजतकलश में तथा स्वर्णकलश में भी उपरोक्त 'संतानिका' सिद्ध होती है। अतः टिप्पणीकार की इस उक्ति 'वचने का दरिद्रता' को 'वचने यथार्थता' इस अर्थ में समझें।) ॥ २६५–२६६ ॥

दधि ।

दध्युष्णं गुरु दीपनं कफकरं पित्तास्रशोथप्रदं
स्वाद्वम्लं तुवरं रुचिप्रदमभिष्यन्द्यस्ति संग्राहकम् ।
गव्यं तत्र वरं विपाकमधुरं बल्यं पवित्रं परं
वातोन्माथ्यथ माहिषं कफि बहुस्निग्धं मरुत्पित्तनुत् ॥ २६७ ॥
आजं दधि ग्राह्यमलं लघूक्तं श्वासक्षयार्शःकसनानि हन्ति ।
सितासहायं मधुरं पिपासापित्तास्रदाहक्षपणं क्षयघ्नम् ॥ २६८ ॥
ससारं नक्षारं दधिपवनपारं रचयते
सभारं[1] धिक्कारं प्रकटयति हाऽरं[2] हि दवथौ ।
असारं नो सारं जठरजविकारं[3] स्यति[4] रुचि-
प्रसारं संहारं लघु मलविहारस्य[5] कुरुते ॥ २६९ ॥

दधि—दही उष्ण, दीपन, कफहर, रक्त-पित्त और शोथ करने वाला, मधुर, अम्ल, कषाय, रुचिकर, अभिष्यंदी तथा ग्राही है। गाय का दही सभी प्रकार के दही में अधिक गुणयुक्त कहा गया है। यह विपाक में मधुर, बल्य, वातहर तथा परम पवित्र माना जाता है। माहिष दही कफकारक, अत्यंत स्निग्ध तथा वात-पित्तनाशक है। बकरीका दही ग्राही, त्रिदोष-नाशक तथा लघु है। यह श्वास, क्षय, अर्श और खांसी को दूर करता है। शक्कर युक्त यही दही मधुर तथा पिपासा, रक्त-पित्त विकार दाह और क्षय का नाश करने वाला होता है। सारसहित दूध का दही पवन को उस पार धकेलनेवाला तथा दाहको भारसहित (गुरु, भारी) हा! पूर्वक प्रचुर धिक्कार देनेवाला है। असार दूध का दही मनुष्य के जठरजन्य विकार को तोडता है तथा रुचि का प्रसार और लाघवतापूर्वक अतीसार का संहार करता है ॥ २६७–२६९॥

तक्रम् ।

तक्रं ग्राहि कषायमम्लमधुरं वीर्योष्णमग्निप्रदं
दोषघ्नोषि लघुप्रियं ग्रहणिकाकृच्छ्राश्मदुर्नामजित् ।

तक्र (छाछ) ग्राही, कषाय, अम्ल, मधुर, वीर्य में उष्ण, अग्निप्रद, त्रिदोष-नाशक तथा लघु है। यह ग्रहणी, मूत्र-कृच्छ्र और अर्श को नष्ट करता तथा पाण्डु,

१–गुरु। २–हा अरम् इति च्छेदः। ३–अग्निमान्द्यादिकम्। ४–'षोऽन्तकर्मणि' इत्यस्य रूपम्। ५–अतिसारस्य।

पाण्डुप्लीहगदप्रमेहजठराजीर्णोग्रगुल्मक्षय-
व्यापारं निरुणद्ध्ययो दधिसमं जानीहि शेषं गुणैः ॥ २७० ॥

सुरैः सदैव स्पृहणीयमच्छप्रभोज्ज्वलं सारनिधानमेकम् ।
भिनत्ति दोषान् भजतां जनानां शक्रोपमं तक्रमुदाहरामि ॥ २७१ ॥

कपित्थमध्यस्य रजांसि सप्तकृत्वः पयोभिः परिभावितानि ।
निक्षिप्य नीरे मथितानि बाढं तक्रं किमद्धा न विडम्बयन्ति ॥ २७२ ॥

प्लीहा, प्रमेह, उदर, उदावर्त, उग्र गुल्म, अजीर्ण तथा क्षय के व्यापार को रोकता है। अपने अन्य गुणों में यह दही के समान ही माना जाता है ॥ २७० ॥

देवताओं को सदैव स्पृहणीय, श्वेत (इन्द्रपक्ष में प्रकाशमान प्रभा-मण्डलसे युक्त), सार (बल) का एकमात्र निधान तथा अपने सेवन करने वालों के (भक्तों के) दोषों को (दारिद्र्यादि दोषों को) हटानेवाला तक्र, शक्र (इन्द्र) के समान ही है ॥ २७१ ॥

कृत्रिम तक्र बनाने की विधि—कपित्थ के मध्य भाग-गत गूदे को सुखाकर उसका चूर्ण बनालें। इस चूर्ण में दूध की अथवा घोल की सात भावनायें दें। इस तरह भावित चूर्ण को जल में डालकर खूब मथकर छाछ बनालें। यह छाछ असली छाछ को भी परास्त करती है ॥ २७२ ॥

नवनीतम् ।

दीपनं सुरभिजं नवनीतं रक्तपित्तपवनान् द्यति शीतम् ।
ग्राहि वीर्यबहुलं जितकासं शस्तमर्शसि तनोति विकाशम् ॥ २७३ ॥

नवनीतं गुरु शीतं वातश्लेष्माणमुद्धुरं धत्ते ।
महिषीसम्भवमुच्चैः शुक्रं विस्रस्तपित्तास्रम् ॥ २७४ ॥

नवनीत—गाय का मक्खन दीपन, रक्तपित्त और वात का नाशक, शीतल, ग्राही, वीर्य-वर्धक, कासहर, अर्श में प्रशस्त तथा तेजको बढाने वाला है। भैंस के दूध का मक्खन भारी, कफ-वात कारक, शुक्रल तथा रक्त-पित्त शामक है ॥ २७३-२७४ ॥

१—श्वेतम्, पक्षे प्रकाशमानप्रभामण्डलम् । २—सघृतम् । ३—वातादीन्, पक्षे दारिद्र्यादीन् । प्रसंगात्तत्रान्तरीयं तक्रवर्णनं लिख्यते—"कैलासे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठो भवेद्वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेदद्यापि किं केशवः । इन्द्रो दुर्भगतां क्षयं द्विजपतिर्लम्बोदरत्वं गणः, कुष्ठित्वं च कुबेरको दहनतामग्निश्च किं विन्दति ॥" इति । ४—कृत्रिमतक्रकरणस्य प्रकारः । ५—दुग्धैः । घोलेनापि कपित्थगर्भसंस्कार इति प्रकारान्तरम् । ६—गव्यम् । ७—'दो अवखण्डने' इत्यस्य रूपम् ।

घृतम् ।

विपाकमधुरं वरं दवथुदारि गव्यं घृतं
प्रभञ्जनजयि प्रभामतिविकाशि वृष्यं स्मृतम् ।
वलासि महिषीघृतं रुधिरपित्तवातापहं
हितं कसनसंकटे सुखकृदाजमाज्यं दृशोः ॥ २७५ ॥

घृत—गाय का घृत सभी घृतों में उत्तम, विपाक में मधुर, दाह-शामक, वात-विनाशक, वृष्य तथा शरीर की कांति का अभिवर्धक है। भैंस का घी कफ-कारक तथा रक्त-पित्त और वात-नाशक है। बकरी का घी कास के कष्ट में हितकर तथा नेत्रों को आरोग्यप्रद है ॥ २७५ ॥

गोमूत्रम्[1] ।

गोमूत्रं कटुतिक्ततीक्ष्णतुवरक्षारोष्णलघ्वग्निदं
मेध्यं पित्तकरं कफानिलहरं गुल्मोदरानाहहृत्
कण्डूशूलमुखाक्षिरोगकसनश्वासोग्रकुष्ठक्रिमि-
क्लेशप्लीहविबन्धपाण्डुगररुक्पामामशोथप्रणुत् ॥ २७६ ॥

गो-मूत्र कटु, तिक्त, उष्ण, तीक्ष्ण, कषाय, क्षार-युक्त, लघु, अग्नि-प्रदीपक, मेध्य, पित्तकर तथा वात-कफहर है। यह गुल्म, उदर, आनाह, खुजली, शूल, मुख तथा नेत्र के विकार, कास, श्वास, उग्र कुष्ट, क्रिमि-पीडा, प्लीहा, विबन्ध, पाण्डु, गर-वेदना, पामा, आमवात तथा शोथको दूर करता है ॥ २७६ ॥

इक्षुः[2] ।

संचूषितः पवननुल्लघुरिक्षुरस्रपित्तश्रमभ्रमविमोहविदाहहारी ।
स्वादुः सितेव रसतः कफमान्द्यमारी शीतः सरोऽधिकगुणो बलवीर्यकारी ॥
ग्राही कफाढ्यो रस आम इक्षूद्भवः सभारोऽथ सरोऽग्नितप्तः ।
विदाहि सुस्वादु गुरूष्णमक्ष्णोर्न शर्मदं फाणितं[3]माहुरार्याः ॥ २७८ ॥

इक्षु (गन्ना):—चूसा हुआ गन्ने का रस वात-हर, रक्तपित्त, श्रम, भ्रम, मोह और दाह का नाशक, मधुर, रस में शक्कर के समान तथा कफ-कारक, शीतल, सारक,

---

१—दुग्धादिभिः सहैक्योनित्वाद्गोमूत्रगुणाः। २—दुग्धवर्गे सितासहायमित्युपदिष्टम्, अतस्तदनन्तरं सितोपादानस्येक्षोर्गुणा गण्यन्ते। स च वहुविधः; उक्तं च तन्त्रान्तरे—"पौण्ड्को भीरुकश्चापि वंशकः शतपोरकः। कान्तारस्तापसेक्षुश्च काण्डेक्षुः सूचिपत्रकः। नैपालो दीर्घपत्रोऽपि नीलपोरोऽथ कोशकृत्। इत्येता जातयस्तेषां गुणा बोध्या यथास्थलम्।"
३—द्वितीयमिक्षुविकारम्। विकाराश्चास्य—"लसीका-फाणित-गुड-खण्ड-मत्स्यण्डिका-सिताः। निर्मला लघवो ज्ञेयाः शीतवीर्या यथोत्तरम् ॥" इति।

खण्डो विखण्डयति मारुतमायुदाहान्
का हानिरक्षिण भजतां तुहिनः सरोऽपि ।
श्वेतोपलाऽनिलवमिज्वररक्तपित्त-
दाहान्निहार्दयति सौम्यगुणा सशुक्रा ॥ २७९ ॥
नव क्षार स्वादुर्गुरुरनलदो वातमथनो-
ऽत्यभिष्यन्दी पित्त कफरुधिरमौष्ण्यं द्रढयति ।
पुराण पित्तघ्नः प्रथयति पृथुत्व हुतभुज-
स्तुषारो दोषघ्नो लघुरपि बलं यच्छति गुडः ॥ २८० ॥

गुणों में अधिक तथा बल और वीर्य का वर्धक है । गन्ने का, यन्त्र-निष्पीडित कच्चा रस ग्राही तथा कफकारक है । अग्नि से पकाया हुआ रस भारी, सारक, विदाही, मधुर, और उष्ण है - फाणित (राब) नेत्रों को अपथ्य है ॥ २७७-२७८ ॥

खण्ड (खाड) वात-पित्त तथा दाह को खडित करनेवाली, नेत्रों को हितकारी, शीतल और सारक है । श्वेतोपला-मिश्री (सिता) वात, वमन, ज्वर, रक्तपित्त तथा दाह को मिटाती है । सौम्य-गुणो से युक्त तथा शुक्रल है ॥ २७९ ॥

नूतन-गुड कुछ क्षार-गुण-युक्त, मधुर, गुरु, अग्नि-वर्धक, वात-नाशक, अत्यत अभिष्यदी, उष्ण तथा पित्त, कफ और रुधिर को दृढ करता है । पुराना गुड पित्तहर, अग्नि-प्रदीपक, शीतल, त्रिदोष-नाशक तथा लघु होता हुआ भी बल-वर्धक है ॥ २८० ॥

मधु¹ ।

मधु लघु² मदश्वासास्रार्शस्त्रिदोषवमिक्रिमि-
क्लमकसनतृण्मेदोमेहारुचिक्षयकुष्ठजित् ।
हरति मधुर मान्द्यं हिक्का विदाहहर हिमं
स्वरबलकर रूक्षं ग्राहि प्रभामतिद परम् ॥ २८१ ॥

मधु (शहद) लघु, मधुर, शीतल, रूक्ष, ग्राही, अग्नि-वर्धक, स्वर्य और वृष्य है । यह मद, श्वास, रक्त विकार, अर्श, त्रिदोष, वमन, क्रिमि, क्लम, कास, प्यास, मेद, मेह, रुचि, क्षय, कुष्ठ, हिक्का और विदाह का नाश करता है । यह अत्यत मेध्य

१–माधुर्यात्तथा मधुनोऽपि शर्करा जायते इत्यतस्तदनु मधु प्रस्तूयते । २–चरके मधुनो गुरुत्वमत्र लघुत्व, गुरुत्व गुणेन, लघुत्वं पाकेनेत्यविरोध । चरको गुरुलघुगुणावेवेच्छति, सुश्रुत पाकावपि । तत्र यच्चिरेण पच्यते तद् गुरुगुण, यच्छीघ्र तल्लघुगुणम् । यपक्व विण्मूत्रे सृजति श्लेष्माण करोति तद्गुरुपाक, यद्विण्मूत्रे गृह्णाति वायु करोति तल्लघुपाकम् । ३–इय पुनरत्र बृहती विप्रतिपत्ति । चरक खलु "वातल गुरु शीत च" इत्यादिना ग्रन्थेन मधु वातल व्याजहार कथमत्र त्रिदोषजिदुक्तमिति ? नैव, चरकवचनमससृष्ट-

तथा वर्ण को उत्तम करनेवाला माना जाता है । (ग्रंथकारने मधु को त्रिदोष-नाशक कहा है । सुश्रुत ने भी मधु को त्रिदोष शामक माना है । चरक मधु को 'वातलं गुरु शीतं च' वातल बताते हैं । यही वाग्भट का मत है-'वातलं मधु'। ग्रंथकार और सुश्रुत तथा चरक और वाग्भट में परस्पर जो विरोध भासता है-वह केवल विषय-भेद को लेकर । हेमाद्रि ने इसका युक्ति-युक्त निर्णय किया है । वस्तुतः, केवल वात-दोष में, केवल मधु का प्रयोग वातवृद्धि करेगा; किंतु पित्तादि-दोषों से संश्लिष्ट वायु को वातघ्न-द्रव्यों से युक्त मधु, अवश्य नष्ट करेगा । शुद्ध वायु को नहीं, किंतु पित्तयुक्त अथवा कफयुक्त अथवा कफ पित्त युक्त वायु को, मधु अवश्य दूर करता है । इसी अभिप्राय को लेकर ग्रंथकार और सुश्रुत ने मधु को त्रिदोषशामक कहा है ।) ॥२८१॥

जलम्[1] ।

सामान्यमम्बु मदमोहविदाहनिद्रातन्द्राश्रमक्लमवमिभ्रमतर्षधर्षि ।
मन्दाग्न्यजीर्णगलरोगविनाशि शीतं संजीवनं[2] लघु निलीनरसं[3] प्रहर्षि २८२
तोयं तटिन्यास्[4]तनुते समीरं रूक्षानभिष्यन्दि कृशानुकारि ।
कटु प्रपाके विशदं सुमिष्टं कफं सपित्तं कवलीकरोति ॥ २८३ ॥

जलः-सामान्य रूप से जल मद, मोह, विदाह, निद्रा, तंद्रा, श्रम, क्लम, भ्रम, तृषा, मंदाग्नि, अजीर्ण और कंठ-रोग का विनाशक, शीतल तथा लघु है । जल में छहों रस अव्यक्तरूप से स्थित हैं । यह आल्हाद जनक तथा प्राणि-मात्र के लिये संजीवन है ॥ २८२ ॥

गंगा आदि नदियों का जल वातकारक, रूक्ष, अनभिष्यंदी, अग्निवर्धक, पाक में कटु, विशद, मधुर और कफ को पित्त सहित नष्ट करनेवाला होता है । निर्झर का जल रुच्य, अग्नि-प्रदीपक, रूक्ष तथा कफहर है । (पृथ्वी की सतह को फाडकर निकला हुआ जल-औद्भिद जल कहलाता है) औद्भिद-जल पित्तघ्न, शीतल, पवित्र

वातविषयम्, अत्र तु संसृष्टवातविषयत्वेन त्रिदोषजिदिति विषयभेदात् । तथा च सुश्रुतः- "त्रिदोषशमनम्" इत्यारभ्य "तत्तु लघुत्वात्कफघ्नं पैच्छिल्यान्माधुर्यात्कषायभावाच्च वातपित्तघ्नम्" इति । किं च यत्र शुद्धो वायुः शुद्धं मधु तत्र वातलत्वं, यत्र वातघातिभिर्मिश्रं मधु पित्ताद्यैर्वा मिश्रो वायुस्तत्र वातघ्नत्वम्, उभयोर्योगवाहित्वात् । सुश्रुतेन हि पित्तश्लेष्मघ्नत्वं पठित्वा त्रिदोषशमनं पठता पित्तश्लेष्माणौ शुद्धौ वातमिश्रौ वा वायुं मिश्रमेव मधु हन्तीति द्योतितम्' इत्यायुर्वेदरसायनम् । वोपदेवेन तु मधु पित्तकफघ्नवातोदासीनवर्गमध्ये पठितम् । तत्पाठस्तु विस्तरभयादुपेक्षित इति ।

१-सर्वद्रवपारिशेष्यादधुना जलं जल्प्यते । २-जीवनहेतुत्वात् । यदुक्तम् "जीवनं जीविनां जीवो जगत्सर्वं तु तन्मयम् । अतोऽत्यन्ततया सुज्ञो न क्वचिद्वारि वारयेत् ॥ इति । ३-अव्यक्तषड्रसमित्यर्थः । ४-गङ्गादिनद्याः ।

रुच्यं नैर्झरमम्बु दीप्तिजननं रूक्षं बलासापहं
पित्तघ्नं हिममोद्भिदं शुचि लघु स्यात् सारसं श्लेष्मलम्।
ताडागं कटु वातलं लघु हिमं वाप्यं मरुच्छ्लेष्मजित्
स्वादुश्लेष्महृदग्निकारि रुचिदं स्वल्पानिलं चौण्ड्यजम्॥ २८४॥
पानीयं स्वादु कौपं त्रिमलनुदनलोद्बोधि पथ्यं प्रदिष्टं
शीतं स्वच्छं कषायं त्वथ लघु विकिरं दोषविश्लोषदक्षम्।
कैदार्यं पाल्वलं वा जलधिजमथ वा गुर्वभिष्यन्द्यपथ्यं
मिष्टाम्भोधेस्तु पथ्यं लघुगुणममलं श्रूयते शुक्रकारि॥ २८५॥
प्रतिश्याये श्वासे ज्वररुजि विरेके सतिमिरे
ग्रहण्यां गुल्मार्तौ व्रणजठरहिक्काप्रभृतिषु।
शृतं तोयं शस्तं मरुति यदि पित्ते कफगदे
क्रमादेवैकद्वित्रिलवपरिहीनं सुखकरम्॥ २८६॥

और हल्का होता है। सरोवर का जल कफ-कारक, तडाग-जल कटु, वातल, लघु तथा शीतल, वापी का जल वात-कफ-नाशक तथा चौड्य जल स्वादु, कफहर, अग्नि-प्रद, रुचिकारक तथा किंचित् वात प्रकोपक है। (ऊंचे-प्रदेश से आया हुआ तथा निम्न भूमि में शिलादि से बद्ध किया गया जल 'ताडाग' जल कहलाता है। शिलादि से बिना बाधा गया सहजही प्राप्त होनेवाला, 'चौड्य'-जल होता है।) कूप-जल स्वादु, त्रिदोषनाशक, अग्नि-प्रदीपक तथा पथ्य है। विकिर जल (नदी आदि के निकट ही रेतीली भूमि को खुदवाने से जो जल निकल आता है, उसे विकिर जल कहते हैं) शीतल, स्वच्छ, कषाय, लघु तथा त्रिदोष-नाशक होता है। (खेत के जल को केदार-जल कहते हैं। तथा सूर्य जब मृगशिर नक्षत्र पर आता है, तब जिस तलाई में पानी सूखकर अल्प रह जाता हो—उस तलाई के जल को पाल्व कहते हैं।) केदार तथा पाल्व दोनों प्रकार के जल तथा समुद्र-जल, गुरु, अभिष्यंदी तथा अपथ्य कहे गये हैं। वर्षा का-स्वच्छ तथा मधुर-जल पथ्य, लघु-गुण-युक्त और शुक्रवर्धक सुना गया है। उबाला हुआ जल प्रतिश्याय, श्वास, ज्वर, अतिसार, तिमिर, ग्रहणी, गुल्म, व्रण, उदर, हिक्का, आदि विकारों में प्रशस्त है। उबालकर तीन भाग, दो भाग तथा एक भाग अवशिष्ट जल क्रमश वात में, पित्त में तथा कफ में स्वास्थ्य-

१—उच्चप्रदेशात् प्रस्रवज्जलम्। २—निम्नप्रदेशादुत्तिष्ठज्जलम्। ३—तट उच्चप्रदेश, तस्मादागो गतिर्यस्य ■ तटाग, स चोच्चप्रदेशादागच्छज्जलस्य निम्नदेशे बन्धनाद्भवति, तत्र भवम्। ४—इष्टिकादिबद्धसोपाना दीर्घिका वापी, तत्रभवम्। ५—चौण्ड्यो नवोऽनद्धकूप प्रत्यासन्नजल —"चौण्ड्यमुक्तो वृहत्कूपो न बद्धो य शिलादिभि।" इत्युक्तलक्षण। ■ पुनर्नद्यादिसमीपे तत्कालकृता लघुकूपिका। ६—वालुकादीन् विकीर्य गृह्यमाणजलस्थान विकिर, तदुद्भव जलमपि विकिर५। ७—तृणाद्याच्छन्नजल मन्दसरस्तदुद्भवम्।

प्रसूनैर्कुक्षेरधिवासितानि वलक्षमृत्स्नाकरकस्य खण्डैः ।
नवीनमृत्कुम्भभृतानि भीष्मे ग्रीष्मे यथेच्छं पिब रे पयांसि ॥ २८७ ॥

इति दुग्धादिवर्गः ॥ ११ ॥

प्रद माना जाता है। मिट्टी के नूतन घट में भरे हुये जल को, श्वेत मिट्टी के करवे में रखे हुये पुष्पों से सुगंधित करके तथा सिता-मिलाकर, प्रचंड ग्रीष्म में यथेच्छ मात्रा में पीयें ॥ २८३–२८७ ॥

दुग्धादि वर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

पारदादिवर्गः । [2]

रसायनः सर्वरसो विशारदः पराक्रमातौ भजतां विहारदः । [3]
त्रिदोषनुद्योगवहोऽर्तिपारदः करोति कुष्ठक्षपणानि पारदः ॥ २८८ ॥ [4]
कटुकतुवरतिक्तमुष्णवीर्यं शिथिलयति क्षणमात्रतो विबन्धम् ।
क्रिमिपवनकफक्षयोग्रकुष्ठप्रभृतिषु पूजितमालपामि गन्धम् ॥ २८९ ॥
स्थाली चीनमृदुत्थिता तदुपरि स्फीता त्रिपादी ततः [5]
पात्रे पूरितकोकिले च चषकं तत्रापि गन्धस्ततः ।

पारदादि–वर्ग ।

पारद छहों रसों से युक्त, रसायन तथा सभी रसों में प्रतिष्ठित है; अष्टादश संस्कारों से सिद्ध किये गये पारद का सेवन करने से आकाश आदि में तथा तरुणियों के साथ विहार करने की यथेच्छशक्ति प्राप्त होती है। यह त्रिदोष-शामक' योगवाही, रोग-मात्र से उद्धार करने वाला तथा सभी प्रकार के कुष्ठों को नष्ट करने वाला माना गया है ॥ २८८ ॥

गन्ध (गन्धक) कटु, कषाय, उष्ण-वीर्य, विबंध को शिथिल करने वाली क्रिमि, कफ, वात, क्षय, उग्र कुष्ठ आदि रोगों में पूजित है ॥ २८९ ॥

गंधक में से तैल निकालने के यंत्र का वर्णन इस श्लोक में दिया गया है। इस

१–प्रसूनानि कुक्षौ यस्येति करकविशेषणम् । २–त्रिविधं हि द्रव्यम् । तदुक्तं चरके– "तत् पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं जाङ्गमौद्भिदपार्थिवम् ।" तत्र मांसदुग्धदधितक्रमधुप्रभृति जाङ्गममुक्तमेव संक्षेपेण, तथोद्भिदमपि हरीतक्यादिवर्गेण फलपुष्पधान्यादिवर्गेण च दर्शितमेव, तदधुना पारिशेष्यात्पार्थिवद्रव्यमभिधीयते । पार्थिवद्रव्यसंग्रहोऽपि तत्रैव "सुवर्णं समलाः पञ्चलोहाः ससिकताः सुधाः । मनःशिलाले मणयो लवणं गैरिकाञ्जने । भौममौषधमुद्दिष्टम्" इति । तत्रापि प्रधानत्वेन प्रथमं पारदः । ३–बन्धनादिना व्योमविहरणादीननेकान् विहारान् ददातीति । ४–अर्तें रोगमात्रस्य पारमन्तं ददातीति । ५–गन्धकतैलोपयोगियन्त्रप्रतिपादनमिदम् । यन्त्रस्थापनं निर्वातदेशे कार्यमित्युपदेशः ।

न्युब्जास्य चपक त्रिदण्ड्यवसतौ किं च त्रिदण्ड्यास्तिरो
धान सान्द्रपटेन हस्ततुलितो यन्त्रस्य सर्वोदय ॥ २९० ॥

कफपित्तहर नेत्र्यं हृल्लासज्वरकुष्ठजित् ।
प्लीहामवातदरद दरदं सरमीरितम् ॥ २९१ ॥

अभ्र स्वादु हिम कषायमुदरव्यापत्त्रिदोषव्रण-
ग्रन्थिप्लीहविषक्रिमीन् प्रशमयत्यायुष्कर शुक्रलम् ।
तद्भस्म प्रमदागत रमयति प्रौढप्रभावं नर
कुर्यान्मृत्युभय नियच्छति सुधातुल्य गुणै स्यात् परम् २९२

स्निग्धमुष्णकटुक सकषायं कच्छुकुष्ठहरण हरितालम् ।
श्लेष्मपित्तमुखरोगविपास्र संनिगृह्य कुरुते करतालम् ॥ २९३ ॥

यत्र की ऊचाई चौडाई एक हाथ भर होनी चाहिये । अर्थात् सर्वत एक हस्त प्रमाण माप का यह होना चाहिये । चीनी मिट्टी की रकाबी के ऊपर एक मजबूत तिपाई रक्खें । तिपाई पर अगार पूर्ण एक पात्र फिर इस पात्र पर गधक से भरा हुआ एक चपक तथा इस चपक पर (पेंदे में छिद्रयुक्त) एक दूसरा चपक औंधा ढकदें । (दोनों चपकों की मुख सधि को सपुटित कर देना चाहिये । औंधे ढके हुये चपक छिद्र में एक नली लगाकर, छिद्र तथा नली के मुख को सपुटित करके नली के दूसरी ओर के मुख को रकाबी में स्थापित करदें ।) तिपाई के नीचे हवा लगने से तैल के उड जाने की सभावना रहती है । अत इस तिपाई को सान्द्रपट द्वारा चारों ओर से अच्छी तरह ढक देना चाहिये । इस यन्त्र को त्रिदड सन्यासी के मठ जैसे एकात तथा निर्वात प्रदेश में रखकर उपयोग में लें । जिससे अगाराग्नि एक समान प्रज्वलित होती रहे तथा तैल की उग्र गध से किसी को आपत्ति अथवा असुविधा न हो ॥ २९० ॥

दरद (हिंगुल) हृल्लास, ज्वर और कुष्ठ को नष्ट करने वाला, प्लीहा और आमवात का दारण करने वाला, वात-पित्त-नाशक, नेत्र्य तथा सारक कहा गया है ॥ २९१ ॥

अभ्र (अभ्रक) मधुर, शीतल, कषाय, आयु और शुक्रवर्धक तथा उदर, त्रिदोष, व्रण, ग्रन्थि, प्लीहा, विष और क्रिमि का विनाश करने वाला है । इसकी भस्म शतश प्रमदाओं के साथ रमण करने की शक्ति देती तथा मनुष्य को यौवन प्रभाव से सपन्न करती है । यह अमृततुल्य परमोत्तम गुणों से युक्त अतएव मृत्यु के भय से मुक्त करती है ॥ २९२ ॥

हरताल स्निग्ध, उष्ण, कटु, कषाय तथा खुजली, कोढ, कफ, पित्त, मुखरोग और रुधिर-विकार को पकडकर हस्त-गत कर लेती है ॥ २९३ ॥

१—हिङ्गुलम् ।

व्रणज्वरार्धाङ्गमहोपदंशबलासवैरी शतमल्लसंज्ञः[1] ।
पित्तास्रधारी पुरुषार्थकारी बलं विधत्ते शतमल्लतुल्यम् ॥ २९४ ॥
मरुद्बलासज्वरमान्द्यकासश्वासार्तिदद्रूव्रणशैत्यहारी ।
वितीर्णकामस्मृतिमल्लतैलं मार्तण्डमुद्रा[2] नलिकाऽत्र यन्त्रम् ॥ २९५ ॥
असृक्कफश्वासविबन्धभूतचातुर्थकक्ष्वेडपुरःसराणाम् ।
गर्वी गदानां चतुराननेन मनःशिलाऽकारि मनःशिला[3] सा ॥ २९६ ॥

शतमल्ल (सोमल, संखिया) शतमल्लों के तुल्य बल देने वाला, व्रण, ज्वर, पक्षाघात, उग्र उपदंश और कफ का शत्रु, रक्तपित्त कारक तथा पुरुष के सभी अर्थ संपादित करने वाला कहा गया है । ताम्रमुद्रा नामक नलिका यंत्र में से निकाला गया शतमल्ल का तैल काम एवं स्मृति को अर्पण करनेवाला तथा वायु, कफ, ज्वर, अग्निमांद्य, कास, श्वास, दद्रु, व्रण और शीतका विनाशक होता है ॥ २९४–२९५ ॥

मनःशिला (मैनसिल) का निर्माण ब्रह्मा ने मन की शिला (शिरा) में से किया है । यह रक्तविकार, कफ, श्वास, विबंध, चातुर्थिक ज्वर, भूतबाधा और विष आदि अग्रगण्य विकारों को मिटानेवाली तथा गुरु (भारी) है । (हरताल वस्तुतः संखिया तथा गंधक का यौगिक है । भूगर्भ में अनन्त दिनों तक पास पास पडे रहने से संखिया तथा गंधक हरिताल का रूप धारण करते हैं । रासायनिक विश्लेषण द्वारा हरताल में संखिया तथा गंधक २।३ के अनुपात में उपलब्ध होते हैं । हरिताल कृत्रिम रूप से भी बनाया जाता है । मनःशिला उपधातु है । यह भी संखिया तथा गंधक का यौगिक है तथा दोनों के समान अनुपात में होने के कारण, यह लाल रंग की होती है । गंधकाधिक्य से हरिताल का वर्ण पीत रहता है । शतमल्ल के विषय में मतभेद है । सर्पादिविषाक्त जन्तुओं के दंश से भस्मीभूत पत्थर को शतमल्ल कहते हैं । सुश्रुत ने दो प्रकार के धातु-विषों का उल्लेख किया है एक फेणाश्म-भस्म दूसरा हरिताल । यही फेणाश्मभस्म शतमल्ल है । इससे उपरोक्त कथन को पुष्टि मिलती है । अमुक रस-वैद्यों

१–'सोमल, तथा 'संखिया' इति नाम्ना लोके प्रसिद्धः । स च श्वेतकृष्णपीतादिभेदाद्बहुविधः । तस्य वर्णनं च निघण्टुसारे यथा–"महाविषो माखनिजः शाङ्खिकश्चाखुहारकः । व्रणज्वरोपदंशार्धाङ्गादिवातामयान् हरेत् ॥ अपरादिशिदेशेषु रुक्मरूप्यखनेर्मलम् । वदन्त्येके सितं तालं परे क्षारं तु निश्चितम् ॥ युक्तिसिद्धं नृणां दत्तं शतमल्लसमं बलम् । परं यशोर्थिना ज्ञेन न देयं राजमन्दिरे ॥" इति । महाविषकीटदंशनाद्भस्मीभूतः प्रस्तरविशेष इति च जनश्रुतिः । तेन सुश्रुतकल्पस्थाने यत् "फेणाश्म भस्म हरितालं च द्वे धातुविषे" इत्युक्तं तत्र फेणाश्मभस्मनाम्ना अयमेव संभवेत्, इत्येके । यः खलु रसशास्त्रे गौरीपाषाणसंज्ञया गीयते सोऽयं शतमल्लसार इत्यपरे । २–ताम्रमुद्रा । ३–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्ध उपधातुविशेषः लक्ष्मीवीर्यमिति यावत् । यदुक्तं शब्दार्थचिन्तामणौ–"हरितालं हरेर्बीजं लक्ष्मीवीर्यं मनःशिला । पारदः शिववीर्यं च गन्धकं पार्वतीरजः" इति ।

उष्णा कषाया कफवातपित्तव्रणास्रवीसर्पकिलासहन्त्री ।
सङ्कोचयित्री स्मरमन्दिरस्य स्फटी स्फुटामक्षिरुजं भनक्ति ॥ २९७ ॥

उत्फुल्लिकां[1]बालकक्रिमिशोथाध्मानसंहतौ तुष्टम् ।
कटुतिक्तभावजुष्टं किं कष्टं नैव हन्ति कङ्कुष्ठम्[3] ॥ २९८ ॥

उपदंशव्रणशमनं प्रचण्डपूयास्रशोधने दक्षः ।
मृतधातुं जीवयति त्वच्यः केश्यः शवप्रावा[4] ॥ २९९ ॥

स्निग्धं हिमं स्वादुरसं कषायं पथ्यं दृशोर्गैरिकधातुयुग्मम्[5] ।
पित्तास्रहिक्काकफवान्तिवेगहालाहलान् हन्ति सहा सदाहान् ॥ ३०० ॥

कटुस्वादुतिक्तं हिमं रक्तपित्तं हुताशप्रदं बुद्धिदं बोलमुक्तम्[6] ।
अपस्मारसूतज्वरस्वेदकुष्ठत्रिदोषापहं गर्भगेहस्य शोधि ॥ ३०१ ॥

के मतानुसार 'गौरीपाषाण' नाम से सुप्रसिद्ध धातु ही शतमल-सार है। पारदादि के विषय में यह पुरातन मान्यता पठनीय एवं मननीय है 'हरिताल हरेर्बीजं लक्ष्मीवीर्यं मनःशिला। पारदं शिववीर्यं च गंधकः पार्वतीरजः।') ॥ २९६ ॥

स्फटी (फिटकरी) उष्ण, कषाय, कफ, वात, पित्त, व्रण, श्वित्र, रक्त-विकार और वीसर्प नाशक है। यह योनि को सङ्कुचित करती तथा नेत्र की वेदना को हरती है। कङ्कुष्ठ (उसारारेवन) बालकों के डब्बा रोग (उत्फुल्लिका) को दूर करती है। यह कफ, क्रिमि, शोथ, तथा आध्मान की विनाशक, कटु और तिक्त रस से युक्त तथा सभी प्रकार की वेदना को दूर करनेवाली कही गयी है। (उसारारेवन पीत-वर्ण की पर्वतीय-मृत्तिका विशेष है। इसके दो भेद हैं—एक अडक-रेणुका यह स्वर्णाभ पीत वर्ण की होती है। दूसरी रक्त वर्ण की जिसे रक्त काल-नलिका कहते हैं।) २९७–२९८

शवप्रावा (मुर्दासंग) त्वच्य, केश्य, मृतधातु को पुनरुज्जीवित करनेवाला, उपदंश तथा व्रण का प्रशामक, एवं प्रचंड पूय तथा रुधिर का शोधक होता है ॥२९९॥

गैरिक (गैरिक दो प्रकार का होता है—गेरू तथा स्वर्ण गेरू) दोनों प्रकार के गेरू स्निग्ध, शीतल, रस में मधुर, कषाय, नेत्रों को हितकारी और पित्त, रुधिर-विकार, हिक्का, कफ, वमनवेग, दाह तथा विष को नष्ट करता है ॥ ३०० ॥

बोल (हीराबोल) कटु, मधुर, तिक्त, रक्तपित्तनाशक, मेधा को हितकारी, शीतल, गर्भाशय-शोधक, अग्नि-प्रदीपक, तथा अपस्मार, सूतिकाज्वर, स्वेद, कोढ और त्रिदोष का विनाशक है ॥ ३०१ ॥

१–योने । २–'डब्बा' इति लोके । अस्य लक्षणादिकं योगसुधानिधौ–"घनाध्मान निरोधत्व श्वासकासादिसम्भव । उत्फुल्लत्वक्षि भवति घनक्षीरस्य सेवनात् ॥ उत्फुल्लिका सा विज्ञेया बालानामसुहारिणी" इति । ३–'उसारेरेवन' इति प्रसिद्ध पीतच्छवि पर्वतीयमृत्तिकाविशेष । तच्च द्विधा, नलिका–रेणुभेदात् । "सद्योजातस्य करिणो विष्टा कङ्कुष्ठमुच्यते" इत्यपि । ४–'मुर्दाश्रृङ्ग' इति प्रसिद्ध । ५–गैरिकसुवर्णगैरिकभेदात् । ६–'बीजाबोल' संज्ञम् ।

रत्नानि सर्वाणि विलेखनानि स्वादूनि शीतानि कषायकानि ।
सराणि नेत्र्याण्यतिमङ्गलानि दारिद्र्यदुष्टग्रहनाशनानि ॥ ३०२ ॥

शीतो रूक्षश्चित्तदोषेषु गीतो रक्तस्तम्भी दार्ढ्यकारी द्विजानाम् ।
हेम्ना साकं साधितोऽतीव वृष्यः श्लक्ष्णः शोणः शस्यते कोऽप्यकीकः[1] ॥३०३॥

शिशिरतरं विपाकमधुरं तुवरं रुचिरं हृदयङ्गमं दुरितदारि महाबलदम् ।
नयनहितं मतिस्मृतिविभाकरणं कनकं[2] ज्वरगरलक्षयत्रिमलशोषवमिं जयति

वल्यं वृष्यं शिशिरं लेखनमम्लं विपाकतः स्वादु ।
पित्तानिलप्रमेहान् हरते स्निग्धं सरं रजतम् ॥ ३०५ ॥

अम्लं पाके कटु लघुसरं शूलजन्तुव्यथाघ्नं
तिक्तं ताम्रं तुवरमधुरं रोपणं लेखनं च ।
पित्तश्लेष्मश्वसनकसनक्लेशकुष्ठज्वरार्शः-
पाण्डुस्वेदक्षयभयसरं नाशयेत् साम्ल पित्तम् ॥ ३०६ ॥

मधुरतुवरं तिक्तं रूक्षं सरं शिशिरं गुरु
क्षिपति गुदजान् कुष्ठं लोहं विलेखनवातलम् ।

सभी रत्न (मोती, हीरा, लहसुनिया, पद्मराग, पुखराज, गोमेद, नीलम और मूंगा) लेखन, मधुर, शीतल, कषाय, सारक, नेत्र्य, शुभ करनेवाले तथा दारिद्र्य और अनिष्ट ग्रहों के प्रभाव को दूर करने वाले माने गये हैं ॥ ३०२ ॥

अकीक (रक्तवर्ण का रत्नविशेष) चिकना तथा रक्तवर्ण का प्रशस्त कहा गया है । यह शीतल, रूक्ष, रक्तसंग्राहक और दांतों को मजबूत करने वाला होता है । स्वर्ण के साथ सिद्ध करके सेवन करने से यह अत्यंत वृष्य-गुण दर्शाता है ॥ ३०३ ॥

स्वर्ण अत्यंत शीतल, विपाक में मधुर, कसैला, रुचिकारक, हृदय को प्रिय, दारिद्र्य का विनाशक, महाबल-वर्धक, नेत्रों को हितकारी, बुद्धि, स्मृति और कांति का अर्पण करनेवाला तथा ज्वर, दोनों प्रकार के विष, क्षय, तीनों दोष, और वमन का नाशक है ॥ ३०४ ॥

रजत (चांदी) विपाक में मधुर, बलकारक, वृष्य, शीतल, लेखन, अम्ल, स्निग्ध, सारक तथा पित्त, वात और प्रमेह को जीतने वाली होती है ॥ ३०५ ॥

ताम्र पाक में अम्ल, कटु, शीघ्र-दस्त लानेवाला, तिक्त, कषाय, मधुर, रोपण, लेखन, शूल और क्रिमि की व्यथा को मिटाने वाला तथा पित्त, कफ, श्वास, कास की पीढा, कुष्ठ, ज्वर, अर्श, पाण्डु, स्वेद और क्षय की भीति सहित अम्लपित्त का विनाश करने वाला है ॥ ३०६ ॥

लोह मधुर, कषाय, तिक्त, रूक्ष, सारक, शीतल तथा भारी है । यह लेखन, वात-कारक तथा कुष्ठ और गुदा के विकारों का विनाशक है । यह मेद, मेह, कफ

१–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धो रत्नविशेषः स च शोणवर्णः प्रशस्तः । २–काञ्चनम् ।

प्रहरति गर मेदो मेहं कफ कृमिसंकटं
श्वयथुंदवथू शूलप्लीहौ हलीमकसंगतौ ॥ ३०७ ॥

मेहं कर्षति यत् समस्तविपदां गेहं शरीरव्यथा
सद्यो यद्गुणभास्करस्य पुरत खद्योतवद्द्योतते ।
श्वासं जन्तुहलीमकौ विजयते कास बलासं क्षणात्
कं गम्भीरगुणं न यच्छति रुजां रङ्गं सर गञ्जनम् ॥ ३०८ ॥

वङ्गोपमगुणो नागो युक्त्या संततसेवित ।
नागाधिकं बलं दत्ते हन्ति मेहं विशेषत ॥ ३०९ ॥

जसदं हिमतिक्तकषायरस कफपित्तविकारविनाशकरम् ।
श्वसनं कसन नयनार्तिसरं सहलीमकमेहमपि क्षिपति ॥ ३१० ॥

स्यान्माक्षिकं स्वादुरसं सतिक्तं स्वर्यं च वृष्यं च रसायनं च ।
शोफक्षयार्शस्त्रिमलप्रमेहवस्त्यर्तिकुष्ठं ग्रसते सकण्डु ॥ ३११ ॥

रसे कटुक्षारकषायशीत दृश्यं सर वामकलेखनं च ।
विषार्तिकुष्ठाश्मविलासपामापित्तानि तुच्छानि करोति तुत्थम् ॥ ३१२ ॥

कृमि-रोग, शोथ, दाह, शूल और प्लीहा सहित हलीमक नामक पाण्डु और विष का संहार कर देता है ॥ ३०७ ॥

रङ्ग (रांगा) –विकारों को तोड देनेवाला तथा सारकगुण से युक्त रांगा, किसको अचिंत्य-गुण अर्पण नहीं करता ? समस्त आपत्तियो के एक मात्र निवास स्थान प्रमेह को यह गिरा देता है । इसके गुणरूपी सूर्य के आगे शरीर की पीडा खद्योत के समान क्षीण हो जाती है । यह एक ही क्षण में श्वास, कृमि, हलीमक, कास तथा कफ पर विजय प्राप्त कर लेता है ॥ ३०८ ॥

नाग (सीसा) –नाग गुणधर्म में रांगे के समान ही है । निरंतर युक्ति-पूर्वक इसके सेवन से हाथी से भी अधिक बल की प्राप्ति होती है । यह विशेषतया प्रमेह को नष्ट कर देने वाला माना जाता है ॥ ३०९ ॥

जसद (जस्ता) शीतल, तिक्त, रस में कषाय तथा कफ पित्त के विकार का विनाशक है । यह श्वास, कास, नेत्र-पीडा, हलीमक और प्रमेह को भी दूर फैंक देता है ३१०

माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक तथा रूप्यमाक्षिक) रस में मधुर, तिक्त, स्वर्य, वृष्य तथा रसायन है । यह शोफ, क्षय, अर्श, त्रिदोष, प्रमेह, वस्ति-गत व्यथा, कोढ तथा खुजली का ग्रास कर जाती है ॥ ३११ ॥

तुत्थ (तूतिया) रस में कटु, कषाय, सक्षार, शीतल, नेत्र की ज्योति को

१–द्वितीयाद्विवचनम् । २–समस्तविपदां गेहं मेहमिति योजना । ३–रुजां गञ्जनमिति योजना । ४–सीसक । ५–द्विविध हि तत् पीतश्वेतभेदात् स्वर्णमाक्षिकरूप्यमाक्षिकसंज्ञमुपधातुरूपम् ।

तुत्थं कटाहकुक्षौ तदुपरि वसनं ततोऽपि रचय वराम्[2] ।
पूरय कटाहमद्भिस्तदन्तरर्कं निरीक्षस्व ॥ ३१३ ॥

कटुकमहिमं तिक्तं छेदि क्षयक्षपणं कफ-
क्रिमिमरुदपस्मारोन्मादप्रमेहभराश्मजित् ।
श्वयथुजठरश्वासास्रार्शोहलीमकमूत्ररु-
ग्विविडसिकताकुष्ठं बल्यं निहन्ति शिलाजतु[3] ॥ ३१४ ॥

सौरक्षारो मल्लतालादिरोधी शीतस्पर्शो व्योमधूपोपयोगी ।
शङ्खद्रावद्रव्यवर्गे प्रधानं कृच्छ्रप्रायं मूत्रकृच्छ्रं निहन्ति ॥ ३१५ ॥

निश्चारकप्रतिश्यायप्रमेहगदगञ्जनः ।
दद्रूस्नायुकविध्वंससादरो नवसादरः[6] ॥ ३१६ ॥

इति पारदादि-वर्गः ॥ १२ ॥

बढानेवाला, सारक, वामक तथा लेखन है। तुत्थके आगे विष की पीडा, कुष्ठ, अश्मरी, कफ, पामा तथा पित्त आदि तुच्छ (नगण्य, मानों अस्तित्व ही नहीं—ऐसे) हो जाते हैं ॥ ३१२ ॥

तुत्थ में से अर्क निकालने की विधिः—एक घट में तुत्थ डालदें। फिर उसपर एक वस्त्र बिछाकर उस वस्त्रपर तुत्थ से द्विगुणित त्रिफला फैलादें। अब इस पात्र को पानी से भरदें। फिर संभालकर अर्क निकाल लेवें ॥ ३१३ ॥

शिलाजतु (शिलाजीत) कटु, उष्ण, तिक्त, छेदन, तथा बल्य है। यह क्षय को क्षीण कर देता है। यह कफ, क्रिमि, वात, अपस्मार, उन्माद, प्रमेह तथा अश्मरी को जीतनेवाला तथा शोथ, उदर, श्वास, रुधिर-विकार, अर्श, हलीमक, मूत्रकृच्छ्र तथा अत्यंत वृद्धि को प्राप्त सिकता-नामक कोढ को नष्ट करनेवाला कहा गया है ॥ ३१४ ॥

सौरक्षार (कलमी सोरा) शतमल्ल, हरिताल आदि रसों को रुद्ध करने के लिये तथा आतशबाजी में उपयुक्त होता है। यह स्पर्श में शीतल एवं शंख-द्राव आदि द्रव्य-वर्ग की प्रधान औषधि है तथा कृच्छ्र प्राय मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है ॥ ३१५ ॥

नवसादर (नोसादर) प्रतिश्याय को बाहर निकालने वाला, प्रमेह-रोग का विनाशक तथा दद्रु और स्नायुक के विध्वंस में परमोत्सुक कहा गया है ॥ ३१६ ॥

— पारदादि वर्ग समाप्त —

१—तुत्थादर्काकर्षणप्रकारोऽयम् । २—त्रिफलां तुत्थाद्द्विगुणमिति रहस्यम् । ३—"हेमाद्याः सूर्यसंतप्ताः स्रवन्ति गिरिधातवः । जत्वाभं मृदुमृत्स्नाच्छं यन्मलं तच्छिलाजतु ॥" इत्युक्त-रूपं हेमरजतताम्रलोहसंभवत्वाच्चतुर्विधम् । तत्रायसं सर्वोत्तमम् । यदुक्तम्—"यत्तु गुग्गुल-

श्रीलछुरामात्मजकुन्दनाद्यो लेभे जनिं कृष्णकवेर्हि तस्य ।
भैषज्यरत्नस्रजि सद्गुणाया गुच्छो द्वितीयोऽगमद्द्वितीयः ॥

इति हरीतक्यादिवर्णनं नाम द्वितीयो गुच्छः संपूर्णः ।

श्री लछुरामजी के पुत्र कुन्दनरामजी से उत्पन्न, उपकार-वृत्ति से युक्त श्रीकृष्ण-कवि-द्वारा गुम्फित इस सुंदर-गुण युक्त (गुण-सूत्र) भेषज-मणि-माला का द्वितीय के समान ही यह द्वितीय गुच्छ (अर्थात् यह अनुपमेय द्वितीय-गुच्छ) संपूर्ण हुआ ॥ ३१७ ॥

हरीतक्यादिवर्णन नामका द्वितीय गुच्छ समाप्त ।

सक्षारं तिक्तं लवणान्वितम् । विपाके कटु शीतं च सर्वश्रेष्ठं तदायसम् ॥" इति । तत्परीक्षा च—"लोहकीटायते वह्नौ विधूमं दह्यतेऽम्भसि । तृणाद्यग्रे कृतं मर्वमधो गलति तन्तुवत् ॥" इति । ४–लोके 'कलमीसोरा' इति । ५–वह्निक्रीडापरपर्याय । स्वरूप- लोके "आतिशबाजी' इति ख्यात । "उक्षाप्रचक्रुर्नगरस्य मार्गान् ध्वजान् ववन्धुर्मुमुचुः सधूपान्" इति भट्टि । ६–'नोसादर' इति प्रसिद्ध ।

१–अनुपम इत्यर्थ, पूर्तिमिति शेष । लेशोक्त सुधिय स्वय सुबहुधा ह्यर्थं स्फुटी-कुर्वते—मन्दानामधिक प्रजल्पितमनुत्साहस्य सवर्धकम् । इत्येव करुणाकरेण गुरुणा सचिन्त्य सक्षेपत —प्रोक्त द्रव्यकदम्बक सुभिषजा हर्षाय वोभूयताम् ॥ य प्राचा भिषजा विवेद महतामित्तिसोऽपि ता सहिता —साहित्य च सधर्मशास्त्रमभित स्वच्छन्दवाक् छन्दसि । लक्ष्मीरामसुधी स एष भिषगाचार्यप्रशस्ति वहन्–श्रीभैषज्यमणिस्रजो विवृतवान् गुच्छ द्वितीय परम् ॥

इति लक्ष्मीरामसुधीकृते सिद्धभेषजमणिमालाव्याख्याने
द्वितीयो गुच्छ समाप्त ॥



अथ स्वास्थ्यसंरक्षणप्रकरणं नाम तृतीयो गुच्छः।

तृतीयो गुच्छः।

रिपुहृदयं भित्त्वा नखैस्त्रातः प्रह्लादस्तु।
जत्रूपरि हरिलक्षणं वस्तु स्वस्तिकृदस्तु ॥ १ ॥

उत्तिष्ठेदगदः प्रभातसमये रक्षार्थमेवायुषो
दृष्ट्वा दर्पणरत्नबिल्वसुरभिस्रग्वैद्यदध्यादिकान्।
स्मृत्वा किं च हरिं हरं गणपतिं देवीं रविं श्रीगुरुं
नत्वा वृद्धजनांस्ततः सुखतया शौचं विदध्यात् कृती ॥ २ ॥

तृतीय–गुच्छ

नखन फारि रिपु हृदय किय, दैत्य पुत्र परित्राण।
सिंहाकृति वह जत्रु गत वस्तु करहु कल्याण ॥ १ ॥

स्वस्थ पुरुष को, प्रातः उठकर, आयु की रक्षा के लिये दर्पण, रत्न, बिल्व, सुगंधित पुष्पमाला, वैद्य, दधि आदि के दर्शन करने चाहिये। फिर, विष्णु, शिव, गणपति, देवी, सूर्य तथा अपने श्रीगुरु का स्मरण करके वृद्ध जनों को नमस्कार करना चाहिये। तदुपरांत, सुख पूर्वक शौचादि क्रिया से निवृत्त हो जाना चाहिये ॥ २ ॥

(क) सार्धसप्तमुखं सार्धद्वाविंशतिविलोचनम्। अष्टादशभुजं वन्दे स्त्रीपुंसाकृतिमीश्वरम् ॥१॥
(ख) गत्वाऽऽयुर्वेदोदधेः पारं सारमभाणि। नत्वा तं श्रीगुरुमिमां टिप्पणिका करवाणि ॥२॥

१–अथो द्रव्यगुणाभिधानानन्तरं चमत्कारचञ्चवः श्रीगुरवश्चतुरचिकित्सकचेतांसि चन्दयितुं रुग्णजनमनांसि नन्दयितुं चमत्कारचञ्चद्विचित्रवस्तुजातं कियदपि समुच्चिन्वन्ति। तत्रापि प्रथमं चित्राकारस्यैव श्रीसिंहावतारस्य वर्णनरूपं समुचितमङ्गलमाचरन्ति दोहानामच्छन्दसा–रिपुहृदयमिति। हरिलक्षणं सिंहाकृति। २–अधीतसर्वायुर्वेदस्य विज्ञातद्रव्यगुणागुणस्य चिकित्सां कर्तुं प्रवृत्तस्य भिषजः कार्यं धातुसाम्यं भवति। यथोक्तं चरकविमाने– "इह कार्यप्राप्तेः कारणं भिषक्, करणं पुनर्भेषजं, कार्ययोनिर्धातुवैषम्यं, कार्यं धातुसाम्यं कार्यफलं सुखावाप्तिः" इत्यादि। तच्च स्वास्थ्यरक्षाव्याधिमोक्षाभ्यां भवितुमर्हति। तत्र स्वल्पवक्तव्यत्वात् सूचीकटाहन्यायेन वा प्रथमं स्वास्थ्यरक्षणमेव वाच्यम्। तस्य च चर्याधीनत्वात् प्रथमं चर्यामेवाचक्षते। तथाहि–"दिनचर्यां निशाचर्यामृतुचर्यां यथोदिताम्। आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा।" स्वस्थलक्षणं च सुश्रुतादवगन्तव्यं यथा– "समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।" इति।

(क) अत्र भगवती दशास्या त्रिंशल्लोचनाऽष्टादशभुजा विवक्षिता। भगवांश्च पञ्चास्यः पञ्चदशलोचनोऽष्टादशभुज इति। "बिभ्राणं शुभ्रवर्णं द्विगुणनवभुजं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्" इति श्रुतेः। (ख) येनेति शेषः।

गुदादिशौचं बलकान्तिकारण पवित्रमायुष्यमवेहि मेध्यम्।
पर पदक्षालनमक्षिवर्धनं पदार्तिरक्षा श्रमहृद्बलप्रदम् ॥ ३ ॥
अबाधयन् दन्तपलानि भक्षयेत् प्रसिद्धकाष्ठोद्भवदन्तपावनम्।
तदास्यवैरस्यमलादिमार्जनं स्वच्छत्वगाढत्वलघुत्वकारणम् ॥ ४ ॥
हिक्काशिरःकर्णमुखार्त्यजीर्णच्छर्द्यर्दितश्रान्तिनवज्वरार्तैः।
विमोहतृष्णामदकासखिन्नैः कदाऽपि कार्यं न हि दन्तशौचम् ॥ ५ ॥
कुर्वीत गण्डूषमथो हिमेन जलेन तत् स्यान्मुखशुद्धिकारि।
सुखोष्णनीरेण तु दन्तजाड्यकण्डूकफारोचमलप्रहारि ॥ ६ ॥
पिडिकानीलिकाव्यङ्गरक्तपित्तनिबर्हणम्।
शीतेन पयसा कार्यं मुखप्रक्षालनं तत ॥ ७ ॥
ते संयुता इन्द्रियपाटवेन भवन्ति नस्य रचयन्त्यवश्यम्।
सौवीरसञ्ज्ञ चरमञ्जनं स्यात्ततो दृशौ सूक्ष्मविलोकने स्त ॥ ८ ॥
सभुक्तवाञ्जागरितो ज्वरार्तः श्रान्तः सवान्तो न समाचरेत्तत्।
शिरोरुहश्मश्रुनखानि सततच्चाग्निकृन्तेन्न तु जातु लुञ्चेत् ॥ ९ ॥

गुदादि की शुद्धि बल, तेज, आयु और मेधा को बढाने वाली तथा पवित्र करने वाली मानी गयी है। पदप्रक्षालन आखो को ज्योति देता तथा पैरकी विकारो से रक्षा करता है, श्रमहर तथा बलप्रद है ॥ ३ ॥

सुप्रसिद्ध दन्त्य वृक्षो की शाखाओ से, मसूढो को न लगे इस तरह दातुन करना चाहिये। यह मुख गत विरसता तथा मलादि को निकालकर, मुख और दातो की स्वच्छता, दृढता तथा स्वस्थता का सपादन करता है। हिक्का, सिर, कर्ण तथा मुख के विकार से पीडित को, अजीर्ण, वमन, अर्दित, श्राति और नव ज्वर से ग्रस्त एव मोह, तृष्णा, मद और कास से व्यग्र को कदापि दातुन नहीं करना चाहिये। तदुपरात, शीतल जल से कुल्ले करने चाहिये। इस तरह करने से मुख पूर्णतया स्वच्छ हो जाता है। रोगग्रस्त को कवोष्ण जल मे ही गण्डूष लेना चाहिये। यह दतगत जडता, कण्डू, कफ, मल तथा अरुचि को दूर करता है। फिर शीतल जल से चेहरे को प्रक्षालित करें। इससे मुख की नीलिका, व्यग, रक्तपित्त तथा फुसियों में लाभ होता है। तदुपरात, नस्य लेना चाहिये। इस तरह क्रमश करने से इन्द्रिय समूह को नव चेतन प्राप्त होता है। तदनन्तर सौवीर नामक उत्तम अजन आखो में आजने से दृष्टि सूक्ष्म अर्थात् तीक्ष्ण होती है ॥ ४–८ ॥

भोजनोपरात, जाग्रत अवस्था में, ज्वर, वमन और श्रमित दशा में अजन निषिद्ध

१–स्वच्छत्वादिक दन्तानामेवावगन्तव्यम्। २–एतत् स्वस्थविषय, "स्वस्थ शीतोदकेन वा" इति सुश्रुतदर्शनात्। ३–एतदातुरविषयमपि प्रसङ्गादिहोक्तम्। ४–'सुरमा' इति लोकप्रसिद्धम्। ५–सूक्ष्म विलोक्यत इति तथा। ६–अञ्जनम्।

केशादिसंकर्तनमस्ति धन्यमायुःप्रभापुष्टिपवित्रताकृत्।
प्रसाधिनी[1] केशरजोमलौघयूकादिसंहारविधिप्रवीणा ॥ १० ॥

कान्तिमङ्गलपराक्रमपुष्टिदीर्घजीवितधनप्रदमाहुः।
पापदर्पदलने पविकल्पं दर्पणं पिशुनमास्यमलस्य[2] ॥ ११ ॥

सामर्थ्यं लघुता विभक्ततनुता दोषक्षतिर्गाढता
व्यायामादुपजायते वद कुतस्तत्सेविनां व्याधयः।
भुक्तं पच्यत आशु गच्छति जरा मेदः क्षणात् क्षीयते
स प्रोक्तः शिशिरे हितोऽन्यसमये सेव्यो बलस्यार्धतः[3] ॥ १२ ॥

भुक्तवान् रतरतः क्षयकासी रक्तपित्तगदशोफवलासी।
तं भजन्नहह नश्यति सद्यः कुञ्जरं हरिरिव प्रतिकर्षन् ॥ १३ ॥

अभ्यङ्गः श्रमपवनापहो विधेयस्तेन स्युर्बलदृढताप्रभाप्रभावाः।

है। सप्ताह में एक बार केश दाढी तथा नखों को संवारना अथवा कटवाना चाहिये। केशादिका लुंचन सर्वथा अप्रशस्त है। केशादिका संकर्तन भाग्य, आयु, तेज, पुष्टि तथा पवित्रता में अभिवृद्धि करता है। कंघी द्वारा केश संवारने से केशों की धूल तथा मलसमूह और यूका (जूं) आदि अच्छी तरह दूर हो जाते हैं ॥ ९–१० ॥

फिर, दर्पण में मुख देखना चाहिये। तद्गत प्रतिबिंब से मुखसंलग्न मलादि की प्रत्यक्ष प्रतीति हो जाती है। दर्पण में दर्शन, पापरूपी गर्व को विदलित करने में साक्षात् वज्रतुल्य है। तथा सौंदर्य, मंगलमयता, पराक्रम, पुष्टि, दीर्घायु और वैभव का संपादन करानेवाला है ॥ ११ ॥

व्यायामसे सामर्थ्य, लघुता, दृढता, दोषक्षयता और अवयवों की विभक्तता प्राप्त होती है। व्यायाम करनेवालों को व्याधियों की विपदा ही कहां? व्यायाम करने से भोजन सम्यक् पचता है। वृद्धावस्था शीघ्र निवृत्त हो जाती है, मेद एकक्षण में क्षीण हो जाता है। शिशिर ऋतु में व्यायाम हितावह है, अन्य ऋतुओं में 'अर्धशक्ति'प्रमाण में ही व्यायाम करना उचित है। (व्यायाम करते करते जब हृदयस्थ वायु मुखद्वारा निकलने लगे तब जान लेना चाहिये कि अर्ध शक्ति संपूर्ण हुई।) ॥ १२ ॥

अत्यंत रति-रत, क्षय, कास, रक्तपित्त, शोफ और कफ से ग्रस्त एवं रोगी को तथा भोजनोपरांत व्यायाम निषिद्ध है। इन अवस्थाओं में व्यायाम करने वाला, हाथी को साहसपूर्वक खींचनेवाले सिंह की तरह, शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

अभ्यंग श्रम और वायुको मिटाता है। अभ्यंग का नियमित सेवन करने से बल, दृढता, तेज तथा प्रभाव की प्राप्ति होती है।

१–'कङ्घा, काँखी' इति च प्रसिद्धा। २–तस्मिन् प्रतिबिम्बसंक्रमात् प्रत्यक्षत्वेन मलस्येति भावः। ३–बलार्धलक्षणं च सुश्रुताभिहितमनुसरणीयम्। यथा–"हृदि स्थाने स्थितो वायुर्यदा वक्त्रं प्रपद्यते। व्यायामं कुर्वतो जन्तोस्तद्बलार्धस्य लक्षणम्।" इति।

स्यादुद्वर्तनमपि कान्तिकारि रूक्षमालस्यं कफमतिपुष्टता पिनष्टि ॥ १४ ॥

स्नानं प्रभां जनयति क्षिपति क्षयार्तिं कण्डूं निकृन्तति तनोति बलप्रमोदौ ।
उष्णैस्तदेव सलिलैरधिजत्रु देहे कोष्णै[3]पुनः शिरसि पथ्यमुदीरयामः ॥१५॥

स्नानं ज्वरेऽक्षिरुजि कर्णगदेऽतिसारे-
ऽप्याटोपपीनसमरुत्प्रभृतौ न पथ्यम् ।
देहस्य मार्जनमनन्तरमेव कुर्यात्
स्नानस्य तत्तु मलभायि विभाविभायि ॥ १६ ॥

कौशेय[5] वसनं विचित्रमरुणं सश्लेष्मवातापहं
कार्पायं लघु पित्तजिन्मतिमतं स्याद्ग्रीष्मकाले वरम् ।
नोष्णं नैव हिमं शुभं सिततरं काम्यं यशस्यं भवे-
दायुष्यं धनदं प्रमोदजननं त्वच्यं च रुच्यं नवम् ॥ १७ ॥

उद्वर्तन तेज को बढाता तथा आलस्य, कफ और मेद-जन्य-स्थूलता को पीस डालता है। अभ्यंग के कारण शरीर की चिकनाहट, उद्वर्तन से दूर हो जाती है। स्नान तेज को बढाता तथा क्षय को रोकता है। कण्डू को काटता तथा बल और हर्ष का प्रकर्ष करता है। उष्ण जल से देह के केवल अधोभाग तक ही स्नान करना चाहिये। मस्तक पर कोष्ण जल से स्नान पथ्य माना गया है। शिर पर उष्ण जल से स्नान निषिद्ध है। क्योंकि इससे केश तथा दृष्टि को हानि होती है। ज्वर, चक्षु रोग, कर्ण-रोग, अतिसार, आध्मान, पीनस, वात, आदि से पीडित को स्नान नहीं करना चाहिये। स्नानान्तर, वस्त्रादि द्वारा शरीरको पोंछने से देह-मलघ्न मल की निवृत्ति-पूर्वक तेजस्विता बढती है ॥ १४–१६ ॥

आकर्षक तथा अरुण-वर्ण रेशमी वस्त्र के परिधान से कफ सह वात का नाश होता है। मलयागिरी में रंगा हुआ कापाय वस्त्र हलका तथा पित्तघ्न होता है। इसका उपयोग ग्रीष्म काल में प्रशस्त है। अत्यंत श्वेत नूतन वस्त्र-न उष्ण न शीतल अर्थात् सम होता है तथा यश, धन और आल्हाद देने वाला, आयुकारक, त्वचा को हितकारी, रुचिकर तथा स्पृहणीय माना गया है ॥ १७ ॥

१–रूक्षद्रव्यकृतत्वादभ्यङ्गस्नेहापहमित्यर्थः । २–कफम्, अतिपुष्टतामिति च्छेदः । ३–नेत्राद्यहितत्वेन शिरस्यत्युष्णजलनिषेधः । तथा च वाग्भटः–“तेनैव चोत्तमाङ्गस्य बलहृत् केशचक्षुषाम् ।” ४–वस्त्रादिना । अथवा “स्नानमब्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः” इति स्मार्तं “आपोहिष्ठा–” इत्येवमादिजलदैवतमन्त्रनिष्पाद्यो नित्यकर्मविशेषः, तस्यापि स्नानान्तरमेवोपदेशात् । मलभायित्वादि चात्राभ्यन्तराभिप्रायेणोपपन्नमेवेति । ५–कृमिकोशभवं वस्त्रं ‘रेशमी कपडा’ इति प्रसिद्धम् । ६–सुगन्धिद्रव्यकृतेन कषायेण रक्तं, तेन ‘मलागिरी’ इति लोकप्रसिद्धादीनां ग्रहणम् ।

दाहमूर्च्छनतृषाश्रमकण्डूत्वग्गदानपनयत्यनुलेपः[1] ।
पुष्पधारणमनङ्गविसारि कान्तिकारि दुरितग्रहदारि ॥ १८ ॥
सौभाग्यसंतोषविधायकानि शुचीनि दुःस्वप्ननिबर्हणानि ।
दारिद्र्यपापक्षयकारणानि क्षेमप्रधानानि विभूषणानि ॥ १९ ॥

स्वेष्टदेवार्चनं[2] पुंसामलक्ष्मीकलिवारणम् ।
आयुष्यं पुत्रपौत्रादितेजःसिद्धिकरं परम् ॥ २० ॥

सत्पादुकारोहणमारचय्य महानसे[3] भोक्तुमथ प्रगच्छेत् ।
श्रीपादुकारोहणमङ्घ्रिपीडाप्रहारि दृश्यं बलदायि दृष्टम् ॥ २१ ॥

लड्डूकं[4]दुग्धदधिपर्पटभक्तपूरीकंसारसूपवटिकावटकादिभोज्यान् ।
खादेद्यथारुचि ततः शुचिरद्वितीयः[5] संश्लाघयन् यदि भवेन्निपुणा बुभुक्षा २२
एलालवङ्गखदिरपूगचूर्णपरिष्कृतम् । नागवल्लीदलं खादेन्मुखसौरभ्यहेतवे॥

सरोष्णं ताम्बूलं मुखविरसताजन्तुकफहृत्
सपित्तासृग्बुद्धिसरमपवनं वह्निजननम् ।
ज्वरासृक्पित्तार्तिक्षयविषमदश्वासनयन-
व्यथामूर्च्छाशोषप्रभृतिषु न शस्तं तदुदितम् ॥ २४ ॥

अनुलेप दाह, मूर्छा, तृषा, श्रम, कण्डू तथा त्वचा के रोगों को दूर करता है। पुष्प धारण करने से काम तथा कांति बढती है। दारिद्र्य तथा दुष्ट-ग्रह दूर होते हैं। आभूषण सौभाग्य तथा संतोष देने वाले, दुःस्वप्न को हटानेवाले, दारिद्र्य तथा पापों का क्षय करने वाले, कल्याणकारी और पवित्र कहे जाते हैं ॥ १८–१९ ॥

अपने इष्ट देवता का अर्चन करनेवाले मनुष्य की अलक्ष्मी दूर होती है। कलि की निवृत्ति होती है। आयु बढती है। पुत्र पौत्रादि सहित तेज एवं सिद्धि की प्राप्ति होती है। तदनन्तर, सुंदर पादुका धारण करके पाकशाला में भोजनार्थ प्रवेश करना चाहिये। पादुका धारण करने से दृष्टि की शक्ति बढती तथा पैर की पीडा नष्ट होती है ऐसा देखा गया है। फिर एकांत में, बुभुक्षा को तीव्र करने के लिये खाद्य-व्यंजनों की प्रशंसा करते हुये मोदक, दूध, दही, पापड, भात, पूरी, कंसार, सूप, वटिका, वरका आदि का यथारुचि उपभोग करें। भोजनोपरांत इलायची, लौंग, खैरसार, सुपारी और चूने से परिष्कृत नागरचेल के पान का मुख-सुवास के लिये सेवन करें। तांबूल सारक, उष्ण, मुख की विरसता को दूर करनेवाला, जन्तु

१–चन्दनादिकृतः। २–स्वर्णादिनिर्मितस्वेष्टदेवताप्रतिमायां चेतःप्रणिधानार्थं चन्दनवन्दनादिभिः पूजनं कार्यम्। तथा च स्मर्यते याज्ञवल्क्यैः–"आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा। महागणपतेश्चैव कुर्वन् सिद्धिमवाप्नुयात्।" इति। तथा प्राणायामादिपरिग्रहश्च। ३–पाकशालायाम्। ४–लड्डूकादीनां गुणाः पूर्वगुच्छेऽनुसंधेयाः। ५–एकान्ते इति भावः। "आहारनिर्हारविहारयोगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः।" इति नियमात्।

कषायं ताम्बूलीदलमकफमुष्णं पवनजु-
द्विमं रूक्षं पूगं तुवरमकफ पित्तशमनम् ।
सितं चूर्णं श्लेष्मानिलजयि तथोष्णं खदिरजो
बलासास्रक्पित्तक्रिमिगरलकुष्ठास्यगदहृत् ॥ २५ ॥

तमाली रूक्षतीक्ष्णोष्णा वान्तिभ्रान्तिकरी सरा ।
नागवल्लीदलैः सार्धं शस्ता वातकफात्मनाम् ॥ २६ ॥

स्मृत्यायुरोजोबलसत्त्वशोभाप्रमोदवर्णेन्द्रियपाटवाद्यैः ।
दधाति देहावयवान् समस्तानाहार आहार्यमहागुणौघ ॥ २७ ॥

कृत्वा भोजनमुत्तमं शतपदं गत्वा ततो विष्टरे
स्थित्वा काव्यकैथाकुतूहलरसान् स्मृत्वा वयस्यैः समम् ।
सुप्त्वा किंचिदतीव शुद्धसलिलं पीत्वा स्वगेहादिकं
दृष्ट्वा संततमाचरेदथ मलोत्सर्गं पराह्णे पुनः ॥ २८ ॥

तथा कफ का नाशक, रक्तपित्तोत्पादक, बुद्धिकारक, कामोद्दीपक, वातशामक तथा अग्निप्रदीपक है। ज्वर, रक्तपित्त, क्षय, विष, मद, श्वास, नेत्र-पीडा, मूर्च्छा, शोष आदि में पथ्य कारक नहीं है। ताम्बूल-पत्र कषाय, उष्ण तथा कफ-वात नाशक हैं। सुपारी रूक्ष, कषाय, कफनाशक तथा पित्तशामक है। चूना कफ-वात नाशक तथा उष्ण है। कत्था (खैरसार) कफ, रक्तपित्त, क्रिमि, विष, कुष्ठ तथा मुख-रोग को दूर करता है ॥ २०-२५ ॥

तमाली (तम्बाकू) रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण, वमन और भ्रांति कारक एवं सारक है। वात कफ प्रकृतिवालों के लिये ताम्बूल के साथ इसका उपयोग प्रशस्त है ॥ २६ ॥

आहार स्मृति, आयु, ओज, बल, सत्व, शोभा, आनन्द तथा वर्ण में अभिवृद्धि करता और इन्द्रियसमूह को नवचेतन देता है। यह समग्र देह के अवयवों का निर्माता अत एव उत्तम आहार्य गुणों से परिपूर्ण कहा गया है ॥ २७ ॥

आशय गत आहार की सम्यक् परिणति के लिये भोजनोपरांत चहल्कदमी करके शय्यापर लेटे हुये, मित्र मंडली से घिरे हुये, काव्य, कथा तथा कुतूहल पूर्ण प्रसंगों का श्रवण करते हुये, किंचित् आराम करके फिर यथेच्छ जल पान पूर्वक अपने

१-'कथा' इति प्रसिद्ध। २-स्मृत्यादय आहारस्य सामान्यगुणाः। ३-एतत्प्रयोजनं चाहारस्य स्वाशयस्थितिपूर्वकपरिणामः। यदुक्तम्-"शब्दरूपरसस्पर्शगन्धांश्च मनसः प्रियान्। भुक्तवानुपसेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥" इति। ४-अथ शयनस्योपदेशः शयनाद्येष्वालोठनपरिवर्तनादिरूपस्य न तु निद्रारूपस्य, दिवास्वापस्य निषिद्धत्वात्, अथवा सात्म्यविषयः, इदानीं बहूनां तथैव सात्म्यत्वात्, सात्म्यत्वे च नाहितत्वम्। "दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रा सात्म्यीकृता तु यैः। न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां चोपजायते ॥" इत्युक्तत्वात्।

नान्यानि कार्याणि कदाऽपि कुर्यात् संजातवेगः पुरुषो हितार्थी ।
समीरयेन्नो बलतोऽन्यथा स्युस्ते ते गदाः प्राणविघातधीराः ॥ २९ ॥

उष्णीषं रुचिरं मरुत्कफजयि प्रोक्तं रजोवारणं
पादत्राणधृतिः पदोः सुखकरी दृश्या सदायुःप्रदा ।
छत्रं मङ्गलमातपादिहरणं श्रीदं हिमघ्नं वरं
सद्दण्डस्य महाभयप्रणुदवष्टम्भप्रदं धारणम् ॥ ३० ॥
मरुत्पित्तश्लेष्मप्रशमनिपुणा भाति शिविका
तनोत्यायुःपुष्टिं श्रियमनिलपित्ते द्विपपतिः ।
मरुत्पित्तश्रान्तिप्रदममितमेदःकफहरं
बलिष्ठानां शस्तं तरलतुरगारोहणमपि ॥ ३१ ॥
एतेष्वन्यतमं यथारुचि वरं संरुह्य यानं सुखी
सन्मित्रैः सह राजमार्गसरणौ यायान्मनःप्रीतये ।
पश्यंस्तत्र शनैश्चमत्कृतियुजो नानापदार्थान्[1] पुनः
सायं स्वीयनिकेतने दयितया हृष्टः परं मोदताम् ॥ ३२ ॥

इति दिनचर्या ।

स्वजनों से मिलकर नित्य व्यवहार में प्रवृत्त होना चाहिये। पुनः पराह्न काल में एक बार मलादि का उत्सर्ग कर लेना चाहिये ॥ २८ ॥

आये हुये मलादि वेग को रोककर, अपना हित चाहनेवाले को, अन्य कार्य में कदापि प्रवृत्त नहीं होना चाहिये । इसी तरह, अप्रवृत्त मलादि वेगों को बलात् प्रवृत्त भी नहीं करना चाहिये। (जैसे छींक नहीं आ रही हो तथापि तृणादि चलाकर बरबस छींक लाना अहितकर है।) अन्यथा अर्थात् वेगों के बलात् निरोध से अथवा उनको बलात् प्रवृत्त करने से तज्जन्य विकार प्राणघातक हो जाते हैं ॥ २९ ॥

उष्णीष सौंदर्यप्रसाधक, वातकफनाशक तथा धूलि आदि से मस्तक की रक्षा करती है। उपानह धारण करने से पैरों को आराम मिलता है, दृष्टि बढती है तथा जीवन सुखमय रहता है। छत्रधारण मंगलकारक, तापहारक, लक्ष्मीदायक, शैत्यनाशक अत एव उत्तम माना गया है। हाथ में सुघट यष्टि धारण करने से महाभय से रक्षा होती तथा हिम्मत (आत्मबल) बढती है। सुखपाल (पालकी) आरोहण वात-पित्त और कफ का निवारक है। गजारोहण आयु में वृद्धि करनेवाला पुष्टि और लक्ष्मी देनेवाला, तथा वातपित्त बढाने वाला है। अश्वारोहण वात-पित्त और श्रम दायक तथा मेद-प्रचुरता का और कफ का ह्रास करनेवाला है। चपल अश्व पर आरोहण विशेषतया बलिष्ठ पुरुषों के लिये प्रशस्त है ॥ ३०–३१ ॥

इनमें से यथारुचि, किसी भी यान पर सुखपूर्वक आरोहण करके कल्याण-मित्रों के साथ मनोविनोदार्थ राजमार्ग पर शनैः शनैः पर्यटन करते हुये, तथा यत्र तत्र

[1]–अत्रैव गुच्छके कतिचिद्वक्ष्यमाणान् ।

सायंतनं लघ्वशन समाप्य पिबेत् पय शर्करया समेतम्।
श्यामामथो कक्षगतां विधाय परामृशन्नुच्चकुचौ शयीत ॥ ३३ ॥
भूशय्याऽनिलदाऽस्रपित्तशमनी रूक्षा सदा बृंहणी
खट्वा दोषहरा सदागतिगति श्रीकाष्ठपट्टी भवेत्।
मासत्वग्रुधिरप्रसादजनन निद्राप्रमोदप्रदं
वृष्यं वातकफश्रमप्रलयकृत् संवाहनं ब्रूमहे ॥ ३४ ॥
मायूरचामरजवेत्रजतालवृन्तवस्त्रोत्थमन्दमरुदागतिरुत्तमाऽस्ति।
प्रस्वेदमूर्च्छनपरिश्रमतर्षहन्त्री स्निग्धा त्रिदोषदलिनी हृदयङ्गमाऽपि ॥३५॥
इति रात्रिचर्या।

भवन्ति यस्मिञ्चयकोपशान्तयोऽनिलस्य पित्तस्य कफस्य संततम्।
वदन्ति तद्राशिषु संक्रमाद्रवेर्भिषग्धुरीणा ऋतुषट्कमाख्यया ॥ ३६ ॥

नाना प्रकारके कौतुक पूर्ण विविध दृश्यों तथा प्रसगो को देखते हुये, पुन सायकाल के समय अपनी प्रिया द्वारा किये गये स्नेहपूर्ण स्वागत को स्वीकार करते हुये, परम आह्लाद सहित अपने घरमें प्रवेश करे ॥ ३२ ॥

– दिनचर्या समास –

अब रात्रिचर्या सुनिये। सायकाल को हल्का भोजन करके शर्करायुक्त मधुर दुग्ध पीना चाहिये। फिर अपनी षोडशवर्षीया प्रियतमा की बगल में उसके उन्नत उरोजो पर हाथ फेरते हुये शयन करें। भूमिपर शयन वातप्रकोपक किंतु रक्त पित्त शामक है, रूक्ष है, तथा बृहण करता है। पर्यंकशयन त्रिदोषनाशक एव काष्ठपट्टी पर शयन वातकारक है। सवाहन-गात्रपीडन मास, त्वचा तथा रुधिर का प्रसादक, निद्रा तथा आनन्द दायक और वृष्य है, तथा वात, कफ एव श्रम को दूर करता है। मयूर-पिच्छ, चामर, वेत्र, व्यजन, तालवृत तथा वस्त्र, इनकी मद मद वायु का सेवन उत्तम माना गया है। इनसे लीगई पवन स्निग्ध, हृदयको प्रिय, त्रिदोषनाशक, प्रस्वेद, मूर्च्छा एव तृषा को मिटाने वाली होती है ॥ ३३–३५ ॥

– रात्रिचर्या समास –

अब ऋतुचर्या कहते हैं। बारह राशियों में से सूर्य की प्रति दो राशि गत सक्रान्ति के क्रम से षड् ऋतुयें बनती हैं। यह अग्रगण्य वैद्यों का मत है। इन ऋतुओ मे वात, पित्त और कफ का निरतर सचय, प्रकोप तथा शमन होता रहता है ॥ ३६ ॥

१–दिनचर्यामभिधाय सक्षिप्य रात्रिचर्यामप्याहु –सायतनमित्यादि। २–षोडशवार्षिकीं स्त्रियमित्यर्थं। ३–वातदेत्यर्थ। "मातरिश्वा सदागति" इत्यमर। ४–यथासुख हस्तपादप्रभृतेर्गात्रस्य पीडनम्। ५–अधुना पारिशेष्यादृतुचर्यामाचक्षते। तत्र प्रथम प्रयोजनप्रदर्शनपूर्वं सामान्यतस्तत्स्वरूपमेवाहुर्द्वाभ्याम्। प्रयोजन चायुर्वेदे ऋतुषट्काभिधानस्य वातादीनां चयादिकारणत्वबोधद्वारा तत्प्रतीकाराचरणम्। ते च ऋतव सूर्यस्य गतिविशेषा-

मेषादिराशिद्वितयसूर्यसंक्रमतः क्रमात् ।
ग्रीष्मादिमाधवान्ताः षड् गणिता ऋतवो बुधैः ॥ ३७ ॥
चयप्रकोपोपशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु ।
मायोर्वर्षाप्रभृतिषु श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥ ३८ ॥

मेषादि दो दो राशियों में सूर्य के संक्रमण से क्रमशः ग्रीष्मऋतु से लेकर वसन्तान्त षड् ऋतुओं की पंडितों ने गणना की है। अर्थात् सूर्य की मेष तथा वृष राशि-गत संक्रान्ति से ग्रीष्म ऋतु, मिथुन तथा कर्क से वर्षा ऋतु, सिंह तथा कन्या से शरद् ऋतु, तुला तथा वृश्चिक से हेमन्त ऋतु, धनु तथा मकर से शिशिर ऋतु, कुंभ तथा मीन से वसंत ऋतु इस तरह क्रमशः षड् ऋतुयें मानी गयी हैं। (ज्योतिषशास्त्रानुसार उपरोक्त आयुर्वेदीय क्रम, भिन्न सा प्रतीत होता है। यथाः—'मृगादिराशिद्वयभानुभोगात् षडर्तवः स्युः शिशिरो वसन्तः। ग्रीष्मश्च वर्षाश्च शरच्च तद्वत् हेमन्तनामा कथितोऽत्र षष्ठः' ॥ इसके अनुसार, मकर कुंभ में शिशिर, मीन मेष में वसन्त, वृष मिथुन में ग्रीष्म, कर्क सिंह में वर्षा, कन्या तुला में शरद्, वृश्चिक धनु में हेमन्त, इस तरह ऋतुओं का राशिगत क्रम है। इसके विपरीत अन्य तंत्रों में यह व्यवस्था मिलती है—' ग्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्तः प्रावृण्मिथुनकर्कटौ। सिंहकन्ये स्मृता वर्षास्तुलावृश्चिकयोः शरत्। धनुर्ग्राहौ च हेमन्तो वसन्तः कुंभमीनयोः ॥' ग्रंथकार का भी यही मत है।) ॥ ३७ ॥

वायु का ग्रीष्म में चय, वर्षा में प्रकोप तथा शरद् में शमन होता है। पित्त का वर्षा में चय, शरद् में प्रकोप तथा हेमन्त में शमन कहा गया है। कफ का

च्छीतोष्णवर्षलक्षणाः कालपरिणामविशेषास्तत्तल्लक्षणप्रादुर्भावात्तत्तदाख्याश्च। केषांचिल्लक्षणान्यपि मुक्तकमुक्तावल्यां श्रीगुरुभिरुक्तानि द्रष्टव्यानि। तेषु वर्षावसन्तलक्षणं सहृदयानां दृष्टिविषयीकर्तुमत्रैव लिख्यते। यथा—"जीमूतमाला ग्रथितैकजाला विद्युद्विशालाः स्मरमत्तबालाः। हंसप्रघर्षाः कृतलोकहर्षाः संतापघर्षाः सखि भान्ति वर्षाः ॥ आज्ञां मन्मथचक्रवर्तिनृपतेरादाय निश्शङ्कधीर्भ्राम्यद्भृङ्गमहाजनान् पिकगिरा साकूतमाकारयन्। कुञ्जाट्टे च्युतपत्रसंस्तरवति श्रीमान् वसन्ताभिधो व्यापारी सुमनोमरन्दवसुभिर्वाणिज्यमालम्बते ॥" इत्यलम्। विस्तरस्त्वन्यत्र द्रष्टव्यः।

१—"ग्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्तः प्रावृण्मिथुनकर्कटौ। सिंहकन्ये स्मृता वर्षास्तुलावृश्चिकयोः शरत् ॥ धनुर्ग्राहौ च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः।" इति तन्त्रान्तरमत्रार्थे।

२—ग्रीष्मवर्षाशरत्सु, वर्षाशरद्धेमन्तेषु, शिशिरवसन्तग्रीष्मेषु च यथाक्रमं वातादीनां चयकोपशमा इत्यर्थः। तत्र चयः स्वस्थान एव वृद्धिः। स्वमार्गादन्येन मार्गेण गमनं कोपः। स्वस्थानस्थत्वं समत्वमविकृतत्वं च प्रशमः। चयकोपाभ्यां चात्र सुश्रुतोक्ताः षडप्यवस्था बोद्धव्याः। तत्तत्कालयोग्यविशिष्टचिकित्साचरणार्थम्। यथा हि—"संचयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम्। व्यक्तिं भेदं च यो वेत्ति दोषाणां स भवेद्भिषक्।" इति।

इति कालस्वभावोऽयमाहारादिवशात् पुनः ।
चयादीन्यान्ति सद्यो[1]ऽपि दोषाः काले विशेषतः ॥ ३९ ॥
धातु[2]क्षयश्रमविरूक्षकषायशीतलघ्वन्नलङ्घनविरेचनवान्तिशोकैः[3] ।
कन्दर्पजागरणचिन्तनभीतिघातैर्वर्षासु दुष्टिमयते पवन प्रदोषे ॥ ४० ॥
स्निग्धाम्लमिष्टपटुनस्यगुरूष्णनिद्राप्रस्वेदबस्तिरविदीधितितर्पणानि ।
साभ्यङ्गकर्मदिनमध्यघनात्ययानि शान्तिं नयन्ति कुपितं पवनं क्षणेन ॥४१॥
पट्वम्लतीक्ष्णकटुदाहिसुरातपस्त्रीसंभोगरुट्श्रमतृषातिलमाषमेपैः ।
ग्रीष्मे निशीथसमये शरदि प्रकोपं मध्यन्दिने व्रजति पित्तमिति प्रसिद्धिः ४२

शिशिर में चय, वसन्त में प्रकोप तथा ग्रीष्म में शमन माना जाता है। (जिस दोष का जो स्थान विशेष है, उस अपने ही स्थान में उसकी वृद्धि सचय कहलाती है। जिस दोष का जो मार्ग है उस मार्ग को छोडकर अन्य मार्ग द्वारा उसकी गति गमन-प्रकोप कहा जाता है। जिस दोष का जो स्थान है उस स्थान में उस दोष की सम-अविकृत-स्थिति प्रशम माना गया है। दोषो के सचय तथा प्रकोप की छहो अवस्थाओ का वर्णन तथा चिकित्सा शास्त्र में उनकी विशिष्टता का निर्देश सुश्रुत ने किया है। 'सचय च प्रकोप च प्रसर स्थानसश्रयम्। व्यक्तिं भेद च यो वेत्ति दोषाणा स भवेत् भिषक्')॥ ३८ ॥

वातादि दोषो का यह चयादि क्रम जो कहा गया वह काल के प्रभाव का सहज परिणाम है। अर्थात् ग्रीष्मादि में जो वातादि का चय होता है वह अनिवार्य है। वह होना ही चाहिये—होता ही है, क्योकि-ग्रीष्मादि काल के प्रभाव से इस तरह होना एक सहज क्रिया है। तथापि आहार विहार आदिसे काल का यह स्वभाव प्रभाव-दबाया जा सकता है। अत कालविशेष में भी आहारादि के प्रभावसे वातादि दोष शीघ्र ही चयादि को प्राप्त हो सकते हैं, अर्थात् वातादि दोषो के चयादि में ग्रीष्मादि काल के स्वभाव की अपेक्षा आहारादि के प्रभाव का विशेष प्रावल्य है। अब, निम्नलिखित श्लोकों में से एक श्लोकद्वारा वातादि के चय और प्रकोप के तथा दूसरे श्लोकद्वारा उनके प्रशम के हेतुभूत आहार-विहारादिका वर्णन किया जाता है ॥ ३९ ॥

धातुओं के क्षय से, श्रम से, रूक्ष, कषाय, शीतल तथा लघु अन्न से, लघन, वमन और विरेचन से, रतिप्रसग से, जागरण चिंतन तथा भय से, चोट लगने से वर्षा-ऋतुमें, सायकाल के समय वायु प्रकुपित होता है ॥ ४० ॥

स्निग्ध, अम्ल, मधुर और लवण रस के सेवन से, नस्य, स्वेद तथा बस्ति लेने से, भारी और उष्ण अन्न से, निद्रा, सूर्यताप तथा तर्पण से, अभ्यग से, मध्याह्न काल में, शरद् ऋतु में पवन प्रशमित होता है ॥ ४१ ॥

अम्ल, लवण, तीक्ष्ण, कटु तथा विदाही द्रव्यो से, शराब, ताप, स्त्रीसभोग,

---

१—एतेन कालस्वभावादाहारविहारादे प्रावल्य दर्शितम्। २—इदानीं वातपित्तकफाना चयप्रकोपादेस्तथा प्रशमस्य कारणानि सक्षेपेण सगृह्णन्ति—धातुक्षयेत्यादि। ३—रोष।

माधुर्यतिक्ततुवरातिहिमप्रसूनज्योत्स्नाम्बुकेलिललनाधरचुम्बनानि ।
सर्पिःपयोरुधिरकर्षणरेचनानि प्रौढप्रभावमपि संशमयन्ति पित्तम् ॥ ४३ ॥
स्निग्धद्रवाम्लपटुमिष्टहिमातिनिद्रानिश्चेष्टतादधिपयोगुरुभिर्वसन्ते ।
सायं प्रभातसमये सति भुक्तमात्रे कोपं कफः प्रकटयत्यतिमात्रमाशु ॥ ४४ ॥
क्षारोष्णरूक्षकटुतिक्तकषायनस्यनिष्ठीवनाध्ववमनश्रमधूमयुद्धैः ।
श्लेष्मा प्रशाम्यति महानपि यद्वदङ्घ्रित्राणप्रहारविधिभिः कुटिलस्वभावः ४५

हिमस्निग्धस्वादुद्रवलघुरसालाघृतपयो-
दिवानिद्रासक्तुप्रवरसिकतापानकरसाः ।
उशीरश्रीखण्डोपवनशशिशालिप्रभृतयः
सुखान्यस्मिन् ग्रीष्मे खरतपनभीष्मे विदधति ॥ ४६ ॥

मद्यं मांसं जाङ्गलं वस्तिकर्म स्वेदः सम्यङ्मर्दनं दीपनानि ।
उष्णं स्निग्धं माषगोधूमकादि वर्षास्वेतानि प्रहर्षाय पुंसाम् ॥ ४७ ॥
यष्टिं हस्ते पादुकां पादयुग्मे धृत्वा छत्रं मूर्ध्नि कार्यं प्रयाणम् ।
कौपं तोयं तर्षघर्षाय पेयं पक्षात् पक्षात् प्रेयसी प्रार्थनीया ॥ ४८ ॥

क्रोध, श्रम और तृषा से, तिल, उडद तथा मेष-मांस के सेवन से, ग्रीष्म ऋतुमें, मध्य रात्रि में, शरद् में, मध्य दिन में पित्त, प्रकोप को प्राप्त होता है। यह सुप्रसिद्ध है ॥४२॥

मधुर, तिक्त, कषाय तथा अतिशय शीतल पदार्थों से, पुष्प, चंद्रज्योत्स्ना, जल-क्रीडा तथा युवति के अधरचुंबन से, घृत तथा दूध के सेवन से, रक्तमोक्षण तथा विरेचन से अति प्रवृद्ध पित्त भी प्रशमित हो जाता है ॥ ४३ ॥

स्निग्ध, द्रव, अम्ल, लवण, मधुर, तथा शीतल द्रव्यों से, अति निद्रा और निष्क्रियता से, दही, दूध तथा भारी अन्न से, वसंत ऋतु में, सायंकाल को, भुक्त मात्र अवस्था में, शीघ्र ही कफ अत्यंत प्रकुपित होता है ॥ ४४ ॥

क्षार, उष्ण, रूक्ष, तिक्त, कटु तथा कषाय पदार्थों से, नस्य लेने से, थूंकने तथा अधिक चलने से, वमन, श्रम तथा युद्ध करने से, ताप और जूतियों के प्रहारों से कुटिल स्वभाववाला अतएव अत्यंत कुपित कफ शांत हो जाता है ॥ ४५ ॥

प्रखरताप से अत्युग्र ग्रीष्म ऋतु में शीतल, स्निग्ध, मधुर, द्रव, श्रीखंड, घृत, दूध, चांवल तथा लघु अन्न, दिवास्वप्न, सक्तु, शीतल मिट्टी, उशीर, चंदन, उपवन, चंद्रमा आदि परम शान्ति देते हैं। वर्षाऋतु में मद्य, जंगली पशुओं का मांस, बस्ति-कर्म, स्वेद, सम्यक् अङ्गमर्दन, जठराग्निप्रदीपक पदार्थ, उष्ण, स्निग्ध, उडद, गेहूं आदि सभी मनुष्यों को आनन्द देते हैं। वर्षाऋतु में हाथ में यष्टि, पैरों में पादुका तथा मस्तक पर छत्र धारण करके ही बाहर गमन करना चाहिये। प्यास की शांति के लिये कूप का जल पीना चाहिये तथा स्त्री समागम प्रतिपक्ष एक ही बार करना चाहिये।

१–अधुना ऋतुचर्याप्रारम्भे प्रथमं ग्रीष्मचर्या । २–वर्षाचर्या द्वाभ्यां श्लोकाभ्याम् ।

गोधूमसर्पिर्यवमुद्गधान्यं रक्तस्रुती रेचनमस्ति मान्यम् ।
हंसोदकं तिक्तकषायमिष्टं घनान्तकाले लघु दुग्धमिष्टम् ॥ ४९ ॥

गोधूमशालीक्षुविकारसर्पिःप्राय प्रियाभिः सह भोज्यमद्यात् ।
साय तु शीतांशुमरीचिशीते हर्म्याग्रमौलौ शयन विदध्यात् ॥ ५० ॥

गोधूममाषैक्षवशालिपिष्टनव्यान्नसर्पिर्लवणाम्लमांसम् ।
हेमन्तकाले प्रबलाग्निभावाद्भुञ्जीत सुप्रीतमनः प्रभाते ॥ ५१ ॥

अभ्यङ्गघर्मश्रमकोष्णवारिकस्तूरिकाकुङ्कुमवीटिकाभिः ।
मद्येन नारीसुरतप्रसङ्गैर्विचित्रवस्त्रैर्गमयेद्दिनानि ॥ ५२ ॥

हेमन्तकालेऽत्र वियोगिकाले शीतस्य रुक् पश्य न तस्य यस्य ।
अङ्के हसन्ती दयिता हसन्ती पार्श्वे हसन्ती वसनानि सन्ति ॥ ५३ ॥

परिश्रमोद्वर्तनवान्तिनस्यकटूष्णरूक्षासवजाङ्गलानि ।
श्रीखण्डचन्द्रागुरुकुङ्कुमानि मधौ निषेवेत सदा हितैषी ॥ ५४ ॥

शरद् ऋतु में गोधूम, घृत, यव, मूग, चावल आदि धान्य, रक्तमोक्षण तथा विरेचन प्रशस्त है। हसोदक, तिक्त, कषाय, लघु पदार्थ तथा मिष्ट दूध इष्ट कहे गये हैं। शरद् ऋतु में अपनी प्रियतमाओं की मडली में गोधूम, शालि, सीधु (गन्ने की शराब) तथा घृतप्राय व्यजनों का उपभोग करना चाहिये। सायकाल के समय अपने प्रासाद के, चद्र किरणों से शीतल छत के अग्रभाग पर शयन करें। हेमन्त ऋतु में रात्रियों के दीर्घ होने के कारण, रात्रि में ही भोजन के जीर्ण हो जाने पर क्षुधा उत्पन्न होती है। अत इस ऋतु में प्रात काल ही भोजन करने का विधान है। हेमन्त ऋतु में जठरानल प्रबल रहती है। अत प्रसन्नमनपूर्वक प्रात काल ही गोधूम, उडद, गन्ने का रस, शालिपिष्ट, नव अन्न, घृत, लवण, अम्ल तथा मास आदि व्यजनों का सेवन करना चाहिये। इस ऋतु में अभ्यङ्ग तथा सूर्य ताप मे श्रम की निवृत्ति करते हुये कोष्ण जल से स्नान, केसर तथा कस्तूरी का लेप, ताबूल सेवन, मद्यपान, सुरतक्रीडा, सुदर-वस्त्रों का परिधान आदि चर्याओं द्वारा दिवस व्यतीत करने चाहिये। हेमन्त काल

१–शरच्चर्यापि द्वाभ्याम्। हसोदक च "दिवाऽर्ककिरणैर्जुष्ट" इत्यादि प्रोक्तलक्षणम्। २–हेमन्तचर्या त्रिभि। ३–"याममध्ये न भोक्तव्य यामयुग्म न लङ्घयेत्" इत्यादिनिषेधमुल्लङ्घ्यात्र प्रभातभोजनोपदेशो रात्रिदैर्घ्यात्तदैव क्षुधोत्पत्ते। प्रोक्तमपि सुश्रुते–"अतीनायतयामास्तु क्षपा येष्वृतुषु स्मृता। तेषु तत्प्रत्यनीकाढ्य भुञ्जीत प्रातरेव तु ॥ येषु चापि भवेयुश्च दिवसा भृशमायता। तेषु तत्कालविहितमपराह्णे प्रशस्यते ॥ रजन्यो दिवसाश्चैव येषु चापि समा स्मृता। कृत्वा सममहोरात्र तेषु भुञ्जीत भोजनम्" इति। ४–वियोगिनामन्तके। ५–ज्वलन्ती। ६–अङ्गारधानिका। ७–वसन्तचर्या त्रिभि। शिशिरर्तौ हेमन्तचर्यायां एव हितत्वात् पृथक् तच्चर्या नोक्ता। यदुक्त–"शिशिरे शीतमधिक रौक्ष्य चादानकालजम्। विशेषतस्ततस्तत्र हेमन्तस्य मतो विधि" इति।

यवगोधूममुद्गादि भुञ्जानः सुखमेधते।
अभयां क्षौद्रसंपन्नां भजेदभयदायिनीम् ॥ ५५ ॥
अस्मिन् वसन्ते न नराः सहन्ते वधूवियोगं च बलासरोगम्।
कुरङ्गनाभिद्रवलेपभाभिर्भजन्तु हृष्टाः प्रमदाः प्रलिप्ताः ॥ ५६ ॥

अथ रसादिभेदप्रकरणम्।

यथाक्रमं प्रवक्ष्यामः प्रत्ययान् रसगोचरान्।
संख्या पूर्वाङ्कमारभ्य द्विघ्ना अङ्का यथोत्तरम् ॥ ५७ ॥

वियोगियों का संयोग कराता है। इस ऋतु में जिसके अंक से हंसती हुई प्रसन्नमुख युवतियां आलिंगन कर रहीं हों, पार्श्व में प्रज्वलित अंगीठियां हों तथा जिसका अङ्ग (कोमल तथा उष्ण) वस्त्रों से परिवेष्टित हो उसको 'शीत पारुष्य' जन्य दोष स्पर्श भी नहीं कर सकता। वसंतऋतु में, अपने हितके लिये, परिश्रम, उद्वर्तन, वमन तथा नस्य लेना चाहिये। कटु, उष्ण, रूक्ष, आसव तथा जांगल पशुओं के मांस का सेवन तथा चंदन, कपूर, अगरु एवं केसर का शरीर पर लेप करना चाहिये। इस ऋतु में यव, गोधूम, मूंग आदि का भोजन करते हुये रोगों से अभय देने वाली अभया का मधु के साथ सेवन करने से आरोग्यलाभ होता है। वसंतऋतु में मनुष्य दो ही बातें सहन नहीं कर सकते—प्रथम, अबला से वियोग और दूसरा, बलास (कफ) का रोग। अतः इस ऋतु में कस्तूरी द्रव लेप से सुगंधित अङ्गों वाली युवतियों से रमण करना चाहिये ॥ ४६–५६ ॥

रसादिके भेदों का प्रकरण –

अब हम रस के भेदों से संबंधित जानकारी कराने में सहायभूत साधनों का यथाक्रम उल्लेख करते हैं। (वस्तुतः रसके भेदादि की प्रतीति कराने वाला प्रत्यय-ज्ञान केवल गणितविशेष से संबंध रखता हुआ भी, चिकित्साशास्त्र का महत्त्व पूर्ण अंग है।

१–अथ खलु चयादीनां रसादिसापेक्षतया तदनन्तरं रसभेदाद्यारम्भः। रसाश्च मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायभेदात् षट्। रसभेदाश्चरकसुश्रुतादावपि प्रोक्ताः, ते च तथैव लिखिताः न चमत्कृतिकारका इत्यतः सहृदयचिकित्सकानां कौतुकार्थं स्वबुद्धिवैभवप्रदर्शनार्थं प्रतिपक्षिवैद्यनिग्रहार्थं च तेषां प्रत्ययविशेषाः प्रोच्यन्ते। रसप्रतीतिजनकत्वात् प्रत्यया गणित-विशेषाः; ते च संख्याप्रस्तारनष्टोद्दिष्टमेरुपताकाभेदात् षडभिधास्यन्ते। २–तेषु प्रत्ययेषु संख्यासूत्रमिदम्। पूर्वमेकाङ्कं द्विगुणीकृत्य ततो यावद्रसं चतुरष्टादिक्रमेण यथोत्तरं द्विगुणीकृता अङ्काः रससंख्या भवन्तीति भावः। सा च संख्या तथाकृते चतुःषष्टिरूपा भवति।

संख्याप्रदर्शकयन्त्रकम्

संख्या	२	४	८	१६	३२	६४
रसाः	१	२	३	४	५	६

प्रथमरसाधो गगन यथोपरि तथैव शेषमवगच्छ।
वामे तु रसानेव प्रस्तारोऽभ्राणि यावदभ्राणि ॥ ५८ ॥

रस के इन भेदो को प्रस्तुत ग्रथ के विद्वान् रचयिता वैद्य-सूर्य महाकवि श्रीकृष्णराम ने जिस सरल, सुदर तथा चमत्कारपूर्ण शैली में समझाया है वह अन्यत्र सहिताग्रथो में भी उपलब्ध नहीं है। आयुर्वेद जगत को उनका यह विशेष उपहार है। यह प्रत्यय छह प्रकार क कहे गये है। यथा–सख्या, प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, मेरु और पताका। इन में सख्या प्रत्यय द्वारा रसो के कितने भेद होते है यह जाना जा सकता है, अर्थात् किसी भी वस्तु के कितने भेद हो सकते हैं यह सख्याप्रत्यय द्वारा बताये जा सकते हैं। सख्या प्रस्तार द्वारा रसों की सख्या के अतिरिक्त वातादि दोषों की तथा सन्निपातादि रोगो की भी सख्या बताई जा सकती है। यह विषय गणित से सबध रखने के कारण अत एव कुछ कठिन एव कुछ नीरस होने से वैद्यगण इसे समझने का प्रयत्न नहीं करते। वह इतना अवश्य जानते हैं कि रस के ६३ भेद होते है, वात, पित्त, कफादि के ६२ भेद होते हैं। लेकिन उसका प्रकार प्राय नहीं जानते। उसी 'प्रकार' को इस ग्रथ में सरल एव सर्वगम्य पद्धति से समझाने का प्रयत्न किया गया है।)

अस्तु, रसो की कितनी सख्या होती है यह 'सख्या' प्रस्तार से बताया जा सकता है। रस छह प्रकार के होते हैं अत प्रथम छ कोष्टक बनालें फिर (१) के अक को द्विगुणित (२) करके इसको प्रथम कोष्टक में लिख लें फिर दूसरे कोष्टक में दो (२) के अक को द्विगुणित (४) करके रख दें। इस तरह यथाक्रम तीसरे, चौथे, पाचवें, तथा छठे कोष्टकों में पूर्व कोष्टकगत अक को द्विगुणित करके आगे के कोष्टक में रखते जायें। इस तरह रखने से तीसरे कोष्टक में ८ का, चौथे में १६ का, पाचवें में ३२ का तथा छठे कोष्टक में ६४ का अक आयेगा। अर्थात् रसो के चौसठ भेद होते है। कृपया टिप्पणी का 'सख्याप्रदर्शकयत्रम्' देखें ॥ ५७ ॥

दूसरा प्रत्यय 'प्रस्तार' है। प्रस्तारद्वारा रस के चौसठ भेदो के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। प्रस्तार निकालने का प्रकार इस तरह है–प्रथम पक्ति में छहों रसो के प्रतीक रूप से अर्थात मधुर आदि रसो के प्रतिनिधिरूप में एक दो आदि के अक लिखलें। जैसे मधुर रस के प्रतिनिधि रूप में एक (१) के अक को, अम्ल, लवण, तिक्त, उष्ण तथा कषाय रस के प्रतिनिधि रूप में यथा क्रम दो, तीन, चार,

---

१–इद च भेदस्वरूपज्ञापनोपयोगिप्रस्तारसूत्रम्। तत्करणप्रकारश्चेत्थम्–प्रथमपङ्क्तौ षड्रसप्रतिनिधिभूता एकद्वित्रिचतु पञ्चषड्का क्रमेण लेख्या। तत प्रथमाङ्कस्याध शून्यम्। तदुत्तर यथोपरि तथैवेति द्वितीया पङ्क्ति सिद्धा। पुनस्तृतीयपङ्क्तावपि प्रथमरसस्य द्वितीयाङ्कामरसस्याध शून्य शेष यथापूर्वम्। ऊने तत्स्थानीयाङ्क एव। एव चतुर्थादिपङ्क्योऽपि यावत्सर्वाभ्र पूरणीया। अभ्राणीति तत्तत्स्थानोपाधिमाश्रित्य बहुवचनम्। यन्त्र चास्योत्तरपृष्ठे द्रष्टव्यम्। (इत परं प्रकरणप्राप्ता टिप्पणी प्रस्तारयन्त्रादीनि च परिशिष्टे प्रतीयताम्)।

नष्टं प्रश्ने तदर्धेऽर्धे समे खं विषमे रसः।
आद्याद् द्विघ्नाल्लिखोद्दिष्टे सैकं स्यात् खाङ्कमिश्रणम् ॥ ५९ ॥

पांच, तथा छह के अंक को। इस तरह छहों अंकों को लिख लें। अब दूसरी पंक्ति में प्रथम पंक्ति के एक (१) के अंक के नीचे शून्य (०) तथा दो तीन आदि अंकों के नीचे यथाक्रम दो तीन आदि उपरि पंक्तिवाले वही अंक यथावत् रखदें। अब तीसरी पंक्ति लें। द्वितीय पंक्तिगत २ के अंक के नीचे शून्य रख दें। तदोत्तर यथापूर्व शेष अंक रख दें। तथा द्वितीय पंक्ति गत शून्य के नीचे प्रथम पंक्तिके प्रथम स्थान गत एक १ का ही अंक रखकर तृतीय पंक्ति को पूर्ण करलें। इसी तरह चतुर्थ पंक्ति लें। तृतीय पंक्तिगत १ के अंक के नीचे तथा शून्य के नीचे यथाक्रम दोनों के नीचे शून्य (०) रखकर शेष अंकों के नीचे यथापूर्व शेष अंक रखते हुये चतुर्थ पंक्ति पूर्ण कर लें। इसी तरह पंचमादि पंक्तियां, जबतक छहों स्थान शून्यों (०) से पूर्ण न हो जायें तबतक यथाक्रम पूर्ण करते जायें। इस तरह चौसठवीं पंक्ति के छहों स्थान शून्य युक्त होंगें। छहों रसों के चौसठ प्रस्तार तथा प्रत्येक संख्यावाले भेद का प्रकार परिशिष्ट-गत 'प्रस्तारज्ञापकं यंत्रं' में उपलब्ध होंगें ॥ ५८ ॥

नष्टप्रस्तार द्वारा रसके अमुक संख्या वाले भेद का स्वरूप जाना जाता है।

१-नष्टाख्यगणितसूत्रमिदम्, किं च 'एतावत्संख्याको भेदः किंरूपो भवति?' इति प्रश्ने कृते नष्टेनोत्तरं देयम्। तत्रायं क्रमः-प्रश्नाङ्के समे सति खं लेख्यं, विषमे च रसाङ्कः ततस्तदर्धे समे खं, विषमे रसः; पुनस्तदर्धे समे खं, विषमे च रसाङ्कः; एवं पुनः पुनः कृते प्रश्नविषयकसंख्यावतो भेदस्य भवत्याकृतिरुत्पन्ना। यथा केनचित्पृष्टं 'पञ्चविंशतितमो रस-भेदः किंव्यञ्जनो भवति?' इति। अत्र प्रश्नाङ्कः पञ्चविंशतिरूपो विषम एव। ततो रसाङ्कः प्रथमस्थानीय एकाङ्को लेख्यः। पुनस्तदर्धे कर्तव्ये पञ्चविंशतेरर्धा यद्यपि सार्धद्वादश भवति, तथाऽपि त्रयोदश मन्तव्याः। एवं यत्रार्धे कर्तव्ये अङ्कभङ्गसंभवः तत्रार्धाङ्कपूरेण पूर्तिः कर्त-व्येत्युपदेशः। तथा च त्रयोदश विषमा एव तदा द्वितीयस्थानीयो द्वितीयाङ्को लेख्यः। ततस्तदर्धे कृते सप्त भवन्ति। पूर्वोक्तन्यायेन तेऽपि विषमाः। अतस्तृतीयरसः। ततस्त-दर्धकरणे पूर्वोक्तरीत्यनुसारेण चत्वारो भवन्ति। ते च समाः, ततश्चतुर्थस्थाने खं, तदर्धे कृते द्वौ, तयोरपि समत्वे खं लेख्यं, तदर्धे कृते एकः संभवति, स च विषमः, ततो रसाङ्कः तत्स्थानीयः षडङ्को लेख्यः। एवं कृते- | १ | २ | ३ | ० | ० | ६ | एषाकृतिः सिद्धा भवति, सैव पञ्चविंशतितमभेदस्येति। एवमन्यत्रापि करणीयम्। २-उद्दिष्टसूत्रम्। 'एतद्रूपो भेदः किंसंख्याको भवति?' इति प्रश्ने उत्तरमुद्दिष्टविधिना संभवति। विधिश्चायमवधार्यः-पूर्व-माद्याङ्काद्यथोत्तरं द्विगुणान् कृत्वा लिखेत्। ततः शून्योपरिस्थाङ्कसंकलनेन या संख्या भवति तस्यामेकाङ्कमिश्रणेन या संख्या सैव तद्भेदस्य। यथा केनचित्पृष्टम्। | ० | ० | ३ | ० | ५ | ६ | इति स्वरूपो रसभेदः किंसंख्याक? इति। तदा प्रथम-खस्योपरि एकाङ्को लेख्यः, तदुत्तरं द्विगुणीकृत्य द्विचतु-रष्टषोडशद्वात्रिंशदङ्काः क्रमेण लेख्याः। यथा-

१	२	४	८	१६	३२
०	०	३	०	५	६

यदि यह प्रश्न किया जाये कि रस के अमुक सख्या वाले भेद का क्या स्वरूप है तो उसका उत्तर 'नष्ट' प्रस्तारद्वारा दिया जा सकता है। प्रश्नाङ्क यदि सम हो तो शून्य लिखें, विषम होने पर उस रस का प्रतिनिधि अक लिखें। अब उस प्रश्नाङ्क को आधा करें। यदि अर्धाङ्क सम हो तो शून्य, विषम हो तो रस का प्रतिनिधि अङ्क लिखलें। इस अर्धाङ्क को पुन आधा करें यदि अर्धाङ्क सम हो तो शून्य, विषम आने पर पूर्ववत् रस का अङ्क लिखें। इस तरह प्रश्नाङ्क को पुन पुन अर्ध करते हुये तथा तदनुसार सम से शून्य तथा विषम से रस का अङ्क लिखते रहें। षड् सख्या पर्यंत लिखने पर रस के जिस सख्यावाले भेद को जानने के लिये प्रश्न किया हो वह प्राप्त हो जाता है। जैसे—'रसो का पच्चीसवा भेद क्या है?' यह प्रश्न किया गया। अब, पच्चीसका अक विषम है। अत रस का प्रथमस्थानीय प्रतिनिधि अक १ लिखें। फिर पच्चीस को आधा करने पर साढे बारह (१२½) आते हैं। तथापि जहा पूर्णाङ्क न हो उसे यढाकर पूर्ण बना लेना चाहिये। इस सिद्धात के अनुसार उपरोक्त अक को १३ बना लीजिये। तेरह का अक विषम है। अत द्वितीय स्थानीय रस का प्रतिनिधि २ का अक लिखलें। फिर तेरह का आधा साढे छह (६½) होता है। इसका पूर्णाक सात हुआ। यह भी विषम अङ्क है। अत तृतीय स्थानीय तीन का अङ्क लिखलें। अब पुन सात का आधा साढेतीन (३½) होता है। इसको पूर्णाङ्क बनाया तो चार होता है। चार का अक सम है अत चतुर्थस्थान मे शून्य लिखें। पुन चारका आधा दो सम अक है। अत पुन शून्य लिखे। दो का आधा एक विषम है। अत षष्ठस्थानीय छह का अक लिखें। इस तरह से १२३००६ यह प्रकार आता है। यही छहो रसो का पच्चीसवा भेद है। उद्दिष्ट प्रस्तार द्वारा प्रस्तारित रस का अमुक भेद कौनसी सख्या वाला है? इस प्रश्न का उत्तर मिलता है। इसकी विधि यह है—प्रथम छह कोष्टक बनालें। प्रथम कोष्टक मे एक का, द्वितीय में उससे द्विगुणित (२) का अक लिखें। इस तरह यथोत्तर द्विगुणित करते हुये शेप कोष्टक भी पूर्ण करलें। प्रत्येक कोष्टक के अक के नीचे प्रश्नवाले भेद के अक लिखदे। अब, जो जो अक शून्य पर हो उन सभी अकों को जोडकर उसमें एक का अक मिलादे। जो सख्या आयेगी वही सख्या उस भेद की होगी। जैसे ००३०५६ यह स्वरूपवाला रस का भेद, कौनसी सख्या का है यह प्रश्न किया गया। पूर्वोक्त नियमानुसार प्रथम शून्य पर एक का अक, द्वितीय शून्य पर इससे द्विगुणित दो का अक इस तरह यथोत्तर द्विगुणित करते हुये ४ ८ १६ ३२ के अक यथाक्रम लिखदें। अब, यहा शून्यो के ऊपरि अकों का अर्थात् १ २ ८ का सम्मिलित योग ग्यारह होता है। इसमें पूर्वोक्त सिद्धात के अनुसार एक मिलाने से बारह होते हैं। अत ००३०५६ यह भेद भी बारहवा ही है। यही उत्तर होगा ॥ ५९ ॥

अत्र रसानामुपरिस्थानेष्वष्टाङ्कान् सङ्कलय्य जाता सख्यैकादशरूपा, तस्यामेकाङ्कमेलनेन द्वादश। ततश्चाय भेदोऽपि द्वादशसख्याक एवेत्युत्तरम्। अनेनोद्दिष्टाङ्कसङ्कलने सैक सख्या भवतीति सख्याकरणप्रकारान्तरमपि सूचितम्।

रससंख्यया गृहेषु न्यस्तेष्वाद्यन्तयोः प्रथमम् ।
अपरेषूपरिगाङ्कौ कलितौ कुरु सुमेरुनिर्माणे ॥ ६० ॥

एक रससे लेकर षड् रस पर्यंत सभी रसों के अपने अपने प्रस्तार के हिसाब से कितने भेद हैं ? चार पांच आदि रसों के भेद कितने होते हैं? रस अभाव के कितने भेद हैं ? रसों की प्रस्तारसंख्या कितनी है ? इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर 'मेरु' प्रस्तार से दिया जा सकता है । अब, मेरु बनाने का सरल तरीका यह है कि एक रस के मेरु में दो कोष्टक, दो रस के मेरु में तीन कोष्टक, तीन के चार कोष्टक इस तरह प्रतिरस एक एक कोष्टक अधिक लिखकर मेरु बनावें । जैसे छहों रसोंका मेरु बनाना हो तो पहिले सात कोष्टक बनावें । उसके उपर षड् कोष्टक फिर उस पर पांच, फिर चार, फिर तीन तथा तीन कोष्टक ऊपर दो कोष्टक बनावें । इस तरह 'ठिप्पणी' में दिये गये 'मेरुयंत्र' की आकृति बनालें । अब, इस मेरु के सबसे ऊपर के फलक के दोनों कोष्टकों में एक एक का अंक लिखलें । तथा प्रत्येक फलक के दाहिने तथा बायें ओर के अन्तिम कोष्टकों में भी एक एक का अंक लिखलें । अब, दूसरे फलक के रिक्त मध्य कोष्ट में प्रथम फलक के दोनों कोष्ट गत अंकों के योगवाली (२ की) रकम लिखदें । फिर तीसरे फलक के दोनों शून्य कोष्टकों में दूसरे फलक के प्रथम तथा द्वितीय कोष्टक गत तथा द्वितीय और तृतीय कोष्टक गत अंकों की यथाक्रम योगवाली रकम लिख देवें । इसी तरह तीसरे, चौथे, पांचवे तथा छहों फलक-गत अंकों का श्रृंखला बन्ध न्याय से योग करके अवशिष्ट कोष्टकों को भी भरदें । अब इस मेरु के प्रथम फलक के प्रथम कोष्ठ गत एक के अंक से एक रस के प्रस्तार का केवल एक ही भेद होता है यह जाना जा सकता है । अंतिम अंक, रस के अभाव वाले एक ही भेद को सूचित करता है । दूसरे फलक में, दो रसों के प्रस्तार में दोनों सम्मिलित रसों का एक ही भेद होता है । यह प्रथम कोष्ठ गत एक के अंक से सूचित होता है । इसी दूसरे फलक के मध्य में २ का अंक यह सूचित करता है कि दो रसों के, पृथक् पृथक् एक एक रस के हिसाब से, दो भेद होते हैं । अंतिम कोष्ठगत एक का अंक दो रसों के अभाव भेद को सूचित करता है । तीसरे फलक में प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ कोष्ठगत १. ३. ३. १ के अंकों से, तीन रसके प्रस्तार में, सभी तीनों सम्मिलित रसों का केवल एक भेद, दो दो रसों के तीन भेद, एक एक रस के हिसाब से भी तीन भेद तथा रसाभाव का एक भेद होता है । यह क्रमशः प्रतीत हो जाता है । चौथे फलक में १. ४. ६. ४. १ के अंक क्रमशः यह सूचित करते हैं कि चार रस के प्रस्तार में, चारों रसों का एक भेद, तीन तीन रसोंवाले चार भेद, दो दो रसों से छह भेद, एक एक रस से चार भेद, तथा रसाभाव का एक ही भेद होता है । पांचवें फलक में १. ६. १०. १०. ६. १ अंक क्रमशः यह बताते हैं कि पांचों रसों का एक, चार चार रसों के छह, तीन तीन के दस, दो दो के भी दस तथा एक एक के छह भेद होते हैं ।

१–इतः परं प्रकरणप्राप्ता टिप्पणी परिशिष्टे प्रतीयताम् ।

प्रत्येकं षड्द्वियोगाच्छरशशिकलिता विंशति[1] स्युस्त्रियोगात्
पारावारान्वयोत्था विपर्ययविधुमिता पञ्चयोगाद्रसा[2] स्यु ।
स्वाद्वम्लक्षार[6]तिक्तोपणतुवररसै संयुतैर्भेद एक[3]
पण्णामेवं रसानामिह परिगणिता सर्वभेदास्त्रिंषष्टि ॥ ६१ ॥

रसाभाव का एक ही भेद होता है। इसी तरह षष्ठ फलक-गत १ ६ १५ २० १५ ६ १ अकों से यह जाना जा सकता है कि षड्-रस के प्रस्तार में सभी रसो का एक भेद, पाच पाच रसो के षड्-भेद, चार चार के पदरह, तीन तीन के बीस, दो दो के पदरह भेद, एक एक के छह भेद तथा रसाभाव का एक ही भेद होना चाहिये। षष्ठ फलक के सातों कोष्टक गत अकों का योग चौसठ होता है। अर्थात् षड्-रसो के चौसठ भेद ही है यह जानकारी भी मेरु से प्राप्त होती है। इसी तरह पाच रसो के प्रस्तार की सख्या, पचम फलक के कोष्ठ-गत सभी अकों के जोडने से ज्ञात हो सकती है। इन अको का योग बत्तीस होता है। अर्थात् पाच रसो के बत्तीस भेद हुये। इसी तरह चार, तीन, और दो रसो के तथा एक रस के प्रस्तार की सख्या भी, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय तथा प्रथम फलक के कोष्ठों के अकों के योग से यथाक्रम जान लेनी चाहिये। अर्थात् चार रसो के सोलह, तीन रसो के आठ, दो रसो के चार तथा एक रस के दो भेद होते हैं। इस तरह षड्-रसो के चौसठ भेद हुये। जिनमे 'रसाभाव' भेद भी आ जाता है। किंतु, रसाभाव भेद आयुर्वेद में अनुपयोगी होने के कारण उसका ग्रहण नहीं किया जाता। अत आयुर्वेद-शास्त्र को रसो के तरेसठ (६३) भेद ही अभिमत है। इन सभी प्रस्तारो का अनुसधान परिशिष्ट में आलेखित (मेरुयत्र १) आकृति द्वारा करलें ॥ ६० ॥

प्रस्तुत श्लोको से पताका-प्रस्तार समझाया गया है। षड्-रस-प्रस्तार के मेरु में, सर्व रसो का एक ही भेद, पाच पाच रसो के छह भेद, चार चार रसो के पदरह भेद, तीन तीन रसो के बीस भेद, दो दो रसो के पदरह, एक एक रस के छह तथा रसाभाव का एक भेद होता है यह इतनाही अनुसधान किया जा सकता है। किंतु चौसठ भेदो में विभक्त षड्-रसो के प्रस्तार में सर्व रसवाला भेद किस स्थल पर आयेगा? अर्थात सर्वरस भेद कौन कौनसी सख्या का है? षड्-रसो के पाच पाच रस वाले, चार चार रस वाले, तीन तीन रसवाले, दो दो रसवाले तथा एक एक रस वाले भेद किस किस स्थल पर है? किस किस सख्या वाले हैं?

१–षड्मानामेकावलीमेरोरनुवादार्थं मेरुप्रस्तारार्थं च रचितमिद पद्यम् । २–पञ्चद-शैलर्थं । ३–चतुःरसयोगप्रादुर्भूता भेदा । ४–पञ्चदश । ५–षड्भेदा स्यु । ६–क्षार-पदेन लवणरसाभिधान 'षड्सातिरिक्त क्षाराख्यो रस' इति कैश्चिदुक्तस्य गुणक्रियायोगात् क्षारस्य द्रव्यत्वेनासगतत्वमिति सूचनार्थं, तस्य च लवण एवान्तर्भावप्रदर्शनार्थं चेति । ७–पूर्वं ये चतु षष्टिभेदा उक्तास्ते रसाभावरूपभेदसहिता । अत्र च तस्योपयोगाभावाद-नादर । अयमेव मेरुप्रस्तारश्चरकसुश्रुतादावप्यभिहित । अत्र परिशिष्टे सोदाहरण द्रष्टव्य यन्त्रम्–

उद्दिष्टाङ्कैर्भृते दण्डे प्रान्तात् पूर्वान् क्रमाद्धरन् ।
पताकां भर शिष्टाङ्कैः प्राक्सिद्धं तत्र मा धर ॥ ६२ ॥

इत्यादि प्रश्नों का उत्तर पताका द्वारा दिया जा सकता है पताका भरने का प्रकार कुछ अटपटा होता हुआ भी सरल है । षड्-रस के कुल चौसठ भेद होते हैं । अतः पताका में चौसठ कोष्टक होने चाहिये । परिशिष्ट में टिप्पणी गत 'पताका' की द्वितीय आकृति के अनुसार यदि पताका बनाई जाए तो उसकी पूर्ति निम्न-विधि से सुगमता पूर्वक की जा सकती है । पताका के प्रथम दंड भाग के सात कोष्टकों में, उद्दिष्ट-अंक, एक के अंक से लेकर उसे यथापूर्व द्विगुणित करते हुये बत्तीस के अंक पर्यंत, लिखदें । सातवें कोष्टक में चौसठका अंक लिखदें । (चौसठवां रसाभाव का अंक है तथापि यहां आलेखित किया जाता हैं ।) अब, प्रथमकोष्ठ-गत एक के अंक में दो जोडने से तीन आये, इस तीन के अंक को उद्दिष्टांक दो के नीचे लिखदें । फिर, एक को चार से, आठ से, सोलह से तथा बत्तीस से जोडने पर यथाक्रम पांच, नौ, सतरह तथा तेतीस के अंकों को तीन के अंक के नीचे एक एक के नीचे एक एक को यथाक्रम रखदें । इसी तरह, दो के अंक को चार से योग देने पर छह का अंक आया । इस अंक को उद्दिष्टांक चार के अंक के नीचे लिखदें । पुनः दो को आठ से जोडने पर दस के अंक को छह के नीचे, दो को सोलह से तथा बत्तीस से जोडने पर, अठारह तथा चौतीस के अंकों को, यथाक्रम एक के नीचे दूसरे को रख दें । अब, उद्दिष्टांक कोष्टक के नीचे, दूसरे फलक के प्रथम कोष्ठ-गत तीन के अंक को उद्दिष्टांक चार से जोडने पर सात के अंक को, चौतीस के अंक के नीचे लिख लेवें । इसी तीन को, पुनः उद्दिष्टांक आठ से जोडकर, ग्यारह के अंक को; सोलह से जोडकर, उन्नीस के अंक को; बत्तीस से जोडकर, पैंतीस के अंक को यथाक्रम एक दूसरे के नीचे रखते जायें । अब पांच के अंक को उद्दिष्टांक चार के अंक से योग देने पर नौ का अंक आता है । किंतु यह नौ का अंक एक बार आ चुका है । इसलिये इस अंक को पैंतीस के अंक के नीचे न लिखें । पताका प्रस्तार में यदि एक अंक आ गया हो तो उसी अंक को दूसरी बार नही लिखना चाहिये यह नियम है । अतः नौ के अंक को छोड दें । इसी तरह अंकों के परस्पर योग से यदि चौसठ से अधिक अंक आवे तो उसे भी छोड देना चाहिये । अस्तु, अब पांच के अंक को आठ से जोडें, फिर सोलह से, फिर बत्तीस से इन योगों से आने वाले तेरह, एकवीस तथा सैंतीस के अंकों को, पूर्ववत्, एक के नीचे दूसरे को, यथाक्रम से लिखदें । अब, नौ के अंक को चार से जोडने पर तेरह का अंक आता है । यह अंक आ चुका है । अतः उपरोक्त नियमानुसार इसे छोड दें । अब, नौ को आठ से जोडें । सतरह का अंक भी आचुका है । अतः इसे भी छोड दें । अब, नौ को सोलह से, फिर बत्तीस से जोडें । यथाक्रम पचीस तथा एकचालीस अंकों को एक के नीचे

१ इतः परं प्रकरणप्राप्ता टिप्पणी परिशिष्टे प्रतीयताम् । पताकायंत्रे सप्तधातुवेध-गणितयंत्रं च तत्रैवानुसंधेयम् ।

प्रत्येकं हव्यवाहाः समभृशयुगले खेचरा निर्भरैक-
द्वन्द्वेषणमध्यवृद्धैस्त्रिभिरनलनिशालायसंख्याः क्रमेण।
इत्येते वृद्धिभेदाः सह गगनशरा क्षीयमाणैर्द्वगेक-
क्षीणोच्चैः क्षीणमध्याभ्यधिकसमुदया द्वादशैव द्विषष्टिः ॥ ६३ ॥

दूसरे को रखदें। फिर सत्रह को चार से और आठ से योग देने पर इक्कीस तथा पचीस आते हैं। दोनों ही अंक आचुके हैं। अतः इन्हें छोड दें। अब, सत्रह के अंक को बत्तीस से जोडने पर उन्चास के अंक को इकचालीस (४१) के अंक के नीचे लिखलें। अब, उद्दिष्टांक के नीचे तृतीय कोष्टक को तथा उसके नीचे दिये गये शेष कोष्टकों को भरें। उद्दिष्टांक चार को आठ से जोडने पर बारह के अंक को आठ के अंक के नीचे रखें। पुनः चार को सोलह से तथा बत्तीस से जोडने पर आने वाले बीस तथा छत्तीस के अंकों को, बारह के नीचे वाले कोष्टकों में यथाक्रम आलेखित करदें। अथ, पुनः उद्दिष्टांक चार के अंक के नीचे छह के अंक को उद्दिष्टांक आठ से जोडने पर चौदह के अंक को छत्तीस के अंक के नीचे भरदें। इसी तरह, उद्दिष्टांक को अपने से अग्रिम उद्दिष्टांक के साथ जोडने से जो अंक आवें उन अंकों से, एकके नीचे दूसरे के क्रमद्वारा सभी कोष्टकों को पूर्ण करदें, कोष्टक के अपूर्ण रहने पर, उसी उद्दिष्टांक के नीचे वाले कोष्टकों के यथाक्रम अंकों को उद्दिष्टांक से जोडकर, उसे भर दें। एक बार सिद्ध हुये अंकों को छोडते जायें। चौसठ से अधिक अंक को भी ग्रहण न करें। इसी युक्ति से पताका सपूर्ण भरलें ॥ ६१–६२ ॥

मधुरादि रसों के तरेसठ भेद होते हैं—प्रत्येक रस के उदाहरण की तालिका नीचे दीजाती है। इसका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करें—

१ मधुर–मलाई गोदुग्ध आदि। २ अम्ल–आम्र, कमरख आदि। ३ लवण–रोमक आदि। ४ तिक्त–नीम, पर्पट आदि। ५ कटु–चव्य आदि। ६ कषाय–कमलगट्टा, वट के अंकुर आदि। ७ मधुराम्ल–कपित्थ फल आदि। ८ मधुरलवण–ऊटनी

१–रसभेदानभिधाय तत्प्रयोगार्थं दोषभेदानपि दर्शयन्ते। तत्र दोषाणां वृद्धिक्षयस्थानरूपा त्रिविधा गतिर्भवति। तत्र वृद्धिभेदाः पञ्चविंशतिः, तावन्त एव क्षयभेदाः। द्वादशस्थानगतिभेदाः, स्थानशब्देनात्र समत्वम्। समोऽपि दोषः आशयापकर्षवशात्तथाऽन्यदोषस्य क्षयवृद्धिसंभवे च रोगारम्भको भवत्येव। लक्षणानि चैषाम्–"यथाबलं यथास्वं च दोषा वृद्धा वितन्वते। रूपाणि जहति क्षीणाः समाः स्वं कर्म कुर्वते ॥" इति वृद्धिक्षीणानां वाग्भटोक्तानि द्रष्टव्यानि। एकक्षयद्विसाम्यद्विक्षयैकसाम्यैकवृद्ध्यैकक्षयैकसाम्यादिभेदानां च चरके क्रियन्तः शिरसीयाध्याये विलोक्यानि। "प्रकृतिस्थं यदा पित्तं मारुतः श्लेष्मणः क्षये। स्थानादादाय गात्रेषु यत्र यत्र विसर्पति ॥ तदा भेदश्च दाहश्च तत्र तत्रानवस्थिता। गात्रदेशे भवन्त्यस्य श्रमदौर्बल्यमेव च ॥ साम्ये स्थितं कफं वायुः क्षीणे पित्ते यदा बली। कर्षेत् कुर्यात्तदा शूलं सशैत्यस्तम्भगौरवम् ॥" इत्यारभ्य "पित्तश्लेष्मक्षये वायुर्मर्माण्यतिनिपीडयन्। प्रणाशयति संज्ञां च वेपयत्यथवा नरम् ॥" इत्यन्तेन ग्रन्थेन।

का दूध, भेड, मत्स्य आदि का मांस आदि। ९ मधुरतिक्त–देवदारु, सर्ज आदि का निर्यास आदि। १० मधुर कटु–कुत्ता तथा शृगाल का मांस आदि। ११ मधुरकषाय–तैल तथा धामन का फल आदि। १२ अम्ललवण–उरण तक्षा क्षार मृत्तिका आदि। १३ अम्लतिक्त–सुरा आदि। १४ अम्लकटु–चुक्र आदि। १५ अम्ल कषाय–हथिनी के दूध का दही तथा शुकमांसादि। १६ लवणतिक्त–तांबा, सीसा आदि। १७ लवण कटु–गोमूत्र, स्वर्जिका आदि। १८ लवण कषाय–समुद्रफेन आदि। १९ तिक्तकटु–कपूर, जायफल आदि। २० तिक्तकषाय–लवलीफल, हथिनी का घी आदि। २१ कटु-कषाय-भिलावे की मज्जा, हरिताल आदि। २२ मधुरअम्ल लवण–हथिनी का मांस आदि। २३ मधुराम्लतिक्त–गेहूं की सुरा आदि। २४ मधुराम्लकटु–शल्यमांसादि। २५ मधुराम्लकषाय–मस्तु तक्र आदि। २६ मधुरलवणतिक्त–शम्बूकमांसादि। २७ मधुरलवणकटु–अपूप, मृगमांस आदि। २८ मधुरलवणकषाय–तांबा, कासीस आदि। २९ मधुरति.कटु–कटुका आदि। ३० मधुरति. कषाय–गुडूची, बंदर का मांस आदि। ३१ मधुर कटु कषाय–गोधामांस, एरंडतैल आदि। ३२ अम्ललवणतिक्त–हाथी, मृग मूषक आदि का मांस आदि। ३३ अम्ललवणकटु–चांदी, शिलाजित आदि। ३४ अम्ललवणकषाय–हथिनी के दूध का दही। ३५ अम्लतिक्तकटु–मरिच युक्त सुरादि। ३६ अम्लति.कषाय–तोते के मांस युक्त सुरादि। ३७ अम्लकटुकषाय–अमलवेत आदि। ३८ लवणति.कटु–भेड का मूत्र आदि। ३९ लवणति.कषाय–समुद्र में स्थित समुद्रफेन आदि। ४० लवणकटुकषाय–भिलावा, आसव, रोमक लवण आदि। ४१ तिक्त कटु कषाय–कृष्ण-अगुरु, देवदारु आदि का तैल। ४२ मधुरलवणतिक्त–गोमूत्र, घोडी आदि का दूध। ४३ मधुराम्लल.कटु–गोमूत्र युक्त शिलाजित आदि। ४४ मधुराम्लल.कषाय–सैंधवयुक्त तक्र आदि। ४५ मधुराम्लति.कटु–लहसुन सहित सुरा। ४६ मधुराम्लति. कषाय–शंख आदि। ४७ मधुराम्लकटुकषाय–कांजियुक्त एरंडतैल। ४८ मधुराम्लति. कटु–उदुम्बर युक्त यव आदि। ४९ मधुराम्लति.कषाय–समुद्र फेन, शर्करा युक्त चंदन आदि। ५० मधुरलवण कटुकषाय–गोमूत्र युक्त तैल। ५१ मधुरति. कटुकषाय–तिल, गुग्गुल आदि। ५२ अ. ल. ति. कटु–सैंधव सौवर्चल युक्त हस्तिनी आदिका मांस तथा सुरा आदि। ५३ अ.ल.ति. कषाय–उद्भिदलवण युक्त शुक मांस। ५४ अ. ल. कटु कषाय–सौवर्चल युक्त हस्तिनी दूध का दही। ५५ अ.ति. कटुकषाय–बालमूली युक्त हस्तिनी दूध का दही। ५६ ल.ति.कटु कषाय–रोमक नमक कच्चा बिल्व आदि। ५७ मधुराम्लल. ति. कटु–आम्र, कमरख युक्त स्विन्न वार्ताक फल आदि। ५८ मधुराम्लल. ति.कषाय–उद्भिद् नमक युक्त तक्र। ५९ मधुराम्लल.कटुकषाय–त्रिकटु, यव युक्त तक्र। ६० मधुराम्लति. कटुकषाय–हरीतकी फल आदि। ६१ मधुरल.ति. कटुकषाय–लहसुन आदि। ६२ अम्लल.ति.कटुकषाय–भिलावा, रजत, शिलाजतु मिश्रित निंब आदि। ६३ म.अ.ल.ति.कटुकषाय–पारद, मृग मांस आदि।

रसों के भेदों का सविस्तर वर्णन करके इनके प्रयोग के लिये ग्रंथकार दोषों के भेदों का वर्णन प्रारंभ करते हैं।

१ अपने प्रमाण से अधिक अत एव रोग के हेतुभूत पृथक् पृथक्
दोषों के तीन भेद ३
२ दो दो दोषों की तुल्य वृद्धि तथा एक एक दोष की सम अवस्था
इस स्थिति में दोषों के तीन भेद ३
३ एक दोष अतिवृद्ध, दूसरा वृद्ध इस स्थिति में दोषों के षड् भेद ६
४ सम्मिलित दो दोष अतिवृद्ध तथा एक दोष वृद्ध
इस तरह दोषो के तीन भेद ३
५ एक दोष अतिवृद्ध तथा सम्मिलित दो दोष वृद्ध
इस तरह दोषो के तीन भेद ३
६ सम्मिलित दोषो की वृद्धतर तथा वृद्धतम अवस्था
इस तरह दोषो के षड् भेद ६
७ तीनों दोष वृद्ध इस तरह दोष का एक भेद १

इस तरह 'वृद्ध' दोषो के पचीस भेद होते हैं। कुल २५ भेद
८ इसी तरह 'क्षीण' दोषों के भी पचीस भेद समझने चाहिये २५ भेद
९ इसी तरह वृद्ध, क्षीण तथा सम के हिसाब से दोषों के षड् भेद समझें ६ भेद
१० इसी तरह एक क्षीण, दो वृद्ध, तथा दो की वृद्धि, तथा एक का क्षय
इसके भी षड् भेद होते हैं ६ भेद

इस तरह कुल भेद ६२ हुये

साम्यावस्था को प्राप्त तीनों दोषों का एक भेद स्वास्थ्य का हेतु कहा गया है। यह तरेसठवा भेद यहा परिगणित नहीं किया गया। दोषों के उपरोक्त बासठ भेदो का सविस्तर वर्णन इस तरह से है।

–वृद्ध दोष–

वातवृद्ध, पित्तवृद्ध, कफवृद्ध=३ भेद। वातपित्तवृद्ध, कफसम, वातकफवृद्ध, पित्तसम, पित्तकफवृद्ध वातसम=३ भेद। वातवृद्ध पित्तवृद्धतर, पित्तवृद्ध वातवृद्धतर, कफवृद्ध पित्तवृद्धतर=३ भेद। पित्तवृद्ध कफवृद्धतर, कफवृद्ध वातवृद्धतर, वातवृद्ध कफवृद्धतर=३ भेद। इस तरह कुल बारह भेद हुये।

कफवृद्ध वातपित्तअधिकवृद्ध, पित्तवृद्ध वातकफअधिकवृद्ध, वातवृद्ध पित्तकफअधिकवृद्ध=३ भेद। पित्तकफवृद्ध, वातअधिकवृद्ध, वातकफवृद्ध पित्तअधिकवृद्ध, वातपित्तवृद्ध कफअधिकवृद्ध=३ भेद। वातवृद्ध पित्तवृद्धतर कफवृद्धतम, वातवृद्ध कफवृद्धतर पित्तवृद्धतम, पित्तवृद्ध कफवृद्धतर वातवृद्धतम=३ भेद। पित्तवृद्ध वातवृद्धतर कफवृद्धतम, कफवृद्ध, वातवृद्धतर, पित्तवृद्धतम, कफवृद्ध पित्तवृद्धतर वातवृद्धतम=३ भेद। इस तरह इनके भी बारह भेद हुये। वातपित्तकफवृद्ध–१ भेद। इस तरह कुल २५ भेद होते हैं।

[1]वसुद्वयक्षमाभिदा रसादिसप्तधातुजाः ।
विदूषयन्त्यहो मला द्विषष्टिधा द्विषष्टिधा ॥ ६४ ॥

– क्षीण दोष –

वृद्ध-दोषों के जिस तरह २५ भेद होते हैं, उसी तरह क्षीणदोषों के भी २५ भेद समझलेना चाहिये । उपरोक्त विवरण में जहां जहां 'वृद्ध' शब्द का प्रयोग किया गया है वहां वहां 'क्षीण' शब्द का आदेश कर देने से 'क्षीण-दोष' के सभी भेद-स्वरूप स्पष्ट हो सकेंगे । इस तरह क्षीण दोषों के भी कुल २५ ही भेद होते हैं ।

–वृद्ध, क्षीण तथा सम दोष–

वात-वृद्ध, पित्तसम, कफक्षीण; पित्तवृद्ध, वातसम, कफक्षीण; कफवृद्ध, पित्त-सम, वातक्षीण;=३ भेद । कफवृद्ध, वातसम, पित्तक्षीण; वातवृद्ध, कफसम, पित्त-क्षीण; पित्तवृद्ध, कफसम, वातक्षीण;=३ भेद । वायुक्षीण, पित्तकफवृद्ध; पित्तक्षीण, वातकफवृद्ध; कफक्षीण, वातपित्तवृद्ध;=३ भेद । वातपित्तक्षीण, कफवृद्ध; वातकफ-क्षीण, पित्तवृद्ध; पित्तकफक्षीण वातवृद्ध=३ भेद । यह वृद्ध क्षीण तथा सम के हिसाब से दोषों के कुल बारह भेद और हुये ।

इस तरह वृद्धदोषों के पच्चीस, क्षीणदोषों के भी पच्चीस तथा वृद्ध, क्षीण और सम दोषों के बारह अर्थात् कुल मिलाकर बासठ भेदों का वर्णन किया गया । 'भेदा द्विषष्टि निर्दिष्टा त्रिषष्टिः स्वास्थ्यकारणम्' ॥ ६३ ॥

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र इन सातों धातुओं के १२८ भेद होते हैं । इन सभी धातुओं को उपरोक्त बासठ भेदों में भिन्न वातादि दोष दूषित करते रहते हैं । (सातों धातुओं के प्रस्तार भी षड् रसों के प्रस्तार में उपवर्णित विधि से करलें । अतः इनके भेद यहां उद्धृत नहीं किये जा रहे हैं । सप्तधातुवेधयंत्र कृपया परिशिष्ट में देखलें ।)

दूतादि प्रकरणः—भिषग्, द्रव्य, परिचारक तथा रुग्ण, चिकित्सा के यह चार पाद, चतुष्पाद, हैं । रुग्ण के गुणकथन का समावेश चतुष्पाद में ही हो जाता है । क्योंकि चारों पाद गुणयुक्त होने पर ही अपनी कार्यक्षमता दिखा सकते हैं । अतः—संक्षेप में, स्वस्थ वृत्त का रसमय शैली में वर्णन करके, चिकित्सा के बीजभूत रस, दोष एवं

१—इदानीं "संसर्गाद्रसरुधिरादिभिस्तथैषां दोषांस्तु क्षयसमताविवृद्धिभेदैः । आनन्त्यं तरतमयोगतश्च यातान् जानीयादवहितमानसो यथास्वम् ॥" इति वाग्भटोक्तानन्त्यप्रदर्शनाय दिक्प्रदर्श्यते—वसुद्वयेत्यादि । रसादिसप्तधातूनां मधुरादिषड्रसप्रकारेणैव षडपि संख्यावाः प्रत्यया अतिदेशेन बोध्याः । तथैव कृते अष्टाविंशत्यधिकशतसंख्याका धातुभेदा भवन्ति; तांश्च सर्वान् दोषान् द्विषष्टिधा द्विषष्टिधा दूषयन्ति—इति ॥

दूतादिप्रकरणम् ।

सदण्डशस्त्रो रुधिरोक्षिताङ्गो व्यङ्गो विजातिः स्रवदश्रुधारः ।
शिरोरुहश्लिष्टकरो विवर्णः खरोष्ट्रगाही स्खलदुच्चवाक्यः ॥ ६५ ॥
तैलप्रलिप्तावयवोऽथ षण्डः पाषण्डयुक्तोऽशुभदीनभाषी ।
एतेऽतिनिन्द्या इतरे तु दूताः सुजातयः सन्मतयः प्रशस्ताः ॥ ६६ ॥

द्वाभ्यां दूतवचो हत्वा भजेद्धूर्जटिलोचनैः ।
व्योम्नि मृत्युः समे कष्टं विषमे सुखसाध्यता ॥ ६७ ॥

यात्रासु वैद्यस्य शुभाय सौम्यं दूतस्य दीप्तं शकुनं शुभाय ।
युतो निजैर्वर्णबलस्वभावैः रोगी जितात्मा भिषजा चिकित्स्यः ॥ ६८ ॥

धातुओं के भेदों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म सविस्तर व्याख्या करते हुये, अब, इस प्रकरण में, रोग निदान में साहाय्यभूत चिकित्साचतुष्पाद, नाडी मलमूत्रादि की परीक्षा तथा अरिष्टादि विषयोंपर विचार प्रदर्शित करते हैं। प्रथम, वैद्य को बुलाने के लिये आये हुये दूत के लक्षणों का वर्णन किया जाता है। दूत के लक्षणों से भी अरिष्टादिका निर्णय किया जा सकता है ॥ ६४ ॥

दण्ड अथवा शस्त्रधारण किये हुये, रुधिर से सिक्त अंगों वाला, व्यङ्गयुक्त, कुलहीन, रुदन करता हुआ, मस्तक पर चिपके हुये केशवाला, विवर्ण, गदहे अथवा ऊंट की सवारी किये हुये, कठिनता से दीर्घ उचार करनेवाला (अर्थात् तोतली वाणीवाला) तैल लिप्त देहवाला, नपुंसक, पाखंडी, अशुभ तथा दीनभाषी दूत अत्यंत निंदनीय है। तदतिरिक्त, कुलीन तथा सम्यक् मतिवाले दूत प्रशंसनीय होते हैं ॥ ६५–६६ ॥

दूत से कहे गये वाक्य के अक्षरों की संख्या को दो से गुणा करके तीन से भाग दें। यदि शून्य आये तो समझना कि रोगी का मरण होगा, सम अंक आये तो रोगी को कष्ट होगा, यदि विषम अंक आये तो रोग सुखसाध्य है ऐसा जानना ॥ ६७ ॥

यात्रा करते समय वैद्य के लिये सौम्य शकुन तथा दूतको दीप्त शकुन शुभ का सूचक माना गया है। वैद्य को उसी रोगी की चिकित्सा करनी चाहिये जो जितात्मा हो, अपने स्वाभाविक वर्ण तथा बलसे युक्त एवं स्वस्थ प्रकृतिवाला हो ॥ ६८ ॥

१–संक्षेपतः स्वस्थलक्षणमभिधाय ततश्चिकित्सककौतुकार्थं रसदोषधातुभेदान् चिकित्सावीजभूतान् प्रदर्श्याधुना चिकित्साचतुष्पादास्तथा रोगज्ञानसहायका नाडीमूत्रादिपरीक्षाश्च संक्षेपतोऽरिष्टादि च प्रदर्श्यन्ते। तत्र प्रथमं वैद्याह्वानायागतस्य दूतसंज्ञां गतस्य विचारः। २–शकुनविचारः। ३–वैद्याह्वानाय गन्तुं प्रवृत्तस्येति शेषः। ४–चतुष्पादेषु रोगिगुणकथनम्। गुणयुक्ता हि पादाः कार्यकरणसमर्था भवन्ति। यदुक्तं चरके–"भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्। गुणवत् कारणं ज्ञेयं विकारव्युपशान्तये॥" इति।

अधीतायुर्वेदो विविधरसकर्ता मधुरगीः
स्पृहाशून्यः शुद्धो नवविशदवासा धृतिधरः ।
कृपासिन्धुर्विप्रः शिवचरणसेवी बहुवयाः ।
सुधाहस्तो वैद्यो नरवरचिकित्सास्वधिकृतः ॥ ६९ ॥

वाताद्वक्रतराऽतितीव्रगमना पित्तात्कफान्मन्दगा
तीव्रोष्णा ज्वरतः कृशा हिमतमा वेगाकुला मृत्युदा ।
नाडी तृप्तिमतः स्थिरा कुशलिनो गुर्वी तु सामाऽसृजा
कोष्णाऽतिक्षुधया चला कफसमा क्षीणाग्निरेतोबला ॥ ७० ॥

पुंसः सिरा दक्षकरप्रकोष्ठे वामेऽवलायास्तु परीक्षणीया ।
अतद्वयीधर्मतया युतस्य मन्ये द्वयोरेव नपुंसकस्य ॥ ७१ ॥

वामदक्षिणयोर्नाड्योर्या नाडी बलवत्तरा ।
ततः स्वरबलं विद्यात्तेन दोषं च वैद्यराट् ॥ ७२ ॥

अब वैद्य के गुण सुनियेः—आयुर्वेद का विद्वान्, विविध रसक्रियाओं में कार्यदक्ष, मधुरभाषी, निर्लोभी, शुद्ध अन्तःकरण वाला, नूतन तथा स्वच्छ वस्त्रों को धारण करने वाला, धैर्यवान्, कृपालु, ब्राह्मण, वृद्ध, आस्तिक, अमृतपूर्णहस्त अर्थात् अभय देनेवाला, शिवचरणों का उपासक वैद्य, श्रेष्ठ मनुष्यों की चिकित्साकार्यों में नियुक्त किया जाना चाहिये ॥ ६९ ॥

नाडीपरीक्षाः—वातप्रधान—नाडी वक्र गति, पित्तप्रधान शीघ्रगामी, तथा कफ-प्रधान मंद गति होती है। ज्वर से पीडित की नाडी तीव्र गति तथा उष्ण होती है। कृश, अत्यंत शीतल और वेगाकुल नाडी मृत्यु की सूचक मानी गयी है। भोजनादि से तथा वैभवादि से संतृप्त मनुष्य की नाडी स्थिर, सामावस्था में भारी, रक्ताधिक्य से उष्ण, अत्यंत क्षुधा से चपल, एवं अग्नि, बल तथा शुक्र से क्षीण की नाडी, कफ प्रधाननाडी के समान, मंदगति होती है ॥ ७० ॥

पुरुष के दक्षिण हस्त के प्रकोष्ठ की तथा स्त्री के वाम हस्त के प्रकोष्ठ की नाडी देखनी चाहिये। नपुंसक में पुंस्त्व तथा स्त्रीत्व दोनों धर्मों के विद्यमान होने के कारण उसमें जब स्त्रीभाव प्रकट हो तब वाम हस्त की, पुंभाव प्रकट हो तब दक्षिण हस्त की नाडी की परीक्षा करनी चाहिये। अथवा—उसके दोनों ही हाथों की नाडी देखनी चाहिये ॥ ७१ ॥

वाम तथा दक्षिण नाडी में से जो नाडी बलवत्तर हो उस से स्वरबल तथा स्वरबल से, चतुर वैद्य, रोग बल को पहिचान लेता है ॥ ७२ ॥

१—पादप्रधानस्य वैद्यस्य गुणाभिधानमिदम्। २—नाडीपरीक्षारम्भः। ३—स्त्रीपुंस-धर्मविलक्षणमिश्रधर्मवत्त्वेनेत्यर्थः। नपुंसकस्य तु स्त्रीपुंसयोरन्यतराकारप्रकटतामपेक्ष्य परीक्षा, "साम्यं तु न स्यादेव कृत्रिमस्य तु प्रकृतिस्थता" इति नाडीप्रकाशः। ४—नाडीगत्या स्वरविचारः।

कांस्ये वा काचपात्रेऽप्युषसि गदयुजो मूत्रमाधाय विन्दुं
क्षिप्त्वा तैलस्य पश्येत् स्तिमित इव स चेत् कीर्तितं कष्टसाध्य ।
मध्यच्छिन्नो हि कूर्मक्षुरशरतरवार्यारकोदण्डशूल-
व्याघ्राद्याभस्त्वसाध्यो व्यजनजलजनुःकम्बुकल्प सुसाध्य ॥७३॥
कलुष पवनान्मूत्रं पीतमुष्ण च पित्तत ।
कफात् स्निग्धहिमश्वेत त्रिदोषाच्छैवलं स्मृतम् ॥ ७४ ॥
⁴विमानयानावृतमम्बरान्तर रविं बहुच्छिद्रमुडून्यरुन्धतीम् ।
वियन्नदीमिन्द्रधनु स्फुलिङ्गकान् सदैव य पश्यति नो स जीवति ॥७५॥
अधोमुखीं स्वा प्रतिमा हि दर्पणे समीक्षते वेत्ति न गन्धमात्रम् ।
स्मृतिप्रभाह्रीधृतिभिर्य उज्झितो भवेद्कसात् स परेतसन्निभ ॥ ७६ ॥
जिह्वौष्ठदन्ता कलुषा विवर्ण सपूति विस्फारितमानन स्यात् ।
घ्राणं च्युत मज्जितमक्षियुग्म यस्येति चिह्न स नरश्चितार्थी ॥ ७७ ॥
निद्राविनाशो बहुनिद्रता वा सीमन्तिन¹ केशचया स्खलन्ति ।
छाया सिता पीततराऽरुणेति सर्वाणि कालस्य विचेष्टितानि ॥ ७८ ॥

कांस्यपात्र में अथवा काच के पात्र में प्रात रोगी के मूत्र की एक बूद टपकादे फिर उस में तैलबिंदु डालकर देखें। यदि वह मूत्रबिंदु स्थिर रहे तो जानना कि रोग कष्ट साध्य है। यदि वह मूत्रबिंदु मध्य में से छिन्न भिन्न हो जाये, अथवा कच्छप, छुरी, तीक्ष्ण शर, चाकू, धनुष, कटक, व्याघ्र आदि की आकृति जैसा प्रतीत हो तो समझना कि रोग असाध्य है। व्यजन, कमल अथवा शख के आकार जैसा प्रतीत हो तो उसे सुखसाध्य जानना चाहिये। वात से दूषित मूत्र गदले वर्ण का, पित्त से उष्ण और पीतवर्ण का, कफ से स्निग्ध, शीतल और श्वेतवर्ण का तथा त्रिदोष से विविध वर्ण का होता है ॥ ७३-७४ ॥

(भावी मृत्यु की सुनिश्चित प्रतीति करानेवाले लक्षणो को अरिष्ट कहते है। वाग्भट के मतानुसार, शरीरगत वर्ण, इन्द्रिया, स्वर, छाया, प्रतिबिंब, क्रिया आदि भावों की स्वाभाविकता में विकृति की उत्पत्ति, सक्षेप में 'रिष्ट' कहलाती है। यहां इन्हीं अरिष्टों के सामान्य वर्णन के साथ ही अशुभ तथा शुभ स्वप्नों का भी विचार किया गया है।) विमानों से आच्छादित आकाश मे अन्तर्हित सूर्य को, छिद्रों से युक्त नक्षत्रो तथा अरुन्धति को, आकाशगगा, इन्द्रधनुष तथा चिनगारियो को जो व्यक्ति हमेशा देखता हो वह जीवित नही रहता। दर्पण में जिसे अपनी ही प्रतिमा

१-मूत्रपरीक्षाद्वारा साध्यासाध्यत्वविचार । २-कमलम् । ३-नानावर्णम् । ४-सामान्यतोऽरिष्टकथनम् । तत्स्वरूपवर्णनमष्टाङ्गहृदयादवगन्तव्यम् । यथा- "पुष्प फलस्य धूमोऽग्नेर्वर्षस्य जलदोदय । यथा भविष्यतो लिङ्ग रिष्ट मृत्योस्तथा ध्रुवम् ॥" तथा- "रूपेन्द्रियस्वरच्छायाप्रतिच्छायाक्रियादिषु । अन्येष्वपि च भावेषु प्राकृतेष्वनिमित्तत ॥ विकृतिर्या समासेन रिष्ट तदिति लक्षयेत् ।" इति ।

रात्रौ विदाहो दिवसेऽतिशीतं पाण्यङ्घ्रिनासाहृदये हिमत्वम् ।
कण्ठे कफो मूर्ध्न्यपि शूलपीडा क्रीडामिमां विद्धि परेतभर्तुः[1] ॥ ७९ ॥
[2]स्वप्नेषु नग्नान् विकृतान् सपाशान् कृष्णाम्बरानुष्ट्रखराधिरूढान् ।
सिंहान् वराहान् महिषानहीन् यः पश्येत् स रोगी यमधाम याति ॥८०॥
पतत्यधोऽग्नौ सलिले विलीयते विहन्यते कुक्कुरकुम्भिवैरिभिः ।
भवत्यदृक् स्नाति सुरां पिबत्यपि प्रयाति पञ्चत्वमसौ न संशयः ॥ ८१ ॥
[3]स्वप्नानि दुष्टानि विलोक्य कुर्यात् स्नानं प्रभाते वितरेत्तिलादि ।
स्तोत्राणि दिव्यानि पठेद्विनीतो वसेन्निशायां सुरमन्दिरेषु ॥ ८२ ॥

औंधी दिखाई दे, जो किसी भी प्रकार की गन्ध को पहिचानने में असमर्थ हो जाये जो स्मृति, तेज, लज्जा और धैर्य से हीन हो जाये, वह अकस्मात् शवतुल्य हो जाता है। जिसके जिह्वा, ओष्ठ और दांत मलिन हो गये हों, मुख निस्तेज, दुर्गंधमय और कंप-युक्त हो गया हो, घ्राणशक्ति लुप्त हो गई हो, दोनों नेत्र भीतर घुस गये हों, उसके चिता-दाह की व्यवस्था करनी चाहिये। निद्रा का नाश अथवा अतिनिद्रा, सीमन्त के केशकलाप की च्युति, शरीरका, श्वेत, अत्यंत पीत तथा अरुणवर्ण युक्त होना यह सभी मृत्यु के लक्षण हैं। रात्रि में दाह, दिवस में अत्यंत शीत, हाथ, पैर, नासिका और हृदय पर शीतलता, कण्ठ में कफाधिक्य, मस्तक में शूलतुल्य वेदना, यह सभी यम-राज की क्रीडायें हैं ॥ ७५—७९ ॥

(यहां से अशुभ स्वप्नों का वर्णन किया गया है। दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भाविक और दोषजन्य इस तरह स्वप्न सात प्रकारके होते हैं। इसमें से प्रथम पांच प्रकारके स्वप्न निष्फल जानने चाहिये। अवशिष्ट दो स्वप्न शुभ तथा अशुभ फल देनेवाले हैं। अशुभ स्वप्न की अशुभता को अल्प करने का उपाय भी यहां बताया गया है।) स्वप्नों में, ऊंट और गदहों पर आरूढ, नग्न, विकृत, पाश-युक्त और कृष्ण-वर्ण वस्त्रों से परिवेष्टित आकृतियां तथा सिंह, वराह, भैंस और सर्प आदि देखनेवाले रुग्ण को यमधाम का यात्री समझें। स्वप्न में, अग्नि में ऊंधे-मुख पडने वाला, पानी में पिघलकर उसमें घुल जानेवाला, श्वान, हाथी तथा शत्रुओं से भय-त्रस्त होकर भगनेवाला, चक्षुरहित हो जानेवाला, शराब से स्नान तथा उसका पान करने वाला निःसंदेह पंचत्व को प्राप्त हो जाता है ॥ ८०—८१ ॥

इस प्रकार के अशुभ स्वप्न देखने वाले को उनके अशुभत्व के परिहार के लिये, प्रातःस्नान करके तिलों का दान करना चाहिये। तथा भक्तिभाव-पूर्वक दिव्य-

---

१—यमस्य। इति कालज्ञानम्। २—अशुभस्वप्नविचारः। स्वप्नश्च सप्तविधो भवति। तत्र पञ्च निष्फलाः, द्वौ च शुभाशुभफलदायिनौ। तथा च वाग्भटः—"दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कल्पितस्तथा। भाविको दोषजश्चेति स्वप्नः सप्तविधो मतः॥ तेष्वाद्या निष्फलाः पञ्च" इत्यादि। ३—अशुभस्वप्नस्याल्पफलत्वकरणोपायः।

ये स्वप्नमध्ये विबुधान्मुनीन्द्रान् तीर्थानि धेनूर्नृपतीन् वयस्यान् ।
पुष्पाणि वासांसि सितानि पश्येत्स्यक्तो गदैः शर्म लभेत रोगी ॥ ८३ ॥
तोयानि तीर्त्वा मलिनानि जित्वा रिपून्मनोज्ञानि फलानि लब्ध्वा ।
स्थित्वा द्विपेऽश्वेऽपि भृशं रुदित्वा विष्ठा च लिप्त्वा कुशली नरः स्यात् ८४
साधारणानूपकजाङ्गलाख्या देशास्त्रयस्तत्र समान आद्यः ।
बलासवातप्रचुरो द्वितीयो ह्यम्बुद्रुमो मायुरुजाकरोऽन्त्यः ॥ ८५ ॥
वयोऽपि कौमारयुवत्ववार्ध्यमेदात्त्रिधैवेति वयं वदाम ।
कफोपपन्न प्रथमं सपित्त द्वितीयमन्त्यं पवनप्रधानम् ॥ ८६ ॥
वातेन पित्तेन कफेन युक्ता क्रमेण पुंसां प्रकृतिस्त्रिधा स्यात् ।
रूक्षः कृशश्चञ्चलह्रस्वकेशः स्वप्ने खगामी पवनस्वभावः ॥ ८७ ॥
अकालपालित्ययुतोऽतिगौरः प्रकोपनः स्विन्नतनुर्बुधोऽपि ।
स्वप्नेषु नक्षत्रगणावलोकी प्रोद्दामपित्तप्रकृतिर्मनुष्यः ॥ ८८ ॥
महाबलः स्निग्धविलम्बिकेशः सुश्यामलस्थूलकलेवरश्च ।
आलस्ययुक्तोऽतिगभीरबुद्धिः स्वप्नेऽम्बुदर्शी सुमना विलासी ॥ ८९ ॥

स्तोत्रों का पारायण करते हुये रात्रि के समय देवालयो में निवास करना चाहिये। यदि रुग्ण, स्वप्न में, देवता, मुनिश्रेष्ठ, तीर्थ, गाय, नृपति, मित्र, पुष्प, श्वेतवस्त्र आदि सौम्य पदार्थों को देखे तो वह रोग-मुक्त होकर स्वास्थ्य-लाभ करता है। मलिन जल-पूर्ण जलाशयो को तैरकर, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके, सुंदर फलों को ग्रहण करके, गज अथवा अश्व पर आरुढ होकर, अत्यंत रुदन तथा विष्ठा का लेप करनेवाला मनुष्य नैरोग्य प्राप्त करता है ॥ ८३-८४ ॥

(सफल चिकित्सा के लिये, वैद्यको, दूष्य, देश, बल, काल, अनल, प्रकृति, वय, सत्व, सात्म्य तथा आहार आदि अवस्थाओं का परिज्ञान होना आवश्यक है। इन्ही अवस्थाओं का यहा संक्षेप में, उल्लेख किया जाता है।) देश तीन प्रकार के होते हैं। तीनों दोषों की समान अवस्थावाला 'साधारण देश,' कफवात की बहुलता वाला 'आनूप' देश, जल और वृक्ष रहित पित्त प्रचुरता वाला 'जागल' देश। वय भी तीन प्रकारके होते हैं—कफ प्रधान कौमार-वय, पित्तप्रधान युवा-वय और वायु-प्रधान वार्द्धक्य। वात, पित्त और कफ से युक्त मनुष्यों की यथाक्रम तीन प्रकार की प्रकृति होती है—वातप्रकृतिवाला रूक्ष, कृश, चंचल और अल्प केशवाला होता है।

१–शुभस्वप्न । २–चिकित्सायामवश्यज्ञातव्यानां दशानां मध्ये पूर्वं केचिदुक्ता, केषांचिदत्राभिधानम्। ते दश च—"दूष्य देश बल कालमनल प्रकृतिं वय । सत्त्व सात्म्य तथाऽऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधा ॥ सूक्ष्मसूक्ष्मा समीक्ष्यैषा दोषौषधनिरूपणे । यो वर्तते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित् ॥" इति । शेषा सत्त्वसात्म्यानलादयो बुद्ध्या ग्रन्थान्तराद्वाऽनुसधेया सुधीभि ।

[1]मेहे श्लेष्मणि पीनसे गलगदे कुष्ठे विषे स्याद्वमि-
गर्भिण्यां तिमिरे शिरोरुजि मरुद्रुकपाण्डुके नो हिता।
कुष्ठार्शःक्रिमिपाण्डुशोणितमरुद्वीसर्पविष्टम्भिनो
रेच्या दुर्बलगुर्विणी क्षययुजो नो रेकयोग्या मताः॥ ९० ॥
[2]सुधाद्रवक्षालितभित्तिभागरोचिष्णुधन्वन्तरिचारुचित्रम्।
उच्चावचप्रोज्वलकाचकूपीविन्यस्ततत्तद्रसदर्शनीयम्॥ ९१ ॥
यथाभिषक्तन्त्रविचित्रयन्त्रं कोशस्फुरत्कङ्कमुखादिशस्त्रम्।
दीप्तद्विपेन्द्रादिपुटं प्रलम्बिशिक्यस्थनानाविधलेह्यभाण्डम्॥ ९२ ॥
पवित्रपट्टासनराजमानश्रीवैद्यराजेक्षितरुग्णहस्तम्।
उपर्युप[3]र्यापतदार्तसार्थप्रदीयमानोचितजायुजातम्॥ ९३ ॥
विशालवातायनमन्दमन्दप्रवातवाताङ्कुरजोषजुष्टम्।
लघुत्रयीं[4] हन्त बृहत्त्रयीं[5] वा स्पष्टं पठद्भिर्वटुभिः प्रघुष्टम्॥ ९४ ॥

वातप्रकृतिवाले को आकाश में उडने के स्वप्न आते हैं। पित्तप्रधान प्रकृतिवाला अकाल-पलित, अत्यंत गौर, क्रोधी, चतुर तथा पसीनों से स्विन्नगात्र युक्त होता है। वह स्वप्न में, नक्षत्रसमूह देखता है। कफप्रकृति मनुष्य बलिष्ठ, स्निग्ध तथा दीर्घकेशकलाप से युक्त, सुंदर, श्यामवर्ण सहित स्थूलशरीरवाला, आलसी, गंभीरबुद्धिवाला, विलासी एवं हृदय से शुद्ध होता है। स्वप्न में वह जल देखता है॥ ८५-८९ ॥

प्रमेह, कफ, पीनस, कुष्ठ, तथा विष और कण्ठ के रोगों में वमन प्रशस्त है। तिमिर, वात, पाण्डु और शीर्षरोग से पीडितों को तथा गर्भिणी को वमन कराना निषिद्ध है। कुष्ठ, अर्श, क्रिमि, पाण्डु, वीसर्प, वात, विष्टंभ और ऊर्ध्वग-रक्त-पित्त के रोगियों को विरेचन कराना चाहिये। दुर्बल और क्षयग्रस्त को विरेचन निषिद्ध है॥ ९० ॥

—अब, चिकित्सालय कैसा होना चाहिये, इसका वर्णन करते हैं:—

चिकित्सालय ऐसा होना चाहिये जिसकी चारों ओर की भित्तियां लिपी पुति हुयीं स्वच्छ चकचकित हों, जहां एक तरफ भगवान धन्वन्तरी का पवित्र चित्र सुशोभित हो रहा हो, जहां अनेक प्रकार की छोटी बडी स्वच्छ चमकदार, विविध रस रसायनों से परिपूर्ण काच कूपियां यथाक्रम सजा कर रखी हुयीं हों, जहां, एक तरफ भिषक् तंत्रोक्त अनेक प्रकार के यंत्र तथा कोश गत चमकते हुये विविध प्रकार के शस्त्र स्थापित हों, अनेक प्रकारके अवलेहों से भरे हुये भाण्ड शिक्यों में रखे हुये हों, गजपुट आदि पुटों को देने के लिये जिसमें यथावत् स्थानों की व्यवस्था हो, जहां एक

१—पञ्चकर्मप्रधानभूते वमनविरेचनकर्मणी येषु विहिते महात्ययकारके संपद्येते तत्रावधानार्थं तद्योग्यपुरुषनिदर्शनम्। २—अधुना चिकित्सागृहस्य 'असपताल' इति प्रसिद्धस्य वर्णनम्। ३—उपर्युपर्यापतन्तः आगच्छन्तो ये आर्तसार्था रोगिसमूहाः। सुगममन्यत्। ४—निदानशार्ङ्गधरनिघण्टुरूपाम्। ५—चरकसुश्रुतवाग्भटरूपाम्।

कर्पूरमुड्डाय्य गुरूक्तयन्त्रयुक्त्या शनैराममृद॰ शरावे।
अद्भि पृथक्कृत्य मृद॰ शरावं गृह्णन्तु कर्पूरशरावमच्छम्॥ १०१॥

चूर्णेन सैन्धवसितादिसमुत्थितेन बब्बूलगुन्द्रसलिलोक्षणपिण्डितेन।
नानाविधानि चषकप्रभृतीनि काम पात्राणि रुग्णरुचये रचयन्तु वैद्या॰१०२

लाक्षासत्त्वं पल चेद्वितर सकृदपामाढकं क्वाथहेतो॰
र्मध्येक्वाथ त्रिकर्षं प्रविकिर मसृण टाङ्कण चूर्णमेव।
क्वाथे त्वर्धावशिष्टे भ्रमय समुचितां पोट्टलीं कज्जलस्य।
प्राय प्रक्षालनेऽपि स्थिरलिपि लिख रे कागदं काऽत्र शङ्का १०३

तब पात्र को उतारले। कुछ शीतल होने पर जब पात्र के चारों ओर लगा हुआ गधक घनभाव को प्राप्त होने लगे तब मध्य भाग गत तरल गधक को, घनीभूत होने के पूर्व ही शीघ्र बाहर निथार लें। इस तरह, पात्ररूपी बीने में निर्मित तत् पात्राकृति गधकमय पात्र को सावधानी से निकाल लें। इसे बलि-गधक-चषक (सकोरा) कहते हैं॥ १००॥

कपूरचूर्ण को एक तवे पर फैलादें तथा उस पर मिट्टी का कच्चा सकोरा औंधा ढकदें। नीचे मदाग्नि योग से कपूर को इस कच्चे सकोरे में धीरे धीरे उडालें। इस तरह सकोरे के चारो ओर कपूर लग कर चोट जायेगा। सकोरे को उतार कर उसके भीतर चारो ओर मेढ का दूध चुपड दें। इस तरह करने से कपूर दृढ हो जायेगा तथा उडेगा नहीं। अब, जल से कच्चे सकोरे को पिघला दें (गला दें) तथा भीतर से स्वच्छ कपूर शराव को ग्रहण करें॥ १०१॥

बबूल के गूद को पानी में मिलाकर उसके द्रव से, सैंधव, शक्कर, लौंग, जायफल आदि में से किसी के भी चूर्ण को, पिंडित बनाले। कुशल वैद्य इस पिंड से अपने रोगी की रुचि के अनुसार अनेक प्रकार की आकृतिवाले पात्रों का निर्माण करें॥ १०२॥

करीब २५६ तो पानी में चार तोलाभर लाक्षा सत्व मिलाकर उकालें। इस उकलते हुये क्वाथ में तीन तोला टकणक्षार का सूक्ष्म चूर्ण मिलादें। जब क्वाथ आधा ही रह जाये तब उसमें काजल की पोटली डुबोकर चारों ओर घुमावें। इस तरह

१—सचूर्णित कर्पूर तवके समास्तीर्य उपर्यपक्वमृच्छराव दत्त्वाऽधो मन्दाग्निर्दातव्य इति। तथा मेषीदुग्धेन सह म्रक्षणादपि पिण्डीभूतस्य घटनीयम्। २—आदिशब्देन लवङ्गजातीफलादीनां ग्रहणम्। एतेषामपि मेषीदुग्धेन सम्भवति। ३—पक्वमषीविधिरयम्। ४—कागदशब्दो नपुसके, अभिधायकतया च 'कागज' इत्यारबीभाषाया 'कागल' इति गुर्जरभाषाया प्रसिद्धे शणपत्रे। यथोक्त मन्त्रकल्पद्रुमोक्तहनुमत्कवचे—"भूर्जे वा वसने रक्ते क्षौमे वा तालपत्रके। कागदे वाऽष्टगन्धेन पञ्चगन्धेन वा पुन॥ त्रिगन्धेनाथवैकेन विलिख्य धारयेन्नर॥" इति।

लाक्षां साक्षात् क्राथयेत् साधु धौतां स्वर्जीपट्टीटङ्कणैः षोडशांशैः ।
क्राथस्यायःपात्रघृष्टस्य वट्यो वारिक्लिन्नाः स्युर्मषीमातरस्ताः ॥ १०४ ॥

शतमल्लकसौभाग्यनवसादरधूलिताः ।
घर्मन्यस्ता विनश्यन्ति मषीवर्णा दलस्थिताः ॥ १०५ ॥

रविदुग्धघृताक्षरमपि निरक्षरमिव प्रतीतमज्ञेन ।
पत्रं कृशानुतप्तं तदक्षराणि व्यनक्ति सहसैव ॥ १०६ ॥

कदलीरसेन वसने विन्यस्तान्यक्षराणि लेखिन्या ।
सुचिरं स्थिरीभवन्ति क्षारैः प्रक्षालितानि शतशोऽपि ॥ १०७ ॥

सोरकसादरटङ्कणतुत्थस्फटिकाकसीसमिति तुल्यम् ।
निम्बम्बुघृष्टमयसि व्यनक्ति चित्राणि घर्मसंवन्धात् ॥ १०८ ॥

वीजपूरजठरे रजः कुरु लोहस्य विशिष्य ।
त्रिचतुर्भिर्दिवसैर्द्रवं तस्य विलोकय शिष्य ॥ १०९ ॥

निर्मित स्याही से आलेखित अक्षर, प्रक्षालित होने पर भी प्रायः स्थिर रहते हैं। यदि शंका हो तो पत्र लिखकर परीक्षा करलें ॥ १०३ ॥

जल से अच्छी तरह स्वच्छ की गयी लाक्षा को, उससे सोलह भाग जितने, सज्जी खार, पठानी-लोध तथा टंकण के चूर्ण के साथ, क्राथ विधि से उकाल लेवें। फिर, इस क्राथ को लोह के खरल में खूब घोटकर गाढा होने पर उसकी टिकियां बनालें। स्याही की साक्षात् जननी रूप, इन टिकियों को पानी में पिघला कर उपयोग में लेवें ॥ १०४ ॥

शतमल्ल, सुहागा तथा नौसादर के चूर्ण को पत्रगत स्याही के अक्षरों पर भुरकाकर सूर्य के ताप में रखदें। इससे अक्षर विलीन हो जायेंगे। अर्क दूध से पत्र पर लिखे गये अक्षर, अनभिज्ञ के अक्षर ज्ञान की तरह अत एव निरक्षर (मानों अक्षर हैं ही नहीं) जैसे प्रतीत होंगे। किंतु पत्र को अग्नि तप्त करते ही वही अक्षर उस पर सहसा प्रकट हो जायेंगे। कदली रस से वस्त्र पर आलेखित अक्षर दीर्घ काल तक स्थिर रहते हैं तथा क्षार से शतशः बार धोने पर भी नष्ट नहीं होते। सोरा, नौसादर, टंकण, तुत्थ, फिटकरी और कासीस इनका सम भाग सूक्ष्म चूर्ण बनालें। फिर इसको निंबू रस में अच्छी तरह खरल करें। लोहपट्ट पर इस रस से आलेखित चित्रादि सूर्य ताप में ही प्रकट दीख पडेंगे ॥ १०५–१०८ ॥

विजौरा निंबू के भीतर लोह चूर्ण भरदें। तीन चार दिवस में ही वह चूर्ण पिघल कर द्रवरूप हो जायेगा ॥ १०९ ॥

१–पट्टिकारोध्रः 'पठाणी लोद' इति प्रसिद्धः। २–पत्रलिखितमषीवर्णोत्सादनप्रकारः। ३–लौहे वर्णोत्पादनप्रकारोऽयम्। ४–अयोद्रवीकरणप्रकारः।

सारैस्फटीसादरटङ्कणानि कासीसदुर्वर्णलसन्महांसि ।
संसाध्य निम्बूकपयोभिगरपात्राणि घृष्ट्वा कुरु रौप्यभासि ॥ ११० ॥

चेल समास्तीर्य रवेण वेणोराहूय लोक कुतुकोपजीवी ।
नितम्बमास्फोट्य निपीड्य कुक्षिं मुखात्सुख ष्ठीवति गोलकानि ॥ १११ ॥

आवेष्ट्य वेगादसकृद्विमर्पितप्रान्तद्वयीकेन गुणेन घर्षिता ।
हंहो क्षणादेव यथामनोरथ द्वेधा भवेत् काचन काचकूपिका ॥ ११२ ॥

कागदकृत कटाहं सतैलमारोप्य चुल्लिकामूर्ध्नि ।
अवतारय निश्शङ्क पूरीकचवल्यपूपादीन् ॥ ११३ ॥

मधूकतैलप्रतिसंस्कृतस्य गोधूमचूर्णस्य विधाय लोप्त्रीम् ।
पूरीस्तदीयास्तलयन्तु चाढमावर्तमानाम्भसि सत्कटाहे ॥ ११४ ॥

जपाप्रसूनप्रकरप्रमार्जितच्छुरीसुतच्छिन्नवीननिम्बुकम् ।
क्षतादल लोहितलोहितच्छवीन् रसस्य विन्दून् किरतोऽपि वर्पति ॥११५

कलमी सोरा, फिटकरी, नौसादर, टकण, कासीस तथा रजत इन सबके चूर्ण को निंबू रस में सिद्ध करके इनका मुलम्मा-गिलेट-देने से पीतल के पात्र चादी के समान चमकने लगते हैं ॥ ११० ॥

एक वस्त्रखंड को जमीन पर बिछाकर, बासुरी के स्वर से अपने इर्द गिर्द मनुष्यों को एकत्रित करता हुआ, दोनों हाथों से अपने नितंब प्रदेश को बारबार फटा फट फटकारता हुआ, बाजीगर अपने पेट को दबा दबा कर मुख में से, सभी को आश्चर्य मग्न करता हुआ सरलता पूर्वक, एक के पीछे एक, गोलों को निकालता है ॥ १११ ॥

काचकूपी को एक सूतली से लपेटकर तथा सूतली के दोनों छोर पकड अत्यत वेग से पुन पुन घर्षण करने से अहो! एक ही क्षण में वह काचकूपी दो भागों में विभक्त हो जायेगी ॥ ११२ ॥

कागजका, कढाह जैसा एक पात्र बनाकर उसे तैल से परिपूर्ण भरदें। फिर इसे चूल्हे पर रखकर उसमें पूरी, कचारी, अपूप आदि तल तल कर उतार लें ॥ ११३ ॥

मधूक तैल का मोमन देकर, गेहू के आटे को पानी में गूध कर लोये बनाले। एक कढाह में पानी भर कर उकालें। इस उकलते हुये जल में उपरोक्त आटे की पूरिया बेलकर तल लेवें। (पानी में पूरी तलने का यह चमत्कारिक तरीका है।) ११४

जपापुष्पों से चाकू को खूब घिसकर साफ करलें। अब इस चाकू से ताजा नींबू को सवारें। सवारते समय रक्तवर्ण के बहुत से रसबिंदु उसमें से टपकेंगे ॥ ११५ ॥

१–रजतस्वर्णान्यतरलेपनप्रकार । स च लोके 'गिलेट, मुलम्मा' इति प्रसिद्ध ।
२–रजतम् । ३–'बाजीगर' इति प्रसिद्ध ऐन्द्रजालिक । ४–काचकूपीद्वैधीकरणप्रकार ।
५–'सूतली' इति प्रसिद्धेन । ६–प्रसङ्गात् कानिचित्तत्सदृशाश्चर्यकारीणि प्रदर्श्यन्ते खेलनकानि । तैलं चात्रामुख पूरणीयमन्यथा तद्दाह । ७–'चाकु' इति प्रसिद्धि ।

[1]पटेन पीतदुग्धेन द्वित्रिकृत्वः पवित्रितम्।
पानीयमप्यलं धत्ते दुग्धभावं न संशयः॥ ११६॥
क्वथिते चीनघासेन पयसी द्वे सहैव च।
उररीकुरुतश्शीघ्रं स्त्यानभावं न संशयः॥ ११७॥
शुद्धकट्टीरनिर्यासप्रतिसारणतो मनाक्।
तक्रमप्येति दधितां दुग्धस्य तु कथैव का॥ ११८॥
पुष्पयोरश्वमारस्य लोहिताऽर्जुनयोः[2] क्रमात्।
स्याद्गन्धगुडधूपाभ्यां वर्णव्यत्ययकौतुकम्॥ ११९॥
मध्येभ्राष्ट्रं भृष्टः स्नुहीपयोभिर्विभावितश्चणकः।
सकृदेव जलोक्षणतस्तत्क्षणमङ्कुरमहो समुद्गिरति॥ १२०॥
[3]प्रत्यग्रमृत्करकयोः शुचि दीर्घसूक्ष्मं मध्यस्थनिर्व्यथनयोरवचार्य सूत्रम्।
वक्त्राग्रदत्तकरकेण यदुक्तमारात् कर्णाग्रदत्तकरको लघु तच्छृणोति॥१२१॥
दरान्तरं लिप्तदशोऽधिखल्वं पिष्टेन योग्याम्भसि गन्धकेन।
प्रवर्तितो हन्त निशि प्रदीपः प्रतिक्षणं प्रज्वलति प्रशाम्यति॥ १२२॥

एक स्वच्छ वस्त्र में दूध को सोख लें। फिर इस वस्त्र को दो तीन बार पानी में डुबोकर निचोड लेने से पानी निःसंदेह दुग्ध ही बन जाता है॥ ११६॥

पानी अथवा दूध को चीनी घास में उकालने से दोनों ही निःसंदेह जम जाते हैं॥ ११७॥

कतीरे गूंद को किंचित् मात्रा में मिला देने से तक्र भी दही हो जाता है, फिर दूध की तो बात ही क्या?॥ ११८॥

करवीरका रक्तपुष्प, गंधक की धूप से, श्वेतवर्ण का, तथा श्वेतपुष्प, गुडकी धूप से रक्तवर्ण का हो जाता है॥ ११९॥

स्नुही दूध से चने को भावित करलें। भाड में भूने गये इस चने पर पानी छिकडते ही उसमें से उसी क्षण अंकुर प्रस्फुटित हो आता है॥ १२०॥

(सुदूर स्थित होने पर भी परस्पर वार्तालाप का यह प्रकार सुस्पष्ट है। आधुनिक विज्ञानयुग की 'टेलीफोन' पद्धति का, बालकों के कौतुकार्थं, यह एक निराला ही अनुकरण है।)॥ १२१॥

गंधक को यथामात्रा जल से खरल करलें। बत्ती के कुछ भीतर इसका प्रलेप करें। इस बत्ती से रात्रि को प्रदीप्त किया गया प्रदीप प्रतिक्षण प्रज्वलित तथा प्रशमित होता रहेगा। कपास और एरंड के बीज, गंधक, तिल, अलसी तथा राल की, एक दो या अधिक घटों में धूप देकर उन्हें धूमित करलें। प्रत्येक घट के पार्श्व में पहिले से ही

१-पानीयस्य दुग्धीकरणप्रकारः। २-लोहितकरवीरपुष्पस्य गन्धधूपेन श्वैत्यं, सितस्य गुडधूपेन लोहिताभासत्वमिति। ३-दूरस्थितेन सह भाषणप्रकारः।

कर्पासपञ्चाङ्गुलवीजगन्धतिलातसीनिर्जरधूपधूमः ।
घटद्वयीपार्श्वनिखातनालीवान्त प्रदीपीभवति प्रदीप्तः ॥ १२३ ॥
पात्रस्य पृष्ठवलये विततं खण्डमाम्बरम् ।
अङ्गारो नदहत्येव किमतःपरमद्भुतम् ॥ १२४ ॥
न चोष्णतैले विच्छूकशूकभस्मावकीर्णस्य करस्य दाहः ।
आश्चर्यमेतत् पुरुषोत्तमेन विद्यार्थिना मह्यमिह प्रदत्तम् ॥ १२५ ॥
गर्भधृतसौधशकलं हुक्कायन्त्र जलेन परिपूर्णम् ।
शब्दायते गुडगुडं वमति च धूम विनैव पातारम् ॥ १२६ ॥
अम्भोभृतामर्जुनकाचकूपीं निस्तन्द्रमालोकयतां शिशूनाम् ।
भूतं भवद्भावि च वस्तुजात प्रत्यक्षवद्भाति पुरो निषण्णम् ॥ १२७ ॥

---

[३]खधूपवर्णनम् ।

सौरात् प्रस्थ. सार्द्धिरार्द्धाणि पञ्च गन्धात्ते च द्वे शिलातोऽक्षमिन्दो ।
सर्व पिष्ट्वा न्यस्तमन्तश्शराव चन्द्रज्योतिर्ज्योज्वलत्यग्नियोगात् ॥ १२८ ॥

लगाई गयी नलिका से बाहर निकलते हुये इस धूम को प्रज्वलित करने से वह दीपक के समान प्रदीप्त रहेगा। यह प्रकार 'गैस लाइट' का अनुकरण है ॥ १२२–२३ ॥

पात्र के बाहरी भाग के वलय पर कपडे का टुकडा लपेट दे। अंगार से यह कदापि दग्ध नहीं होगा। इससे अधिक अद्भुत और क्या हो सकता है। बिच्छु के शूक की भस्म लगाकर हाथ को गरम तैल मे रखें। वह जलेगा नहीं। यह आश्चर्य पूर्ण प्रयोग मुझे मेरे छात्र पुरुषोत्तम ने बताया है। पानी से परिपूर्ण हुक्के मे कलिकाखड डाल दे। पीनेवाले के बिनाही, उसमें से गुडगुड ध्वनि पूर्वक धूम इस तरह निकलता रहेगा मानों सचमुच उसे कोई पीरहा हो। जलपूर्ण श्वेतकाचके पात्र को सात आठ वर्षीय बालक के सम्मुख रखदें। अब, निर्निमेषदृष्टि से इसकी ओर देखते हुये बालकों का भूत भविष्य तथा वर्तमान–वृत्त इसके सामने बैठे हुये को प्रत्यक्ष दिखाई देगा!!! ॥ १२४–१२७ ॥

आतशबाजी का वर्णन –एक सेर सोरा, पाव भर गधक, सवा सेर मन शिला

१–इङ्ग्लेण्डवासिचतुरजनप्रचारितग्यासाख्यधूमदीपनिर्माणप्रकारस्य दिक्प्रदर्शनमिदम्। अत्र वर्पासैरण्डयोर्बीजानि ग्राह्याणि। निर्जरधूपो 'राल' इति प्रसिद्ध शालनिर्यास। घटद्वयीत्यत्र द्वयीत्युपलक्षणम्। तेन यावत्प्रयोजन घटवृद्धि कार्या॥ तत्र प्रथमघटस्यैकपार्श्वे द्वितीयादीनां द्वयोरपि पार्श्वयोर्नलिकारोपणमिति। २–काचकूपी कुमारात्, प्राग्दिशि स्थाप्या, कुमारश्च सप्ताष्टवर्षदेशीय, एव च दिवैव रात्रावात्ययिके कर्मणि एषेतिकर्तव्यता। यथा मदनफलमूर्वें दग्ध्वा तत्कोकिलानि तैलघृष्टानि कास्यपात्रे हस्ते वा आलिप्यानिमेष दीपसविधे तद्दर्शने तथैव चमत्कृति । ३–अग्निसपर्कज्वलत्खेलनकाना सहेयम्। तथा च शब्दार्थचिन्तामणौ–"खधूप पुसि अग्निक्रीडाविशेषे। 'हवाई' इति भाषायाम्"। तथा "उक्षाप्रचक्रुर्नगरस्य मार्गान् ध्वजान् बबन्धुर्मुमुचु खधूपान्।" इति भट्टि। भाषायाम् 'आतशबाजी' इति श्रीमन्माधवक्षितीशविवाहवर्णने गुरुभिरपि वर्णन व्यधायि तद्विशेषा-

आग्नेयक्षोदसारैर्निरवधिनिभृता पिच्चिता पुच्छभागे
वह्निस्पर्शेन तेजोमयकुसुममञ्जरीरुच्चकैरुद्गिरन्ती ।
नेत्रानन्दं विधत्ते निशि दलनलिका सस्पृहं सुन्दरीभि-
र्हस्ते न्यस्ता प्रकीर्णस्फुटकनकसुमस्तोमवर्षेव वल्ली ॥ १२९ ॥
आकाशतः काञ्चननिम्नगायाः पतेत् सपुष्पो यदि शीकरौघः ।
तेनाप्नुयुः सारचमत्कृतानि तुलां ज्वलत्पुष्पझरीमहांसि ॥ १३० ॥
पश्यत पश्यत हाहा स्वाहापतिचुम्बिताधरप्रान्ता ।
पुष्पझरी पुष्पझरीं वर्षति मिषतां प्रहर्षाय ॥ १३१ ॥
इह विलसन्ति विलासा युवतीनां युवविशेषमासाद्य ।
पश्यत पुष्पझरीयं विकसति निशि पावकादेव ॥ १३२ ॥

तथा कपूर एक तोला, इन सबको पीसकर एक शराव में ठसाठस भरदें । इसको प्रज्वलित करने से 'चंद्रज्योति' खिल उठेगी ॥ १२८ ॥

आग्नेयद्रव्यों के चूर्ण से खूब लिप्त, पुच्छ भाग में चिपटी, अग्नि के स्पर्शमात्र से तेजोमय पुष्पों को ऊंचे उछालती हुई-सुंदरियों द्वारा सस्पृह हाथ में ग्रहण की गई, चारों ओर मानो स्वर्ण के पुष्प गुच्छों की वर्षा करने वाली लता के समान यह पुष्पझरी रात्रि में किसके नेत्रों को आल्हादित नहीं करती ? ॥ १२९ ॥

स्वर्ण की सरिता के जलबिन्दुओं का धोघ यदि पुष्पगुच्छों सहित आकाश से पतित हो तो वह देदीप्यमान पुष्पझरी के सारभूत चमत्कृत तेज से समता प्राप्त कर सकता है ॥ १३० ॥

ओ हो ! देखिये, देखिये, देखने वालों को आनन्दित करती हुयी यह पुष्पझरी अग्नि से अधरप्रांत पर चुंबित होते ही पुष्पों की झरी का अभिवर्षण कर रही है । जिस तरह युवकविशेष के समागम से, युवति अपने विलास को उन्मुक्त होकर अभि-

णाम् । यथा हि-" उच्चैर्दुर्गमदुर्गवप्रनिहितादाग्नेययन्त्रात्समुद्गच्छद्गोलविकासविप्रसृमरा व्योम्नि स्फुलिङ्गोत्कराः । भान्ति क्ष्माधवमाधवस्य सुभगं द्रष्टुं विवाहोत्सवं तारानाथगिराम्बरादवतरत्तारानुकाराः सखे । भवनच्छवीनि दहनक्रीडानकानि समुदञ्चदर्चींषि । अयि राजन् स्मरयन्ति त्वदीयरिपुभवनदाहस्य ॥" इत्यादि । तद्विशेषाणां केषांचिन्निर्माणप्रकारस्तथा केषांचिद्वर्णनमत्रापि प्रदर्श्यते तत्रादौ चन्द्रज्योतिःप्रकारः । लोके च 'चन्द्रज्योतिः' तथा 'महताब' इति प्रसिद्धिः । ४-पलानि ।

१-'फूलझडी' इति प्रसिद्धाया वर्णनम् । २-अत्र काञ्चननिम्नगातोऽसंबद्धानामपि पुष्पझरीमहसां तत्संबद्धत्वेनाध्यवसायादसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः । तथा चोक्तं दर्पणे-" सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते । भेदेऽप्यभेदः संबन्धेऽसंबन्धस्तद्विपर्ययौ ॥ पौर्वापर्यात्ययः कार्यहेत्वोः सा पञ्चधा ततः ।" इति । अभूतोपमा वा । ३-अत्र प्रस्तुतायां पुष्पझर्यामप्रस्तुतरजस्वलाव्यवहारसमारोपात् समासोक्तिरलङ्कृतिः । तल्लक्षणं च यथा-"समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः । व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः ॥" इति । ४-इह सामान्यस्य विशेषेण समर्थनादर्थान्तरन्यासः ।

अर्धोदञ्चितचारुचन्द्रमसृणज्योत्स्नावलक्षच्छवि-
र्वेल्लद्व्यालकरालफूत्कृतिचलद्गङ्गातरङ्गाकुल ।
मन्दारस्फुरिताशय· सरभसं रामाचबद्धाकृति
र्भद्रं वो विदधातु धूर्जटिजटाजूटो नदीनच्छट ॥ १३३ ॥
श्रीलछुरामात्मजकुन्दनाद्यो लेभे जनिं कृष्णकविर्हि तस्य ।
भैषज्यरत्नस्त्रजि सद्गुणायां गुच्छस्तृतीयोऽयमवाप पूर्तिम् ॥ १३४ ॥
इति तृतीयो गुच्छ समाप्तः ।

व्यक्त करती है—उसी तरह अग्नि-समागम से रात्रिकाल में पुष्पझरी भी विकसित हो उठती है ॥ १३१–१३२ ॥

(इस से अग्रिम श्लोक, ग्रथकार के अप्रकाशित काव्य 'जयपुरमेलककुतुकम्' से सगृहीत किये गये हैं। इन में से कतिपय श्लोकों को हमने इस पुस्तक की प्रस्तावना में उद्धृत किये हैं। इस काव्य का शीघ्र ही प्रकाशन हो रहा है। अत काव्यरसिक वैद्य इन श्लोकों को अपने सपूर्ण सदर्भ मे वहा ही देखें।)

प्रस्तुत श्लोक द्व्यर्थक है। इस में श्रीशकर के जटाजूट के साथ समुद्र का रमणीय वर्णन किया गया है। यह मगल श्लोक ग्रथ के पूर्वार्ध की समाप्ति का सूचक है।

चद्रकला की (समुद्रपक्ष मे—मथन के समय समुद्र में से उदित होते हुये-अर्धोदित चद्रमा की) स्निग्ध ज्योत्स्ना से पाण्डुर-वर्ण शोभा को धारण किये हुये, उछलते हुये कराल सर्पों की फूत्कार से विक्षुब्ध बनी हुई गगा की (पक्ष में-नदियों की) तरग मालाओं से भाराक्रात (पक्ष में परिपूर्ण), मदार की (पक्ष में—मथन के समय बाहर निकलते हुये मदार वृक्ष की) सुषमा से युक्त, अपनी रामा-भार्या से शीघ्रता पूर्वक लपेट कर बाधा हुआ (पक्ष में—राम से सेतु-बद्ध) भगवान शकर का, समुद्र की छटा जैसा—जटाजूट आपका कल्याण करे ॥ १३३ ॥

श्रीलछुरामजी के पुत्र कुन्दनरामजी से उत्पन्न, उपकारवृत्ति से युक्त श्रीकृष्ण-कविद्वारा गुम्फित इस सुदर गुणयुक्त (गुणसूत्र) सिद्धभेषजमणिमाला का यह तृतीय गुच्छ सपूर्ण हुआ ॥ १३४ ॥ तृतीय गुच्छ समाप्त ।

सिद्धभेषजमणिमाला का पूर्वार्ध समाप्त ॥

१–पूर्वार्धसमाप्तिसूचक मङ्गलम् । द्व्यर्थोऽय श्लोक । अत्र धूर्जटिजटाजूट समुद्र इवेत्युपमालङ्कार । भक्त्या निष्पादितं कर्म लोकोपकृतिहेतवे । आलोक्य करुणापारावार कृष्ण प्रसीदतु ॥ १ ॥ नानाभेदचमत्कृतिरसमलधात्वादिपूरैश्चित्र । भेषजमणिमालायां गुच्छोऽच्छोऽय सुमेरुवद्भाति ॥ २ ॥ य प्राचां भिषजां विवेद महितास्तिस्रोऽपि ता सहिता साहित्य च सधर्मशास्त्रमभित स्वच्छन्दवाक् छन्दसि । लक्ष्मीरामसुधी स एष भिषगाचार्यप्रशस्तिं वहन् श्रीभैषज्यमणिस्रजो विश्रतवान् गुच्छं तृतीयं परम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थो गुच्छकः ।

[1]निष्कलङ्ककलं धत्ते यः कपर्दे[2] तमीश्वरम्[3] ।
भुजङ्गभूषितभुजं वन्दे देवं तमीश्वरम् ॥ १ ॥
सिद्धप्रयोगगुरवो विशिष्य गुरुगौरवाः ।
श्रीकृष्णरामभिषजा प्रणम्यन्ते पुनः पुनः ॥ २ ॥
प्रत्यक्षसिद्धिसंयोगा रोगानीकविमर्दिनः ।
विश्वेषामुपयोगाय सिद्धयोगाः समर्थिताः ॥ ३ ॥
श्रीकृष्णाख्यो व्यासो विहिताभ्यासो बृहत्त्रयीपठने[4] ।
नातिसमासव्यासं कलयति सिद्धप्रयोगविन्यासम् ॥ ४ ॥

– चतुर्थ गुच्छ –

मंगलाचरण –

हरण निखिल बलि के, निपुण, भव-तारण-अभिराम ।
साधु-शरण श्रीकृष्ण के प्रणमहुं चरण-ललाम ॥ १ ॥

(श्री स्वामीजी के टिप्पणीगत श्लोक का यह अनुवाद है। यह श्लोक स्वामीजी की कवि-सुलभ प्रौढ प्रतिमा का दिग्दर्शन कराता है।)

अपनी जटाजूट में निष्कलंक चंद्रकला को धारण किये हुये भुजंगविभूषित भुजाओं वाले अंधक के संहारक भगवान शंकर को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

मैं श्रीकृष्णराम, विशेष गौरवसे युक्त तथा सिद्ध प्रयोगोंमें संपूर्ण अनुभवी गुरुजनोंको पुनः पुनः नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

सिद्धप्रयोग, प्रत्यक्ष सिद्धि देनेवाले, रोगसमूह का नाश करनेवाले तथा प्राणीमात्र का हित करनेवाले माने गये हैं ॥ ३ ॥

बृहत्त्रयी के संपूर्ण ज्ञानसे युक्त मैं व्यास श्रीकृष्ण, सिद्धप्रयोगों का, अतिसंक्षेप और अतिविस्तार से रहित वर्णन करता हूं ॥ ४ ॥

---

१ बलेः (क) सर्वस्वहरणं (ख) प्रवणं भवतारणे (ग)। साधूनामेकशरणं श्रीकृष्णचरणं नुमः ॥ १ ॥ सदा शिवाराधनतत्परोऽपि (घ) भूयः शिवाराधनतत्परो (ङ) यः। सदा शिवाराधनतत्परः (च) स भूयाच्छिवाराधनतत्परो (छ) नः ॥ २ ॥ अथ खलु सिद्धभेषजमणिमालापूर्वार्धसमाप्त्यनन्तरमाविर्भूतदीनार्तसंतापजिहीर्षाः प्रकृष्टप्रयासप्रगुणीकृततत्तत्प्रयोगगुरुप्रसादप्राप्तनवनवप्रयोगमणिभिरारभन्ते तदुत्तरार्धमाकलयितुं गुरवः। चिकित्सालक्षणं चालोकनीयं चरकखुड्डाकचतुष्पादे–"चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते। प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते ॥" तत्र पादत्रयं संक्षेपेणाभिहितमेव, अतः परिशिष्टभेषजपादाभिधानस्यौचित्यमिति । २–"मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि

भक्तिं कृत्वा खनित्रं गुरुहृदयनिधिस्थानमत्र खनित्वा
तत्र प्राप्य प्रयोगद्रविणमनुपमं वैद्यदारिद्र्यहारि ।
श्रीकृष्णः कीर्तितृष्णः सहृदयहृदयारब्धनृत्ते सुवृत्तैः
संदर्भं तत्त्वगर्भं विरचयति गदग्रस्तलोकोपकृत्यै ॥ ५ ॥

आचार्यैरधिनिगम निगूहितानि प्रत्यक्षस्फुटविभवानि भेपजानि ।
तान्यस्मिन् गुरुवदनात्कियन्त्यवाप्य वैद्यानामुपकृतये निवेशितानि ॥ ६ ॥

तत्र तावद्गद बुद्ध्वा बुद्धिमान् दोपलक्षणै. ।
एषामन्यतम कचित् प्रयोगं योक्तुमर्हति ॥ ७ ॥

आतङ्कप्रत्यनीकेपु प्राप्तेपु कृपया गुरो. ।
सिद्धयोगेपु नो न्याय्या विचिकित्सा विपश्चिताम् ॥ ८ ॥

मैंने भक्तिरूपी खनित्रद्वारा, गुरु के हृदयरूपी खानमेंसे, वैद्यों के दारिद्र्य को दूर करने वाला अनुपम रत्न प्राप्त किया है । यश की अभिलापा से मैं अब रोगग्रस्त मानव जाति के उपकारार्थ सहृदयों के हृदयको रसमय कर देनेवाले सुदर पद्यों में सारपूर्ण सदर्भ का प्रारभ करता हू ॥ ५ ॥

प्राचीन आचार्योंने प्रत्यक्ष चमत्कार दिखाने वाले बहुत से सिद्ध प्रयोगों का उद्लेख अपने अपने शास्त्रों में किया है । किंतु वह निगूढ है । उनमें से कतिपय प्रयोगों के रहस्यका ज्ञान मैंने साक्षात् गुरुमुख से प्राप्त किया है । उन्हीं का वर्णन वैद्यजनोपकारार्थ इस ग्रथ में किया जायेगा ॥ ६ ॥

अत बुद्धिमान वैद्य, सर्व प्रथम, दोप एव लक्षणों द्वारा रोग का निर्णय करके, फिर इनमें से किसीभी एक सिद्धप्रयोग का उस रोग पर निर्भय उपयोग कर सकता है । केवल गुरुकृपा से प्राप्य इन सिद्धप्रयोगों में रोगके दमन करने की अचिंत्य शक्ति है । अत इस विपय में किसी को जरा भी शका नहीं करनी चाहिये ॥ ७-८ ॥



शास्त्राणि प्रथन्ते" इति वचनात् पुनर्मङ्गलाचरणम् । ३–चन्द्रम् । ४–चरकसुश्रुतवाग्भटसहितात्रयीपठन इत्यर्थ ॥

(क) बलिराजस्य, पक्षे गन्धकस्य । (ख) वामनरूपेण, पक्षे जारणादिविधिना । (ग) भव ससार, पक्षे पारद । (घ) ईश्वरध्यानपर इत्यर्थ । (ङ) शिवा धनुर्धरीसज्ञका कुलदेवी, तदाराधनतत्पर, अथवा शिवस्य पारदस्याराधने तत्तत्संस्काराचरणे कुशल । (च) शिवा हरीतकी, अशिवस्याकल्याणस्याधारणे प्रवण इति वा । (छ) नोऽस्माकं श्रेयश्चिन्तनपरो भूयादिति ॥

तत्रादौ ज्वरचिकित्सितम् ।

रुद्रावतार इति यं विबुधाः स्तुवन्ति दक्षं हि योऽदमयदीश्वरहासदक्षम् ।
पथ्यद्विषो व्यथयति ज्वरनामधेयो वीरः कृपां मयि करोतु स वीरभद्रः ॥१॥

ज्वर-चिकित्सा

(निदानादिसे रोगका निर्णय करके, चतुर्थ गुच्छमें उल्लिखित सिद्धप्रयोगों का उपयोग करना चाहिये । प्रत्येक रोग की सद्यः चिकित्सा में उपयुक्त सिद्धप्रयोगों का निर्देश करनेके पूर्व मुनिकल्प श्रीभट्टजीने, प्रारंभमें, उस रोग की आकृतिका संक्षेप किंतु निगूढ वर्णन अपनी सहज काव्यमय शैली में अवश्य किया है, तथापि, यहां इस छोटेसे निबंध में, प्रत्येक रोग का उसके लक्षणों और प्रकारों सहित उल्लेख, रोगोंके स्वरूप को अपेक्षाकृत अधिकाधिक स्पष्ट समझाने के आग्रह से ही, किया जा रहा है । महर्षि अग्निवेश प्रणीत 'अंजननिदानम्' आयुर्वेद का रोगविज्ञान पर एक उत्तमोत्तम संक्षिप्त ग्रंथ है । यहां इसी आर्षग्रंथ का हिंदी रूपांतर दिया जाता है ।

हेतु, प्राग्रूप, रूप, उपशय और संप्राप्तिसे अथवा इन सभी में मुख्य केवल 'रूप' से ही रोग का निर्णय करना चाहिये । अजीर्ण से प्रकुपित दोष कोष्ठाग्निको, त्वचा की ओर, बाहर धकेलकर ज्वरोत्पत्ति कर देते हैं । वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज, त्रिदोषज तथा आगुन्तज भेद से ज्वर आठ प्रकार के होते हैं । जृंभा, और अंगमर्द, अरति और नेत्रदाह, भारीपन और अरुचि ये क्रमशः वातज, पित्तज, एवं कफज ज्वर के पूर्वलक्षण हैं । संसर्गज और सन्निपातज ज्वर में क्रमशः दोनों दोषों के तथा तीनों दोषों के लक्षण मिलेंगे । कंठ और ओष्ठ में शोष, मल की शुष्कता, कंप, छींक का अभाव, मस्तक, उदर और शरीर में वेदना, कभी शीत एवं कभी दाह की प्रतीति, निद्रानाश, विरसता तथा जृंभा यह वातज्वर के रूप हैं । देहका पीला पडजाना, दाह, प्यास, स्वेद, मूर्छा, अल्पनिद्रा, मुंह में कडवापन, वमन, भ्रम, प्रलाप तथा विरेक यह पित्तज्वराकृति है । स्तैमित्य (आर्द्रवस्त्र से वेष्टित हो जाने जैसी जडता) कास, अरुचि, गुरुता, उत्क्लेद, मुख में मीठापन, प्रतिश्याय, आलस्य, तृप्ति, श्वेतवर्णता, शीतता, यह श्लेष्मज्वराकृति है । कण्ठ और मुख में शोष, प्यास, मूर्च्छा, दाह, अनिद्रा, वमन, भ्रम, तम, संधि और सिर में पीडा यह वातपित्तज्वराकृति है । स्तैमित्य, कास, संताप, गुरुता, संधि और सिर में वेदना, निद्रा, स्वेदोत्पत्ति, प्रतिश्याय यह वात-श्लेष्मज्वराकृति है । शीत, दाह, वारंवार तंद्रा, मोह, कास, अरुचि, प्यास, मुख में चिपचिपापन और कटुता पित्तकफज्वराकृति है । जिह्वा में खुरदरापन, नेत्रों में वक्रता,

---

१—सर्वरोगप्रधानत्वादादावभिधानं सर्वत्र क्रियतेऽस्य, अतस्तदनुसारतोऽस्मिन्नपि तन्त्रे कृतमिति । प्रधानत्वं च वाग्भटोऽपि वर्णयति—" ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युरोजोशनोऽन्तकः । क्रोधो दक्षाध्वरध्वंसी रुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः ॥ जन्मान्तयोर्मोहमयः संतापात्माऽपचारजः । विविधैर्नामभिः क्रूरो नानायोनिषु वर्तते ॥ " इति ।

आरक्तता और जल्पमयता, प्यास, अस्थियों में वेदना, चेष्टाओं में असबद्धता, स्वेद, निद्रा, कभी शीत, कभी दाह, तन्द्रा, प्रलाप, मोह, अंगो में शिथिलता, कंठ में कंटकाकीर्णता, थूक मे रक्त इत्यादि सन्निपातज्वराकृति है। तीनों दोषों के प्रकोप वाला, सभी इन्द्रियों की चेष्टाओं से हीन, अभिन्यास ज्वर कहाता है। दोषों की अतिवृद्धि तथा अग्निक्षीणता के कारण सन्निपातज्वर असाध्य होता है। वात, पित्त और कफप्रधान सन्निपातज्वर क्रमश सात दिन, दस दिन और बारहवें दिन अथवा इनसे क्रमश द्विगुणित दिन, प्रबल होकर या तो शांत हो जाता है अथवा रोगी की मृत्यु कर देता है। सन्निपात ज्वर के प्रारंभ, मध्य तथा अंत में, कर्णमूल-गत भयंकर शोथ क्रमश सुख साध्य, कष्ट साध्य तथा असाध्य माना जाता है।

प्रकुपित दोष, रस को, रक्त को, मांस को, मेद को, तथा अस्थि और मज्जा को दूषित करते हुये यथाक्रम सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक ज्वर को उत्पन्न कर देते हैं। इन ज्वरों के तथा इनके भेदादि ज्वरों के प्रारंभ, काल और क्रिया विषम होते हैं अत इन्हें विषमज्वर भी कहते हैं। सात, दस या बारह दिवस पर्यंत वेगवाला सन्तत, अहोरात्र में दो वेग वाला सतत तथा एक ही वेग वाला अन्येद्युष्क, प्रति तीसरे दिन आनेवाला तृतीयक तथा प्रति चतुर्थ दिवस आने वाला चतुर्थक कहलाता है। दिन रात में किसी एक काल को छोड़कर शेष समय में ज्वर का रहना 'अन्येद्युष्क' विपर्यय, तीन दिवसों में, आदि तथा अन्त में न आकर मध्य में एक दिन आनेवाला तृतीयक विपर्यय, दो दिवस निरंतर रहकर एक दिवस उतरकर पुन आनेवाला चतुर्थक विपर्यय होता है। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्रगत ज्वर क्रमश हृत्पीडा, रक्त-वमन, दाह, देहमें दुर्गंध, अस्थिपीडा, क्लम तथा शुक्र स्रवण आदि लक्षणों से युक्त होता है। इनमें, रसरक्ताश्रित तथा मांस-मेदो-गत ज्वर साध्य, अस्थि मज्जा गत कष्टसाध्य एवं शुक्रगत असाध्य है। गौरव युक्त तथा पसीनों से शरीर को लिप्त सा कर देने वाला तथा नित्य रहनेवाला मन्द ज्वर 'प्रलेपक' कहा गया है। यह राजयक्ष्मा में होता है। आगंतुज ज्वर चार प्रकार के हैं। अभिशाप, अभिचार, अभिषग और अभिघात। सर्वत्र विस्फोट तथा मोह ये लक्षण प्रथम दोनों ज्वरों शापज तथा अभिचारज हैं, आवेश ज्वर में, भूतादि आवेश जन्य पीड़ा होती है। कामावेश ज्वर में लज्जा, बुद्धि तथा निद्रा आदि का नाश हो जाता है। दाह तथा अतिसार के लक्षणों से युक्त विषसबंधि ज्वर तथा अभिघातज ज्वर अभिघात (चोट) के अनुसार-वातप्रधान लक्षणों वाला होता है। बहुत अधिक एवं बलवान कारणों से उत्पन्न, शैत्य, स्वेद, अन्तर्दाह आदि लक्षणों की प्रचुरतावाला, धातुक्षीणता तथा इन्द्रियों की दुर्बलतायुक्त ज्वर असाध्य है। अल्प उपद्रवोंवाला ज्वर 'लघु' तथा अधिक उपद्रवों से युक्त 'गुरु' कहा जाता है। वर्षा, शरद् तथा वसंतऋतु में होने वाले यथाक्रम वातज, पित्तज और कफज ज्वरों को प्राकृत कहते हैं, इनसे अतिरिक्तों को वैकृत। अजीर्ण, लालास्राव, छींक का अभाव, तन्द्रा, अरुचि, भारीपन, विरसता, आलस्य और बहुमूत्रता ये आमज्वर के लक्षण होते हैं, इनसे विपरीत लक्षणों वाला निराम ज्वर

होता है। अन्तर्दाह, प्रलाप, प्यास, सन्धिपीडा, मलावरोध, भ्रम, श्वास, स्वेदाभाव, ये अन्तर्वेगज्वर के लक्षण हैं; बहिर्वेग ज्वर के लक्षण इन से विपरीत होते हैं। लघु, निराम, प्राकृत, बहिर्वेगवाला ज्वर साध्य एवं साम, वैकृत और अन्तर्वेग वाला ज्वर असाध्य होता है। मलकी प्रवृत्ति अथवा अवरोध, प्यास, कास, श्वास, शरीरमें पीडा, वमन, हिक्का, मूर्छा और अरुचि ये ज्वर के दश उपद्रव हैं। निद्रानाश, अरुचि, अरति, प्यास, बलका नाश, गुरुता, विष्टंभ, नाभी और हृदय के मध्य में जकडाहट, वेदना आदि ये धातुपाक के लक्षण हैं। अत्यंत प्यास, उग्र श्वास, ज्वर का तीव्र वेग और भ्रम ये पच्यमानज्वर के लक्षण हैं। दोषों में, ज्वरमें और शरीर में लघुता ये दोषपाक (मलपाक) के लक्षण हैं। शरीर में दाह, स्वेद, भ्रम, प्यास, वमन, मलभेद (अतिसार), संज्ञानाश, कराहना, सिर में खुजली, मुखपाक, छींक और भूख का आगमन ये ज्वरमुक्त होने के लक्षण हैं। इस तरह, विधिभेद से ज्वर दो प्रकार का होता है शारीर और मानस; सौम्य (शीत पूर्व) और आग्नेय (दाह पूर्व)। इसी तरह, अन्तर्वेग और बहिर्वेग, साध्य और असाध्य, प्राकृत और वैकृत आदि भेदों से भी ज्वरों के दो दो प्रकार हैं। दोष तथा काल के बलाबल से ज्वर के सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क तृतीयक एवं चतुर्थक ये पांच भेद है। सातों धातुओंके आश्रय भेद से सात प्रकार के तथा दोषादि एवं अभिशापादि उत्पादक कारणों के अनुसार आठ प्रकार के ज्वर माने गये हैं।

प्रकुपित जलीयधातु (रस, रक्त, मूत्र, कफ, स्वेद आदि 'अप् धातु') पाचकाग्नि को मन्द करके, शकृत् में मिलकर, अधोमार्ग से, वायुद्वारा धकेला जाकर, प्रचुर-मात्रा में बाहर निकलता है। अत एव इस व्याधि को अतिसार कहते हैं। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, शोकज और आमज भेद से यह छः प्रकार का होता है। वातज में रूक्ष और अरुण झाग युक्त, पित्तज में पीत, रक्त और श्यामवर्णवाला, कफज में शीतल, श्वेत, कफयुक्त और गाढा त्रिदोषज में तीनों दोषो के लक्षणों से युक्त मल का निःसरण होता है। शोकज में शोकतप्त मनुष्य के नेत्र, नासा तथा गले से स्रवित अतिबाष्प (जल) त्याग से उत्पन्न उष्माद्वारा क्षुभित रक्त, मल सहित अथवा रहित, निकलता है। आमज में, अजीर्ण से प्रकुपित दोष, कोष्ठ को तथा रक्तादिधातु और मलों को दूषित करके अनेक वर्णयुक्त यथादोष शूल सहित मल को निकालते हैं। जब कोष्ठ-गत संचित मल से युक्त कफ, वायु से प्रेरित होकर निरंतर बाहर निकलता रहता है तब इस अवस्था को प्रवाहिका कहते हैं। पित्तवर्धक पदार्थों के सेवन से रक्त का निःसरण रक्तातिसार कहलाता है। वमन, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, कास, श्वास, प्यास, शोक, सर्वांगपीडा, हिक्का और अरुचि ये लक्षण अतिसारी की मृत्यु के सूचक होते हैं। अतिसार के निवृत्त हो जाने पर भी, अपथ्यादि के कारण पुनः मन्दीभूत जठरानल से दूषित ग्रहणी, भुक्तपदार्थ को आमावस्था में ही अथवा कभी कभी पक्वावस्था में, वातानुबन्ध से बद्ध एवं पित्तानुबन्ध से द्रवरूप में, अनेक वार त्याग करती है। यह ग्रहणी रोग कहाता है। ग्रहणी में शोथ, अग्निमांद्य, वैवर्ण्य, ज्वर, अजीर्ण, अरुचि, बलक्षय,

-वीर्यक्षय, प्यास, आध्मान, उद्गार आदि उत्पन्न होते हैं। वात, पित्त और कफ से तथा त्रिदोष से उत्पन्न यह चार प्रकार की होती है। इसके लक्षण, अतिसार के लक्षणों जैसे ही होते हैं। अति दुर्गंध युक्त, कुछ पतला, पिच्छिलतायुक्त, वेदना कारक, तथा पानी में डूब जाने वाला मल आम मल कहलाता है।

वातादि दोष त्वचा, मांस एवं मेद को दूषित करके गुदा आदि में विविधाकृति मांस अंकुरों को उत्पन्न कर देते हैं। इन्हें अर्श कहते हैं। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, सहज और रक्तज भेदसे ये छः प्रकारके होते हैं। शोथ, अग्निमांद्य, विष्टंभ, जंघाओं में वेदना, मलाल्पता, पाण्डुता, रक्तक्षीणता, निर्बलता, आध्मान, उद्गार ये सभी अर्श के विकार हैं। अर्शगत दोषोंका निर्णय दोष के अपने अपने लक्षणोंद्वारा करलेना चाहिये। सहज अर्श, त्रिदोषज के लक्षणोंद्वारा होता है। रक्तस्रावी अर्श रक्तज कहलाता है। गुदा की संवरणी नामकी बाह्य वलि में होने वाला, नवोत्पन्न, एकदोषोल्बण अर्श सुखसाध्य, विसर्जनी नाम की दूसरी वलि में उत्पन्न, दो दोषोल्बण, कृच्छ्रसाध्य तथा प्रवाहणी नाम की अन्तःस्थित तृतीय वलि में होने वाला त्रिदोषज अर्श असाध्य कहा गया है।

आहार की विषमता से उत्पन्न अजीर्ण तीन प्रकार का होता है। वात से, शूल तथा मलावरोध वाला विष्टब्ध, पित्त से, खट्टी डकारों से युक्त तथा मुह को धूमितमा करदेनेवाला विदग्ध और कफ से, भोजनोपरांत अम्लतारहित उद्गारवाला आमाजीर्ण। 'रसशेष' यह अजीर्ण का चतुर्थ भेद है। इसमें अन्न के प्रति विद्वेष उत्पन्न हो जाता है। प्रथम तीन प्रकार के अजीर्णों से विषूचिका की तथा अलसक एवं विलंबिका की भी उत्पत्ति होती है। वमन, अतिसार, प्यास, शूल, भ्रम, तोदयुक्त उद्वेष्टन (Painful cramps), मूर्च्छा, अनिद्रा, कंप, अरति और मोह आदि लक्षणों से युक्त विषूचिका असाध्य है। वात की वृद्धि, पित्त की अतिवृद्धि तथा कफ की क्षीणता से भस्मक रोग उत्पन्न होता है जिस में उपभुक्त सभी अन्न शीघ्र-भस्मसात् हो जाता है। ज्वर, विवर्णता, शूल, हृद्रोग, श्वास, भ्रम, भोजन से अरुचि तथा मलातिप्रवृत्ति क्रिमि-रोगोत्पत्ति के लक्षण हैं। अतिमैथुन, मद्य, अम्ल पदार्थोंका अति सेवन, दिवा-स्वप्न तथा मिट्टी आदि भक्षण करने से, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा मृद्भव ये पाच प्रकार के पाण्डुरोग उत्पन्न होते हैं। पांडुरोगी के त्वचा, नेत्र, मूत्र, मल तथा नाखून पीले पड जाते हैं। वह शोथ, वमि, ज्वर, श्वास, कास, मंदाग्नि आदि से ग्रस्त रहता है। हाथ-पैर में शोथयुक्त तथा मध्य भाग में क्षीणतावाला, अथवा इससे विपरीत अर्थात् मध्य में शोथयुक्त तथा हाथ पैर में क्षीणतावाला, तीव्रज्वर एवं अतिसार-पीडित पाण्डुरोगी असाध्य है। अत्यंत पित्त-वर्धक पदार्थों के अतियोग से, पित्त, रक्त और मांस के अत्यधिक दूषित होने पर कामलारोग उत्पन्न होता है। इसमें त्वचा, मूत्र, मल, नेत्र, नाखून आदि पीले पड जाते हैं। चिरकालगत यही कामला, पीत एवं कृष्णत्वचा आदि से युक्त, कुंभ-कामला कहलाता है। प्रकुपित-पित्त, रक्त को दूषित करके, इसी

रक्त के साथ, ऊर्ध्वमार्ग अथवा अधोमार्ग से निकल कर ऊर्ध्वग एवं अधोग भेद से दो प्रकार के रक्तपित्त को उत्पन्न कर देता है। कभी कभी अत्यंत कुपित होने पर यह शरीर के समस्त रोम-कूपों में से भी निकलने लगता है। मुख आदि ऊर्ध्व-भाग से निकलने वाला रक्तपित्त कफानुबन्धी; गुदाआदि अधोमार्ग से प्रवृत्त, वातानुबंधी एवं दोनों मार्गों से युगपत् निःसरित रक्तपित्त कफवातानुबंधी होता है जो क्रमशः, साध्य, याप्य और असाध्य माना गया है।

ज्वर, अपचन, वमि, श्वास, तृषा, कास, निर्बलता, पाण्डुता, भोजनोत्तर प्रबल दाह, शिरःसंताप, अतिसार, अबुभुक्षा ये रक्तपित्त के उपद्रव हैं।

अतिमैथुन, अति व्यायाम, व्रण, शोक, ज्वर, अत्यंत मार्गाटन आदि से प्रकुपित कफ-प्रधान तीनों दोष यक्ष्मा को उत्पन्न कर देते हैं। हाथ-पैर में दाह, पार्श्व तथा स्कंध-प्रदेश में पीडा, मुख में से कफ तथा रक्त का निर्गमन, वमन, ज्वर, वैस्वर्य, क्षुद्रश्वास, कास, मस्तक में भारीपन, नेत्रों में श्वेतवर्णता, मांस-भक्षण एवं स्त्री से रमण करने की प्रबल इच्छा ये सब यक्ष्मा के लक्षण हैं। उरःक्षत से उत्पन्न यक्ष्मा, वेदनासहित दुर्गंधमय कफ, पूय तथा रक्त की वान्ति से युक्त होता है। कास, अतिसार, पार्श्ववेदना, स्वरभेद, अरुचि तथा ज्वर इन छः लक्षणों से युक्त अथवा ज्वर, कास और रक्तष्ठीवन इन तीनों लक्षणों से युक्त राजयक्ष्मा असाध्य होता है। प्रकुपित प्राण वायु उदानवायु से मिलकर, जब, ध्वनिपूर्वक, कफ-पित्त दोषोंसहित सहसा मुख से बाहर निकलता है, तब इस अवस्था को कास कहते हैं। वात-पित्त तथा कफ से, क्षत से तथा क्षय से उत्पन्न कास पांच प्रकार की होती है। वात से शुष्क, पित्त से कटु और पित्तसहित पीले वमनवाली एवं कफ से मुख को कफ से लिप्त कर देने वाली खांसी आती है। क्षतज एवं क्षयज कास असाध्य, किंतु बलवान रोगी को साध्य अथवा कभी कभी याप्य भी होती हैं। कास की तरह हिक्का भी प्रकुपित-प्राण-वायु से उत्पन्न होती है। अपनी-गति के क्रम से इसके भी पांच भेद हैं। यथा—अन्न के अधिक खाने से अन्नजा, एक बार में दो वेगवाली यमला, जत्रुमूल (कंठ और उरःस्थल का संधि-स्थान) से उठनेवाली मंदवेग युक्त क्षुद्रा तथा नाभिप्रदेश से गंभीरध्वनिपूर्वक निकलने वाली गंभीरा तथा मर्मों को पीडित करती हुई संपूर्ण देह को कंपित कर देनेवाली महाहिक्का। अंतिम दो हिक्कायें असाध्य हैं। कफ-प्रकोप-पूर्वक चारों ओर से, कफ द्वारा संरुद्ध गति होकर प्रकुपित-वायु, जब वारंवार ऊपर तथा नीचे उठता तथा आने लगता हो, तब श्वास रोग की उत्पत्ति होती है। हेतु-लक्षण-भेद से श्वास पांच प्रकार के होते हैं। महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्न, तमक और क्षुद्र। महाश्वास में निरंतर फुत्कार शब्दयुक्त वेदनासहित श्वास उठता है। ऊर्ध्वश्वास में श्वास केवल ऊपर की ओर ही देर तक उठता है नीचे की ओर बहुत कम खिंचता है। छिन्नश्वास में पूर्ण शक्ति लगाने पर भी रुकरुक कर श्वास लिया जाता है। तमक श्वास ग्रीवा और मस्तक में तीव्र वेदना युक्त होता है। क्षुद्रश्वास अल्प-हलके वेगवाला होता है। क्षुद्र और तमक साध्य एवं अन्य तीनों श्वास असाध्य हैं।

बहुत ऊंचे स्वर में बोलने से, विष-सेवन से तथा अभिघात सदृश अन्य प्रकोपक कारणों से प्रकुपित-वायु स्वरवाही स्रोतों में अधिष्ठित होकर स्वर को नष्ट करती हुई स्वर-भेद रोग की उत्पत्ति कर देती है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, मेदोज और क्षयज भेद से स्वरभेद छह प्रकार का होता है। ये अपने अपने उत्पादक दोषों के लक्षणों से युक्त रहते हैं। अंतिम तीन स्वरभेद असाध्य माने गये हैं। जब स्वाद-पूर्ण अन्न भी मुख में स्वादु न प्रतीत हो तब अरोचक होता है। यह वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, क्रोधज एवं भयज भेद से पांच प्रकार का है। अंतिम प्रकार के दोनों अरोचक आगन्तुज हैं। इसमें मुखस्वाद दोषानुसार होता है, किन्तु आगन्तुज में मुखास्वाद स्वाभाविक रहता हुआ भी अरुचि बनी रहती है। मन के प्रतिकूल घृणा उत्पन्न करने वाले, नमकीन और चिकने पदार्थों के अतिसेवन से अजीर्ण एवं अतिभोजन से, गर्भवती तथा अतिशीघ्र भोजन करने वाले को, वमन-रोग होता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज एवं घृणोत्पादक प्रसंगों को देखने से पांच प्रकार के वमन उत्पन्न होते हैं। वात से श्याव, पित्त से पीत, कफ से श्वेत तथा त्रिदोष से, बीभत्सवस्तु से और गर्भवती को अनेक वर्णों से युक्त वमन होता है। कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, तृष्णा, जीका मिचलाना, हृद्रोग, तमक-श्वास आदि वमन के उपद्रव हैं। निरंतर पानी पीते रहने से भी जब तृषा का शमन न होता हो, प्रत्युत अधिकाधिक पानी पीने की इच्छा बनी रहती हो, तब तृष्णा रोग की उत्पत्ति होती है। रस के क्षय से उत्पन्न, हृदय में पीडा करनेवाली, नमकीन पदार्थों के तथा भोजन के अधिक करने से मोह, ज्वर, श्वास और कास को उत्पन्न करने वाली तृष्णा असाध्य है। वात-सहित प्रकुपित पित्त, तालु का आश्रय लेकर, तृषा को उत्पन्न करता है। तृष्णा के सात भेद हैं। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, क्षतज, क्षयज, आमज और भक्तज। पित्त की प्रधानता वाले प्रकुपितदोष संज्ञावाही नाडियों को रुद्ध करके जब ज्ञानेन्द्रियों में प्रवेश करते हैं, तब मनुष्य चेतनारहित होकर मूर्छित हो जाता है। वात, पित्त, कफ, रक्त, मद्य तथा विष से उत्पन्न यह मूर्छा रोग छह प्रकार का होता है। जिस दोष की मूर्छा हो, उसमें उसी दोष के वर्ण से युक्त आकाश को देखता हुआ रोगी मूर्छित हो जाता है। मद्यज मूर्छा में रोगी विक्षिप्त चित्त होकर प्रलाप करता है। विषज मूर्छा में दाह, हत्पीडा तथा वमन होता है। रक्त की गंध-मात्र से आनेवाली रक्तज मूर्छा के लक्षण पित्तज मूर्छा के समान जानने चाहिये। शरीर तथा मन के व्यापार को अवरुद्ध कर देनेवाला रोग सन्यास कहलाता है।

विधि-रहित मद्य पान करने से पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण तथा पानविभ्रम नामकी व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं। वमन, मूर्छा, दाह, ज्वर, प्रलाप, भ्रम, अरुचि, मल-प्रवृत्ति, अरति और कफाधिक्य आदि पानाजीर्ण आदि के लक्षण हैं। विधिरहित पान करने से शरीरस्थ ऊष्मा, पित्त तथा रक्त से निकल कर जब त्वचा में पहुंचती है तब भयंकर दाह उत्पन्न होता है। इसे मद्यज-दाह कहते हैं।

विरुद्ध, दुष्ट और अपवित्र भोजन से, पूज्य व्यक्तियों का अपमान करने से, काम, भय, और शोक से मनोवाही स्रोतों के दूषित हो जाने पर उन्माद रोग की उत्पत्ति होती है। उन्माद रोगी किसी भी जगह बिना प्रयोजन हंसने तथा गाने लगता है। बुद्धि और स्मृति दोनों ही खो बैठता है। विचित्र स्वप्न देखता है। भ्रम और उद्वेग से ग्रस्त रहता है। मन की छिपी बात को भी कह डालता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, शोकज, और विषज भेद से उन्माद छह प्रकार का होता है। देव, दैत्य, पिशाच, राक्षस, सर्प, गंधर्व, यक्ष, ग्रह और पितरों से यथाक्रम आविष्ट उन्मादरोगी पवित्र रहता है, देवताओं से विद्वेष रखता है, नग्न फिरा करता है, सर्प के समान पेटके बल सरकता है, अत्यंत भोजन करता है, गाता है, पिण्डदानादि देता और तर्पण करता है। जो कांपता रहे, जिसे निद्रा अधिक आये, फेनयुक्त वमन करे, अथवा पर्वत, वृक्ष, वाहन आदि से गिरकर पागल हुआ हो वह असाध्य होता है। इसी तरह तेरह वर्ष पुराना उन्माद रोग भी असाध्य माना जाता है। चिंता और शोक आदि से प्रकुपित दोष मस्तिष्क-गत स्रोतों को दूषित करते हुये स्मृतिनाश-पूर्वक अपस्मार रोग को उत्पन्न करते हैं। अंधकार, मुख में से फेनोद्गम, कंप, नेत्रादि की विकृति ये इस व्याधि के लक्षण हैं। वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज भेद से अपस्मार चार प्रकार का है। वातिक, पैत्तिक तथा श्लैष्मिक अपस्मार यथाक्रम बारह दिन, पंदरह दिन और एक मास पश्चात् अथवा त्रिदोषज किसी भी समय दौरा करता है।

वात से, आक्षेपादि अस्सी प्रकार की व्याधियां उत्पन्न होती हैं। उनमें से अति प्रसिद्ध कितने ही रोगों का यहां उल्लेख किया जाता है। यथा—आक्षेपक इससे शरीर में पुनः पुनः झटके आते हैं; खल्ली-पैर और जंघाओं में, ऊरु और हाथ के मूल में ऐंठन उत्पन्न करनेवाली व्याधि; अष्ठीला-नाभि के नीचे मलमूत्रकी अवरोधक वेदना-पूर्ण ग्रंथी यदि यही ग्रंथी उदर में तिरछी उठी हुई रहे तथा पीडा युक्त हो तो प्रत्य-ष्ठीला कहाती है। आध्मान-उदर में पीडायुक्त आटोप; प्रत्याध्मान पार्श्व में, हृदय को छोडकर आमाशय में, पीडायुक्त आटोप; तूनी-मलाशय और मूत्राशय से प्रारंभ होकर गुदा तथा मूत्रेंद्रिय का भेदन करने वाली पीडा, प्रतितूनी-गुदा तथा मूत्रेंद्रिय से प्रारंभ होकर पक्वाशय की तरफ आवेगपूर्वक गति करने वाली पीडा; अर्दित-प्रकुपित वात से मुख के अर्धभाग का टेढा हो जाना तथा उसमें वेदना उठना; गृध्रसी-स्फिक् प्रदेश से प्रारंभ होकर क्रमशः कटि के पिछले भाग, ऊरु, जानु, पिण्डली तथा पैरतक जाने वाली पीडा; क्रोष्टुशीर्ष (गीदड के मस्तक के समान स्थूलता)—घुटनों में वात और रक्त की विकृति के कारण तीव्र पीडा युक्त शोथ; विश्वाची-बाहु के पृष्ठभाग से अंगुलियों के पृष्ठभाग पर्यंत तथा प्रकोष्ठ और हस्त तल-गत-भाग की कंडरा को दूषित करके भुजा में पीडा करने वाली व्याधि; खंज-जंघा के ऊर्ध्व भाग गत कंडरा के आक्षेप पूर्वक टांग को अकर्मण्य बना देने वाली व्याधि; पङ्गु-दोनों टांगों को अकर्मण्य करने वाली व्याधि; ऊर्ध्ववात-डकारों को प्रचुरमात्रा में उत्पन्न करने वाला रोग; मूकता वाणी को नष्ट कर

देती है, कलायखञ्ज रोग में व्यक्ति चलता हुआ कांपता तथा लगडाता है तथा सधि-बंध शिथिल पड जाते हैं। अववाहुक मे अंशप्रदेश गत सिराओं का संकोचन-प्रसारण स्थगित हो जाता है। हनुग्रह-इस में मुख पूर्णतया खुला रहता है, अथवा सर्वथा बद ही हो जाता है। सर्वांग की तथा शरीर के अर्ध भाग की चेष्टा नष्ट कर देने वाला रोग सर्वाङ्ग अथवा एकाङ्गघात कहलाता है। अंगो को धनुष्य के समान झुका देने-वाली तथा उनमें मूर्छा और आक्षेप उत्पन्न करनेवाली व्याधि अपतन्त्रक मानी गयी है। जिह्वास्तंभ मे जिह्वा के स्तंभित होने से रोगी अन्न पान करने में तथा बोलने में असमर्थ हो जाता है। शरीर को बाहर (पीठ) की तरफ झुका देने वाला तथा भीतर (उदर) की तरफ धनुष्य के समान झुका देनेवाला रोग क्रमश बाह्यायाम और अन्तरायाम कहलाता है। वातजन्य रोग अत्यत वृद्धिगत होने पर, मांस, बल और अग्नि से क्षीण व्यक्ति को मार डालते हैं।

अत्यत मार्ग चलने से, अधिक सवारी करने से, विदाही अन्नादि के सेवन से, क्रोध करने से, वात तथा रक्त दूषित होकर वातरक्त नामका रोग उत्पन्न कर देते हैं। शरीर में भारीपन, तोदन, खुजली, त्वचा का विवर्ण हो जाना तथा चकत्तो का पड जाना, उदर्द, अङ्गो में संकुचन और शोथ ये वातरक्तके लक्षण हैं। वातरक्त में वाता-धिक्य से तीव्र वेदना, पित्ताधिक्य से दाह तथा रक्त में अधिक सुर्खा, कफाधिक्य से शरीर में भारीपन उत्पन्न होता है। द्वन्द्वज तथा त्रिदोषज वातरक्त दोनो तथा तीनों दोषो के लक्षणों से युक्त होते है। मोह, दाह, ज्वर, अनिद्रा, पङ्गुता, अंगुलियों में टेढापन, मर्म (सिर, हृदय और बस्ति में) पीडा, भ्रम और अर्बुद ये वातरक्त के नौ उपद्रव हैं। अपने अपने प्रकोपक कारणो से आम-रस तथा वायु युगपत् प्रकुपित हो कर आम-वात रोग उत्पन्न करते हैं। यह शोथ-युक्त होता है तथा संधियो में पीडा उत्पन्न करता हुआ उनको जकड देता है। ज्वर, अजीर्ण, अग्निमांद्य तथा तृष्णा ये आमवात के लक्षण हैं। वात-जन्य प्रवृद्ध आमवात में वेदना, पित्तज में दाह, कफज में स्तैमित्य एव देह में भारीपन, तथा त्रिदोषज आमवात में तीनो दोषो के लक्षण होते हैं। अंगों में जडता, अन्त्र कूजन, आनाह, प्यास, वमन, बहु मूत्रता, शूल तथा निद्रानाश ये आमवात के आठ उपद्रव हैं।

शरीरके किसी एक ही प्रदेश में अत्यत वेदना को शूल कहते हैं। मटर, मूंग, अरहर, शिंबीधान्य आदि के अत्यत सेवन से प्रकुपित दोष—वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, और आमज भेद से आठ प्रकार के शूलो को उत्पन्न करते हैं। पित्त से नाभि में, वात से बस्ति, हृदय तथा पार्श्व में, कफ से एव आम से आमाशय में शूल उठता है। इसी तरह दो दो मिलित दोषों से उत्पन्न शूल दोनों दोषो के स्थानों में तथा त्रिदोषज, तीनों दोषो के स्थानों में उत्पन्न होता है। वेदना, आनाह, सभी प्रकार के मूर्छाय, तृषा, मूत्रकृच्छ्र, भारीपन, अरुचि, कास, श्वास और हिक्का ये शूल के दश उपद्रव हैं। अपने स्थान से प्रच्युत कफ, पित्त में मिलकर वायुसहित, भोजन-परिपाक काल में जिस शूल को उत्पन्न करता है, वह परिणाम-शूल कहलाता है।

अधोवायु, मल, मूत्र, जृंभा, अश्रु, छींक, उद्गार, वमन, शुक्र, श्रमश्वास तथा निद्रा के वेग को रोकने से उदावर्त रोग की उत्पत्ति होती है। वात के निरोध से आध्मान, मल से मल की ऊर्ध्व प्रवृत्ति; मूत्र से बस्ति में शोथ तथा वेदना; जृंभा से शीर्ष-पीडा; अश्रु से नेत्र-रोग; छींक से इन्द्रियदौर्बल्य तथा ग्लानि; उद्गार से वात-रोग; वमन से कुष्ठ आदि; शुक्र से शुक्राश्मरी आदि; क्षुधा से दृष्टि की मंदता; प्यास से अत्यधिक तृषा, श्रमश्वास से हृदय-रोग, निद्रा से आलस्य आदि विकारों की उत्पत्ति होती है। मल का वमन करने वाला, बेचैन, क्षीण, शूलयुक्त, तथा तृषा पीडित उदावर्त रोगी असाध्य है।

हृदय और नाभि के बीच में चल अथवा अचल, कभी घटने और कभी बढने वाली गोलाकार ग्रन्थि को गुल्म कहते हैं। यह दोनों पार्श्व, हृदय, नाभि और बस्ति इन पांच स्थानों में होता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा रक्तज भेद से पांच प्रकार के गुल्म होते हैं। वातज गुल्म अन्न के जीर्ण होने पर, पित्तज अन्न की पच्यमान अवस्था में तथा कफज अन्न के खाते ही प्रकुपित होता है। त्रिदोषज गुल्म हमेशा प्रकुपित रहता है। नवीन-प्रसव होने पर, गर्भ-स्राव होने पर, अथवा आर्तव के प्रवृत्ति काल में मिथ्या आहार-विहार से गर्भाशय-गत प्रकुपित-वायु रक्त को अवरुद्ध करके पैत्तिक-गुल्म के समान ही गुल्म की उत्पत्ति कर देता है। यह गुल्म अंगों से रहित, किंतु स्पंदन से युक्त, पीडा तथा दाह करने वाला, पिण्डित आकार का, लक्षणों में गर्भ से मिलता जुलता होता है। इसकी चिकित्सा दसवां मास व्यतीत होने पर ही करनी चाहिये। जिस गुल्म का मूल दृढ हो, जिसमें श्वास, शूल, पिपासा तथा भोजन आदि से अरुचि हो जाये तथा दुर्बलता उत्पन्न हो गयी हो वह गुल्म असाध्य है। प्रकुपित दोष हृदय में अवस्थित होकर रस को दूषित करते हुये हृदय में विकार उत्पन्न कर देते हैं। इसी को हृदय-रोग कहते हैं। वातज, पित्तज, कफज, और त्रिदोषज तथा कृमिज भेद से हृद्रोग पांच प्रकार का होता है। क्लम, अवसाद, भ्रम, शोष ये हृद्रोग के उपद्रव हैं।

मूत्र नलिका के मूल, मध्य अथवा अग्र भाग में रुकरुक कर दाह एवं पीडा युक्त एक एक बिंदु जब मूत्र उतरने लगे तब वह मूत्रकृच्छ्र रोग कहलाता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, शल्याभिघातज, पुरीषज, शुक्रज और अश्मरीजन्य इस तरह यह आठ प्रकार का माना गया है। वात से पीडा, पित्त से दाह और कफ से मूत्रेन्द्रिय में भारीपन आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। त्रिदोषज में सभी दोषों के लक्षण उपलब्ध होते हैं। अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र में मूत्र दो धाराओं में विभक्त होकर उतरता है। विड्-क्षोभ से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र में पुरीष की दुर्गंध आती है। शल्याभिघातज में मूत्र भयंकर वेदना सहित उतरता है। शुक्रज में शुक्रसहित, अत्यंत वेदना पूर्वक मूत्रत्याग होता है। बस्ति तथा मेढ़ू में वेदना और दाह युक्त, आटोपवाला मूत्रकृच्छ्र असाध्य कहा गया है। मलमूत्रादि के वेग को रोकने से प्रकुपित वायु के कारण जब मूत्र रुक-

रुक कर धीरे धीरे उतरता हो तब मूत्राघात की उत्पत्ति होती है। जब वायु बस्तिगत शुक्र, मूत्र, पित्त अथवा कफ को दूषित करके सुखा देता है तब गाय के पित्ताशय में रोचना के समान क्रमश अश्मरी की उत्पत्ति होती है। सभी अश्मरी त्रिदोषज कही गयी हैं। नाभी, सेवनी या अण्डकोष एव गुदा के मध्य में तथा वस्तिशिर (पेडू) में पीडा होना, अश्मरीद्वारा मूत्रमार्ग के अवरुद्ध हो जाने पर मूत्र का अनेक धाराओं में विशीर्ण होकर निकलना, गोमेद के समान कुछ रक्तवर्ण मूत्र का कष्टपूर्वक त्याग करना, ज्वर का रहना आदि ये अश्मरी के लक्षण हैं। दोषज अश्मरिया प्राय बालकों में ही पायी जाती हैं। शुक्राश्मरी–शुक्र का वेग धारण करने से युवा पुरुषों को ही होती है जिस रुग्ण के अण्डकोष वा नाभि में शोथ आ गया हो, मूत्र रुक गया हो, जिसे अत्यधिक पीडा होती हो तथा अश्मरी के साथ शर्करा अथवा सिकता का अनुबन्ध हो उसे असाध्य समझना चाहिये। अधिक बैठे रहने से, विधिरहित शयन करने से, दही, सुरा, आनूप मास, नवान्न तथा गुडनिर्मित एव कफवर्धक सभी पदार्थों के अति सेवन से प्रमेह रोग उत्पन्न होता है। मूत्रगत वर्ण एव गध आदि के भेद से प्रमेह के भेद कहे गये हैं। कफोत्थ प्रमेह, चिकित्सा सौकर्य के कारण, पित्तज, चिकित्सा की विषमता के कारण तथा वातज, चिकित्सा की महा असफलता के कारण क्रमश साध्य याप्य एव असाध्य माने जाते हैं। कफज प्रमेह दस हैं–उदक, इक्षु, सान्द्र, सुरा, शुक्र, पिष्ट, लाला, शनै, सिकता, और शीत। पित्तज प्रमेह छ हैं–माजिष्ठ, हारिद्रक, नील, काल, रक्त और क्षार। वातज प्रमेह चार हैं–मज्जा, वसा, हस्तिमेह और मधुमेह। प्रमेह के उपद्रव, दोषों के प्रकोपलक्षणों के समान ही होते हैं। प्रमेह की उपेक्षा करने से, शरावी, कच्छपी, मसूरी, विनता, पुत्रिणी, जालिनी, अलजी, विदारिका, विलेपी, आदि अपने नामानुरूप आकृति वाली विद्रधिया-प्रमेह पिडिकायें-उत्पन्न होती हैं। प्रमेह में श्लेष्मोत्पादक आहार विहार करने से मेदोवृद्धि पूर्वक मनुष्य के उदर, नितब, स्तन आदि स्थूल हो जाते हैं एव वह किसी भी कार्य करने की शक्ति तथा उत्साह से रहित हो जाता है। रोग से दुर्बल की चिकित्सा हो सकती है किंतु जो स्वभाव से भी दुर्बल बनगया हो उसकी चिकित्सा नहीं है।

अहित अन्न के सेवन से, अग्नि के मद हो जाने पर, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर तथा जलोदर भेद से आठ प्रकार के उदर रोगों की उत्पत्ति होती है। अधोवात तथा मल का अवरोध, दुर्बलता, उदर का फूल जाना, अग्निमाद्य, वस्ति में वेदना, दाह, आध्मान आदि सभी प्रकार के उदरों के लक्षण हैं। वात, पित्त एव कफ से, उदरगत सिरायें, क्रमश कृष्ण, पीत तथा श्वेत हो जाती हैं। दुष्टजल, नख, मल, लोम, स्त्रियों का, अन्यद्वारा (वशीकरणार्थ) प्रदत्त आर्तव, दूषी-विष, कृत्रिमविष आदि से नाभी के ऊपर मेरुवत् उभरा हुआ दाहयुक्त सन्निपातोदर उत्पन्न होता है। जीर्णज्वर से वामपार्श्वाश्रित प्लीहोदर की तथा शोणित से दक्षिणपार्श्व में यकृत् दाल्ली नामक उदर की उत्पत्ति होती है। वेदनापूर्ण जिस उदर में, वात से

गुद के बद्ध हो जाने पर मलमूत्रादि बाहर न निकलते हों वह बद्धोदर कहलाता है। भोजन गत-तृण-कण्टकादि तीक्ष्णशल्यों के कारण छिद्रित-अंत्रों में से जल गुदामार्ग-द्वारा बाहर निकलता रहता है। जो निःसरित नहीं होता वह भीतर ही संचित होता हुआ नाभी से नीचे उदर को बढाता रहता है। इसे परिस्रावी अथवा छिद्रोदर कहते हैं। स्नेहपानानन्तर, अति शीतल जल पीने से, वमन से और विरेचन से, जल-पूर्ण पखाल के तुल्य, नाभी के नीचे के भाग में जलोदर उत्पन्न होता है। बद्धोदर तथा क्षतोदर पंदरह दिवस पीछे मृत्यु कर देते हैं। इसी तरह अंतिम अवस्था में जलोदरता को प्राप्त सभी प्रकार के उदर प्रायः मृत्यु सूचक माने गये हैं।

नमकीन, अम्ल, दूषितजल, विरुद्धभोजन, दही, मिट्टी और विष से, वमनविरे-चनादि पंचकर्मजन्य क्षीणता से तथा अपचारादि कारणों से मनुष्य को श्वयथु हो जाता है। सिराओं का सूक्ष्म हो जाना, निर्बलता, रोमांच, शरीर में उभरापन, भारीपन, दाह तथा अनवस्थितता ये सभी श्वयथु के लक्षण हैं। वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, अभिघातज और विषज इस तरह श्वयथु नौ प्रकार का होता है। इन श्वयथुओं के लक्षण, इनके प्रकोपक दोषों के लक्षणों से, तथा अभिघातज के लक्षण उसके उत्पादक-हेतु लक्षणों से समझ लेने चाहिये। (जैसे भिलावे से उत्पन्न श्वयथु पित्त लक्षणवाला होता है)। विषैले प्राणियों के दंश, मल, मूत्र आदि से उत्पन्न श्वयथु विषज कहलाता है। अनेकों उपद्रवों से युक्त शोथ, पैरों से ऊपर की ओर फैलनेवाला, पुरुष का शोथ, मुख से नीचे की ओर फैलनेवाला, स्त्री का शोथ, कुक्षि तथा गुह्यभाग में उत्पन्न शोथ मृत्यु के सूचक हैं। प्रकुपित वायु अभिसरण करता हुआ जब वंक्षण से अंडकोषों को प्राप्त होता है तब वह अंडकोषों की सिराओं में पीडा उत्पन्न करता हुआ उनकी 'वृद्धि' कर देता है। इसे वृद्धिरोग कहते हैं। अभिघातादि से प्रकुपित वायु वंक्षण के नीचे क्षुद्रान्त्र को धकेल कर वेदना तथा ध्वनि युक्त अंत्रवृद्धि रोग की उत्पत्ति करता है। वायु से उत्पन्न वंक्षणगत-ग्रन्थि को वध्म- कहते हैं। पादगत शोफ श्लीपद कहाता है। उपेक्षित व्रण जब नाडी में दूरतक फैल जाता है, तब वह नाडीव्रण कहलाता है। गुदा के आस पास दो अंगुल परिसर में वेदनायुक्त, भिन्न मुख वाली पिडिका (व्रण) को भगंदर समझना चाहिये। वात से अनेक मुखवाला, वेदना और क्लेद से युक्त शतयोनक; पित्त से उष्ट्रग्रीव, कफ से परि-स्रावी, त्रिदोष से शंबूकावर्तक और उन्मार्गग इस तरह भगंदर पांच प्रकार के होते हैं। अत्यंत गहरा, शुक्र और मूत्र के स्राव से युक्त, भगंदर असाध्य है। गले के एक ही भाग में उत्पन्न अपक्व श्वयथु गलगंड कहलाता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रक्तज और आगन्तुज भेद से ग्रंथि छह प्रकार की होती है। यह अपक्व ही रहती है। पक्व होने पर यही अर्बुद कहाता है। मेद तथा कफ से गले में उत्पन्न गंडे जैसी अनेकों ग्रंथियां गण्डमाल रोग कहलाता है। यह ग्रंथियां चिरकाल तक अपक्व अवस्था ही में रहती हैं। दाह तथा वेदना युक्त मुष्टिप्रमाण-शोथसह ग्रंथी; विद्रधि कहलाती है।

भीतर और बाहर उत्पत्तिभेद से यह दो प्रकार की मानी गयी है। वातज, पित्तज, कफज, रक्तज और क्षतज भेदसे विद्रधिया छह प्रकार की हैं। अथितोऽनतग्राह्यविद्रधि नाभी आदि प्रदेश में, आन्तर विद्रधि वस्ति, यकृत्, प्लीहा, क्लोम, हृदय, कुक्षि, वक्षण, वृक्क आदि स्थानो में कहीं भी उत्पन्न हो सकती है। पायुगत विद्रधि अपानवायु तथा मल का रोध करती है। कुक्षिगत विद्रधि वातजन्य वेदना को, नाभि गत हिक्का को, हृदयगत श्वास को, प्लीहागत श्वासावरोध को, यकृत् गत निरतर श्वासी को तथा वक्षण गत कटि-ग्रह को उत्पन्न करती है। युवास्त्रियो के स्तनगत रक्तविद्रधि को स्तन-विद्रधि कहते है। यह विद्रधि शोथ, पीडा, दाह और पाक से युक्त होती है।

विरुद्ध आहार, पापकर्म, वमनविरेचनादि पचकर्म मे अपचार, कलुषित स्त्री से रति, मद्य, मास, दुष्ट जल आदि कुष्ठ को उत्पन्न कर देते हैं। वात से रूक्षतायुक्त कापाल, पित्त से औदुवर, कफ से श्वेतवर्ण युक्त मडल और विचर्चीं, त्रिदोष से गुजा के समान वेदनापूर्ण काकण, वातपित्त से कफयुक्त तथा रक्त और श्वेतवर्णवाला ऋक्षजिह्व, कफपित्त से श्वेत-कमल-दल के समान पुडरीक, दद्रु, शतारुषी, विस्फोट, पामा और चर्मदल तथा वातकफ से चर्म, एककुष्ठ, किटिभ, सिध्म, अलस, विपादिका नाम के कुष्ठ उत्पन्न होते है। इनमे कपाल, औदुम्बर, मडल, दद्रु, काकण, पुडरीक तथा ऋक्षजिह्व ये सात महाकुष्ठ कहलाते हैं। हस्तिचर्मवत्-चर्मकुष्ठ, किण (दाने) के समान, किटिभ, त्वचा का दारण करने वाला-चर्मदल, पाणि-तल-गत-पामा, खुजली तथा अरुचि उत्पन्न करनेवाला-विचर्चीं, सभी कुष्ठो के लक्षणो से युक्त काकण, मेढ्र के आस पास होने वाला कच्छू, पैरों का दारण करने वाला विपादिका, ऊर्ध्व देह मे होनेवाला, अलाबु-पुष्प के वर्ण जैसा, सिध्म, स्थूल-मूलवाला तथा अनेको व्रणों से युक्त शतारु, शोण-मडलवाला अलस तथा मत्स्य के टुकडे के समान एककुष्ठ कहलाता है। श्वेतवर्ण के चकत्तोंवाला श्वित्रकुष्ठ माना गया है।

शरीर पर, भ्रमरी से दष्ट शोथ के समान, शीतपित्त के कारण खुजली से युक्त वमन तथा ज्वर उत्पन्न कर देने वाला रोग उदर्द कहलाता है। अरुचि, अजीर्ण, क्लम, गुरुता, उत्क्लेद युक्त, तिक्त और अम्ल उद्गारो सहित तथा हृदय और कण्ठ मे दाहोत्पादक अम्लपित्त रोग कहा गया है। अत्यत दाह, पीडा, अरति, रक्तस्राव तथा अरुचि को उत्पन्न करने वाला, क्षुद्र व्रणो से युक्त, शरीर मे सर्वत्र परिसर्पण (फैलने) करने वाला विसर्प रोग होता है। ज्वर, वमन, और भ्रम से युक्त, बालको के हस्त पाद-तल पर होने वाली छोटी छोटी फुन्सियो को मसूरिका रोग कहते हैं। मदाग्नि से ग्रस्त होने पर यह रोग असाध्य कहलाता है। अग्निदाह-जन्य स्फोट के समान अत्यधिक वेदनावाला, विप के सदृश मृत्युकारक विस्फोट, स्वनाम से प्रसिद्ध रोग है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और रक्तज भेद ये पाच प्रकार के होते हैं।

वयस्कों को होने वाले रोग छोटे बच्चो को भी होते हैं। किंतु देह, अग्नि तथा दोषादि की अल्पता के कारण वे अल्प-वेग वाले ही रहते हैं। क्षीरालसक,

लालास्राव, अतिरोदन, गुदा और मुख में पाक, दन्तोद्भेद, ग्रहादि से ग्रस्तता आदि खास बालकों के रोग हैं जिनके कारण बालक अनिद्रित रहते हैं, रोते हैं तथा कृश हो जाते हैं। चतुर्थ मास तक गर्भ-पात, गर्भस्राव कहलाता है। इससे आगे के महिनों में अपने स्थान से च्युत किंतु बाहर न निकलने वाले गर्भ को मूढगर्भ कहते हैं। अपचारादि से गर्भ के नष्ट हो जाने के कारण, बुद्धि-विनाशपूर्वक गर्भिणी का गर्भ स्पंदन से रहित हो जाता है। इसमें, मलकी अत्यंत प्रवृत्ति, शैत्य, प्यास, कंप तथा ज्वर इन लक्षणों से युक्त होने पर गर्भिणी असाध्य कही जाती है। अंग मर्द, ज्वर, कंप, प्यास, शरीर में भारीपन, दाह, शोथ और अतिसार ये सूतिका-रोग के लक्षण हैं। योनि से रक्त-स्राव प्रदर रोग कहाता है। अनार्तव रोग में वेदना, अंगमर्द, दुर्बलता, प्यास, क्षुधा, पाण्डुता और दाह उत्पन्न होते हैं। शशक के रक्त जैसे वर्ण वाला एवं पानी से धोने पर जिसका रंग वस्त्र पर से हट जाये वह शुद्ध आर्तव कहलाता है। अत्यंत मैथुन परायण तथा वाजीकरण औषधियों का सेवन न करने वाले को शुक्र-क्षय के कारण ध्वजभंग-रोग हो जाता है। सहज एवं मर्मच्छेद से उत्पन्न नपुंसकता असाध्य है। अन्य साध्य क्लैब्य में वाजीकरण चिकित्सा हितावह है।

धूलि, धूप तथा धूम के अतियोग से, अम्ल और तीक्ष्ण पदार्थों का तथा शाकों का प्रचुर मात्रा में सेवन करने से, अत्यंत स्त्रीप्रसंग से, अधिक जागरण से, गंडूष, अंजन, नस्य आदि न लेने से मनुष्य को नेत्र के विविध रोग हो जाते हैं। तिमिर, पटल, काच, अभिष्यंद, अधिमन्थ, पक्ष्मकोप, व्रणकोप आदि नेत्ररोग कहे गये हैं। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रक्तज भेद से पांच प्रकार के नेत्रकोप होते हैं। यह रोग आमावस्था में वेदना, अश्रु-स्राव, रक्ताश, शोथ आदि से तथा पक्वावस्था में इनसे विपरीत लक्षणों से युक्त होता है। तिमिर में एकरूप तथा पटल में सभी रूप अस्पष्ट दीख पडते हैं। काच-रोग में दृष्टि सूक्ष्म-वस्त्र से आच्छन्न जैसी हो जाती है। इसमें नेत्र ऊपर की ओर ही देखते है—नीचे की तरफ नहीं।

अकालपालित्य, पीडायुक्त सूर्यावर्त, अर्धावभेदक, इन्द्रलुप्त, केशपात आदि शिरोरोग हैं। प्रकुपित वायु कफ को साथ में लेकर कर्ण-मल को दूषित करता हुआ, कर्ण-पाक, बाधिर्य, शूल, कर्ण-स्राव, आदि कान के रोगों की उत्पत्ति कर देता है। अर्श, रक्तस्राव, पिडिका, पूयस्राव, पीनस, प्रतिश्याय, छिक्का इत्यादि नासिका के रोग हैं। कफ, रक्त से युक्त होकर, दन्तार्श, दन्तचालन आदि दांत के तथा दौर्गंध्य, पिडिका, पाक, मूकता आदि मुख के रोगों का हेतु बनता है। जिह्वागत जडता, शीर्ष-पीडा, दाह, भ्रम, उन्माद, अरुचि, ज्वर, श्वास, हिक्का और दंतहर्ष ये स्थावरविष के लक्षण हैं। दंश स्थल की विवर्णता और शोथ से, सेक, विरेक, तम और भ्रम से, निद्रा, नेत्र-गत रक्तता और जिह्वा की जडता से, सर्प-विष के लक्षण जानने चाहिये। वृश्चिक के दंश से, प्रज्वलित अंगार से दग्ध हो जाने जैसी-वेदना होती है। इसी तरह अन्य विषोंका भी दाह, वेदना, मोह आदि अपने अपने लक्षणोंद्वारा, निर्णय कर लेना चाहिये।)

क्षुधाऽथवा दोष इति स संशये कांस्य सतोयं ह्यविनाभि वर्तयेत् ।
स्वास्थ्ये मनाक् पथ्यमरं प्रदापयेन्नो चेत् पुनर्लङ्घनमेव कारयेत् ॥ १० ॥

योगसख्या

१ एरण्डराम्नासिपितीक्ष्णपत्रकैः सकृष्णजीरत्रुटिनागकेसरैः ।
कषायकः पाचनदीपनः परः पितामहैर्मेऽयमुदाहृतो नवः ॥ ११ ॥
२ अमृताचपलाङ्घ्रिविश्वतोयं पिवतः स्यात् पवनज्वरः कुतोऽयम् ।
३ अथ नागरधान्यदेवदारुबृहतीसाधिततोयमत्र चारु ॥ १२ ॥
४ पीयूषव्रततिवरीजलं गुडेन पीतं सञ्जयति मरुज्ज्वरं क्षणेन ।
५ गोपैस्त्रीमिसिपिमधुराभिधोपकुल्याकौन्त्यः स्युस्तरलतराक्षि ! पूर्वतुल्याः
६ द्राक्षामिसिपिङ्कीतकलार्नपस्साशम्पाकपोटासुमकन्दसिद्धः ।
सितासहायः कुरुते कषायः पित्तज्वरानाहविदाहहानिम् ॥ १४ ॥

रुद्रावतार के रूप में जिसकी स्तुति देवगण भी करते हैं, जिसने भगवान शंकर का उपहास करनेवाले दक्ष का दमन किया, वह ज्वरनामधारी, अपथ्य सेवी को अत्यंत त्रास देने वाला परम वीर 'वीरभद्र' मेरे ऊपर कृपा करे। जब यह शंका हो कि यह मनुष्य क्षुधा से पीडित है, अथवा रोग से तब उसकी नाभिप्रदेश पर जलपूर्ण कांस्य-पात्र रखना चाहिये। यदि जल में कुछ भी विकृति न हो तो समझ लेना चाहिये कि वह क्षुधार्त है तथा शीघ्र ही पर्याप्त मात्रा में उसे पथ्य भोजन कराना चाहिये। जल के विकृत होने पर उसे रोगार्त जानकर लंघन ही करना उचित होगा ॥ ९–१० ॥

एरंड, रास्ना, सौंफ, पोदीना (अथवा तेजपत्र), काला जीरा, इलायची और नागकेसर इनका कषाय उत्तम पाचनदीपन है। यह नूतन प्रयोग मुझे मेरे पूज्य पितामह विष्णुरामजी से प्राप्त हुआ है ॥ ११ ॥

गुडूची, पिप्पलीमूल और शुंठि से सिद्ध जल का पान करनेवाले को वातज्वर कहां हो सकता है? अथवा शुंठि, धनिया, देवदार और कण्टकारी से सिद्ध किया गया पानी वातज्वर में प्रशस्त कहा गया है ॥ १२ ॥

शतावरी एवं गुडूची से साधित जल में गुड मिला कर पीने से वातज्वर क्षण में नष्ट हो जाता है। हे अतिचपल नेत्रवाली! सारिवा, सौंफ, द्राक्षा, पिप्पली तथा रेणुक-बीजद्वारा सिद्ध-जल भी पूर्ववत् गुणकारक होता है ॥ १३ ॥

द्राक्षा, सौंफ, मुलेठी, खूबकला, बनप्सा, अमलतास, चिरपोटा और गुलकंद इनसे सिद्ध कषाय में मिश्री मिला कर पीने से पित्तज्वर, आफरा और दाह क्षीण हो जाते हैं ॥ १४ ॥

१–तीक्ष्णपत्र 'पोदीना' इति प्रसिद्धम्। २–पिप्पलीमूलम्। ३–सारिवा। ४–द्राक्षा। ५–मधुयष्टि। ६–मरुज्ज्वरघ्न। ७–मधुकम्। ८–'खूबकला' इति लोके यवनवैद्यैः प्रचारितनामधेया। ९–'चिरपोटा, मको' इति ख्याता। १०–गुलकन्द। स च गुलाबपुष्पजो व्याधिघातपुष्पजो वाऽत्र ग्राह्यः।

७ प्रेयस्याह्वय पद्मजं दयित ! (क)स्वर्णोपमेयद्युते !
संबुद्धिं वद दुर्जनस्य किमु(रे)कः सूक्ष्मवाच्यस्त्वणुः [अणुः]।
त्रातः को हरिणा (करेणु)रथ स त्यक्त्वाऽधुनाऽऽद्याक्षरं
वक्तव्यो हरिणाक्षि ! (रेणु)रिति तत्क्काथोऽत्ति पित्तज्वरम् ॥ १५ ॥

८ नयनचुलुकनीये ! तानि पेयानि पुंसा
ज्वररयरुजि चत्वार्यौषधानि प्रपाच्य।
रसिक ! कथय तेषां नामधेयानि मह्यं
शृणु शशिमुखि ! 'सिश्री, सौंफ, मको, बनप्सा' ॥ १६ ॥

९ बादरदलकल्कं जललुलितं पूतं प्रमथ्य फेनान्तम्।
लवणं किमपि विकीर्य क्वथितं पिब विहितपित्ततापान्तम् ॥ १७ ॥

पित्त-ज्वर में रेणु (कमल-केसर अथवा पित्तपापडे) का क्वाथ-प्रशस्त माना जाता है। इसी प्रयोग को प्रस्तुत श्लोक में विलक्षणरूप से व्यक्त किया गया है। किसी पित्तज्वरित की चिकित्सार्थ एक युवति वैद्य के पास जाती है। वैद्य-मस्त-प्रकृति के हैं-वह सीधी रीति से उपरोक्त प्रयोग न बताते हुये पूछते हैं। हे सुंदरी ! रुग्ण के लिये पद्मज (कमल-रेणु अथवा पित्तपापडे) का आह्वान करो'। स्त्री बराबर न समझने के कारण पूछती है। 'यह स्वर्ण-वर्ण-तेज वाला' का (ब्रह्मा) है क्या ? (पद्मज का अर्थ ब्रह्मा भी होता है।) वैद्य उसकी अज्ञानता समझ गये; अतः फिर पूछते हैं। अच्छा, कहो, दुष्ट का क्या संबोधन है ? सुंदरी कहती है 'रे'। वैद्य पुनः प्रश्न करते हैं। 'सूक्ष्म-वाच्य कौनसा शब्द है' ? उत्तर मिलता है 'अणु'। इस तरह 'क रे अणु' यह तीन शब्द कहलवा कर, वैद्यराज, युवती को अपने अभिप्रेत औषधीय द्रव्य-वाचक शब्द के और भी निकट लाते हुये पुनः पूछते हैं 'अच्छा, बताओ भगवान् 'हरि ने किस की रक्षा की' ? उत्तर मिलता है 'करेणु' (हाथी) की'। वैद्य महोदय प्रसन्न होते हुये कहते हैं, हे सुंदरी ! रोगी से कहो कि 'करेणु'के आदि अक्षर 'क' को छोडकर अवशिष्ट शब्दवाच्य 'रेणु' का क्वाथ पीएं; यह पित्तज्वर को मिटा देगा। (चरक ने पद्म-किंजल्क-केसर को रक्त-पित्त-हर औषधियों में प्रधान माना है। यथा—'उत्पलकुमुदपद्मकिंजल्कः संग्राहिकरक्तपित्तप्रशमनानाम्'—च. सू. अ. २५) ॥ १५ ॥

हे चपल-नेत्रवाली ! 'ज्वर-वेग से पीडित को चार औषधियों का क्वाथ सिद्ध करके पीना चाहिये'। हे रसिक ! 'उनके नाम तो कहिये' हे चंद्रमुखी ! उनके नाम ये हैं 'मिश्री, सौंफ, मको और बनप्सा' ॥ १६ ॥

बेर के पत्तों को महीन पीस उसमें पानी मिला कर छानलें। फिर उसे तब तक

१–अस्य योगस्य प्रसिद्धत्वेऽपि विच्छित्तिविशेषदर्शनार्थमभिधानम्। २–इदं संस्कृत-प्राकृतजातेरुदाहरणम्। यदुक्तं विदग्धमुखमण्डने–"भाषाभिश्चित्रितं यत् स्यात् संस्कृत-प्राकृतादिभिः। सन्तश्चित्रं तदिच्छन्ति संशुद्धं त्वेकभाषया॥" इति। एवमग्रेऽप्यनेकभाषा-निबद्धानां पद्यानां तथा चित्रगुच्छकोक्तचतुर्भाषानिबद्धपद्यस्यापि चित्रत्वमवधेयम्।

१० भार्गीकुलिञ्जनकिराटशटीमरीचदेवद्रुदीप्यचविकानलकुष्ठविश्वैः ।
सिंहीसुधावततिपौष्करशृङ्गिकाद्यैः कृत कफज्वरजयी सकण. कषायः ॥ १८ ॥
११ देवदारुबृहत्यग्निशुण्ठीपौष्करसाधित. ।
कषायो वारयेद्वायुमहायं श्लैष्मिकं ज्वरम् ॥ १९ ॥
१२ मौक्तिकसुवर्णगिलन लवङ्गमण्डूकपर्णिकातोयम् ।
मक्षीगीतकषायो वज्रोऽन्न मौक्तिकज्वरे शस्तम् ॥ २० ॥
१३ सचूष्य भुक्तमसकृन्नवमृदुलसिलिन्द्रमोदिनीमूलम् ।
मौक्तिकपरज्वररुजं जयति न किं झटिति गाढतरमूलम् ॥ २१ ॥
१४ वनप्सिकाशार्करसंगतात्मना किरातपीयूषलतासृतेन यः ।
द्विसंध्यमासप्तदिनं पिबेत् कला न तस्य जीर्णज्वरनिर्मिता रुज ॥ २२ ॥
१५ धान्यनागरनिर्यूह सनिम्बूकाम्बुशार्कर ।
शारद ज्वरमह्नाय प्रसह्य हरतेतराम् ॥ २३ ॥

मथते रहें जब तक फेन न निकलने लगें। जब फेन खूब उभर आयें तब उसमें थोडा सैंधव डाल कर उसे उतार कर पी जावें। इससे पित्त-जन्य ताप का अन्त हो जाता है ॥ १७ ॥

भारगी, कुलिंजन, चिरायता, कपूरकाचरी, मिर्च, देवदार, अजवायन, चव्य, चित्रक, कूठ, शुण्ठि, बडी कण्टकारी, गुडूची, पुष्करमूल और अति-विषा (अथवा काकडासींगी) इनके कषाय में थोडा पिप्पली चूर्ण मिलाकर पीने से कफ-ज्वर पर विजय प्राप्त होती है ॥ १८ ॥

देवदार, बृहती (बडी कण्टकारी) चित्रक, सूठ तथा पुष्कर-मूल से सिद्ध कषाय कफ-वात ज्वर को हटा देता है ॥ १९ ॥

मोती और स्वर्ण का निगलना, लौंग और मण्डूकपर्णी से सिद्ध जल का पान, दो या तीन मक्खियों का कषाय एव बाजरे (बाजरे के फूले) का सेवन, मोतीझरे में प्रशस्त है। बबूल वृक्ष की नूतन कोमल जड को बारबार चूस कर, उसके रस सहित, चबाकर खाजाने से मोतीझरा ज्वर, जड सहित उखड जाता है ॥ २०-२१ ॥

चिरायता और गुडूची के कषाय में वनप्सा का शार्कर मिलाकर उकालें। इसके अनुपानपूर्वक स्वूबकला की फाकी लें। इस तरह सुबह सायंदो बार, सात दिवस पर्यंत प्रयोग से जीर्णज्वर जन्य वेदना दूर होती है। (वनप्सिका शार्कर की निर्माण विधि अग्रिम श्लोक २४ में देख लें।) ॥ २२ ॥

धनिया और सूठ के कषाय में निंबू का शर्बत मिलाकर पीने से शरद् ऋतु-जन्य ज्वर शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥ २३ ॥

१-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धो वचाभेद । २-गुडूची । ३-ब्राह्मी । ४-मक्षिकाहिम । मक्षिकाया द्वयं त्रय वा । ५-'बाजरा' इति प्रसिद्ध शालिविशेष । ६-'मधूरा, मोती-झरा' इति च लोकप्रसिद्धे सन्निपातज्वरविशेषे । ७-बब्बूलविशेष । ८-शरद्भवम् ।

१६ पञ्चाशन्मरिचानि विश्वशकलं प्रस्थाम्बुनीरे पचेत्
क्काथे सांसिनिषेदुषि प्रविकिरेत् स्फोटान् सिताया बहून्[3]।
उत्पद्येत यदा पुनःक्कथनतस्तत्रार्धतन्तूद्गमः
सिद्धं सावृतिरुष्णमेव हि पिबेच्छीतज्वरोच्छित्तये[5] ॥ २४ ॥

१७ द्राक्षाकलागुडूच्यः प्रत्येकं तोलकोन्मिलिताः[6]।
गद्याणः कासिन्याः क्काथः सर्वज्वरान् हन्ति ॥ २५ ॥

१८ कुडवकुलत्थक्कथितं पाथः कोष्णं विशिष्य निष्पीतम्।
शीतज्वरं विजयते रेकं वा वान्तिमुद्भाव्य ॥ २६ ॥

१९ नीरे सितांसुहृदि तिष्ठति पादशेषे
निक्षिप्य कालजैरणं[11] त्रिपुटां[12] त्वचं[13] च।
वाष्पं पिधाय नखरोष्णं[14] निपीतमुच्चै-
रुद्भाव्य घर्मसलिलं ज्वरमाशु हन्ति ॥ २७ ॥

पचास मरिच और सूंठ के एक टुकडे को सोलह तोला जल में उकालें। अर्धावशिष्ट जल में बहुत से पतासे, कषाय मधुर बन जाये उतने, डालकर उसे पुनः उकालें। आधे तार जितनी चासनी हो जाये तब उसे उतारकर कुछ शीतल होने पर पीजायें। इसका पान करके एक चद्दर ओढकर सो जावें। इस तरह करने से शीतज्वर नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

द्राक्षा, खूबकला तथा गुडूची प्रत्येक एक एक तोला एवं कासिनी छह माशा लेकर कषाय सिद्ध करलें। इससे सभी प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। सोलह तोला भर कुलथ को पानी में उकाल लें। इस क्काथ को कुछ गरम गरम ही पी जाने से विरेक अथवा वमनपूर्वक शीतज्वर उतर जाता है ॥ २५-२६ ॥

एक प्रस्थ जल में चार तोला मिश्री मिलाकर उसके चतुर्थ भागावशिष्ट क्काथ में एक तोलाभर काला जीरा, पांच इलायची तथा तीन गुंजा भर दालचीनी के चूर्ण को डाल कर शीघ्र ही ढकदें जिससे बाष्प न उड जाये। कवोष्ण होने पर उसे पी जायें। प्रचुर स्वेदपूर्वक शीतज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ २७ ॥

१-अर्धावशिष्टे। २-'पतासा' इति प्रसिद्धान्। ३-यावद्भिर्माधुर्यं तावन्त इत्यर्थः। ४-काथं पीत्वा तूलवस्त्रावृतः शयीतेति तत्त्वम्। ५-सायमिति शेषः। ६-अष्टरक्तिकद्वादशमाषकैस्तोलकम्। ७-माषषट्कं, 'गद्याणो माषकैः षड्भिः' इति वचनात्। ८-सामान्यपरिभाषया कुडवकुलत्थानां क्काथः कार्यः। ९-प्रस्थप्रमाणे। १०-सिता पलप्रमाणा। ११-'कालाजीरी' इति प्रसिद्धमक्षप्रमाणम्। १२-एलापञ्चकम्। १३-वल्लप्रमाणम्। १४-कोष्णं लोके 'नोंनिवाया' इति प्रसिद्धम्।

२० पटपिहिते पात्रमुखे सम समाकीर्य कारवीमार्द्रीम् ।
तदुपरि विमुच्य गगनं शिखिनाऽर्कं पातयेज्ज्वरार्तिघ्नम् ॥ २८ ॥

२१ पुटस्विन्नामरिष्टस्य शरीणामेकविंशतिम् ।
पिष्ट्वा तत्तुल्यमरिचैर्जलं दत्त्वा द्रवीकृताम् ॥ २९ ॥
तप्तमृद्भित्तिनिक्षेपान्मनागशिशिरीकृताम् ।
निपीय मुच्यते जन्तुर्ज्वरातङ्कान्न संशय. ॥ ३० ॥

२२ शतकृत्वो जलैर्धौता कारवी सकणापटु ।
पिष्ट्वाऽम्बुगालिता कोष्णा पीता जीर्णज्वरापहा ॥ ३१ ॥

२३ ननु रामसेनकाण्ट प्रविरलधान्याकदलधन्य ।
किं कुरुते वैद्यपते ! ज्वर झटिति जर्जरीकुरुते ॥ ३२ ॥

२४ रात्रावेला जले क्षिप्ता पिष्टा पीता सितायुता ।
निहन्ति पित्तज दाह दुर्गा शुम्भासुर यथा ॥ ३३ ॥

समान भाग में आर्द्र (हरी) अजवायन एव अभ्रक लेवें । एक पात्र के मुख पर वस्त्र बाध कर उस पर यवानी रखदे । यवानी के ऊपर अभ्रक का पट बिछादे । फिर इस पर एक और पात्र रख कर सपुटित कर दे । ऊपर से अग्नि देकर, अध पातन यन्त्रविधि अनुसार इनमें से अर्क टपकालें । इस अर्क से ज्वर वेदना दूर होती है ॥२८॥

निंब की इक्कीस (२१) कोमल शाखाओं को पुट पाकविधि से स्विन्न करलें । इनमें इतनी ही काली मिर्चे मिलाकर खूब बारीक पीसकर एक पल पानी मिला तरल बनालें । इसमें अग्नितप्त-ईंट का टुकडा डाल कर कुछ गरम करलें । इसके पीने से मनुष्य नि सदेह ज्वरमुक्त हो जाता है ॥ २९–३० ॥

एकमाशा भर अजवायन एव एक पिप्पली इन दोनों को साझ के समय एकत्र जल में भिगोकर रख देवें । सुबह पिप्पली को अलग निकालकर, अजवायन को शतबार जल से मर्दन करके धो डालें । इस तरह करने से वह निस्तुप हो जायेगी । अब, इसमें एक माशा भर लवण मिलाकर फिर (अलग निकाली गयी) पिप्पली सहित खूब बारीक पीस नौ तोले भर पानी से वस्त्रपूत कर लेवें । इसे कुछ गरम करके पीने से जीर्णज्वर से मुक्ति मिलती है । हरे धनिये की कुछ पत्तियों से युक्त चिरायते के फाण्ट को धन्य है । हे वैद्यराज ! इसमें ऐसा क्या गुण है ? अरे यह ज्वर को शीघ्र ही जर्जरित कर देता है । रात्रि को जल में भिगोकर रखे हुये धनिये को प्रात पीस

१–यवानिकाम् । २–अभ्रस्पटलम् । ३–तदुपरिस्थितेनाग्निना । ४–निम्बस्य । ५–इषीकाणाम् । ६–पलमानम् । ७–विधिश्चाय माषोन्मानां यवानिकां पिप्पलीं चैकां साय जले स्थापयेत्, प्रातश्च पिप्पलीमपनीय, यवानिका जलै शतवारप्रक्षालनान्निस्तुषां विधाय, माषिक लवण दत्त्वा, पिप्पल्या सह प्रपिष्य, पादोननिपले जले पटेन पावयेत्, तत पैत्तले, पात्रे समुत्क्वाथ्य पलद्वयावशेष शृतशीत पिबेदिति । ८–किरातफाण्ट । ९–धान्यकम् ।

२५ आस्तीर्य कियन्ति घटे कुनिम्बपर्णानि धान्यकान्युपरि ।
संभृतमम्बु निशोषितमपहरति कराङ्घ्रितलतापम् ॥ ३४ ॥

२६ पांशुजक्षारसमितांतुषक्षोदेन घर्षयेत् ।
पाणिपादतलान्युग्रतापार्तावनुपूर्वशः ॥ ३५ ॥

२७ लवणसहचरेण क्षीरसारेण लिप्त्वा
करचरणतलानि प्रौढपित्तज्वरार्तौ ।
अविरलमनुलोमं मर्दयेत् कांस्यपात्रैः
प्रतिविलसति यावच्छ्यामता क्षामता वा ॥ ३६ ॥

२८ चिञ्चाम्बुपूर्णघोषजपात्रं गात्रे विवर्तितं परितः ।
ज्वरमवतारयतितरां भीष्मग्रीष्मोष्णवात्योत्थम् ॥ ३७ ॥

२९ आम्रशलाटुभटित्रं जलैर्द्रवीकृत्य जीरपटुमरिचैः ।
प्रतिसार्य मात्रया पुनरातपदग्धः सुखाय पिबेत् ॥ ३८ ॥

कर उसमें मिश्री मिला शर्बत सा बनालें। यह पेय पित्तज्वर के दाह का उसी तरह संहार कर देता है जिस तरह दुर्गा ने शुंभासुर का किया था ॥ ३१-३३ ॥

एक घट में चिरायते के थोडे पत्ते बिछाकर फिर ऊपर कुछ पत्ते हरे धनिये के फैलादें। रातभर इन्हें पानी में भीजने दें। प्रातः पानी को कपडे में से धीरे धीरे टपकाकर उपयोग में लें। इससे हस्त एवं पदतल-गत-दाह दूर होता है। पांशुज क्षार एवं चापड इन दोनों के चूर्ण को हस्त एवं पांव की तलियों पर अनुलोम-गति (ऊपर से नीचे की तरफ) से मर्दन करें। इससे तत्काल उग्रदाह भी शमन हो जाता है ॥ ३४-३५ ॥

तीव्र-पित्त-ज्वर से पीडित के हाथ और पांव की तलियों पर नमक-मिश्रित (दूध में से निकाले गये) नवनीत का लेप करदें, फिर अनुलोम-गति से, कांसी के पात्र-तल से, तब तक अविरत घर्षण करते हैं, जब तक तलियां काली न पड जायें-अथवा उनपर छाले न दिखायी दें। इससे शीघ्र ही दाह का शमन हो जाता है ॥ ३६ ॥

इमली के पानी से भरे हुये कांस्यपात्र को शरीर के ऊपर चारों तरफ फिराने से प्रचंड ग्रीष्म की लू से उत्पन्न ज्वर संपूर्ण दूर हो जाता है। कच्ची केरी (आम) को वाफकर पानी में मसलकर छानलें। उसमें यथामात्रा जीरा, नमक, मरिच आदि का चूर्ण मिलाकर पीयें। इससे लू-जन्य संताप में शान्ति मिलती है। ३७-३८ ॥

१-भूनिम्बपत्राणि। २-औद्भिदं 'खारी' इति ख्यातम्। ३-गोधूमतुषाणि 'चापड' इति प्रसिद्धानि। ४-अनुलोमरीत्या। ५-क्षीरोत्थनवनीतेन। ६-'आमली' इति प्रसिद्धा। तत्फलाम्बु ग्राह्यम्। तत्पूर्णं कांस्यपात्रम्। ७-'लू' इति प्रसिद्धा। ८-आम्रस्यामफलं 'कैरी' इति ख्यातम्। 'आमे फले शलाटुः स्यात्' इत्यमरः।

३० भूनिम्बनीरविकसत्कलिकारसेन वास-स्रुतेन परितो धवलीकृतान्ते ।
ह्रीवेरगुम्फिततिरस्करिणीसुगन्धे सौधे शयीत सुखमुष्णतरज्वरार्तः ३९
३१ दिवा दिवाकीर्तिकुटुम्बिनीभि: प्रमृष्टकेशा धृतपुष्पवेषा ।
क्लमं कथाभिः श्लथयन्तु कान्ता समीरलीलाकुलितालकान्ता ॥४०॥
३२ पित्ततापितशरीरवल्लरी सा सखी वद 'हकीम दवाई' ।
औषधं शृणु मृगाक्षि ! मनोज्ञं 'जा गुलाबगुलकन्द खवाडे' ॥ ४१ ॥
३३ ज्वरार्दिता या कटुकान् कषायाश्च चेत् पिबेत् किं वद वैद्य ! देयम् ।
निबोध हंसीमधुरप्रचारे ! 'यह्वा वनप्सासरबत् पिलावें' ॥ ४२ ॥
३४ वनप्सिकामष्टगुणे निशायां नीरे निधायाथ विपाच्य चुल्ल्याम् ।
अष्टावशेषं शृतमाकलय्य संगालयेद्गाढपटेन युक्त्या ॥ ४३ ॥
चतुर्गुणा तत्र पचेत् सितायां तन्तूद्गमो राजति यावदस्याम् ।
वनप्सिकाशार्करमेतदाहुः पित्तज्वरे देयमतीव सौम्यम् ॥ ४४ ॥

शार्करपरिभाषा-

अम्भस्यष्टगुणे निधाय च निशि द्रव्यं पलं कुट्टितं
प्रातर्मन्दकृशानुना परिपचेदष्टांशशेषं नयेत् ।

चिरायते के जल से बनाये गये सुधारस (कली) से लिपे पुते हुये तथा उशीर विनिर्मित पर्दों (खसकी टट्टियों) से महकते हुये महल में सुख-पूर्वक शयन करने से, प्रखर-ग्रीष्म-सताप जन्य ज्वर की पीडा का शमन हो जाता है। कुशल-दासियोंद्वारा सपादित केश-रचनाओं से सुशोभित, पुष्पों के आभूषणों से सुसज्ज तथा मद मद पवन से अस्तव्यस्त किये गये केश-कलापों से मनोरम प्रियतमायें, मधुर कथाओंद्वारा दिवस भर के ग्रीष्मजन्य सताप को दूर कर देती हैं ॥ ३९-४० ॥

"हे हकीम ! मेरी सखी की देह-लता पित्त-ताप से झुलस रही है, कुछ दवा बताइये'। "हे मृग-नयनी ! मैं तुम्हें इसकी मन प्रिय औषधि बताता हू। तुम उसे गुलाब के गुलकन्द का सेवन कराओ'। 'हे वैद्य ! विकट समस्या है। मेरी सखी पित्तज्वर से पीडित है किंतु कटु-कषाय लेने के लिये इन्कार करती है। आप ही कहें किस औषधि की व्यवस्था की जाये'' 'हे मधुर-आकृति (आचरण) वाली हंसी ! ध्यान से सुन, उसे बनप्सा का शर्बत पिला दे' ॥ ४१-४२ ॥

वनप्सा को आठ गुने पानी में भिगोकर रातभर रहने दे-प्रातः मन्द अग्निद्वारा इसे उकालें। अष्टावशेष जल रहने पर उतारकर घट्ट-वस्त्रसे छानलें। द्रव से चतुर्गुण शक्कर मिलाकर इसकी गाढी, तार बधने लगे ऐसी, चासनी बनालें। इसे 'वनप्सिका-

१-सुधाधोतेन। २-उशीरम्। ३-'चिक, पडदा' इति ख्याता। ४-दिवाकीर्तिनापितस्तत्स्त्रीभिः। ५-इदमपि तथैव चित्रजातिकाव्यम्। ६-इदमपि तथा। ७-वनप्साशार्करविधिरेवाभिधीयते। ८-त्रिगुणां वा। ९-सामान्यत शार्करपरिभाषेयम्।

तत् संगाल्य पटैश्चतुःपलसितां निक्षिप्य भूयः पचे-
द्यावत्तन्तुभवोऽवतार्य तदिदं प्राहुर्बुधाः शार्करम् ॥ ४५ ॥

३५ [1]श्रीखण्डस्थलपद्मकेतकजले पक्त्वा सितां संक्षिपे-
देलाशीतमरीचचन्द्रमधुकत्वक्क्षीरिका क्षीरकाः ।
पश्चाद्रूप्यदलान्यपि प्रविकिरेत् सिद्धो द्रवः स्यन्दलो
भैष्मीं कृष्ण इव प्रसह्य हरते पीडां परां पैत्तिकीम् ॥ ४६ ॥

३६ श्रीखण्डश्रपितजलेन साधितायां तन्तुल्यां चिरमुषितानि शर्करायाः ।
खण्डानि[2] प्रवितर मोचगर्भजानि द्रागेव प्रशमयितुं द्वितीयधातुम्[3] ॥४७॥

३७ दयिताधरपीयूषे पित्तज्वरनाशके जयति ।
यदितरभेषजकरणं सति चूतफलेऽम्लिकाभ्यासः ॥ ४८ ॥

शार्कर' कहते हैं। यह सौम्य, पित्तज्वर में निर्भय उपयोग में लाने योग्य औषधि है। जिस द्रव्य का शार्कर बनाना हो, उसको एक पलभर मात्रा में लेकर जौकुट कर लें। फिर इसे अष्टगुण पानी में रातभर भिगोकर रखदें। प्रातः मन्दाग्नि से उकाल अष्टमांश जल शेष रहनेपर उतारलें। इस द्रव को एक घट्ट कपडे में बांधकर एक एक बूंद टपकालें। अब इस जल में चतुर्गुण शक्कर मिलाकर ति-तारी, चार-तारी चासनी बनालें। विद्वानों ने इसे ही शार्कर कहा है ॥ ४३-४५ ॥

चार तोले भर श्वेत चंदन के चूर्ण को गुलाब और केवडे के सोलह तोला भर अर्क में सांझ के समय, भिगोकर रखदें। प्रातः सोलह तोले जल इस में और मिलाकर उकालें। अर्धावशेष जल रहने पर, उतार कपडे से छान उसमें बत्तीस तोला शक्कर मिलादें। अग्नियोग से चासनी को कुछ गाढी बना कर स्वांगशीतल होने पर इसमें इलायची, शीतल मिर्च, मुलेठी और गुडूची सत्व प्रत्येक एक एक तोला, वंशलोचन एवं तवाखीर प्रत्येक छह माषा, थोडा कपूर, सोने चांदी के बरक सब यथामात्रा यथाक्रम डालकर अच्छी तरह मिलालें। इस तरह निर्मित इस द्रव को 'स्यंदल' कहते हैं। यह पित्तजन्य तीव्र पीडा को उसी तरह बलात् हर लेता है, जिस तरह कृष्ण ने सत्यभामा को हर लिया था ॥ ४६ ॥

चंदन चूर्ण में उकाले गये पानी की चासनी बनालें। इसमें, कदली-स्तंभ के अन्तर-गत कंद-स्तंभ के, उसके चारों ओर आच्छन्न सूत्रों को अलग निकालकर, टुकडे डाल कर कुछ दिवसों तक रहने दें। यह पित्तजनित वेदना को दूर करते हैं। पित्तज्वर

१–तरुणीकेतकजलकुडवे श्वेतचन्दनक्षोदपलं सायमाप्लाव्य, प्रातर्जलकुडवं क्षिप्त्वा, पक्त्वा, अर्धावशेषं पटपूतं शरावशर्करायाः परिपाकघने द्रवे स्वाङ्गशीते निक्षिप्य, दर्व्या प्रचाल्यैलायष्टीशीतलमरिचामृतासत्वानि प्रत्येकं तोलकमितानि वंशलोचनतवक्षीरकयोः पृथग्गद्याणं मनाक् कर्पूरं संमेलयेद्रूप्यदलानि स्वर्णदलानि चेत्यस्य 'स्यन्दल' इति प्रसिद्धस्येतिकर्तव्यता। २–निःशेषमाकृष्टसूत्राणि कृत्वेति रहस्यम्। ३–द्वितीयधातुं पित्तं रक्तं च।

३८ स्त्रीपूत्तमा भवति का रदनच्छदस्य
संबोधन किमु च किं सुरसङ्गलभ्यम्।
पित्तप्रतापतरलस्तरलाक्षि! रोगी
कृत्वाऽथ किं वद समालभते प्रशान्तिम् ॥ ४९ ॥

३९ गत्यर्थे वद कोऽस्ति धातुरवले! संबोधयारिव्रजं
धीराणामपि मानस हरति का किं रङ्गभूमौ भवेत्।
पित्तव्याकुलितो नर किमु विलोक्यास्ते सुखं कथ्यता
पत्योक्तेति विचिन्त्य साऽवददिद 'वाराङ्गनानर्तनम्' ॥ ५० ॥

को दूर करने के लिये प्रियतमा के अधरामृत पान जैसी उत्तम औषधि के होते हुये भी यदि (दुर्भाग्यवश) दूसरी ही औषधि चाहते हैं, तो आम्रफल के साथ इमली के रस का ही सेवन करे ॥ ४७–४८ ॥

"हे चचल नेत्रवाली! क्या तुम कह सकती हो, उत्तम जाति की स्त्री कौन है?" (श्यामा), 'दतपक्ति के आवरक अंग का क्या नाम है' (अधर), "देवताओ की मैत्री से क्या मिलता है (सुधापान), 'पित्तसताप से पीडित की शाति के लिये क्या करना चाहिये? इन सभी प्रश्नो का उत्तर वैद्यराज की चतुरा प्रियतमाने, एक ही वाक्य में दे दिया "श्यामाअधरसुधापान"। (इस प्रकार की प्रहेलिका-पूर्ण रचना अन्तर्लापिका अथवा बहिर्लापिका कहलाती है। प्रस्तुत पद्य बहिर्लापिका का उत्तम उदाहरण है। अग्रिम श्लोक में अन्तर्लापिका है। श्यामा स्त्री का लक्षण शास्त्रो में इस तरह दिया गया है। 'शीते सुखोष्णसर्वांगी ग्रीष्मे च सुखशीलता। तप्तकाचनवर्णाभा सा स्त्री श्यामा निगद्यते')। 'हे प्रियतमे! बताओ, गति अर्थ में कौनसा धातु है' (वा), 'शत्रुसमूह' के लिये किस शब्द का सबोधन किया जाता है?' (अरे), धीर आदमी के मन को भी चलायमान कर देने वाली कौन है?" (अंगना), रङ्गभूमि में क्या होता है?' (नर्तन), क्या देख कर पित्त पीडित स्वास्थ्य लाभ करता है?" पति की उक्ति पर विचार करके पत्नी उत्तर देती है–'वाराङ्गनानर्तनम्'। 'हे चपल-नेत्रवाली! फलेहीं रूप में कौनसा धातु है?–(फल अस्), 'रक्षा के अर्थ में किस धातु का प्रयोग होता है?' (पा), 'जठरानल को उद्दीप्त करने में कौन परम निपुण

१–'श्यामाधरसुधापानम्' इति। तत्र श्यामा-अधर सुधापान, तथा समस्तमपि। सर्वेषामुत्तराणि क्रमेण बहिर्लापिकया समर्थनीयानि। इद च व्यस्तसमस्तजात्युदाहरणम्। तल्लक्षण विदग्धमुखमण्डने द्रष्टव्यम्। यथा–"पृष्ट पदविभागेन समुदायेन यद्भवेत्। विदुर्व्यस्तसमस्त तदुभयार्थप्रदर्शनात् ॥" २–वा अरे अङ्गना नर्तनम्-इति। व्यस्तोत्तराणि, वाराङ्गनानर्तनमिति समस्तोत्तरमित्यन्तर्लापिका। तथा अन्तोत्तरजातेरुदाहरणमपि तल्लक्षणमपि तत्रैवेति। "यत् पृष्ट प्रश्नवाक्ये स्यादादिमध्यान्तसस्थितम्। उत्तरं तत्रिधा प्रोक्तमादिमध्यान्तसज्ञितम् ॥"

४० फलेहौ रूपे किं भवति भुवि धातुः कथय क-
स्तथा कीदृग्धातुः समधिकतया रक्षणपरः ।
विलोलाक्षि ! स्यात् का जठरदहनोद्बोधचतुरा
भिषग्वर्य ! प्राणप्रिय ! शृणु फलास्पोत्तरमिदम् ॥ ५१ ॥

फलास्पा-

त्रिफला त्र्यूषणं किं च मिष्टत्वक्[2] चित्रकं तथा ।
जीरावनं[3] सालिमाख्यं[4] बाबूनाकाण्डपुष्पकम्[5] ॥ ५२ ॥
शाणषट्कं पृथग्ग्राह्यं मृद्वीका द्विपलोन्मिता ।
एलानं[6] नारिकेलं च पृथगब्धीषुमाषकम् ॥ ५३ ॥
यथायथं प्रकल्प्यैतत् क्षौद्रे पाकघने क्षिपेत् ।
पादोन[7]प्रस्थयुगले सिद्धो लेहो ज्वरादि[8]जित् ॥ ५४ ॥

४१ मुस्तारिष्टकिरातपर्पटसुधा[9]विश्वामरव्याघ्रिका-
कर्चूरैः क्वथितैः पृथक्पलमितैः प्रत्येकशो भावितम् ।
कट्वीकल्पितचूर्णमेककुडवं कृत्वा तुलस्या रसे
पिष्टं माषमितं कणापटुयुतं कोष्णं ज्वरान् कृन्तति ॥ ५५ ॥

है ?' (फलास्पा); पत्नी ने उत्तर दिया 'हे भिषग् श्रेष्ठ ! हे प्राणप्रिय ! आपके सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है-सुनिये 'फलास्पा' ॥ ४९-५१ ॥

फलास्पानिर्माणविधि-त्रिफला, त्रिकटु, दालचीनी, चित्रक, जीरावन, सालिम, गुलबाबूना-प्रत्येक १½ तोला तथा आठ तोला द्राक्षा, चार माशा चिलगोजा की मींगी और पांच माशा नारियल का गूदा । इन सब द्रव्यों को एकत्र करके बत्तीस तोले शहद में डाल दें । इसको पकाकर घट्ट बनालें । यह अवलेह ज्वर का शमन करता है, भूख और जठरानल को बढाता है तथा वमन, कास और अकालवलीपलित में हितकारी है ॥ ५२-५४ ॥

सोलह तोला कुटकीचूर्ण में मुस्ता, नीम, चिरायता, पर्पट, गुडूची, सूंठ, देवदारु, छोटी कटेरी और कचूर प्रत्येक चार तोला लेकर, इनके क्वाथ की पृथक् पृथक् एक एक भावना देवें । फिर इस भावित - कुटकी - चूर्ण में से एक माषाभर ग्रहण

१-फल-अस्-पा-इति व्यस्तोत्तराणि तथा समस्तमपि; फलास्पा चावलेहविशेषः । स एवाभिधीयतेऽस्याग्रे । २-दारुसिना 'दारचीनी' इति प्रसिद्धा । ३-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धम् । 'कुङ्कुममूलं' इति यवनवैद्याः । ४-मैसरः कन्दविशेषः पूर्वोक्तलक्षण । ५-'गुलबाबूना, बेखबाबूना' इति प्रसिद्धम् । ६-लोके 'चिलगोजा, लोंजा' इति च प्रसिद्धस्य मज्जा ग्राह्यः । ७-पादोनप्रस्थमितं मधु गृहीत्वा पाकघनं संपादनीयम् । ८-आदिशब्दात् क्षुन्मान्द्यच्छर्द्यान्यवमिकासपलितादीनामप्युक्तिः । मात्रा चास्य तोलकमर्धतोलकं वेति । ९-गुडूची ।

४२ किराततिक्तकप्रस्थं पुराणचपलापलम् ।
पचेत् पयसि[1] निक्षिप्य यावत् सर्वपयःक्षयः ॥ ५६ ॥
किरातचक्रसात् कृष्णाः पृथक्कृत्य विशोषयेत् ।
तद्रजो मधुना लिह्याज्जीर्णज्वरपराजितः ॥ ५७ ॥
४३ रामसेनभवं सत्त्वं सर्वज्वरनिवारणम् ।
४४ गुडूचीभवमप्येकं किमन्यैरौषधक्रमैः ॥ ५८ ॥
४५ पचं पलतुलितं क्षीरं चपलात्रितयं चतुःपलं नीरम् ।
निःशेषदग्धनीरं जीर्णज्वरहारि तत् कणाक्षीरम् ॥ ५९ ॥
४६ स्वर्णं मुक्ता च दरदं मरिचं भागवृद्धितः ।
खर्परस्याष्टौ कलांशं स्यान्नवनीतं पयोभवम् ॥ ६० ॥
निम्बूकैर्मर्दयेत्तावद्यावत् स्नेहो लयं व्रजेत् ।
मालती प्राग्[2]रसतोऽयं रसो धातुज्वरं जयेत् ॥ ६१ ॥
मात्रा गुञ्जाद्वयोन्माना कणामधुचमत्कृता ।
त्रैकुञ्चपञ्चके[3] पञ्चनवतिनिम्बुकान्यलम् ॥ ६२ ॥

करके उसे तुलसी-रस में पीस, पिप्पली और लवण चूर्ण मिला, कुछ निवाया करके सेवन करें। यह सभी-प्रकार के ज्वरों को नष्ट कर देता है ॥ ५५ ॥

चिरायता और कुटकीचूर्ण प्रत्येक एक एक प्रस्थ, पुराणी सावित पिप्पली चार तोला इनको चतुर्गुण जलमें उकाल लेवें। जब पानी पूरा जल जाये तब किरातादि चूर्ण किट्ट में से पिप्पलीयों को निकाल लेवें। इन्हें छायाशुष्क करके चूर्ण बनाकर मधु के साथ लेने से जीर्ण-ज्वर पराजित हो जाता है। चिरायते का सत्व सर्व प्रकार के ज्वर को दूर कर देता है। गुडूची का सत्त्व भी यही कार्य करता है। इस सत्वके रहते अन्य औषधियों से प्रयोजन ही क्या? एक पल दूध में चार पल पानी मिलाकर उसमें तीन नग पिप्पली के उकालें। जब दूधमें से जलांश निःशेष हो जाये तब इसे उतार लें। यह 'कणाक्षीर' कहलाता है तथा जीर्ण ज्वर को नष्ट करता है ॥ ५६–५९ ॥

स्वर्णभस्म १ तोला, मुक्तापिष्टी २ तोला, हिंगुल तीन तोला, मरिच चार तोला और खर्पर आठ तोला इन सब को एकत्र करके, इनमें गाय के दूध में से निकाला गया नवनीत १३½ माशा (करीब दो तोला) मिला देवें। इन सब को निंबू के रस में तब तक खरल करते रहें जब तक स्नेहांश विलीन न हो जाये। इस तरह वसंत-मालती नामक रस सिद्ध होता है, इसकी मात्रा २ रत्ति है। मधु और पिप्पली के साथ सेवन करने से चमत्कार पूर्ण असर दर्शाता है। यह धातु-गत ज्वर को नष्ट कर देता है। बीस तोले भर द्रव्य के लिये करीब ९५ निंबू का रस पर्याप्त होता है। क्योंकि इतने रस से खरल करने पर प्रायः नवनीत की चिकनाहट निकल जाती है ॥ ६०–६२ ॥

१–द्विगुणे चतुर्गुणे वा जले। २–वसन्तमालतीनाम्ना प्रसिद्धस्य रसस्य विधिः। ३–पञ्चपञ्चके।

४७ निर्वाप्य जसदं तप्तं निम्बुकाम्बुनि सप्तधा ।
निःक्षिप्य तत्र चपलं[1] पचाध्यग्नि कटाहगम् ॥ ६३ ॥
क्षेपं क्षेपं सिताक्षोदं द्रेक्काकाष्ठेन[2] घर्षय ।
सुजातं देहि तद्भस्म[3] शार्करेण ज्वरापहम् ॥ ६४ ॥
४८ गोमयशतद्वयेन प्राक् तदनु तदर्धगोमयैर्युक्त्या[4] ।
कन्यारसेन सिद्धं माक्षिकमुक्तं ज्वरादिजयि[5] ॥ ६५ ॥
४९ अभ्रसंपुटगं[6] तालं किंचिदङ्गारसाधितम् ।
वातश्लेष्मज्वरे शस्तं माणिक्यरसशब्दितम् ॥ ६६ ॥
५० तालं कुट्टितमभ्रपत्रपुटगं संस्थाप्य मृत्खर्परे
तद्रन्ध्राणि[7] नवीनकोलदलजैः कल्कैः कृती पूरयेत् ।

जसद को तपा तपा कर सात बार निंबू के रसमें बुझावें । फिर एक लोह कटाह में इस जसद को तथा इतने ही वजन भर पारद को रखदें । तीव्र अग्नि से इनको पकावें । पारद द्रवीभूत हो जाये, तब बीच बीच में मिश्री के चूर्ण को कटाह में डालते हुये महानिंब की एक मोटी स्थूल शाखा से इन सभी द्रव्यों को हिलाते रहें । मिश्री का चूर्ण जैसे जैसे जलता जाये, तैसे तैसे पुनः पुनः यही चूर्ण डालते रहें एवं उपरोक्त शाखा से निरंतर हिलाते रहें । भस्म बन जाने पर इसे उतार लें । इसकी मात्रा एक रत्ति है । इस ज्वरघ्न उत्तम भस्म का सेवन 'शार्कर' के साथ करें । (शार्कर निर्माण विधि श्लोक ४५ में देख लें) ॥ ६३–६४ ॥

शुद्ध माक्षिक को ग्वारपाठेके रस में मर्दन कर, प्रथम, दोसो गोमय की अग्नि दें । स्वांगशीतल होने पर, पुनः कन्यारस में मर्दन करके दूसरी बार, एक सो गोमय की अग्नि दें । इस तरह करीब दस पुट देने से 'माक्षिक' सिद्ध होता है । इसकी मात्रा एक रत्ति है । सामान्य ज्वर, मौक्तिक ज्वर तथा श्वास, कास, क्षय आदि में इसका प्रयोग करें । इसके ऊपर, इक्कीस पतासे तथा सात या नौ मरिच के चूर्ण को, सोलह तोले जल में उकाल अर्धावशेष क्वाथ को वस्त्र पूत करके, अनुपान रूप से पीयें । पुट देते समय पुट-गर्त को एक बडे सच्छिद्र मिट्टी के सकोरे अथवा ठीकरे से ढक दें । इस तरह करने से अग्नि शांत न होती हुयी एकरूप से लगेगी । पत्राख्य (तबकी) हरिताल के सूक्ष्म पटलों को, अभ्रक के दो पत्तों के बीच में संपुटित करके अग्नितप्त बना लें । यह 'माणिक्यरस' कहलाता है, तथा वात-श्लेष्म-ज्वर में प्रशस्त है ॥ ६५–६६ ॥

हरिताल के सूक्ष्म-चूर्ण को अभ्रक पत्रों में संपुटित करदें । अभ्रक पुट के

१–पारदं जसदतुल्यम् । २–महानिम्बकाष्ठेन । ३–रक्तिप्रमाणमिति शेषः । ४–पुटगर्तोपरि सच्छिद्रमृत्खर्परपिधानम् । मात्रा रक्तिमिता । उपरिष्टादेकविंशतिसितावुद्बुदानि सप्त नव वा मरिचानि कुडवजले समुत्काथ्यार्धावशेषं पटपूतमनुपिबेत्, इति युक्तिशब्दार्थः । ५–सामान्यज्वरं मौक्तिकज्वरं च । आदिशब्दात् श्वासकासौ । ६–अभ्रपटलद्वयमध्यस्थितं सूक्ष्मपटलीकृतं पीततालम् । ७–अभ्रपुटरन्ध्राणि ।

आकण्ठं महिषीमलं तदुपरि प्रोत्कीर्य यामार्धतः
कुर्याद्वह्निमयं हिनस्ति कुमुद सर्वज्वरान् दुस्तरान् ॥ ६७ ॥

५१ ताल सुधाप्रस्तरनीरमग्नं कूष्माण्डमासैः पुटित विधाय ।
दहेद्दशप्रस्थवनोपलेषु गुञ्जोन्मितं स्यात् सकलज्वरेषु ॥ ६८ ॥

५२ क्षिप्त्वा रसे प्रस्थसुधोपलानां शाणार्धशाणौ हरितालतुत्थौ ।
पटेन पूत बहुशो विधाय तत्किट्टगल्यो ज्वरमुद्धरन्ति ॥ ६९ ॥

५३ व्युषितं पयसि कुमार्यां पुटितमिभपुटे वलक्षहरितालम् ।
तत्तदनुपानवशतो ज्वरादिशमनाय किमु नालम् ॥ ७० ॥

५४ पाणितलकं शिलाया. स्वर्जिक्षारस्य तानि च त्रीणि ।
चूर्णजठरपिहितसिद्धं सिद्धमिषुप्रस्थगोमयैर्ज्वरजित् ॥ ७१ ॥

छिद्र को थौर की नूतन पत्तियों के कल्क से बंद कर देना चाहिये अर्थात् थौर की ताजी कूपलों को सूक्ष्म पीस कर उसमें अभ्रकपटलों को सपुटित कर दें। अब, इस सपुट को एक मिट्टी के बड़े शराव में रक्खें। शराव को चारों ओर से भैंस की गोबरी से ढकदें। फिर अर्ध प्रहर (१½ घंटे) तक अग्नि देवें। इसे 'कुमुद' रस कहते हैं। यह सर्व प्रकार के हठीले ज्वर को दूर करता है ॥ ६७ ॥

(करीब सोलह तोला भर) शुद्ध हरिताल को चूने के पानी में भिगोदें। फिर इसे निकाल एक पुष्ट कूष्माण्ड में सपुटित करदें। दशप्रस्थ जितनी वन्यगोबरी की अग्नि में इसे फूकदें। इसकी मात्रा एक गुंजा भर है। यह संपूर्ण प्रकार के ज्वरों में प्रशस्त माना गया है। (कूष्माण्ड को डंठल की जगह, चाकू से काट छेदकर भीतर से बीज आदि जितने हो सकें उतने निकाल लेवें फिर हरिताल को उस पेठे के भीतर भर देवें। पश्चात् काटा हुआ डंठलभाग यथावत् ऊपर लगाकर कपडमिट्टी करें) ॥ ६८ ॥

हरिताल तीन माशा, अग्निपर फुलाया हुआ तुत्थ १½ माशा इन दोनों को चूने के एक प्रस्थभर पानी में डाल देवें। अब, इनको कपड़े में से कई बार छानलेवें। अंत में बचलप्न इनके किट्ट की एक एक रत्ति भर छोटी छोटी गोलियां बनालें। यह ज्वर को उखाड़ देती है। (उपरोक्त द्रव्यमिश्रित चूने के पानी को इक्कीस बार छानना चाहिये) ॥ ६९ ॥

गोदंती हरताल को रातभर ग्वारपाठे के रस में भिगोकर रहने दें। प्रात सपुटित करके, गजपुट अग्नि में फूक देवें। यह भस्म भिन्न भिन्न अनुपान पूर्वक ज्वरादि भिन्न भिन्न रोगों में पर्याप्त प्रभाव दर्शाती है ॥ ७० ॥

एक तोला भर मन शिला तथा इससे त्रिगुणित स्वर्जिकाक्षार इन दोनों को यथाक्रम सुधाचूर्ण में रखकर पांच प्रस्थ कंडों की आंच में फूक देवें। यह चातुर्थिक ज्वर को

१–ताल चात्र षुडवप्रमाणम्। २–'दहेदिषुप्रस्थवनोपलेषु' इति पाठान्तरम्। ३–द्रुत्थमत्र भ्रष्ट ग्राह्यम्। ४–गोदन्ताख्यम्। ५–पाणितल शाणचतुष्टयम्। ६–विधि-

५५ शिलायाः सामि¹चूर्णायाः कल्पि²ता चक्रिका तनुः ।
वनोपलाग्निना पक्त्वा³ वान्त्या चातुर्थकं जयेत् ॥ ७२ ॥
५६ मनाह्वनःशिलातैलं सिताबुद्बुदसंभृतम् ।
चातुर्थकं ज्वरं हन्ति वान्तिमुद्भाव्य भूयसीम् ॥ ७३ ॥

नष्ट करता है। एक शराव में पहिले सुधाचूर्ण बिछादें। उस पर, उपरोक्त स्वर्जिका क्षार को अर्धभाग जितनी बिछादें। इस स्वर्जिकाक्षार में मनःशिला अच्छी तरह दबा कर रखदें। इसके ऊपर पुनः अवशिष्ट आधी स्वर्जिकाक्षार तथा इसके ऊपर पुनः सुधाचूर्ण फैलादें। इस तरह व्यवस्थितरूप से जमा कर शराव संपुट करके पांच प्रस्थ कंडों की अग्नि देवें। इस भस्म के प्रयोग काल में पथ्यरूप में छालखांड से मधुर बना कर, गोघृत से युक्त गेहूं के चूरमे का ही केवल सेवन करना चाहिये। एक दिवस प्रयोग-काल में तीन दिवस पर्यंत, तथा तीन दिन तक सेवन काल में, नो दिवस पर्यंत पथ्य पालन करना चाहिये। एक पक्ष तक तैल, अम्ल आदि द्रव्यों का तथा छह मास तक कटाह-सिद्ध तथा तले हुये अन्न आदि का त्याग करना चाहिये ॥ ७१ ॥

मनःशिला तथा इससे अर्धभाग जितना सुधाचूर्ण इन दोनों को पानी में महीन पीस कर चक्रिका बनालें। दो छानों को लेकर उनकी सतह को घिस कर समतल बनालें। इन दोनों छानों के मध्य में उपरोक्त चक्रिका को गीली ही रखकर संपुटित करदें। इसे एक कुडव जितनी वन्य गोवरी की अग्नि में फूंक दें। यह भस्म कुछ वमन लाकर, चातुर्थिक ज्वर को नष्ट कर देती है। इसकी मात्रा एक वल्लभर है। चातुर्थिक ज्वर की वेला के पूर्व, मध्य एवं उत्तरकाल में, इस तरह तीन बार, नागरवेल के पान में लपेट कर इसे देनी चाहिये। मूंग का यूष, गेहूं के फूले आदि पथ्यान्न आठ दिवस पर्यंत लेना चाहिये। एक मास पर्यंत, तैल, खटाई, मिरच आदि तीक्ष्ण द्रव्य वर्ज्य हैं ॥ ७२ ॥

मनःशिला में से निकाले गये तैल की एक छोटीसी बूंद को पतासे के भीतर डाल कर लेवें। इसके लेने पर बहुत से वमन होंगे। किंतु चातुर्थिक ज्वर नष्ट हो

श्चायमवधार्यः—शरावेऽधश्चूर्णं तदुपरि अर्धस्वर्जिकाचूर्णं चास्तीर्य, तद्गर्भे मनःशिलां निधाय, तदुपरि पुनः स्वर्जिकामनु च चूर्णं पूर्ववदास्तीर्य, शरावसंपुटं कृत्वा, संधिरोधं विधाय, पञ्च-प्रस्थैर्गोमयैः पुटेदिति। पथ्यं चात्र केवलं छल्लखण्डमधुरं गोधूमचूर्णम्। एतत्क्रिया च गोधूम-चूर्णं कुडवं चेत् सार्धपलं गोघृतं छल्लखण्डं समानमर्धं वा। एकदिनमस्य सेवने त्रिदिनं पथ्य-पालनं, त्रिदिनं रससेवने नवदिनानीति; पक्षावधि तैलाम्लादिकं, षण्मासावधि च कटाह-सिद्धान्नं त्यजेदिति। ७—चातुर्थिकज्वरजित्।

१—मनःशिलापेक्षयाऽर्धं चूर्णं कलिकाखण्डोत्थं शुद्धं यस्यामिति। २—जलेन संनीय घटितार्द्रैव छगणकद्वयं घृष्ट्वा तत्संपुटे स्थाप्या। ३—कुडववनोपलैः सपादकुडववनोपलैर्वा। पक्षादिल्यध्याहार्यम्। मात्रा चास्य वल्लमिना नागवल्लीदलेन वेलापूर्वदिने वेलादिने वेलोत्तर-दिने चेति त्र्यहं देया। पथ्यं मुद्गयूषो रूक्षगोधूमफुल्लिका चेत्यष्टाहं देयम्; अष्टाहादूर्ध्वं किंचिद्घृतं देयम्। तैलाम्लपित्तकारिणीप्रमृति वस्तुजातमेकमासं त्याज्यमिति।

प्रकार –

तैलोपयोगि यन्त्रं तु शस्तमत्र रसातलम् ।
सहायो नारिकेलस्य मज्जा पन्था गुरूदित. ॥ ७४ ॥

५७ राले चतु.पलमिते द्रविते़ऽग्नियोगात्
समेल्य शुक्तिविषमर्धपलप्रमाणम् ।
खल्वे क्षिपेत् सपदि पर्पटिकारसोऽय
हन्यात् कफानिलमतिभ्रमवान्तिवेगान् ॥ ७५ ॥

५८ इष्टीमध्यविशोभिकूपपिहितं सप्ताहमार्के स्थित
क्षीरे शम्वलमप्ययाममनिश चुल्ल्याग्निना पाचयेत् ।
सिद्धोऽयं हिममूर्छनो रस इति प्रस्तूयते पण्डिते-
र्दत्तस्तन्दुलतोलित' समयतो वेलाज्वरज्वालन ॥ ७६ ॥

५९ स्फटिका मल्लजठरा विपाच्य गुरुमार्गत ।
ज्वरी पर्णेन भुञ्जानो लभते सुखमुच्चकै ॥ ७७ ॥

जायेगा। मन शिला का तैल, किसी अनुभवी वैद्य गुरु की देखरेख के नीचे, पातालयन्त्र द्वारा निकाल लेना चाहिये। तैल निकालने से पूर्व मन शिला में परिपक्व नारियल की भीतरी मज्जा का चूर्ण अवश्य मिला देवें ॥ ७३–७४ ॥

सोलह तोले भर राल को अग्नि से पिघला उसमें दो तोला शतमल्ल मिलाकर शीघ्र ही खरल में डाल देवें। इस तरह सिद्ध किया गया यह 'पर्पटिकारस' कफ, वात, मतिभ्रम और वमन के वेग को दूर कर देता है ॥ ७५ ॥

एक पुराणी ईंट के बीच में खड्डा करके उसमें आकडे का दूध भर, सखिया डाल कर ताम्रपात्र से ढकदें। इस तरह सात दिन तक रहने दें। कदाच् अर्क-दूध ईंट से शोषित हो जाये तो उसमें पुन दूध भरदें। सात दिवस पीछे उस ईंट को आठ प्रहर निरंतर चुल्हे की अग्नि से पकावें। इस तरह पडितो से प्रशसित 'हिममूर्छन रस' सिद्ध होता है। समयानुसार प्रयुक्त इसकी एक चावल भर मात्रा वेलाज्वर को जला देती है ॥ ७६ ॥

सोलह तोलाभर लाल फिटकरी तथा अठारह माशाभर शतमल्ल लेवें। प्रथम स्फटी के आधे चूर्ण को एक शराव में दबा दबा कर भरदें। फिर इसके मध्य में–

१–शतमल्लसज्ञम्। २–इष्टिका च पुराणा ग्राह्या, पिधान च ताम्रपात्र्या। ३–शोणस्फटिका कुडवमिताम्। ४–अशुद्ध एव शतमल्लोऽष्टादशमाषप्रमाणो यस्यामिति। ५–स्फटिकां सर्वां चूर्णयित्वा तदर्धचूर्णं मृत्करके समावाप्याङ्गुल्या गाढ निष्पीड्य मध्ये मल्लसमावेशयोग्य गर्तं कृत्वा तत्र मल्लचूर्णं धृत्वोपरि शेष स्फटिकाचूर्णं समावाप्य तथैव दृढतरं निष्पीड्य मुखे चैका मुद्रां दत्त्वाऽध्यर्धप्रस्थवनोपलै पुटेत्। मात्रा चैका रक्तिरिति गुरुमार्ग ।

६० मृत्स्नापात्रगतं विमृद्य पलिकं शङ्खामलं शम्बल-
क्षोदं सप्तपलारुणस्फटिकया संक्षुण्णया गर्भितम् ।
अष्टप्रस्थवनोपलैः परिपुटे दद्यात् प्रपक्वं पुन-
स्तं गुञ्जाप्रमितं ज्वरे रसवरं सद्द्राक्षया भक्षयेत् ॥ ७८ ॥
मूषायां मल्लमावाप्य कलसौरेण[2] गर्भितम् ।
भस्त्रया विधमेद्वैद्यो यावत् स्याद्द्रवसंक्षयः ॥ ७९ ॥
प्रकारः–
तन्दुलोत्तुलितं[3] युक्त्या देयं चातुर्थके ज्वरे ।
किं तु सुस्निग्धमधुरं पथ्यं किंचित् प्रकल्पयेत् ॥ ८० ॥
६१ गर्भस्थमल्लशकलं भस्मप्रस्थं पुटेद्द्विपेन्द्रपुटे[4] ।
मसृणीकृत्य कफानिलशीतज्वररुक्षु मात्रया देयम् ॥ ८१ ॥
६२ मल्लमक्षं जलप्रस्थे पक्त्वाऽम्भःक्षपणावधि ।
दीयतां तन्दुलोन्मानं गैरिकेण ज्वरार्तिषु ॥ ८२ ॥

शतमल्ल समा जाय इतना गहरा-एक गर्त बना उसमें शतमल्ल ठूंस ठूंस कर भर देवें। इसके ऊपर अवशिष्ट स्फटीचूर्ण को पुनः दबाकर भरदें। शराव के मुख को ताम्रपात्र से संपुटित करके डेढ प्रस्थ गोवरी में फूंक दें। नागरवेल पान के साथ, एक रत्तिभर मात्रा में लेने से ज्वरित संपूर्ण स्वस्थ हो जाता है ॥ ७७ ॥

शंख के समान श्वेतमल्ल चार तोला भर लेवें। इसे अट्ठावीस तोला रक्तस्फटी के चूर्ण में रख कर पूर्वोक्तविधि से संपुटित करके आठ प्रस्थ वनोपल की अग्नि देवें। एक गुंजाभर मात्रा में द्राक्षा के साथ सेवन करने से यह रसश्रेष्ठ ज्वर को दूर कर देता है। एक भाग मल्ल तथा दो भाग कलमी सोरा लें। एक मूषा में, पहिले आधे भाग जितना सोरा डाल कर उस पर मल्ल रख कर उसके ऊपर पुनः अवशिष्ट सोरा भर दें। अब धोंकणी से अग्नि दें। जब तक सोरे का द्रव संपूर्ण न जलजाये तब तक अग्नि देते रहें। इस तरह मल्ल सिद्ध हो जायेगा। इसके प्रयोग की विधि—दूध की मलाई के साथ एक चांवल भर मात्रा में लेने से चातुर्थिक ज्वर दूर हो जाता है। इसके प्रयोग काल में पथ्यरूप से मलाई, शक्कर, कलाकन्द, खूब उकाला हुआ मधुर दूध आदि स्निग्ध एवं मधुर द्रव्यों का भोजन करें ॥ ७८–८० ॥

चुल्हे की एक प्रस्थ राख में शतमल्ल के टुकडे को रखकर गजपुट में फूंक देवें। स्वांग शीतल होने पर इसे निकाल खरल करके खूब मुलायम बनालें। यह भस्म कफ, वात एवं शीतज्वर में मात्रापूर्वक देने से लाभ करती है। एक तोला भर मल्ल को एक प्रस्थ जल में तब तक उकालें, जब तक पानी निःशेष न हो जाये। ज्वरपीडित को गैरिकचूर्ण के साथ एक चांवल भर मात्रा में देवें ॥ ८१–८२ ॥

१–अस्मिन् पुनर्मानभेद एव केवलं प्रकारश्च पूर्वोक्त एव । २–मल्लापेक्षया द्विगुणेनेति तत्त्वम् । ३–कलाकन्दशर्करापावकदुग्धसंतानिकाद्यन्यतमोपहितमिति । ४–गजपुटे ।

६३ हरीतकीशम्बलवेल्लजानां कुर्याद्वटीं वारिणि सर्षपाभाम्।
वेगं रुणद्धि प्रथमं प्रदत्ता ज्वरस्य वेलेव महाम्बुराशेः ॥ ८३ ॥
६४ वृन्ताकसिद्धमल्लं चपला दरदं च तन्दुलीयाद्भिः।
घृष्टा घटिता वट्यः शिशिरज्वरदर्पदारिण्यः ॥ ८४ ॥
६५ द्विगुणं दरदं मल्लाद्भृङ्गाद्भिश्चक्रिका तयोः।
घृताक्ते तप्ततवके शोषयेता विवर्तयन् ॥ ८५ ॥
एवं पुनः पुनः कृत्वा सर्षपाभां वटीं कुरु।
निगीर्णाः समयात् पूर्वं शीतज्वरगतिच्छिदः ॥ ८६ ॥
६६ त्र्यहं विभाव्य दरदं स्नुहीक्षीरैः पलोन्मितम्।
सुधाश्मचूर्णमावाप्य भाव्य तैरेव पूर्ववत् ॥ ८७ ॥
शरावसंपुटे रुद्ध्वा चक्रिका द्विरदे पचेत्।
रसं गुञ्जाङ्घ्रिमानेन पर्णखण्डेन दापयेत् ॥ ८८ ॥

हरीतकी, शतमल्ल तथा काली मरिच इनके पृथक् पृथक् समभाग चूर्ण को लेकर पानी में खूब बारीक पीस-घोटकर सर्षप-तुल्य गोलिया बनालें। वेला के पूर्व देने से यह भस्म महासमुद्र की वेला के समान वेलाज्वर के वेग को रोक देती है ॥ ८३ ॥

बैंगन में सिद्ध किया गया मल्ल, पिप्पली तथा हिंगुल इन तीनो को चौलाई के स्वरस में खरल करके गुटिकायें बनाले। यह शीतज्वर के दर्प का दलन कर देती है। मल्ल, इससे द्विगुणित हिंगुल इन दोनो को भृंग-राज के रस में खरल करके टिकिया बनालें। इन गोलियो को घृताक्त तवे पर तब तक सेकते रहें, जब तक टिकियो की आर्द्रता का शोषण न हो जाये। उन्हें उतार कर पुन भृंग-राज के रस में खरल करके पूर्ववत् टिकिया बना कर फिर तवे पर सेकें। इस तरह तीन बार करें। अन्त में सर्षपतुल्य गोलिया बनाकर वेला से दो घटी पूर्व ही इसे निगल जाने से शीतज्वर का पुनरागमन नहीं होता। यदि प्यास लगे तो केवल दूध ही पीना चाहिये। मात्रा एक गुटिका ॥ ८४–८६ ॥

चार तोलाभर हिंगुल को, तीन दिवस पर्यंत, स्नुहीक्षीर की भावना दे। अन्त मे, चार तोलाभर चूने के सूक्ष्म चूर्ण को इसमें मिलाकर पुन तीन दिवस पर्यंत स्नुही-क्षीर की भावनायें दे। तदनन्तर, इनकी टिकिया बना कर शराव मे सपुटित करके गजपुट की आच देवें। एक गुजा के चतुर्थ भाग जितनी मात्रा मे नागरवेल पान के साथ इसका सेवन करना चाहिये। यह श्रेष्ठरस राजाओ के उपभोग के लिये है। पथ्य

१–वृन्ताकानि पञ्चविंशतिसंख्यानि ग्राह्याणि। २–त्रिदिनमिति शेषः। ३–भृङ्गराजरसैः। ४–त्रीन् वारानित्यर्थः। निवार तद्रसेन घर्षणं तप्ततवके युक्त्या शोषणमित्यर्थः। ५–सति तर्षे दुग्धपानमित्युपदेशः। ६–दरदसम, पलमिति यावत्। ७–त्र्यह स्नुक्क्षीरैरेवेत्यर्थः। ८–गजपुटे। ९–ज्वरवेगाद् द्विघटिकापूर्वम्।

शीतज्वरगतिं हन्ति पथ्यमौषधस्यमोदनम् ।
राजार्होऽयं रसश्रेष्ठः क्वापि किंचिद्विरेचयेत् ॥ ८९ ॥

६७ शतमल्लं मृदाऽऽमेल्य न्युप्ता तत्र तु मेथिका ।
शाकार्थं शस्यतेऽवश्यं ज्वरितानां यथासुखम् ॥ ९० ॥

६८ अध्यर्कदुग्धमुषिता शोणस्फटिका स्फुटाशुशुक्षणितः ।
कफकसनश्वसनसखं सखे ! प्रसह्य ज्वरं जयति ॥ ९१ ॥

६९-७० अल्पाग्नियोगसंफुल्लं गुञ्जैकं नवसागरम् ।
भुक्तं पर्णेन शिशिरज्वरघ्नं टङ्कणं यथा ॥ ९२ ॥

७१ पलाण्डुमुत्कीर्य तदन्तराले यथायथं फेनमहेर्निधाय ।
आलिप्य पक्वं पुटपाकरीत्या संभुज्य वेलाज्वरवान् सुखी स्यात् ॥९३॥

७२ गुग्गुलुना फणिफेनं विनीय वा किङ्किरातकोकिलकैः ।
कवलय गुञ्जामात्रं वेलाज्वरवारणाय सखे ! ॥ ९४ ॥

दूध और भात है। ज्वर की वेला के दो घटी पूर्व इसे लेना चाहिये। यह शीतज्वर के वेग को रोक देता है। कभी कभी इससे यत्किंचित् विरेचन भी हो जाता है ॥ ८७–८९ ॥

शतमल्ल को थोडे से प्रमाण में, मिट्टी में मिलाकर उसमें मेथी के बीज बोदेवें। उसमें से उगी हुई मेथी का शाक, शीतज्वर में, निर्भय अवश्य सेवन करना चाहिये। प्रशस्त है। (मिट्टी में अधिक विष-क्षेप से अंकुर नष्ट हो जाने की संभावना रहती है। अतः अल्प-मात्रा में ही प्रक्षेप करना चाहिये)। आकडे के दूध की भावना देकर रक्तस्फटी को आग पर फुला लेवें। यह कफप्रधान कास और श्वास में हितकारी एवं बलात् ज्वर को दूर कर देने वाली है। एक गुंजाभर नवसादर को मंद अग्नि देकर फुला लेवें। नागरवेल के पान में लेने से शीतज्वर नष्ट हो जाता है। इसी तरह सिद्ध किया गया टंकणक्षार भी यही गुण दिखाता है ॥ ९०–९२ ॥

एक प्याज को खुरचकर उसमें गर्त बना उस गर्त में जितनी अफीम समा सके उतनी भर कर उसपर खुरचकर निकाला गया प्याज का टुकडा पुनः ढककर कपडमिट्टी करलें। अब, इसे अग्नि में रख कर भूनलें। तदनन्तर, इसमें से अफीम निकालकर शीतल होने पर प्रयोग करें। वेलाज्वर में यह प्रशस्त है ॥ ९३ ॥

अफीम को गुग्गुलु में, अथवा बब्बूलवृक्ष की शाखाओं को जला कर उनके कोयलों की राखमें, अच्छी तरह मिलाकर, हे मित्र ! एक गुंजाभर मात्रा में, शीतज्वर

१–दुग्धम्। २–अधिकविषक्षेपेण मेथिकाङ्कुरोत्पत्तिर्न स्यादतः किंचिदेव क्षेप्यमिति रहस्यम्। ३–'नवसादर' इति प्रसिद्धः क्षारविशेषोऽयम्। ४–पलाण्डुं शीतं कृत्वा ज्वरात् पूर्वम्।

७३ फणिफेनधर्मपत्तनवाम्बूलेङ्गालकानि सपिष्य ।
एकत्रिषड्भिभाग शीतज्वरमोपि मात्रया दत्तम् ॥ ९५ ॥

७४ अध्यर्धत्रीणि पत्राणि जानकीफलशालिन ।
पट्टुना कलितान्याशु निघ्नन्ति शिशिरज्वरम् ॥ ९६ ॥

७५ भङ्गा सुभ्रष्टकचणकाश्चूर्णिता गुडयोजिता ।
वेलात प्रथम दत्ता हन्ति शीतज्वर जवात् ॥ ९७ ॥

७६ विमृद्य मर्कटीजाल गुडेन गुटकीकृतम् ।
निगीर्ण पूर्वमेव द्राग्घन्ति शीतज्वर ब्रुवे ॥ ९८ ॥

७७ स्फटिकाब्धिफेनपटुविषभूतिमरीचविषमुष्टिकक्षोद ।
ख्यातो ज्वराङ्कुश इति क्षिणोति गुञ्जासितो ज्वर जवत ॥ ९९ ॥

को रोकने के लिये, सेवन करें। अफीम, काली मरिच एव बम्बूल के कायलो को एकत्र पीसकर, वयमर्यादा के अनुसार एक, तीन अथवा छह भाग मात्रा में देने से जुडती ज्वर दूर होता है। प्रात काल कुछ नास्ता लेकर इसका सेवन करना चाहिये। यह अतिसार में भी लाभदायी है ॥ ९४–९५ ॥

सीताफल वृक्ष के साढे तीन पत्तो को नमक में बारीक पीस कर खाने से शीत ज्वर शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ ९६ ॥

भाग एव भूने हुये चनो के चूर्ण को गुड में अच्छी तरह मिला कर, वेला से दो घटी पूर्व खिलाने से शीतज्वर तत्काल नष्ट हो जाता है। (यह अनुभूत एव अद्भुत प्रयोग है !!! इसमें सभी चने फूले हुये होने चाहिये। छिलकों को अलग करके चनों का उपयोग करें। अनुपान कवोष्ण जल है।) मकडी के जाले को गुड में मिला कर गुटिका बना निगल जाने से पूर्वोक्त लाभ होता है। यह मैं दृढतापूर्वक कहता हू ॥ ९७–९८ ॥

फुलाई हुयी स्फटी, समुद्रफेन, सैंधव, शुद्ध शृङ्गीविष, मरिच एव शुद्ध कुचला इनको समानभाग में एक मृत्पात्र में सपुटित करके गजपुट में फूक दें। इसे ज्वराङ्कुश कहते हैं। यह शीघ्र ही ज्वर को क्षीण कर देता है। मात्रा एक गुजाभर है। (यह शीतज्वर की अन्वर्थ अनुभूत औषधि है।) शुद्ध कुचला चार तोला, सौवर्चल तथा

१–बम्बूलकोकिलानि। २–वयोपेक्षया कल्पितया, किंचित्प्रातराश कृत्वा देयमिति सम्प्रदाय । वेलाज्वरे तथाऽतिसारेऽप्येतद्धीयते। ३–गण्डगात्रस्य 'सीताफल' इति प्रसिद्धस्य वृक्षस्य। ४–'मकडी' इति प्रसिद्धस्य कीटविशेषस्य शुभ्रतरश्लक्ष्णजालकम्। ५–स्फटिका भ्रष्टा ग्राह्या, सैन्धव समुद्रफेनेन सह सपुटे पञ्चप्रस्थैरारण्यगोमयैर्भस्म कृत्वा ग्राह्यम्। शुद्धशृङ्गिकविषभस्म, शुद्धानि विषमुष्टिकानि वक्ष्यमाणरीत्या। मात्रा चैषा तोलकप्रमाणा पूर्वमेव ग्राह्या, ततो यथायथ भस्मादि कार्यम्।

७८ विषमुष्टिकतो मुष्टिः सौवर्चलमरिचतः पृथक्प्रसृतिः।
मसृणीकृतो रसः स्याज्ज्वराङ्कुशो नाम तथ्यार्थः॥ १००॥
७९ संशोधितानां विषमुष्टिकानां तुल्यांशमारीचरजोयुतानाम्।
वट्यो विशालाफलवारिबद्धा विबन्धवातज्वरमुद्धरन्ति॥ १०१॥
८० धत्तूरवनसंफुल्लकलिकावेल्लजावटी।
यामं निषिद्धपानीया वेलाज्वरनिवारिणी॥ १०२॥
८१ कृष्णकुक्कुरमूत्रेण भाविताया मृदो वटी।
निगीर्णा हन्ति समयज्वरं सत्यमिदं ब्रुवे॥ १०३॥
८२ एकविंशतिपत्राणि तुलस्या मरिचान्यपि।
कृत्वा तिस्रो वटीर्देया वेलाज्वरनिवृत्तये॥ १०४॥
८३ करञ्जमज्जातिविषे मरीचं छदैस्तुलस्यास्त्रिगुणैर्विमर्द्य।
चणप्रमाणा गुटिका हिनस्ति ज्वरातिसारानलमार्दवानि॥ १०५॥

मरिच प्रत्येक ८-८ तोला, इनको एकत्र खूब बारीक पीसलें। इसे ज्वराङ्कुशरस कहते हैं एवं यथा नाम तथा गुण युक्त है॥ ९९-१००॥ (कुचला का शुद्धिप्रकारः—कुचले को गीली मिट्टी में एक सप्ताहपर्यंत गाडकर रखदें। फिर, इसका छिलका उतार, बीच की जिह्वा को निकाल, घी में भून, लोह पात्र में चूर्ण बनाकर उपयोग में लेवें।)

अच्छी तरह शुद्ध किया गया कुचला एवं मरिचचूर्ण इन दोनों को समभाग एकत्र लेवें। इनकी इन्द्रवारुणी फल के रस से खरल करके गोलियां बनालें। ये मलावरोध सहित वातज्वर को दूर कर देती हैं॥ १०१॥

धत्तूरा, ह्रीवेर, पानी में खिलाया हुआ सुधाखंड और मरिच इन सब को सम-भाग लेकर गोलियां बनालें। ये वेलाज्वर को मिटाती है। इनको लेने के उपरांत एक प्रहर तक, यदि प्यास लगे तो भी, पानी नहीं पीना चाहिये॥ १०२॥

काली मिट्टी को, कृष्णवर्ण श्वान के मूत्र की भावना देकर गुटिका बनालें। इसे निगीर्ण करने से वेलाज्वर नष्ट होता है। यह सत्य कथन है॥ १०३॥

कृष्णतुलसी के इकीस पत्ते और गिनती में इतने ही काली मिरच के दाने इनको एकत्र पीसकर तीन गुटिकायें बनालें। इसके प्रयोग से वेलाज्वर निवृत्त हो जाता है १०४

करंज की मज्जा, अतिविषा और मरिच प्रत्येक एक एक तोला लेकर, तीन तोलाभर तुलसी के पत्तों के साथ इनको पीस कर, चने के समान वटिकायें बनालें।

१-विषमुष्टिकानि 'कुचिला' इति लोकख्यातानि शुद्धान्युपादेयानि। शुद्धिप्रकार-श्चायं-सर्वत्र सप्ताहं सजलमृत्स्नायां निधाय, पश्चात् विगतत्वचि विधाय, मध्यस्थजिह्विकां विहाय, किंचिदाज्येन संभर्ज्य, चूर्णयेल्लोहपात्रे इति। प्रोक्तमपि तन्त्रान्तरे-"किंचिदाज्येन संभ्रष्टं विषमुष्टि विशुध्यति।" इति। २-पलम्। ३-पलद्वयम्। ४-ज्येष्ठा मात्रा वल्लसिताऽस्य पर्णखण्डेन प्रातः सायं च देया। ५-कृष्णमृत्तिकायाः। ६-कृष्णतुलस्याः। ७-करञ्जमज्जादीनि त्रीणि प्रत्येकं कर्षमितानि, तुलसीछदास्त्रिकर्षमिताः। ८-सायं प्रातः शीतजलेन देया॥

८४ मज्ज' करञ्जस्य कणामतल्लथा माषा पृथग्द्वादश कल्पनीयाः ।
वब्बूलपत्र जरणो वलक्षो गद्याणगद्याणसितावुभो स्त ॥ १०६ ॥
जलेन वस्तून्यखिलानि पिष्ट्वा परूपकल्पा वटिका विधेया ।
वलासपित्तज्वरजर्जराय प्रातस्तथा सायमपि प्रदेयाः ॥ १०७ ॥
८५ करञ्जमज्जा प्रसृतिप्रमाणो गद्याणयुग्म घुणवल्लभाया. ।
सितासहायान्यनयो रजांसि वल्लद्वयानि ज्वरमुज्जयन्ति ॥ १०८ ॥
८६ पक्वानि धत्तूरदलानि पिष्ट्वा पटेन पूतानि सितायुतानि ।
वल्लप्रमाणानि निषेवितानि सर्वज्वरघ्नानि समीरितानि ॥ १०९ ॥
८७ हरितालशिखिग्रीवचूर्णधूर्प प्रयोजित. ।
वेलाज्वर रुणद्ध्याशु वेलेव मकरालयम् ॥ ११० ॥
८८ आर्द्र पाणितले क्षुण्णमलाबूपर्णमेककम् ।
पटावगुण्ठित जिघ्रन्मुच्यते ना तृतीयकात् ॥ १११ ॥
८९ उलूकपक्ष परिवेष्ट्य तूलकात् प्रज्वालयेत् सर्षपतैलमञ्जितम् ।
तत्कज्जलेन स्वयमञ्जितेक्षणश्चातुर्थिकव्याधिभयाद्विमुच्यते ॥ ११२ ॥

ये ज्वर, अतिसार तथा अग्निमाद्य को नष्ट करती है । करञ्जमज्जा तथा उत्तम पुराणी पिप्पली दोनों एक एक तोला, बबूल के पत्ते और श्वेत जीरा प्रत्येक छह छह माशा इन सब को एकत्र पानी में पीसकर फाल्से जितनी मोटी वटिकाये बनावे । प्रात तथा सांझ को देने से कफ एव पित्तजन्य ज्वर जर्जरित हो जाता है । करज की मज्जा आठ तोला और अतिविषा एक तोला इन दोनो के एक मापाभर चूर्ण को मिश्री चूर्ण मे मिलाकर फाकने से ज्वर पराजित हो जाता है । धत्तूरे के परिपक्व पत्तो के वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण को तीन गुजाभर मात्रा में चतुर्गुण मिश्री के साथ लेने से सर्व प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं । (इसकी तीन गुजाभर मात्रा प्रबल रोग में बलिष्ठ व्यक्ति को ही देनी चाहिये । अन्य वेग में इससे न्यूनमात्रा में ही प्रयोग करें ।) ॥ १०५-१०९ ॥

हरिताल और तुत्थ के चूर्ण की धूम का पान, समुद्र के उठते हुये ज्वार के समान वेगवाले वेलाज्वर को रोक देता है । इस धूमपान से कभी कभी वमन भी हो जाया करता है । वस्त्र में लिपटे हुये कटुतुम्बी के केवल एक पत्ते को हाथ में मसल कर सूघने से तृतीयक ज्वर से मुक्ति मिल जाती है । उल्लूक पक्षी के पख को रुई में लपेट कर सर्षप तेल से सिक्त करले । फिर उसे जला कर कज्जल पाडलें । इस कज्जल को आजने से चातुर्थिक ज्वर के भय से मुक्ति मिलती है । तीन दिवस पर्यंत प्रात कवोष्ण

१-प्रशस्तकणाया , प्रशस्तत्व चास्या पुराणत्वादि, मज्ज मज्जाया इत्यर्थ । २-अतिविषाया । ३-सिताऽत्र चतुर्गुणा । ४-पूर्णमात्रेय प्रबलरोगे । तेन दुर्बलादावल्पमेव देयम्, अन्यथ द्वेग स्यादिति । ५-तुत्थम् । ६-धूपग्रहणात् कदाचिद्वमनमपि भविष्यति । ७-कटुतुम्बीपत्रम् ।

९० पीत्वा त्र्यहं वमति यः प्रातः कोष्णं पटूदकम् ।
तं कश्चातुर्थिकातङ्कः सहसा न विमुञ्चति ॥ ११३ ॥
९१ समुदञ्चति वश्चित्ते चातुर्थिकभयं यदि ।
भो ! जना भोजनं[1] हित्वा पयः[2] पिबत केवलम् ॥ ११४ ॥
९२ परिपिष्टया पयोभिर्भृशमधिशिलमेकपित्तकारिण्या ।
लिप्त्वा पाणिकनिष्ठाङ्गुलिपर्वयुगं पटेन परिवेष्ट्य ॥ ११५ ॥
जलभाजने निमज्ज्य[3] दृढमपि चातुर्थिकं ज्वरं जय रे ।
मनसा गच्छ गिरीशं प्रयच्छ कापालिकाय बलिम् ॥ ११६ ॥
९३ ज्वरागमनतः पूर्वं तल्पे कल्पितरल्लके ।
मुशलं स्थापयित्वा द्राक् कुशलं विन्दति ज्वरी ॥ ११७ ॥
९४ वान्तिविरेककषायप्रभृतिभिरपि ये ज्वरा न शाम्यन्ति ।
दातव्यं तत्र घृतं परिणतफणिवल्लरी[4]पलाशशृतम् ॥ ११८ ॥

लवणोदक पीकर वमन करनेवाले को चातुर्थिक ज्वर सहसा छोड कर चला जाता है । यदि आपका चित्त चातुर्थिक ज्वर के भय से आतंकित रहता हो तो हे जनो ! तुम अन्य सभी भोजनों को छोड कर केवल दूध का ही पान करो । (दूध गाय का कवोष्ण, शर्करा सहित पीना चाहिये । भूख प्यास आदि लगने पर भी सात दिवस पर्यंत केवल इस तरह दुग्धपान ही करते रहने से चातुर्थिकज्वर चला जाता है ।) एक लाल मिरच को शिला पर जल से सूक्ष्म पीस कर, उसकी पिष्टी से रुग्ण के हाथ की कनिष्ठ अंगुली के दो पर्व जितने भाग को लिप्त करदें और उसपर एक वस्त्र खंड लपेट दें । अब इस अंगुलि को, ज्वरागमन की दो घटी पूर्व ही जलपूर्ण पात्र में डुबोदें । इससे हठीला चातुर्थिक भी पीछे हठ जाता है । इस विधि में भगवान शंकर के शरण मंत्र का मानसिक जप करते रहना चाहिये तथा विधि समाप्त होने पर किसी कापालिक को बलि अवश्य दें ॥ ११०–११६ ॥

ज्वरागमन से पहिले एक पलंग पर कंबल बिछा उसपर 'मुशल' रख दें । इस विधि से ज्वरित को शीघ्र ही नैरोग्य प्राप्त होता है । वमन, विरेचन, कषाय, आदि से भी यदि ज्वरों का शमन न होता हो तो नागरवेल के पक्व पत्ते में घृत को सिद्ध करके दीजिये । गुडूची के पत्तों को अङ्गारों पर सेक कर करीब दो तोलाभर रस निकाल लेवें । इसमें दो तोलाभर एरंड तैल एवं तीन माषा भर फुलाई हुई स्वर्जिकाक्षार मिलाकर कुछ गरम करके पीजायें । इससे ज्वर, उदर एवं कफ से

१–भोजनशब्देन पानमपि गृह्यते । २–गव्यं कदुष्णमशर्करं च । अस्य प्रयोगस्य सप्ताहं परा काष्ठा, क्षुधि तृपि च दुग्धमेव पेयम् । प्रयोगगुरवस्तु कदाचिज्जलपानेऽपि न दोष इत्याहुः, जलवर्जने च गुणाधिक्यमिति । ३–ज्वरागमनतो द्विघटिकायाः पूर्वमिति शेषः । ४–नागवल्लीदलतलितम् ।

९५ अङ्गारसंततनुयाच्छदाना रसं सुखोष्णं रुबुतैलमिश्रम्।
सर्स्वर्जिकेक्षारमुदाहरामि ज्वरोदरश्लेष्मभवासु रुक्षु ॥ ११९ ॥
९६ सरस्वती द्विढब्बूका दिक्षापा खरपर्णिनी।
शङ्खिनी चापि दिक्षापा गद्याण धर्मपत्तनम् ॥ १२० ॥
गोस्तनी चाणढब्बूका गुटिका मापगोरवा।
हृत्कम्पश्वासनयनारुण्यजागरजृम्भणे ॥ १२१ ॥
पित्तावृते शीतवाते गिलेद्द्वित्रिर्यथायथम्।
इच्छा चेदत्र तरुणीसेवन्तीकन्दमाचरेत् ॥ १२२ ॥
९७ कुर्यात्तृतीयकचतुर्थकयोः शमाय
वारे रवेर्विधिमिमं पुरचत्वरेऽथ।
मृत्कुम्भखर्परतले वरधूपयुक्ते
विस्तीर्णपूपकशरावमदिरा निधाय ॥ १२३ ॥

उत्पन्न विकारों में शीघ्र ही लाभ होता है। (यह परमोत्तम अनुभूत प्रयोग है। इसका उपयोग प्रबलरोग में ही करना चाहिये।) ॥ ११७–११९ ॥

ब्राह्मी तीन तोला, गावजबां और शङ्खावली प्रत्येक चार चार मापा, काली मरिच छ मापा इन सबको एकत्र करके खूब बारीक पीसकर करीब साडेसात तोलाभर द्राक्षा कल्कमें तरल करके अच्छी तरह मिला लेवें। एक एक मापाभर इनकी गोलियां बनावें। पित्तयुक्त शीत-वातज्वर में दो या तीन गोलियों को निगल जावें। यदि आवश्यकता पडे तो इसके ऊपर गुलाब अथवा सेवन्ती के गुलकन्द का सेवन करना चाहिये ॥ १२०–१२२ ॥

(तृतीयक एवं चतुर्थक ज्वर में, युक्तिव्यपाश्रय कर्म (चिकित्साकर्म) के असफल होने पर, दैवव्यपाश्रयकर्म करने का आदेश महर्षि चरकने दिया है। 'कर्म साधारणं जह्यात् तृतीयकचतुर्थकौ'। शास्त्र के इसी वचनानुसार ग्रंथकार, अब यहां, दैवव्यपाश्रय कर्म का उल्लेख करते हैं।)

तृतीयक तथा चतुर्थक ज्वर को वश में करने के लिये-रविवार के दिवस, शहर के चौराहे पर, निम्नविध अनुसार बलि देनी चाहिये। मिट्टी के एक विशाल, धूप से

१–तोरुन्द्वयमितं तुल्यैरण्डतैलमिश्रितं च। २–अष्टसर्जिकाया मापत्रयम्। महाप्रयोगोऽयं सद्यःफलदः प्रबलरोगे प्रयोक्तव्यः। ३–ब्राह्मी। ४–ढब्बूकशब्देनाष्टादशमापकाः। ५–'गावजवां' इति प्रसिद्धा गोजिह्वाभेदः। ६–मरिचम्। सर्वाणि पिष्ट्वा द्राक्षाकल्केन सनीय गुटिका कार्या। ७–"कर्म साधारणं जह्यात्तृतीयकचतुर्थकौ" इति महर्षिवचनात् साधारणकर्मणि विषमज्वरनाशकत्वेन स्थिते युक्तिव्यपाश्रयं कर्म सम्प्रदर्श्याधुना दैवव्यपाश्रयं कर्मापि सम्प्रदर्श्यते। तत्रादौ कुर्यादित्याद्येन ब्रुवाण इत्यन्तेन बलिदानम्।

संपक्कमत्स्यपिशितं लकुचात् फलं च
शाल्युत्थकण्डनविनिर्मितमल्लकाढ्यम्।
पुष्पैः सुशोणकरवीरभवैर्जपोत्थै-
रुद्भासुरं घृतभृतं निदधीत दीपम्॥ १२४॥
वैद्यो निशाततरखड्गविशोभिहस्तः
प्रत्युद्धरञ्ज्वरहिताय निवेदयेत्तत्।
एवं बलिं प्रतिगृहाण महाज्वर! त्वं
तुष्टो भवाशु कुरु सौख्यमिति ब्रुवाणः॥ १२५॥

९८ ग्रन्थीन् सप्त शनावुलूकरसितावच्छिन्नकाले गुणे
दद्याद्देहलिकास्थिता विवसना नारी निशीथोत्थिता।
प्रातः पर्युषिताननः प्रयतवाग्ध्यात्वा महाभैरवं
कण्ठे गुग्गुलुधूपितं ज्वरवतः सौख्याय तद्बन्धयेत्॥ १२६॥

९९ त्रिंशद्द्याणमानैः परिमितममलं राजतं वाऽपि ताम्रं
भासा देदीप्यमानं कनकमणिगणप्रायपुच्छाक्षिजिह्वम्।
मीनं श्यामाम्बराढ्यं घृतभृतविलसत्कांस्यपात्रस्तिथाङ्गिं
पाथोयुक् ताम्रपात्रस्थितमथ वितरेद्ब्राह्मणाय ज्वरार्तः॥ २२७॥

सुगंधित ठीकरे में बडे बडे अपूप, खीचडी और मदिरा भर दें। मछली के पकाये हुये मांस को और लकुच फल को भी यथास्थान रखदें। करवीर एवं गुडहल के रक्त-वर्ण पुष्पों की लालिमा से अधिक रक्तिम बने हुये प्रकाश से उद्दीप्त तथा शालिधान्य के कुट्टित कण-चूर्ण से बनाये गये—विशाल मालसे में प्रज्वलित दीप को स्थापित करें। तदनन्तर, ज्वर को प्रसन्न करने के लिये, वैद्यराज, तीक्ष्ण-धारवाले कृपाण से शोभित अपने हाथ को ऊंचा उठाकर, उपरोक्त सामग्री, यह कहते हुये, समर्पण करदें 'हे महाज्वर! इस बलि को स्वीकार करके आप शीघ्र ही संतुष्ट हो जायें तथा रुग्ण को नीरोग कर दें'॥ १२३—१२५॥

शनिवार के दिवस, वैद्य-पत्नी, मध्यरात को, एकान्त में नग्न होकर अपने घर की देहलीपर बेठकर, अपने आगे धूप खेकर, उलूक की ध्वनि-समकाल में ही एक सूत्र के पांच अथवा सात गांठ बांधले। फिर, प्रातःकाल मुंह धोये बिना ही, मौन-धारण किये, महाभैरव का ध्यान करती हुयी, उस सूत्रको ज्वरित के गले में बांध देवें। इससे ज्वर चला जाता है॥ १२६॥

पंदरह तोलेभर चांदी अथवा ताम्र की मछली बनवायें। इसकी पूंछ, आंख और जिह्वा रत्न-जटित स्वर्ण की बनानी चाहिये। इस मछलीको कृष्ण वस्त्र से

१—वैद्यस्त्री वैद्यो वा निशीथे रहो नग्नीभूयाधिदेहलिस्थिता पुरो धूपं प्रवर्त्य घूकोक्तिसमकालं पञ्च सप्त वा ग्रन्थीन् विदधीतेति त्रोटकविधिः। २—त्रिभिर्मीनप्रदानप्रकारः।

शैवैर्वा वैष्णवैर्मन्त्रैर्हविर्हुत्वा द्विजन्मने ।
दद्यात् पुराणपठित मन्त्रमेनमुदीरयन् ॥ १२८ ॥
भक्त्याऽर्चितौ शङ्करवासुदेवौ स्वभक्तरक्षाकरणप्रवीणौ ।
मीनप्रदानेन विनाशयेतामेकान्तरादीन् सकलज्वरान्मे ॥ १२९ ॥
१०० 'स्वस्ति[1] श्रीलङ्कात समस्तकोणपपतिर्विभीषणराट् ।
आज्ञापयति ज्वरमिति यदस्य ([2]) देहम् ॥ १३० ॥
क्लिश्नासि त्व वेगैर्मया श्रुतं तन्न शोभनं कुरुषे ।
किं बहुना मम लेख दृष्ट्वा त्वरितं पलायस्व ॥ १३१ ॥
नो चेद्भवदीयशिरश्छिनद्मि खलु चन्द्रहासखड्गेन ।'
इति ह विभीषणलेख दृष्ट्वा श्रुत्वा ज्वरो याति ॥ १३२ ॥

इति ज्वरचिकित्सितम् ।

बनाकर, घृतपूर्ण कांस्यपात्र में अथवा जलपूर्ण ताम्र पात्र में रखकर, ज्वर पीडित व्यक्ति, इसे ब्राह्मण को दे देवे। इस तरह मीन का दान करते समय, मन्त्रोच्चारण पूर्वक अग्नि में आहुति देते हुये पुराणोक्त मत्रों का उच्चारण करना चाहिये। 'अपने भक्तो की रक्षा में तत्पर, हे भगवान शकर और वासुदेव ! मैंने आपकी भक्ति-भाव सहित अर्चना की है। इस मीन के दानसे आप प्रसन्न होते हुये मुझे इकांतरा आदि सभी प्रकार के ज्वरों से मुक्त करदें' ॥ १२७-२९ ॥

"स्वस्ति श्री लका से समग्र राक्षसों के अधिपति विभीषण राज ज्वर को आज्ञा करते है कि तू (देवदत्त) की देह को बहुत कष्ट पहुचा रहा है। यह मैंने सुना है। तुमने यह अच्छा नहीं किया। अस्तु, मेरे इस लेख को देखते ही तुम शीघ्र उठन्तरी करदो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो तुमारे सिर को मैं 'चद्रहास' खड्ग से काट डालूगा"। विभीषण के इस लेख को देखकर अथवा सुनकर ज्वर भग जाता है। (उपर 'देवदत्त' की जगह ज्वरित का नाम लिख देना चाहिये) ॥ १३०-१३२ ॥

—ज्वर-चिकित्सा-समाप्त—



१-त्रिभिरेव ज्वरपलायनार्थं लेखप्रकार । स च लोके 'उठन्तरी' इति ख्यात ।
२-यत्र लेखस्तन्नामान निवेद्यमित्यर्थः ।

अथा[1]तिसारचिकित्सितम् ।

यः प्राप्यते वेगा[2]निरोधशीलिभिर्निरन्तरं स्निग्ध[3]गुरूपसेवया ।
स संचिता[4]न्तर्मलपातने पटुर्मयाऽतिसा[5]रः किल कोऽपि वर्ण्यते ॥ १ ॥

१ सू[6]र्पमर्णः शनैः पक्त्वा शेषयेत्तिं[7]दुकद्वयम् ।
तत् पीतं सर्वरोगघ्नं मतं धन्वन्तरेरिदम् ॥ २ ॥

२ धातुकीविश्वमालूरमोचमेघविषाशृतम् ।
[8]अतिसारप्रत्यनीकं मया कुत्रापि विश्रुतम् ॥ ३ ॥

—अतिसार-चिकित्सा (कुल प्रयोग ४०)—

(अतिसार सुपरिचित व्याधि का नाम है । अतिसार का दूसरा अर्थ 'अति-श्रेष्ठ पुरुष' अर्थात् 'पुरुषोत्तम' यह भी होता है । सार-शब्द 'बल, पुरुष, श्रेष्ठ, सत्य' आदि भिन्न भिन्न अर्थों में व्यवहृत होता है । सार का अर्थ यदि 'पुरुष' करें तो 'अतिसार' का अर्थ होगा 'अति पुरुष' अर्थात् 'पुरुषोत्तम'। महाकविश्री भट्टजीने इस तरह प्रस्तुत प्रथम श्लोक में, पुरुषोत्तम-स्तुति-परक मंगलाचरण द्वारा अतिसार चिकित्सा का प्रारंभ करते हुये, इस व्याधि के निदान आदि का संक्षिप्त किंतु सूचक निर्देश भी किया है ।)

वेगोंके (मलमूत्रादि, पक्षान्तर में-ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य आदि मानस वेगों के) निरंतर निरोध से, स्निग्ध, गुरु, चिकने और भारी पदार्थों के सेवन से (पक्षान्तर में, अनुराग-पूर्वक गुरु की सेवा से) वायु मलाशय में व्याप्त होकर, जलीय धातुओंके स्राव-पूर्वक जठरानल को मंद करके जब चिर-संचित मल को सद्रव बनाता हुआ बाहर धकेल देता है (पक्षान्तर में, हृदय के संचित-मल-किल्विष बाहर निकल जाते हैं) तब अतिसार की (पुरुषोत्तम की) प्राप्ति होती है । इसी विषय का यहां वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥

दो-द्रोण (२०४८ तोला) पानी को धीरे धीरे दो तोला शेष रहने तक उकालें । इस अवशिष्ट जलके पीने से सर्व रोगों का शमन होता है । यह धन्वन्तरी का मत है । धाय के फूल, सूंठ, बिल्व, मोचरस, मुस्ता और अतिविषा इनके सम-भाग क्वाथ से अतिसार मिटता है । यह मैंने कहीं भी सुना है ॥ २—३ ॥

१—संग्रहे चास्मिन् परस्परसाधर्म्ये रुग्विनिश्चयनिबद्धः क्रमोऽनुसरणीय इत्यतस्तदनुसारेणैव ज्वरानन्तरमतिसाराभिधानम् । २—वातमूत्रपुरीषादिनां प्रवृत्त्युन्मुखानां शारीराणां वेगानां; पक्षे मानसानां लोभेर्ष्यादीनां वेगानां निरोधोऽवगन्तव्यः, तद्वेगरोधाच्च भवति शिवप्राप्तिः । यदुक्तं वाग्भटे—"धारयेत्तु सदा वेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च । लोभेर्ष्याद्वेषमात्सर्यरागादीनां जितेन्द्रियः ॥" इति । ३—स्निग्धानां पायसादीनां गुरूणां च द्रव्याणां सेवया । पक्षे अनुरक्ताचार्यशुश्रूषया । ४—पुरीषादिकम्, अन्यत्र किल्विषादिरूपं मलम् । ५—रोगविशेषो, भगवान् पुरुषोत्तमश्च । ६—द्रोणद्वयमितं जलम् । ७—तिन्दुकः कर्षपर्यायः; तथा च वाग्भटः—"कर्षो बिडालपदकं तिन्दुकः पाणिमानिका । शब्दान्यत्त्वमभिन्नेऽर्थे" इत्यादि । ८—तन्त्रान्तरे त्वतिसारहन्तृत्वमभिहितम्—"यथा शृतं भवेद्वारि तथाऽतीसारनाशनम् । अतिसारं निहन्त्येव शतभागशृतं जलम् ॥" इति ।

३ मालूरनीरदसिसिस्थलपद्मपाके[१]
सपक्कमम्बु सितया सितया विमिश्रम् ।
आमातिसारमतिशोणितशोणभासं
हन्ति क्षणादिव पतङ्गमहस्तमिस्रम् ॥ ४ ॥

४ पिप्पलवल्काग्निकृत. सामितदङ्गारसंस्कृतार्णस्क ।
तद्गोलजै कपायो निरुणद्धितरामतीसारम् ॥ ५ ॥

५ त्वक्सारत्वगुपरिगच्छलफलेन्द्रानवच्छदा पिष्टा ।
सजला सनागफेना शृतशीता पानतोऽतिसारहरा ॥ ६ ॥

६ जम्ब्वा वा शम्या वा मृदुलानि दलानि सोपणानि सखे ! ।
खल्वे प्रपिष्य पयसा पटपूतान्यतिसृतिघ्नानि ॥ ७ ॥

७ न्यस्तं घटे चणककर्शुकमाजि वारि विस्राव्य शङ्कुकृतनिर्व्ययनाद्ययातं ।
योऽल्प पिबेदविरत विरतौपधोऽपि दाहातिसारविपदा न पद भवेत् स ८

८ जातीफल सविश्व जलघृष्ट शीतमेव दातव्यम् ।
बध्नाति पथ्ययुक्त्या मल द्रवीभूतमह्नाय ॥ ९ ॥

निल्व, मोथा, सौंफ और गुलकद इनमें जल को उकालकर छान ले । इसमें मिश्री मिलाकर पीने से रक्तपूर्ण आमातिसार उसी तरह विलीन हो जाता है जैसे सूर्य के तेज मे अधकार ॥ ४ ॥

पिप्पल के अर्ध-दग्ध अगारों को एक चलनी में रख उनपर पानी डालकर बुझावें । इस पानी को, चलनी के नीचे रखे हुये एक पात्र में एकत्रित करले । इस तरह सस्कृत-जल में पिप्पल के फलों को कूट कर डाल देवें । फिर पिप्पल-वल्क की अग्नि से इसका कपाय-विधि से क्वाथ करलें । इस क्वाथ से गर्भवती स्त्रीके अतिसार में उत्तमोत्तम लाभ होता है ॥ ५ ॥

खस की छाल, जामू के ताजे कोमल पत्ते और अफीम इन सबको एकत्र जल से खूब महीन पीसकर उबाललें । शीतल होने पर इसको पीकर सोजावें । इससे अतिसार में लाभ होता है । जामू के अथवा शमी के कोमल पत्तोंको मरिच सहित जल में खरल करलें । फिर, वस्त्र-पूत करके पीने से अतिसार नष्ट हो जाता है ॥ ६–७ ॥

चनो के तुप को जल मे मिलाकर एक घडे में भरदे । इस जल को, घडे के पैंदे में शकु-कृत-छिद्र में से बूद बूद टपकाले । अब, इस जल को एक एक घूट करके धीरे धीरे पीने से अन्य औपधियो से थका हुआ भी दाह एव अतिसार की विपदा से निरापद हो जाता है । जायफल एव सूठ को जल में घिसकर शीतल ही देने से तथा युक्ति पूर्वक पथ्य सेवन से शीघ्रही पतला मल बद्ध हो जाता है ॥ ८–९ ॥

१–निल्व । २–गुलाबगुलकदै । ३–अश्वत्थफल लोके 'गोल' नाम्ना व्यवह्रियते । तज्ज कपाय । अय गर्भिण्यै नेय । ४–त्वक्सारो वश ,तस्योपरिस्थवल्कलम् । फलेन्द्रा जम्बू , तस्या नवपल्लवानि । ५–पीत्वा स्वप्यादिति तत्त्वमत्र । ६–चणकतुषाणि । ७–छिद्रात् ।

९ खाखसाख्यानि पञ्चैव तावतीर्धेनुदुग्धिकाः।
नीरे[3] संनीय संमर्द्य तन्नीरं स्रावयेत् पटात् ॥ १० ॥
तत्र मृत्स्नां[4] सितां[5] सर्पिः[6] क्षिप्त्वा कुर्वीत शार्करम्।
तत् पीतं मात्रया द्वित्रिः सर्वातीसाररोधकम् ॥ ११ ॥
१० चिञ्चाबीजानि भूदंशि[7] तोयान्तर्मज्जयेच्छनौ।
रवौ तानि हृतत्वञ्चि सामि शृङ्गाटचूर्णकम् ॥ १२ ॥
फणिफेनं ततः सासि सर्वमेकत्र कल्कयेत्।
कल्कस्य चक्रिकां कृत्वा तवकोपरि भर्जयेत् ॥ १३ ॥
शकलं मात्रया तस्या वितीर्णं तन्दुलाम्बुना।
अतिसारं निहन्त्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥ १४ ॥
११ दाडिमीकलिकाकल्कः प्रत्नमाक्षिकसाक्षिकः।
सकृदेव प्रयुक्तश्चेदतिसारस्य का कथा ॥ १५ ॥

पोस्त के पांच डोडे तथा इतनी ही संख्या में कचरी (धेनुदुग्ध-फल) दोनों को पानी में मसलकर वस्त्र-पूत करके फिर उसमें दो तीन माषा मुलतानी मिट्टी, दो तीन पल शर्करा और दो तीन माषा घृत मिलाकर उसका शार्कर बनालें। इसे यथामात्रा में दो तीन बार पीने से सभी प्रकार के अतिसार शमन हो जाते हैं ॥ १०-११ ॥

शनिवार के दिवस इमली के इक्कीस बीजों को पानी में भिगोकर रखदें, रविवार को दूसरे दिवस इन बीजों के छिलके निकाललें। इनसे आधा वजन भर सिंघाडे का चूर्ण तथा इस चूर्ण से अर्ध मात्रा में अफीम लेवें। अब, इन तीनों को एकत्र पीसकर उनकी टिकियां बना एक लोह के तवे पर सेकलें। इनमें से एक चक्रिका को चांवल के मंड के साथ लेने से, विष्णु के चक्र से असुरों की तरह, अतिसारका नाश हो जाता है। दाडिम की कलियों के कल्क को पुराणे मधुके साथ एक ही बार लेने से अतिसार नामशेष हो जाता है। वटके कोमल अंकुर तथा मिश्री प्रत्येक तीन तीन तोला लेकर इनके कल्क को, सर रहित, बत्तीस तोला भर दही के साथ लेनेसे घोर अतिसार भी प्रशमित होता है ॥ १२-१६ ॥

कृष्ण एवं श्वेत दोनों प्रकार के जीरे, मरिच और चित्रक इनके चूर्ण को दही में मिलालें। यह प्रयोग अतिसार को उसी तरह पीजाता है जिस तरह अगस्त्य मुनि ने एक ही आचमन में समुद्र को पीलिया था। गुलाब का गुलकंद, सौंफ, इलायची, जीरा, रूमीमस्तगी इनके चूर्ण का सेवन करने से अहो! तीन ही दिवस में कष्ट-साध्य आमातिसार से मुक्ति मिल जाती है। गेंहू के चूर्ण में सौंफ मिला बाटियां बनाकर अंगारों पर सेक लें। अच्छी तरह सिक जाने पर इनका कूट पीसकर चूरमा जैसा बना-

---

१-'छोतरा, पोस्त' इति प्रसिद्धानि। २-खर्वाणि धेनुदुग्धानि 'कचरी' इति प्रसिद्धानि। तानि च मारवाणि शस्तानि। ३-द्वित्रिपले। ४-'मुलतानी' इति प्रसिद्धां द्वित्रिमाषाम्। ५-द्वित्रिपलमिताम्। ६-मृत्तुल्यम्। ७-एकविंशतिसंख्यानि। ८-अतिरोहितार्थमिदम्।

१२ वटाङ्कुरास्त्रिपिचवस्तावन्त्येव सिता द्वयोः।
कल्को दध्ना निबद्धेन घोरातीसारनाशन ॥ १६ ॥

१३ शितिजैरणजरणमरिचज्वलनक्षोदो विमिश्रितो दध्ना।
अतिसारं चुलुकयति प्रसह्य सागरमिवागस्त्यः ॥ १७ ॥

१४ तरुणीसुमकन्दमिपित्रुटिजीरकरूमैगुन्द्रमुपसेव्य।
आमातिसारकृच्छ्राद्विमुच्यते त्रिभिरहोभिरहो ॥ १८ ॥

१५ अध्यङ्गारविपक्का पिण्डी गोधूमचूर्णमिपिवद्धा।
क्षुण्णा सिताघृताक्ता हन्तितरामामवेदना घोराम् ॥ १९ ॥

१६ शुण्ठी मज्जा रसालस्य मिपि खाखसवल्कलम्।
समभागानि सभर्ज्य घृते किंचिच्छनैः शनैः ॥ २० ॥
भागैकं जीरकं भ्रष्टं निक्षिपेद्द्विगुणा सिताम्।
शाम्यत्यामातिसरणं चूर्णेनानेन निश्चितम् ॥ २१ ॥

१७ फलानि तिन्तिडीजानि भर्जिते सिपिजीरके।
प्रत्येकमेकभागानि दाडिमी च द्विभागिका ॥ २२ ॥
शर्करा पञ्चभागैव चूर्णमेतदनुत्तमम्।
घोरामामातिसारार्तिं विनिहन्ति न सशय. ॥ २३ ॥

कर, उसमें शक्कर और थोडा घृत मिला सेवन करें। यह आमातिसार की उग्र वेदना का सहार कर देता है ॥ १७–१९ ॥

सूठ, आम की गुठली की अन्तर्मज्जा, सौंफ और पोस्त के छोतरे इनको सम-भाग लेकर घी से धीरे धीरे अग्नि के ऊपर भूनलें। फिर इसमें एक भाग भूना हुआ जीरा एव इन सभी द्रव्यो से द्विगुणित मिश्री मिलादे। इससे आमातिसार नि सदेह दूर होता है ॥ २०–२१ ॥

इमली, भूने हुये सौंफ और जीरा यह तीनों द्रव्य एक एक भाग, दाडिम दो भाग, शर्करा पाच भाग इनका बनाया गया उत्तम चूर्ण आमातिसार की उग्र वेदना को शात करता है। इसमें सदेह नहीं ॥ २२–२३ ॥

थकोल, देवदारु, दालचिनी, सैंधव, बिल्व, मरिच, जायफल, श्वेत और श्याहजीरा तथा जावित्री इनके कपड छान चूर्ण को बिजौरा के रस की भावना देकर गोलिया बनालें, यह कफ, वात, अरुचि तथा अतिसार को दूर कर देती हैं ॥ २४ ॥

सौंफ चार तोला, इलायची एक तोला इनदोनों के बराबर वजन मे मिश्री चूर्ण इन सबको एकत्र मिलाकर लेने, जलकी हेर फेर से उत्पन्न आमातिसार नष्ट होजाता

१–शरावोन्मितेन सररहितेन च। २–कृष्णजीरक-। ३–रूमदेशोद्भव गुन्द लोके 'मस्तकी' इति प्रसिद्धम्। ४–आम्रफलस्य। ५–सर्वसभारतो द्विगुणा समाना वा।

१८ कङ्कोलदारुसितिकापटुविल्वतीव्र-
जातीफलद्विजरणौषधजातिकानाम्।
चूर्णानि कुञ्जरसेन विभावितानि
श्लेष्मानिलारुचिसरत्त्वहराणि सन्ति ॥ २४॥
१९ सिषेत्त्रुटेः पलं कर्षः सिता सर्वसमा रजः।
निहन्यात् सामविड्भेदं पानीयपरिवृत्तिजम् ॥ २५॥
२० दध्ना सिचयबद्धेन तिन्तिडीकत्वचो रजः
अतिसारं पराजित्य रुचिमुच्चैः प्रयच्छति ॥ २६॥
२१ फणिफेनकत्थविश्वं दृगब्धिवसुरक्तिकं पिष्ट्वा।
तिस्रो हरन्ति पुटिकास्त्रिभिर्दिनैस्तन्दुलाम्भसाऽतिसृतिम् ॥ २७॥
२२ अङ्गारसङ्गोद्गतगर्भतैले दत्त्वाऽहिफेनं शुचि नारिकेले।
मनागुपेक्षेत ततोऽस्य खण्डं प्रातः प्रदद्यादतिसारशान्त्यै ॥ २८॥
२३ भ्राष्ट्रभ्रष्टे खाखसधात्रीफलवल्कले क्षुण्णे।
निर्हतोऽतिसृतिं यद्वा खाखसफलवल्कमेथिके तद्वत् ॥ २९॥
२४ भ्राष्ट्रविभर्जितखाखसफलवल्कचूर्णतुल्यभागस्य।
अतिसरणार्तिं स्विन्नामलफलकल्कस्य मोदका घ्नन्ति ॥ ३०॥

है। वृक्षाम्ल की छाल के चूर्ण को वस्त्र में से पानी निकालकर गाढे दही के साथ लेने से अतिसार के शमन पूर्वक यथेच्छ रुचि उत्पन्न होती है ॥ २४-२६॥

आफीम दो रत्ती, खदिर चार रत्ती, इनका सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को चांवल के धोवन की तीन भावनायें देकर सेवन करने से तीन दिन में ही अतिसार शमित होजाता है ॥ २७॥

एक अच्छे परिपक्व नारियल को अग्निपर तपायें। उसमें से जब अन्ततैल बाहर निकलने लगे तब उसमें अफीम डाल दें। कुछ क्षणों तक उसे इसी तरह रहने दें। फिर, उतार कर उस अफीम को, यथादोष, बल और काल के अनुसार मात्रा से प्रातः उपयोग में लेवें। इससे अतिसार का शमन होता है ॥ २८॥

आंवला और पोस्त की त्वचा को अग्नि के ऊपर भूनकर कपडछान चूर्ण बनालें अथवा इसी तरह पोस्त के छोतरें एवं मेथी का चूर्ण सिद्ध करलें। यह दोनों ही अतिसार का नाश कर देते हैं ॥ २९॥

आंवलों को बिना जल के मंदाग्नि से स्वबाष्प द्वारा स्विन्न करके, उसका कल्क बनालें। इस कल्क में इसके समान भाग जितना अग्निपर भूने गये पोस्त के छोतरों का चूर्ण मिलाकर मोदक बनालें। यह मोदक अतिसार की वेदना को दूर करता है ॥ ३०॥

१-गुडत्वक्, 'दालचीनी' इति प्रसिद्धा। २-मरिचम्। ३-देशान्तरीयदुष्टजलपानजम्। ४-पटबद्धेन स्रुतजलेन। ५-खदिरविशेषः। ६-'हन हिंसागत्योः' इत्यस्य लटः प्रथमपुरुषद्विवचनम्। ७-जलं विना स्विन्नामलकफलानि।

२५ अरुणधवलचलकिसलयनवकिसलयपुटविपक्वफणिफेनम् ।
अतिसरणमसुहरणमपि हरिस्मरणमिव रुणद्धि संसरणम् ॥ ३१ ॥
२६ पृदाकुफेनभसितं लीढं माक्षिकयोगतः ।
अतिसारं रुणद्धि द्रागानाहं न करोत्यपि ॥ ३२ ॥
२७ पक्वनिम्बूकजैर्नीरैरवलेहीकृता सिता ।
संस्तम्भयत्यतीसारं वेलेव सरितां पतिम् ॥ ३३ ॥
२८ चलपर्णमूलवल्कलफाण्टः पीतो यथा स्रुतिं जयति ।
२९ जन्तुफलपयोबद्धा भङ्गावटिकाऽपि तथ्यमेव तथा ॥ ३४ ॥
३० पादाशदेवकुसुमं धौतं विजयाविशेषदलम् ।
घृतसिद्धं गुडमृदितं हन्त्यपि फणिफेनिना महातिस्रुतिम् ॥ ३५ ॥
३१ गुडे घृतेन क्वथिते प्रणीय ससर्पफेनं क्रमुकस्य चूर्णम् ।
माषप्रमाणा गुटिका विधेया विट्सारकं द्वित्रिदिनैर्हरन्ति ॥ ३६ ॥
३२ यन्त्रेण धूमं मौद्गेयं पिबन् द्वित्रिः शनैः शनैः ।
घृताशी मुच्यते घोरादुच्चैरामातिसारतः ॥ ३७ ॥

वसतऋतु में पिप्पलवृक्ष के नूतन, अरुणाभ श्वेत, कोमल पत्ते आते हैं। इन पत्तों के पुट में अफीम को पकावे। यथामात्रा में इसके सेवन से प्राणघातक अतिसार भी उसी तरह स्थगित हो जाता है जिस तरह हरिस्मरण से सांसारिक मायाजाल ॥३१॥

अफीम की भस्म को यथामात्रा मधु के साथ लेने से अतिसार के शीघ्र शमन के साथ साथ आध्मान में भी लाभ होता है। एक अच्छे पक्व निंबू रस के साथ मिश्री मिला कर चाटने से अतिसार का वेग उसी तरह रुक जाता है जिस तरह सीमा से समुद्र का। पिप्पल वृक्ष के मूल की त्वचा का फाण्ट बनाकर पीने से अतिसार परास्त हो जाता है। उदुंबर फल के रस में भाग को पीस कर गुटिका बनालें। यह भी, उपरोक्त प्रकार से, अतिसार को दूर कर देती है। गाजा एवं गाजा से चतुर्थांश लौंग लेवें। प्रथम गाजे को हस्त तल में लेकर सभाल पूर्वक मसलकर सो बार पानी से धो डालें। फिर, गाजे को और लौंग को, दोनों को, घी में सेक लें। इनमें गुड मिलाकर खरल में खूब घोटें। इसके सेवन से अफीम खाने वालों का भी अतिसार शमन हो जाता है। इसकी पूर्ण मात्रा एक गुंजा भर ही है। गुड को घृत में सेककर द्रव बनालें। फिर इसमें अफीम और सुपारी का चूर्ण मिला कर एक माषप्रमाण में गोलियां बनालें। इसके प्रयोग से दो तीन दिवस में ही अतिसार मिट जाता है ॥ ३२-३६ ॥

चिलम में सुपारी के चूर्ण को रखकर उसके धूम को, धीरे धीरे, यथाक्रम,

---

१–चलकिसलयोऽश्वत्थ । २–अहिफेनभस्म । ३–'सद्योऽभिषुतपूतस्तु फाण्ट' इत्याद्युक्तलक्षण । ४–उदुम्बररसबद्धा । ५–अधिहस्ततलं जले शतकृत्वो धौतम् । ६–'गाजा' इति लोकप्रसिद्धम् । ७–खल्वे खल्वयित्वा गुडेन विनीय गुटिकीकृतमित्यर्थः । साधारणरोगिणे गुञ्जाधिका गुटी न देया । ८–जलार्द्रस्य प्रक्लपूगस्य चूर्णं, तत्राफूकं मकुष्टप्रमाणं देयम् । ९–धूमयन्त्रेण 'चिलम' इति प्रसिद्धेन । १०–पूगफलजम् । ११–गोघृत मात्रया पोलिकादिषु प्राश्यम् ।

३३ लेपो लवङ्गकाश्मीररूमगुन्द्रैः प्रकल्पितः।
अतिसारं रुणद्ध्येव छगनेन निवेदितः ॥ ३८ ॥
३४ नवसादरस्य भागो द्वौ भागौ धर्मपत्तनस्यापि।
पिष्ट्वा सलिलेन वटी हन्त्यतिसारं तनोति जठराग्निम् ॥ ३९ ॥
३५ बाह्लीकाकोदरफेनकत्थैर्वट्यो विधेया हरिमन्थसोदराः।
उच्चैरतीसारमसुप्रहारं जलेन गीर्णा विनिवारयन्ति ॥ ४० ॥
३६ भ्रष्टामेकतरे पार्श्वे रामठाफूकचक्रिकाम्।
अतिसारे गिलेदद्भिः शीताभिश्चणकोपमाम् ॥ ४१ ॥
३७ रूमजो मस्तगीसारः फणिफेनं सहिङ्गुलु।
विट्सारे स्यात् कृता वर्तिर्जलैरीश्वरबोलजैः ॥ ४२ ॥
३८ गरलं दरदमरिचकणाः सुधांशुचक्षुः समुद्रनयनांशाः।
आनन्दभैरवः स्यान्निम्बूकरसैर्विभावनादसकृत् ॥ ४३ ॥

जोर से कस खींच खींच कर पीयें। इस तरह दो तीन दिवस धूम्र-पान करें। पथ्य में, गोघृत मिला कर पूरणपोली (बेढमी) आदि खानी चाहिये। इस तरह करने से घोर आमातिसार से भी मुक्ति मिल जाती है। लौंग, केसर और रूमी-मस्तगी इन तीनों का उदर पर शीतल लेप करने से अतिसार मिट जाता है। यह प्रयोग मुझे मेरे शिष्य छगन (सुरत निवासी) ने बताया है। (श्रीछगनकाका के दर्शन का सौभाग्य अनुवादक को भी मिला है। शतायु भोग कर इन्होंने हमारे यहां ही देह-त्याग किया था) ॥ ३७–३८ ॥

एक भाग नोसादर, दो भाग मरिच, इनको एकत्र जल के साथ खरल करलें, एवं मरिच प्रमाण में गोलियां बनालें। यह अतिसार को मिटातीं एवं जठरानल को प्रदीप्त करती हैं। हींग, अफीम और खैरसार इनका कपडछान सूक्ष्म चूर्ण करके, जल में पीसकर चने के प्रमाण गोलियां बनालें। पानी के साथ निगीर्ण करने से प्राण-घातक अतिसार को भी ये दूर कर देती हैं ॥ ३९–४० ॥

हींग और अफीम दोनों को घोट कर अच्छी तरह मिला लेवें। इनकी टिकियां बनाकर उनको तवे के ऊपर एक तरफ से ही सेक लेवें। दूसरी तरफ का भाग नहीं सेकें। इस तरह एक ही पार्श्व में सेकी गई टिकियों में से एक चने जितना हिस्सा लेकर शीतल जल के साथ निगल जावें। इससे अतिसार में लाभ होता है। रूमी-मस्तगी, अफीम और हिंगुल इनकी ईसबगोल में सिद्ध किये गये पानी से वर्ति बनालें। गुदामार्ग में इसे रखने से अतिसार शमन हो जाता है ॥ ४१–४२ ॥

एक भाग शृंगी-विष, दो भाग हिंगुल, चार भाग मरिच और दो भाग

१–उदरोपरि शीत एव कृत इत्यर्थः। २–गुर्जरवासिना गुरुशिष्येण। ३–मरिचस्य। ४–मरिचाभा। ५–हिङ्गु। ६–आफूकम्। ७–चणप्रमाणाः। ८–शृङ्गीविषम्। ९–सप्तधेत्यर्थः।

३९ अहिफेनमल्लदरदं विमर्द्य वटदुग्धगं बधान वटीम् ।
शोथातिसाररुजि सा प्रशस्यते क्षुधि तृषि क्षीरम् ॥ ४४ ॥
४० क्षिप्रार्थमव्ययं किं शिथिलयति रयेण किं नदीपूरः ।
वितरन्ति कं बलासे बिल्ववटी कं रुणद्ध्यतीसारम् ॥ ४५ ॥
सोऽसाध्यः परिकीर्तितोऽतिसृतिमान् यस्यातिसार्येत वि-
ण्नीलाभाऽधिकनिर्मला प्रविलसत्सौरभ्यसंभारयुक् ।
अन्तर्दुष्टितयाऽतिविभ्रमलिना बद्धा सिरातन्तुभि-
र्जम्बूवज्जलबिन्दुवज्जलजवज्जम्बालवज्जालवत् ॥ ४६ ॥

इत्यतीसारचिकित्सितम् ।

पिप्पली इनको एकत्र करके नींबू के रस की सात भावनायें दे। इसे आनन्दभैरव रस कहते हैं। यह अतिसार में परम उपकारक है। अफीम, मल्ल और हिंगुल इनको एकत्र लेकर वटदुग्ध में खरल करके गोलियां बांधलें। ये शोथ एवं अतिसार की वेदना में प्रशसनीय असर दिखाती हैं। इसके प्रयोगकाल में भूख तथा प्यास लगने पर, पथ्य रूप में, केवल दुग्ध-पान ही करना चाहिये। अन्न और जल का सेवन निषिद्ध है ॥ ४३-४४ ॥

शीघ्र के अर्थ में किस अव्यय का प्रयोग किया जाता है ? (अरम्), नदी का वेग किस को शिथिल बना देता है ? (तीरम्), कफ को पतला करके बाहर निकाल देनेवाला कौनसा द्रव्य है ? (सारम्-नवसादर), बिल्व-वटी किस को रोकती है ? (अतीसारम्)। (व्यस्तरूप में प्रत्येक प्रश्न के क्रमश उत्तर हैं 'अर, तीर, सार= अतीसारम्'। समस्त रूप में सभी प्रश्नो का एक ही उत्तर 'अतिसार' इस शब्द से दिया गया है ॥ ४५ ॥

(प्रस्तुत श्लोक की अंतिम पंक्तिगत समस्या की पूर्ति महाकवि श्रीकृष्णराम ने, वैद्योचित ढंग से, अतिसार के असाध्य लक्षणो के वर्णन द्वारा की है। महाकवि यदि सिद्ध वैद्य भी हो, तभी यह संभव है।)

अतिसार पीडित रोगी का मल यदि नीलाभ, स्वच्छ, सुगंधयुक्त, मलिनता लिये, सिरातंतुमय अतएव जामुन जैसे वर्ण का (नीलाभ), जल बिंदुओं जैसा (स्वच्छ), कमल जैसा (सुगंध-युक्त), काई जैसा (मलिन), तथा तृण घास आदि से संकुल (सिरातंतुमय) जैसा हो तो उस अतिसार को असाध्य समझना चाहिये ॥ ४६ ॥

— अतिसार चिकित्सा समाप्त —



१-अरं, तीरं, सारम्, इति व्यस्तोत्तराणि, अतीसारमिति च समस्तोत्तरम्।
२-इयं समस्या अतिसारासाध्यलक्षणवर्णनेन पूरिता।

अथ ग्रहणीचिकित्सितम् ।

१ उत्स्वेद्य किमपि कदलीफलानि संनीय कल्पिता पोली ।
संतानिकाविरहिणा दध्ना सह सेविता जयेद्ग्रहणीम् ॥ १ ॥

२ उदुम्बरशलाटूनि स्विन्नानि जलबाष्पतः ।
दध्ना विनीय भुञ्जीत ग्रहणीग्लपितो नरः ॥ २ ॥

३ तक्रे प्रस्थं रसगुणे वासयेत् सिंहचर्मणः ।
तत्तक्रं मानतो हन्ति ग्रहणीं दुस्तरामपि ॥ ३ ॥

४ जातीफलयवमुस्ताबिल्वरजस्तक्रलोलितं पीतम् ।
संधुक्षयति ज्वलनं ग्रहणीं सद्यो निगृह्णाति ॥ ४ ॥

५ वृक्षाम्लफलप्रस्थं सितोपलायाः षडेव बिल्वानि ।
लवणं द्विपलमजाजीत्रिपिचू रुचिरं रजो द्यति ग्रहणीम् ॥ ५ ॥

६ कुञ्जरभक्ष्यच्छल्लकचूर्णं ससितं जलानुपानेन ।
ग्रहणीरुधिरातिस्रुतिग्रसनग्रहिलं विजानीयात् ॥ ६ ॥

— ग्रहणी - चिकित्सा (कुल प्रयोग १०) —

कच्चे केले को थोडा स्विन्न करके उसके अंदर का गूदा निकाल, उस में गेहूं का आटा मिलाकर अच्छी तरह गूंध लें-आटा उतनाही लें जितना गूदे से बराबर बंधजाये। फिर इसकी भाखरी (बाटी) बना कर अंगीठी में सेकलें। मलाई रहित दही के साथ इसे खाने से ग्रहणी वश में आ जाती है ॥ १ ॥

उदुंबर के कच्चे फलों को जल की बाष्प से स्विन्न करके ग्रहणी रोग से परिक्षीण व्यक्ति को दही में मिला कर सेवन करना चाहिये। एक प्रस्थ छाछ में उससे चतुर्गुण अरडूसे की अन्तर्छाल मिला कर मिट्टी के पात्र में भर एक सप्ताह पर्यंत छत पर रहने दें। फिर, इसे वस्त्रपूत करके एक पल भर मात्रा में पीयें, यह दुःसाध्य ग्रहणी को भी वश में कर लेता है। जायफल, जौ, नागरमोथा और बिल्व इनके सूक्ष्म कपडछान चूर्ण को तक्र में मिला कर पीने से जठरानल प्रदीप्त होती है तथा ग्रहणी शीघ्र ही शांत हो जाती है। कोकम चौसठ तोला, मिश्री चोवीस तोला, सैंधव आठ तोला, जीरा तीन तोला इनका कपडछान सूक्ष्म चूर्ण रुचि उत्पन्न करता तथा ग्रहणी को मिटाता है ॥ २–५ ॥

पिप्पल - वृक्षकी छाल के सूक्ष्म चूर्ण में मिश्री मिला कर जलानुपान पूर्वक लेना चाहिये। यह चूर्ण ग्रहणी एवं रुधिर के अजस्र - स्राव को अडग होकर ग्रास कर जाता है। (पीपल की छाल स्तंभक, रक्तसंग्राहक एवं पौष्टिक भी है। इसके कोमल पत्ते प्रथम विरेक करा के पीछे से स्तंभन करते हैं।) ॥ ६ ॥

१–अपक्वानि। २–षड्गुणे। ३–मृद्भाण्डे सप्ताहं हर्म्यपृष्ठे स्थापयेत्। ४–आटरूषान्तरत्वचः। ५–पटपूतं पलप्रमाणम्। ६–पलानि। ७–पिप्पलवल्कलचूर्णम्।

७ प्रत्येकरसँगद्याणौ शिवयोर्वल्कतल्लजैः ।
सप्तकं विषमुष्टीना गोघृते भर्जयेत् क्रमात् ॥ ७ ॥
चूर्णमेषा कृशरया खादतां तूर्णमेव हि ।
प्रयाति ग्रहणीरोगो योगः श्यामाभिभाषितः ॥ ८ ॥

८ शुद्धं शिवाशमेकांशमेकांशं फणिफेनकम् ।
द्व्यंशं गन्धमिति त्रीणि पिष्ट्वा कुर्वीत पर्पटीम् ॥ ९ ॥
विषमुष्टिकधत्तूरबीजजातीफलान्यपि ।
एकांशानि पृथक् तत्र दत्त्वा मसृणतां नयेत् ॥ १० ॥
दाडिमीतिन्तिडीतोयैर्भावयेत् सप्तधा पृथक् ।
वटीर्वध्नीत जरणक्षौद्रैस्ता ग्रहणीच्छिदः ॥ ११ ॥

९ स्वादुस्निग्धवलक्षकोमलकणा घ्राणेन्द्रियग्राहिणी
मृत्स्ना देवतरङ्गिणीपुलिनजा कृत्स्नापदुद्धारिणी ।

हरीतकी और आवला इन प्रत्येक की तीन तीन तोलाभर छाल एवं सात नग कुचले इन को क्रमशः पृथक् पृथक् गाय के घी में भूनलें। फिर, इनके एकत्र चूर्ण को खीचड़ी में मिलाकर लेने से ग्रहणी में शीघ्र आराम मिलता है। यह प्रयोग श्यामजी (ग्रंथकार के विद्वान शिष्य) ने बताया है ॥ ७–८ ॥

शुद्ध किया हुआ पारद और अफीम प्रत्येक एक एक भाग, गंधक दो भाग, इन तीनों को पीस कर, बोर की शाखाओं की अग्नि से पर्पटी-निर्माण-विधि द्वारा पर्पटी बनालें। फिर, शुद्ध कुचला, शुद्ध धत्तूरे के बीज और जायफल प्रत्येक एक एक भाग लेकर उपरोक्त पर्पटी में मिला बारीक पीस कर मुलायम बनालें। अब, इस चूर्ण को दाडिम तथा इमली के रस की पृथक् पृथक् सात सात भावनायें देकर टिकिया बनालें। इनको पुराणे शहद के साथ लेने से ग्रहणी रोग का उच्छेद हो जाता है ॥ ९–११ ॥

घ्राणेन्द्रिय को प्रिय अर्थात् अत्यंत उग्र-गंध से रहित, स्वादु, स्निग्ध, श्वेत, तथा कोमल पिप्पली लें। संपूर्ण विपदाओं से मुक्ति देने वाली भगवती भागीरथी नदी तट की मिट्टी लेवें। इन दोनों को स्वर्ण-गैरिक के साथ पानी में घोलकर अच्छी तरह मिला वस्त्र से छान लेवें। अब इस जल को मंदाग्नि से खूब उकाल कर निःशेष करदें। अवशिष्ट तल-लग्न शुष्क द्रव्य को लेकर खरल करके चूर्ण बनालें। इस चूर्ण

१–षड्गद्याणौ। २–शिवा हरीतकी शिवा धात्री चेत्येकशेषः। ३–इमे श्रीगुरुशिष्याः एवं वैद्यतल्लजाः। ४–पारदम्। ५–बादराग्निनेति शेषः। ६–शुद्धानि विषमुष्टिकानि धत्तूरबीजानि च। धत्तूरबीजशोधनं च यथा–"धत्तूरबीजं गोमूत्रे चतुर्यामोषितं पुनः। खण्डितं निस्तुषं कृत्वा योगेषु विनियोजयेत् ॥" इति।

साकं काञ्चनगैरिकेण सलिलैरालोल्य विस्राविता
सिद्धा मन्दकृशानुना ग्रहणि[2]कापित्तास्रविच्छा न किम् ॥ १२ ॥

१० द्विजीरव्योषमुस्तैलापुष्प[3]जातीफलच्छ[4]दम् ।
मुकूलै[5]लान[6]वातामनारिकेरनृपाद[7]नम् ॥ १३ ॥
श्रीखण्डं दाडिमीवांश्यो तालीसं जातिपत्रिका ।
गुडत्वग्विद्रुमं कोलं शृङ्गाटकवितुन्नके ॥ १४ ॥
प्रत्येकं शाणमानानि शाणार्धं कुङ्कुमोत्तमम् ।
त्रितोलं चिक्कणं पूगं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ॥ १५ ॥
शनैः शरावपयसि पाचयित्वा घनावधि ।
क्षिपेत् सितोपलां सर्पिः पृथक्कुडवमात्रया ॥ १६ ॥
सिद्धोऽवलेहराडेष विधुनोति गदानिमान् ।
ग्रहणीमसृगर्शांसि निर्बलत्वमरोचकम् ॥ १७ ॥

इति ग्रहणीचिकित्सितम् ।

को मधु में मिलाकर फिर, जल में घोलकर पीयें । अथवा शक्कर की चासनी बनाकर इस चूर्ण को उसमें मिला देवें । फिर इसमें से यथामात्रा पानी में घोलकर पीजायें । अथवा चूर्ण को केवल शक्कर में ही मिलाकर जल के साथ ही फांक लेवें । गंगा-तटकी मिट्टी की मात्रा एक तोलाभर है । पथ्य में सांझ को दूध तथा गेहूं का दलिया सेवन करें । इससे ग्रहणी, रक्तपित्त, हैजा आदि शमन होते हैं ॥ १२ ॥

श्वेत और स्याह दोनों प्रकार के जीरे, त्रिकटु, मोथा, इलायची, लौंग, जायफल, तेजपत्र, पिस्ता, चिलगोजा, बादाम, नारियल, प्रियालफल की मज्जा, चंदन, दाडिम, वंशलोचन, तालीसपत्र, जावित्री, दालचीनी, प्रवाल, बौर, सिंघाडा, धनिया प्रत्येक तीन तीन माशा, केसर १½ माशा, चिकनी सुपारी तीन तोला इन सब को एकत्र लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें । इस चूर्ण को बत्तीस तोला दूधमें उकाल कर गाढा करलें । अब, इसमें घृत तथा मिश्री प्रत्येक सोलह तोला प्रमाण में मिला देवें । इस तरह से सिद्ध किया गया यह अवलेहराट्, ग्रहणी, रक्तार्श, निर्बलता और अरुचि का संहार कर देता है ॥ १३–१७ ॥

– ग्रहणी-चिकित्सा समाप्त –

१–पटेन छानिता । २–मधुना विनीय लेहीकृत्य जलेन घोलयित्वा पाययेत् । अथवा सितां सजलां विपाच्य तन्तुमत्त्वं विज्ञाय तत्र क्षिपेत् । किंवा शर्करासहितस्यास्य चूर्णमेव जलेन गिलेत् । मात्राप्रमाणं तोलकावधि मृत्स्नायाः । पथ्यं सायं दुग्धं गोधूमदलिका (दलिया) । ग्रहणिकापित्तास्रेत्युपलक्षणं, वान्तौ हैजाख्ये पैत्तिकेऽप्यवचार्येति ।
३–लवङ्गम् । ४–तेजपत्रम् । ५–'पिस्ता' इति प्रसिद्धं दन्तीबीजसदृशम् । ६–'लौंजा, चिलगोजा' इति प्रसिद्धम् । ७–प्रियालफलमज्जा ।

अथार्शश्चिकित्सितम् ।

मूलद्वारप्रतीहारी शूलधारी भयङ्करः ।
वलिदत्तोदवसितैः शत्रूनर्शोगदः स्यतु ॥ १ ॥
१ गुदचक्रं मार्जय रे तर्जन्या वदनलग्नवालुकया ।
स्यादर्शसा विनाशो मित्र ! विनाशोकमत्र वर्तस्व ॥ २ ॥
२ विषमुष्टिकप्रलेपश्चत्वारिंशद्दिनैर्निहन्त्यर्शः ।
३ अथवेन्द्रवारुणीफलशाटितजलक्षालनमपि तथा ॥ ३ ॥
४ मूत्रेण मुहुरभ्यक्तान्यर्शांसि प्रद्रवन्ति हि ।
स्वस्य वा भिषजो मूत्रमेकमासावधिर्विधिः ॥ ४ ॥
५ उपदेहोऽर्शसि शस्तः कोष्णैः सागरैः पलाण्डुजैः कल्कैः ।
६ मधुना कपोतविष्टावलक्षैसतानिकाप्रलेपोऽपि ॥ ५ ॥

—अर्श-चिकित्सा—(कुल प्रयोग ४२)—

प्रस्तुत श्लोक में अर्श के स्वरूप का वर्णन किया गया है। यह मूल-द्वार का सतरी है (मूलद्वार अर्थात् गुदामार्ग, पक्षान्तर मे नगर का सिंहद्वार)। भयकर आकृति वाला है। शूलधारण किये हुये है (शूल उत्पन्न करने वाला, पक्षान्तर में त्रिशूल हाथ में लिये हुये)। प्रवाहिणी-आदि वलियों में रहता है (पक्षान्तर मे, बलि पुरुषोद्वारा प्रदत्त स्थान-स्थल में निवास करने वाला है)—ऐसा अर्शरूपी प्रतीहारी-सतरी हमारे शत्रुओं का सहार करे ॥ १ ॥

अरे ! अपनी तर्जनी के अग्र भाग में थोडा कपूर लगाकर उससे अपने गुदमार्ग का मार्जन कर, इस से अर्श का विनाश होने पर, विना शोक (शोक-विगत होकर) जीवन व्यतीत कर सकेगा। कुचले का चालीस दिवस तक लेप करने से अर्श का नाश हो जाता है। अथवा, इन्द्रवारुणी फल में से निकाले गये स्वरस द्वारा गुदा का प्रक्षालन करने से भी तद्वत् लाभ होता है। एक मास पर्यंत अपने अथवा वैद्य के मूत्रद्वारा पुन पुन सिक्त करते रहने से अर्श विलीन हो जाते हैं ॥ २–४ ॥

प्याज और एक वालभर नवसादर के कल्क का कोष्ण उपदेह (पुल्टिस्) अर्श

१–ग्रहण्यधिकारानन्तरमर्शोरोगेऽभिधेये प्रथम तत्स्वरूप प्रदर्श्यते—मूलेत्यादि। मूलद्वार गुद, पक्षे प्रधानद्वारम्। २–प्रवाहण्यादिवलिभि, पक्षे बलवद्भिर्दत्तमुदवसित स्थान यस्मै स तथाभूत । ३–विधिरय सप्राप्तिनाशकतया दुर्नामघ्न, प्रायेण खल्वर्शांसि गुदादिषु मलातिसचयक्लेदभावात् सभवन्ति। यदुक्तम्—"ईदृशैश्चापरैर्वायुरपान कुपितो मलम्। पायोर्वलीषु सधत्ते तास्वभिष्यण्णमूर्तिषु ॥ जायन्तेऽर्शांसि।" इत्यादि। तदेव मार्जनेन युक्तस्तदुपघात । ४–सागर नवसादरम्। तच्च वल्लादधिक न ग्राह्यमिति। ५–कपोतविष्टाया उपरिस्थश्वेतभागस्य प्रलेप इत्यर्थ ।

७ पलाण्डून् पटमृल्लिप्तांश्चतुरो गोमयोपलैः ।
चतुष्प्रस्थमितैर्दग्ध्वा गृह्णीयाद्भस्म निर्मलम् ॥ ६ ॥
रसकर्पूरकं धौते घृते तद्भस्म मर्दयेत् ।
अर्शांसि तेन लिप्तानि यान्त्यस्तं नात्र संशयः ॥ ७ ॥

८ तुत्थं सुजातदध्ना लेपादर्शांसि हन्ति नव्यानि ।
कस्यापि कवीन्द्रशिशोरर्शांसि गतान्यनेन लेपेन ॥ ८ ॥

९ जङ्गालसंज्ञं मुलतानमृत्स्नया विघृष्य दध्ना विदधीत वर्तिकाः ।
तासां प्रलेपादपयान्ति पायुजा विघर्षितानां दधिसर्वतोमुखैः ॥ ९ ॥

१० शवार्श्मा पर्पटीकाथो जाशदं कज्जलं त्रुटिः ।
चतुर्भ्यो विधुरर्धांशः सर्पिः सर्वचतुर्गुणम् ॥ १० ॥
एष सिद्धो मलहरो धौतो वारां सहस्रशः ।
रक्तपित्तोल्बणार्शांसि निर्वापयति लेपतः ॥ ११ ॥

११ कृत्रिमहिमोपलशिलाशकलस्य विशिष्य बन्धनतः ।
स्रवदस्रनिर्झराणि प्रयान्ति विध्वंसमर्शांसि ॥ १२ ॥

में प्रशस्त है । कपोतविष्ठा के उपरिगत श्वेत भाग को शहद में मिलाकर लेप करने से भी अर्श में लाभ होता है ॥ ५ ॥

चतुर वैद्य चार प्याज को कपडमिट्टी करके चार प्रस्थ गोबरी की आंच में फूंककर उनकी निर्मल भस्म बनाले । इस भस्म में रसकर्पूर मिलाकर शतधौत घृत के साथ खरल करले । इसके प्रलेप से रक्तार्श निःसंदेह अस्तंगत हो जाते हैं । अच्छी तरह जमे हुये दही के साथ तुत्थ को मिलाकर लेप करने से नूतन अर्श दूर हो जाते हैं । इस लेप से किसी कविशिरोमणि के पुत्र के अर्श में लाभ हुआ है ॥ ६–८ ॥

मुलतानी मिट्टी में जंगाल को अच्छी तरह घिसकर दही मिला वर्तिकायें बनालें । इन वर्तिकाओं को दही के तोड में घिसकर लेप करने से नूतन अर्श दूर हट जाते हैं ॥ ९ ॥

मुरदासींगी, कत्थे का क्वाथ, जसद से निर्मित कज्जल (सफेदा), इलायची तथा इन चारों द्रव्यों से अर्धभाग कपूर, इन सभी द्रव्यों से चतुर्गुण घृत, इन सब को यथाविधि मिलाकर, मलहम सिद्ध करलें । इस मलहम को, फिर, शतबार धोकर लेप करने से रक्तोल्बण अर्श प्रशमित हो जाते हैं ॥ १०–११ ॥

बरफ के टुकडे को गुदा में रखकर उसे कसकर बांध देवें । इससे रक्तस्रावी

१–न किंचित्तिरोहितमत्र, द्वाभ्यामेको योगः । २–रौधिराणीति शेषः । ३–तुत्थमत्र गुञ्जाद्वयादधिकं न ग्राह्यम् । ४–हतानीति पाठान्तरम् । ५–धात्वनुकारि द्रव्यविशेषम् । ६–अनतिक्रान्तसंवत्सराः । ७–दधिजलैः । ८–'मुरदासींगी' इति प्रसिद्धः । ९–'पपडी कत्था' इति प्रसिद्धः । १०–'मरहम' इति यवनवैद्यैः प्रचारिताभिधेयः । ११–जलेन । १२–यन्त्रद्वारा निष्पादितस्य 'वरफ' इति [illegible]

१२ चक्रिका शुक्रमृत्स्नायां बद्धा पायुमुखोपरि।
पित्तोद्रेकवतां हन्ति दुर्नाम्नां दाहमुच्चकैः ॥ १३ ॥
१३ निम्बपत्त्राणि कम्पिल्लं पारसीकयवानिका।
प्रत्येकमेकभागानि वृषशृङ्गभवाङ्कुराः ॥ १४ ॥
मालिवीपचिका चेति द्वयं भागद्वय पृथक्।
एषा धूपो धुनोत्यर्शः शतधौतघृताञ्चितम् ॥ १५ ॥
१४ पञ्चशाणमित तुत्थं शल्लकीकण्टकत्रयम्।
धूपो नाशाय दुर्नाम्नामङ्गारावैरण मृदा ॥ १६ ॥
१५ यवतुषयुतया धूपो वृषदंशविशा नियोजितो युक्त्या।
दिनसप्तकप्रयोगात् कुरुते रुधिरार्शसां ध्वंसम् ॥ १७ ॥
१६ शाखामृगशकृद्योनिर्धूमो यन्त्रेण योजित॰।
अर्शस्सरम्भसंहारकर्मकर्मठ उच्यते ॥ १८ ॥
१७ मूलगर्जरबीजाहिकञ्चुकीसिक्थधूपत॰।
त्रिभिर्दिनै शमं यान्ति गुदजा रुधिरोल्वणा॰ ॥ १९ ॥

अर्श नष्ट हो जाते हैं। मुलतानी मिट्टी की टिकिया को गुदा मुख के ऊपर बाध दे। इससे पित्तोल्वण अर्श के उग्र दाह में लाभ होता है ॥ १२–१३ ॥

निंब के शुष्क पत्ते, कबीला, तथा खुरासानी अजवायन प्रत्येक एक एक भाग, बैल के सींग पर उत्पन्न शृगाङ्कुर और मालियापची प्रत्येक दो दो भाग इनकी धूप लेने से तथा शतधौत घृत का प्रलेप करने से अर्श नष्ट हो जाते हैं। तीन तोला तुत्थ और शल्लकी के तीन काटे इनकी धूप देने से अर्शों का नाश होता है। यहा प्रज्वलित अगारो को मुलतानी मिट्टी से थोडा ढककर फिर धूप लेनी चाहिये। मार्जार-विष्ठा में यव के तुष मिलाकर युक्तिपूर्वक धूप लेवें। सात दिवस प्रयोग करने से रक्तार्शों का विध्वस हो जाता है। वानर-विष्ठा की धूप को नाडीयन्त्र द्वारा लेवें। इस उत्तम क्रिया से अर्श-जन्य शोथ का अथवा अर्श के प्रचड उत्पात का सहार हो जाता है ॥ १४–१८ ॥

मूली और गाजर के बीज तथा सर्पकचुकी इनका सूक्ष्म कपडछान चूर्ण बनाकर इसमें सम भाग सिक्थ मिला अच्छी तरह कूट लेवें। यथामात्रा में गुटिकाये बनाकर

१–मुलतानदेशीयया। २–शुष्काणि। ३–एतन्नाम्नैव लोके प्रसिद्ध सोमराजीभेद। ४–अर्शों घृताभ्यक्त कृत्वा धूपो देय। ५–प्रथम मुलतानमृदा किञ्चिदङ्गानावृत्य ततो धूप गृह्णीयादिति। ६–मार्जारविष्ठया। 'ओतुर्बिडालो मार्जारो वृषदंशक आखुभुक्' इत्यमर। ७–वानरविष्ठाविहितो धूप। ८–सच्छिद्रखर्परयन्त्रेण नाडीयन्त्रेण वा। ९–मूलकबीज-गर्जरबीजसर्पकञ्चुकीना पटपूत रज कृत्वा सिक्थेन समं सकुट्य मात्रया गुटिका कर्तव्या, प्रमाणमत्र समम्।

१८ नवसादरं च पीतभ्रमरच्छत्रमसिताहिनिर्मोकः ।
द्विगुणो यथोत्तरमयं धूपोऽर्शस्सु प्रशस्ततरः ॥ २० ॥
१९ कल्कस्य देशिच्छदेकलिपतस्य धूपः सयत्नं भिषजा प्रयुक्तः ।
अर्शांसि बाह्यानि हठेन हन्ति हरिर्यथा दैत्यबलानि वेगात् ॥ २१ ॥
२० पादांशैलसहायस्य पीतमल्लस्य वर्तिका ।
गुदाध्वना विबन्धार्शःप्रणुदन्तःप्रवेशिता ॥ २२ ॥
२१ कपिशाखुजितः पिचुना पयःप्लुतेन त्र्यहं गुदस्थेन ।
बलिगा अपि गुदजा बहिरायान्ति बिलाद्यथा सर्पाः ॥ २३ ॥

धूप लेवें। तीन दिवस में ही रक्तार्श शमन हो जाते हैं। नवसादर एक भाग, पीत भ्रमर का छत्ता दो भाग, और कृष्णसर्प की कंचुकी चार भाग, इनको एकत्र कूटकर इनकी धूप लेवें। यह अर्शों में उत्तम लाभ देती है। देशी कागज का कल्क बनाकर, उसकी, वैद्य, यत्नपूर्वक, धूप देवे। विष्णु ने जिस तरह दैत्यसेना का संहार कर दिया था उसी तरह यह धूप शीघ्र ही बलपूर्वक बाह्य अर्शों का विध्वंस कर देती है ॥ १९–२१ ॥

पीतवर्ण का मल्ल और उससे चतुर्थांश जितना एलिया दोनों को एकत्र मिलाकर कनिष्ठ अंगुली जितनी मोटी तथा डेढ पर्व जितनी लंबी एक वर्तिका बना लेवें। इस वर्ति को घृताक्त बना गुदामार्ग से मलाशय के भीतर प्रविष्ट करके रख देवें। प्रविष्ट करते समय रुग्ण को चने का मोदक खिलाना चाहिये। यह वर्ति मलावरोध सहित अर्श में चमत्कारिक लाभ दिखाती है। जलोदर, उदावर्त आदि उग्र विकारों में भी यह आशु असर करती है। इमली वृक्ष की शाखा के निंब जल में बुझाये गये कोयलों की राख भी इसमें मिलानी चाहिये ॥ २२ ॥

प्रस्तुत तीन श्लोकों से अर्शों को मूलसहित नष्ट कर देने वाले प्रयोग का वर्णन किया जाता है। एक तोलाभर पीतवर्ण मल्ल को पानी में खूब महीन पीसकर उससे

१–पीतभ्रमरः 'टांञ्या' इति प्रसिद्धः, तस्य छत्रम्। २–देशीयस्थूलकागदकलिपतस्य। ३–वर्तिका हस्तकनिष्ठाङ्गुलीपरिणाहा सार्धपर्वदीर्घा कार्या, घृतेन किंचिदिव विलिप्य प्रवाहणविस्फारितेन गुदमार्गेण मलाशये फलवर्तिरिव प्रवेशनीया; गुटिकाप्रवेशसमनन्तरमेव हरिमन्थमोदको भक्षणीयः महाफलेयं वर्तिका जलोदरोदावर्तादिमहाव्याधिष्वपि स्फुटचमत्कारा। निम्बजलनिर्वापितानि कोकिलानि तिन्तिडीकस्येह प्रक्षिपन्ति। ४–अथ त्रिभिः श्लोकैरर्शसां समूलमुत्खननप्रकारः सिद्धिदोऽभिधीयते। तत्र पूर्वं पीतमल्लचूर्णं सूक्ष्मं पानीये आप्लाव्य, तत्प्लुतेन सूक्ष्मवस्त्रखण्डेन विनापुरीषोत्सर्गकालं सर्वदा चतुर्विंशतिप्रहरान् गुदं समावृण्वीत, प्रक्षालनमपि सुखस्पर्शमेव कुर्यात्, एवं त्र्यहेऽतिक्रान्ते तदैव पश्चाद्वा अन्यतमवलिस्थगुदजजालं बहिर्निस्सरति, ततो निस्सरणानन्तरं गुञ्जादीनां लेपः, तत्समकालमेव करीरशलाटुचूर्णभक्षणमपि कार्यम्, आलेपात्तैलपित्तकारिणीप्रभृतितीक्ष्णद्रव्याणां परिहारः। एवमर्शांसि समूलमुत्पतन्तीति।

जलक्लिन्ना रक्तगुञ्जा संभ्रष्ट काकतिन्दुकम्।
सावु चेति गुटी लेपादुर्नामविनिपातिनी ॥ २४ ॥

संस्वेद्यं कोमलकरीरशलाटुकानि क्षिप्त्वा कटे खरतरातपत॰ प्रशोष्य।
भुञ्जीत मेदुरसरेण सुजातदध्ना रक्तार्शसा प्रशमनाय वशी प्रभाते ॥२५॥

२२ कोऽपि न यं देवमृते सिञ्चति चूतस्य तस्य पत्राणाम्।
परिपाकपिञ्जराणा धूम पीतो निहन्ति रुधिरार्श ॥ २६ ॥

२३ वज्रदन्त्या प्रकुञ्चैकं शकलीकृत्य किञ्चन।
घृतंक्षौद्रसमावापे द्वित्रिप्रस्थे जले पचेत् ॥ २७ ॥

एक सूक्ष्म किंतु स्वच्छ वस्त्रखड को सिक्त करके, गुदामार्ग में रख देवें। इस तरह इसे तीन दिवस पर्यंत रहने दें। तथा उपरोक्त मद्य जल से, सुख-स्पर्श पूर्वक, गुदा का प्रक्षालन भी करते रहें। मलत्याग-काल के अतिरिक्त सभी समय तक, सर्वदा इस वस्त्रखंड से गुदामार्ग को आच्छादित रखना चाहिये। तीन दिवस व्यतीत होने पर वलिगत अर्शांकुर, बिल में से सर्प की तरह, बाहर निकल आयेंगे। अर्शों के बाहर निकल आने पर उनपर निम्नलिखित गुञ्जादिवटी का लेप करें। रक्तगुञ्जा को रातभर पानी में भिगोकर रहने दें। प्रात काल, इन रक्तगुञ्जाओं में शुद्ध कुचला तथा देशी बनावट का साबुन मिलाकर उनको बारीक पीसकर गुटिका बनालें। अब, इसका लेप (उपरोक्त) अर्शांकुरो पर कर देवें। इससे ये नीचे गिर जायेंगे। अर्शों पर गुञ्जादिवटी का लेप करते समय रुग्ण को करीर के कच्चे फलों का चूर्ण खिलाना चाहिये। तथा गुञ्जा-वासित पानी भी पिलाना चाहिये। करीरफल-चूर्ण निम्न विधि से बनाकर उसे अच्छे जमे हुये तथा प्रचुर मलाई वाले दही के साथ मिलाकर प्रात काल देना चाहिये। करीर के कोमल कच्चे फलों को बिना जल के स्विन्न करके सूर्य के उग्र ताप में सुखा उसका चूर्ण बनाये। इस चूर्ण की एक मात्रा छ माशाभर है ॥ २३–२५ ॥

केवल मेघजल से परिसिञ्चित एव परिवर्धित अतएव एकांत जगल में उगे हुये आम्र के परिपक्व पीले पत्तों का चूर्ण बनाकर उसके धूम का पान करने से रुधिरार्श मिटता है ॥ २६ ॥

वज्रदन्ती चार तोलाभर लेकर उसके छोटे छोटे टुकडे करलें। इनको दो तीन प्रस्थ जल में उकाल लेवें। इस जल में, पहिले, चार तोलाभर घृत एव इससे आधी मात्रा में शहद लेकर, मिला देना चाहिये। जब उकल कर पानी अर्ध भाग शेष रह

१–सर्वां रात्रिम्। २–'सावून्' इति प्रसिद्ध वक्ष्यमाणनिष्पत्तिप्रकारम्। तच्च देशीयमेवादेयम्। ३–जलयोगाद्वटी कार्या। गुञ्जावासितजलमप्यत्र देयम्। ४–जल विनेति शेष। मात्रा चास्य गद्याणमिता। प्रयोगश्चाय केवलमपि प्रचरति। ५–मेघ विना। ६–मेघशृङ्ग्यपरपर्याया भवति वज्रदन्ती नाम काचिदौषधि, तस्या। ७–घृतमत्र पल, तदर्धं क्षौद्र, समानयोस्त्वयोर्विरोधादिति।

क्वाथस्यार्धावशिष्टस्य भागाः कार्यास्त्रयः क्षमाः ।
तेष्वेकं प्रपिबेद्भागं द्वाभ्यां गण्डूषकांश्चरेत् ॥ २८ ॥
निरुध्यतेतरामस्रमर्शसां वेगवाह्यपि ।
दार्ढ्यं भवति दन्तानां भवितव्यं हिताशिना ॥ २९ ॥
२४ कलिकाः सविधविकाशा[1] दाडिमजा द्विगुणशर्करा कलिताः ।
द्वादशगुणेन वारा लुलिताः पीता जयन्ति रुधिरार्शः ॥ ३० ॥
२५ चिञ्चा[2]किसलयकल्को जललुलितः पट्टपावितः सपटुः ।
रुधिरात्मकानि हन्यादर्शांस्यासामयोगि[3]निर्दिष्टः ॥ ३१ ॥
२६ द्वीपान्तरीय[4]चूकपत्राणि मरीचमिश्राणि ।
पिष्ट्वा लुलितानि जलै रुधिरं रुन्धन्ति दुर्नाम्नाम् ॥ ३२ ॥
२७ कल्कमपामार्गमयं विसिश्य सुजाततक्रेण ।
सुवसनविलुलनगलितं पिब रुधिरार्शःसु भेषजं ललितम् ॥ ३३ ॥

जाये, तब इस क्वाथ के सममात्रा में तीन भाग करलें। इसमें से एक भाग क्वाथ को पीयें। अवशिष्ट दो भाग क्वाथ से गंडूष लें। यह प्रयोग तीव्र वेगयुक्त रुधिरार्श को प्रशमित कर देता है। तदुपरांत, पथ्यपूर्वक रहने से यही प्रयोग दांतों को भी मजबूत बनाता है ॥ २७–२९ ॥

अर्धविकसित दाडिम की कलियां दो तोलाभर (हस्तलिखित प्रतिवाले प्रयोग के अनुसार एकादश कलियों को प्रातःकाल ही ग्रहण करके उपयोग में लेनी चाहिये) तथा इनके वजन से द्विगुणित मात्रा में शर्करा इन दोनों को शिलापर चटनी की तरह महीन पीस लें। इनको बारह गुणित पानी से छानकर पीयें। ग्यारह दिवस प्रयोग करने से रुधिरार्श मिट जाते हैं। पथ्यरूप में गाय का मक्खन, बेढमी आदि शस्त तथा तैल, लवण, अम्लादि वर्ज्य हैं ॥ ३० ॥

इमली के कोमल पत्तों के कल्क को पानी में मिलाकर वस्त्रपूत करलें। फिर थोडा सैंधव मिलाकर पीने से रुधिरार्श शांत होजाते हैं। यह प्रयोग आसाम के एक संन्यासी (योगी) का बताया हुआ है ॥ ३१ ॥

इंग्रेजी चूके में मिरच मिलाकर पीस लें। फिर जल में मिलाकर पीने से अर्शगत रक्त-स्राव बंद होता है ॥ ३२ ॥

अपामार्ग के पंचांग कल्क को अच्छी तरह जमे हुये दही से बनाई गयी छाछ में घोल लेवें। फिर, स्वच्छ वस्त्र से छानकर, रुधिरार्श में पीयें, यह उत्तम औषधि है ॥३३॥

१–विकाशोन्मुखा इत्यर्थः। मानं तोलकद्वयं, सप्तरात्रं प्रयोगोऽयम्। पथ्यं गव्यं नवनीतं, तच्च द्वादशतोलकम्। पोलिकाऽपि देया लवणाम्लवर्जम्। पित्तानुबन्धे रक्तार्शसि देयम्। २–'इमली' इति प्रसिद्धवृक्षस्य दलकल्कः। ३–आसाम इति प्रसिद्धो देशविशेषः, तद्वासियोगिनोपदिष्टः। ४–'इंग्रेजी चूका' इति लोके प्रसिद्धिः।

२८ कल्कं निम्बमहानिम्बसहस्रसुमपत्रजम् ।
पलोन्मितं गिलेदर्शोस्स्रवदस्रनिवृत्तये ॥ ३४ ॥
२९ अभयातिलभल्लातैः कल्पयेत् कल्कमुत्तमम् ।
गद्याणं तस्य शाणं वा गिलेद्वातासृगर्शसि ॥ ३५ ॥
३० छिगद्याणासुरीं ग्राह्या तत्रार्धा भर्जयेद्घृते ।
द्वयीं पिष्ट्वा गिलेत् प्रातर्जलैर्दुर्नामशान्तये ॥ ३६ ॥
३१ कम्पिल्लराजिकाचूर्णं दध्ना गद्याणगौरवम् ।
सप्ताहं पिबता नृणां शुष्कमर्शो न तिष्ठति ॥ ३७ ॥
३२ कुटजत्वग्रजग्रङ्क्ष निगीर्यान्वेच चर्वयेत् ।
ससितान् भ्रष्टचणकान् शाम्येद्रुधिरमर्शसाम् ॥ ३८ ॥
३३ लधुचूर्णं त्रिगुणसितं प्राज्येनाज्येन संनय रे ।
रौधिरमर्शः शमयति निषेविता कतलिका तस्य ॥ ३९ ॥
३४ घृतकृतमितसंस्कारा रसगन्धककज्जली द्विगुणबोला ।
अरदस्पर्शं गिलिता सलिलैरसृगर्शसां प्रशमलोला ॥ ४० ॥

निंब, महानिंब और हजारापुष्प इन तीनों के कोमल पत्तो का कल्क बनालें। इस कल्क को चार तोला भर अल्पाल्प मात्रा से निगल जायें। इससे अर्श-गत रुधिर स्राव निवृत्त होता है ॥ ३४ ॥

हरडे, तिल और भिलावा इनका खूब बारीक कल्क करलें। छ अथवा तीन माशा भर मात्रा में इस कल्क को निगल जाने से वातप्रधान रक्तार्श में लाभ होता है ॥३५॥

राई एक तोला भर लेंव। इसमें से अर्धभाग जितनी राई को घी में भूनलें। इस भूनी हुई राई को अवशिष्ट राई में मिला बारीक पीसकर जल के साथ, प्रात फाक जाये। इससे रक्तार्श शात हो जाता है ॥ ३६ ॥

कबीला और राई के छ माशा भर चूर्णको, सात दिवस पर्यंत, दही के साथ लेने से वातश्लेष्मजन्य शुष्क अर्श निवृत्त हो जाता है। कुटज त्वक् के चार माशा भर सूक्ष्म चूर्ण को निगल उसके ऊपर मिश्री मिलाकर भूने हुये चनों को चबाने से रक्तार्श शमन होते हैं। चूर्ण लेने के पीछे तीन घटे तक जल नहीं पीना चाहिये ॥ ३७-३८ ॥

अगुर के चूर्ण में उससे त्रिगुणित मिश्री तथा प्रचुर मात्रा मे घृत मिलाकर थाली में जमा दें। इसकी कतलिका बनाकर खाने से रुधिरार्श शात हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

पारद तथा गधक की कज्जली मे थोडा घी डालकर खरल करलें, उसमें कज्जली से

१-सहस्रसुम लोके 'गेंदहजारा' इति प्रसिद्धम्। २-अल्पाल्प क्रमेण गिलेत्, जल चानुपिबेत्। ३-वातानुबद्धरक्तार्शांसि। ४-राजिका। ५-रक्तार्शश्शान्तये इत्यर्थः। ६-वातश्लेष्मजातमित्यर्थः। यदुक्तम्-"शुष्काणि वातश्लेष्मभ्यामार्द्राणि त्वस्रपित्तत।" इति। ७-अत्र प्रयोगे याम जल न पिबेदिति रहस्यम्। ८-अगुरुचूर्णम्। ९-बोल. 'बीजाबोल' इति लोके प्रसिद्धिं गता।

३५ घटे पटग्राहितृणान्तरस्थं पिधाय तुत्थं दह गोमयाग्नौ ।
सिद्धं सितं पाटलखण्डगूढमर्शोनिवृत्त्यै गिले रक्तिमानम् ॥ ४१ ॥
३६ पूर्णान्तरं सौररसाञ्जनाभ्यां मूलं पृथग्बिल्वसमुद्धृताभ्याम् ।
सम्यग्विपक्वं पुटपाकरीत्या दुर्नामरोगे हितमामनन्ति ॥ ४२ ॥
३७ मूलकमुत्कीर्य महत्तत्र पिधाय पिचुमन्दमज्जानम् ।
पुटपाकरीतिपक्वं पिष्ट्वा गुटिकीकृतं निहन्त्यर्शः ॥ ४३ ॥

द्विगुणित हीराबोल भी मिला देवें । इसको पानी के साथ इस तरह से निगल जावें, जिससे दांतों का स्पर्श न हो । यह रक्तार्श को शीघ्र प्रशमित कर देती है ॥ ४० ॥

बिल्लीघास में (बीज-कणों सहित इस घास का उपयोग करें) तुत्थ को लपेट कर एक घट में भरदें । इस घट को गजपुट की अग्नि देवें । जब तुत्थ की श्वेतवर्ण भस्म हो जाये तब दोनों को लेकर उनको पृथक् पृथक् खरल कर लेवें । तुत्थभस्म के साथ पटग्राहि-तृण (उपरोक्त बिल्लीघास) की भस्म को मिलाकर जल के साथ निगल जायें । इसकी मात्रा एक रत्ति है । जबतक भस्म श्वेतवर्ण की न हो तब तक पुनः पुनः गजपुट देवें । उपरोक्त भस्म-मिश्रण को छालखांड में लपेट कर देना चाहिये । इससे अर्श निवृत्त हो जाते हैं । इस भस्म के सेवनानन्तर शीघ्र ही शक्कर तथा दूध मिलाकर भात खिलाना चाहिये । विलंब होनेपर रोगी को वमन हो जाने का भय रहता है । यदि तुत्थ एक तोला लेवें तो घास एक प्रस्थ (चौसठ तोला) लेना चाहिये । इस प्रयोग में वैद्य को, रुग्ण से द्रव्यादि ग्रहण करने का सर्वथा निषेध है ॥ ४१ ॥

सोरा और रसांजन प्रत्येक चार चार तोला लेवें । इनको एक बडी मूली में अच्छी तरह भर देवें । मूली के बडे बडे टुकडे करके (जिस तरह वृन्ताक आदि को चीरकर उसमें मसाले आदि भरे जाते हैं, उसी तरह) उनको चीरकर उसमें सोरा और रसाञ्जन चूर्ण को भर उन टुकडों को कपडमिट्टी कर लेना चाहिये । इन टुकडों को पुटपाकविधि से अच्छी तरह पकालें । पित्तप्रधान रक्तार्श में यह प्रशस्त हैं ॥ ४२ ॥

एक स्थूल मूली को चीरकर उसमें निम्बोली की मज्जा भरकर उसको पुट-पाक विधि से पकालें । तदनन्तर उसे खरल करके गोलियां बना लेवें । ये अर्श को मिटा देती हैं ॥ ४३ ॥

१–' बिल्लीघास, कुतरीघास ' इति ख्यातम् । तच्च सबीजकणमेवोपयोगि । २–गजपुटे । ३–सितमिति सिद्धपरीक्षा, अन्यथा पुनः पुटनीयम् । ४–' छालखांड ' इति प्रसिद्धम् । ५–जलेनेति शेषः । अत्रेदं रहस्यं–पटग्राहितृणभस्मापि तुत्थेन साकमेव देयम् । पथ्यं भक्तं सदुग्धसितं, तच्च समनन्तरमेव देयं, विलम्बे वमनभयम् । प्रयोगश्च त्रिदिनावधिः । तुत्थं कर्षमितं चेद् घासः प्रस्थमितो ग्राह्यः । अत्र रोगिसकाशाद्द्रव्यं न ग्राह्यमित्युपदेशः । ६–मूलककन्दं, तच्च महद्ग्राह्यम् । ७–पलप्रमाणेनोद्धृताभ्यामित्यर्थः । ८–पित्तोल्वणे । ९–' निम्बोली ' इति प्रसिद्धफलमज्जानम् ।

३८ रसाञ्जनं पय:पूतं[1] क्वथनात् सान्द्रतां गतम्।
तदङ्घ्रिनिम्बदलजं[2] चूर्णमर्शांसि तद्गुटी ॥ ४४ ॥
३९ एलं[3] षण्मासमष्टाग्रैः रसैः कौकुरमार्कवैः[4]।
पिष्ट्वा वल्लोन्मिता नित्यं दुर्नामसु वटीर्गिलेत् ॥ ४५ ॥
४० चेदुच्छूनत्वमर्शःसु शूलं वा गाढविड्कता।
तदार्द्रभित्तजं क्वाथं दृष्ट्वाऽव्ययगुणं पिबेत् ॥ ४६ ॥
४१ धारोष्णं गव्यमादाय दुग्धं कुडवसंमितम्।
निम्बवम्बुना[5] पिब क्षिप्रं रुधिरार्शोनिवृत्तये ॥ ४७ ॥
४२ यवानीयुग[6]सौवीर[7]स्फटिकाः सार्धमाषिकाः[8]।
हरीतकी प्रवाल[9]श्च स्यातां माषद्वयोन्मितौ ॥ ४८ ॥

रसाञ्जन को, पानी में, रातभर, भिगो दें, प्रातःकाल वस्त्रपूत करके उकाल कर सान्द्र-घट्ट-बना लेवें। अब, रसाञ्जन से चतुर्थांश जितना, निंब के छायाशुष्क कोमल पत्तों का चूर्ण लेवें, इन दोनों को मिलाकर गोलियां बनालें। ये अर्श में प्रशस्त कही गयी हैं ॥ ४४ ॥

छ माशाभर एलिया को कूकर भागरे के बत्तीस तोले भर रस की भावनायें देकर एक वाल (वल्ल)भर छोटी छोटी गुटिकायें बनालें। अर्श रोग में इसका नियमित सेवन करें ॥ ४५ ॥

यदि अर्श फूल गये हों, शूल चलता हो अथवा मल गाढा बन गया हो तो आर्द्रक का एक टुकडा लेकर उसका क्वाथ बनाकर पीयें, यह सुनिश्चित असर दिखाता है ॥ ४६ ॥

गाय के धारोष्ण सोलह तोला भर दूध को निंबू के रस के साथ पीये। इस से रक्तार्श शीघ्र निवृत्त हो जाते हैं। यहां एक निंबू का रस पर्याप्त है। दूध पीने की विधि इस तरह है-प्रथम, निंबू की दो फाक करके तदन्तर्गत बीजों को निकाल लें। अब, वैद्य एक हाथ से, रोगी के मुख से लगी हुई अंजलि में दूध की धारा को तथा उसके साथ साथ ही दूसरे हाथ से निंबू को निचोडकर उसके रस को भी डालता रहे। इस तरह रुग्ण को एक साथ ही दूध तथा निंबू का रस संपूर्णतया पिला देवे ॥ ४७ ॥

अजवायन, खुरासानी अजवायन, सफेद सुरमा और फिटकरी प्रत्येक डेढ डेढ माशा, हरीतकी और प्रवाल प्रत्येक दो दो माषा, आंवला और बहेडा प्रत्येक १-१ माषा, मोती आधा माशा तथा गुग्गुल तीन तोला लेवें। प्रथम, गुग्गुल को पानी में

१-सायं जलेनाभाव्य प्रातः पटपूतं क्वथनीयम्। २-निम्बदलानि छायाशुष्काण्युपादेयानि। ३-'एलियो' इति प्रसिद्धम्। ४-'कूकरभगरा' इति नाम्ना प्रसिद्धस्य रसैः। ५-निम्बूकस्यैवेव। ६-यवानी पारसीकयवानीति यवानीयुगम्। ७-'सुरमा' इति ख्यातं, तच्च श्वेतम्। ८-प्रत्येकमध्यर्धमाषिकाः। ९-प्रवालो विद्रुमः।

धात्रीबिभीतकावत्र पुनरेकैकमाषकौ ।
मौक्तिकान्यर्धमाषाणि पुरं गद्याणपट्ककम् ॥ ४९ ॥
सर्वं संचूर्ण्य संनीय पटपूतैः पुरद्रवैः[1] ।
बद्धा वल्लसिता वटयो दुर्नाम्नामन्तकारिकाः[2] ॥ ५० ॥

इत्यर्शश्चिकित्सितम् ।

अथाग्निमान्द्यादिचिकित्सितम्[3] ।

१ सुखोष्णमच्छै[4]र्मरिचैस्त्रिमाषैर्घृतोत्तरं भक्तमुदारमश्नन् ।
कृशात् कृशानोरतिसारतोऽपि मुक्तो भवेत् पाटवतोऽप्यमुक्तः ॥ १ ॥
२ विविधा[5]म्लवारिभावितषड्गुणगन्धेन जारितो मल्लः ।
मन्दविषमाग्निमूलकगदमददलने महामल्लः ॥ २ ॥
३ शोधितगन्धक[6]पारदपिष्टी पिप्पलिकाऽपि तया समभागा ।
श्लक्ष्णमिदं विरचय्य भजन् भो दैन्यमजीर्णभुवं बहु मागाः ॥ ३ ॥
४ सौवर्चलं विडं व्योषं पथ्या[7]जीरकयोर्युगम् ।
यवानी दीप्य[8]कं धान्यं चित्रकं साम्लवेतसम् ॥ ४ ॥

गालकर द्रव बनाकर वस्त्रपूत करलें । अवशिष्ट द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को इस गुग्गुल द्रव से खरल करके उनकी एक वल्लभर गोलियां बांधलें । ये गोलियां अर्श का अंत कर देती हैं ॥ ४८-५० ॥

– अर्श-चिकित्सा समाप्त –

– अग्निमांद्य (अजीर्ण, विसूची, अलसक, कृमि) आदि की चिकित्सा (कुलप्रयोग ३०)–

जल से खूब धौत, मरिच के तीन माषा चूर्ण से युक्त तथा घृत से सिक्त कवोष्ण भात को तृप्ति-पूर्वक खाते रहने से व्यक्ति स्वास्थ्य से युक्त किंतु कृशानुकी कृशता एवं अतिसार से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

वृक्षाम्ल, निंबु, बिजौरा, अम्लवेत आदि अम्ल-रसों से भावित षड्गुण-जारित मल्ल मंदाग्नि, विषमाग्नि आदि से उत्पन्न रोगों के मदको विदलित करने में साक्षात् महामल्ल ही है ॥ २ ॥ शुद्ध गंधक और शुद्ध पारद की कज्जली तथा समभाग पिप्पली इन दोनों को खरल करके, अत्यंत मुलायम बनाकर, सेवन करनेवाले हे मानव ! तू अजीर्ण जन्य दैन्य से क्यों दुःखी है ? ॥ ३ ॥

सौवर्चल, विडलवण, त्रिकटु, छोटी-बडी हरडे, श्वेत-कृष्णजीरक, अजमोदा,

---

१–पुरं जलेन संगाल्य द्रवं कार्यम् । २–रौधिराणाम् । ३–अर्शश्चिकित्सितानन्तरमग्निमान्द्याजीर्णविसूच्यलसककृम्यादिचिकित्सा निबध्यते । ४–जलेन गाढं धौतैः । ५–वृक्षाम्लनिम्बुलुङ्गचाङ्गेरीत्रिपत्रीवारिभिर्भावितेन षड्गुणगन्धेन । ६–कज्जलिका । ७–महद्ध्रस्वभेदात् पथ्यायुगं, श्वेतकृष्णभेदाज्जीरकयुगम् । ८–अजमोदा ।

तुल्यान्येतानि वृक्षाम्लं सर्वतुल्यमिदं रज ।
दीपनं पाचनं रुच्यं ग्रहणीगदमोचनम् ॥ ५ ॥
५ मूत्रकृच्छ्रेऽभिधातव्यः सारो य पिञ्जरच्छविः ।
आदित्यमाषकोन्मानं तं समादाय मेलयेत् ॥ ६ ॥
द्विद्विमाषैर्भृशं भ्रष्टैः पाक्यसामुद्रसैन्धवैः ।
विश्वैलाजीरमरिचैः पृथक् शाणमितैरपि ॥ ७ ॥
हिङ्गुना माषमात्रेण ततः सर्वं विचूर्णयेत् ।
तच्चूर्णं मात्रया प्राश्य मान्द्याजीर्णहरं परम् ॥ ८ ॥
६ सौवर्चलं सादरमर्कपुष्पं मरीचमेकत्र समं विमर्द्य ।
गुञ्जाप्रमाणा गुटिका विधेया कर्षन्ति कार्श्यं क्रमश कृशानोः ॥ ९ ॥
७ आफूककुणाविषमुष्टिकाना जैवातृकक्ष्मानयनाशिकानाम् ।
विधाय वर्तीस्तरुणीसुमार्के क्षुन्मान्द्यकासश्वसनेषु दद्यात् ॥ १० ॥

धनिया, चित्रक और अम्लबेत इन सब को समान भाग मे लेवे तथा इन सभी द्रव्यो के समान भाग से टॉसरिया-फल के चूर्ण को लेकर आपस में अच्छी तरह खरल करके मिला देवें। यह चूर्ण दीपन, पाचन, रुचिकर तथा ग्रहणी रोग प्रशमक कहा गया है ॥ ४–५ ॥

लोह के तवे पर अग्नि योगसे अच्छी तरह सेके गये विड, सामुद्र तथा सैंधव, नमक प्रत्येक दो दो माशा, सूठ, एला, जीरा और मरिच प्रत्येक तीन तीन माशा और हींग एक माशा इन सब को एकत्रित करके सूक्ष्म-चूर्ण बनाले। इस चूर्ण में, मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा में उल्लिखित 'पीतवर्ण सार' बारह मासे भर, मिला देवें। इस चूर्ण को गुलाब के अर्क मे खरल करके थोडा गुड मिला कर गोलिया बनाले। यथा मात्रा लेने से ये अग्निमान्द्य तथा अजीर्ण को दूर कर देती है ॥ ६–८ ॥

सौवर्चल, नवसादर, अर्क-पुष्पान्तर्गत फुलिका (लवंगिका) और काली मिर्च इनको समान भाग में घोटकर गुञ्जा-प्रमाण गुटिकायें बनाले। ये क्रमश कृशानुकी कृशता को दूर कर देती है ॥ ९ ॥

अफीम और पिप्पली प्रत्येक एक एक भाग, कुचला दो भाग इनको गुलाब के अर्क मे घोटकर गुटिकायें बनालें। अग्निमान्द्य, कास, श्वास, अतिसार एवं ग्रहणी आदि रोगो मे इसका उपयोग करें। उपरोक्त द्रव्यों को गुलाब-अर्क मे एक सप्ताह पर्यंत भिगोकर पीछे, खरल में घोटने से सुविधा रहती है ॥ १० ॥

१–'ढासरया' इति प्रसिद्धम् । २–तरुणीपुष्पार्के किंचिद्गुडं प्रक्षिप्य अस्य गुटिकाऽपि रचनीया । ३–अर्कपुष्पान्तर्गतलवङ्गिका ग्राह्या । ४–'गुलाबजल' इति प्रसिद्धे । तरुणीसुमार्के सप्ताहमाप्लाव्य दिनमेकं पश्चाद्विमर्द्य गुटी रचयेदित्युपरिष्टादवगन्तव्यम् । ५–बहुवचनस्याद्यार्थवाचित्वादतिसारग्रहण्योरपि दाप्या ।

८ विषमुष्टिकनवसागरवाह्लीकैरम्लैर्भावितैर्बहुशः।
मन्दाग्निमूलविकृतीर्हरन्ति हरिमन्थमेदुरा वटिकाः ॥ ११ ॥
९ शतपोनैपावितानां जगदौषधलवणपूर्वदेवानाम्।
घटिता निम्बूकरसैश्चतुर्गुणैर्मोदकाः स्युरनलकराः ॥ १२ ॥
१० स्विन्नानि रविदलानि द्विजीरपटुपित्तकारिणीमरिचैः।
राजिकया धान्येन च लिप्त्वा देयान्यजीर्णेषु ॥ १३ ॥
११ सस्वर्जिकान्यर्कदलानि पीतान्युत्स्वेद्य धौतानि यथोपदेशम्।
निम्बुद्रवे क्षारपटूषणाढ्ये मन्दानलं घ्नन्ति चिरोषितानि ॥ १४ ॥

कुचला, नवसादर और हींग इनके चूर्ण को बिजौरा, निंबू, दाडिम, जम्मीर प्रभृतिके अम्लरसों से दो तीन भावनायें दें। फिर इनकी चने जितनी मोटी गोलियां बनालें। ये मन्दाग्नि की मूल-भूत विकृति को नष्ट कर देती हैं ॥ ११ ॥

सूंठ, लवण और गन्धक को एकत्र पीसकर इनके चूर्ण को सूक्ष्म-छिद्रोंवाली चालनी में से छानकर निंबू का चतुर्गुण रस मिला मोदक बनालें। ये अग्नि-प्रदीपक हैं ॥ १२ ॥

अर्क के पत्तों को, किंचित् स्फटी डालकर, जल में उबाल लेवें। सुस्विन्न होने पर उनको नीचे उतारलें। दोनों प्रकार के जीरे, लवण, लाल मिर्च, काली मिर्च, राई और धनियां इनका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उसमें निंबू रस मिला उनका लेह जैसा बनालें। इस लेह को उपरोक्त स्विन्न पत्तोंपर चुपडकर सेवन करने से अजीर्ण मिटता है। इसी तरह इसी लेह में आकडे के स्विन्न पुष्पों को सान कर खाने से अजीर्ण आदि में प्रचुर लाभ होता है ॥ १३ ॥

अर्क के परिपक्व अत एव पीत-वर्ण पत्तों को थोडी सज्जीखार डालकर पानी में उबाल स्विन्न करलें। अब, एक काचपात्र में क्षार, लवण एवं कणा चूर्ण से युक्त यथामात्रा निंबू का रस भरदें। इस निंबू के रस में उपरोक्त स्विन्न पत्तों को अच्छी तरह साफ करके तथा कपडे से पोंछकर डाल देवें। एक दो सप्ताह पर्यंत उसी रस में उन्हें रहने दें। ये मंदाग्नि को नष्ट कर देते हैं। अर्क-पत्रों को उबालते समय उनकी बाष्प आंखों को न लगे इसकी सावधानी रखनी चाहिये। श्लोक-गत 'यथोपदेशम्' का यही अर्थ है ॥ १४ ॥

१—मातुलुङ्गनिम्बूकदाडिमजम्बीरान्यतमैरम्लैर्द्वित्रिवारं भावितैः। २—बहुच्छिद्रो यन्त्रविशेषः 'चालनी' इति प्रसिद्धः। ३—पूर्वदेवो गन्धकः। ४—अर्कपत्राणि परिमितां स्फटिकां दत्त्वा जले मन्दाग्निना स्वेद्यानि। ५—निम्बूकरसयोगेनेति शेषः। मात्रा चैषां नियता नास्ति, विभिन्नरुचित्वाल्लोकानाम्, अतो यथारुचि विधेया। उक्तप्रक्रियया रविपुष्पाण्यपि साधनीयानि। ६—सशब्द ईषदर्थे, तेनेषत्स्वर्जिकाणीत्यर्थः। ७—परिपाकपिञ्जराणि। ८—तद्बाष्पस्पर्शाद्दृष्टिं रक्षेदित्युपदेशः। ९—आप्लावनयोग्ये।

१२ निम्बूकनीरार्द्रमहौषधस्य कल्कः सितातन्तुलिकाप्रणीत ।
त्रिजातकक्षेपविशेषहृद्यो रोचिष्णुरग्निं द्विगुणीकरोति ॥ १५ ॥
१३ निम्बूकतीक्ष्णच्छदनार्द्रकाणां प्रत्येकमम्बु द्विपलं कटाहे ।
रूप्ये निधाय द्विगुणं च खण्डं पचेदिदं फाणितमग्निबोधि ॥ १६ ॥
१४ कैल्वजीग्रन्थिपथ्यामिपिधनहवुषादीप्यकुष्ठद्विजीर-
द्वेलाक्षारद्वयाम्लत्रयगजकुसुमत्वग्लवङ्गाग्निपाठे ।
पोटांकुन्कोलगन्धागुरुलवणगणव्योषकर्चूरमक्षी-
निष्ठातालीसपत्रैर्भवति पलमितैः कल्पितोऽर्कः क्षुधाकृत् ॥ १७ ॥
१५ पोदीनार्द्रकनिम्बूककुमारीरससंभवः ।
अर्को जीरत्रिजाताद्यैः रोचनो वह्निबोधनः ॥ १८ ॥
१६ भङ्गायवानिकाकृष्टं कुर्यादर्कं धनञ्जयम् ।
१७ अथवा निम्बुकरससौवर्चलसमुद्भवः ॥ १९ ॥

निंबू रस को पीकर फूली हुई सूठ के कल्क को उससे चतुर्गुण शक्कर की चासनी में अच्छी तरह हलाकर मिलादेवें । इसमें त्रिकटु चूर्ण का ऊपर से प्रक्षेप करें यह लेह विशेष हृद्यगुणों से युक्त, रोचिष्णु, तथा जठरानल को द्विगुणित कर देनेवाला कहा गया है ॥ १५ ॥

निम्बू, पोदीना और आर्द्रक इन प्रत्येक के आठ आठ तोला रसको द्विगुणित शर्करा के साथ चादी के पात्र में पकावे । यह सिद्ध फाणित जठरानल को प्रदीप्त करता है १६

कलौंजी, ग्रथिपर्ण (अथवा पिप्पली मूल) हरडे, सौंफ, धनियाँ, हवुषा, लौंग, दालचीनी, अजवायन, कूठ, जीरकद्वय, एलाद्वय, क्षारद्वय (स्वर्जिका क्षार, यवक्षार) अम्लत्रय (दाडिम, अम्लवेत और इमली) नागकेसर, चित्रक, पाठा, काकमाची, कक्कोल, कुलिंजन, अगुरु, लवणपचक, त्रिकटु, कर्चूर, पोदीना और तालीसपत्र प्रत्येक चार चार तोला लेकर, अर्क निकाल लेवे । यह क्षुधावर्धक है ॥ १७ ॥

पोदीना, आर्द्रक, निंबू और ग्वारपाठे के रस का अर्क रुचिप्रद एव अग्निप्रदीपक है । इस अर्क में त्रिजात (तज, तेजपात और इलायची) तथा लवण आदि का प्रक्षेप करके पीना चाहिये ॥ १८ ॥

भाग सोलह तोला तथा अजमोदा चौसठ तोला इनका अर्क निकाल लेवें । इस

१–निम्बूकरसवाशादापादितातिशयस्थौल्यस्य । २–सिताऽन चतुर्गुणा । ३–तीक्ष्णच्छदन 'पोदीना' इति ख्यात । ४–फाणितप्रवरं ह्येतद्वान्तावप्यवचार्यते । ५–'कलौंजी' इति ख्याता । ६–धान्यकम् । ७–दाडिमाम्लवेतसतिन्तिडीरूपम् । ८–नागकेसर । ९–काकमाचिका 'मको' इति प्रसिद्धा । १०–यद्यपि गन्धाशब्देनोग्रगन्धा प्रतीयते, तथाऽपि तस्या वामकत्वादत्र कुलिञ्जन ग्राह्यम् । ११–गणशब्देन लवणपञ्चकम् । १२–'पोदीना' इति लोके । १३–आद्यशब्दाल्लवणमपि । प्रक्षेपश्चैषां निष्कृष्यमाणार्के यन्त्रस्थे एव पानसमये वा । १४–अत्र भङ्गा कुडवमिता, यवानिका प्रस्थमितेति सकेत ।

१८ तेजोप्सु सौधासु षड्षणाम्लजीरं चतुर्जातलवङ्गदीप्यम् ।
क्षारौ ससौवर्चलनिम्बुशुक्तौ संधाय साध्योऽग्निकृदर्क एषः ॥ २० ॥
१९ छिक्किकारसमग्नानां च्युतं पातालयन्त्रतः ।
सत्त्वं हन्ति लवङ्गानामजीर्णं सशिवायुधम् ॥ २१ ॥
२० राजजम्बूफलरसः सपटुत्र्यूषणार्द्रकः ।
निपीतो मात्रया धत्ते क्षुधां दीपनपाचनः ॥ २२ ॥
क्वथनेन पृथग्भूतकल्कभागोऽधिकं तनुः ।
स्वरसः स्वच्छतां धत्ते वसनव्यूहविच्युतः ॥ २३ ॥
२१ राजजम्बूफलरसं सूर्यतापे निधापयेत् ।
प्रत्यहं वस्त्रपूतं तं कुम्भात् कुम्भे विवर्तयेत् ॥ २४ ॥

अर्क को 'धनंजय' कहते हैं । इसी तरह, निंबू रस और सौवर्चल दोनों का अर्क निकाल लेवें । ये सभी अर्क रुचिकर एवं अग्निवर्धक हैं ॥ १९ ॥

कलिकाखंड के जल से निर्मित 'तेजी' नामक पानी में, षड्षण (चव्य, चित्रक, पिप्पली, पीपलामूल, सोंठ और मरिच), अम्लत्रय (अम्लवेत, दाडिम, तथा इमली), श्याह श्वेत जीरा, चतुर्जात (तज, तेजपाज, इलायची, और केसर), लौंग, अजमोदा तथा खुरासनी अजवायन, स्वर्जिक्षार, यवक्षार, सौवर्चल और नींबू का सिरका इनका अर्क सिद्ध करलें । यह अग्निको प्रदीप्त करता है । 'तेजी' जल चौसठ तोला लेवें तो सिरका सोलह तोला एवं उपरोक्त अन्य सभी सम्मिलित औषधीय द्रव्य भी सोलह तोलाभर ही लें ॥ २० ॥

नक छिंकनी के रस में निमग्न लविंग का पातालयंत्र विधि से सत्वपातन करलें । यह सत्त्व स-शूल अजीर्ण को नष्ट कर देता है ॥ २१ ॥

उत्तम पके हुये राजजम्बू फल स्वरस में आर्द्रक कल्क को घोलकर छान लेवें । फिर, उसमें लवण तथा त्रिकटु चूर्ण मिलाकर यथा मात्रा पीयें । यह भूख बढाता तथा दीपन पाचन करता है ॥ २२ ॥ घट्ट-स्वरस को निम्न विधि से स्वच्छ बनालें ।

स्वरस को क्वथित करने पर जब तत्-गत कल्क भाग पृथक् हो जाये तब उसके अधिक तरल भाग को, बहुतसी तहवाले वस्त्र में से छान लेवें । इस तरह प्राप्त घन-स्वरस स्वच्छ होता है ॥ २३ ॥

राज-जंबू-फल के रस को सूर्य-ताप में रख दें । प्रतिदिन, उसे वस्त्रपूत कर,

---

१–कलिकाखण्डसंबन्धिजलेषु 'तेजी' इति ख्यातेषु । २–"पञ्चकोलं समरिचं षड्षणमुदाहृतम्" इति परिभाषितम् । ३–अम्लवेतसं दाडिमं तिन्तिडीकमिति त्रितयम् । ४–जीरकद्वयमेव । ५–दीप्यशब्देनाजमोदायवान्यौ । ६–निम्बुशुक्तं 'सिरका' इति प्रसिद्धम् । अत्र तेजोपां प्रस्थश्चेत् कुडवं सर्वमौषधजातं निम्बुशुक्तं पृथक् कुडवमिति परिमाणम् । ७–सशूलम् । ८–जम्बूफलरसे आर्द्रकल्कं घोलयित्वा वस्त्रपूतं च कृत्वा कृष्णलवणादिकं योग्यं प्रतिसार्य पाययेदिति । ९–घनस्वरसानां स्वच्छतापादनप्रकारोऽयम् ।

दिवसेषु व्यतीतेषु बिन्दु तस्य क्षितौ क्षिपेत् ।
उद्गच्छेद्बुद्बुदस्तत्र तदा सिद्धं समादिशेत् ॥ २५ ॥
इत्येतज्जाम्बवं शुक्तं सितापङ्केन दीयताम् ।
विसूचिकाघ्नमत्यम्लं रुच्य दीपनपाचनम् ॥ २६ ॥
२२ त्वक्सुमैल सुवर्णार्धं मरिचं पित्तकारिणी ।
पृथगक्षं तत क्वाथो विसूचीक्षपणक्षम ॥ २७ ॥
२३ पलाण्डुकन्दपानीयमानीय द्विपलं पिबेत् ।
विसूचिकां विशेषेण निःशेषयति निश्चितम् ॥ २८ ॥
२४ पिप्पलवल्कलाङ्गारप्रतिनिर्वापितपयोनुपानेन ।
भ्रष्टमसूरद्विदलक्षोद· शाणो विसूचिका हन्ति ॥ २९ ॥
२५ पञ्चैव पित्तकारिण्य सितावुद्बुदसप्तकम् ।
पिष्ट्वाऽम्भसा परिस्राव्य विसूच्या प्रपिबेन्मुहु ॥ ३० ॥

एक घट में से दूसरे घट में बदलते रहें । इस तरह कुछ दिवस व्यतीत होनेपर, इस रस की एक बूंद जमीन पर डालें । यदि इस बूंद में से बुदबुदे उठने लगें तो जान लेना यह सिद्ध हो गया है । इस विधि से सिद्ध जामू-फल-रस के सिरके को शक्कर की चासनी के साथ दें । यह विसूचिका-नाशक, अति अम्ल, रुचिकर और दीपन पाचन होता है ॥ २४–२६ ॥

तज, लौंग और इलायची प्रत्येक दोमाशा, काली मिर्च और लाल मिर्च प्रत्येक एक तोला इनका क्वाथ विसूचिका-रोग को क्षीण कर देने में समर्थ है ॥ २७ ॥

प्याज के सद्यस्क जल को, आठ तोला मात्रा में पीलाने से, विशेष करके, विसूचिका नि सदेह नामशेष रहजाती है ॥ २८ ॥

पिप्पल वृक्ष की छाल के अंगारों के बुझाने लेकर सिद्ध किये गये पानी के साथ, भूनी हुई मसूर-दाल के तीन माशा भर चूर्ण की फाकी से विसूचिका और वमन शान्त हो जाते हैं ॥ २९ ॥

पाच लाल मिर्च और सात पतासे इनको पानी में पीसकर शर्बत-सा बनालें । इसे वस्त्रपूत करके दो दो तोला मात्रा में एक एक प्रहर ठहर ठहर कर पीयें । इससे विसूचिका नष्ट हो जाती है । उपद्रव शात होने पर यदि प्यास लगे तो लौंग का जल पीना चाहिये ॥ ३० ॥

१–कर्षार्धम् । २–पलाण्डुराजशतके विसूचिकया सहास्य युद्ध निबद्ध द्रष्टव्य, तथा विसूचीस्वरूपवर्णनमपि । तदेकपद्यं यथा—"अन्नयमन्तर्गतनेत्रबिम्बा प्रवर्तयन्ती वमिमुग्रवेगाम् । शूलातिसारादिभिरात्मवर्गं साऽऽन न सा क निर्लीचकार ॥" इति । इद च पानीय सद्यस्कमेव ग्राह्य, विलम्बे वैगुण्यात् । ३–सामान्यवमनमपि च । ४–कुडवमितेन । ५–पलार्धं पलार्धं पिबेदिति । उपद्रवे शान्ते तृषि लवङ्गाम्बु पिबेत् ।

२६ प्रतफणिफेनरामठमरीचशशिपित्तकारिणीबीजैः ।
गुटिका हन्ति विसूचीमतिसारं वा निगृह्णाति ॥ ३१ ॥
२७ प्रत्येकं भर्जयित्वाऽग्नौ कुचेलाहिङ्गुसादरम् ।
विमर्द्याद्भिः कृता वट्यो विसूचीविषयाः स्मृताः ॥ ३२ ॥
२८ छायाविशुष्कं रवमूलवल्कं विशिष्य निम्बूकरसैर्विमर्द्य ।
वट्यो निबद्धाश्चणकप्रमाणा विसूचिकां घ्नन्ति कफानिलोत्थाम् ॥ ३३ ॥
२९ शोणकंसीसमतल्लीं मूलस्वरसैर्विमर्द्य दिनमर्धम् ।
मितमेककाकणन्त्या कोष्णजलैर्वान्तिकृद्गाढम् ॥ ३४ ॥
३० गर्भे गुडस्य पिहितानि तनुत्रशिम्ब्यो
रोमाणि वक्रमभितो हविषा विलिप्य ।

पुराणी अफीम, हींग, मिर्च, कपूर और लाल मिर्च के बीज इनकी गोलियां विसूची को हटातीं और अतिसार को मिटातीं हैं ॥ ३१ ॥

पाठा, हींग और नौसादर इन प्रत्येक को अग्नि से भूनकर, पानी से बारीक पीस गोलियां बनालें। ये गोलियां विसूची के भोग विलास रूप हैं। अर्थात् विषयों से-भोगविलास से-जिस तरह, मनुष्य क्षीण होजाता है, उसी तरह, उपरोक्त वटिका रूपी विषयों से विसूची क्षीण हो जाती है ॥ ३२ ॥

अर्क के मूल की छाल को छाया शुष्क बनालें। फिर त्रिकटु, त्रिजात तथा लवणादि मिलाकर उसको निंबू के रस से खूब बारीक पीसलें। इसकी चने प्रमाण गोलियां करलें। ये कफ-वातप्रधान विसूचिका को नष्ट कर देती है ॥ ३३ ॥

रक्तवर्ण सीसे को, आधे दिन तक, मूलक स्वरस में खरल करें। एक गुंजाभर मात्रा में कवोष्ण जल के साथ इसे लेने से पर्याप्त वमन होते हैं। यह प्रयोग, अलसक आदि वमनसाध्य रोगों में परम प्रशस्त है। इसके सेवन से यदि वमन अधिक मात्रा में होने लगें तो मकई के सिरे से दाने निकाल कर उनकी भस्म बनालें। इसको दो माशा भर शीतल जल के साथ लेने से वमनातियोग में शान्ति मिलती है ॥ ३४ ॥

कौंच की कोमल सेम के ऊपर आच्छन्न रोमावलि को गुड के भीतर रखकर उसको चारों ओर से घृत द्वारा लिप्त करदें (जिससे रोम का एक भी रेशा बाहर निकला हुआ न रहे)। इसको दिवस में दो तीन बार निगल जाने से क्रिमिजन्य पीडा, विसूचिका तथा तीव्र रक्त वमन में भी लाभ होता है। (प्रस्तुत श्लोकगत-कौंच के कोमल लोम की औषधीय उपयोगिता को खौरी के इस कथन से मिलाइये-

---

१-त्रिकटुत्रिजातलवणादिक्षेपोऽत्र कार्यः। २-प्रशस्तारुणकसीसम्। अलसकादिषु तथा सर्वेषु वमनसाध्येषु प्रयोज्योऽयं प्रयोगो वमनकारी। अनेन वमनातियोगश्चेत् मक्किकान्नकोषादन्नं निष्कास्य निरन्नकोषभस्म कृत्वा द्विमाषं शीतलजलैर्देयम्। ३-प्रसङ्गात् क्रिमिनिष्कासनप्रकारोऽभिधीयते। क्रिमिकृतजठरमसृणशूलेष्वप्ययं प्रयोगः। ४-कवचशिम्ब्योः।

द्विस्त्रिर्गिलेत् क्रिमिजरुक्षु विसूचिकाया-
नुद्रिक्तरक्तवमथावपि शर्मकाम. ॥ ३५ ॥
इत्यग्निमान्द्यादिचिकित्सितम् ।

पाण्डुरोगचिकित्सितम् ।

कनककलेवरकान्ति कपालधारी क्रमेण बलहारी ।
मुशलप्रयोगकुशलो वर्जितभोग. स कामलारोग ॥ १ ॥
१ सितया कटुकीकर्षो द्रोणपुष्पीरसोऽञ्जनम् ।
देवदालीरजोनस्यं पाण्डुरोगं व्यपोहति ॥ २ ॥

"The hairs of the Pods are Vermifuge and given in round worms They work mechanically by injuring the worms and promoting their expulsion" अर्थात् शिम्बीरोम के चूर्ण को लेने से गोलकृमि नष्ट होकर बाहर निकल जाते हैं– Materia Medica of India–R N Khory कौंच के रोमों का स्पर्श करने से शरीर मे असह्य कण्डू उत्पन्न होता है। इसलिये गुड आदि में मिलाकर लेने की यह योजना मौलिक एव युक्ति युक्त है ॥ ३५ ॥ —अग्निमान्द्यादि चिकित्सा समाप्त—

—पाण्डुरोग – चिकित्सा (कुलप्रयोग १३)—

प्रस्तुत श्लोक में पाण्डुरोग के स्वरूप का वर्णन है। स्वर्ण के समान पीताभ शरीरवाला, कपाल को धारण किये हुये, क्रमश बल को हरने वाला, मुशलायुध के प्रयोग में कुशल तथा विषयोपभोग-सामर्थ्य से रहित इन्द्रियों वाला, कामला रोग कहलाता है। (कामला रोग का आयुध वस्तुत 'मूशल' ही है। पाण्डुरोग से आक्रान्त मनुष्य का सपूर्ण देह मूशल से पुन पुन कुट्टित की तरह छिन्न भिन्न सा हो जाता है। 'मृद्यमानैरिवाङ्गै '—वाग्भट के 'मृद्यमान' पद का निगूढ अर्थ—'मुशल-प्रयोग कुशल'-पाण्डुरोग के इस विशेषणद्वारा यथावत्-चमत्कृत शैली में अभिव्यक्त किया गया है) ॥ १ ॥

इस श्लोक में कोष्ट, नेत्र और नासा के विरेचनद्वारा पाण्डुरोग के प्रशमनप्रयोग कहे गये हैं। एक तोला कटुकी चूर्ण को मिश्री में मिलाकर फाकने से कोष्ट-विरेचन-द्वारा, द्रोणपुष्पी के रस को आखों में आजने से तथा देवदाली के रस का नस्य लेने से पाण्डुरोग तिरोहित हो जाता हैं ॥ २ ॥

१–अथ क्रमेण पाण्डुचिकित्सित वक्तव्ये आदौ तत्स्वरूपमेव वर्ण्यते—कनकेत्यादि । २–मुशलायुध इत्यर्थ । ३–अत्र त्रिभि पादै कोष्ठनेत्रनासाविरेचनद्वारा पाण्डुरोगघ्नास्त्रयो योगा अभिहिता । ४–द्रोणपुष्पी फलेपुष्पा, सा च 'दणघल' इति लोके ख्याता ।

२ रसेन नस्यं कटुतुम्बिकायाः[1] क्षिणोति कोपं किल कामलायाः ।
योगो महानेष पितामहेन ममोपदिष्टः सदनुग्रहेण ॥ ३ ॥

३ पिष्टिका चूर्णसितयो[2]र्धूमयन्त्रा[3]म्भसा कृता ।
न्यस्ताधिपे[4] घृताभ्यक्ते पाण्डुं स्रावयति ध्रुवम् ॥ ४ ॥

४ रोगिमूत्रप्लुता[5] सप्त प्लोता[6] धार्या गृहोपरि ।
हृतेषु तेषु काकेन पाण्डुव्याधिः पलायते ॥ ५ ॥

५ तैलेन[7] तन्वतां प्रातः पुंसां गण्डूषसप्तकम् ।
आपत्तिः पाण्डुजा याति नाशं कतिपयैर्दिनैः ॥ ६ ॥

६ पलं बालकमूला[8]म्बु शर्करामधुरीकृतम् ।
अप्युच्चैर्दुर्जयं हन्ति पाण्डुं कतिपयै[9]र्दिनैः ॥ ७ ॥

७ माषान् द्वादश मार्कण्ड्याः[10] पिण्डखर्जूरषोडशीम्[11] ।
शाणिका[12]मरुणां सायं जले[13] क्षिप्त्वोपरि[14] न्यसेत् ॥ ८ ॥

कटुतुंबी के रस का नस्य लेने से कामला-प्रकोप क्षीण हो जाता है। यह महान प्रयोग मेरे पितामह ने कृपा करके बताया है ॥ ३ ॥

हुक्के के पानी से चूना और मिश्री को पीसकर पिष्टी बनालें। इस पिष्टीका मस्तक के 'अधिप' नामक मर्म पर लेप करने से निश्चयपूर्वक पाण्डु रोग द्रवित होकर निकल जाता है। पिष्टी का लेप करने से पूर्व अधिप-मर्म को घृतद्वारा अभ्यक्त कर लेना चाहिये ॥ ४ ॥

रूई के सात फोहों को, रोगी के प्रातःकालीन मूत्र में सिक्त करके घरकी छत पर रखदें। काकद्वारा इन फोहों के अपहरण के साथ ही साथ पाण्डुरोग भी अपहृत हो जाता है ॥ ५ ॥

प्रातःकाल तिलतैल के सात गंडूष धारण करने से पाण्डु-विकार कुछ ही दिवसों में नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

बाल-मूलि के स्वरस को शर्कराद्वारा मधुर बनाकर पीने से उग्र पाण्डुरोग भी सात अथवा नौ दिवसों में मिट जाता है ॥ ७ ॥

सनाय बारह मासे, पिंडखजूर सोलह तोला तथा मंजिष्ठा तीन माशा इन को जल में भिगोकर सायंकाल को घर की छत पर रखदें। (इनमें मञ्जिष्ठा को थोडी कूट

१–तिक्तालाब्वाः। २–सुधाखण्डजचूर्णसितोपलयोः। ३–धूमयन्त्रं लोके 'हुक्का' इति प्रसिद्धं, तदभ्यन्तरस्थजलेन। ४–"आन्तरो मस्तकस्योर्ध्व सिरासंधिसमागमः। रोमावर्तोऽधिपो नाम मर्म सद्यो हरत्यसून् ॥" इति प्रोक्तस्वरूपे। ५–मूत्रं च प्रातःकालिकं ग्राह्यम्। ६–कार्पासखण्डानि 'फोहा' इति च प्रसिद्धिः। ७–तैलं चात्र सामान्योक्तत्वेन मुख्यमेव ग्राह्यम्। ८–बालमूलकानां स्वरसम्। ९–सप्तभिर्नवभिर्वा। १०–'सनाय' इति प्रसिद्धायाः। ११–पलम्। १२–मञ्जिष्ठां मनाक् क्षुण्णामित्युपरिष्टात्। १३–कुडवप्रमाणे। १४–प्रासादस्योपरीत्यर्थः। इच्छा चेच्छर्करायाः पलमपि क्षेप्यम्।

प्रातर्निष्कम्पमास्राव्य तदनु परिशीलयेत् ।
पाण्डुपित्तास्रकण्डूतिज्वरघ्न मूत्ररेकृत् ॥ ९ ॥

८ वर्षासु यत्र यान्ति ग्रामप्रक्षालनोदकानि वहि ।
तत्रत्यशमीकिसलयकल्कं ससितं पिबन्तु पाण्डुरुजि ॥ १० ॥

९ शकटाक्षकिट्टवल्य शनैः शनैः पाण्डुरोगघ्ना ।
तदुपादानपदार्थं कथयामैरण्डमञ्चं तैलम् ॥ ११ ॥

१० कलसोरमरालपदं निडालपटकानि पञ्च मधुरायाः ।
चूर्णं गद्याणमितं पयसा सह पाण्डुमपहरति ॥ १२ ॥

११ मण्डूरपथ्याकटुकीरजांसि पीतानि गोमूत्रविलोडितानि ।
कुर्वन्ति मृत्स्ना परिपूर्णकोष्ठसंमार्जनं सत्यमिदं वदामि ॥ १३ ॥

लेनी चाहिये । अवशिष्ट द्रव्य यथावत् भिगो देने चाहिये ।) अब, प्रातःकाल, पात्र-गत जल को, हिलाये बिना, वस्त्र-पूत करके उपयोग में लेवें । यह पाण्डु, पित्त, रक्तविकार, खुजली और ज्वर को प्रशमित करता है । इससे मूत्र प्रचुर मात्रा से खुल कर आयेगा । क्वचित् विरेक की भी सम्भावना है ॥ ८–९ ॥

वर्षाऋतु में, गाव में से बहकर पानी जिस जगह एकत्रित होता हो उस जगह उत्पन्न होने वाले विशाल शमीवृक्ष की (दो तीन तोलाभर) कोमल पत्तुडियों को लेकर कल्क बनालें । इसको पानी में घोलकर वस्त्रपूत करलें । फिर शक्कर मिला कर पीने से पाण्डुरोग में लाभ होता है ॥ १० ॥

बैल गाडी के पहिये की, एरंड तैल से सिक्त धुरी के स्नेह-किट्ट की गोलिया बनाकर सेवन करने से पाण्डुरोग शनैः शनैः शान्त हो जाता है । (धुरीगत एरंड-तैल के अतिरिक्त अन्य द्रव्य के तैल का किट्ट यह प्रभाव नहीं रखता । इस 'स्नेह-किट्ट' को सौराष्ट्र में 'मली' कहते हैं । वहा के ग्रामीण-जन पाण्डु रोग में इसका उपयोग करते हैं ।) ॥ ११ ॥

कलमी सोरा एक माशा, मिश्री सोलह माशा, इनको मिलाकर चूर्ण करलें । इसकी तीन माशाभर, शीतल जल के साथ फाकी लेने से पाण्डुरोग मिट जाता है ॥ १२ ॥

मण्डूर, हरडे और कटुकी इनको यथामात्रा में लेकर चूर्ण बनालें । इनको गोमूत्र में घोलकर पीजाये । यह कोष्ठ-गत मिट्टी को बुहारकर बाहर फैंक देता है । यह सत्य है ॥ १३ ॥

१–उपलक्षणमिदं, तेन पुरीषरेकोऽपि भवतीति लभ्यते । २–शमी लोके 'खेजडा' इति ख्याता, सा च महती नाल्पेति । तस्याः किसलयानां द्वितोलकमितानां कल्कं शर्करया जलेन लुलितं पेयम् । ३–शकटस्याक्षे चक्रे स्थितं यत् स्नेहकिट्टं तन्निर्मिता वल्यः । ४–एरण्डोद्भवम् । ५–'कलमी सोरा' इति प्रसिद्धक्षारविशेषस्य मरालपदं सुवर्णम् । ६–सितोपलायाः । ७–शीतलजलेन । ८–दोषदूष्यप्रकृत्याद्यनुसारं कल्पितमानानि ।

१२ भाण्डस्थमाढकं सार्द्धं गुडाद्‌ध्नोऽयसः पृथक् ।
भूगूढं पच सप्ताहं स्यादर्कः पाण्डुरोगनुत् ॥ १४ ॥
१३ पिचुमर्दविशालाभागृध्रनखीकोविदारनिर्यूहः ।
शमयति गुडेन मधुरः पाण्डुविबन्धोपदंशार्तिम् ॥ १५ ॥

– इति पाण्डुरोगादिचिकित्सितम् –

गुड २५६ तोला, तथा इससे चतुर्थभाग दही और इतनी ही मात्रा में पुराणा-मलाढ्य-लोहचूर्ण, (ग्वारपाठे का रस और गोमूत्र प्रत्येक चोसठ तोला, सोरा सोलह तोला, ये द्रव्य अधिक लेवें) इन सबको एक पात्र में भरदें। इस पात्र को खूब गहरे भू-गर्त में स्थापित करके उसके ऊपर अजा की शुष्क गोवरी तथा तुष आदि की अनवरत अग्नि दें। इस तरह सात दिवस पर्यंत अग्नि से इसे पकावें। यह सिद्ध अर्क पाण्डुरोग को नष्ट कर देता है ॥ १४ ॥

निंब की अन्तर्छाल, इन्द्रवारुणी के मूल, बम्बूल के फल, कण्टकारी के मूल, कचनार की छाल, (और कटुकी, यह अधिक लें) प्रत्येक सोलह तोला लेकर जौकुट करलें। फिर एक दिन भर बारह प्रस्थ जल में भिगोकर रहने दें। दूसरे दिवस इसमें करीब बत्तीस तोला पुराणा गुड मिलाकर इसे उकालें। जब तीन प्रस्थभर पानी अवशिष्ट रह जाये, तब इसे उतार कर कुछ शीतल होने पर वस्त्रपूत करलें। इस कषाय का रोग और रोगी के बलानुसार मात्रा में सात दिवस तक ही सेवन करें। इससे पांडु, मलावरोध, रुधिरविकार, उपदंश आदि उग्र व्याधियां प्रशमित हो जाती हैं। पथ्य में चांवल, मूंग की खीचडी घी मिला कर लें। नमक की जगह सैंधव अल्पमात्रा में लेवें ॥ १५ ॥

– पाण्डुरोग-चिकित्सा समाप्त –

१–अयश्चात्र पुराणतरं मलाढ्यमेव ग्राह्यम्। कुमारीगोमूत्रयोः पृथक्प्रस्थं सौरकुडवमित्यधिकमत्र। २–तदुपरि छागकरीषचूर्णतुषादितापश्चानवरतं रक्षणीय इत्युपदेशः। ३–पिचुमर्दो निम्बः, तस्यान्तरत्वग्ग्राह्या। विशालायाश्च मूलम्। आभा बम्बूलः, तस्य फलम्। गृध्रनखी कण्टकारी, तस्या मूलम्। कोविदारः 'कचनार' इति ख्यातः, तस्य त्वग्ग्राह्येति। एतदौषधजातं पृथक्कुडवमितं यवक्षुण्णं द्वादशप्रस्थे जले दिनमेकं समावाप्य शरावसंमितं पुराणगुडं प्रक्षिप्य द्वितीयदिने पाकात् प्रस्थत्रयशेषेऽवतार्य पटपूतं काचभाण्डे विन्यसेत्। महाव्याधौ सर्वमेवैतद्यथायथं विभज्य सप्तदिनैरेव पिबेत्। अल्पव्याधौ च दोषानुसारं मात्रा कल्पनीया। पथ्यमत्र तन्दुलमुद्गकृशरा सघृता अल्पसैन्धवा; अथवा अर्धचणकगोधूमफुल्लिका घृतप्लुता। इच्छा चेद्दुग्धमपि, केचिदत्र कटुकीमपि प्रक्षिपन्ति। रक्तविकारेऽप्ययं प्रचरति।

अथ रक्तपित्तचिकित्सितम् ।

१ न्यस्यं सप्तैद्रूपुष्पाणि द्वित्रिनिम्बूकपाथसि ।
तरुणीकेतकोत्थयोर्क द्विपलं द्विपलं क्षिपेत् ॥ १ ॥
प्रसृतिप्रसितं खण्ड काचकूप्या समावपेत् ।
दृढदत्तपिधाना तामाकण्ठं वारि विंन्यसेत् ॥ २ ॥
त्र्यहादूर्ध्वं तु संगाल्य कूप्या भृत्वा जले न्यसेत् ।
तमेतमोद्रूपुष्पार्क सिद्ध शोणितशोणिमम् ॥ ३ ॥
कर्ष कर्ष पिबेद्द्वित्रि॰ पित्तास्रक्षुभितो नर ।
२ अनेनैव विधानेन कर्तव्योऽर्कः परूषकैः ॥ ४ ॥
३ वरा खर्वा शिवा मज्जा वितुन्नकसमुद्भव ।
पृथक् सपादपलिका चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ ५ ॥

— रक्त-पित्त चिकित्सा (कुल बारह प्रयोग) —

गुडहलके ताजे सात पुष्पों को (छह पखुडियो वाले अधिक गुण युक्त होते हैं) प्रात दो या तीन निंबूओं के रस में काष्ठ की कळछी से अच्छी तरह छूदकर मिला देवें । फिर, एक काच की शीशी मे भरकर रखदें । उसी दिन साझ को, इसी शीशी में गुलाबअर्क, केवडाअर्क, स्वच्छ बूरा और जल प्रत्येक आठ आठ तोला लेकर आकठ भरदें । शीशी के मुख को मजबूत डाट से बध करें । तीन दिवस पीछे इस रस को वस्त्रपूत करके, पुन मजबूत डाटवाली शीशी में भरकर उसे जलपूर्ण पात्र में रख देवें । इस तरह रक्तवर्णाभ ओढ्र-पुष्पार्क सिद्ध होता है । दिवस मे, एक-एक तोला दो तीन बार पीने से रक्तपित्त से पीडित मनुष्य को शाति मिलती है । इसी विधिपूर्वक, उपरोक्त गुणो से युक्त, फालसेका अर्क भी निर्माण करें । फालसा, यहा आठ तोला भर मात्रा में लेवें ॥ १-४ ॥

त्रिफला, जवाहरडे और धनिये के डठल का भीतरी रेशेदार भाग (मज्जा) प्रत्येक

१-पित्तोद्रेकसाधर्म्यात् पाण्डुरोगानन्तर रक्तपित्तमभिधीयते । तत्रादौ न्यस्येत्यादि-चतुर्भि श्लोकैरेको योग । २-चतुर्याममिति शेष । ३-पुष्पसख्येयम् । ४-सद्योत्फुल्लानि जपापुष्पाणि । तानि च सप्तच्छदानि चेद् गुणाधिक्यम् । ५-अनुक्तमपि षट्पल जलमत्र क्षिपेत् । ६-खण्ड च धौतमादेयम् । ७-समावापविधिश्च यथा-प्रात काचपात्रे सुमानि योग्यैर्निम्बुरसैराप्लाव्य दारुदर्व्या सक्षोभ्य कूप्या भृत्वा यावद्दिन रक्षेत्, साय च पुष्पार्क सखण्ड जल च निक्षिप्य दृढ पिदध्यादिति । ८-सप्तम्यन्तम् । ९-विन्यासे वैशिष्ट्य प्रतिपाद्यते, तेन च शिलादिना दृढ कूपी यन्त्रितव्येति ध्वन्यते, नोचेदर्कवेगादुत्फणनसभव । १०-पूर्वनद्दृढपिधानमत्राप्यावश्यकम् । ११-पित्तास्रस्योपलक्षकत्वात् सौनाकरक्तमण्डलादेरपि ग्रहणम् । १२-द्विपलप्रमाणे, विधिश्च पूर्वोक्त एव । बहुवचन चात्रयोपलक्षक, तेन राजजम्बूफलादीनामपि ग्रह । १३-खर्वा शिवा चेतकीनामा हरीतकीविशेष, 'जवाहरडे' इति लोके प्रसिद्धि ।

वातामजेन तैलेन द्विगुणे माक्षिके क्षिपेत्।
खादेट्टङ्कप्रमाणं तद्भुक्तस्यान्ते सुखप्रदम्॥ ६॥
रक्तपित्ताक्षिरुक्कोष्ठदाहविष्टम्भनाशनम्।
नास्त्यनेन समः कश्चित् प्रयोगो यावने मते॥ ७॥
४ खार्द्दीफलानां परिचूर्णितानां प्रत्नत्वभाजा मधुनाऽवलेहः।
असृग्विकारं परिहृत्य पुष्ट्यै प्रकल्प्यते तथ्यमुदीरयामः॥ ८॥
५ द्विगुणितसितानि पयसा किंशुककुसुमानि कुडवकलितानि।
पित्तास्रस्रुतिहराणि स्त्रीणां तारुण्यमपि दधति॥ ९॥
६ दुरालभाकिसलयैः कल्कं विरलवेल्लजम्।
सुखाय मेहतां रक्तं सर्वतोमुखगालितम्॥ १०॥
७ लवङ्गधूमपानेन रक्तवान्तिः प्रशाम्यति।
मानं मन्ये लवङ्गानां शाणं गद्याणमेव वा॥ ११॥

सवाचार तोला, इनका एकत्र सूक्ष्म चूर्ण बनाकर इस में इस चूर्ण से द्विगुणित दोनों माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक तथा रूप्यमाक्षिक) मिलादें। फिर इन सबको बादाम के तैल की भावना दें। भोजनोपरांत, चार माशा भर मात्रा में सेवन करने से स्वास्थ्य लाभ होता है। यह प्रयोग रक्तपित्त, आंखों की पीडा, कोष्ठगत दाह तथा मलावरोध नष्ट करता है। इन रोगों में, यावनमतानुसार, इसके समान कोई अन्य उत्तम औषधि नहीं है॥ ५-७॥

छुहारों के सूक्ष्म चूर्ण में पुराणा शहद मिलाकर अवलेह बनालें। यह लेह रुधिर-विकार को दूर करता तथा पुष्टि देता है। यह तथ्यपूर्ण कथन है॥ ८॥

पलाश के पुष्प सोलह तोले तथा इससे द्विगुणित मिश्री इनको पानी के साथ लेने से रक्तपित्त तथा रक्तस्राव में लाभ होता है। दूध के साथ सेवन से स्त्रियों को तारुण्य की प्राप्ति होती है॥ ९॥

जवासे की कोमल पत्तियों में थोडी उत्तम जाति की काली मिर्च मिलाकर कल्क बनालें। इस कल्क को पानी में छानकर पीने से मूत्र गत रक्तस्राव बन्द हो जाता है॥ १०॥

लौंग के धूम्रपान से रक्तवमन प्रशमित होता है। लौंग तीन अथवा छह माशा भर ही लेनी चाहिये॥ ११॥

१-खर्जूरीफलानां 'छुहारा' इति लोकख्यातानाम्। २-मधुनश्च प्रत्नत्वेनैव गुणाधिक्यमित्यायुर्वेदसमयः। ३-दुग्धेन जलेन चेत्यर्थद्वयमपि व्यवस्थितविकल्पविषयत्वेन संघटते; तथा च पित्तास्रस्त्रीविषये दुग्धेन, अतिस्रुतौ जलेनेति। पक्षावधिः प्रयोगसेवा। किंच योगोऽयं कोठोदर्दादिषु रक्तविकारे पाण्ड्वादिषु चाप्यवचारणीयः। ४-धन्वयासपल्लवैः। ५-सर्वतोमुखं जलम्।

८ चिञ्चावल्कलकल्कं गौरीपाषाणमिश्रित निहितम् ।
अधिपोपरि तदनु वरास्वरसप्लोतं रुणद्धि नासास्रम् ॥ १२ ॥
९ नासारुधिरनिरोधकरमिति योग समवेहि ।
खरीपुरीषभव रसं नासिकयोर्लघु देहि ॥ १३ ॥
१० सितासहायो मोरटो मायुज्वरजोषेषु ।
सखे ! यथारुचि पीयता रुधिरारुचिशोषेषु ॥ १४ ॥
११ गव्यं धारोष्णमौधस्य यथेच्छ पिबता नृणाम् ।
रुधिरक्षोभजा रोगा जायन्ते न हि जातुचित् ॥ १५ ॥
१२ भक्त मियो विभक्त साधय सितशर्करासमासक्तम् ।
तद्धरति रक्तपित्तं वेश्याचित्त यथा वित्तम् ॥ १६ ॥

इति रक्तपित्तचिकित्सितम् ।

धीयाभाठा को इमली की छाल मे मिलाकर कल्क बनाले । इस कल्क को मस्तक के 'अधिप' नामक मर्म पर कुछ देर के लिये रखद । फिर उसपर त्रिफला स्वरस मे भिक्त फोहे को स्थापित कर देने से नासिका-गत रक्तस्राव बद हो जाता है ॥ १२ ॥

गदही के लीद का थोडा रस नाक में डालने से, नासागत रुधिर स्राव रुक जाता है ॥ १३ ॥

फटे हुये दूध के जल भाग मे मिश्री मिलाकर पीने से, पित्त-ज्वर, रुधिर-स्राव, अरुचि और शोष में लाभ होता है ॥ १४ ॥

गाय के धारोष्ण दूध को यथेच्छ मात्रा मे पीने वाले मनुष्य को, ग्रथि, दद्रु, विस्फोट आदि रक्त-दुष्टि जन्य रोग कभी उत्पन्न नहीं होते ॥ १५ ॥

खिन्न भात में समान भाग स्वच्छ बूरा मिलाकर भोजन करें । वित्तसे वेश्या के चित्त की तरह यह सिद्धभात, रक्तपित्त को हर लेता है ॥ १६ ॥

रक्तपित्त-चिकित्सा समाप्त ।

१-गौरीपाषाण 'गाईमाठा' इति नाम्ना प्रसिद्ध । २-मुहूर्तमात्रम् । ३-दोहावृत्तमिदम् । ४-उदमपि तथा । ५-नष्टक्षीरस्य द्रवभाग । ६-क्षीरम् । ७-ग्रन्थिदद्रुस्फोटादिका ।

अथ राजयक्ष्मचिकित्सितम्[1]।

१ मुस्तामरिचचव्याग्नि निशाकृष्णाविडङ्गकम्।
आमलोशीरशैलेयं[2]पूगलोध्रद्विपत्रकम्[3]॥ १॥
कट्वीश्रीखण्डतगरमांसीदारुसिता[4]खुमम्।
गुन्द्रणी[5]नागपुष्पाणि त्रिपिचूनि[6] पृथक् पृथक्॥ २॥
प्रस्थार्धं धातकीपुष्पं द्राक्षा प्रस्थैस्त्रिभिर्मिता।
पुराणः पञ्चदशभिः प्रस्थैः संकलितो गुडः॥ ३॥
भाण्डे षड्विंशतिप्रस्थशरवरे[7] घृतचिक्कणे।
क्षिप्त्वा सर्वं पिधायाथ पक्षमात्रं निधापयेत्॥ ४॥
प्रमृद्य गालितोऽत्यर्थं फाण्टः स्याच्चित्तचन्दिरः[8]।
कासं श्वासं क्षयं मान्द्यं वन्धं हन्ति प्रकाशते[9]॥ ५॥

— राजयक्ष्मा-चिकित्सा (कुल चार प्रयोग) —

नागरमोथा, मरिच, चव्य, चित्रक, हलदी, पीपल, वायविडंग, आंवला, खस, छाडछडीला, सुपारी, लोध, तमालपत्र, वर्कतिवाका, कटुकी, चंदन, तगर, जटामांसी, देवदारु, दालचीनी, गूंदी, नागकेसर प्रत्येक चौवीस माशा लेवें। (पिचु, कर्षका अपर-पर्याय है। कर्ष एक तोला वजन का नाम है। आप्टे के कोष के अनुसार पिचु-तथा कर्ष दो तोलाभर वजन में प्रयुक्त होते हैं। प्रस्तुत श्लोक में पिचु से आठ माषा का ग्रहण किया है। अतः त्रिपिचुका अर्थ चौवीस माषा हुआ।) धाय के फूल वत्तीस तोला, किसमिस दाख तीन प्रस्थ तथा पुराणा गुड पंदरह प्रस्थ लेवें। अब, एक मिट्टी के घट को भीतर घृत से चुपड कर चिकना बनालेवें। इस घट में उपरोक्त सभी औषधीय-द्रव्य तथा छव्वीस-प्रस्थ जल डाल देवें। घट के मुख को अच्छी तरह बंद करके पंदरह दिवस पर्यंत इसी तरह रहने दें। फिर, घट-गत द्रव्य को खूब मसलकर छानलें। इस तरह से सिद्ध किये गये इस फाण्ट को 'चित्तचन्दिर' कहते हैं। यह फाण्ट यथानाम तथा गुणवाला है (अर्थात्—चित्तं चन्दयति-चित्त को आल्हादित करता है।) कुछ मादक गुण से युक्त यह फाण्ट कास, श्वास, क्षय, अग्निमांद्य, मलावरोध आदि को मिटा देता है॥ १–५॥

१–राजयक्ष्मण्यपि शोणितनिर्गमनं भवतीत्यतो रक्तपित्तानन्तरं शोषचिकित्सितमुच्यते। तत्रादौ पञ्चभिः श्लोकैश्चित्तचन्दिरफाण्टः। २–शिलापुष्पं 'छाडछडिला' इति लोके प्रसिद्धम्। ३–एकं तमालपत्रं 'पत्रज' इति नाम्ना प्रसिद्धं, द्वितीयं च 'कश्मीरीपट्टा' इत्यपरप्राकृतं 'वर्कतिवाका' इति नाम्ना प्रसिद्धमिति द्विपत्रकम्। ४–गुडत्वक् 'दालचिनी' इति प्रसिद्धा। ५–गुन्दणी 'गून्दी' इति ख्याता। ६–पिचुरत्राष्टमाषो विवक्षितः। ७–षड्विंशतिप्रस्थमितं शम्वरं जलं यस्मिन् तत्तथा। ८–'चित्तं चन्दयति आह्लादयति' इति चित्तचन्दिरोऽन्वर्थसंज्ञः। मात्रा चास्य तोलद्वयोन्मिता; पथ्यं च गोधूमफुल्लिका मुद्गसूपः पुरातनतन्दुलकृतभक्तम्। ९–किञ्चिन्मदयतीत्यर्थः।

२ उन्नाभं नाम बदरं पचेन्नीरे चतुर्गुणे ।
अर्धशेषे सिता क्षिप्त्वा त्रिगुणा विपचेत् पुनः ॥ ६ ॥
शार्करोऽयं परं स्वादुः क्षयकासास्रनाशनः ।
युवानपिडिकापित्तविकारादिषु पूजितः ॥ ७ ॥
३ शकृदक्षं कपोतस्य शर्करां द्व्यक्षसमिताम् ।
प्रस्थे पक्त्वा कलांशं वा रुजं जयति गौर्जरीम् ॥ ८ ॥
४ क्षीरं क्षिप्त्वा घटान्तर्निशि निलयशिरोन्यस्तमिन्दूडुशीत
प्रातः साकं कलांशोन्मितसितसितया क्षोभय क्षुब्धकेन ।
फेनानुत्तिष्ठमानान् दलितकतिपयद्राविडीबीजयोगा-
द्दत्तामोदानमन्दं वितर रसयितुं रक्तपित्तादिरुक्षु ॥ ९ ॥

इति राजयक्ष्मचिकित्सितम् ।

उन्नाव नामक बदरी-फलों को चतुर्गुण पानी में उकाल लेवें । अर्धावशेष रहने पर छानकर, जल से त्रिगुणित शक्कर मिला देवें । इसे पुनः उकालकर, ज्वर-चिकित्सा के ४५ वें श्लोक में निर्दिष्ट विधि के अनुसार, 'शार्कर' बना लेवें । यह शार्कर अत्यंत स्वादु तथा क्षय, कास और रक्तविकार नाशक है । यह युवान पिडिका तथा रक्तपित्त आदि विकारों में प्रशस्त माना गया है ॥ ६-७ ॥

कपोत-विष्ठा एक तोला, शर्करा दो तोला इन दोनों को एक-प्रस्थ पानी में पकालें । षोडशांश पानी रहने पर उतारकर पीयें । यह न्युमोनिया की उत्तम औषधि है । अल्प-वेग वाली व्याधि में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये । मुख में से ष्ठीवन कफ-सह रक्त की प्रवृत्ति सहित तीव्र व्याधि में ही इसका उपयोग प्रशस्त है ॥ ८ ॥

एक घट में दूध भरकर उसे घरकी छतपर रातभर चंद्रमा तथा नक्षत्रों की स्निग्ध ज्योत्स्ना में शीतल होने दें । प्रातःकाल इस दूध में षोडशांश मिश्री मिलाकर, मथनी से खूब मथें । इस तरह मथने से जब फेन उभरने लगे तब इलायची दानों के सूक्ष्म चूर्ण का प्रक्षेप करके दूध को सुगंधित बनालें । रक्त-पित्त-विकार में प्रसन्नता की प्राप्ति के लिये इस दूध का पान करें ॥ ९ ॥

— राजयक्ष्मचिकित्सा समाप्त —

१–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धं निष्कण्टकबदरीफलम् । २–वन्यस्येति शेषः । ३–जलप्रस्थे । ४–षोडशांशमवतार्य पिबेत् । महान्व्याधिक्षपणक्षमोऽयं योगो नाल्पीयसि व्याधौ प्रयोज्य इति गुरूपदेशः । ५–सश्लेष्मरक्तं मुखात् प्रवर्तते इत्यादि प्रसिद्धलक्षणो ('न्युमोनिया' पाश्चात्यवैद्यकप्रसिद्धो) व्याधिविशेषः । लोकप्रसिद्ध्या चात्र नामाभिहितम् । ६–मन्थनयन्त्रविशेषेण । ७–द्राविडी एला, सा चात्र सूक्ष्मोपादेया ।

अथ [1]कासहिक्काश्वासचिकित्सितम् ।

हस्तेन घण्टां क्वणयन्निषण्णः कूर्मे सदण्डो विवृताक्षिगोलः ।
निद्रादरिद्रोऽधिकदुःखमुद्रो वल्गद्बलासः समवर्णि कासः ॥ १ ॥
प्रकम्पयन्तीव शिरः शिरोधरां नादेन वाचालितसर्वदिक्का ।
स्थिता धुरि प्राणरुजां महारुजां वैद्यद्रुहां द्राग्घतयेऽस्तु हिक्का ॥ २ ॥
निपीडितस्ताम्यति येन मानवः श्वा संनिरुद्धोद्धतमारुतो यथा ।
तं पञ्चशाखैरु[2]पलक्षितं [3]त्रिभिः श्वासं सपाशाक्षकमण्डलुं स्तुहि ॥ ३ ॥

—कास, हिक्का और श्वास की चिकित्सा—कासचिकित्सा (कुल २६ प्रयोग) :-

कास के स्वरूप का वर्णन-कास कूर्म पर सवारी करता है। हाथ से घंटे को बजाता रहता है। दण्डधारी है। इसके नेत्र-गोलक चारों ओर घूमते रहते हैं। उन्निद्र रहता है। कफ को थूंकता है तथा इसकी मुखमुद्रा निरंतर विषादमय बनी रहती है ॥ १ ॥

मस्तक तथा ग्रीवा को प्रकंपित करती हुयी, अपनी हुंकार से सभी दिशाओं को क्षुभित कर देनेवाली, प्राण-वायु-प्रधान रोगों में अग्रगण्य हिक्का, महावेदना उत्पन्न करनेवाले विकारों तथा वैद्य-द्रोहियों का शीघ्र नाश करदे ॥ २ ॥

स्वरूप से एक होते हुये भी लक्षण भेदसे पांच प्रकारका तथा पाश, अक्ष एवं कमण्डलु इन तीनों से, अथवा वात-पित्त तथा कफ से, युक्त श्वास की स्तुति कीजिये जिससे पीडित मनुष्य, प्राणवाही-स्रोतों के अवरोधपूर्वक वायु के विमार्गगामी होने पर, श्वान की तरह आकुल-व्याकुल हो जाता है। 'त्रिभिः' का अर्थ टिप्पणीकारने 'वातपित्तकफैः' किया है। प्रायः पांचों प्रकार के श्वास वात तथा कफप्रधान होते हैं। यथा—'वाताधिको भवेत् क्षुद्रस्तमकस्तु कफोद्भवः। कफवाताधिकश्चैव संसृष्टश्छिन्नसंज्ञकः। श्वासो मारुतसंसृष्टो महानूर्ध्वस्ततो मतः' (सु. उ. ५१)। यहां कहीं भी पित्तका उल्लेख नहीं। तथापि तमकश्वास के प्रतमक भेद में पित्तानुबंध रहता है। 'ज्वरमूर्च्छायुतः शीतैः शाम्येत्प्रतमकस्तु सः' (वाग्भट)। तदुपरांत 'छिन्न' श्वास के लक्षण—'आनाहस्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन बस्तिना' (च. चि. २१)—'दह्यमानेन बस्तिना' में दाह के वर्णन से इस श्वासमें भी पित्तका अनुबन्ध माना गया है। इस तरह श्वास में पित्तानुबन्ध के आग्रह से 'त्रिभिः' पाठ युक्तियुक्त कहा जा सकता है। मेरे मत में 'द्विभिः' पाठ अपेक्षाकृत अधिक उत्तम है ॥ ३ ॥

१—कासस्य क्षयहेतुत्वाद्यक्ष्मानन्तरं कासेऽभिधेये तन्निदानचिकित्सितसामान्याद्धिक्काश्वासावप्यस्मिन्नेवाधिकारे प्रोच्येते। तत्रापि पूर्वं यथाक्रमं कासहिक्काश्वासानां स्वरूपमभिधीयते। २—प्रत्येकं पञ्चभेदैः। ३—वातपित्तकफैः।

१ क्षुद्रामुकूलसुमदारुसिताटरूषभेषज्यपौष्करकुलिञ्जनजूफिकाभिः ।
संसाधितात् खदिरसारसरसात् कषायादाप्नोति नो विकसनं कसनं कदाऽपि
२ मधुककुलिञ्जनबृहतीदारुसितापञ्चवक्त्रसंभूतः ।
क्वाथः सितासनाथः कासह्रासं समारभते ॥ ५ ॥
३ त्रुटिमरिचकषायः स्फीतखण्डासहायः कसनपरिभवाय स्याद्रुचेर्वैभवाय
गलगदशमनाय श्लेष्मणो निग्रहाय ज्वलनसमुदयाय च्छर्दिविच्छेदनाय
४ आफूकबीजानि पलोन्मितानि पानीयपिष्टानि सितासितानि ।
पृथक्पयासि क्वथनाद्यदा स्युस्तदा पवित्राणि दगूषणानि ॥ ७ ॥
प्रातर्निपीतानि दिनैः कियद्भिः शुष्कस्य कासस्य निबर्हणानि ।
पानीयबिल्वं यदि वा द्विबिल्वं सिता समाना यदि वाऽर्धमाना ॥ ८ ॥
५ अङ्गारतप्तकरके कीर्णमरिचचूर्णधूमसंस्कारे ।
भृतमुत्फणनजवाद्बहिरभिपतितं खलु पयोऽपि कासघ्नम् ॥ ९ ॥

छोटी कण्टकारी (अथवा पिण्डखजूरी-छुहारा), पिस्ताके फूल, दालचीनी, अरडूसा, सूठ, पुष्करमूल, कुलिञ्जन और जूफिका इनको एकत्र करके कषायसिद्ध करलें। इस में खैरसार मिलाकर पीने से कास का विकास रुक जाता है ॥ ४ ॥

मुलेठी, कुलिंजन, बडी कटकारी, दालचीनी और अरडूसा इनके क्वाथ में मिश्री मिलाकर पीने से कास का ह्रास होता है ॥ ५ ॥

खण्ड-शर्करा से युक्त, इलायची और मरिच का कषाय, कास को हटाने वाला, रुचि को बढाने वाला, गलेके रोगका शामक, कफका अवरोधक, जठरानल का वर्धक और वमन का विच्छेदक कहा गया है ॥ ६ ॥

करीब चार तोलाभर खसखस के दानों को, उनमें मिश्री मिला पानी से खूब बारीक पीसकर, दूध में उकालें। उकलते उकलते जब दूध फट जाये, तब वस्त्रपूत करके तथा उसमें दो तीन श्वेतमरिच का चूर्ण मिलाकर नियमित प्रातःकाल पीयें। इस तरह सात या नौ दिवस में ही शुष्ककास की निवृत्ति हो जाती है। उपरोक्त योग में खसखसके दाने तथा मिश्री प्रत्येक चार तोले एवं पानी चार या आठ तोले लेवें ॥ ७-८ ॥

मरिच-चूर्ण भुरकाकर उसकी धूम से सुवासित किये गये, अग्नि-तप्त सकोरे

१-मुकूल 'पिस्ता' इति लोके, तस्य पुष्पम् । २-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा । ३-पञ्चवक्त्र आटरूष । ४-'खसखसदाणा' इति प्रसिद्धानि । ५-मितया शुभ्राणि । ६-नष्टक्षीरवत् क्वथनाद्यदा पृथग्भूतपयांसि भवेयुस्तदा पटपूतानि कृत्वा धौतानां द्वित्रिमरीचानां रजोमिश्रमक्तानि पिबेदिति । ७-सप्तभिर्नवभिर्वा । ८-समासे गुणभूतस्यापि पानीयशब्दस्य बुद्ध्या विभज्योभयत्राप्यनुवृत्तिः कार्या "अथ शब्दानुशासनम्, केषां ? शब्दानां लौकिकानां वैदिकानां च" इतिवत् । ९-बीजसमाना जलसमाना वा । १०-'करवा' इति प्रसिद्धमृत्पात्रविशेषे ।

६ निर्वाप्य खादिरोल्मुकमर्णसि संरुद्धधूमनिर्गमनम् ।
तत्पिब यथापिपासं कासं हातुं यदीच्छसि भ्रातः ॥ १० ॥
७ श्लक्ष्णां पिष्ट्वा जूफिकां वस्त्रपूतां कृत्वा पङ्के शार्करे मेलनीया ।
लोके सैषा स्याद्दयाकुञ्जनाम्नी कासं का संनाशयेद्यां विनाऽत्र ॥ ११ ॥
८ अच्छाच्छशर्कराशुक्लगुन्द्रजः शीतशार्करः ।
पित्तांशविद्धवातोत्थं शुष्ककासं नियच्छति ॥ १२ ॥
९ स्विन्नफणिफेनफलयुगरसजनुषि सितोपलाम्रतन्तुल्याम् ।
बाम्बूलो निर्यासो यष्टीसत्त्वं सवातामम् ॥ १३ ॥
प्रत्येकतोलतुलितं प्रणीय सान्द्राऽवलेहिका कार्या ।
लिह्यात् द्विसंध्यमेनामनिलोल्बणशुष्ककासार्तः ॥ १४ ॥
१० सिंहास्यरसंसंसिद्धहरिद्राखण्डचूर्णकम् ।
दुग्धसंतानिकालीढं शुष्ककासनिबर्हणम् ॥ १५ ॥

में, उफान के वेग से छलक कर बाहर पडे हुये दूध को, भरदें। इस दूध के पीने से खांसी नष्ट हो जाती है ॥ ९ ॥

अर्ध-दग्ध खदिर वृक्ष की जलती हुई शाखा को पानी में बुझादें। बुझाते समय पानीके पात्र-मुख को शीघ्र ही ढकदें जिससे धूम बाहर न निकल सके। इस जल को, जब जब प्यास लगे, तब तब पीने से खांसी नष्ट हो जाती है ॥ १० ॥

जूफिका को पानी से खूब बारीक पीसकर वस्त्रपूत करलें। फिर इसे शक्कर की चासनी में मिला देवें। इस तरह से सिद्ध इस 'दयाकुंज' के अतिरिक्त भूतलपर खांसी को नष्ट करनेवाली अन्य कौनसी औषधि है? ॥ ११ ॥

अत्यंत स्वच्छ बूरे के समान श्वेतवर्ण, बबूल के गुंद्र से निर्मित शीत 'शार्कर' के सेवन से, पित्तानुबन्ध-वातप्रधान-शुष्क कास मिटजाती है ॥ १२ ॥

पोस्त के डोडे नग दो लेकर उन्हें स्विन्न करके उसमें से रस निकाललें; इस रस में दो तोलाभर शक्कर मिलाकर चासनी बनालें। इस चासनी में बबूल का गूंद, मुलेठी का सत्व तथा बादाम प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर अवलेह निर्माण करलें। इसको प्रतिदिन सुबह सांझ लेने से वातप्रधान शुष्क कास की वेदना से मुक्ति मिलती है ॥ १३–१४ ॥

अरडूसे के रस में सिद्ध किये गये हरिद्रा खण्ड के चूर्ण को दूध की मलाई के साथ लेने से शुष्ककास शांत हो जाती है ॥ १५ ॥

१—ज्वलदर्धदग्धखदिरकाष्ठम् । २—यां दयाकुञ्जनाम्नीं विना अत्र लोके का औषधिः कासं रोगविशेषं संनाशयेत्; न काऽपीति काकुः । ३—बब्बूलगुन्द्रः । ४—सिंहास्य आटरूषः ।

११ कृत्वा सितां प्रभाते रविदुग्धद्वित्रिबिन्दुभिर्दिग्धाम् ।
सायं निगीर्य खादन् मधुरस्निग्धं विमुच्यते कासात् ॥ १६ ॥
१२ कफकासेप्विपीकोत्थपुटपाकभवो रस ।
१३ सौवर्चलसख· सिंहीपुटपाकभवोऽथवा ॥ १७ ॥
१४ पट्टूर्द्र कार्मफलं पिधाय गोधूमलोप्त्र्या पच गोमयाग्नौ ।
ततो गृहीत' पट्टुरेव पूतैश्छिनत्ति नागच्छदनेन कासम् ॥ १८ ॥
१५ विर्च्चूर्य सामुद्रमहस्कराङ्घ्रित्वचो निध्यात्पपुटे पचेच्च ।
क्षारोत्तमस्यास्य निषेवणेन विपत्तयः कासगदे पतन्ति ॥ १९ ॥
१६ निजगुरुनिगदितविधिना दग्धान्युद्दालमानपत्राणि ।
किमपि कलितलवणानि क्षपणानिरुभवन्ति कासस्य ॥ २० ॥
१७ वृक्षाम्लपत्रनिचय सशर्करार्बुदो मुहुश्चर्व्यं ।
दु·साध्यानपि कासान् हन्त्येपा जुगलदासोक्ति· ॥ २१ ॥

प्रात काल, मिश्री चूर्ण को अर्क दूध के दो तीन बिंदुओ से सिक्त करके, रखदे। सायकाल के समय इसको निगलकर ऊपर से मलाई, जलेबी आदि का भोजन करें, इस से श्वास, हिक्का, मलावरोध आदि उपद्रवोंवाली खासी से मुक्ति मिलती है ॥ १६ ॥

पुटपाकविधि से, तुलिया थोर में से निकाला गया रस, कफप्रधान खासी में प्रशस्त है । इसी तरह, पुटपाकविधि से निकाले गये अरडूसे के रस में सौवर्चल मिलाकर लेने से कफप्रधान कास में लाभ होता है ॥ १७ ॥

मदनफल के भीतर साभर नमक की कणिकायें भरकर उसे गेहू के लोये से ढककर एक सेर कण्डों की आच का पुट दे । स्वाग शीतल होने पर मदनफल में से उपरोक्त नमक को सावधानी पूर्वक निकाल लेवें । मदनफल गत बीज वल्कल आदि यदि नमक से लग गये हो तो उनको अलग निकालकर शुद्ध नमक ही ग्रहण करें । नाग रवेल के पान के साथ इस नमक का सेवन खासी को छिन्न भिन्न कर देता है ॥ १८ ॥

आकडे के मूल की छालमें सामुद्र नमक (और हरिद्रा)के चूर्ण को रखकर सपुटित करदे । फिर लघु -पुट की अग्नि में इसे फूक दें । स्वागशीतल होनेपर नमक को निकालें । इस तरह से सिद्ध यह लवणोत्तम कास की विपदाओं का अन्तकर देता है ॥ १९ ॥

लिसोढे तथा शाल्मली के पत्तो को एक तवे पर फैलाकर चूले की अग्नि से जलादे । इनको पीसकर किंचित् नमक मिलाकर मधु के साथ सेवन करने से खासी क्षीण हो जाती है ॥ २० ॥

कोकम वृक्ष के पत्तों को पतासे के साथ पुन पुन चबाये । इससे दु साध्य

१–द्वित्रितोलकप्रमाणाम् । २–दुग्धसतानिकाघृतपूरजलवल्लिवल्यादिकम् । ३–श्वासहिक्काविबन्धाद्युपलक्षितात् । ४–'तुलिया थोर' इति प्रसिद्धा । ५–सभरलवणकणिकागर्भम् । ६–मदनफलम् । ७–पूतशब्देन वल्कलबीजव्यवच्छेद । ८–केचिदत्र हरिद्रामपि प्रक्षिपन्ति । ९–प्रतप्ते लोहतवके लोके 'तवा' इति ख्याते समास्तीर्य दहेदेष विधि समवधार्यताम् । १०–उद्दाल शेलुराख्यात । ११–'पतासा' इति विश्रुति । १२–योगोपदेष्टु सज्ञेयम् ।

१८ चूर्णं पञ्चास्यपुष्पाणां विशुष्काणामनातपे।
लीढं क्षौद्रेण पित्तास्रशोषकासान् व्यपोहति ॥ २२ ॥
१९ विश्वाविषाब्दशृङ्ग्यः समभागाः सर्वसंमितः क्षारः।
क्षोदः क्षौद्रसहायः प्रसह्य कासान्निरासयति ॥ २३ ॥
२० पृथक् त्रिमाषा घनदाडिमीत्वग्बिभीतकश्रेयसिकां विचूर्ण्य।
क्षौद्रेण षण्माषमितेन बद्धाः शाणोन्मिताः स्युः कसनेषु वट्यः ॥२४॥
२१ दरदं शृङ्गिकं मुस्ता पिप्पली मरिचं सुमम्।
निंबुनीरैस्त्र्यहं पिष्ट्वा मुद्गाभाः कारयेद्गुटीः ॥ २५ ॥
द्विसंध्यं द्वे गिलेद्गुट्यौ कासवेगनिवृत्तये।
कत्रयं वद्वयं तैलं खण्डं चापि विवर्जयेत् ॥ २६ ॥
२२ टङ्कणाफूकतः कर्षौ तेऽष्टौ खदिरसारतः।
चूर्णं पूर्णतया दत्तं तूर्णं कासान् व्यपोहति ॥ २७ ॥

कास भी नष्ट हो जाती है। यह कथन जुगलदास का है। (श्री जुगलदासजी ग्रंथकार के एक विशिष्ट शिष्य थे) ॥ २१ ॥

अरडूसे के पुष्पों को छायाशुष्क करके उनका चूर्ण बनालें। मधु के साथ इस चूर्ण को लेने से पित्त, रुधिरविकार तथा कास दूर हो जाते हैं ॥ २२ ॥

सूंठ, अतीस, नागर मोथा और काकडासींगी प्रत्येक समभाग तथा इन सभी द्रव्यों के समानभाग (अथवा चतुर्थ भाग) जितना यवक्षार इनको एकत्र पीसकर चूर्ण बनालें; मधुके साथ इस चूर्ण को लेने से कास का बलात् नाश हो जाता है ॥ २३ ॥

नागरमोथा, दाडिम की छाल, बहेडा तथा हरडे प्रत्येक तीन तीन माशा लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें। इस चूर्ण में छह माशा मधु मिलाकर तीन माशा प्रमाण में गोलियां बांधलें। यह गोलियां कास-रोग में प्रशस्त मानी गयी हैं ॥ २४ ॥

हिंगुल, शुद्ध सींगीमोरा, मुस्ता, पिप्पली, मरिच और लविंग इनके सूक्ष्म चूर्ण को तीन दिवस पर्यंत निंबू-रस में खूब खरल करलें। तदुपरांत, मूंग जैसी गुटिकायें बना दिवस में दो बार सुबह और सांझ एक एक गुटी, कास के वेग की निवृत्ति के लिये लेवें। प्रयोगकाल में तीन 'क' कार अर्थात् केला, करेला और कूष्मांड, दो 'व'कार अर्थात् वाल और वालोल तथा शर्करा का सेवन वर्ज्य है ॥ २५–२६ ॥

टंकण और अफीम प्रत्येक एक एक कर्ष तथा खैरसार आठ कर्ष (तोला) इनके एकत्र सूक्ष्म चूर्ण को पूर्ण-मात्रा में सेवन करने से सभी प्रकार की खांसी नष्ट हो जाती है ॥ २७ ॥

१–पञ्चास्यश्चाटरूषकः। २–सर्वसंमितोक्तावपि क्षारस्य चतुर्थांशोऽर्धांशो वा प्रक्षेपो युक्तः। ३–श्रेयसी तु हरीतकी। ४–लवङ्गम्। ५–कदली-कारवेल्ल-कूष्माण्डकानीति कत्रयम्। ६–वालं वालोलं चेति वद्वयम्। ७–निर्देशस्य मानप्रधानत्वान्मिलित्वा कर्षद्वयम्। ८–त्वरितम्।

२३ दीप्तच्छगणभस्मान्तः सिद्धं क्लीतकैसैन्धवम् ।
चूर्णितं कासनुत् पर्णक्षौद्रसंतानिकादिभिः ॥ २८ ॥
२४ कसनश्वसनबलासैर्वेलवद्भिर्यदि विशिष्य परिभूत ।
लवणहरिद्रासंभृतधत्तूरफलस्य भस्म भुङ्क्ष्व सखे ! ॥ २९ ॥
२५ परिणामविदलिताना भस्म फलाना फलेन्द्रायाः ।
कसनेषु श्वसनेषु प्रयोजयेत्तत्तदनुपानैः ॥ ३० ॥
२६ लोहितगुरुतरगैरिकमतल्लिकामर्धकोकिला पिष्टा ।
लुलिता पयोभिरम्बरपूता परिढालयेदधिस्थालि ॥ ३१ ॥
कलिता तत्कत्तलिका भिषजामुपकारिणी नियतम् ।
कसनश्वसनादिजये सार सर्वात्मना हसति ॥ ३२ ॥

–इति कासचिकित्सितम्–

मुलेठी को सैंधव-जल की भावना देकर सपुटित करके प्रदीप्त कण्डों की राख (भस्म) के भीतर रखदें। नागरवेल के पान के साथ अथवा मधु, मलाई आदि के साथ इस चूर्ण को लेने से कास का शमन होता है ॥ २८ ॥

धत्तूर-फल में से थोडे बीज निकाल उसमें नमक और हरिद्रा के चूर्ण को भर कर कपडमिट्टी करके कण्डों की अग्नि से उसकी भस्म बनालें। हे मित्र ! यदि आप श्वास, कास तथा कफ के उग्र-वेग से परिपीडित हैं तो इस भस्म का उपभोग करें २९

राज-जामुन के परिपक्व फलों को छाया-शुष्क करके उनकी भस्म बनालें। यथोपदिष्ट अनुपान-पूर्वक इस भस्म का उपयोग सभी प्रकारके कास और श्वास में प्रशस्त कहा गया है ॥ ३० ॥

वजन में भारी एव रक्त-वर्ण युक्त उत्तम स्वर्णगैरिक, तथा इससे अर्ध मात्रा में बादामी कोयले (soft cocke) इन दोनों को खूब बारीक पीस दूध में घोलकर तथा वस्त्र-पूत करके एक थाली में ढाल देवें। जमजाने पर इसकी छोटी छोटी चकत्तिया (कत्तलिका) चाकू से काटकर निकाल लें। ये कत्तलिकायें श्वास, कास आदि विकारों में परम हितावह अत एव वैद्यों की नि सदेह उपकारक तथा गुण और वर्ण में, सभी प्रकार से, लोह-भस्म से भी उत्तम मानी गयी हैं ॥ ३१–३२ ॥

–कासचिकित्सा समाप्त–

१–भस्मान्तरेऽवकूलनात् सिद्ध पुटपाकरीतिसिद्धमिति यावत्। २–क्लीतक यष्टीमधु। तच्च सैन्धवजलभावितम्। ३–किञ्चिन्निष्कासितबीजस्य। ४–पक्वतरपरीक्षेयम्। ५–राजजम्ब्वा। ६–प्रशस्तस्वर्णगैरिकम्। प्रशस्तत्व च लोहितगुरुतरत्वमेव। कोकिलानि चात्र मार्तिकाणि 'भरावाकोईला' इति प्रसिद्धानि। ७–गोदुग्धे। ८–लोहभस्म। ९–तत्सदृशत्वादिति कूटलोहभस्मकरणप्रकारोऽय वर्णित ।

अथ हिक्काचिकित्सितम् ।

१ पृथक् स्वादुसुरञ्जानं[1] मृत्खण्डे[2] वार्धितोलके[3] ।
यासं[4] प्रस्थकलामानं[5] द्विप्रस्थेऽम्भसि साधयेत् ॥ १ ॥
अष्टमांशं समुत्तार्य पूतमल्पाल्पशः पिबेत् ।
कलांशखण्डं[6] मसकृद्दुग्धमुष्णं पिबेदपि ॥ २ ॥
समाप्यन्ते ततो हिक्काश्वासकासव्यथाकथाः ।
२ तैलप्लुता विवस्वत्प्रसून[7] गर्भगलवङ्गिकैकैव ।
सहसा कण्ठे क्षिप्ता हिक्कां हन्ति महदेतदाश्चर्यम् ॥ ३ ॥
३ विनिवेश्य कुटीयन्त्रं[8] रहसि हसन्त्यां[9] विशिष्य विहसन्त्याम्[10] ।
तत्रस्थं सिहिरदलं[11] पच दानव[12] दुग्धिकाभित्तैः ॥ ४ ॥
एवं मुहुः कृते सति नभोनिभं भस्म तस्य जायेत ।
हिक्काकासश्वासक्षुन्मान्द्यबलासवातरुजि देयम् ॥ ५ ॥
द्राक्षापर्णक्षौद्राण्यनुपानान्यस्य रक्तिका मात्रा ।
भेषजमिदमर्पितवानन्तेवासी स मे सदानन्दः ॥ ६ ॥

इति हिक्काचिकित्सा ।

– हिक्का चिकित्सा (कुल प्रयोग–३) –

मीठा सुरंजान, ठीकरी तथा जवासे के मूल प्रत्येक चार चार तोला लेकर, १२८ तोले पानी में अष्टमांश शेष रहने तक उकाल लेवें। फिर उतारकर वस्त्रपूत करके अल्प मात्रा से दिवस में कई बार पीवें। साथ ही गरम गरम दूध को भी उसमें चतुर्थांश शक्कर मिलाकर पीते रहें। इससे हिक्का, श्वास और कासजन्य व्यथा की कथा का अन्त हो जाता है ॥ १–२ ॥ अर्कपुष्प के अन्तर्गत लवङ्गिका नग एक लेकर उसे तैल में सिक्त करके सहसा गले में डाल देवें। इससे हिक्का नष्ट हो जाती है। यह परम आश्चर्य पूर्ण प्रयोग है!! ॥ ३ ॥ छह माशाभर एक सूक्ष्म ताम्र पत्र को प्रतप्त अर्क दुग्ध में सात बार बुझावे देकर शुद्ध बनालें। फिर निर्वात प्रदेश में, एक प्रज्वलित अंगीठी पर रखे हुये कुटीयंत्र के भीतर इस पत्र को स्थापित करके उसपर करीब आठ

१–'मीठा सुरंजान' इति प्रसिद्धं, तच्च मैसरो वन्यश्टङ्गाटविशेषः। २–मृत्खण्डं 'ठीकरी' इति ख्यातम्। ३–कटपयादिक्रमेण संख्याभिधानमिदम्। तेन चतुश्चतुष्टोलके इत्यर्थः। प्रत्येकं चतुष्टोलके इति यावत्। ४–यासमूलम्। ५–पलमानमित्यर्थः। ६–दुग्ध-विशेषणम्। ७–अर्कस्य फुल्लिकान्तर्गतलवङ्गिका। ८–पार्श्वद्वये तिर्यगूर्ध्वीकृतकपालान्तरित-च्छगणकद्वयेन तन्निष्पत्तिः। ९–अङ्गारधानिकायाम्। १०–ज्वलदङ्गारकायाम्। ११–ताम्र-पत्रं गद्याणमितं, तच्च शुद्धमादेयम्। शुद्धिश्चास्य कपालस्थस्य प्रतप्तस्य रविदुग्धे सप्तकृत्वो निर्वापणात्। १२–दानवो गन्धकः; स च द्विपलः। दुग्धिकाशकलानि पलमितानि दुग्धिका चात्र सूक्ष्मपत्रा स्वल्पतरा चान्वेष्टव्या।

अथ श्वासचिकित्सितम् ।

१ शुद्धार्कपत्रचूर्णं विमर्द्य चाढं पयोभिरर्कोत्थै॰ ।
पुटपक्व शतकृत्व कासश्वासादिरुक्षु हितम् ॥ १ ॥
२ जम्बूफलरसे जम्ब्वास्तनुच्छल्लं कलांशकम् ।
विनीय स्थापयेद्धर्मे प्रचण्डे दिवसाष्टकम् ॥ २ ॥
अनातपे पक्षमेकं ततो द्वित्रि पवित्रयेत् ।
अनेन लोहज पिष्ट्वा जाम्बवासवतो रज ॥ ३ ॥
पुटेत् पुन॰ पुनर्यावत् पुटा स्यु॰ पञ्चविंशति ।
इत्यदो लोहज भस्म श्वासहृच्छूलसूदनम् ॥ ४ ॥
३ वन्याना विंशतिप्रस्थाश्चूर्णं स्याल्लोहज पलम् ।
कलसोर र्गमिभपुटे पक्त्वा पूत विमर्द्य रविपयसा ।
संशोध्य पक्वमिति रज कासश्वासेषु देयमनुपानै॰ ॥ ५ ॥

तोला भर गधकचूर्ण का तथा दुग्धिकाक्षुप के छोटे छोटे शुष्क टुकडों का थोडी थोडी मात्रा में प्रक्षेप करते रहें । इस तरह पुन पुन करते रहने से ताम्रपत्र की आकाश-तुल्य नीलवर्ण की भस्म हो जायेगी । इस भस्म का, हिक्का, कास, श्वास, अबुभुक्षा, अग्निमांद्य, कफ और वातप्रधान विकारों में प्रयोग करें । यह सिद्धप्रयोग मुझे मेरे शिष्य 'सदानन्द' ने बताया है । इसकी मात्रा एक रत्ती भर है । इसके अनुपान, द्राक्षा, नागरवेल का पान अथवा मधु हैं ॥ ४–६ ॥ — हिक्काचिकित्सा समाप्त —

— श्वासचिकित्सा (कुल प्रयोग ३०) —

शुद्ध ताम्रपत्र के चूर्ण को अर्क दुग्ध में खूब खरल करें । सो पुट देकर इसकी भस्म बनालें । यह भस्म कास श्वास आदि विकारों में प्रशस्त है ॥ १ ॥ एक भाग जम्बूफल के रस में, जमू वृक्ष की षोडशांश अन्तर छाल को थोडी कूट कर मिला देवें । इसे आठ दिवस पर्यंत सूर्य के प्रचड ताप में, फिर, पदरह दिन तक छाया में रखदें । तदनन्तर, इसे दो तीन बार वस्त्रपूत करके, इससे लोहचूर्ण को खरल में खूब घोटें । फिर इसकी टिकिया बना शराव सपुटित करके वन्यगोवरी की अग्नि से पुट देवें । इस तरह पुन पुन कुल पचीस पुट देकर उत्तम लोह भस्म निर्माण करलें । यह भस्म श्वास और हृदय शूल को निर्मूल कर देती है । इस प्रयोग में लोह चूर्ण चार तोलाभर तथा वनोपल वीस प्रस्थ लेवें ॥ २–४ ॥ अभ्रक चूर्ण को कलमी सोरे में रखकर, शराव सपुटित करके गजपुट की आच देकर भस्म बनालें । इस भस्म को कपडे से छानकर

१–शुद्धताम्रपत्रस्य चूर्णम् । २–'अन्तरच्छाल' इति प्रसिद्धमाभ्यन्तरवल्कम् । ३–मनाक् संक्षुद्य । ४–तृतीयायामत्र तसि । ततोऽनेन जाम्बवासवत इति सामानाधिकरण्यम् । ५–वनोपलानाम् । ६–अभ्रक कल्सोरेणान्तरित मृत्कोष्ठीस्थ कृत्वेति शेष ।

ग्रीष्मे द्राक्षा, प्रावृषि पर्णं, स्वाद्वीफलं च शिशिरतौं।
तन्दुलमेकं शिशवे, यूने च त्रीणि तानि मात्राऽस्य ॥ ६ ॥
४ कन्याम्बुकल्कीकृतमेव हिङ्गुलं दहेदरण्योपलयुग्मसंपुटे।
तद्धिङ्गुलं स्याच्छ्वसनेऽनु पावकं वन्योपलप्रस्थयुगी हि गौर्जरी ॥ ७ ॥
५ शङ्खः पूरितकुक्षिः शतमल्लयुजा दिनेशदुग्धेन।
दन्तावलपुटसिद्धः श्वासे कासे ज्वरे प्रसिद्धोऽयम् ॥ ८ ॥
६ सुधार्कखण्डचूर्णाद्यवानी द्विभागा दिवाकृद्दलेभ्यो विभागा दशैव।
पचेन्न्यस्य चुल्ल्यां द्वियामं पुनस्तत् पुटेत् कौञ्जरे श्वासकासौ निहन्तुम्
७ तेजोम्बुनि निष्कृष्टे लवणक्षारादितीक्ष्णवस्तुभ्यः।
तत्किट्टपिण्डखण्डं वल्लमितं श्वासहारि पर्णेन ॥ १० ॥

आकडे के दूध में दिनभर खूब मर्दन करके टिकियां बनाकर उसे सुखा, शरावसंपुटित करके पुनः गजपुट की अग्नि दें। इस भस्म को कास एवं श्वास रोग में यथा निर्दिष्ट अनुपान सहित प्रयोग में लें। ग्रीष्म ऋतु में द्राक्षा के साथ, वर्षा में नागरवेल के पान के साथ तथा शिशिरऋतु में छुहारा के साथ सेवन करें। इसकी मात्रा, बालक को एक चांवल तथा युवक को तीन चांवल भर है ॥ ५-६ ॥ एकतोला भर हिंगुल का ग्वार पाठे के रस से कल्क करके शराव संपुट में रख एक प्रस्थ भर जंगली उपलों की अग्नि में फूंक दें। यह हिंगुल श्वास रोग में प्रशस्त है। इसके ऊपर सीरेका (हलवेका) भोजन करना चाहिये। गुर्जरप्रदेश में बत्तीस तोले का एक प्रस्थ माना जाता है। प्रस्तुत श्लोक में दो प्रस्थ उपलों का ग्रहण इसी मान के अनुसार किया गया है। प्रचलित आयुर्वेदीय मानके अनुसार चौसठ तोले का एक प्रस्थ होता है। इसी गणना के आधार पर हमने एक प्रस्थ (चौसठ तोले) ही यहां ग्रहण किया है, जो गुर्जरदेश के दो प्रस्थ मान के अनुसार ठीक उतरता है ॥ ७ ॥ आकडे के दूध में शतमल्ल को मर्दन करके उसको शंख के उदर में भर गजपुट की आंच में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर बारीक पीसकर उपयोग में लें। यह भस्म श्वास, कास, तथा ज्वर में प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥ सुधा-चूर्ण एक भाग, अजवायन दो भाग, तथा आकडे के पत्ते दस भाग इनको एक पात्र में भर चूल्हे की आंच से दो प्रहर तक पकावें। तदनन्तर, इन्हें शरावसंपुटित करके गजपुट से फूंकदें। यह भस्म श्वास तथा कास को नष्ट कर देती है ॥ ९ ॥ लवण, क्षार आदि तीक्ष्ण द्रव्यों से तेजाब निकाल लेने पर इनके अवशिष्ट

७—अहरेकम्। ८—चक्राकारं कृत्वा शरावसंपुटे निरुध्य खडखडशब्देन तदन्तःशुष्कमनुमाय पुटेत्।

१—खर्जूरीफलं लोके 'छुहारा' इति ख्यातम्। २—तोलकप्रमाणम्। ३—संयाव उपरिष्टाद्भोज्यः। ४—गुर्जरदेशप्रचरिता। तत्र चाष्टपलिकः प्रस्थः प्रचरति। ५—गजपुटसिद्धः। ६—कलिकाखण्डचूर्णात्। तानि च लोके 'कलीटांटा' इति प्रसिद्धानि। ७—'तेजाप' इति प्रसिद्धे क्षारद्रवे। ८—यन्त्रविधिना। अस्य सेवनात् हृदुद्वेष्टनादौ सति दुग्धसंतानिका शर्करां विना देया।

८ चणकलवणमसृणरजो भानदलजलेन गोलकं कृत्वा ।
पटपिहित पुटदग्ध जग्धमर श्वासघस्मर भस्म ॥ ११ ॥
९ पक्वाम्लदाडिमीफलगर्भगतं लवणमर्जुनच्छायम् ।
पुटपाकरीतिपक्कं करालकफमाशु कृन्तति श्वासम् ॥ १२ ॥
१० येन स्वर्णदलानि प्रलिप्य वह्नौ विशिष्य शोध्यन्ते ।
तत्पक्वकल्ककिट्ट संतानिकया सह क्षयति श्वासम् ॥ १३ ॥
११ मूलकमूलविभूतिर्हेममिता श्वासकासकफरुक्षु ।
शार्करकवोष्णपावककवलेन करोति शर्म सह भुक्ता ॥ १४ ॥
१२ धूमयन्त्रच्युतं भस्म धूमवल्लीदलोद्भवम् ।
स्नुकाण्डजठरे धृत्वा मृदाऽऽलिप्य दहेद्द्विपक् ॥ १५ ॥
तत्काण्डतः पृथक्कृत्वा भस्म तद्यत् पुरा धृतम् ।
सखण्ड मात्रया दत्त श्वसनं खण्डयेत् खलु ॥ १६ ॥

किट्ट खड से एक वालभर गुटिकाये बनाकर पान के साथ लेने से श्वास मिट जाता है। इसके सेवन से कदाचित् हृदय-उद्वेष्टन आदि पीडा होने लगे तो शक्कर मिलाये बिना दूध की मलाई खानी चाहिये ॥ १० ॥ शाल्मली पत्तो के स्वरस में चणक लवण को खून मुलायम पीस कर उसका गोलक बनालें। इसको एक शराव में रख कपडमिट्टी करके कडो की अग्नि में फूक दें। इस भस्म के खाने से श्वास का शमन होता है ॥११॥ पके हुये किंतु अम्ल दाडिमी-फल के भीतर स्वच्छ-श्वेत-सामुद्र-लवण को भरकर कपडमिट्टी करके पुट-पाक विधि से स्विन्न करलें। स्वागशीतल होने पर इसे लेकर खरल करके मटर-प्रमाण में गोलिया बनावें। ये उग्र-कफ-युक्त श्वास को काट डालती हैं। ये गोलिया अत्यत रुचिकर भी होती हैं ॥ १२ ॥

जिस क्षार का लेप करके स्वर्ण-पत्रों का शोधन किया जाता है, उस परिपक्व क्षार के कल्क-किट्ट का, दूध की मलाई के साथ, सेवन करने से श्वास नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥ छोटी मूली को छाया शुष्क करके उसकी भस्म बनालें। एक मापाभर इस भस्म के सेवन से श्वास, कास तथा कफजन्य विकार नष्ट होजाते हैं। इस भस्म के साथ शार्कर तथा कवोष्ण सीरे (सयाव) का भोजन करने से विशेष लाभ होता है ॥ १४ ॥ धूम-यन्त्र (हुक्का) गत तमाखू अथवा गाजे की जली हुई 'गुल' भस्म को, स्नुही-काड में भरकर कपडमिट्टी करके अर्ध गजपुट की आच में फूक दें। स्वागशीतल होने पर, स्नुही काड में से उपरोक्त भस्म अलग निकाल लेवें। रोग और रोगी के बलानुसार मात्रा में, इस भस्म को खाड के साथ लेने से, श्वास खडित हो

१-शरावस्थं कृत्वा पटपिहित कार्यम्। २-अनेन रक्तलवणव्युदासः। ३-रुचिकारकमप्येतद्भवति। ४-क्षारविशेषेण। ५-मापामितेति यावत्। ६-पावक सयाव। स च लोके 'सीरा, मोहनभोग' इति च प्रसिद्धो भक्ष्यविशेषः। ७-'गुल' इति प्रसिद्धम्। ८-'तमाखू' इति प्रसिद्धा 'गांजा' इति वा।

१३ अर्धदग्धां हरिद्रां द्राक् पिदधीत शरावतः ।
तत्कोकिलरजः क्षौद्रैर्द्विमाषं श्वासकासजित् ॥ १७ ॥
१४ व्युषिता पटुपयसि निशां भ्राष्ट्रभ्रष्टा मुखाम्बुजे धार्या ।
हिक्काकासश्वासश्लेष्मविकारापहाराय ॥ १८ ॥
१५ पिप्पल्येका त्रुटियुगलकं क्लीतकं द्वित्रिमाषं
द्वे गोस्तन्यौ दृषदि सकलं कल्कयेदार्द्रकाद्भिः ।
वह्नेर्योगान्मधुनि विकसद्बुद्बुदे शाणमात्रे
कल्कं क्षिप्त्वा मथितमसृणं श्वासनाशाय लिह्यात् ॥ १९ ॥
१६ स्वर्जिकाक्षारशकलं तप्तं निर्वापयेज्जले ।
तज्जलं पिबतां पुंसां श्वासः सद्यः प्रशाम्यति ॥ २० ॥
१७ परिणतदलं तमाल्याः प्राचीनगुडेन किंचिदधिकेन ।
विहितं विकुट्य भसितं श्वसितानाहौ निहन्ति तप्ताद्भिः ॥ २१ ॥

जाता है ॥ १५–१६ ॥ अर्धदग्ध हरिद्रा को एक शराव से शीघ्र ढक दें। इस हरिद्रा के कोयले की भस्म को दो माषा (अथवा एक माषा) प्रमाण में मधु के साथ लेने से श्वास और कास पराजित होजाते हैं ॥ १७ ॥ भट्टी में हरिद्रा को भून कर उसे लवण-जलसे पूर्ण एक पत्थर-पात्र में डुबोकर एकवीस दिवस पर्यंत रहने दें। तदनन्तर, इसके सेवन करने से हिक्का, कास, श्वास तथा कफ-जन्य विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ १८ ॥

पिप्पली नग एक, छोटी और बडी इलायची प्रत्येक एक एक माषा, मुलेठी तीन माषा, तथा गोस्तनी द्राक्षा नग दो, इन सबको एकत्र, शिलापर, आर्द्रक-रस से घोटकर, कल्क बनालें। अब, एक पात्र में तीन माषा भर मधु को अग्नि पर रख गरम करें। जब बुद्बुदे उठने लगे, तब उपरोक्त कल्क इस में डालकर कडछी से हिलाकर अच्छी तरह मिला अवलेह जैसा बनालें। श्वास को मिटाने के लिये इस अवलेह का सेवन करें ॥ १९ ॥

स्वर्जिका क्षार के टुकडे को अग्नि से तपाकर पानी में बुझावें। इस बुझावे के जल का पान करनेवाले मनुष्य का श्वास रोग शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ २० ॥ तमाखू के परिपक्व पत्तों में, इनसे वजन में कुछ अधिक पुराणे गुड को मिला दोनों को कूटकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को गरम जल के साथ लेने से श्वास एवं आनाह शांत होजाते हैं। यहां छह-वर्ष पुराणा गुड लेवें। एक प्रस्थ भर तमाखू के पत्तों में डेढ प्रस्थ गुड मिलावें। इस योग में पिप्पली, नागरवेल का पान, मरिच, चित्रक, गुड और

१–एकमाषमपि दीयते। २–एकविंशतिदिवसान् प्रस्तरपात्रे लवणजलेन भावितेत्यर्थः। ३–हरिद्रा। ४–'जरदा' इति प्रसिद्धिः। ५–प्रायोऽतिक्रान्तवर्षषट्केन। ६–तमालः प्रस्थश्चेद् गुडस्य सार्धः सपादो वा। "पिप्पल्या नागवल्ल्याश्च वेल्लजाग्निगुडत्वचाम्। महाप्रभावे योगेऽस्मिन् प्रक्षेपः केन वार्यते"।

१८ तमालपत्रस्वरसे सम गुडं विनीय ससाधय साधुतन्तुलीम्[1] ।
तामेकतोलोत्तुलिता यथावल प्रात प्रयच्छ श्वसने महत्यपि ॥ २२ ॥

१९ मधुनैलेय[2] लिहित्वा तदनु मुहूर्त पयासि नो पिबताम् ।
श्वसनश्वयथुविबन्धा न भवन्ति भवन्ति शर्माणि ॥ २३ ॥

२० रसं पिबेन्नागफणीफलोद्भवं समाक्षिक श्वासगदे सटङ्कणम् ।
तोलौ रसाद् द्वौ मधुन· स एकस्तैलाभिधं टङ्कणमत्र वल्लम् ॥ २४ ॥

२१ गुञ्जाभा रचय गुटीं मरिचसिपीकास्नुहीदलं पिष्ट्वा ।
नि·शङ्कं वितर पुन श्वसनेषु तथैव कसनेषु ॥ २५ ॥

२२ संशोधितानां विषमुष्टिकाना कृत्वा शृतान्यष्टगुणैर्जलैस्त्रि ।
पुन· पचेत्तानि घनानि यावत्तत्किट्टघंट्या· श्वसनं क्षिपन्ति ॥ २६ ॥

२३ साङ्गोपाङ्गं मृगपरिवृढं क्षुण्णमुत्क्वाथ्य पाकात्
सान्द्रेऽमुष्मिस्त्रुटिकणविषावंशजाता कलांशां ।
म्लं फेन शुचि फणिपतेस्तुर्यभागं विनीय
वल्ला वल्यक्षणकतुलिता· श्वासमुन्मूलयन्ति ॥ २७ ॥

दालचीनी इनके चूर्ण को मिलाने से अधिक लाभ होता है ॥ २१ ॥ तमाल पत्र के स्वरस में समान भाग गुड मिलाकर उत्तम चासनी सिद्ध करलें । रोग और रोगी के बलानुसार इसको एक तोलाभर मात्रा में प्रात सेवन करायें । यह उग्र-श्वास को भी शमित कर देती है ॥ २२ ॥ एलिया में द्विगुणित मधु मिलाकर चाट जायें । फिर कुछ ठहर कर ऊपर से दूध पीयें । इस तरह करने से मनुष्य को श्वास, शोथ तथा विबन्ध नहीं होते । तथा इन विकारो से मुक्त होकर वह स्वास्थ्यलाभ करता है ॥ २३ ॥

थूहर-फल के दो तोले रस में, दो तोलाभर मधु तथा तेलिया-टकण के एक वालभर चूर्ण को मिलाकर चाटने से श्वास रोग नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥ मरिच और तुलिया थोर के पत्ते को पीसकर गुजा-प्रमाण गुटिका बनालें । श्वास तथा कास में इसका निर्भय उपयोग करें ॥ २५ ॥ पूर्व कही गयी विधि के अनुसार कुचलों को शुद्ध करके फिर घी में भूनकर उनके चार चार टुकडे करलें । अब इनको आठगुणे पानी में तीन तीन बार खूब उकालें । अन्त में, उन्हें फिर पानी से उकालने पर वे सीज कर अवलेह जैसे घट्ट हो जायेंगे । इनके इस सान्द्र-किट्ट की अर्ध-गुजा प्रमाण में गुटिकायें बनालें । ये श्वास को मिटा देती है ॥ २६ ॥

मूलसहित अरडूसे के क्षुप को उखाड उसे सूक्ष्म पीसकर उकाललेवें । जब उकलकर यह अवलेह जैसा घट्ट बन जाये तब इसमें छोटी इलायची, पिप्पली,

१–लोके यस्या 'चासणी' इति प्रसिद्धि । २–द्वैगुण्य स्यादौपधान्माक्षिकस्य । ३–लोके सज्ञा 'एलिया' चास्य, मात्रा ग्राह्या यावत्यङ्गुलीपर्वयुग्मात् । ४–विरोहितं नात्र किंचित् । ५–प्रसिद्ध 'तेलिया' इति । ६–पूर्वोक्तविधिशुद्धानामन्तरा घृतभर्जन, चतु खडीकृताना च । ७–गुट्यो गुञ्जार्धमानिका । ८–आटरूप तदप्यार्द्रं ग्राह्यम् । ९–प्रत्येकशस्तथा ।

[illegible] ।
[illegible] ॥ २८ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २९ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ३० ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ३१ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ३२ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ३३ ॥

[illegible] इनके चूर्ण का प्रयोग करें। प्रत्येक [illegible] के [illegible] से [illegible] मात्रा में लेवें। फिर, चतुर्थांश मात्रा में शुद्ध की हुई पुरानी अफीम में इनको अच्छी तरह मिलादें। इसकी चने-प्रमाण वटियां बांधलें। यह श्वास का उन्मूलन कर देती है ॥ २७ ॥

गुड-मिश्रित कर्पूरवटिका श्वास को उसी तरह हर लेती है, जिस तरह सूर्यकी प्रभा कमलों के संकोच को ॥ २८ ॥ एक पके हुये केले को दो भागों में सीधा काटकर तदन्तर्गत सिरा को अलग निकाल उसमें एक तोलाभर मरिच चूर्ण का प्रक्षेप करके फिर अङ्गारों में सेक कर भडीता बनावें। श्वासरोग में इस भडीते का उपयोग प्रशस्त माना गया है ॥ २९ ॥ मूंग के एक पापड को स्नुही क्षीर से चुपड [illegible] सेककर खाजावें। इससे श्वास हठात् नष्ट हो जाता है। [illegible] तथा वमन की प्रवृत्ति होती है ॥ ३० ॥ कटुतुंबी के रस को [illegible] वमन करे तो उसका, कफ के छूटकर निकल जानेसे, श्वास रोग [illegible] वमन करते समय प्रगंड-प्रदेश को ([illegible]) [illegible] से मजबूत बांध देना चाहिये। वमनोपरान्त, दही के साथ [illegible] का भोजन पथ्य है ॥ ३१ ॥ मैदा और धतूरी को [illegible] दूध में खूब [illegible] घोलकर अंगीठी पर पका गाढी लपटी बनालें। इस लपटी में किञ्चित् तेल मिलाकर छातीपर लेप करदें। इसके प्रलेपन से घनीभूत कफ पिघलकर बाहर निकल आता है ॥ ३२ ॥ [illegible] से लथपथ करके एक पोटली में बांधलें। श्वास रोग से पीडित [illegible]

१—[illegible], यत [illegible] 'भडीता' [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] । ३—तिक्तालाबुरसं [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] घनकफः । [illegible]

३० दीपोपरि चालनिका तदुपरि वसनं वितत्य तनुतन्तु ।
स्विन्नानि नागवल्लीदलानि बध्नीत वक्षसि श्वासी ॥ ३४ ॥

इति श्वासचिकित्सा ।

स्वरभेदचिकित्सितम् ।

१ तीक्ष्णानि सप्त पञ्चैला सार्धमाप कुलिञ्जनम् ।
यष्टी मापत्रयोन्माना समिता तुपतिन्दुकम् ॥ १ ॥
द्राक्षा सितोपला चेति क्वाथः कोष्णो निषेवितः ।
स्वरभेदं कण्ठरोगं प्रतिश्यायं विनाशयेत् ॥ २ ॥

२ कृष्णाया सुरभेर्मूत्रं पिबेता मण्डलावधि ।
कोष्ठशुद्धिं पुरस्कृत्य स्वरभेदं नियच्छति ॥ ३ ॥

इति स्वरभेदचिकित्सा ।

वक्ष को इस सुखोष्ण पुष्टपोटली से स्वेदित करें ॥ ३३ ॥ प्रज्वलित-दीप के ऊपर एक चालनी रखदें । चालनी में सूक्ष्म वस्त्र का टुकडा बिछादें । इस वस्त्रखण्डपर नागर वेल के पान रखकर उन्हें गरम करके श्वास रोग से पीडित व्यक्ति की छाती पर बाध दें । इस प्रक्रिया से श्वासी को आराम मिलता है ॥ ३४ ॥

– श्वासचिकित्सा समाप्त –

– स्वरभेद चिकित्सा (कुलप्रयोग २) –

सात मरिच, पाच इलायची, डेढ मापा कुलिंजन, तीन मापा मुलेठी, एक तोला चापड तथा दो तोला मिश्री इनके कवोष्ण क्वाथ का सेवन स्वरभेद, कंठरोग और जुकाम को मिटाता है ॥ १–२ ॥ कृष्ण गाय के मूत्र को, दोष बल तथा प्रकृति के अनुसार यथामात्रा मे चालीस दिन तक पीते रहने से कोष्ठशुद्धि पूर्वक स्वरभेद रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

– स्वरभेदचिकित्सा समाप्त –

१–उदानदुष्टिसाधर्म्यान्निदानक्रमतस्तथा । कासादनन्तरं युक्तं स्वरभेदचिकित्सितम् ॥ तत्र च स्वानुभूतत्वाद्योगयुग्ममेवोपदिशन्ति-तीक्ष्णानीत्यादि । २–मरिचानि । ३–समितातुपाणां 'चापड' इति प्रसिद्धानां कर्षं इत्यर्थः । ४–नासारोगविशेष लोके 'जुकाम' इति प्रसिद्धिं गतम् । ५–मात्राऽस्य दोषबलप्रकृत्याद्यनुसारतः कल्पनीया । ६–चत्वारिंशद्दिनावधि ।

अथारोचक[1]चिकित्सितम् ।

१ गद्याणमारीचरजो द्विवल्लं सौवर्चलं मुष्टिमितेन[2] वारा ।
शनैः शनैः साक्षहविर्विपाच्य पिबेद्बलासारुचिमान्द्यमुग्धः ॥ १ ॥
२ अम्लदाडिमबीजानामञ्जलि[3]र्हिङ्गुवल्लकम्[4] ।
लवणोषणजीराणि प्रत्येकं पलमात्रया ॥ २ ॥
पृथ्वीका[5] कर्षकलिता सर्वं स्थूलं विचूर्णयेत् ।
चूर्णं दाडिमषट्काख्यं रोचनं पाचनं परम् ॥ ३ ॥
अनुक्ताऽपि सिता देया चूर्णेऽस्मिन् पलमात्रया ।
वर्षाकाले विना देय एकनिम्बूकजो रसः ॥ ४ ॥
३ द्वीपान्तरीयवृक्षाम्ल[6]पोदीनानागरोषणम् ।
प्रत्येकमेकगद्याणं[7] पलं दाडिमसारतः ॥ ५ ॥
कणाशाणः सुमा[8]न्माषो भद्रैला तु त्रिमाषिका ।
लवणात्तोलकं सार्धमजाजी तोलकैस्त्रिभिः ॥ ६ ॥
सितोपला सर्वसमा चूर्णं कुर्याद्यथाविधि ।
तच्चूर्णमचिरादेव चूर्णयेदरुचिं पराम् ॥ ७ ॥

— अरोचकचिकित्सा (कुल प्रयोग १८) —

मरिचचूर्ण छह माशा तथा सौवर्चल एक माशा इन दोनों को चार तोला भर पानी में पकावें । पानी के निःशेष होने पर इन में एक तोला घी मिलाकर कवोष्ण ही पी जायें । इससे कफ, अरुचि तथा अग्निमांद्य दूर होता है ॥ १ ॥ खट्टी दाडिम के दाने सोलह तोला, हींग तीन गुंजा, लवण, सूंठ और जीरा प्रत्येक चार तोला तथा बडी इलायची के दाने एक तोला इन सब का स्थूल चूर्ण बनालें । इस चूर्ण को 'दाडिम षट्क' कहते हैं । यह उत्तम रोचक तथा पाचक है ॥ २–३ ॥ इस चूर्ण में चार तोलाभर मिश्री भी मिलादें । तथा वर्षाऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में इस चूर्ण में एक निंबू का रस मिला कर सेवन करें ॥ ४ ॥

गोवा की कोकम, पोदीना, सूंठ और मरिच प्रत्येक छह माषा, दाडिम का स्वरस चार तोला, पिप्पली तीन माषा, लविंग एक माषा, बडी इलायची तीन माषा, नमक डेढ तोला, जीरा तीन तोला, तथा इन सभी द्रव्यों से समान वजन जितनी मिश्री इनको एकत्र मिला यथाविधि चूर्ण बनालें । यह चूर्ण शीघ्र ही परम अरुचिका चूरा

१–रुग्विनिश्चयक्रमादेवानन्तरमरोचकचिकित्सितमुच्यते । २–पलप्रमाणेन । ३–कुडवः । ४–चतुर्गुञ्जाप्रमाणं विवक्षितम् । ५–स्थूलैला, तस्याः बीजानि । ६–द्वीपान्तरीयवृक्षाम्लं 'सीमाक' इति ख्यातम् । ७–"गद्याणो माषकैः षड्भिः" इति । ८–लवङ्गात् ।

४ सेवा द्विसन्ध्यं मसृणीकृतस्य कपित्थगर्भस्य सितासरस्य ।
तुर्धर्षतर्षारुचिशोषचोषवैरस्यविट्सारविरोधिनी स्यात् ॥ ८ ॥
५ वितुषं धनिकाविदलं किमपि भ्रष्टं शरावके युक्त्या ।
मरिचनिशापटुसरसैरम्लरसैः प्रोक्ष्य चर्वयेदरुचौ ॥ ९ ॥
६ कुडवे कृष्णजरणे शूर्पास्फालननिस्तुषे ।
भ्राष्ट्रभ्रष्टे समाचान्तरुचिराङ्कुरचुक्रके ॥ १० ॥
पृथग्गद्याणतुलितौ भद्रैलातीक्ष्णतण्डुलौ ।
गुञ्जैकं हिङ्गु लवणं तोलकैस्त्रिभिरावपेत् ॥ ११ ॥
ततस्तज्जरणं नीरैर्नभ पाण्डवनिम्बुजे ।
भावितं घर्मसंशुष्कं रोचिष्णु परमं स्मृतम् ॥ १२ ॥
७ शरावलवणक्षोदे द्विप्रस्थे निम्बुकाम्बुनि ।
खार्जूफलानि पुष्टानि प्रस्थमानानि मज्जयेत् ॥ १३ ॥

कर देता है ॥ ५–७ ॥ कपित्थ की मज्जा को छाया शुष्क करके बारीक पीस वस्त्रपूत कर मुलायम चूर्ण निर्माण करलें। इसमें मिश्री मिलाकर सुबह सांझ दो बार फांकी लेनेसे तीव्र प्यास, अरुचि, शोष, दाह, मुख की विरसता तथा अतिसार दूर होता है ॥ ८ ॥ धने की दाल को पानी में रातभर भिगोकर रखदें। प्रात इसे शतबार पानी से तब तक धोयें जब तक वह निस्तुष न हो जाये। तदनन्तर, इसको एक शराव में रख धीरे धीरे भूनलें। फिर, इसमें मरिच, हरिद्रा तथा लवण आदि मिलाकर निंबू आदि के रस का प्रोक्षण कर मसल लेवें। इसको चबाने से अरुचि दूर होती है ॥ ९ ॥

सोलह तोलेभर काले जीरे को कूट फटक कर निस्तुष बनालें। फिर, चूल्हे पर भून इनको उत्तम अंगूरों (द्राक्षा) का सिरका पिलादें। यहां, जीरे के समानभाग जितना सिरका लेना चाहिये। तदनन्तर, इसमें, बडी इलायची तथा अच्छी तरह धोकर साफ की हुई मरिच प्रत्येक छह मापा, हिंगु एक गुंजा तथा लवण तीन तोला, इन सबके सूक्ष्म चूर्ण का, प्रक्षेप करें। तत्पश्चात् इस जीरे को पचास निंबुओं के रस की भावना देकर धूप में सुखालें। इस तरह सिद्ध किया गया यह जीरक परम रुचिकर माना गया है ॥ १०–१२ ॥

बत्तीस तोले भर लवण में १२८ तोला निंबू रस मिलाकर उसमें चौसठ तोले पुष्ट छुहारे डाल देवें। पिप्पली, मरिच, बडी इलायची तथा अकरकरा प्रत्येक तीन तीन

१–सूक्ष्मचूर्णीकृतस्य पटपूतस्य चेत्यर्थः। २–कपित्थमध्यभागस्य। ३–यवानी-प्रक्रियया जलभावनादिक्रया धान्यकस्यापि निस्तुषताऽऽपादनीया। ४–निम्ब्वादीनां स्वरसैः। ५–'स्याह जीरा' इति ख्याते। ६–सूर्पः 'छाज' इति प्रसिद्धो धान्यास्फालनयन्त्रविशेषः। ७–समाचान्त भावनया पीत रुचिराणामङ्कुराणां द्राक्षाविशेषाणां चुक्रं 'सिरका' इति प्रसिद्धं येन तत्तथाभूते। चुक्रं चात्र जीरकसममेव। ८–प्रशस्तमरिचमति-प्रशस्तत्वं चैषां धौतत्वादिना। ९–पञ्चाशन्निम्बुरसे। १०–'छुहारा' इति प्रसिद्धानि।

कृष्णामरिचभद्रैलाकल्लं[1] गद्याणषट्ककम्।
सार्धाम्रे द्वे[2] पृथग्जीरे पत्रं वस्वेकमाषकम्[3] ॥ १४ ॥
कर्षं जातीफलं जातिपत्री जातीफलोन्मिता।
विश्वौषधं द्विपलिकं पटुस्त्रिपलिकस्तथा ॥ १५ ॥
स्वाद्वीफलान्यनस्थीनि पलान्यत्र षडेव हि।
स्थूलं संक्षोद्य निम्बूकनीरप्रस्थेन भावयेत् ॥ १६ ॥
प्रावृत्य[4] समुपेक्षेत त्रिदिनं वा चतुर्दिनम्।
सर्वसेकत्र संपिष्टं पूरणं तेन पूरयेत् ॥ १७ ॥
निम्बूकनीरमग्नानि तानि स्वाद्वीफलान्यलम्।
उपर्युपरि संचिन्त्य पात्रे शेषं रसं क्षिपेत् ॥ १८ ॥
पक्षं प्रतीक्ष्य मतिमानेकैकं रसयेच्छनैः।
अरुचिग्रहणीच्छर्दिहृल्लासाध्मानवेदनाः ॥ १९ ॥
नश्यन्त्यास्वादमात्रेण नात्रेषदपि विस्मयः।
उदञ्चति चमत्कारो महानुद्गारशुद्धिजः ॥ २० ॥
८ निम्बूरसे पटुं साङ्घ्रिप्रस्थे न्यस्य चतुःपलम्।
पचेत् स्तोकघृतक्षेपं[5] द्विपलं शेषयेद्रसम् ॥ २१ ॥

तोला, श्वेत और कृष्ण जीरक प्रत्येक साढे चार तोले, तेजपात डेढ तोला, जायफल तथा जावित्री प्रत्येक एक एक तोला, सूंठ आठ तोला तथा सैंधव बारह तोला, इनको एकत्र लेकर सूक्ष्म कपडछान चूर्ण बनालें। अब, अंदर की गुठली रहित करीब चौवीस तोले छुहारों को स्थूल कूट कर निंबू के चौसठ तोला रस में निमग्न कर पात्रमुख को वस्त्र से ढक तीन चार दिवस पर्यंत अलग रखदें। तत्पश्चात्, इन कूटे हुये छुहारों को निंबू रस में से निकालें। निंबू रस को अलग रखकर, इन छुहारों में उपरोक्त औषधीय द्रव्यों के चूर्ण को मिला बारीक पीस, पूरण बनालें। इस पूरण को, निंबू रस में मग्न उपरोक्त चौसठ तोला छुहारों को निकाल उनमें एक एक में थोडा थोडा उपरोक्त पूरण भरकर पुनः पात्र में यथाक्रम चुन कर स्थापित करदें, तथा ऊपर से, अलग रखे हुये उपरोक्त निंबू रस को, भर देवें। पंदरह दिवस पश्चात् पात्र में से एक एक छुहारे को लेकर धीरे धीरे चूसकर खावें। अरुचि, ग्रहणी, वमन, हृल्लास तथा आध्मानजन्य वेदनायें इसके आस्वादमात्र से नष्ट हो जाती हैं इसमें जरा भी संदेह नहीं, उद्गार शुद्धि में यह महान् चमत्कार दर्शाता है ॥ १३–२० ॥

निंबू के अस्सी तोला रस में, सोलह तोलाभर नमक मिला, तथा इसमें दो

१–'अकरकरा' इति लोके ख्यातम्। २–द्वे जीरे पृथक् सार्धाम्रे इति संबन्धः। जीरे च श्वेते। ३–अष्टादशमाषकम्। ४–पटादिनेति शेषः। ५–चतुःपलावशिष्टे सितां तोलकद्वयमितां केचित् प्रक्षिपन्ति।

व्योषच्छिजीरसौभाग्य चतुर्विंशतिमापकम् ।
षट्त्रिंशन्मापमाकल्ल क्षिप्त्वा तत्र विमर्दयेत् ॥ २२ ॥
तत्किट्टवद्धवटका हरिमन्थविडम्बिन• ।
रोचन्ते पाचयन्त्याशु दीपयन्त्याशु शुक्षणिम् ॥ २३ ॥
९ चरणाशमरिचलवणा चरवी(डी) कामालिका शरावतले ।
उत्काथ्य निम्बुनीरैर्द्वैर्वटका रुचेर्घटका• ॥ २४ ॥
१० अत्यल्पपटुभिर्निम्बुनीरैर्निर्यासपिच्छिलै• ।
सिता संनीय घटिता वटिका रुचिबोधिनी ॥ २५ ॥
११ घृततलिता व्योपलवणधान्यैलाहिङ्गुजीररचितार्चा• ।
रुचिवीतिहोत्रघटका यत वटका ब्रह्मदर्भायाँ ॥ २६ ॥

चार बूद घी डालकर अग्नि से पकावें । जब आठ तोला रस शेप रह जाये तब उसमें सूठ, मरिच, पीपल, दोनो जीरा तथा फुलाया हुआ टकण प्रत्येक दो तोला एव तीन तोला अकरकरा, इन सभी द्रव्यो के सूक्ष्म चूर्ण को डालकर अच्छी तरह मिला देवें । तत्पश्चात्, इसकी चने-प्रमाण गोलिया बनाकर लेने से रुचि बढती है, अन्न पचता है, तथा अग्नि शीघ्र प्रदीप्त होती है ॥ २१–२३ ॥

मरिच, लवण तथा डीकामाली प्रत्येक तीन माशा—इनके सूक्ष्मचूर्ण को, इनसे द्विगुणित निंबू-रस में मिला एक सकोरे में भरकर उकाल लेवें। इनसे निर्मित वटिकाये रुचिवर्धक होतीं हैं ॥ २४ ॥ अत्यल्प-लवणयुक्त तथा गुन्द-मिश्रित अत-एव पिच्छिल निंबू-रस में शर्करा मिलाकर वटिकाये बनाले । यह वटिकाये रुचिवर्धक तथा वमन, मुखशोष, तृषा आदि की प्रशमक कही जाती हैं। इसमें थोडा कपूर तथा इलायची चूर्ण भी मिलादेना चाहिये ॥ २५ ॥ अजवायन को पूर्वोक्त-प्रकार से निस्तुप करके उसकी पिट्ठी बना उसमे, त्रिकटु, लवण, धनिया, इलायची, हींग और जीरे का सूक्ष्म चूर्ण मिला देवें। अब, इनके वटक बनाकर घी में तल लेवें। ये रुचिकर तथा अग्निवर्धक होते हैं ॥ २६ ॥

१–व्योपस्यापि प्रत्येक चतुर्विंशतिमापकत्व द्रव्यप्रधानत्वान्निर्देशस्य । २–टङ्कण, तच्च भ्रष्ट ग्राह्यम् । ३–जठराग्निम् । ४–'वी(डी)कामालिका' अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा । ५–तलशब्द उपरिवचनो भूतलवत् । ६–सर्वसभारतो द्विगुणै । ७–चन्द्रैले अप्यनुरूपे क्षेप्ये । अत्र लवण न क्षिपन्ति केचिद्, इतीन्दुरेव नियामिका । ८–निर्यास श्वेतगुन्द्र, स च पैच्छिल्यापादकमात्र । ९–रुचिवोधिनीत्युपलक्षण, तेन वमिजिह्वाजाड्यमुखशोषपिपासादीनां हारिणीत्यपि बोध्यम् । १०–वटका इत्युपलक्षण, तेन मोदकधानावर्तिकाकचवल्यादयो भक्ष्यविशेषा यथारुचि सपादनीया, किंतु तत्र व्योपादिकस्य नावश्यकत्वम् । ११–यवान्या पूर्वोक्तप्रकारेण निस्तुपीकृताया पुनश्च पिष्टीकृताया ।

१२ पयःसेकात्[1] सद्यो विकसितसुधाखण्डजनुषि
द्रवे स्वर्जिक्षारोद्युजि विमलबादामगुलिकाः ।
चतुर्यामं धृत्वा पयसि पुनरुत्काल्य वितुषी-
कृताः कुर्युः केषां न रुचिमुषिताः शार्कररसे[2] ॥ २७ ॥

१३ वांशीमरिचतो[3] द्वौ द्वौ तोलौ ते च त्रयस्त्रयः ।
धान्यप्रदीन[4]जरणत्रुटिदाडिमसारतः ॥ २८ ॥
द्वीपान्तरीयवृक्षाम्लजरीष्कात्[5] षट् षडेव ते ।
शर्करातस्त्रिषष्ट्यिः स्युर्लेहो[6] रोचनपाचनः ॥ २९ ॥

१४ निम्बूकमातुलुङ्गार्द्रकपोदीदाडिमीरसैः ससितैः[7] ।
जीरत्रुटिमरिचसखो वमिमरुचिं हन्ति शार्करो विहितः ॥ ३० ॥

१५ पोदीनागुरुकृष्णजीरलवणद्राक्षेभ[8]पुष्पोषणै-
रेलादाडिमशृङ्गवेरकलितैः षाण्माषिकैः कल्पितम् ।
कल्कं जीरवितुन्नरामठयुतं निम्बूकनीरप्लुतं
स्वादिष्टं रुचिवह्निकारि वमिरुक्संहारि लोके श्रुतम् ॥ ३१ ॥

स्वच्छ चूर्णोदक में स्वर्जिकाक्षार मिलाकर उसमें बादाम की गुलिकायें डाल देवें। चार प्रहर तक उनको उसी में सिक्त होने दें। तत्पश्चात्, उनको निकाल कर पुनः पानी में उकाल, छिलके उतार, शक्कर की चासनी में डाल देवें। इस तरह बादाम का मुरब्बा सिद्ध होता है। यह किस को रुचिकर नहीं है? इसी विधि से चंदन, आर्द्रक, ईख, सालम-कंद आदि के मुरब्बे भी निर्माण किये जा सकते हैं ॥ २७ ॥

वंशलोचन और मरिच प्रत्येक दो दो तोला, धनियां, पोदीना, जीरा, छोटी इलायची तथा दाडिमसत्व प्रत्येक तीन तीन तोला, वृक्षाम्ल और जरिष्क प्रत्येक छह छह तोला इनके सूक्ष्म चूर्ण को, छत्तीस तोला शक्कर की चासनी में डालकर अवलेह निर्माण करें। यह अवलेह उत्तम रोचक और पाचक होता है। उपरोक्त चासनी को गुलाब अथवा केवडे के अर्क से सिद्ध करें। (दारुहरिद्रा के फल को 'जरिश्क' कहते हैं) ॥ २८-२९ ॥ निंबू, मातुलुंग, आर्द्रक, पोदीना और दाडिम इनके रस में, रस से चतुर्गुण मिश्री-चूर्ण मिलाकर 'शार्कर' निर्माण करलें। इस शार्कर को, जीरा, इलायची तथा मरिच के सूक्ष्म-चूर्ण सह लेने से वमन तथा अरुचि दूर हो जाते हैं ॥ ३० ॥

पोदीना, अगरु, कालाजीरा, लवण, द्राक्षा, नागकेसर, मरिच, इलायची, दाडिम

१-वातादगुलिकालेहस्य 'बादामका मुरब्बा' इति ख्यातस्य प्रकारोऽयम्; अनया दिशा अन्येषामपि चन्दनार्द्रकेक्षुसालमकन्दप्रभृतीनां कार्यम्। २-तन्तुल्यामिति। अयं योग-श्चारोचकपठितोऽपि बल्यमेध्यबृंहणवृष्यक्षयहितत्वादिगुणयुक्तो बोध्यः। ३-प्रत्येकं तोलक-द्वयम्। एवमग्रेऽपि धान्यादितस्तोलकत्रयादिकं बोध्यम्। ४-प्रदीनस्तीक्ष्णपत्रः। ५-'जरिष्कं' एतेनैव नाम्ना लोकप्रसिद्धम् (दारुहरिद्राफलम्)। ६-गुलाबकेतकजले साध्यः। सुवर्ण-रजतदलान्यप्यत्र प्रक्षिपेत्। ७-सिद्धरसापेक्षया चतुर्गुणसितैः। ८-इभपुष्पं नागकेसरम्।

१६ मेथीलवणनिशाभिः संभृतगर्भेऽधितैलमामुक्ते ।
ज्वालामरिचेऽर्कशलाटुनि मिलति निमीलति पराऽप्यरुचि ॥ ३२ ॥
१७ खर्वेद्राक्षाकल्कं पटुजीरनिशार्द्रपुष्पहिङ्गुरुचा ।
दध्ना संकाथ्य कृता कथिता रुचिकारिणी कथिता ॥ ३३ ॥
१८ नारङ्गवल्कत्रुटिजीरशुण्ठीमरीचसिन्धूत्थरजोवचारम् ।
वितीर्णधूपं घृतरामठेन स्यादीश्वरीतक्रमतीव रुच्यम् ॥ ३४ ॥

– इत्यरोचकचिकित्सा –

अथ छर्दिचिकित्सितम् ।

१ श्वेतायाः पलमेकमार्द्रकपलं त्रुट्यो दश द्वादश
द्राक्षा विंशति वेल्लजानि लवणं शाणप्रमाणोन्मितम् ।
पिष्ट्वा सर्वमिदं विलोड्य मिपिजंरकैः पटे पावयेत्
कोष्णं जीरकवासितं वमितृषारोचक्षयार्थं पिबेत् ॥ १ ॥

तथा आर्द्रक इनके एकत्र कल्क में जीरा, धनिया और हींग मिलाकर तथा निंबू रस में सिक्त करके सेवन करें। यह अवलेह परम स्वादिष्ट, रुचि एवं जठरानल वर्धक तथा वमन रोग का संहारक कहा गया है ॥ ३१ ॥ हरी मिर्च (लाल मिरच के कच्चे फल) में मेथी, लवण तथा हरिद्रा चूर्ण को भरकर तैल में डुबो देवें। एक सप्ताह उपरांत इसे निकाल कर सेवन करें। इससे परम अरुचि भी दूर हो जाती है (यह श्लोक पूर्व आ चुका है, किंतु यहा अरोचक चिकित्सा में इसका आलेखन युक्तियुक्त होने के कारण यह पुनरुक्ति में परिगणित नही किया जाना चाहिये) ॥ ३२ ॥ नमक, जीरा, हल्दी, आदू, लौंग और हींग इनके चूर्ण से युक्त दही के साथ किसमिस द्राक्षा के कल्क को उकालकर 'कढी' बनालें। यह कढी रुचिकर कही गयी है ॥३३॥ नारंगी का शुष्क छिल्का, इलायची, जीरा, सूठ, मरिच तथा सेंधव इनके चूर्ण से अवचारित तथा घृत एवं हींग की धूप से धूपित इस तरह सिद्ध की गयी शक्तिमयी तक्र अत्यंत रुचिकर होती है ॥ ३४ ॥

– अरोचक चिकित्सा समाप्त –

– वमन चिकित्सा (कुलप्रयोग ११) –

मिश्री चार तोला, आर्द्रक चार तोला, इलायची नग दस, दाख नग बारह, मरिच नग वीस, तथा लवण तीन माषा-इन सबको एकत्र पीसकर, सौंफ के अर्क में घोलकर

१–ज्वालामरिच 'लालमरिच' इति प्रसिद्धं तस्य फलमामं, तस्मिन् । अस्य पद्यस्य पूर्वाभिहितस्याप्यत्र लेखनमरुचिप्रकरणप्राप्तत्वादिति न पौनरुक्त्यम् । २–खर्वद्राक्षाया 'किसमिस' इति लोकभाषाप्रसिद्धाया । ३–आर्द्रकम् । ४–लवङ्गम् । ५–'कढी' इति ख्याता । ६–नारङ्गफलवल्कलम् । तच्च शुष्कमादेयम् । ७–प्रायोऽरोचकप्रयोगाणामपि वमिहन्तृत्वात् क्रमप्राप्तत्वाच्च छर्दिचिकित्सिते प्रयोगैकादशकमुच्यते । ८–सितोपलाया । ९–दातपुष्पाभवं, तदभावे तरुणीकेतकजं । १०–जीरकं श्वेतं भ्रष्टं च ग्राह्यम् ।

२ संसाध्य निम्बुनीरे त्रिगुणे कलसौरसागरक्षोदम्[1] ।
प्रपिबत सिताद्रवैः सह वमनोत्क्लेदारुचिक्षत्यै ॥ २ ॥
३ पक्वं पटान्तर्गलितं पुनः पुनः क्षारं[2] सितैलाजरणोषणोल्बणम् ।
निम्बूकनीरे कुसुमार्कसाक्षिणि[3] प्रक्षिप्य सद्यः पिबतां कुतो वमिः ॥३॥
४ पिष्ट्वा स्रोतोञ्जनं[4] जम्भजलैर्[5]यामचतुष्टयम् ।
मरिचाभा वटी कार्या छर्द्यतीसारहारिणी[6] ॥ ४ ॥
५ विधुभित्तसुरभि[7]संवर[8]मम्बरवान्तं[9] वमिं निवारयति ।
६ समलोकं[10]कनकमृत्स्ना[11]पिण्डीनिर्वापित[12]मपि तथा ॥ ५ ॥
७ हंहो संभृतमम्भो मृत्कुम्भे[13] लोहबाणधूमवति ।
छर्दिं प्रसह्य शमयति भाषितमादित्यरामेण[14] ॥ ६ ॥

वस्त्रपूत करलें। इस द्रव को, भूने हुये श्वेत जीरे से सुवासित करके कवोष्ण पीने से वमि, तृषा तथा अरुचि का क्षय हो जाता है ॥ १ ॥ कलमीसोरा तथा नवसादर के चूर्ण को, इनसे त्रिगुणित निंबू के, रस में सिद्ध करके मिश्री के शर्बत सह पीवें इससे वमनजन्य उत्क्लेद तथा अरुचि क्षीण हो जाते हैं ॥ २ ॥ यवक्षार को भूनकर पुनः पुनः कपडे में से छान लेवें। मिश्री, इलायची, जीरा तथा मरिच चूर्ण सहित इस क्षारको गुलाब अर्क से युक्त निंबू के रस में मिलाकर शीघ्र पी जानेवालों को वमन कहां? ॥ ३ ॥ जंभीरी निंबू के स्वरस में काले सुरमे को चार प्रहर तक मर्दन करके उसकी मरिचप्रमाण गोलियां बांधलें। ये वमन तथा अतिसार को दूर करती हैं। इस गुटिको, बालकों के अतिसार में काली बकरी के दूध के साथ देनी चाहिये। इसमें दही-भात का भोजन पथ्य है। ज्वर में, दूध के साथ इसी गुटीका प्रयोग प्रशस्त कहा गया है ॥ ४ ॥ कर्पूर से सुरभित जल को वस्त्रपूत करके पीनेसे वमन निवृत्त हो जाता है। इसी तरह, सम भाग सूंठ और पीली मिट्टी लेकर उसकी पिण्डी बनाकर अग्नितप्त करके उसका पानी में बुझावादें। इस बुझावे के जल को पीने से भी वमन में लाभ होता है ॥ ५ ॥ लोहबाण से धूपित मृतपात्र में भरे हुये पानी को पीने से वमन बलात् शमित हो जाता है। कितने आश्चर्य की बात है! यह प्रयोग मुझे श्रीआदित्यरामजी ने बताया है। (श्रीआदित्यरामजी ज्योतिष के उत्तम विद्वान तथा अमदावाद निवासी

१–सागरो नवसादराख्यः क्षारविशेषः। २–सामान्योक्तत्वाद्यवक्षारम्। ३–तरुणीकेतकान्यतरकुसुमार्को ग्राह्यः। ४–लोके 'श्याह सुरमा' इति ख्यातम्। ५–जम्बीरस्वरसैः। ६–बालातिसृतौ कृष्णच्छागीपयसा देयेति ज्ञेयम्। पथ्यमत्र दधिसहितं भक्तं; ज्वरे च दुग्धेनैव दातव्या, पथ्यं त्वत्र मुद्गसूपः। अयं योगोऽतिसारे प्रायः प्रचलतीति गुरूक्तिः। ७–कर्पूरखण्डसुरभि। ८–जलम्। ९–पटपूतमित्यर्थः। १०–शुण्ठी। ११–पीता मृत्। १२–अङ्गारतप्तया पिण्ड्या निर्वापितम्, अन्यथा निर्वापितत्वमेव न संभवति। १३–पूरितम्। १४–गुर्जरदेशवासिना दैवज्ञशिरोमणिना पलाण्डुराजशतककाव्यप्रयोजकेन चेति।

८-९ घृताक्तलूताम्बरवर्तिधूमप्रपूर्णपात्रे भृतमात्रमम्भः ।
वमौ यथा साधु तथाऽञ्जनं स्यात्तद्दीपिकाधूमजकज्जलेन ॥ ७ ॥
१० राजिकाद्विजराजाभ्यां लेपः कोष्णो हृदि स्थितः ।
वमनं विनिहन्त्येव महादेवेन भाषितम् ॥ ८ ॥
११ अजाजीसैन्धवक्षोदैर्द्विसन्ध्यं शोधयेद्रदान् ।
उत्क्लेदभ्रमदौर्गन्ध्यवमनारुचिशान्तये ॥ ९ ॥

– इति छर्दिचिकित्सा –

अथ मूर्च्छादिचिकित्सितम् ।

१ रालमावर्त्य मृत्पात्रे चिरमङ्गारवह्निना ।
काश्मीरक्षोदमावाप्य ढालयेच्चीनभाजने ॥ १ ॥
सैषा ममायिका नाम घृतदुग्धानुपानतः ।
अभिघातनिपाताभ्यां मूर्च्छितानां प्रबोधिनी ॥ २ ॥

ये । इन्हीं की प्रेरणा से स्व श्रीभट्टजी ने 'पलाण्डुराज-शतकम्' नामक विचक्षण काव्य की रचना की थी ।) ॥ ६ ॥ मकडी के जाले की घृताक्तवर्ति के धूम से धूपित मृत्पात्र में दश तोला भर पानी भरदें । इसके पीने से वमन में लाभ होता है । इसी तरह उपरोक्त घृताक्तवर्ति के धूम से उत्पन्न काजल को आंजने से भी पूर्ववत् असर होती है ॥ ७ ॥ राजिका एवं कर्पूर का हृदय प्रदेश पर कवोष्ण लेप वमन को मिटाता है । यह प्रयोग मेरे शिष्य महादेव का बताया हुआ है ॥ ८ ॥ उत्क्लेद, भ्रम, मुखगत दौर्गंध्य, वमन तथा अरुचि की शान्ति के लिये, जीरा तथा सैंधव के चूर्ण से, दिवस में दो बार, दांतों को साफ करना चाहिये ॥ ९ ॥

– वमन चिकित्सा समाप्त –

– मूर्च्छादि - चिकित्सा - (कुल प्रयोग ४) –

मृत्पात्र में चार तोला राल को, प्रज्वलित अंगार-अग्नि से देर तक उकालते रहें । जब उकलकर वह कृष्ण-वर्ण होजाये, तब उसमें दो माषाभर केसर मिला एक चीनी के पात्र में डाल देवें । ममायिका नाम से सुपरिचित इस औषधी को एक रत्ती

१–लूताम्बरस्य द्वयं त्रयं वा ग्राह्यम् । २–पलमपि द्रवद्वैगुण्येन दशरूप्यकप्रमाणं ग्राह्यमेतेति । ३–द्विजराज कर्पूर । ४–जयपुरराजकीयसंस्कृतपाठशालातो लब्धभिषगुपाधिना गुरूणामन्तेवासिना महादेवशर्मणा । ५–क्रमप्राप्ततया मूर्च्छादीनां केषांचिच्चिकित्सितमुच्यते । ६–कृष्णवर्णत्वं यावता कालेन भवेत्तावदित्यर्थः । ७–रालपले माषकद्वयं कुङ्कुमस्येति । रक्तिप्रमाणं मल्लमप्यत्र प्रक्षिप्यते । ८–अनेनैव नाम्ना लोके ख्याता, मात्रा रक्तिमारभ्य वल्लपर्यन्तं यथायथं कल्पनीया ।

२ विपिनोपलजं भस्म तुत्थं नस्यमिति ध्रुवम् ।
मूर्च्छापस्मारवाग्रोधतन्द्रासर्पविषार्तिषु ॥ ३ ॥
३ हरति भ्रमं पटूषणरजोभिरङ्गारवर्तिता द्राक्षा ।
४ उक्तो दुरालभाया घृतसुरभिस्तद्वदेव निर्यूहः ॥ ४ ॥

– इति मूर्च्छादिचिकित्सितम् –

अथ दाहचिकित्सितम् ।

१ इक्षूदकैरामलकीरजांसि त्रिसप्तधा साधु विभावितानि ।
प्रातर्निपीतानि सितापयोभिर्महान्तमन्तर्दवथुं हरन्ति ॥ १ ॥
२ 'पैसा प्रमान मिश्री धेलाभर सौंफ नेकं मस्तङ्गी ।
एला छदामभर लै चूरन यह कण्ठदाहपै जङ्गी' ॥ २ ॥

– इति दाहचिकित्सितम् –

अथोन्मादचिकित्सितम् ।

१ उद्दामोन्मादविधुराः पलमर्धपलं तथा ।
पिबन्तु च्छागलं मूत्रं हिङ्गुना प्रतिवासितम् ॥ १ ॥

भर मात्रा में घृत और दूध के अनुपान पूर्वक लेनेसे अभिघात तथा निपातजन्य मूर्छा दूर होती है ॥ १-२ ॥ जंगली उपलों की भस्म तथा तुत्थ का नस्य मूर्छा, अपस्मार, वाणी-निरोध, तन्द्रा तथा सर्प-विष के विकारों में निःसंदेह उपकारक है ॥ ३ ॥ अंगारों पर सेकी गयी द्राक्षा को नमक और मरिच के चूर्ण-सह लेनेसे 'भ्रम' दूर हो जाता है। दुरालभा का घृत-सुवासित-कषाय भी यही प्रभाव दर्शाता है ॥ ४ ॥

– मूर्च्छा-चिकित्सा समाप्त –

– दाह-चिकित्सा (कुलयोग २) –

आंवले के चूर्ण को इक्षु-रस की एकवीस भावनायें देवें। प्रातः, मिश्रीयुक्त धारोष्ण-दूध के साथ इसे पीने से अन्तर्गत-महान-दाह नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ एक पैसाभर मिश्री-एक धेलाभर (एक तोला) सौंफ, दो तीन माषा रूमीमस्तंगी तथा एक छदामभर (आधा तोला) इलायची इनका चूर्ण कण्ठ-दाह में जंगी (महान) असर दिखाता है ॥ २ ॥

– दाह-चिकित्सा समाप्त –

– उन्माद-चिकित्सा (कुल प्रयोग ५) –

तीव्र उन्माद रोग से पीडित व्यक्ति, अजा के चार या दो तोला भर मूत्र को,

---

१–सितायुक्तैर्धारोष्णदुग्धैः । २–कर्षार्धप्रमाणे 'धेला' इति प्राकृतः शब्दः, तथा तदर्धे 'छदाम' इति प्रसिद्धः । ३–द्वित्रिमाषेति नेकशब्दार्थः ।

२ कृत[1]गदभङ्गां भङ्गां गव्यक्षीरेण निर्भरं[2] पिष्ट्वा[3] ।
अधिपति[4]करचरणतल मल[5] मुहुरिह चेष्टसे किमुन्मत्त[6] ॥ २ ॥
३ कार्पासमज्जकणँपुर[7]गन्धकवटिकाभवो धूप ।
४ भूतावेशं शमयति रामठलशुनाञ्जन यद्वत् ॥ ३ ॥
५ अधिमातुल[8]पुत्राशयमुपणाना पक्षमेकमुपितानाम् ।
चर्वणतो मुग्धवधूर्भूताविष्टेव वक्ति चित्राणि ॥ ४ ॥
६ सिता[9]वगूढोदकतन्तुवायै[10]पूर्वार्धपश्चार्धममर्पणेन[11] ।
प्रभूतभूतागमतन्निरासौ स्त्रीणां[12] शिशूना भवतः क्रमेण[13] ॥ ५ ॥

– इत्युन्मादचिकित्सितम् –

हींग से वासित करके, पीये ॥ १ ॥ भाग को शुद्ध करके गायके दूध में खूब बारीक पीसकर शिरोगत अधिपति मर्म पर उसका मर्दन करें, इससे उन्माद रोग में लाभ होता है। इस श्लोक का दूसरा अर्थ यह है -शुद्ध भाग को खूब बारीक पीस उसका गो-दुग्ध के साथ पान करके तू उन्मत्तवत् चेष्टा क्यो करता है? अपने अधिपति स्वामी के कर-चरण का अच्छी तरह सवाहन कर ॥ २ ॥ कपास-फल की मज्जा, कण-गूगली तथा गन्धक इनकी वटी बनाकर धूप सेवें। इससे भूतावेश शमित हो जाता है। हींग और लहसुन को सूक्ष्म पीसकर आजने से भी यही लाभ होता है ॥ ३ ॥ धत्तूर फल के भीतर मरिच-दाने भरकर एक पक्ष पर्यंत रहने दें। इनको चबाकर खाने से, मुग्ध-वधु (नव-परिणीता) भूताविष्ट की तरह अनाप-शनाप बोलने लगेगी ॥ ४ ॥ मिश्री, कलाकन्द आदि में 'जलका जुलाहा' जन्तु-विशेष को अच्छी तरह लपेटकर वटी बनालें। इसमें से अर्ध भाग को पहिले, तत्पश्चात्, अवशिष्ट अर्धभाग को पीछे, खिलाने से स्त्रियो में प्रचुर भूतावेश होता है, किंतु, बालकों में से यही भूतावेश निकल जाता है ॥ ५ ॥

– उन्माद-चिकित्सा समाप्त –



१–अर्थोऽय श्लोक । २–पेषणेन मधूच्छिष्टवन्मसृणीकृत्येति निर्भरशब्दस्वरस । ३–पक्षे पेषणपूर्वक पान लक्ष्यते । ४–प्रकृते द्वन्द्वसमासोऽधिपतिश्च शिरस्थ मर्म, पक्षे अधिपति स्वामी, तस्य करचरणतलमिति षष्ठीतत्पुरुष । ५–मर्दय । ६–द्वितीयपक्षे भङ्गां पीत्वोन्मत्त सन् किं चेष्टसे स्वामिकरचरणसवाहन कुर्वित्युपदेश फलति । ७–'कणगूगली' इति ख्यातम् । ८–धत्तूरफलाभ्यन्तर इत्यर्थ । ९–सितेत्युपलक्षण, तेन कलाकन्दादिष्वपि गूहन कार्यम् । १०–'जलका जुलाहा' इति प्रसिद्ध क्षुद्रजन्तुविशेष । ११–भक्षणेन । १२–कोमलप्रकृतित्वात् प्रपञ्चशीलत्वाच्च । १३–क्रमेणेति पद प्रभूतभूतागमतन्निरासा-भिसनेन सबध्यते ।

अथापस्मृतिचिकित्सितम् ।

१ बहलग्रन्थिलमूला गम्भीरी नाम काचन व्रततिः ।
सलिलेन मूलमस्या निघृष्य पीतं हरत्यपस्मारम् ॥ १ ॥

२ कुडवं दधि रामाक्षशर्कराचूर्णमुज्ज्वलम् ।
वज्रपोली घृताक्तैका द्वौ च वल्लौ घृताश्मतः ॥ २ ॥
इत्येतत् सर्वमेकत्र कृत्वा खादेदहर्मुखे ।
ब्रूमो मासप्रयोगेण तस्य नश्यत्यपस्मृतिः ॥ ३ ॥

३ मधुकक्वाथसहिते कुमारीस्वरसे शृतम् ।
घृतं स्मृतमपस्मारे हृदुत्फाले सशर्करम् ॥ ४ ॥
पञ्चप्रस्थजले पक्त्वा मधुकं नवतोलकम् ।
द्विप्रस्थो रक्षितः क्वाथोऽर्मणकन्या घृताढकम् ॥ ५ ॥

– अपस्मार - चिकित्सा (कुल प्रयोग ८) –

अनेकों कठिन ग्रंथियों से युक्त मूलवाली गंभीरी नामकी एक लता होती है। यह लता जयपुर के सुप्रसिद्ध अतिप्राचीन आभानेरी कुंड के आस पास, बहुधा शरद्-ऋतु में उपलब्ध होती है। इस लता के मूल को जल में घिसकर पीने से अपस्मार नष्ट होता है ॥ १ ॥ दही सोलह तोला, परिशुद्ध बुरा तीन तोला, बाजरे की घी से चुपडी हुई बासी मोटी रोटी तथा गोदंती दो वाल इन सबको एकत्र करके प्रातःकाल खायें। इस तरह एक मासपर्यंत प्रयोग से अपस्मार निश्चय दूर हो जाता है। यहां गोदंती को अग्नि पर फुलाकर उपयोग में लें ॥ २–३ ॥ मधुक के क्वाथसहित ग्वारपाठे के रस में सिद्ध किया गया घृत अपस्मार में प्रशस्त माना जाता है। हृदय-स्पंदन यदि अधिक होता हो अर्थात् यदि हृदय की गति शीघ्र चल रही हो तो इस घृत को शक्कर के साथ देना चाहिये। इस प्रयोग में, नौ तोले मधुक को पांच प्रस्थ जल में उकाल, दो प्रस्थ जल शेष रखकर क्वाथ सिद्ध करलें। ग्वारपाठे का रस एक द्रोण (एक मण भर) तथा घृत २५६ तोला लेवें। (अर्मण, एक द्रोण १०२४ तोले जितना

१–मनोदुष्टिसाधर्म्यादुन्मादानन्तरमपस्मारः। तत्रापि प्रथमं दिव्यौषधिप्रयोगः। तस्याश्चेदं स्वरूपवर्णनम्। २–एतन्नाम्नैव प्रसिद्धा, सा च आभानेरीकुण्डोपकण्ठभूपरिसरे प्रायः शरदि भवति। ३–विंशतितोलकमितम्। ४–शर्कराचूर्णस्याक्षत्रयमित्यर्थः। ५–वज्रो 'वाजरी' इति प्रसिद्धो धान्यभेदः, तस्य स्थूलरोटिका; व्यवहारश्च पर्युषितया। ६–'घापाण' इति गुर्जरदेशे, 'गोदन्ती' इति गौडदेशे प्रसिद्धात्। स चापि पावकफुल्लो ग्राह्य इति रहस्यम्। ७–'गवांरपाठा' इति ख्याता कुमारी। ८–अस्योपलक्षणत्वाद्रस-क्षयबद्धकोष्ठश्वासकाससौजाकादिष्वप्यवचार्यम्। ९–पूर्वोक्तयोगस्यैव परिभाषापद्यमिदम्। अर्मणशब्दश्चात्र लोकप्रसिद्धमणवाची। मणश्च चत्वारिंशत्प्रस्थात्मकः।

४ गद्याणसंमितामेका वचा क्षौद्रेण लोलिताम् ।
प्रात प्रातर्लिहन्मासमपस्माराद्विमुच्यते ॥ ६ ॥
५ नावन स्वरसै· खर्वकण्टकारीफलोद्भवै· ।
अपस्मार विनिर्धूय सद्यो बोधाय कल्पते ॥ ७ ॥
६ विषखर्परसंज्ञस्य स्वरसो नस्ययोजित ।
अपस्मार समुत्सार्य कल्याणाय प्रकल्पते ॥ ८ ॥
७ सितकरवीरच्छदभवरजसा नस्य निहन्त्यपस्मारम् ।
अवधि· किन्तु पुराणे प्रोक्त षाण्मासिको गुरुणा ॥ ९ ॥
८ नस्यं कृत मत्कुणजैरसृग्भिर्हरत्यपस्मारमुदग्रवेगम् ।
मदीयकाव्य सुधया समान यथाऽभिमान द्विषता कवीनाम् ॥ १० ॥

– इत्यपस्मारचिकित्सितम् –

अथ वातव्याधिचिकित्सितम् ।

भयङ्करपराक्रम करगृहीतपाशायुधं
कुरङ्गगतिमस्थिर गुणवहं सहस्थायिनाम् ।

होता है । मण, अर्मण, द्रोण आदि पर्यायवाची शब्द हैं ।) ॥ ४–५ ॥ [redacted] माशा-भर वचाचूर्ण को मधु में मिला प्रात चाटने से, अपस्मार से मुक्ति मिलती है । यह प्रयोग एक मास पर्यंत करना चाहिये ॥ ६ ॥ छोटी कटकारी फल-स्वरस का नावन लेने से, अपस्मार के शमन पूर्वक शीघ्र चैतन्यलाभ होता है ॥ ७ ॥ खर्पर नामक स्थावर विष के स्वरस का नस्य लेने से, अपस्मार के नाश-पूर्वक स्वास्थ्य प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥ श्वेत करवीर के पत्र-स्वरस का नस्य अपस्मार को नष्ट कर देता है । किंतु जिस गुरु ने मुझे यह प्रयोग बताया है, उनके कथनानुसार, प्राचीन अपस्मार में उपरोक्त नस्य का प्रयोग छह मासपर्यंत करना चाहिये ॥ ९ ॥ खटमल के रक्त का नस्य लेने से अत्युग्र वेगवाला अपस्मार भी, अमृत के समान रस-पूर्ण मेरे काव्य से ईर्ष्या करनेवाले कवियो के अभिमान की तरह, नष्ट होजाता है ॥ १० ॥

– अपस्मार चिकित्सा समाप्त –

– वात-रोग-चिकित्सा (कुल प्रयोग २८) –

भयकर शक्ति से युक्त, हरिण के समान चपल गति, अस्थिर, साथ में रहनेवाले के गुणो का सवर्धक (अर्थात् योगवाही), जगत की उत्पत्ति स्थिति तथा विनाश का

१–स्पष्टम् । २–पुनर्नवामेदस्य । ३–प्राचीनेऽपस्मारे । ४–'खटमल' इति प्रसिद्धो जन्तुविशेष , स च ग्रीष्मे विशेषाद्भवति । ५–क्रमप्राप्त वातव्याधिचिकित्सित वक्तुकामै श्रीकृष्णरामै प्रथम वायो स्वरूपमेव वर्ण्यते । ६–योगवाहिनमित्यर्थ ।

जगज्जननपालनप्रलयकारणं शर्मणे
वशीकुरुत केवलं पवनमुच्चकैः स्नेहतः ॥ १ ॥

१ प्रपुन्नाटकपत्राणां शाको वा वटिकाऽपि वा ।
वातव्याधिं शमयति विस्मयः किमतः परम् ॥ २ ॥

२ तिलप्रस्थो गुडप्रस्थो भल्लातकपलद्वयम् [2] ।
पालिकी गुटिका हन्ति वातव्याधिं शनैः शनैः ॥ ३ ॥

३ गन्धकं षट्पलं शुद्धं त्रिफला चित्रतन्दुलम् [3] ।
त्रिकटु त्रिसुगन्धं च कणामूलं सजीरकम् ॥ ४ ॥
चित्रकं च पलैकैकं चूर्णितं वस्त्रगालितम् ।
शाणप्रमाणमादेयं मधुना प्रथमं ततः ॥ ५ ॥
प्रत्यहं वर्धयेन्माषं यावत् कर्षप्रमाणता [4] ।
ततः स्थिरा भवेन्मात्रा चत्वारिंशद्दिनावधि ॥ ६ ॥
एवं निषेविते योगे शून्यवातः [5] प्रणश्यति ।
केवलं चणका भ्रष्टाः पथ्यमन्यन्न किंचन ॥ ७ ॥

४ रसेन्दुर्दरदं [6] दालचिक्कणं तारतन्तवः ।
कर्षं कर्षं समाहृत्य कणिकाः कल्पयेत्तनूः ॥ ८ ॥

कारण, हाथ में पाश नामक आयुध को धारण किये हुये वायु को, सुख की (आरोग्य की) प्राप्तिके लिये केवल 'स्नेह' (तैलादि) से ही वश में (शमन) कीजिये (स्नेह से सभी वशीभूत हो जाते हैं ।) ॥ १ ॥

प्रपुन्नाड (चक्रमर्दक) के पत्तों का शाक, अथवा उनकी पानी में पीसकर बनाई गयी वटिका, वातरोग का शमन करती है । इससे अधिक आश्चर्य कारक और क्या हो सकता है ॥ २ ॥ शुद्ध भिलावा आठ तोला, तिल और गुड प्रत्येक चौसठ तोला इनकी एकत्र चार चार तोला भर गुटिकायें बनालें । ये वातव्याधि को शनैः शनैः नष्ट कर देती है ॥ ३ ॥ शुद्ध गंधक चोवीस तोला, त्रिफला, विडंग, त्रिकटु (सूंठ, मरिच, पीपल), त्रिजात (तज, इलायची, तेजपत्र) पीपलीमूल, जीरा और चित्रक प्रत्येक चार चार तोला-इनका एकत्र वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण बनालें । इस चूर्ण में से प्रथम दिवस मधु के साथ तीन माषा सेवन करें । प्रत्येक दिन १ माषा मात्रा बढाते जायें । जिस दिवस चूर्ण की मात्रा एक तोले पर पहुंचे उस दिन से, इसी एक तोले प्रमाण से, चालीस दिवस तक चूर्ण का प्रयोग करते रहें । इस प्रयोग से शून्य-वात शमित हो जाती है । प्रयोगकाल में केवल भूने हुये चने ही पथ्यान्न रूप से लेने चाहिये । इसके अतिरिक्त अन्य सभी पदार्थ अपथ्य हैं ॥ ४–७ ॥

रसकर्पूर, हिंगुल, दालचिक्कण विष और (चांदी के) गोटा कंदला प्रत्येक एक एक

१–तैलादितः । स्नेहेन लोको वशीक्रियत इति श्लेषोत्थापितो ध्वनिः । स चालङ्काराद्वस्तुव्यञ्जनरूपः । २–भल्लातकानां वृन्तच्छेदः कार्यः । ३–विडङ्गम् । ४–कर्षशब्देन तोलक-

तवके पट्टमास्तीर्य तत्र ता कणिका न्यसेत् ।
विधाय पट्टुना नेमिं पिदध्याच्चीनपात्रत. ॥ ९ ॥
तदधो ज्वालयेद्वह्निं शनकै. प्रहरत्रयम् ।
स्वाङ्गशीत समुद्धृत्य पात्रोदरगतं रसम् ॥ १० ॥
अद्यादमीरनामान ग्रन्थिवातोपदशवान् ।
अहानि सप्त नव वा मर्यादाऽमुष्य भक्षणे ॥ ११ ॥
सितासखं पयो गव्य पथ्य गोधूमफुल्लिका ।
घनश्यामेन भिषजा रसोऽयं मह्यमर्पित ॥ १२ ॥
गुञ्जैका वा द्विगुञ्जा वा मात्राऽमुष्य यथामयम् ।
पिधाय द्राक्षया प्रातर्गिलेद्दन्तैर्न च स्पृशेत् ॥ १३ ॥
पँटोत्रीणि पलानीह तत्र स्वास्तरण पलात् ।
द्वाभ्या पलाभ्या घटयेत् परितो नेमिबन्धनम् ॥ १४ ॥
५ मरुभूरुहमूलस्य क्षोदो नल्वणसंमित ।
चतुष्प्रस्थं कणामूल द्विप्रस्था च यवानिका ॥ १५ ॥

तोला लेकर जोकुट बनाले। तदुपरात, बारह तोला सेंधव लेकर, उसमें से चार तोले भर जितना एक लौह के तवे पर फैलादे। अवशिष्ट आठ तोले सैंधव से उसके चारों ओर एक परिधि-छोटीसी दीवार-बनाले। अब इस परिधि में, उपरोक्त औषधीय द्रव्यों का जोकुट चूर्ण बिछाकर, उसपर एक चीनी मिट्टी का सकोरा औंधा ढकदें। फिर, इनको तीन प्रहर तक अग्नि योग से पकावें। स्वाग शीतल होने पर शराव-तल सलग्न रस को सावधानी पूर्वक निकाल लेवें। इस रस की निर्माण विधि मुझे वैद्य घनश्यामदास से प्राप्त हुई है। यह 'अमीर' रस उपदश युक्त ग्रथीवात में उपयोगी है। इसकी सेवनावधि सात अथवा नौ दिवस से अधिक नहीं है। इस रस को द्राक्षा में अच्छी तरह लपेट कर, दातों को स्पर्श न हो इस तरह, सावधानतया निगीर्ण करना चाहिये। इसे गुजा अथवा दो गुजा भर मात्रासे प्रात ही लेवें। मिश्रीयुक्त गाय का दूध और गेहू की धाणी पथ्य है ॥ ८-१४ ॥

करीर के ताजे एव आर्द्र मूल सोलह प्रस्थ, पिप्पली मूल चारप्रस्थ, यवानी दो प्रस्थ और हरताल दो पल इन सबको एकत्र जौकुट करके पातालयत्र विधि से अर्क

मुच्यते। ५-स्पर्शाज्ञानरूप 'शून्नेरी' इति लोकख्यातो रोगविशेष। ६-रसकर्पूरम्। दरद हिङ्गुलम्। दालचिक्कणमेतन्नाम्नैव प्रसिद्ध विषम्। तारत तव इति 'गोटाकन्दला' इति नामतो लोके प्रसिद्धा, ते च राजता ग्राह्या।

१-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धे रोटिकापाकप्रयोजने लौहे यन्त्रविशेषे। २-वक्ष्यमाणप्रमाण सैन्धवम्। ३-वक्ष्यमाणमानेन। ४-परिधिम्। ५-पिधानानन्तर सैन्धवपले कतीराख्य-गुन्द्रकर्ष समेत्य जलेन सपिष्य चीनपात्र परित सन्धिरोध विधाय सशोष्य च पश्चाद्वह्निंदद्य। ६-चतु प्रहरमपि। ७-अन तरोक्तयोगे लवणमानप्रयोजनप्रदर्शक पद्यम्। ८-मरुभूरुह करीर 'कैर' इति ख्यात, तस्य मूल सद्यस्कमार्द्रं ग्राह्यम्।

हरितालं पलद्वन्द्वं स्थूलमेकत्र खण्डयेत् ।
अर्कं पातालयन्त्रेण पातयेदुग्रसौरभम् ॥ १६ ॥
अमुष्य पुनरर्कस्य मण्डलावधि सेवनात्[1] ।
वातव्याधिः पुराणोऽपि प्रशाम्येत् किं पुनर्नवः ॥ १७ ॥
६ उसब्बाचोपचीनीभ्यां[2] क्राथो माक्षिकसाक्षिकः ।
सन्धिवातं विशेषेण निःशेषयति पथ्यतः[3] ॥ १८ ॥
७ मल्लः सूतो[4] बलिः कत्थं पृथग्वल्लचतुष्टयम् ।
समुद्रान्तारसैः[5] कार्या गुडाः सर्षपसोदराः ॥ १९ ॥
संधिवातगलत्कुष्ठदुष्टनाडीव्रणज्वरान् ।
फिरङ्ग[6]शोथपवनकफमान्द्योदरापदः ॥ २० ॥
कासश्वसनहिक्कादीन् निघ्नन्त्येव न संशयः ।
अनुपानं जलं शीतं तैलाम्लादि विवर्जयेत् ॥ २१ ॥
८ कुँपीलोः[7] पीतसिद्धार्थात् कुडवं कुडवं कुरु ।
द्वौ च तौ सवितुर्मूलाद्[8] द्वौ कर्षौ शतमल्लतः ॥ २२ ॥

निकाल लेवें। यदि उग्र गंध के कारण इस अर्क के पीने में असुविधा हो तो इसमें सूंठ का चूर्ण मिला गुटिका बनाकर निगल जानी चाहिये। रोग के बलाबल अनुसार उचित मात्रा में इसका उपयोग करें। इस अर्क के, एकचालीस दिवस पर्यंत, सेवन करने से जीर्ण वात रोग भी नष्ट होजाता है। फिर नूतन की तो चर्चा ही क्या? १५-१७ उसब्बा और चोपचीनी के यथाविधि साधित कषाय में यथामात्रा शहद मिलाकर पीने से वातरोग का, विशेषतया संधि-वात का, शमन होता है। प्रयोग कालमें तैल अम्लादि पदार्थ सर्वथा अपथ्य हैं ॥ १८ ॥

शतमल्ल, शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, और कत्था प्रत्येक बारह गुंजा भर, इनको एकत्र खरल में पीसकर अच्छी तरह मिलालेवें। फिर धमासे के स्वरस में घोटकर इनकी सर्षप समान गोलियां निर्माण करें। तैल, अम्लादि अपथ्य पदार्थों के त्यागपूर्वक, शीतल जल के अनुपान सहित इनके प्रयोग से संधिवात, गलितकुष्ठ, दुष्ट नाडीव्रण, ज्वर, उपदंश, शोथ, कफ-वात की विकृति, अग्निमांद्य, उदर-रोग, कास, श्वास, हिक्का आदि का निःसंदेह शमन हो जाता है ॥ १९-२१ ॥ कुचला और पीत सरसों, प्रत्येक सोलह सोलह तोले, आकडे के मूल की छाल बत्तीस तोला, शतमल्ल दो तोला तथा

१-एकचत्वारिंशद्दिनावधिसेवनात्। उग्रसौरभत्वादर्कः पातुमशक्यश्चेच्छुण्ठीचूर्णेन गुटीं प्रकल्प्य गिलेत्। रोगबलाबलं वीक्ष्य मात्राऽस्य प्रकल्पनीया। २-द्वीपान्तरीयवटजटा (?) उसब्बाशब्दवाच्या, द्वीपान्तरीयवचा च चोबचीनी नाम्नाऽऽख्यायते। ३-तैलाम्लादिवर्जनस्वरूपात्। ४-सूतः पारदः। पारदगन्धौ च शुद्धावुपादेयौ। ५-दुरालभास्वरसैः। ६-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्ध उपदंशविशेषो भावप्रकाशोपदिष्टस्वरूपश्च। ७-काकतिन्दुकात् 'कुचला' इति प्रसिद्धात्। ८-मूलवल्कलादित्यर्थः।

अष्टसंख्यानि धूर्तस्य फलान्यपि समाहर।
पातालयन्त्रतस्तैलं यथानीति निपातय ॥ २३ ॥
तैलस्य मर्दनात् सद्यः पक्षाघातः पलायते।
तद्धूमम्लानताम्बूलचर्वणादर्दितोऽपि च ॥ २४ ॥
९ मल्लो जातीफलं जातीपत्रिका दीप्यकत्रयम्।
भङ्गाबीजानि पुष्पाणि त्रीण्यक्षाणि पृथक् पृथक् ॥ २५ ॥
ज्योतिष्मती षडक्षैव कस्तूरीकुङ्कुमं मनाक्।
द्रव्यजातमिमं सर्वं भृत्वा काचमये घटे ॥ २६ ॥
पातालयन्त्रविधिना तैलं रहसि पातयेत्।
मल्लतैलमिदं हन्ति वातार्तिं स्पर्शमात्रतः ॥ २७ ॥
१० चत्वारस्तोलका मल्लाद्दरदाञ्जनात् पुरात्।
घृतादथ दशैं द्विघ्ना हेमदुग्धजदुग्धतः ॥ २८ ॥

धतूरे के फल नग आठ इन सभी द्रव्यों को एकत्र करके पातालयन्त्र से यथाविधि तैल निकाल लेवें। इस तैल की मालिश से पक्षाघात सधिवात, आदि व्याधियां तत्काल दूर हो जाती हैं। इस तैल की धूमसे म्लान किये गये ताम्बूल का चर्वण करने से, उपरोक्त व्याधियों के अतिरिक्त अर्दित रोग मिटता है। ताम्बूल चबाते समय इसके पीक को न निगलकर थूकते रहना चाहिये ॥ २२-२४ ॥

मल्ल, जायफल, जावित्री, अजवायन, खुरासानी अजवायन, अजमोदा, भांग के बीज और लविंग प्रत्येक तीन तीन तोला, ज्योतिष्मती छह तोला, कस्तुरी तथा नाग केसर करीब एक एक मापा, अथवा इससे कुछ अधिक मात्रा में, इन सभी द्रव्यों को काच के पात्र में भरकर, इनका, एकांत में, पाताल-यंत्र-विधि से तैल टपकालें। इसे मल्ल तैल' कहते हैं जिसके स्पर्श मात्रसे वात-वेदना दूर हो जाती है। यदि वात-रोग-जन्य निर्बलता हो तो एक शलाका भर मात्रा को शक्कर में मिलाकर सेवन करना चाहिये। इस तैल के मर्दन से ध्वजभंग में लाभ होता है। प्रयोग काल में, तैल, इमली, गुड आदि पदार्थ वर्ज्य हैं। पातालयंत्र के गर्त में चार सेर कोयलों की अग्नि पर्याप्त होती है ॥ २५-२७ ॥ मल्ल, हिंगुल और रसांजन इन तीनों को प्रत्येक चार चार

१-आकृतिमानादेर्वैषा ग्रहणम्। २-उपलक्षणमिदं, तेन ग्रन्थिवातसंधिवातादि-ष्वप्यवचारणीयम्। ३-ताम्बूलस्य पीको न पेयः किंतु मुहुर्मुहुर्निष्ठीव्य इति रहस्यम्। ४-अपिना ताम्बूलचर्वणादपि पक्षाघातः पलायत इति ध्वनितम्। ५-यवानिका, पारसी-कयवानिका, अजमोदा, चेति त्रयम्। तच्च पृथक् त्र्यक्षमितम्। ६-लवङ्गानि। ७-पाताल-यन्त्रगर्तं कोकिलाटकेन समावृत्य वह्निं दद्यात्। ८-वातरुजि तस्य स्पर्श एव कार्यो, नैर्बल्ये चेपीकामात्र शर्करया पर्णेन वा भक्ष्यम्। मर्दनमस्य ध्वजभङ्गे क्रियते। तैलगुडाम्लादिकमत्र प्रयोगे वर्ज्यम्। ९-रसाञ्जनात्। १०-घृताद्दश तोल्का। हेमदुग्धजदुग्धात् विंशतिस्तोल्का इत्यर्थः। हेमदुग्ध उदुम्बर। तथा चामर -"उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः" इति।

अतः प्रच्यावितो यन्त्रयुक्त्या[1] श्च्योतनसत्तमः ।
मर्दनाद्धन्ति मरुतो मात्रया भक्षणादपि ॥ २९ ॥

११ आवाप्य भस्म भाण्डे चषकं धृत्वा पुरं च तत्परितः ।
साम्बुघटेन[3] पिधाय ग्राह्यं ज्वलनेन तैलमनिलघ्नम् ॥ ३० ॥

१२ नूतनकरीरकाष्ठश्च्योतनकं बलिनिकार्ययन्त्रेण[4] ।
अभ्यङ्गतोऽस्रजनिते[5] निहन्ति पाददाहप्रहर्षकालुष्ये ॥ ३१ ॥

१३ निःक्षिप्य लाक्षां कटुतैलमध्ये तावत् पचेद्यावदसौ विलीना ।
अभ्यङ्गतस्तैलमिदं करोति वातं नवातङ्कविहीनवीर्यम् ॥ ३२ ॥

१४ पचेन्महावृश्चिककल्कगर्भं सिद्धार्थराज्यन्यतरस्य तैलम् ।
शतैः क्रियाणामपि दुर्जयायाः प्रभञ्जनार्तेः प्रतिभञ्जनाय ॥ ३३ ॥

१५ राधागालीमूलवारिप्रपक्वं[6] तैलं वातव्याधिहारि[7] प्रदिष्टम् ।
राधागाली शर्कराकन्दमूला[8] डाकोरादौ[9] जायते क्ष्वेडजातिः ॥ ३४ ॥

तोला प्रमाण में एकत्र लेकर उससें दस तोला घृत, दस तोला गंधक और बीस तोलाभर उदुम्बर का दूध मिलादें । अब, पातालयंत्र से इनका उत्तम 'चौहा' टपकालें । इस चौहा के मर्दन अथवा यथामात्रा भक्षण से वात-रोग नष्ट होजाता है ॥ २८-२९ ॥

एक पात्र में राख भरकर उसके मुख को शराव से ढंकदें । इस शराब में गुग्गुल भरदें । शरावपर एक जलपूर्ण घट रखकर संधि-बंध कर देवें । फिर, नलिका यंत्रविधि से, उपरोक्त गुग्गुल का तैल निकाल लेवें । यह तैल उत्तम वातघ्न माना गया है । ऊपर के घट का पानी जैसे जैसे गरम होने लगे, वैसे वैसे उसे बाहर निकालते जायें, और शीतल जल भरते रहें ॥ ३० ॥ पातालयंत्र द्वारा, करीर की ताजा-आर्द्र-लकडियों में से निकाले गये चोहा की मालिश करने से, पाददाह तथा पादहर्ष दूर होता है । (प्रकुपित वायु, पित्त और रक्त से मिलकर 'पाद-दाह' उत्पन्न करता है । इसी वात के साथ कफ का संबंध होने पर 'पाद-हर्ष' (पैरों में झनझनाहट तथा सुन्नता) उत्पन्न होता है) ॥ ३१ ॥ सर्षप-तैल में लाक्षा डालकर, लाक्षा के पिघलकर तैल में मिल जाने तक, तैल को उकालते रहें । इस तैल की मालिश से नूतन-वात-रोग हतवीर्य बन जाता है ॥ ३२ ॥ युवान-विच्छुके कल्क में यथाविधि सर्षप अथवा राई के शुद्ध तैल को सिद्ध करलें । यह सिद्ध-तैल, शतशः उपचारों से भी वश में नहीं किये गये वायु के वेग को तोड डालता है ॥ ३३ ॥ लाङ्गली मूल के स्वरस से यथाविधि साधित तैल की मालिश से

१—पातालयन्त्रेणैव । २—'चोहा' इति लोकप्रसिद्धिश्च्योतनस्य । ३—सत्यौष्ण्ये जलस्य परिस्रुतिः कार्या । ४—बलिनिकायं पातालं, तदाख्येन यन्त्रेणेत्यर्थः । ५—वातानुबद्धरक्तजनुषी । ६—अनेनैव नाम्ना गुर्जरे प्रसिद्धः, तत्रैव चास्या 'वढवाडीओ' 'दुधीओ वत्सनाभ' इति नामद्वयं ख्यातं, लाङ्गलीत्यस्याः संस्कृते संज्ञेति केचित् । ७—वातव्याधिशब्देनात्र संधिवातो विवक्षितः । ८—'शक्करकन्दी, शक्करिया' इति ख्यातः कन्दः, तदाकृतिमूलेत्यर्थः । ९—अस्ति कश्चिद्गुर्जरे ग्रामविशेषो यत्र श्रीरणछोडाख्यो विष्णुर्विराजते, तत्र गोमतीतटाकपरिसरे प्रायो भवति ।

१६ भेषजक्ष्वेडवटिकांस्तैलान्तस्तलयेद्भृशम्[1] ।
हन्ति मर्दनमात्रेण तत्तैलं वातवेदनाः ॥ ३५ ॥
१७ माषिकैश्चुक्रकुष्ठफेनैस्तैलं द्वादशमाषकम् ।
मन्दानले चिरं सिद्धं खल्लीं मर्दनतो द्यति ॥ ३६ ॥
१८ शिखिपिच्छविभूतिशृतं तैलं खण्डयति खल्लिकाखेलान् ।
१९ अशिशिरतरसलिलनिभृतकाचघटीस्वेदनमपि तथा ॥ ३७ ॥
२० एरण्डबीजसंसिद्धं कवोष्णं मान्द्यपायसः ।
समन्ताद्युक्तितो बद्धो हनुकण्ठग्रहापहः ॥ ३८ ॥
२१ मुहुर्मुहुर्धूननफुल्लतूलसाराद्वृतिस्विन्नकलेवरस्य ।
सधीनधिष्ठाय रुजन्नजस्रं प्रभञ्जनो भङ्गमवश्यमेति ॥ ३९ ॥

सन्धिवात में लाभ होता है । राधा-गाली विष की एक जाति है । यह गुर्जर प्रदेश के अन्तर्गत 'डाकोर' में जहां श्रीरणछोडराय भगवान का प्रसिद्ध मंदिर भी है, उसके निकट गोमती नदी के किनारों पर उपलब्ध होता है । इसके मूल शकरकंदी के मूल से आकृतितः साम्य रखते हैं । यह गुर्जर प्रांत में 'दुधियो वत्सनाभ' 'वढवादिओ' आदि नामों से सुप्रसिद्ध है ॥ ३४ ॥

शुंठी तथा शृंगी विष के एकत्र चूर्ण से वटिकायें बनाकर उनको तैल में तब तक खूब तलते रहें जब तक वे जल भुनकर कोयले के समान काली न बन जायें । इस तैल की मालिश करने से वात वेदना शांत हो जाती है ॥ ३५ ॥ चुक्र, कूठ और अफीम प्रत्येक एक एक माषा भर लेकर बारह माषा तैल में दीर्घ काल तक मदाग्नि से पकावें । इस तरह साधित तैल की मालिश करने से, वातरोग विशेषतया 'खल्ली' नष्ट हो जाती है । निंबू रस के अधस्तल में स्थित घनीभूत चिकने द्रव को चुक्र कहते हैं खल्ली पर जांघ तथा हाथ आदि में होनेवाली 'ऐंठन' का नाम है जिसे 'बायटा' भी कहते हैं ॥ ३६ ॥ मयूर पिच्छ की भस्म में यथा विधि सिद्ध किया गया तैल 'खल्ली' के खेल को खण्डित करता है । इसी तरह उष्ण जल से परिपूर्ण काचके घट-द्वारा स्वेदन करने से खल्ली की गिल्ली उडजाती है ॥ ३७ ॥

एरंड बीजों में सिद्ध किये गये कवोष्ण घट्ट-पायस को चारों तरफ युक्तिपूर्वक बांध देने से हनुग्रह तथा कंठग्रह आदि वात-व्याधियां छूट जाती हैं ॥ ३८ ॥ कपास के ढेर के पास रोगी को बिठाकर उसे पुनः पुनः तब तक पींजते रहें जब तक

१-शुण्ठी-शृङ्गिकविषयोर्वटिका । २-यावद्वटिका कोकिलाकारा स्युस्तावदिति भृशशब्दार्थः । ३-चुक्र । लोके 'चूक' इति ख्यातो निम्बूरसजन्य कल्काभो द्रव्यविशेष, रुक् कुष्ठ, फेनमहिफेन, तैः । ४-खल्लीमित्युपलक्षण, तेन सर्ववातव्याधिम् । ५-मयूर-पिच्छभस्मशृतम् । ६-"खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटिनी" इत्युक्तलक्षणा 'बांयटा' इति लोके प्रसिद्धा । ७-रोगिणमभ्यर्णे सस्थाप्य धूननारम्भः कार्यः । यथा च धूननफुल्ल-तूलराशिस्तदङ्गोपरि निपतेत्तथेति ।

२२ सर्वाङ्गमारुते तीव्रतोदशूलादिकारिणि ।
कवोष्णकारवीतल्पे शयानः स्वेदमाचरेत् ॥ ४० ॥
२३ हेममिहिरचञ्चुजलं[1] स्थितमधिभूगर्तमष्टाहम् ।
अध्यातपमभ्यञ्जनाद्भञ्जयति रुजं प्रभञ्जनजाम् ॥ ४१ ॥
२४ तीक्ष्णपत्रीरजः[2] सूक्ष्मं प्रपिष्य दृढमर्णसा[3] ।
कोष्णीकृतं प्रलेपेन वातपीडां नियच्छति ॥ ४२ ॥
२५ मक्षीशकृदर्णसा[4] समं क्रिमपि क्वथितं प्रलेपितम् ।
शनकैरनलेन तापितं कवलीकुरुतेऽनिलव्यथाम् ॥ ४३ ॥
२६ मयूरचन्द्रस्य गुडेन मध्यं विनीय बद्धां गुटिकां प्रभाते ।
मासं[5] गिल क्रोष्टुकशीर्षशान्त्यै तैलाम्लबाह्लीकगुडादि मुञ्च ॥ ४४ ॥
२७ चिलादग्धं खावास्थि विचूर्ण्य गुडयोगतः ।
प्रकल्प्य मोदकं खादेत् प्रातः क्रोष्टुकशीर्षके[6] ॥ ४५ ॥

उस रूई के सूक्ष्म रेशों से रोगी परितः आच्छादित न हो जाये । इस तरह देह के स्विन्न होने पर, रोगी को संधिगत वात की निरंतर वेदना से निःसंदेह मुक्ति मिल जाती है ॥ ३९ ॥ तीव्र तोद और शूल युक्त सर्वांग वातरोग में कवोष्ण अजमोदा से आस्तृत शय्या पर लेटे हुये स्वेदन लेना हितावह है ॥ ४० ॥ धत्तूरे, आकडे तथा एरंड पत्तों के स्वरस को घडे में भर गहरे गर्त के भीतर गाडकर आठ दिवस पर्यंत रहने दें, इस रस की, धूपमें मालिश करने से वातजन्य वेदना भंग हो जाती है ॥४१॥ एरंड पत्तों के स्वरस से, तमाखू पत्र के सूक्ष्म चूर्ण को खूब पीसकर फिर थोडा निवाया करके उसका लेप करें । इससे वातवेदना नष्ट हो जाती है ॥ ४२ ॥

मख्खी की विष्ठा को पानी में घोलकर उससें पोदीने के कल्क को खूब उकाल सांद्र बनालें । कुछ शीतल होने पर उस पिष्टीका, पीडित स्थान पर लेप करके धीरे धीरे अग्नि का ताप देवें । इससे वातवेदना शांत हो जाती है ॥ ४३ ॥ मयूरपिच्छ की भस्म को गुड के भीतर रख उसकी गुटिका बनालें । एक गुटी नित्य प्रातःकाल निगल लेनी चाहिये । इस तरह एक मास तक इसका सेवन करने से क्रोष्टुकशीर्ष वातव्याधि से मुक्ति मिल जाती है । इसके प्रयोग काल में तैल, गुड, इमली, हींग प्रभृति पदार्थों से परहेज करें । रोगाधिक्य में एक मासावधि, सामान्य रोग में एक सप्ताह अथवा एक पक्ष पर्यंत, प्रयोग का विधान है ॥ ४४ ॥

आकडे के भीतरी काष्ठ को तीव्र अग्नि में जलाकर उसका सूक्ष्म चूर्ण करलें । फिर गुड मिलाकर इसके लड्डू बनालें । इनको प्रातःकाल लेने से क्रोष्टुकशीर्ष का शमना

१–धत्तूरार्कैरण्डस्वरसः । २–तीक्ष्णपत्रीशब्देन 'जरदा' इति प्रसिद्धस्य ग्रहणम् । ३–एरण्डदलोद्भवेन स्वरसेनेति रहस्यम् । ४–'पोदीना' इति प्रसिद्धम् । ५–महति रोगे मासोऽवधिर्दुर्बलरोगे सप्ताहं पक्षं वा । ६–"वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः । ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत्" इति प्रोक्तलक्षणे ।

२८ महिषीमूत्रमसकृत्पटपूतं निशासरम्।
पिबतामामवातार्तिः क्षिप्रमेव प्रशाम्यति ॥ ४६ ॥

— इति वातव्याधिचिकित्सितम् —

अथ शूलचिकित्सितम्[1]।

१ चलदलतरुमूलच्छल्लजातः[2] कषायो
लवणगुडसहायो मात्रया पीतमात्रः।
अधिकनिबिडमूलं दुःसह कुक्षिशूलं
शमयति यदि शङ्का तर्हि दत्त्वा परीक्ष्य ॥ १ ॥

२ एरण्डमेथिकागुडनिर्यूहो हरति जठरशूलानि।
वाराङ्गनाविलासास्तरुणानां मानसानीव ॥ २ ॥

३ बब्बूलतरुकण्टकसंस्थं[3] सकीटं विपाच्य कुडवजले।
अर्धावशिष्टमम्भः पीतं हरति जठरशूलानि ॥ ३ ॥

४ क्षपां[4]ऽक्षमाना[6] यवसां[5] समानां पटुस्त्रिमाषः कुरु चूर्णमेषाम्।
पलप्रमाणेन[7] घृतेन पक्त्वा कोष्णं महाशूलरुजासु देहि ॥ ४ ॥

हो जाता है ॥ ४५ ॥ भैंस के मूत्र को इक्कीस बार वस्त्रपूत करके उसमें हरिद्रा मिलाकर पीते रहने से आम-वात-जन्य पीडा शीघ्र ही शांत हो जाती है ॥ ४६ ॥

— वातव्याधि चिकित्सा समाप्त —

— शूलचिकित्सा (कुल प्रयोग १७) —

पीपलवृक्ष के मूल की छाल से सिद्ध कषाय में लवण और गुड मिलाकर यथामात्रा में पीने मात्र से, अत्यधिक वेदनायुक्त अतएव असह्य उदरशूल प्रशमित हो जाता है। इसमें यदि शंका हो तो प्रयोगद्वारा परीक्षा कर लीजिये ॥ १ ॥

एरण्डमूल, मेथी और गुड से साधित कषाय, युवतियों के विलास से युवकों के हृदय-शूल की तरह, उदर शूल को शमन कर देता है ॥ २ ॥ बबूलवृक्ष के कांटों पर कीट विशेषद्वारा निर्मित आवास को कीटसहित लेकर, उसे एक सेर पानी में, अर्धावशेष रहने तक, उबालकर पीने से, उदरशूल शमित हो जाता है ॥ ३ ॥

हरिद्रा एक तोला, उतने ही प्रमाण में अजवायन तथा नमक तीन माषा, इन तीनों का सूक्ष्म चूर्ण बनालें। फिर, इनको चार तोलाभर घी में भून, कवोष्ण

१–वातरुजासामान्याच्छूलमुच्यते। २–पिप्पलमूलवल्कलजातः। ३–'मशकबिलाई' इति लोकख्यातं कीटविशेषस्य सहितमेव कण्टकसङ्कट तद्गृह ग्राह्यम्। ४–हरिद्रा। ५–यवानिका। ६–अक्षमानेऽर्थ। ७–पलमत्र चतुस्तोलकपरम्।

५ करञ्जमज्जो द्वितयं त्रयं वा विभर्ज्य साकं पटुना निगीर्णम् ।
शूलं समूलं हरति प्रसह्य कूलं यथा निर्झरिणीप्रवाहः ॥ ५ ॥
६ मल्लकान्तर्मनाग्भ्रष्टं बब्बूलफलजं रजः ।
शृतेन वारिणा पीतं समूलं शूलमुद्धरेत् ॥ ६ ॥
७ आर्द्रचूर्णेन संघृष्टा कारवी निस्तुषीकृता ।
सौवर्चलेन सहसा शूलं मूलान्निकृन्तति ॥ ७ ॥
८ तैलमलितखण्डसखी चूर्णवटी द्वित्रिवेलमपि गीर्णा ।
भवति तया खलु किं नो शूलविशेषः यथा शीर्णा ॥ ८ ॥
९ शिग्रुस्वरसेन वटी सैन्धवसौभाग्यविश्वानाम् ।
जयति जठरशूलरुजं योगोऽयं श्यामरामभिषगुक्तः ॥ ९ ॥
१० मृद्भाण्डपूर्णे खरपुङ्गवस्य मूत्रे शनैः शुष्यति सूर्यतापात् ।
या पर्पटी स्त्यायति मात्रया सा दत्ता निहन्यादुदरार्तिमुग्राम् ॥ १० ॥
११ प्रक्षालितानि शनकैर्मरिचोत्तमानि
सिद्धानि सर्पिषि मनाग्विपमुष्टिकानि ।

ही सेवन करने से उदर की तीव्र शूलजन्य वेदना में लाभ होता है ॥ ४ ॥ करंज फल की मज्जा को भूनकर, नमक के साथ लेने से, नदी के वेगवान प्रवाह से कूल की तरह, उदरशूल बलात् प्रवाहित हो जाता है ॥ ५ ॥

बवूल के शुष्कफलचूर्ण को शराव में रखकर थोडा भूनलें। इस चूर्ण को, उकले हुये जलके साथ फांकने से उदरशूल समूल नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥ ताम्बूलोपयोगी चूने के चूर्ण के साथ अजवायन को खूब मसल मसल कर निस्तुष बनालें। फिर, इसमें थोडा काला नमक मिला फांक जायें। उदरशूल को यह शीघ्र ही निर्मूल कर देता है ॥ ७ ॥ चूने की वटी को तिल की भूसी में मिलाकर दो या तीन वार निगीर्ण करने से पेट की चूंक (शूलजन्य पीडा विशेष) विशीर्ण हो जाती है ॥ ८ ॥ सैंधव, टंकण तथा सूंठ के सूक्ष्म चूर्ण को सहजने के पत्रस्वरस से खूब मर्दन करके वटी बनाकर सेवन करें। यह उदरशूल की वेदना को मिटाती है। यह प्रयोग वैद्य श्यामरामने बताया है ॥ ९ ॥ स्वस्थ गदहे के मूत्र को एक मिट्टीके घट में भरकर सूर्य के ताप में रखदें। इस मूत्र के धीरे धीरे सूखजाने पर, घट में चारों तरफ पर्पटी जैसी सूखी तह जम जायेगी। इस पर्पटी का, रोग और रोगी के बलानुसार मात्रा स्थिर करके, प्रयोग करें। इससे अत्युग्र उदर शूल जन्य पीडा प्रशमित हो जाती है ॥ १० ॥

पानी से धीरे धीरे मसलकर अच्छी तरह साफ किये गये मरिच के दाने तथा

१–करञ्जफलमज्जायाः । २–मल्लकः शरावविशेषः 'मालसा' इति प्रसिद्धः । ३–सुधाखण्डजेन ताम्बूलाद्युपयोगार्हेण । ४–यवानिका । ५–चूर्णेन सह गाढघर्षणेन निस्तुषा कार्या । ६–सुधाजचूर्णवटी । ७–चूकशब्दवाच्या । ८–सौभाग्यं टङ्कणम् ।

'गोली गुलाबजलतें करिये चणेसी
सोह कहा नहिं मिटावत पेटपीरा' ॥ ११ ॥

१२ मल्लादिन्द्रक्षिगुणितमुषणं कन्यया त्र्यहम् ।
खल्वयित्वा मकुष्ठश्रीर्गुटी जठरशूलजित् ॥ १२ ॥

१३ चक्रिकाः षोडशीमानास्तन्व्यः शम्बरशृङ्गजाः ।
घटान्तर्द्विः पुटेत् कन्यामासप्रस्थद्वयान्तरे ॥ १३ ॥
तद्भस्म चन्द्ररुचिरं घृतेन सह सेवितम् ।
हृच्छूलभ्रमनैर्बल्यवातश्लेष्मनिषूदनम् ॥ १४ ॥

१४ रङ्गच्छदेन तनुना परिवेष्ट्य मुद्रां
ताम्रस्य सावयवमार्कवकल्कमध्ये ।
सम्यक्पुटेद्दतिपट्ठः सुरभेः शकृद्भिः
स्यात् सोमनाथरस एष समीरहर्ता ॥ १५ ॥

घृत में थोडे भूने गये शुद्ध कुचले इन दोनो को मिलाकर गुलाब जल से घोट करके चने प्रमाण गोलियां बनालें । क्या इनके सेवन से भी पेट की पीडा न मिट सकेगी? ॥ ११ ॥ एक भाग मल्ल तथा मल्ल से इक्कीस गुणित पिप्पली इन दोनों को एकत्र ग्वारपाठे के रस से तीन दिवस तक खरल करें । इनकी, उत्तम मकुष्ठ जैसी गुटी बनालें । यह उदर शूल को नष्ट कर देती है ॥ १२ ॥ साभरसींग की पतली एवं चक्राकार, चार चार तोलेभर, चक्रिकायें सवार लें । एक मिट्टी के घट में, चौसठ तोला ग्वारपाठे का गुदा भरकर, उसपर इन सींग की चक्रिकाओं बिछादें । तथा इनके ऊपर, पुनः चौसठ तोला ग्वारपाठे का गूदा और भरदें । घट के मुख को कपडमिट्टी करके दो बार पुट देने से, इनकी चंद्रमा के तुल्य श्वेत-भस्म बन जायेगी । इस भस्म का एक रत्तिप्रमाण में घृत के साथ प्रयोग करें । इससे हृदयशूल, भ्रम, निर्बलता, वात एवं कफजन्य विकार नष्ट हो जाते हैं । इसके प्रयोगकाल में करीब पाव सेर घृत का अवश्य सेवन करे । तैल, लवण, अम्ल आदि अपथ्य है ॥ १३–१४ ॥

तांबे के एक पैसे को, रांगे के पतले पत्तरे मे अच्छी तरह लपेट कर, भांगरे के पचाङ्ग कल्क के भीतर रखदें । फिर, गायकी गोबरी से अच्छी तरह पुट दे । इस तरह ग्यारह पुट देने से उत्तम ताम्रभस्म बन जायेगी । इसे 'सोमनाथरस' कहते हैं । पार्श्वशूल की यह परम औषधि है ॥ १५ ॥

१–चणकप्रमाणा । २–एकविंशतिगुणम् । ३–पलप्रमाणा । ४–शम्बर 'साभर' इति लोकप्रसिद्धो मृगविशेषो विकटविषाण । ५–रक्तिप्रमाणमिति शेष । तैलाम्लवणादिकं न भक्ष्यमेतद्भस्मसेविनाऽवश्यं कुडवमितं पादोनकुडवं वा घृतं भक्षितव्यमिति । ६–त्रपुपत्रेण । ७–पण 'पैसा' इति ख्यातम् । ८–पार्श्वशूलजित् ।

१५ मकुष्ठजीर्णच्छदजैः कषायैर्भृत्वा घटं तत्र निधाय नाडीम् ।
तया शनैः स्वेदय पार्श्वमुग्रशूलार्तमाच्छादितमम्बरेण ॥ १६ ॥

९६ पार्श्वशूलाधिकरणमरुणक्षीरलेपितम् ।
अङ्गारधूपितं शूलानधिकरणं भवेन्न किम् ॥ १७ ॥

१७ शाणमध्यर्धशाणं वा केवलं स्वच्छपारदम् ।
तैलाम्लप्रभृतित्यागी पिबेच्छूलनिवृत्तये ॥ १८ ॥
नानाक्रियासु मोघासु वैद्येषु व्यग्रबुद्धिषु ।
रुदत्सु रुग्णदारेषु प्रयोगमवचारयेत् ॥ १९ ॥

— इति शूलचिकित्सितम् —

अथ गुल्मचिकित्सा ।

१ गुडेन साधु संनीय गजाशनदलत्रयम् ॥
वातगुल्मगदग्रस्तो ग्रसेत सुखसिद्धये ॥ १ ॥

मकुष्ठ के परिपक्व जीर्ण पत्तों के कषाय को एक मिट्टी के घट में भरदें। घट में नली लगाकर, उसमें से बाहर निकलती हुई, कषाय की बाष्प से पार्श्व का स्वेदन करें। स्वेदन करते समय पार्श्व भाग को वस्त्र से आच्छादित रखें। इस तरह धीरे धीरे वाष्प स्वेदन लेने से पार्श्व शूल शमित हो जाता है ॥ १६ ॥ पार्श्व में जहां शूल उठता हो वहां, आकडे के दूध का लेप करके अंगीठी के अंगारों से सेक करें। इस तरह करने से क्या रुग्ण शूल का अनधिकारी नही होगा? ॥ १७ ॥ तीन अथवा साढे तीन माषा भर मात्रा में स्वच्छ (शुद्ध) पारद का पान करने से तथा प्रयोग काल में तैल अम्लादि द्रव्यों से परहेज रखने से पार्श्वशूल निवृत्त हो जाता है। यह महाप्रयोग आशु असर दर्शाता है। अनेकों उपचार भी जब असफल हो जायें, वैद्य गण भी चिकित्सा करते करते जब कुंठित हो जायें तथा रुग्णपत्नियां जब रुदन करने लगें, तब ही उपरोक्त प्रयोग अजमाना चाहिये ॥ १८—१९ ॥

— शूलचिकित्सा समाप्त —

— गुल्मचिकित्सा (कुल प्रयोग ३) —

वातज गुल्म से ग्रस्त रुग्ण को, रोगमुक्तिरूपी सुखसिद्धि के लिये, पिप्पल वृक्ष के तीन कोमल पत्तों को गुड में अच्छी तरह लपेट कर चबाना चाहिये ॥१॥ रात्रि-पर्यंत,

---

१—पार्श्वशूलस्थानम् । २—अर्कक्षीरलेपितम् । ३—महाप्रयोगोऽयम् । ४—पूर्वोक्तयोगस्य दानावस्थावर्णनम् । ५—वातरुजासामान्याच्छूलानन्तरं गुल्मोऽभिधीयते । ६—गजाशनः पिप्पलः, तस्य पत्रत्रयमित्याकृत्या ग्रहणम् ।

२ एकमर्स्तु विषमुष्टिकं निशि न्यस्य तां दिनमुखे पिबन्नेप ।
वातगुल्मजठरार्त्तिजर्जरस्तत्प्रभाववशतः सुखी भवेत् ॥ २ ॥
३ हनूमन्तं प्रतिष्ठाप्य तीरे गुग्गुलुधूपितम् ।
नाभिदघ्ने नदीनीरे वहत्यभिमुखं स्थितः ॥ ३ ॥
शतकृत्वो जपेन्मन्त्रं सप्ताहं श्रद्धया शुचिः ।
विधानान्ते फलं भित्त्वा वटुभ्यो वितरेन्मुदा ॥ ४ ॥
भौमं वा मन्दमालम्ब्य जपप्रारम्भ इष्यते ।
गुल्मं प्रगृह्य मनुना छुरीहस्तो लिखेद्भुवम् ॥ ५ ॥

मनुर्यथा—'काकडकील किलाचटो पत्थर केरो जीरो सीता माता काढण बैठी हरे पेटकी पीरो, आकाशकी लोढी पाताळ की शिला बाँटे अर्जुन खाय भीम पेटकी पीडा विलय होजाय, शब्द साचा पिण्ड काचा फुरो मन्त्रो ईश्वरो वाचा' इति ॥

— इति गुल्मचिकित्सितम् —

अथ मूत्रकृच्छ्रचिकित्सितम् ।

भिषजामस्तु स्वस्तये वस्तिपुटच्छिदुराणि ।
दधदुच्चैः कृच्छ्रामय कर्तर्यसिभिदुराणि ॥ १ ॥

एक कुचले को, एक सकोरे भर जल में भिगोदें । वातज गुल्म तथा उदरशूल से जर्जरित, उष काल मे इस जल का पान करता हुआ इसके प्रभाव से स्वस्थ रहता है ॥ २ ॥

नदी के किनारे, गुग्गुल की धूप देकर, हनुमान की प्रतिष्ठा करके तथा नाभि पर्यंत जल में प्रवाहाभिमुख खडा होकर निम्नलिखित मन्त्र का सश्रद्धा एक सप्ताह तक जप करें । अनुष्ठान के अंतिम दिवस प्रसन्नता पूर्वक नारियल वधेर कर बालकों को वितरण करना चाहिये । जपारंभ मंगल या शनिवार से करना चाहिये । जिस स्थान में वेदना उठती हो उस स्थान को पकडकर हाथ में छुरी लेकर उससे भूमिपर निम्न मन्त्र को लिखना चाहिये (तथा इसी मन्त्र का जप करना चाहिये) मन्त्र 'मनुर्यथा ' से 'वाचा' पर्यंत जैसे मूल में दिया गया है वैसा ही लिखलेना चाहिये ॥ ३–५ ॥

— गुल्मचिकित्सा समाप्त —

— मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा (कुल प्रयोग–८) —

बस्तिपुट को काटने, छेदने और भेदने वाले कर्तरि, कृपाण तथा वज्र से सुसज्जित मूत्रकृच्छ्र, वैद्यों का कल्याण करे ॥ १ ॥

१–एकर्स्कमितास्विति प्रमाणम् । कर्कश्च लोके 'करवा' इति प्रसिद्धं स्वल्पमृत्पात्रविशेषः । २–द्वितीयाया बहुवचनम् । ३–अधुना गुल्मशान्तौ प्रसिद्धफलं साधनपुरःसरो लौकिको मन्त्रः प्रदर्श्यते । ४–नाभिमज्जनपरिमाणं इत्यर्थः । ५–प्रवाहाभिमुखम् ।

१ उत्पाट्य मूलकं नक्तमुटजोपरि विन्यसेत् ।
प्रातः पिबेद्रसं कृच्छ्री सयवक्षारसोरकम् ॥ २ ॥
२ मासं मूलकपत्रवारिशटितं तेनैव पिष्ट्वा चिरं
चक्रीकृत्य पिधाय तत्किसलयैः संमुद्र्य खं शोषयेत् ।
तत् पश्चान्नवधा हतं लघुपुटैः पादोनसोरच्छटं
दत्तं शीतलवेल्लजैर्विजयते कृच्छ्रप्रमेहापदः ॥ ३ ॥
३ प्रत्येककुडवोन्मानौ नवसागरगन्धकौ ।
सोरकः प्रसृतः किं च यावशूकस्य षोडशी ॥ ४ ॥
शालमर्कटजक्षारो गद्याणद्वितयोन्मितः ।
द्वित्रिमाषः शशी सर्वं डमरुस्थितमुन्नयेत् ॥ ५ ॥

एक मूली को उखाड कर छानपर डाल दें और उसे रातभर वहां रहने दें। प्रातःकाल, इस मूली का रस निकाल उसमें यवक्षार तथा कलमीसोरा मिलाकर मूत्र-कृच्छ्र से पीड़ित को तीन दिवस पर्यंत सेवन करायें ॥ २ ॥

मूली के पत्र स्वरस में अभ्रक को अच्छी तरह मिलाकर एक मासपर्यंत रहने दें। जब, अभ्रक रस में धुलकर एक हो जाये, तब इस रस को खूब खरल करके घट्ट बनालें। अब, इसकी टिकियां बांधकर, मूली के ही कोमल पत्तों में अच्छी तरह लपेट कर सुखालें। फिर शरावसंपुटित करके इसे नौ बार लघु पुट दें। अभ्रक से एक भाग न्यून कलमी सोरा भी इस भस्म में मिला देवें। शीतल मिर्च के चूर्ण के साथ इस भस्म को लेने से, मूत्रकृच्छ्र तथा प्रमेह की आपद नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

नवसादर और गंधक प्रत्येक सोलह तोला, कलमी सोरा आठ तोला, यवक्षार चार तोला, मूलीका क्षार एक तोला तथा कपूर दो तीन माषा, इन सब को डमरू-यंत्र में रखकर उडालें। छ घंटे अग्नि देने से, प्रायः सभी द्रव्य उपरि घट-तल में संलग्न हो जायेंगे। इस तरह, उपरि घट-तल-लग्न स्वर्णाभ सार को सावधानी पूर्वक एकत्रित करके काच कूपी में भरलें। इस सार को, मिट्टी के कोरे शराव में रखकर गुलाब जल में घोल लें। फिर, इससे फौहे को सिक्त करके मूत्रकृच्छ्र से पीडित के नाभिप्रदेश पर रखदें। इससे मूत्रकृच्छ्र निवृत्त हो जाता है ॥ ४–६ ॥

६–नारिकेरफलम् । ७–मन्त्रेण । ८–मन्त्रशक्तिसंधुक्षणार्थं सदा प्रत्युपरागं यथोक्तजपविधिरनुष्ठातव्य इति । ९–गुल्मोऽपि बस्तौ संभवति "तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः" इत्युक्तत्वाद्बस्तिदुष्टिसाधर्म्यादतोऽनन्तरं बस्तिरोगारम्भः । १०–"कुलिशं भिदुरं पविः" इत्यभिधानम् ।

१–कालनैरन्तर्ये द्वितीयाऽत्र । २–शरावादौ । ३–अभ्रकम् । ४–अभ्रकापेक्षया पादोनो यः सौरस्तस्य च्छटा यस्मिंस्तथाभूतम् । ५–लोके 'कबावचीनी', 'शीतलमरिच' इति वा प्रसिद्धेः । ६–पलम् । ७–मूलकजन्यक्षारः । ८–कर्पूरः । ९–द्वियामं वह्निनेति शेषः ।

ऊर्ध्वेग पिञ्जर सार काचकूप्या निधापयेत् ।
नाभिस्थेनास्य पिचुना मूत्रकृच्छ्र निवार्यते ॥ ६ ॥
४ सौरे प्रकुञ्चे द्रवति प्रणीय माप वलिं ढालय खल्वकुक्षौ ।
सिद्धो रस शीतलपर्पटीति कृच्छ्रेऽपि कृच्छ्रे कथितः सजीर ॥ ७ ॥
५ सौरादजाज्याश्रुटितोऽपि मापौ वटाङ्कुरेभ्यश्च नवैव मापा ।
एकैव पिष्ट्वा गुटिका विधेया कृच्छ्रेषु धारोष्णपयोभिरद्यात् ॥ ८ ॥
६ निम्बशरीः संक्षुण्णा मृत्पात्रे सायमम्सु विनिमग्ना ।
प्रातस्ताः पुनरपि पीता पित्तोग्रकृच्छ्रमपहन्यु ॥ ९ ॥
७ प्रणीतः प्रलढव्यूके क्वाथो माक्षिकसाक्षिक ।
मूत्रकृच्छ्र सदाहार्तिं हन्ति ताम्बूलशीलिन ॥ १० ॥
८ महिषीश्रुतिनिष्कासितकिट्टैः कीलाललोलितै पूतै ।
नाभिं प्रलिम्प कृच्छ्रे नाभिरिहं पराभिरुक्तिभिस्तोप ॥ ११ ॥

– इति मूत्रकृच्छ्रचिकित्सितम् –

करीन चार तोले कलमी सोरे को अग्नि से पिघलाकर, उसमे एक मापा गधक मिला खरल मे ढालदें । इस तरह सिद्ध किये गये रस को 'शीतल-पर्पटी' कहते हैं । कृच्छ्रातिकृच्छ्र मूत्रकृच्छ्र में भी जीरे के साथ लेने से उत्तम लाभ देता है ॥ ७ ॥ कलमी सोरा, जीरा और इलायची प्रत्येक दो दो मापा तथा वट के अकुर केवल नौ मापा इन सबको एकत्र पीसकर एक वटी बनालें । धारोष्ण दूध के साथ इसको लेने से पित्त तथा वातप्रधान मूत्रकृच्छ्र प्रशमित हो जाते है ॥ ८ ॥ इक्कीस नग निंबोली को कूटकर साय-काल एक जल पूर्ण मृत्पात्र में भिगोकर रखदें । दूसरे दिन, प्रात काल इन्हें जल-सहित पी जाने से पित्त-प्रधान उग्र-मूत्रकृच्छ्र शमित होता है (इसकी प्रयोग मर्यादा तीन दिनस तक ही है) ॥ ९ ॥ एक ताम्र पात्र मे ताम्र के पुराणे सिक्को का, क्वाथ-विधि से उकाल कर, क्वाथ सिद्ध करले । फिर इसमें थोडा शहद मिलाकर पीयें । इससे दाह एव वेदना-पूर्ण पित्तज मूत्रकृच्छ्र शान्त हो जाता है। इसके प्रयोगकाल में ताबूल-चर्वण पथ्य है ॥ १० ॥ भैंस के कर्णमल को जलसे घोलकर वस्त्रपूत करले । मूत्रकृच्छ्र रोग में, यदि अन्य प्रयोगो से लाभ न हुआ हो तो, नाभीपर इसका प्रलेप करने से अवश्य सतोप होगा ॥ ११ ॥ – मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा समास –



१–मार्तिके नव्यशरावे तरुणीपुष्पार्त्तेण सारमालोड्य पिचु कार्य । २–पलप्रमिते । ३–अग्नियोगादुत्पद्यमानक्लेदे । ४–प्रत्येक मापकद्वयम् । ५–पित्तकृच्छ्रेषु, बहुलमत्रादिपर तेनोष्णवातेऽपि देया, त्रिदिन च सेवनमर्यादा । ६–एकविंशतिसख्या । ७–पुराणतर-ताम्रिकै पणै, क्वाथश्चापि ताम्रपात्र एव कार्य । ८–महिषीकर्णमलै । ९–जलघोलितै । १०–आभि पराभिरुक्तिभिर्न तोप इति योजना ।

अथ मूत्राघातचिकित्सितम् ।

१ मूत्रं क्वाथोऽश्वगन्धाया द्राक् प्रवर्तयतेतराम् ।
सेतुभङ्गस्तटाकस्य प्रवाहं पयसामिव ॥ १ ॥
२ तन्वीं वेतसनाडीं[2] प्रदीप्तवदनां विधाय तद्धूमम् ।
मूत्राघातस्तूर्णं शाम्यति नृणां शनैः शनैः पिबताम् ॥ २ ॥
३ अजापुरीषतन्मूत्रक्लिन्नमृत् सौरसंस्कृता ।
नाभ्यधः सान्द्रसंनद्धा[3] मूत्रबन्धं भिनत्ति हि ॥ ३ ॥
४ विण्मूत्राभ्यां छगलसुहृशां यत्स्थलं वाढविस्रं
तज्जा धूलिः सुरभिसलिलैः[4] सम्यगावर्तयस्व ।
मूत्राघाते प्रतुदति तया वाष्पमुष्णं वमन्त्या
वारंवारं विरचय सखे ! नाभ्यधः साधु लेपम् ॥ ४ ॥
५ आवर्त्यमानगोमूत्रे खण्डमाप्लाव्य काम्बलम् ।
मनागापीड्य तत्स्वेदान्[5]मूत्राघातः प्रणश्यति ॥ ५ ॥
६ तमाखुकुसुमस्वेदो मूत्रं रुद्धं प्रवर्तयेत् ।
७ नवसादरजं खण्डं नाभ्यधो भ्रामणादिव ॥ ६ ॥

— मूत्राघात चिकित्सा (कुल प्रयोग ९) —

अश्वगंधा के क्वाथ को पीने से, बांध के टूट जाने पर तालाव के जल-प्रवाह की तरह, मूत्र की शीघ्र प्रवृत्ति होती है। (जयपुर के समीप नागोरदेश में होने वाली अश्वगंधा से यहां अभिप्राय है) ॥ १ ॥ वेत की पतली आठ अंगुल लंबी नली के मुख को जलाकर उसके धूम को (बीडी अथवा सिगरेट की तरह) धीरे धीरे पीने से मूत्राघात शीघ्र प्रशमित हो जाता है ॥ २ ॥ बकरी की पावभर मींगणी (पुरीष) को, बकरी के ही मूत्र से भिगो उसमें करीब दो तोला कलमीसोरा मिलाकर अग्निसे कवोष्ण करके नाभी के नीचे प्रलेप करदें। इस लेप को भी, अजा के कवोष्ण मूत्र से निरंतर सिक्त करते रहें। यह प्रयोग मूत्र-बंध को तोड देता है ॥ ३ ॥ बकरियों के निरंतर मलमूत्र त्याग से जहां की भूमि परम दुर्गंधमय हो गयी हो, उस स्थल की धूलिको गोमूत्र से अच्छी तरह मसल लें। अब, हे मित्र ! मूत्राघात से पीडित की नाभी के नीचे, गरमागरम इस मिट्टी का अच्छी तरह पुनः पुनः लेप करते रहो ॥ ४ ॥ खौलते हुये गोमूत्र में कंबल के टुकडे को भिगोकर फिर, थोडा निचोडकर, सबाष्प उस कंबल वस्त्रद्वारा नाभी के नीचे स्वेदन करने से मूत्राघात शीघ्र निवृत्त हो जाता है ॥ ५ ॥

तमाखुपुष्प के स्वेदन से रुका हुआ मूत्र प्रवृत्त होता है। इसी तरह, नवसादर के

१–नागोरदेशोद्भवायाः । २–अष्टाङ्गुलदीर्घामिति शेषः । ३–कोष्णा । तत्राजामूत्रमपि देयम् । कुडवपुरीषे तोलकद्वयं सौरकम् । ४–गोमूत्रैः । ५–तेन सवाष्पेण कम्बलखण्डेन नाभ्यधः शनैः शनैः कृतात् स्वेदात् ।

८ पुंसामुपस्थविवरे प्रवेशितं पित्तकारिणीबीजम् ।
वातेन संनिरुद्धं मूत्रं प्रायः प्रवर्तयति ॥ ७ ॥
९ मूत्रनिरोधे नेत्रप्रणयनमधिपायु कुत्रचिद्दृष्टम् ।
किं तु कथंचन रुग्णं प्रतार्य कुर्वीत तद्रभसात् ॥ ८ ॥

— इति मूत्राघातचिकित्सितम् —

अथाश्मरीचिकित्सितम् ।

१ शरमूलपांसुजे पृथगक्षे सायं जले निधाय परम् ।
उषसि विमर्द्य पिबेद्विधुदृग्दिवसानश्मरीरुग्णः ॥ १ ॥

— इत्यश्मरीचिकित्सितम् —

अथ प्रमेहचिकित्सितम् ।

उद्यतदक्षिणपाणिः पापः पार्श्वेक्षणो महाघोरः ।
धातुस्नेहस्रावी मेहश्चूर्णयतु वैरिणं पद्भ्याम् ॥ १ ॥

टुकडे को नाभी के नीचे फेरने से मूत्रप्रवृत्ति होती है ॥ ६ ॥ पुरुष के लिंग छिद्र में (अर्थात् स्त्रियों के योनि छिद्र में यह प्रयोग सर्वथा निषिद्ध है।) लाल मिर्च के बीज को प्रविष्ट करने से भी वात-द्वारा रुद्ध मूत्र की प्रायः प्रवृत्ति हो जाती है ॥ ७ ॥ मूत्रनिरोध में, कभी कभी गुदा में नली अथवा अंगुलि आदि, रुग्ण का ध्यान चुकाकर, सहसा घुसा देनेसे भी, कहीं कहीं मूत्र की प्रवृत्ति देखने में आयी है ॥ ८ ॥

— मूत्राघात चिकित्सा समाप्त —

— अश्मरी चिकित्सा (प्रयोग १) —

शरपुंखा के मूल तथा पांशुज क्षार दोनों एक एक तोला लेकर, करीब आठ तोला जल में सायंकाल को भिगोदें। दूसरे दिन उषःकाल में इनको मसल कर पीजायें। अश्मरीरुग्ण को यह प्रयोग इक्कीस दिवस पर्यंत करना चाहिये ॥ १ ॥

— अश्मरी चिकित्सा समाप्त —

— प्रमेह चिकित्सा (कुल प्रयोग १९) —

दक्षिण हाथ को ऊंचे उठाये हुये, पार्श्व-गत नेत्र वाला, धातु और स्नेह का क्षय कर देनेवाला, महाघोर पापरूप प्रमेह, वैद्य के शत्रु को अपने पैरों से कुचल दे ॥ १ ॥

१—स्त्रीणां न कर्तव्यमिति तात्पर्यम् । २—नेत्रमित्युपलक्षणं, तेनाङ्गुल्यादीनामपि प्रणयनमाक्षिप्यते । ३—पांसुज 'खारी' इति लोके प्रसिद्धो लवणविशेषः । ४—पलद्वय-

१ पलान्यष्टौ पृथग्दोषायवानीपुष्पजीरतः ।
चिञ्चाश्वत्थत्वचोः प्रस्थौ द्वौ द्वौ शिखरितस्तथा ॥ २ ॥
पृथग्विचूर्णितैरेभिः पर्यायेणावचारितैः ।
कटाहेऽधोज्वलद्वह्नौ वङ्गप्रस्थं प्रघर्षयेत् ॥ ३ ॥
यत्तस्य जायते भस्म तत्पटेन पवित्रयेत् ।
कन्याद्भिश्चक्रिकाः कृत्वा पुटेद्गजपुटेन च ॥ ४ ॥
स्वाङ्गशीतं समादाय षोडशीसद्दृशां पृथक् ।
यवानीजीरकुसुमक्षणदानां शृतैः पुटेत् ॥ ५ ॥
इत्येवं साधितं वङ्गं चन्द्रज्योत्स्नासमुज्ज्वलम् ।
उच्चकैरापदां गेहं मेहं हन्त न हन्ति किम् ॥ ६ ॥

हरिद्रा, अजवायन, लविंग तथा जीरा प्रत्येक बत्तीस तोला, इमली और पिप्पल-वृक्ष की छाल प्रत्येक १२८ तोला तथा अपामार्ग पंचांग १२८ तोला इनका पृथक् पृथक् सूक्ष्म चूर्ण बनालें। चौसठ तोला शुद्ध वंग को एक लोहकटाह में डालकर, उसके नीचे तीव्र-अग्नि प्रज्वलित करें। जब वंग पिघल जाये तब उपरोक्त हरिद्राचूर्ण को उस पर प्रक्षिप्त करके लोह कडछी से चूर्ण सहित द्रवित-वंग को हिलाते रहें। जब चूर्ण जल जाये तब दूसरे द्रव्य के चूर्ण को पूर्ववत् प्रक्षिप्त करके उसी तरह, वह संपूर्ण जल जाये तब तक, हिलाते रहें। इस तरह क्रमशः उपरोक्त सभी द्रव्यों के चूर्णों से वंग को भावित करें। इससे वंग की उत्तम भस्म तैयार होगी। इस भस्म को वस्त्रपूत करके ग्वारपाठे के गूदे में अच्छी तरह खरल करके उसकी टिकियां बांधलें। इन टिकियों को संपुटित करके गजपुट की आंच में फूंकदें। स्वांगशीतल होने पर इन्हें निकाल लेवें। अब अजवायन, जीरा, लविंग तथा हरिद्रा प्रत्येक चार चार तोलाभर लेकर इन प्रत्येक के पृथक् पृथक् क्वाथ से उपरोक्त टिकियों-की भस्म को खरल करके यथाक्रम एक एक पुट और दें। इस तरह वंग की चंद्रज्योत्स्ना के समान उज्ज्वल एवं स्निग्ध भस्म बन जायेगी। इस तरह से सिद्धवंग भस्म को चार रत्ती मात्रा में, मधु, गुड अथवा पान के साथ सेवन करें। अहो, विपदाओं के एक मात्रा निवास स्थल प्रमेह को क्या यह नष्ट नहीं कर देती ? ॥ २–६ ॥

मितः । ५–एकविंशतिदिवसान् । पथ्यं चात्र मुद्गयूषो योग्यघृताभ्यक्ता रोटिका चेत्येक एव योगोऽनुभूततया प्रसिद्धिं नीतोऽश्मरीचिकित्सिते । ६–क्रमप्राप्तत्वाद्बस्तिदुष्टिसाम्याच्च प्रमेहः । तत्र प्रथमश्लोकेन तद्वर्णनम् ।

१–अधुना मेहेषु दृष्टफलो वङ्गभस्मप्रकारो वर्ण्यते । २–दोषा हरिद्रा, पुष्पं लवङ्गम् । ३–द्वौ प्रस्थावित्यर्थः । ४–वङ्गं च शुद्धं ग्राह्यम् । शुद्धिः पुनरस्य "तैले तक्रे गवां मूत्रे कुलत्थत्रिफलाशृते । काञ्जिके मिषिजे क्वाथे रविदुग्धे त्रिधा त्रिधा । निर्वापयेद् द्रुतं वङ्गं प्राणाचार्यः प्रयत्नतः।" इति प्रतिपादितप्रकारा प्रसिद्धैव । ५–लोहदर्व्येति शेषः । ६–पलिकानां यवान्यादिचतुर्णाम् । ७–मधुगुडनागवल्लीप्रभृतिमिश्रचतूरक्तिप्रमाणं भक्षणीयम् ।

रजोविमुक्तं रविमूलवल्कं छुर्या तनूकृत्य नियम्य वस्त्रे ।
निष्पीड्य गृहीत पयः पवित्र दटीत तद्भेषजभावनासु ॥ ७ ॥

२ द्रवीभूते वङ्गे कुडवतुलिते पारदपलं
विनिक्षिप्य स्फीता दृषदि करणीया हि कणिकाः ।
ततः प्रस्थद्वन्द्वोन्मितनरशटीक्षोदनिहिता
पुटेद्युक्त्या वासःशिखिभिरिति वङ्गेश्वररसः ॥ ८ ॥

३ सूतेन्द्रवङ्गबलिसादरकज्जलीभि कूपीं प्रपूर्य विधिवत् पच कोकिलाग्नौ
सिद्ध सुवर्णरुचिरेष लघुर्मृगाङ्को मेहान्निहत्य महतीं विदधाति पुष्टिम् ९

४ नवनीतीकृत्य घने रङ्गं संताड्य सताड्य ।
सितया विमर्द्य मसृणं मधुना लीढं प्रमेहहरम् ॥ १० ॥

प्रस्तुत श्लोक मे, प्रसगवशात्, आकडे मे से, सरलतया अधिकाधिक मात्रा में, दूध निकालने की विधि प्रदर्शित्त की गयी है । आकडे के मूल की छाल को पहिले अच्छी तरह जल से धोकर उस पर लगी हुई मिट्टी आदि को निकाल दे । फिर इस छाल के चाकू से सूक्ष्म टुकडे करके, उनको एक स्वच्छ वस्त्र में बाधकर सावधानी पूर्वक निचोडकर दूध निकाल लेवें । औषधियों मे भावना आदि के लिये इस विधि से निकाले गये अर्क-दूध को उपयोग में लें ॥ ७ ॥

सोलह तोला शुद्ध वग को अग्नि से पिघला कर उसमें चार तोला शुद्ध पारद मिला, एक खरल मे डाल देवें । फिर, घोटकर उसकी स्वच्छ सूक्ष्म कणिकायें बनालें । तत्पश्चात्, इनको, करीब १२८ तोला नरकचूर के कल्क मे रखकर, उसे करीब १२८ तोला वस्त्र खडो से परिवेष्टित करके, इन्हीं वस्त्रखडों की आच से युक्तिपूर्वक पुट देवें । इस तरह निर्मित वगभस्म को 'वगेश्वर-रस' कहते हैं ॥ ८ ॥

पारद, वग, गधक और नवसादर प्रत्येक २½ तोला लेकर उनकी एकत्र कज्जली बनाले । इसे, फिर, काच की शीशी मे भरकर कपडमिट्टी करदे । फिर, यथाविधि, उसे सोलह सेर कोयले की आच देवें । इस तरह सिद्ध की गई स्वर्णाभ भस्म को 'लघु-मृगाङ्क' कहते हैं । यह प्रमेह को नष्ट करके अत्यत पुष्टि-अर्पण करती है ॥९॥

लोह-घण के अनवरत प्रहारो से वग को मक्खन जैसा मुलायम बनालें । इसके चूर्ण को मिश्री मे अच्छी तरह मिलाकर शहद के साथ चाटने से प्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥ निंबुरस द्वारा समर्दित हरताल से चादी के सूक्ष्म पतरों को लपेटकर, तीव्र निर्धूम अग्निपर तपावें । हरताल में से जब धूम निकलना बद होजाये, तब पुन

१–प्रसङ्गादर्कक्षीरलाभोपायप्रदर्शनम् । अनेनैव विधिना प्रचुरक्षीरप्राप्तिर्भविष्यति । २–'नरकचूर' इति ख्याता हरिद्राभा भवत्योषधि । ३–वस्त्राग्निभि , वस्त्राणि च द्विप्रस्थमितानि वेष्टनीयानि । ४–गुणकथन प्रसिद्धत्वादुपेक्षितम् । ५–पारदादीनां प्रत्येक सार्धद्वितोलमानम् । ६–मृद्वस्त्रादिप्रलिप्ताम् । ७–कोकिलानामाढको ग्राह्य । ८–'घण' इति प्रसिद्धेन लोहकाराणां यन्त्रविशेषेण । ९–वङ्ग च शुद्ध ग्राह्यम् ।

५ तालेन[1] लिप्त्वा खलु सप्तकृत्वः प्रतापितानां[2] रजतच्छदानाम् ।
स्यात् कारवेल्लस्वरसप्लुतानां[3] विभूतिरच्छा त्रिचतुःपुटौघैः[4] ॥ ११ ॥
६ मृत्स्नाशरावपुटसंकलितं प्रवालमूलं[5] वनोपलगणैर्विदहेत् प्रकृष्टम् ।
वल्लोन्मितं रसमितं भजतां नराणां प्रावालिकं प्रबलमेहनिषेधनिष्ठम् १२
७ बीजबन्धे[6]क्षुरक्लीत[7]वांशीसिह्लकसालिमम् ।
शुक्तिविद्रुमयोर्भूती मज्जानावक्षपथ्ययोः[8] ॥ १३ ॥
शिलाजतु[9] त्रुटिर्वङ्गः सर्वं संचूर्ण्य माक्षिकैः ।
वटीर्बधान सुखदा बहुमूत्रप्रमेहिणाम् ॥ १४ ॥
८ कलय नयननिष्कं दुग्धपाषाणखण्डं[10]
कुडवसदृशि पिण्डे निम्बसंवर्तिकानाम्[11] ।
करिपुटपरिपाट्या पाच्य तस्माद्द्विवल्लं
स्रवति चरमधातौ[12] छुच्छिकाभिः[13] प्रदेहि ॥ १५ ॥

हरताल का लेप करके इन पतरों को इसी तरह तपावें। इस तरह सातवार तपाकर, इनको, वन्य करेले के रस से (अथवा, निंबू-स्वरस से) खरल करके गजपुट देवें। इस तरह तीन चार पुट देने से चांदी की स्वच्छ भस्म बन जायेगी। यह भस्म प्रमेह आदि विकारों में आशु असर दिखाती है ॥ ११ ॥ प्रवाल-मूल के चूर्ण को, अर्क-दूध से, अथवा घी-कुंवार के रस से, अथवा गाय या बकरी के दूध से खरल करलें। फिर, शराव-संपुटित करके बन गोबरी का गजपुट देकर उसकी भस्म बनालें। इस 'प्रावालिक-रस' का एक वालभर मात्रा में सेवन करने से, प्रबल प्रमेह निष्ठा-शून्य बन जाता है ॥१२॥ बीजबन्ध, तालीमखाना के मूल, जेठीमध, वंशलोचन, लोबान, सालिम, शुक्ति-भस्म, प्रवाल भस्म, बहेडा तथा हरडे की मींगी, शुद्ध-शिलाजित, इलायची, वंगभस्म इन सभी द्रव्यों को खरल में एकत्र खूब घोटकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें। इस चूर्ण की, मधुयोग से गोलियां बांधलें। यह 'सुखदा' वटी बहुमूत्र और प्रमेह मिटाती है ॥ १३–१४ ॥

सोलह तोलाभर निंब की नूतन कोंपलों को पीसकर पिण्ड बनालें। फिर, इसमें करीब दो तोला घीयाभाटा के टुकडे को रखकर, शराव संपुटित करके, गजपुट

१–नीम्बुरसपिष्टेन हरितालेन। २–निर्धूमाङ्गारोपरि स्थापयित्वा तालधूमक्षयावधि प्रतापितानाम्। ३–वन्यकारवेल्लस्य 'वाडकरेला' इति प्रसिद्धस्य रसेन, तथा निम्बुरसेनापि, इति द्वयोर्विकल्पः। ४–प्रशस्तपुटैर्गजपुटैरित्यर्थः। गुणाश्च प्रसिद्धत्वेन नाभिहिताः। ५–प्रवालमूलं गव्याजार्कक्षीरकुमारिकामांसान्यतमसहितम्। ६–'बीजबन्ध' नाम्ना लोकप्रसिद्धानि बीजानि। ७–क्लीतशब्देन यष्टीसत्त्वम्। सिह्लकशब्देन च 'वेरजा' इति प्रसिद्धनिर्यासविशेषस्य सत्त्वं गृह्यते। ८–द्विवचनान्तम्। ९–शिलाजतु च शुद्धं ग्राह्यम्। १०–घृताश्मखण्डम्। घृताश्मा च 'घाईभाटा' इति ख्यातः। ११–निम्बनवदलानामिति। "संवर्तिका नवदलम्" इति कोशात्। १२–शुक्रे। १३–तक्रैः।

९ पूगप्रसूनचूर्णस्य गद्याणं सार्धशर्करम् ।
सद्यस्कपयसा पेयमुशन क्षरणादिषु ॥ १६ ॥
१० बलावमौंचटावीजमापे सौमिसितं रजः ।
दुग्धानुपानतः सायं रेतो गृह्णाति विप्लुतम् ॥ १७ ॥
११ कृष्णगुन्द्राश्ममेदाब्धिशोपदारुसितारज ।
शुक्रदोषं निहन्त्येव दुग्धैरर्धसितोपलम् ॥ १८ ॥
१२ गुन्द्रत्वक्फलपुष्पाणि कंकिरातानि चूर्णयेत् ।
लसीकया सखण्डानि रेतस क्षरणे पिवेत् ॥ १९ ॥
१३ कलाशैभृङ्गं द्विसितं सुजातवम्बूलशिम्ब्या शुचिकान्ति चूर्णम् ।
सद्यस्कदुग्धेन सह प्रभाते निगीर्णमुन्मूलयति प्रमेहम् ॥ २० ॥
१४ चत्वार॰ शर्करायाः द्वौ त्रुटे स्फट्याश्च तोलकः ।
तिस्र पुट्य पर शस्ता मेहे दाहसरे सरे ! ॥ २१ ॥

की अग्नि में फूकदे । इसमें से दो वाल मात्रा को छाछ के साथ लेवे । यह शुक्र-स्राव को मिटाता है ॥ १५ ॥ शुक्र-स्राव में, सुपारी के पुष्पचूर्ण को, छह मापा मात्रा में, धारोष्ण-दूध के साथ पीने से उत्तम लाभ होता है ॥ १६ ॥ खरेंटी के बीज, कपिकच्छु, और उटींगण के बीज (अथवा श्वेत गुंजाफल) प्रत्येक एक एक मापा तथा इन सभी द्रव्यों से अर्धमात्रा में रजतभस्म, इन सबको एकत्र मिलाकर दुग्धानुपान पूर्वक सायकाल के समय सेवन करने से शुक्र स्राव बंद हो जाता है ॥ १७ ॥ पलाश का निर्यास, पाषाणभेद, समुद्र-शोष, देवदारु और मिश्री इनके समभाग चूर्ण में, चूर्ण से अर्धमात्रा सितोपलादि मिलाकर, इसमें से एक मापाभर दुग्धानुपानपूर्वक लेने से, शुक्रदोष नष्ट हो जाता है ॥ १८ ॥ बबूल के गूंद, छाल, पुष्प, फल इनको पीसकर वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण बनालें । इस चूर्ण को, मिश्री मिश्रित लस्सी के साथ लेने से शुक्र स्रवण बंद हो जाता है ॥१९॥ पकी हुई बबूल की सेम का शुभ्र चूर्ण, रक्त चंदन और श्वेतचंदन का चूर्ण तथा इनके चूर्णों से सोलहवां भाग जितना सन का चूर्ण, इनको मिलाकर, धारोष्ण-दूध के साथ प्रातःकाल लेने से प्रमेह निर्मूल हो जाता है ॥ २० ॥

शर्करा चार तोला तथा इलायची और स्फटी प्रत्येक दो दो तोला इनको एकत्र मिलाकर समान मात्रा में तीन पुडी (Doses) बनालें । प्रतिदिन दूध के साथ एक

१–शुक्रक्षरणप्रमेहेषु । २–उमें कपिकच्छु । उचटा 'उटींगण' इति प्रसिद्धा, तस्या सरोमाणि बीजानि, यद्वा श्वेतगुञ्जाफलविदलानि, द्वयमपि यौगिकमत्र । ३–सर्वापेक्षयाऽर्धसितम् । ४–कृष्णगुन्द्र पलाशनिर्यास । ५–वम्बूलभवानि निर्यासवल्कलफलपुष्पाणि । ६–मिलित दुग्धजल लसीकाशब्देनाभिधीयते लोके । सौजाकेऽपि देयमिदम् । तैलाम्लादि च वर्ज्यम् । ७–मृङ्ग 'तज' इति ख्यातम् । ८–वचनविपरिणामेन चत्वार द्वाविल्याभ्या सामानाधिकरण्यम् । ९–मात्रा 'पुडी' इति अत्र 'पडीका' इति गूर्जरेऽभिधीयते ।

१५ खार्जूरीफलौषधकदक्षिणगोक्षुराणि[1]
प्रत्येकमक्षदशकानि सकोलकानि[2] ।
एभ्यः सिता द्विरिति सर्वमिदं विचूर्ण्य
खादेद्घृताक्तमुषसि क्रमशः प्रमेही ॥ २२ ॥

१६ सद्योभुवा गोपयसा प्रपीता विलोड्य शाखोटकदुग्धबिन्दवः[3] ।
हरन्ति मेहानपि दीर्घकालजान् गुरूपदेशा दृढसंशयानिव ॥ २३ ॥

१७ मार्कण्डी कुडवोन्माना द्वे जीरे द्वे च चन्दने ।
भद्रदारुर्मिषिर्दार्वी धान्यं चेत्याक्षिकं पृथक् ॥ २४ ॥
सूक्ष्ममेषां रजः प्रस्थे क्षौद्रे पाकाद्घने न्यसेत् ।
लेहोऽयं हन्ति मेहार्शःकासश्वासवमिभ्रमान् ॥ २५ ॥
शीर्षतापामवातघ्नो रुच्यो नेत्र्यो विबन्धभित् ।
किं चात्र तरुणी द्राक्षा कुङ्कुमाद्यपि निक्षिपेत् ॥ २६ ॥

१८ चूर्णस्य शाणं सुरनायिकायास्[4]तैलेन किंचित् करयुग्मकेन ।
चतुर्दशाहान्युषसि प्रपीतं मेहोष्णवातौ क्षणुते यतानाम् ॥ २७ ॥

पुडी लेने से, हे मित्र! दाहपूर्ण प्रमेह में परम लाभ देती है ॥ २१ ॥ खर्जूरीफल, गोदुग्ध में शुद्ध किये गये दक्षिणी गोखरू तथा सूंठ प्रत्येक साढे दश दश तोला लेकर वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण बनालें। इस चूर्ण में द्विगुणित मिश्री मिलादें। प्रमेहरोगी इस चूर्ण में घृत मिलाकर, उषःकाल में, नियमित सेवन करें। अर्ध तोला मात्रा में ४८ दिवस पर्यंत लेने से क्रमशः प्रमेह शान्त हो जाता है ॥ २२ ॥ सद्यःप्रसूता गाय के दूध में शाखोटक (सिहोरा, भूतावास) वृक्ष के दुग्ध बिन्दु डाल कर तथा मथकर पीने से, जीर्ण-प्रमेह भी, गुरु के उपदेश से दृढ-संशयों की तरह, दूर हो जाते हैं ॥ २३ ॥

सनाय के पत्ते सोलह तोला, श्वेत-श्याह दोनों जीरे, श्वेत-रक्त दोनों चंदन, देवदारु, सौंफ, दारुहरिद्रा तथा धनियाँ प्रत्येक एक एक तोला, इनका एकत्र वस्त्रपूत बारीक चूर्ण बनालें। अब, चौसठ तोले शहद को अग्नि से पकावें। शहद जब घट्ट हो जाय तब उपरोक्त चूर्ण उसमें डाल देवें। यह अवलेह, प्रमेह, अर्श, कास, श्वास, वमन, तथा भ्रांति को दूर कर देता है। यह शीर्षगत दाह एवं आमवात में हितावह, रुचिकर, नेत्रों को लाभदायी तथा विबन्ध-भेदक है। इस लेह में, तरुणी (गुलाब) पुष्प, द्राक्षा, केसर आदि मिलाने से, इसकी गुणसंपदा में विशेष अभिवृद्धि होती है ॥ २४-२६ ॥

आंबाहलदी के करीब तीन माषाभर चूर्ण को, करीब अठारह माषाभर तिल-

१—खर्जूरीफलशुण्ठीदक्षिणदेशोद्भवगोक्षुराणि । गोक्षुराणि च गोक्षीरशुद्धानि ग्राह्याणि । पथ्यमत्र लवणवर्जितमुद्गयूषगोधूमफुल्किके । २—कोलः कर्षार्धपर्यायः । ३—उक्तनाम्ना प्रसिद्ध-वृक्षस्य क्षीरबिन्दवः । ४—आम्रगन्धिहरिद्रायाः लोके 'आमीहलद' इति ख्यातायाः ।

१९ यथा बहुमूत्रत्वे तिला येषे किलाहताः ।
तथा न किंचिदपरं भेषज प्रतिभाति मे ॥ २८ ॥

– इति प्रमेहचिकित्सा । –

अथोदावर्तचिकित्सितम् ।

१ निरुद्धधूममुत्स्वेद्य फलानि मरुशोखिन ।
लवणक्षारजरणदीप्यत्र्यूषणहिङ्गुभिः ॥ १ ॥
मर्दिते दध्नि निक्षिप्य शोषयेदातपे चिरम् ।
सायं तानि निगीर्णानि प्रातः साधु विरेचयेत् ॥ २ ॥

तेल के साथ, चौदह दिवसपर्यंत नियमित, उप काल में, पीते रहने से, पथ्य में रहने वाले के, प्रमेह और सुजाक क्षीण हो जाते हैं ॥ २७ ॥ बहुल-मूत्रत्व की उत्तम औषधि रूप से, कृष्ण-तिलों का वैद्यसमाज में विशेष सम्मान है। इस विषय में मेरा यह अभिप्राय है कि वस्तुत इस रोग में इससे उत्तम अन्य औषधि है ही नहीं (कृष्ण-तिलों की प्रशसा में, कितनी उत्तम उक्ति है यह ! !) ॥ २८ ॥

– प्रमेह चिकित्सा समाप्त –

–उदावर्त चिकित्सा (कुल प्रयोग २१)–

करीर के फलों को कलईदार एक स्वच्छ भगोनी में डालकर, भगोनी के मुखपर बराबर आ जाये ऐसी एक थाली से उस भगोनी को ढकदें। थाली में थोडा पानी भरदें। फिर, अगीठी की मन्दाग्नि से उन्हें पकावें। भगोनी से वाष्प बाहर न निकले यह ध्यान में रखें। कुछ ही समय मे करीरफल स्विन्न हो जायेंगे। अब, इन स्विन्न फलों में, लवण, क्षार, जीरा, अजमोदा, त्रिकटु तथा घी में भूनी हुई हींग के सूक्ष्म चूर्ण को डाल, उनको चमचे से हिलाकर पूर्ववत् थाली ढककर कुछ समय तक पुन मदाग्नि से पकावें। फिर, इन सब द्रव्यों को दही के मठे में डालकर, कुछ दिनों तक सूर्यताप में रखकर सुखालें। सायकाल के समय इनका सेवन करें। प्रात सुखविरेचन होगा १–२

५–कर्षद्वयमितेन । यद्यप्यत्र कर्षद्वयोक्तिस्तथाऽपि गद्याणत्रितयोन्मितमेव तैल ग्राह्यमिति रहस्यम् । ६–प्रमेहसौजाकरोगी । ७–यतात्मना पथ्यशीलिनामिति यावत् । पथ्य च वज्र-कगोधूमान्यतरपोलिका लवणरहिता स्वल्पसैन्धवा वा, मुद्गाढकीसूप, भक्त, दुग्ध योग्य-शर्करं, यथारुचि पेयम् । किंतु द्विप्रस्थतो न्यून न पेयम् । शाकादिक घृतसिद्धमिति तैलाम्ल-मरिचादि तीक्ष्णमन्यत् सर्वमपथ्यम् ।

१–कृष्णवर्णा । २–उदावर्तशब्दश्चात्र वातविड्रोधमात्रवाची, तेनात्र सर्वे योगा सुखविरेचनकरा वातानुलोमनाश्च सगृह्यन्ते । ३–करीरस्य ।

२ कलाकन्देन पिहितामरुणां[2] द्वित्रिमाषकाम्।
नक्तं निगिरतां प्रातः कोष्ठशुद्धिः प्रजायते ॥ ३ ॥
३ कालाञ्जनीजनूंषि[3] भ्रष्टानि मनाग्घृतेन बीजानि।
पिष्ट्वा सितया गिल रे सुखेन किल रेचनं भविता ॥ ४ ॥
४ मूत्रार्द्रखर्वपथ्याचूर्णं[4] वातारितैलसंभृष्टम्।
पटुयवजहिङ्गुदीप्यकसखमनुलोमयति मूढपवमानम् ॥ ५ ॥
५ अजातबीजा कृतमालशिखी सखर्वपथ्या तलिता घृतान्तः।
प्रयुक्तपादांशपटुः कवोष्णैर्गीर्णा जलैर्हन्ति विबन्धशूलम् ॥ ६ ॥
६ सैन्धवसनामुक्किशिवाशुण्ठीशतपुष्पिकाकृतः क्षोदः।
नाम्ना पञ्चसकारः शकृति विबद्धे समुपयोज्यः ॥ ७ ॥
७ तरुणी द्विपटु द्विजरणयवजवराव्योषटङ्कणत्रुट्यः।
मार्कण्डी[5] सर्वसमा चूर्णमिदं हन्ति विष्टम्भम् ॥ ८ ॥

दो तीन माशा मंजिष्ठा के चूर्ण को कलाकन्द में मिलाकर रात्रि के समय खा लेने से, प्रातः कोष्ठशुद्धि हो जाती है ॥ ३ ॥ कालेदानों को घी में थोडा भूनकर, फिर, मिश्री मिला पीसकर फांक जायें। इससे निश्चय सुखविरेचन होता है ॥ ४ ॥ गोमूत्र में जवाहरडे के चूर्ण को, तीन दिवसपर्यंत भिगोकर रहने दें। प्रतिदिन गोमूत्र बदलते रहना चाहिये। चतुर्थ दिन इस चूर्ण को छायाशुष्क करके, एरंड तैल में भूनलें। फिर, इसमें काला नमक, यवक्षार, हींग तथा अजवायन का चूर्ण मिलाकर, इसकी फांकी लेने से मूढ-वात का अनुलोमन होता है ॥ ५ ॥

गुडूची, अमलतास की कच्ची सेम तथा जवाहरडे इनके चूर्ण को घी में तल लेवें। (उतने ही घी में तलें जितने से तलजाने पर फिर घी अवशिष्ट न रहे।) फिर, इस चूर्ण में, चूर्ण से चतुर्थ भाग कालानमक मिलादें। कवोष्ण जल के साथ इसकी फांकी लेने से विबन्ध तथा तज्जन्य शूल नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥ सैंधव, सनाय, शिवा (हरडे), सुंठी तथा सौंफ इनका एकत्र सूक्ष्म चूर्ण बनालें। इसको 'पंचसकार' चूर्ण कहते हैं। मल के विबन्ध में इसका उपयोग करें ॥ ७ ॥ गुलाबपुष्प की पंखुडियां, सैंधव, काला-नमक, श्वेत-कृष्ण जीरा, यवक्षार, हरडे, त्रिकटु, टंकण तथा इलायची, इनका एकत्र चूर्ण तथा इस चूर्ण के समान भाग जितना सनाय का चूर्ण इनको एकत्र मिलाकर यथामात्रा में लेने से विष्टम्भ नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

१–'बरफी' इति पर्यायान्तरं लोकेऽस्य। २–मञ्जिष्ठाम्। ३–'सिरचाई', 'कालादाना' इति ख्यातानि। ४–खर्वपथ्या 'जवाहरडे' इति प्रसिद्धाः, ता गोमूत्रोषिता एरण्डतैलसंतलिताः कृत्वा पट्वादीनि द्रव्याणि योग्यानि संमेल्य चूर्णयेदिति। ५–मार्कण्डी 'सनाय' इति प्रसिद्धा।

८ माषाः षट् त्रिपुटाद्विजीरधनिकामिष्युग्रगन्धात् पृथक्
प्रोक्तं सार्धपलं सुदाडिमशिवासिन्धूद्भवाख्यं तथा ।
कर्षं स्यादिह तिन्तिडीकममलं मार्कण्डिकायाः पलं
सार्धं चूर्णमिदं विबन्धहुतभुङ्मान्द्यारुचिध्वंसनम् ॥ ९ ॥

९ द्विजीरविश्वपुष्पैलातीक्ष्णदीप्याभयाच्छदम् ।
तिन्तिडीकं सधान्याकं पृथक्कोलचतुष्टयम् ॥ १० ॥
द्वितोलका दारुसिता षट्तोला त्रिवृता स्मृता ।
सौवर्चलात् सैन्धवाच्च मार्कण्ड्याः कुडवः पृथक् ॥ ११ ॥
पक्वदाडिमबीजानि तुलितानि शरावतः ।
द्रव्याण्येतानि मसृणं चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ १२ ॥
पक्वेन बीजपूरेण निम्बूकैः प्रस्थसंमितैः ।
चूर्णेनानेन शाम्यन्ति मान्द्योदावर्तसंभवाः ॥ १३ ॥

१० प्रस्थे निम्बूकपयसि कुडवं जगदौषधम् ।
सौवर्चलं च कुडवं रामठं पलिकं क्षिपेत् ॥ १४ ॥
तदौषधं रसे शुष्के भर्जितं भ्राष्ट्रपांसुभिः ।
उद्गारशोधनं रुच्यं मूढवातानुलोमनम् ॥ १५ ॥

छोटी इलायची (अथवा श्वेत निशोथ), श्वेत-कृष्ण जीरा, धनिया, सौंफ तथा कुलिंजन प्रत्येक छह माषा, परिपक्व दाडिम, हरडे तथा सैंधव प्रत्येक ४½ तोला, इमली एक तोला तथा सनाय ४½ तोला इन सभी द्रव्यों का एकत्र सूक्ष्म चूर्ण बनालें। यह चूर्ण विबन्ध, अग्निमांद्य तथा अरुचि का विध्वंस कर देता है ॥ ९ ॥

सफेद तथा काला जीरा, सूंठ, लौंग, इलायची, मरिच, अजमोदा, हरडे, तमालपत्र, इमली और धनिया प्रत्येक चार तोला, दालचीनी दो तोला, निशोथ (श्वेत तुरबुद) छह तोला, सौवर्चल, सैंधव और सनाय प्रत्येक सोलह तोला, परिपक्व दाडिम के दाने बत्तीस तोला इन सभी का वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण बनालें। अब, इस चूर्ण को एक बीजपूर के रस की तथा निंबू के एक प्रस्थ (चौसठ तोला) रस की यथाक्रम भावनायें देवें। यह चूर्ण अग्निमांद्य तथा उदावर्त से उत्पन्न रोगों को शमन करता है ॥१०-१३

निंबू के चौसठ तोले रस में, सूंठ तथा सौवर्चल प्रत्येक सोलह तोला तथा चार तोला भूनी हुई हींग डाल दें। निंबू रस को मंदाग्नि से पकावें। जब निंबूरस शोषित हो जाये तब अवशिष्ट औषधीय द्रव्य को भट्टी की गरम गरम मिट्टी की अग्नि से भूनलें। यह उद्गारशुद्धि करनी है, रुचिवर्धक है, तथा मूढवातानुलोमक है ॥ १४-१५ ॥

१-उग्रगन्ध 'कुल्ञ्जिन' इति प्रसिद्धो वचाविशेषः । २-पलविशेषणम् । ३-तीक्ष्ण मरिचं, दीप्या अजमोदा, छदं तमालपत्रम् । ४-'दालचीनी' इति प्रसिद्धा । ५-त्रिवृता-शब्देन चात्र यवनभाषाप्रसिद्धतुरबुदनाम्नस्त्रिवृताविशेषस्य ग्रहणं, स च श्वेतवर्णो ग्राह्यः । ६-बीजपूरनिम्बूकशब्दावत्र लाक्षणिकौ लक्ष्यश्च तद्रसः । ७-रोगा इति शेषः । ८-शुण्ठी ।

११ तीक्ष्णानि धौतशुभ्राणि सममेभिः पटूत्तमम् ।
मार्कण्डी गौर्जरी[1] ग्राह्या सर्वसंभारसंमिता ॥ १६ ॥
विचूर्ण्य भावनास्तिस्रो दत्त्वा निम्बूकनीरतः ।
गद्याणसंमिता वट्यः सानाहं घ्नन्ति विड्ग्रहम् ॥ १७ ॥
१२ व्योषद्विजीरदहनत्रिपुटाकलसैन्धवात् ।
षड् गद्याणाः पलद्वन्द्वं[3] सौवर्चलमनुत्तमम् ॥ १८ ॥
दाडिमीफलतः प्रस्थौ प्रस्थो निम्बूकतः स्मृतः ।
निम्बूकदाडिमीवारि[4] पक्वं[5] पक्त्वा घृतैः सह ॥ १९ ॥
स्वार्द्री[6] द्राक्षां सितां तत्र ह्याम्रां संक्षोद्य मिश्रय ।
शेषद्रव्याणि संचूर्ण्य संमेल्य कुरु पिण्डिकाम् ॥ २० ॥
पाचिनीं दीपिनीं रुच्यां मूढवातानुलोमिनीम् ।
वमनानाहमन्दाग्निशूलघ्नीं साधु सेवय ॥ २१ ॥
१३ द्वे पले मृदुरेचिन्न्याः पथ्या पाथोधितोलिका ।
भद्रैला कृष्णबीजानि द्राक्षा कन्दः[10] सुमोद्भवः ॥ २२ ॥

मरिच के दानों को, पानी से धोकर ऊपर की त्वचा निकाल, स्वच्छ बनालें। मरिच समभाग सैंधव तथा मरिच एवं सैंधव दोनों के समान भाग सनाय (धोली मीठी) लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण करलें। इस चूर्ण में निंबू रस की तीन भावनायें देकर छह माषा प्रमाण वटियां बांधलें, आनाहसहित मलग्रह को ये दूर कर देती हैं ॥ १६–१७

त्रिकटु, श्वेत और श्याहजीरा, चित्रक, इलायची, अकलकरा तथा सैंधव प्रत्येक तीन तीन तोला लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें। खर्जूरी फल, द्राक्षा तथा मिश्री प्रत्येक आठ आठ तोला लेकर बारीक पीस चटनी करलें। दाडिम का १२८ तोला रस तथा निंबू का चौसठ तोला रस दोनों को एक करके उसमें सौवर्चल चूर्ण तथा घी प्रत्येक आठ तोला प्रमाण डाल देवें। अब इस रस को अग्नियोग से पकावें। जब रस जलकर घट्ट होने लगे तब उसमें उपरोक्त त्रिकटु आदि के चूर्ण को तथा खर्जूर आदि की चटणी को मिला कर पिण्ड बनालें। रस को उकाल कर उतना ही शेष रखना चाहिये जितने से चूर्ण तथा चटनी का पिंड बंध जाये। इस पिंड में से यथामात्रा सेवन करना चाहिये। यह रुचिकर दीपन, पाचन तथा मूढवातानुलोमक है तथा वमन, आनाह, मंदाग्नि और शूल का शमन करता है ॥ १८–२१ ॥

सनाय आठ तोला, हरडे चार तोला तथा बडी इलायची, काला दाना, द्राक्षा

१–गुर्जरदेशोद्भवा 'सूरती' इति प्रसिद्धा। २–एला। ३–दशतोलकमितम्। ४–सप्तम्यन्तम्। ५–द्विपलमितैः। ६–खर्जूरीफलम्। ७–मार्कण्ड्याः। ८–चतुस्तोलकेति यावत्। ९–लोके 'मिरचाई' इति प्रसिद्धानि, 'कालादाना' इति च। १०–गुलकन्दः, स च तरुणीपुष्पजो ग्राह्यः।

पृथक् पृथगिहैतेभ्यो ग्राह्यौ द्वौ द्वौ च तोलकौ ।
पृथक् प्रकुञ्चयुगलमुपलासर्पिषो पुनः ॥ २३ ॥
कल्कीकृत्येदमखिलं मोदकांस्त्रिशदाचरेत् ।
तेष्वेकं भक्षयेन्नक्तं कोष्णं चानु पिबेज्जलम् ॥ २४ ॥
तावद्विरिच्यते जन्तुः शीतं यावन्न सेवते ।
अनेन परिशाम्यन्ति व्याधिव्यूहा विबन्धजाः ॥ २५ ॥
१४ हारहूरा पिचून्माना तदर्धा तु सनामुकी ।
तदर्धं सैन्धवं तस्मात्तृतीयांशे तु जीरके ॥ २६ ॥
सौरभार्थं मनागेला श्लक्ष्णं पिष्ट्वा चरेद्गुटी ।
सितारजसि मसृणे लोठिता निगिलेन्निशि ॥ २७ ॥
नखम्पचोष्णमम्भोऽनुपिबेत् प्रातर्विशुद्धये ।
नातः परतरो योगो दृष्टः सुखविरेचने ॥ २८ ॥
१५ वलक्षस्फटिकाक्षोदः पुराणो द्विगुणो गुडः ।
गुटी विबन्धमुन्मूल्य विदधाति चमत्कृतिम् ॥ २९ ॥
१६ धूमयन्त्रगतमाखुमलस्य भस्म साम्बु वसनेन विशोध्य ।
क्षारमस्य कुरु तं मधुमिश्रं देहि देहि नलबन्धसमीरे ॥ ३० ॥

और गुलकंद प्रत्येक दो दो तोला मिश्री और घृत प्रत्येक आठ तोला, इन सभी द्रव्यों को एकत्र पीसकर कल्क बनालें। इस कल्क के समानभाग में तीस मोदक बाधें। एक मोदक रात्रि के समय कवोष्ण जलानुपान पूर्वक खायें। इसके लेने से तबतक विरेचन होता ही रहेगा जब तक शीतल पदार्थों का सेवन न किया जायेगा। इस प्रयोग से मलावरोधजन्य विकारसमूह का सर्वश नाश हो जाता है ॥ २२–२५ ॥

द्राक्षा दो तोला, सनाय एक तोला, सैंधव आधा तोला, जीरकद्वय दो दो मापा इन सबको एकत्र करके सुगंध के आग्रह से थोडे इलायची दाने मिला सूक्ष्म महीन पीसकर गुटिकायें बनालें। इन गुटिकाओं को मिश्री चूर्ण में लपेटकर रात्रि के समय कवोष्ण जलानुपानसहित निगल जाये। प्रातः निःसंदेह विरेचन होता है। सहज विरेचन का इससे उत्तम अन्य प्रयोग नहीं देखा गया ॥ २६–२८ ॥

श्वेत-स्फटी की भस्म, भस्म से द्विगुणित पुराणा गुड, इन दोनों को मिलाकर गुटिका बांधलें। यह गुटी विबन्ध का उन्मूलन करके, चमत्कार दिखाती है ॥ २९ ॥ हुक्के में जली हुई तमाखु की भस्म-गुल को जलमें घोलकर वस्त्रपूत करके, उसका क्षार बनालें। नाभी के नीचे नाडीजाल में अवरुद्ध वात के विकार से ग्रस्त देही (मनुष्य)

१–उपला सितोपला। २–द्राक्षा। ३–'नों निवाया' इति ख्यातं कवोष्णमिति यावत्। ४–आखुमलस्य धूमयन्त्रगतं भस्मेति न भ्रमितव्यं, किंतु तमाखोर्मल 'गुल' इति ख्यातं ग्राह्यम्। ५–मधु चोपलक्षणं, तेन ताम्बूलेनापि देयं, मात्रा चास्य वल्लचतुष्टयम्। ६–देही जन्तुस्तस्य नलबन्धसमीरे नाभ्यधः स्थितनाडीषु रुद्धवायौ, जलपरिवृत्तिजाते रोगेऽपि देयम्।

१७ पृथग्वल्लौ[1] समुत्फुल्लौ पर्पटक्षार[2]रामठौ ।
जलानुपानतो गीर्णौ स्यातामाध्मानहारिणौ ॥ ३१ ॥
१८ तरुणीप्रसूनचूर्णं भक्तेन[3] भजेत पाणितलतुलितम् ।
शिथिलीकृत्य पुरीषं पातयति शनैः सुखेन सखे ! ॥ ३२ ॥
१९ स्वादुपर्णी[4] त्रिगद्याणां पिष्ट्वा तोयेन गालयेत् ।
सितामावाप्य माषैकां प्रातः प्रातः पिबेत्र्यहम् ॥ ३३ ॥
विण्मूत्रबन्धपिटिकाग्रन्थिपित्तास्रजा रुजः ।
शाम्यन्त्यनेन योगेन गर्भं विभ्रति सुभ्रुवः ॥ ३४ ॥
२० द्राक्षा[5] [6]द्व्यहं जले प्लाव्याश्चतुःपञ्चाङ्गुलाधिके ।
शनैर्विमर्द्य पाणिभ्यां तस्मिन्नेव जले पचेत् ॥ ३५ ॥
तृतीयांशं कषायं तं वाससा साधु गालयेत् ।
लोकं[7]त्वक्पुष्पघुसृणत्रिवुटापोट्टलीसखम् ॥ ३६ ॥
पचेदष्टांशमधुना मध्वंशाम्बुक्षयावधि ।
ततोऽवतार्य निष्पीड्य पोट्टलीं विक्षिपेद्बहिः ॥ ३७ ॥

को, चार वालभर इस क्षार को मधु के साथ देनी चाहिये । (देहि देहि नलबन्धसमीरे कितनी रमणीय रचना है !!) ॥ ३० ॥ पापडखार तथा हींग, इन प्रत्येक को दो दो वालभर लेकर अग्नि पर फुला लेवें । जलानुपान पूर्वक लेने से यह आध्मान को दूर कर देता है ॥ ३१ ॥ पाणितल भर गुलाबपुष्प चूर्ण को चावल के साथ सेवन करने से हे मित्र ! मल शिथिल होकर सुखपूर्वक, धीरे धीरे, बाहर निकल आता है ॥ ३२ ॥ अठारह माषा दुग्धिका (छत्तादूधी) को पानी से पीस वस्त्रपूत करलें । अब, इस में एक माशाभर मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पीयें । इस तरह तीन दिवसपर्यंत प्रयोग करें । इससे मलमूत्र का विबंध, फुंसियां तथा रक्तपित्तजन्य विकार दूर हो जाते हैं । इतना ही नहीं, इस योगसे सुंदरियां गर्भ-धारण करती हैं ॥ ३३-३४ ॥ दो सो छप्पन तोला द्राक्षा को, दो या तीन दिवस पर्यंत २$\frac{3}{4}$ हस्त भर जल में डुबो कर रहने दें । फिर, हाथ से उनको मसलकर, पानी में मिला उसी पानी में उकालें । तृतीयांश जल शेष रहनेपर इसको उतार, सावधानीपूर्वक वस्त्रपूत करलें । अब, सूंठ, तज और लविंग प्रत्येक तीन तीन माषा, केसर और इलायची प्रत्येक छह माषा, इनको लेकर एक पोटली में बांधलें । उपरोक्त द्राक्षा कषाय में उससे अष्टमांश मधु मिलाकर, उपरोक्त द्रव्ययुक्त पोटली को इस द्रव में डाल देवें । अब इस द्रव को, मधुभाग जितने जलभाग के निःशेष हो जाने तक उकालते रहें । अब, पोटली को बाहर निकाल

१-अग्निसंयोगादित्याक्षेपः । २-'पापडखार' इति ख्यातः क्षारविशेषः । ३-ओदनेन । ४-दुग्धिकां लोके 'छत्तादूधी' इति ख्याताम् । ५-द्राक्षारिष्टोऽभिधीयते । द्राक्षाश्चाढक-तुलिताः । ६-त्र्यहं वा । ७-शुण्ठीत्वग्लवङ्गानि पृथक् शाणिकानि, कुङ्कुमैले तु प्रत्येकं गद्याणमिते, इति रहस्यम् ।

काचकोशे रस भृत्वा रक्षेच्छतदिनाधिकम् ।
पलार्धं वा पलं पीत्वा धन्धादिभ्यो विमुच्यते ॥ ३८ ॥
२१ सावुनपिण्डीशकल प्रवेश्य पायावुपेक्ष्येत ।
भित्त्वा गाढविबन्ध पुरीषमञ्ज प्रवर्तयति ॥ ३९ ॥

— इत्युदावर्तादिचिकित्सा । —

अथोदरचिकित्सितम्[3] ।

क्रूर' प्रकृत्या महिषप्रतिष्ठितो वहन् कराभ्या करवालचर्मणी ।
शूनाकृति पीतदुकूलसंमद परेषु विस्फूर्जतु जाठरो गद ॥ १ ॥
दुर्निरीक्ष्या॰ कृशा पाशखड्गदण्डप्रहारिण ।
यकृत्प्लीहप्रभृतयो भीषणा गदिता गदा ॥ २ ॥
१ शरकूर्चकत्रिवार्षिकघननादचरणसमुत्थित॰ क्काथः ।
२ जठर भिनत्ति, किं वा मधुना घननादभूतिरेकैव ॥ ३ ॥

अच्छी तरह निचोडकर अलग रखदे। इस रसको एक काच के पात्र मे भरकर मुख बद करके, शतदिवस पर्यंत उसी में रहने दें तथा कालपाक होने दे। तदनन्तर, दो अथवा चार तोलाभर मात्रा मे इसको पीयें। इससे विबधादि से मुक्ति मिलती है ॥ ३७–३८ ॥

साबुन के छोटे से टुकडे को गुदा में प्रविष्ट करके, कुछ काल तक प्रतीक्षा करें। कुछ ही देर में यह गाढ विबध को तोडकर, मल को, वेग-पूर्वक, बाहर धकेल देता है ॥ ३९ ॥

— उदावर्तचिकित्सा समाप्त —

— उदरचिकित्सा (कुल प्रयोग २९) —

स्वभाव से ही क्रूर, भैंसे पर विराजमान, हाथ में कृपाण तथा ढाल धारण किये हुये, पीतवस्त्र से वेष्टित, उन्मत्त, शोथयुक्त-विकृत-आकृतिवाला उदरामय हमारे शत्रुओ पर ही गाज की तरह टूटपडे ॥ १ ॥

यकृत्-प्लीहादि रोग भीषण, कृश, दुर्निरीक्ष्य तथा पाश एव दड से प्रहार-करनेवाले कह गये हैं ॥ २ ॥

मुंज, पलाश तथा त्रिवृत्-मूल का क्वाथ उदररोग को नष्ट कर देता है, अथवा पलाश-पचाग की अकेली भस्म ही, मधु के साथ इस रोग का शमन कर देती है ॥३॥

१–शतदिनानन्तरं कालपाकात् पेयमिति । २–क्षुद्ररोगे वक्ष्यमाणविधान मलप्रक्षालनप्रयोजन 'साबुन्' इति लोकख्यात, तस्य शकलम् । ३–विरेचनसाध्यत्वादस्य चिकित्सितमुच्यते । तत्रापि प्रथम द्वाभ्यां तद्रोगमहिमप्रकाशनम् ।

३ कटुका [1]निम्ब[2]गवाक्षी[3]व्याघ्रीद्वीपान्तरीयवटशृङ्गा[4]भाः[5] ।
रत्नज्योतिः[6] पथ्याः क्वथिताः[7] पीता गुडेन सराः[8] स्युः ॥ ४ ॥

४ प्रस्थं कुमारिकामांसात्[9] प्रस्थं पूषप्रसूनतः[10] ।
किं च पञ्च[11]पटुभ्योऽक्षान् स्वर्जिकाक्षारतः पलम् ॥ ५ ॥
गुरूक्तसंप्रदायेन[12] परिकल्प्य यथायथम्[13] ।
अर्कं युक्त्या[14] विनिष्कास्य पाययेज्जठरापहम् ॥ ६ ॥
पथ्यं वज्रकधान्यस्य[15] फुल्लिका गुडसंयुता ।
पक्षावधि प्रदातव्या घृतं किं तु विवर्जयेत् ॥ ७ ॥

कुटकी, निंब की छाल, इन्द्रवारुणीमूल, कण्टकारीमूल, उसब्बा (वट-शुङ्ग), बबूल, रतनजोत तथा हरडे प्रत्येक आठ तोला लेकर जोकुट करलें। सायंकाल को, आठ अथवा बारह गुणित जल में, मिट्टी के पात्र के भीतर, भिगोकर रखदें। प्रातः बत्तीस तोला पुराणे गुड के साथ क्वथित करके चतुर्थांश शेष रहने पर उतार, वस्त्रपूत करके, इस कषाय को काचपात्र में भरलें। यह केवल सारक ही नहीं अपितु उपदंश, रक्तपित्त आदि का भी शमन करता है ॥ ४ ॥

गवारपाठे का गूदा तथा आकडे के फूल प्रत्येक चौसठ तोला, पांचों नमक प्रत्येक एक तोला तथा सज्जीखार चार तोला लेवें। गुरु-संप्रदाय के अनुसार, आठ तोला अजवायन भी लेवें। अब, पातालयंत्र की थाली में, प्रथम, कुछ मात्रा में, गवारपाठे का गूदा, उसपर अर्क-पुष्प तथा तदुपरि अजवायन की तह बिछादें। इनपर, फिर गूदा, गूदे पर पुष्प, पुष्प पर अजवायन की तह फैलादें। इसी क्रम से, पुनः एक के ऊपर एक तह बिछादें। अन्त में, युक्तिपूर्वक अर्थात् पाताल-यंत्र से इनका अर्क निकाल लें। इस अर्क को एक तोला मात्रा से उदर-पीडित को पिलावें। यह अर्क जठररोग शामक है। प्रयोगकाल में, एक पक्षपर्यंत बाजरे के फूले गुड के साथ खाने चाहिये। घी का सर्वथा त्याग करदें ॥ ५-७ ॥

१—निम्बस्य त्वक्। २—इन्द्रवारुणीमूलम्। ३—कण्टकार्या अपि मूलम्। ४—लोके 'उसब्बा' नामतः प्रसिद्धिः। ५—बम्बूलस्य फलिका ग्राह्या। ६—अनेनैव नाम्ना ख्यातौषधिः। ७—क्वाथप्रक्रिया च सर्वौषधजातात् पृथक् द्वे द्वे पले गृहीत्वा यवक्षोदीकृत्य सायमष्टगुणे द्वादशगुणे वा जले मृद्घटान्तः समाप्लाव्य प्रस्थार्धेन पुराणगुडेन सह समुत्क्वाथ्य पादशेषं शृतमुन्नयेत्; काचकूपीस्थितस्यास्य पलं द्विपलं वा पेयमिति। ८—सरा इति कथनमात्रं, तेनोपदंशरक्तविकारादिहरा इति बोध्यम्। ९—कन्यामध्यभागात्। १०—अर्कपुष्पतः। ११—पञ्चेति पदस्यावृत्त्या पञ्चपटुभ्यः पञ्चाक्षानित्यर्थः फलति। १२—यवानिका प्रसृतिमिताऽत्र क्षेप्याऽवश्यमिति संप्रदायः। १३—यन्त्रस्थाल्यां पूर्वं किंचिन्मांसं प्रस्तार्य ततः पुष्पाणि ततः कारवीप्रभृतिकं ततस्तदुपरि मांसं ततः पुष्पाणि ततः कारवीप्रभृतिकं ततो मांसमित्थं पुनः पुनः प्रस्तारयेत्। १४—पातालयन्त्रयुक्त्या। मात्रा चास्य चतुःशाणिका प्रायः। १५—'बाजरी' इति लोकप्रसिद्धस्य।

५ कन्यारसाढके प्रस्थगुडतः कुडवद्वयम् ।
मण्डूरं टङ्कणं क्षारौ पञ्चैव लवणानि च ॥ ८ ॥
नवसादर इत्यस्माद्वर्गाद्दियं पलं पलम् ।
काचकोपे समाधाय मुखमस्य विमुद्रयेत् ॥ ९ ॥
अष्टाहमातपन्यस्तमेकीभूतरसं पिबेत् ।
यकृत्प्लीहोदरेष्वेवं कुमार्यासवमाख्यया ॥ १० ॥

६ चतुश्चतुर्थिकं कृष्णैलेयैमक्षशतोत्तरम् ।
पादोनत्रितयं हिङ्गु किं तु हीनं द्विमाषतः ॥ ११ ॥
अधिसहस्रतलं पिष्ट्वा प्रैस्थे निम्बूकपाथसि ।
निक्षिप्य काचकोशान्तर्धृत्वा संमुद्य मुद्रया ॥ १२ ॥
अष्टाहमातपे सिद्धं हिङ्गुसंधानमित्यदः ।
यकृत्प्लीहोदरं हन्ति पीतं चेन्मात्रयाऽखिलम् ॥ १३ ॥

७ प्रस्थं निम्बूकनीरं द्विपलिकमनलोद्भर्जितं टङ्कणाख्यं
त्रिंशत् पीताः कपर्दोऽखिलमिति घटमृल्लिप्तभाण्डेऽवरुन्ध्यात् ।

गवारपाठे का गूदा २५६ तोला, पुराणा गुड ३२ तोला, मङ्डूर, टङ्कण, क्षारद्वय (सज्जीखार तथा टङ्कणखार) लवण-पचक और नवसादर प्रत्येक चार तोला, इन सबको एक काचपात्र में रखकर उसके मुख को कपडमिट्टी करदें। आठ दिवस तक सूर्यताप में इसे रखदें। जब सभी औषधीय द्रव्य एकरस होजायें, तब इसका उपयोग करे। यह रस कुमार्यासव कहलाता है। यकृत, प्लीहा तथा उदरामय में प्रशस्त है ॥ ८–१० ॥

कृष्णवर्ण एलिया ११२ माषा (टिप्पणीकार के मतानुसार १६० माषा) तथा हींग ११० माषा इन दोनों को निंबू के चौसठ तोला रस में खरल करलें। फिर एक काचपात्र में भरकर, पात्रमुख को कपडमिट्टी करदें। आठ दिवसपर्यंत इसको सूर्य के ताप में रख देवें। इस तरह सिद्ध इस 'हिंगु-संधान' को १½ तोले मात्रा से प्रारंभ करके ४½ तोले मात्रा तक पीयें। यह यकृदोदर एवं प्लीहोदर को नष्ट कर देता है। प्रयोगकाल में हलका भोजन पथ्य है ॥ ११–१३ ॥

निंबू का रस चौंसठ तोला, अग्नि पर भूना हुआ टङ्कण आठ तोला तथा पीली कपर्दिका नग तीस, इन सबको एक पुराणे मृत्पात्र में भरकर, पात्रमुख को कपडमिट्टी करदें। धान्यराशी में चारों ओर से ढककर, एक पक्षपर्यंत इसमें रहने दें। इस रसको

१–कुमार्यासवप्रक्रियायां न किंचित्तिरोहितम्। २–चतुः पलं, पलं चात्र चत्वारिंशन्माषप्रमाणम्। ३–कृष्णवर्णमेलेयं, तस्यैव प्राशस्त्यात्। ४–पादोनत्रिपलं दशाधिकशतमाषकप्रमाणमिति यावत्। ५–प्रस्थे पादोनप्रस्थे वा। ६–अष्टाहमातपे धृत्वेति संबन्धः। ८–यथामयं सार्धतोलकमारभ्य सार्धचतुस्तोलकपर्यन्ताऽस्य मात्रा देया, पथ्यं लघ्वशनम्। ८–पुराणे भाण्डे भृत्वा मृत्कर्पटतोऽवरुन्ध्यात् समुद्रयेदिति।

पक्षं तद्धान्यराशौ परिपिहितमथोद्धाख्य युक्त्या त्रिशाणं
निम्बूकद्रावमेनं पिब यदि जठरप्लीहगुल्मादिपीडा ॥ १४ ॥
८ कोष्ठनिविष्टोद्गततलकोरितसुषिरां निवेश्य काचघटीम् ।
सक्षारभाजनोपरि तेजोर्कः प्लीहहा ग्राह्यः ॥ १५ ॥
९ आवर्तितस्य दुग्धस्य दन्तीबीजैस्त्वगन्वितैः ।
दधिभावं गतस्याज्यं निरुद्वेगं विरेचनम् ॥ १६ ॥
१० दन्तीबीजानि संज्वाल्य निर्यज्ज्वालाशमावधि ।
निम्बुकाम्बुनि निर्वाप्य कोकिलानुपकल्पयेत् ॥ १७ ॥
ततः कलञ्जिका गन्धरसयोरर्धभागिका ।
कृष्णासौभाग्यमरिचयावशूकं तदर्धकम् ॥ १८ ॥
एकत्र घटयेद्गाढं पक्वनिम्बूकजै रसैः ।
लवङ्गैलामृगमदैरधिवास्य वटीश्चरेत् ॥ १९ ॥

'निंबूक-द्राव' कहते हैं। इसे नौ माशा भर मात्रा में पीयें। उदरामय, यकृत्, प्लीहा, गुल्म आदि विकारों से, यह द्राव, निःसंदेह मुक्त कर देता है ॥ १४ ॥

प्रस्तुत श्लोकमें, औषधीयद्रव्यों में से अर्क, तैल आदि निकालने के लिये एक नूतन यंत्र की विधि बताई गयी है। यदि क्षार का अर्क निकालना हो तो प्रथम एक पात्र में क्षार भरदें। फिर, काच की एक ऐसी स्थूलाकार शीशी-काचघटी लें जिसका तल भाग इस शीशी के करीब भीतरी मध्य-भाग तक उभरा हुआ हो। इस उभरे हुये भाग के मध्य में एक छिद्र करदें। अब, इस काचघटी को उपरोक्त क्षार पूर्ण पात्र पर इस तरह रखदें कि जिससे काचघटी का तल-भाग क्षार-पात्र के मुखपर बराबर बैठ जाये। अब, क्षार-वाले पात्र के नीचे अग्नि देने से क्षार का अर्क उपरि गत काचघटी के उभरे हुये तल-छिद्र में से निकल कर उसके पार्श्व-गत भाग के चारों ओर एकत्रित होता रहेगा। यह 'तेजोऽर्क' कहलाता है एवं प्लीहोदर को दूर कर देता है। (अर्क निकालते समय काचपात्र को आर्द्र वस्त्र से परिवेष्टित रखना चाहिये।) ॥ १५ ॥

छसो चालीस तोला दूध को, उसमें त्वचासहित सोलह तोला दन्ती-बीजों को डालकर खूब उकाल लेवें। दूध जब शीतल हो जाये, तब उसका दही जमालें। इस दही को मथकर मख्खन निकाल घी बनालें। इस घी को चावलकी खीचडी और दूध के साथ खायें। जितने घृतके बिन्दु उतने ही उद्वेग-रहित विरेचन के वेग!!! ॥१६॥

दंती बीजों को अग्निमें तब तक जलावें, जब तक जलते जलते उनमें से निकलती हुई अग्निज्वाला शांत न होजाये। अर्थात् अग्निमें जलकर जब बीज अंगार तुल्य हो जायें, तब निंबू रस में बुझाकर इनके कोयले बनालें। दंतीबीज के इन कोयलों से अर्धभाग

१—अर्कतैलादीनां नव्ययन्त्रविधिरयम्। २—तेजोऽर्क इत्युपलक्षणं, तैलादिकमपि निष्कास्यन्। काचकूपीमार्द्रवस्त्रेण वेष्टयेदिति रहस्यम्। ३—दशप्रस्थदुग्धे बीजकुडवम्। ४—कृशरया दुग्धेन च सहोपयोज्यम्; आज्यस्य च यावन्तो बिन्दवस्तावन्तो विरेकवेगा भवन्तीति ॥

तास्वेकां सुखरेकार्थी गिलेत् कोष्णेन वारिणा।
द्वे गुञ्जे गुटिकामानं रेकान्ते पथ्यमाहरेत् ॥ २० ॥

२१ सिद्धा तैले रुचकजनुषि श्रेयसी नाम रेव्यां
स्वच्छ सौवर्चलमिति युगं भागतो विद्धि तुल्यम्।
सर्पिर्भृष्टं सदृशमुभयोः शुद्धनेपालमेषा
वट्यो बद्धा द्विगुणगुडतो रेकमुद्भावयन्ति ॥ २१ ॥

१२ रसेन्दुस्तालमापघ्नेत् सुमं नीरसमापकम्।
अनद्वर्ध्यमेकत्र मर्दयेद्वारुणीफले ॥ २२ ॥
मापोन्मेषा वटीमस्य पय पेटकगर्भिताम्।
निगीर्यानुपिबेदुष्ट्रीपयः शर्करया सह ॥ २३ ॥
तृपि क्षुधि निषेवेत दुग्ध केवलमौष्ट्रिकम्।
मासमात्रप्रयोगेण चिद्रवेदोदरो दरं ॥ २४ ॥

जितनी मात्रा में, पारद तथा गंधक की कज्जली तैयार करें। इस कज्जली से अर्धभाग मात्रा में, पिप्पली, सौभाग्य, मरिच तथा यवक्षार का चूर्ण लेवें। अब, दन्तीबीज के कोयले को, कज्जली को तथा इस चूर्ण को, खरल में एकत्र करके निंबूरस से खूब घोटें। फिर इसमें लविंग, इलायची और कस्तूरी डालकर सुवासित करके, गुटिकायें बांधलें। सुखविरेचन के लिये इनमें से एक गुटि को, कवोष्ण जलसह निगीर्ण करें। गुटिकायें दो गुंजाप्रमाण में बांधनी चाहिये। विरेचनोपरांत, चावल की खीचडी, दूध आदि पथ्य भोजन करना चाहिये ॥ १७-२० ॥

एरंडतैल में जवाहरडे को भूनकर सिद्ध करलें। जवाहरडे से समान भाग स्वच्छ कालानमक लेवें। कालानमक तथा जवाहरडे दोनों के वजन बराबर नेपाल बीजों को घृत में सेकलें। इन सभी द्रव्यों से द्विगुणित गुड के साथ इनको पीसकर गोलियां बांधलें। विरेचनार्थ इनको उपयोग में लेवें ॥ २१ ॥

रसकर्पूर छत्तीस मापा तथा लविंग सातसो बीस मापा अथवा इससे अर्ध मात्रा में, इन दोनों को एकसो (अथवा पांचसो) इन्द्रवारुणीफल के साथ एकत्र खरल में घोट लें। इसकी एक मापा जितनी गुटिका को पेडे में रखकर खायें। उसके ऊपर ऊटनी का दूध ही पीयें। इस तरह मासावधि प्रयोग से, उपदशादि सहित उदररोग प्रशमित हो जाता है। अल्पोदररोग में एक मास तक प्रयोग करने की अथवा पथ्यादि के कठिन नियमो की इतनी आवश्यकता नहीं है ॥ २२-२४ ॥

१-एरण्डभवे। २-छत्ता हरीतकी 'जवाहरडे' इति प्रसिद्धा। ३-रसकर्पूरम्। ४-कटपयादिक्रमेण व्यवस्थेय, तेन पट्त्रिंशन्मापक इत्यर्थ। ५-लवङ्गम्। ६-विंशत्यधिकसप्तशतमापकं, रेकोत्कर्षेच्छा चेत्ततोऽर्धम्। ७-शतसख्यै। गुणोत्कर्षेच्छा चेत् पञ्चशत सख्यै। ८-इन्द्रवारुणीफलं 'गरडूवा' इति लोकप्रसिद्धं। ९-'पेढा' इति ख्यातो भक्ष्यविशेषस्तद्गर्भिताम्। १०-उपदंशादिकेऽल्पोदररोगेऽपि देय। किंतु तत्रैतदनुपानपथ्यमासमात्रप्रयोगा नादरणीया इति।

१३ प्रस्थं राजद्रुसारं[1] द्विगुणितसलिले प्लावितं रात्रिमध्ये
प्रत्यूषे मर्दितं द्राक् करकिसलयतः श्वेतवासःपवित्रम् ।
शाणोन्मानस्य धूमैः सुरभिणि सुतरां रामठस्य स्फुरद्भि-
र्वह्निप्रोत्तप्तमृत्स्नाघटशकलतले पातयेद्द्वित्रिवारम् ॥ २५ ॥
एवं संस्कार्य सम्यक् पुनरितरघटे हिङ्गुसौरभ्यभाजि
क्षिप्त्वा संशोष्य वट्यः स्थलकमलजलैर्भावयित्वा[2] विधेयाः ।
तास्वेकां गोस्तनीभिः सह पलतुलितां ध्वस्तदुर्गन्धहृद्यां
खादेदर्केण दीप्यत्रुटिमिषिजनुषा विड्विबन्धक्षयाय ॥ २६ ॥

१४ सारेवतमैलेयं[3] विमर्द्य सलिलेन[4] मोदकाः कार्याः ।
विविधविबन्धविघट्टननिपुणा निर्णीय निर्दिष्टाः[5] ॥ २७ ॥

१५ द्राक्षामृकण्डभवभेषजपुष्पकन्द-
स्वाद्वीफलानि ससितानि सपूतनानि ।
शाणत्रयाण्यथ वितुन्नकमेकशाणं[6]
भेदि गुरूक्तिविहितो[7] मधुना गुडोऽयम् ॥ २८ ॥

अमलतास के चौसठ तोले गूदे को, रात्रि के समय, इससे द्विगुणित जल में भिगो देवें। प्रातः उसे हाथ से खूब मसलकर स्वच्छ वस्त्र से छान लेवें। अब, एक मृत्पात्र के भीतरी भाग को तीनमाषा हींग की धूम से सुवासित बनाकर उसे प्रज्वलित अग्निपर रख, उसमें उपरोक्त रस को, अल्पमात्रा में, दो तीन बार ठहर ठहरकर डालदेवें। इस तरह संस्कार प्राप्त इस रस को, तीनमाशा हींगकी धूमसे सुवासित मिट्टी के एक दूसरे घट में भर देवें। इस घट को अग्निपर रख तदन्तर्गत रस को सुखाकर, तल-लग्न शुष्क चूर्ण को निकाल लेवें। इस चूर्ण में गुलाबअर्क की भावना देकर चार चार तोलाभर टिकियां बांधलें। एक टिकिया को गोस्तनी अंगूरों में मिलाकर, अजवायन, इलायची और सौंफसे निकाले गये अर्क के साथ निगीर्ण करें। यह मल के विबंध को नष्ट करती है। गोस्तनी अंगूर मिलाने से, अमलतास की अप्रिय गंध दूर होकर, टिकिया रसना-ग्राह्य हो जाती है ॥ २५–२६ ॥

एलिया सहित अमलतास के गूदे को पानी के साथ (पित्त-प्रधान व्याधि में गुलाब-जल के साथ) घोटकर उसके मोदक बनालें। यह मोदक अनेक प्रकार के मल विबंध विकारों को दूर कर देते हैं। इस प्रयोग को अनुभूत करके यहां आलेखित किया है। यह मोदक, विशेष करके रातमें ही, अपना विरेचन-प्रभाव दिखाते हैं ॥ २७ ॥

द्राक्षा, सनाय, सूंठ, खजूर, गुलकंद, हरडे और मिश्री प्रत्येक नौ माषा तथा तुत्थ तीन माषा लें। प्रथम, खर्जूरी फलों के भीतर तुत्थचूर्ण भरकर कपडमिट्टी करके,

---

१–आरग्वधफलमध्यम्। २–तरुणीसुमार्कैः। ३–सारग्वधम्। ४–पित्तोद्रेकश्चेत्त-रुणीसलिलेन। ५–एते मोदका निशि विशेषेण विरेचयन्ति प्रभावात्। ६–तुत्थं, यद्यपि तस्य शाणोक्तिस्तथाऽपि माषकत्रयमेव ग्राह्यं वमनसंभवात्। ७–तुत्थं, स्वाद्वीफलोदरेषु

१६ एलं मृकण्डजा विश्वं पृथक् तोलकमात्रया ।
सौवर्चलं सैन्धवं च पृथक् तोलार्धमात्रया ॥ २९ ॥
विडङ्गं रेवतीकाष्ठं पृथक् तोलाद्धिमात्रया ।
मधुना वटिका बद्धा विबन्धवधदीक्षिता ॥ ३० ॥
१७ पथ्याधात्रीकणाङ्घ्रित्वग्व्योषाब्दक्रिमिजिद्दलात् ।
त्रिर्दन्ती सर्वेत सिन्धुगुणा श्यामा सिताऽथ षट् ॥ ३१ ॥
मधुना साधु सनीय मोदकं पलसंमितं ।
शिशिरेणार्णसा जीर्णो मोदकं शुद्धिमिच्छता ॥ ३२ ॥
१८ स्नुह्यर्कदुग्धमार्कवनिम्बुरसेषु पृथगेकषुडवेषु ।
भावितमभयार्धस्थं प्रसह्य रिक्तीकरोति जठराणि ॥ ३३ ॥
१९ स्नुक्क्षीरोक्षितचणको यावद्वारं कृशानुना तप्त ।
क्रूरजठरमपि पुरुषं तावद्वारं विरेचयति ॥ ३४ ॥

भट्ठी के भवस मोभट में पकावें । तदनन्तर, इनमें से तुल्य चूर्ण को निकाल लें । अब, इन गर्नूरी फलों को तथा द्राक्षा एवं गुलकन्द को एकत्र बारीक पीसकर कल्क बनावें । फिर इसमें सनाय आदि का चूर्ण मिला शहद से आमलक-फल प्रमाण में मोदक बाँध सेवन करें । (मोदक बनाने की यह 'गुरूक्तिविहित' विधि है ।) यह गुड-मोदक मलका भेदन करता है ॥ २८ ॥

एलिया, सनाय, और सूठ प्रत्येक एक एक तोला, सौवर्चल और सेंधव प्रत्येक आधा तोला, वायविडंग और रेवदचीनी प्रत्येक ½ तोला इनके चूर्ण को मधु के साथ बाँधी गई वटी, विबंध का वध करने में निपुण मानी गयी है ॥ २९-३० ॥

हरडे, आमला, पिप्पली-मूल, तज, त्रिकटु, मुस्ता, वायविडंग और तेजपत्र प्रत्येक तीन भाग, दन्ती तीन चार भाग, त्रिवृत् तथा मिश्री छह भाग इनको एकत्र करके, चार मापा शहद के साथ चार तोला-भर मोदक बनालें । शीतल-जल के साथ सेवित यह मोदक कोष्ठकी शुद्धि करता हुआ वस्तुत 'मोदक' (मोद उत्पन्न करनेवाला) है ॥ ३१-३२ ॥

सुही-क्षीर, अर्क-क्षीर, भागरे और निबू का रस प्रत्येक सोलह तोला लेकर, चौंसठ तोला हरडे को, इनमें भावित करें । यह हरडे कोष्ठ की सर्वथा शुद्धि करती है ॥ ३३ ॥ स्नुहीक्षीर से भावित चने को अग्नि से जितनी बार परितप्त करके खायेंगे, उतनी ही

यथायथ निमज्य मृदा मृत्कर्पटं च दत्त्वा भ्राष्ट्रपांशुभि पाचयेत्, पुन फलोदरतस्तुल्यमशेष निष्कास्य तानि फलानि द्राक्षापुष्पकन्दाभ्यां सह कल्कीकृत्य मार्कण्डीप्रभृतिचूर्णं निक्षिप्य मधुना विनीय धात्रीफलप्रमाणान्मोदकानाचरेदिति गुरूक्ति ।

१-एलेयम् । २-'रेवतचीनी' नाम्ना प्रसिद्धस्य काष्ठम् । ३-वटिकात्वापत्तिमानकारकमानेन । ४-त्रिवृत् । पञ्चगुणाऽपि सा गृह्यते । ५-हर्षद, तेन न पौनरुक्त्यम् । ६-दोषाद्यनुसारात्कल्पितदेयमात्राप्रमाणमतो भक्षणीयम् ।

२० पादांशपटूनि परं कृतमालशलाटुशक[1]लानि ।
निम्बम्बुभावितानि श्यानक्षुण्णा[2]नि रेककारीणि ॥ ३५ ॥
२१ दीप्यकं सलवणं पटपूतैरैन्द्रवारुणरसैः प्रतिभाव्यं[3] ।
मात्रया गिलितमुष्णजलेन क्रूरमप्युदरमाशु भिनत्ति ॥ ३६ ॥
२२ यवानीं प्रस्थतुलितां राजीं प्रस्थार्धसंमिताम् ।
तक्रे त्रिस्त्रिश्च निम्बूकरसैः शुचि विभावयेत् ॥ ३७ ॥
त्रिकटु त्रिफला वह्निः क्षारौ लवणपञ्चकम् ।
प्रत्येकं सप्तभिष्टङ्कैर्द्रव्याण्येतानि मेलयेत्[4] ॥ ३८ ॥
तच्चूर्णं निम्बुकरसैस्त्रिकृत्वो दत्तभावनम् ।
निहन्ति जठरातङ्कं कृतघ्न इव सौहृदम् ॥ ३९ ॥
२३ मार्कण्डी सामुद्रं तुषो यवान्या धराक्षिवसुभागाः ।
दीनदयं नाम रजो जठरगिरीन्द्रभेदने भिदुरम् ॥ ४० ॥
२४ आम्रगन्धिनिशा सावु टङ्कणं हिङ्गु पांसुजम् ।
स्वर्जिका कृष्णलवणं लशुनं चञ्चु[5]जं फलम् ॥ ४१ ॥

बार, क्रूरकोष्ठवाले को भी, विरेचन होंगे ॥ ३४ ॥ एक भाग अमलतास की कच्ची सेम के टुकडों को इनसे चतुर्थभाग सैंधवसहित निंबूरस की भावना दें। यह शुष्कमल के टुकडे टुकडे करके बाहर निकाल देता है ॥ ३५ ॥ दो सो छप्पन तोले अजमोदा में चौसठ तोला सौवर्चल मिला, घरट्ट यंत्र से पीस, इन्द्रवारुणी के पांच सो फल के वस्त्र-पूत स्वरस की भावना देकर, चूर्ण को सुखालें। यथामात्रा से इस चूर्ण को उष्णजल के साथ फांक जायें। यह क्रूर उदर में भी आशु असर दर्शाता है ॥ ३६ ॥ अजवायन चौसठ तोला, राई बत्तीस तोला इन दोनों को, तक्र की और निंबू-रस की पृथक् पृथक् तीन तीन भावना दें। फिर इनमें त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, यवक्षार, सज्जीक्षार, लवण-पंचक (तथा समुद्र क्षार) प्रत्येक सात सात टंक अर्थात् प्रत्येक २८ माषा लेकर उपरोक्त भावितद्रव्य में मिलादें। अब, इन संपूर्ण औषधीयद्रव्यों को निंबू रस की तीन भावना दें। जिस तरह कृतघ्नता मैत्री को नष्ट कर देती है, उसी तरह यह चूर्ण भी जठर-विकार को निर्मूल कर देता है ॥ ३७–३९ ॥ सनाय, सामुद्र-नमक तथा अजवायन की भूसी प्रत्येक क्रमशः एक भाग, दो भाग, तथा आठ भाग लेकर, सूक्ष्मचूर्ण बनालें। 'दीनदय' नामक यह चूर्ण, उदर-रोगरूपी सुमेरु को भेदने के लिये साक्षात् वज्र है ॥ ४० ॥

आंबाहलदी, साबूदाना, टंकण, हींग, पांसुज-नमक, सज्जीक्षार, सौवर्चल, लहसुन, एरंडफल और एलिया प्रत्येक दो दो तोला लेकर इनका कल्क करलें। इस कल्क को,

---

१–आरग्वधस्यामफलिका खण्डानि। २–कर्मधारयः। शुष्कक्षुण्णानीत्यर्थः। ३–आढके दीप्यके प्रस्थं सौवर्चलं दत्वा घरट्टयन्त्रेण संपिष्य विशालाफलपञ्चशत्या विभाव्य चूर्णं शोषयेत्। ४–अत्र समुद्रक्षारोऽपि मेलनीयः। ५–एरण्डफलम्।

पलकं द्विद्वितोलानि द्रव्याणीमानि कल्कयेत् ।
एरण्डतिलतैलाभ्यां कल्कमालोडयेद्भिषक् ॥ ४२ ॥
मले लुलायकन्यायास्तन्मूत्रेण शनैः पचेत् ।
सान्द्रं भवेद्यदा पाकात्तदा तमवतारयेत् ॥ ४३ ॥
घृताक्तान्यर्कपत्राणि तापितानि कृशानुना ।
जठरोपरि विस्तीर्य सिद्धकल्कं प्रसारयेत् ॥ ४४ ॥
अर्कपत्रैः समाच्छाद्य वाढं पट्टेन बन्धयेत् ।
तूलेन स्वेदयित्वैवमुदरं तु प्रसाधयेत् ॥ ४५ ॥
२५ उत्स्विन्नतन्दुलीयं लशुननिशास्वर्चकटङ्कणैलेयैः ।
रामठसुरभिणि तैले भर्जितमुदरेषु वध्नीत ॥ ४६ ॥
२६ अजापुरीपक्षतपत्रटङ्कणं पटुक्षपाक्षारगुडैलहिङ्गुभिः ।
कुर्यात् प्रदेहं गुरुदर्शिताध्वा विड्ग्रन्थिशान्त्यै सरसोनतैलैः ॥ ४७ ॥

एरड तथा तिल-तैल में अच्छी तरह मिलादेवें । अब, इसको माहिष वत्सा के सोलह तोला गोबर तथा मूत्र में धीरे धीरे पकावें । पकते पकते जब यह घट्ट हो जाये तब उसे उतारलें । अब, आकडे के घृताक्त अग्नितप्त पत्तों को पेट पर फैलाकर, इन पत्तों को उपरोक्त विधि से सिद्ध किये गये कल्क से प्रलिप्त करदें । इस कल्क के ऊपर पुन अर्क-पत्र फैलाकर पेट को वस्त्र से अच्छी तरह कसकर बाध दे । अब, उष्ण कपास के सेकद्वारा स्वेदन करते हुये उदर-रोग पर विजय सिद्धि करें ॥ ४१-४५ ॥

चौसठ तोला चावलों को पानी के योगविना, स्विन्न करके उसमें, लहसुन, हरिद्रा, सौवर्चल, टकण तथा एलिया एक एक तोला लेकर, तथा इनका कल्क बनाकर, मिला देवें । एक तोलाभर हींग से सुरभित सोलह तोला एरड तैल से, उपरोक्त तन्दुलीयादिकल्क को अग्निपर भूनकर, उदर-विकारों में पेट पर लेप करें, या बाध दे ॥ ४६ ॥

अजापुरीष के चौसठ तोला कल्क को चौसठ तोला रसोन से सिद्ध किये गये तैल में भून लें । क्षत-पत्र (घावपात) के २५६ तोला रसमें चौसठ तोला गुड को मिला एक रस करके वस्त्र से छान लेवें । इस रस में, उपरोक्त भूना हुआ कल्क मिलाकर उकाल लेवें । इसमें टकण, लवण, हरिद्रा, सज्जीखार, गुड, एलिया और हींग के करीब सोलह तोलाभर चूर्ण का प्रक्षेप करें । गुरुप्रदर्शित इस प्रकार की विधि से निर्मित यह प्रदेह मल-ग्रंथि को शिथिल कर देता है ॥ ४७ ॥

१-महिषीवत्सायाः मले कुडवमात्रे । २-तन्दुलीयप्रस्थं निरम्बु समुत्स्वेद्य प्रत्येकं तोलकानि लशुनादीनि कल्कीकृत्य समेलयेत् । अथ च कुडवोन्मिते तैले हिङ्गुतोलकं प्रविकीर्य तन्दुलीयादिकल्कं विनिक्षिप्य भर्जयेदित्युपदेहमार्गः । ३-'घावपात' इति लोके प्रसिद्धिः । ४-अजापुरीषक्षोदप्रस्थं प्रस्थतैलभर्जितं कृत्वा चतुःप्रस्थक्षतपत्ररसे गुडप्रस्थं सगाल्य तद्रसं सम्राप्य च तत्र क्षिपेत्, तदनु कुडवमितं द्रव्यजातं प्रक्षिपेदिति मार्गः ।

२७ तनूकृतान्यर्कदलानि पीतामेरण्डतैलं लवणं तमाखुम् ।
एकत्र संसाध्य समस्तमेतत् पट्टेन कोष्ठोपरि चोपनह्यात् ॥ ४८ ॥

२८ उत्कारिता भास्करमूलवल्कसिद्धा जलान्तः स्फटिकासहाया ।
पटेन गूढे यकृति प्रदत्ता भिनत्ति वृद्धं यकृतं[1] क्रमेण ॥ ४९ ॥

२९ ससौवर्चलसौभाग्यैः पुटपक्वस्नुहीरसैः ।
अङ्गारमण्डकः कल्प्यः शोथोदरनिवृत्तये ॥ ५० ॥
जठरेषु पिपासायामौष्ट्रं गव्यं पयः परम् ।
आग्रहे तु तयोरेव जलं युञ्जीत युक्तिजम्[2] ॥ ५१ ॥

— इत्युदरचिकित्सितम् । —

अथ शोथचिकित्सितम्[3] ।

अथो दशाक्षः शरकार्मुकच्छुरीदम्भोलिघण्टास्फुटपाणिपञ्चकः ।
तीक्ष्णो विशेषादतिसाररोगिणां प्राणप्रहारी श्वयथुः[4] प्रदिष्टः ॥ १ ॥

आकडे के पत्तों के छोटे छोटे टुकडे, एरंडतैल, लवण तथा परिपक्व अतएव पीत तमाखु-पत्र, इन सबको एकत्र सिद्ध करके पेट के ऊपर वस्त्रसे अच्छी तरह बांध देवें। इससे भी मल-ग्रंथी ढीली पड जाती है ॥ ४८ ॥

स्फटिकासहित आकडे की मूल-त्वक् में जल मिलाकर उसकी उत्कारिका (पुल्टिस्) बनाकर वस्त्र में लपेट यकृत् स्थल पर रखने से परिवृद्ध यकृत् आदि क्रमशः शमित होजाते हैं ॥ ४९ ॥ उदर-शोथ की निवृत्ति के लिये, सौवर्चल, टंकण तथा पुटपक्व स्नुही-क्षीर से 'अंगार मंडक' बाटियां बनावें। उदर के विकारों में प्यास लगने पर ऊंटनी अथवा गाय के दूध का पान परम प्रशस्त माना गया है। यदि रुग्ण जल पीने का हठ पकडले तो उपरोक्त दूध का, नलिकायंत्रसे अर्क-जल निकाल लें। प्यास लगने पर, पानार्थ इसी जल का उपयोग करें ॥ ५०–५१ ॥

— उदरचिकित्सा समाप्त —

— शोथचिकित्सा (कुल प्रयोग ६) —

अब श्वयथु का स्वरूप सुनिये — श्वयथु दश नेत्रों वाला, शर, शंख, छुरी, वज्र तथा घण्टा से सुसज्ज पांच भुजाओं वाला, विशेषतया अतिसारपीडितों का प्राण हरने वाला एवं कठोर कहा गया है ॥ १ ॥

गोरखमुण्डी तथा सैंधव का कषाय उग्र-शोथ का कलेवा (भक्षण) कर जाता है। उपरोक्त कषाय में गोरखमुंडी का फल तथा सैंधव एक एक तोला तथा जल २५६

१—प्लीहानमपि । २—अर्कवद्यन्त्रयुक्त्या निष्पादितम् । ३—उत्सेधसाधर्म्यादनुक्रमाच्च शोथचिकित्सितमुच्यते । ४—श्वयथुरोगमूर्तिवर्णनम् ।

१ गोरक्षमुण्डीपट्टजः कषायः शोथं महान्त कवलीकरोति।
मुण्ड्या फल सैन्धवत पिचू द्वौ जलाढक शेपय सागराशम् ॥ २ ॥

२ कारवीदीप्यवर्षाभूमधुरा एकभागिका।
काकमाच्यास्तु भागौ द्वौ सिद्धोऽर्कः शोथघस्मरः ॥ ३ ॥

३ पलमानानि वार्न्तानि शलाटूनि मरुद्रुतः।
जर्जरीकृत्य गीर्णानि निघ्नन्ति श्वयथुं क्रमात् ॥ ४ ॥

४ भस्मनि द्रोणपुष्पीजे मल्लस्तद्रससस्थितः।
अष्टयामाग्निससिद्धो यतानां शोथमान्द्यनुत् ॥ ५ ॥

५ अधितप्ततैलममल सिक्थं निर्गाल्य तेन लिप्तानि।
चञ्चिदलानि निहन्युर्बद्धानि श्वयथुमनिलोत्थम् ॥ ६ ॥

६ स्त्यानभाव स्फुटयता स्फटिकाप्रतिसारणात्।
दुग्धेनाभ्यञ्जनं हन्ति शोथमारुष्करोद्भवम् ॥ ७ ॥

– इति शोथचिकित्सितम्। –

तोला लेवे। चतुर्थांश जल शेष रहने पर इसी सिद्ध कषाय को ४५ दिवस तक पीये ॥ २ ॥ कालाजीरा, अजवायन, पुनर्नवा और सौंफ एकत्र एकभाग, काकमाची दो भाग इनको लेकर अर्क निकाल लें यह अर्क शोथ को नष्ट कर देता है ॥ ३ ॥ कैर के कच्चे सूखे फल चार तोला लेकर जौकुट करलें। इसकी फाकी क्रमश शोथ को हटा देती है ॥ ४ ॥ द्रोणपुष्पी के रस मे सात दिवस पर्यंत भावित एक तोला मल्ल को द्रोणपुष्पी के पचाग की ३२० तोला भस्म में रखकर आठ प्रहर अग्नि देकर सिद्ध करले। लवणरहित घृतमिश्रित गेहूं की फूली तथा दूध को पथ्य रूपसे लेते हुये इस सिद्ध मल्ल का सेवन करने से शोथ तथा मन्दाग्नि नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥ सिक्थ (मोम) को गरम तैल मे पिघलाकर वस्त्रपूत करले। एरड के पत्तो को, इससे चुपडकर, वात प्रधान शोथ पर वस्त्र से बाध दे। इससे शोथ उतर जाता है ॥ ६ ॥ फिटकरी के योग से किंचित् घट्ट बने हुये दूध द्वारा मर्दन (अभ्यग) करने से भिलावे के रस-स्पर्श से उत्पन्न शोथ नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

– शोथचिकित्सा समाप्त –

१–सक्तमाधित एवाय कषायश्च पञ्चदिनानि पेय। २–शतपुष्पा। ३–चिरपोटिकाया। ४–'शुष्के वानम्' इत्यमर। ५–'कैर' इति ख्यातस्य वृक्षविशेषस्य। ६–पञ्चप्रस्थप्रमाणे। ७–मल्लस्तोलकमित सप्तदिनानि तद्रसभावित। ८–पथ्य च किंचिद्घृतप्रक्षिता विलवणा फुल्लिका दुग्ध च। ९–मधूच्छिष्टम्। १०–भल्लातकरससंस्पर्शोद्भवम्।

अथ वृद्धिवर्ध्मचिकित्सितम्[1]।

१ तैलं कटाहे कियदेव दत्त्वा तत्राग्निना भर्जय हस्तिलेण्डम्[2]।
बधान पट्टेन नखम्पचोष्मप्रणाशहेतोर्वृषणप्रवृद्धेः ॥ १ ॥
२ उत्कारिका वज्रकधान्यपिष्टजा बद्धा सुखोष्णा वृषणानिले मता।
३ तैलं तिलाः किंशुकपुष्पमम्भसा संसाध्य बध्नीत यथायथं भिषक् ॥२॥
४ पानीयपर्युक्षणलब्धमार्दवं नखम्पजोष्णीकृतमग्निदर्शनात्।
बध्नीत विष्वग्वृषणं प्रयत्नतो वृद्धिर्गदस्तेन शमं प्रपद्यते ॥ ३ ॥
५ विषमुष्टिकरोहिषतृणलेपो गोमूत्रकल्पितः कोष्णः।
उत्पद्यमानरूपं वर्ध्म विशेषेण विघटयति ॥ ४ ॥
६ वर्ध्म जयति पुरकणपुरसिह्लकसिन्दूरकल्पितो[3] लेपः।
किं त्वत्र चतुर्यामं वनोपलाङ्गारतस्तापः ॥ ५ ॥
७ प्रलेपो रूक्षसौभाग्यशुक्लगुन्द्रो[4]रसाञ्जनैः।
अङ्गारतापनाद्वर्ध्मकक्षाग्रन्थीन्निवारयेत् ॥ ६ ॥

— अण्डवृद्धि - वर्ध्मचिकित्सा (कुल प्रयोग—१०) —

हाथी की लीद को कटाह-गत थोडे से तैल में अग्निद्वारा भूनलें। इसको नो निवाया करके पीडित स्थानपर वस्त्र से बांध दें। वृषणवृद्धि इससे शान्त हो जाती है ॥ १ ॥ वृषण-वायुविकार में, बाजरे के आटे की सुखोष्ण उत्कारिका बांधने से लाभ होता है। इसी तरह, वैद्य, समुचित प्रकार से किंशुकपुष्प-रस में सिद्ध तिल तथा तैल की उत्कारिका बना कर बांधे ॥ २ ॥ पानी के प्रोक्षणद्वारा वृषण को मृदु बनाकर तथा अग्निसंपर्क से उसे यत्किंचित् गरम करके, उसको चारों ओर से यत्नपूर्वक वस्त्र द्वारा बांध देने से वृद्धिविकार शांत हो जाता है ॥ ३ ॥ गोमूत्र से सिद्ध की गयी-कुचला तथा रोहिष घास की कोष्ण उत्कारिका, वंक्षण-प्रदेश में उत्पद्यमान ग्रंथि-वर्ध्म (बद) को बिखेर देती है ॥ ४ ॥ चार प्रहर तक वन्यकंडों की अग्नि-ताप से प्रतप्त माहिष-गुग्गुल, कणगूगली तथा शिलारस से सिद्ध किया गया प्रलेप, बद को वश में कर लेता है ॥ ५ ॥ शिग्रु के बीज (मरिच विशेष), टंकण, श्वेतगूंद तथा रसांजन का प्रलेप करके, अंगार की ऊष्मा देने से वर्ध्म तथा कक्षा-ग्रंथि का निवारण होता है ॥ ६ ॥

१—शोथसधर्मत्वादण्डवृद्धिवर्ध्मचिकित्सितमुच्यते। वर्ध्म च वंक्षणजो ग्रन्थिविशेषो लोके 'बद' इति ख्यातः। २—हस्तिपुरीषम्। ३—पुरं महिषाख्यो गुग्गुलुः, कणपुरं च 'कणगूगली' इति ख्यातस्तद्भेदः। सिह्लकः 'शिलारस' इति ख्यातो निर्यासविशेषः। ४—शुक्लगुन्द्रो लोके 'धोलो गूंद' इति ख्यातः।

अयं मलहरोत्तमो दामोदरसमर्थितः ।
व्रणविस्फोटकग्रन्थिप्रभृतिक्षपणक्षमः ॥ ४ ॥

४ मृताश्मौ टङ्कणं तुत्थं कत्थकम्पिल्लकोषणम् ।
कारवी चेति पलिकं पूगीफलचतुष्टयम् ॥ ५ ॥
कपर्दिकाश्चतस्रोऽथ कर्पूरो नवमाषकः ।
वलक्षकज्जलात् किं च माषा अष्टादश स्मृताः ॥ ६ ॥
कारवीमरिचोद्वेगान्यर्धदग्धानि कल्पयेत् ।
वराटीनां तु भसितं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ७ ॥
पटपूतं प्रणीयाज्ये क्षालयेद्बहुशो जलैः ।
एष हन्यान्मलहरो ग्रन्थिस्फोटव्रणादिकान् ॥ ८ ॥

५ पलं शिखरिबीजानां मधुनः कवलग्रहः ।
सर्पिः पलं विपक्तव्यं व्रणान्मलहरो हरेत् ॥ ९ ॥

६ बीकाहोसिद्धतैलार्द्रतूलस्रोतोऽवचारितः ।
नरगोवाजिकरिणां विनिहन्ति व्रणक्रिमीन् ॥ १० ॥

की कज्जली, इससे अर्धमात्राभर मरिच-इनको गोघृत में मिला सौवार धो डालिये। यह मलहर-रत्न, जिसके समर्थक मेरे पैतृष्वसीय ज्येष्ठभ्राता श्री दामोदर हैं, व्रण, विस्फोट, ग्रंथि प्रभृति को नष्ट कर देने में समर्थ माना गया है ॥ ३-४ ॥ मुरदासींग, टंकण, तुत्थ, खैरसार, कबीला, मरिच तथा अजमोदा प्रत्येक चार चार तोला (टिप्पणीकार के मतानुसार प्रत्येक ३६ माषा) सुपारी नग चार, पीली कपर्दिका नग चार, कपूर नौ माषा, सफेद काजल अठारह माषा लेवें। अजमोदा, मरिच तथा सुपारी को प्रथम अर्धदग्ध बनालें। कपर्दिका को जलाकर उसकी भस्म करलें। फिर इनका एकत्र वस्त्रपूत सूक्ष्मचूर्ण बना, चूर्ण से चतुर्गुण अथवा तिगुणे घृत में मिलाकर पुनः पुनः (सौ वार) जल से धोवें। यह मलहर ग्रंथि, स्फोट, व्रण, दद्रु आदि को नष्ट कर देता है ॥ ५-८ ॥ अपामार्ग के बीज चार तोला, शहद एक तोला, इन दोनों को चार तोला घृत में पकावें। यह मलहर और व्रणहर कहा गया है ॥ ९ ॥ बीकामाली में सिद्ध तैल से सिक्त-कपास स्रोत को लगाने से मनुष्य, गाय, घोड़ा तथा हाथी के व्रण तथा तत्-गत क्रिमि-समूह नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

१-अयं गुरूणां पैतृष्वसीयो ज्येष्ठभ्रातेति ज्ञेयम् । २-'मुरदासींग' इति ख्यातः । ३-निर्देशस्य द्रव्यप्रधानत्वात् पृथक्पलिकम् । पलमत्र षट्त्रिंशन्माषिकं सकेतितम् । ४-पीता इति शेषः । ५-लोके 'सफेद काजल' इति ख्यातात् । ६-उद्वेग पूगीफलम् । ७-सर्वसंभारतश्चतुर्गुणे त्रिगुणे वा । ८-शतकृत्व केचित् क्षालनं नेच्छन्ति । ९-आदि-शब्दाद्दद्रुप्रभृतीनां ग्रहणम् । १०-अपामार्गबीजानाम् । ११-कर्षे "सुवर्णं कवलग्रह" इति दर्शनात् । १२-'बीकामाली' इति प्रसिद्ध ।

७ एकं शुद्धं शिलाजतु पयोभि[1]रालोड्य लेपेन ।
सद्योजातं[2] जयति क्षतजातमसृग्विबोध्यं[3] तत्रस्थम् ॥ ११ ॥
८ कोष्ठ[4]विभेदविनिर्गतमन्त्रं परुषीकृतं समीरेण ।
मक्षीपुरीषपृक्तैः पयोभिरभ्युक्षितं विशत्यन्तः ॥ १२ ॥

– इति व्रणचिकित्सितम् । –

अथ भग्न[5]चिकित्सितम् ।

१ सिक्थं[6] शरावकलितं त्रयः प्रस्थाः पटूत्तमात् ।
मल्लो जातीफलं जातीपत्रिकाकल्लकं सुमम्[7] ॥ १ ॥
चतुर्गद्याणमानेन पृथगेतानि संहरेत् ।
शरावार्धप्रमाणेन मिता ज्योतिष्मती मता ॥ २ ॥
पार्श्व[8]च्छिद्रे डमरुणि[9] यन्त्रे सर्वं निधाय तत् ।
अधिचुल्लि समारोप्य यन्त्रं साचीकृतं मनाक् ॥ ३ ॥
प्रज्वाल्य तदधो वह्निं पातयेत्तैलमुत्तमम् ।
तत्तैलं भग्नसंधानं बल्यं भक्षणमर्दनात् ॥ ४ ॥
२ चिञ्चाफलमांसं[10] रसं भूमौ क्षिप्त्वा विमर्द्य करतलतः ।
लिम्पेत चूर्ण[11]सहितं तापय शिखिना[12]ऽभिघातपीडायाम् ॥ ५ ॥

पानी में घोलकर केवल शिलाजीत का प्रलेप, शस्त्रादि से उत्पन्न सद्यः व्रण को मिटा देता है। लेप करने से पूर्व, व्रण को प्रच्छान से छेदकर उसमें से थोडा रुधिर निकाल लेना चाहिये ॥ ११ ॥ कोष्ठ में से अन्त्र बाहर निकलकर वायु के कारण यदि कठिन बन गया हो तो जल को माखी के पुरीष में घोलकर उससे कठिन भाग पर मालिश करें। इस तरह मर्दन करने से, काठिन्य के विलय होने पर, अंत्र सरलता से भीतर चला जाता है ॥ १२ ॥　　– व्रणचिकित्सा समाप्त –

– भग्नचिकित्सा (कुल प्रयोग ६) –

मधूच्छिष्ट बत्तीस तोला, सैंधव १९२ तोला तथा मल्ल, जायफल, जावित्री, अकलकरा और लविंग प्रत्येक दो दो तोला तथा ज्योतिष्मती सोलह तोला, इनका डमरुयंत्र-द्वारा तैल टपकालें। डमरुयंत्र की उपरिस्थ-स्थाली के पार्श्व में छिद्र करलें - तथा यंत्र को चूल्हे पर थोडा टेढा करके स्थापित करें। इस तैल के मर्दन से भग्नसंधान होता है

१–जलैः। २–शस्त्रादिजम्। ३–प्रच्छानेन रुधिरं प्रदर्श्य लेपः कार्यः। ४–कोष्ठ-विनिःसृतान्त्रस्य कठिनीभूतस्यान्तःप्रवेशनार्थं मार्दवोपायोऽयम्। ५–भग्नोऽप्यभिघातादेव संभवति, अतः प्रोच्यते तच्चिकित्सा। ६–मधूच्छिष्टम्। ७–लवङ्गम्। ८–उपरिस्थ-स्थालीपार्श्वे छिद्रं कार्यम्। ९–"यन्त्रं डमरुसंज्ञं स्यात्तत्स्थाल्योर्मुद्रिते मुखे" इत्युक्तस्वरूपे। १०–चिञ्चाफलमांसे जलं दत्त्वा रसः कार्यः, तं रसं चूर्णेन सह भूमौ क्षिप्त्वा विमृद्य गृह्णीयात्। ११–चूर्णं लोके 'चूना' इति प्रसिद्धम्। १२–अङ्गाराग्निना।

३ न्युंसनिशैः पटैर्घटितैस्तैलान्तर्जातझङ्कृतिभ्रष्टैः ।
निम्बुकशकलैः स्वेदय गात्रं लकुटादिरुग्णमतिमात्रम् ॥ ६ ॥
४ सद्य कुलालपचनोद्धृतकुम्भखण्डे भ्रष्टेन खाखसपयः सुतकर्पटेन ।
उच्चैः प्रपातकुपितानिलरुग्णमङ्गमाच्छादयेत्प्रबलरुक्प्रशमाय भग्नम् ७
५ अभिघातरुग्णरदनप्रकीर्णरुधिरप्रवाहरोधाय ।
अभ्यञ्जनमेव परं नवोद्धृतेरश्वलेण्डरसैः ॥ ८ ॥
६ शृङ्गादिभिन्नादुदराद्विरीयाद्धस्तादिकं गर्भगतस्य जन्तो ।
संततसूचीमुखविद्धमन्तर्विशेद्विधिः क्वापि मयैष दृष्टः ॥ ९ ॥

— इति भग्नचिकित्सितम् । —

अथ नाडीव्रणचिकित्सितम् ।

१ घुसृणं सराजहंसं नाडीव्रणवारि वारिणा पीतम् ।
यावन्तोऽब्दा नाडीव्रणस्य तावन्त एव घुसृणाक्षाः ॥ १ ॥

तथा खाने से बल प्राप्त होता है ॥१-४॥ इमली के गूदे को पानी में घोलकर एक रस बनालें । इस रस में चूना मिला, भूमि पर डाल खूब मसल लेवें । इसका भग्न स्थान पर लेप करके उस स्थान को अग्नि से तपावें । इस तरह करने से भग्नजन्य पीडा शान्त हो जाती है ॥ ५ ॥ हरिद्रारस से प्रलिप्त निंबू के टुकडों को तैल में छौंककर, पोटली में बांध उसके द्वारा, लकडी के प्रहारों से पीडित-रुग्ण के शरीर का, खूब स्वेदन करें । इससे प्रहारजन्य वेदना नष्ट हो जाती है । हरिद्रारस से प्रलिप्त निंबू के टुकडों को गरम तेल में छौंककर शीघ्र उतार लेना चाहिये अर्थात् छौंकन की झंकृत-ध्वनि समकाल में ही उतार लें । अर्थात् इन्हें अधिक नहीं भूनें ॥ ६ ॥ हाव में से निकाले गये सद्यस्क मृत्पात्र के टुकडे पर, खाखस दूध से सिक्त वस्त्रखण्ड को तपालें । ऊंची जगह से गिर पडने के कारण वात-प्रकोपजन्य वेदना-पूर्ण स्थान पर इस वस्त्रखण्ड को लपेट दें । भग्नजन्य प्रबल वेदना इससे प्रशमित हो जाती है ॥ ७ ॥ चोट लगने से, रुग्ण के ढीले पडे हुये दांतों में से निकलते हुये रुधिर प्रवाह को रोकने के लिये, अश्व की सद्यस्क लीद के रस का अभ्यंजन उत्तम प्रयोग है ॥ ८ ॥ पशुओं के विषाण आदि से भिन्न उदर में से, गर्भस्थ बालक का हस्तादि अंग यदि बाहर निकल आया हो तो, बहिर्गत उस अंग को प्रतत सूचीमुखद्वारा विद्ध करने से वह अन्दर चला जाता है । इस विधि को मैंने एक जगह प्रत्यक्ष देखी है ॥ ९ ॥ — भग्नचिकित्सा समाप्त —

— नाडीव्रणचिकित्सा (कुल प्रयोग ११) —

हंसराज के चूर्ण में केसर मिलाकर जल के साथ पीने से नाडीव्रण मिट जाता है । नाडीव्रण जितने वर्ष पुराणा हो उतने ही तोला (टिप्पणीकार के मत में उतने ही शाण

१—चर्चितहरिद्रैः । २—स्वेदनवाले पटचक्रैरित्यर्थः । ३—कुलालपचन 'हाव' इति प्रसिद्धम् । ४—अश्वपुरीषरसैः । ५—प्रमादादनुपचरितव्रणस्यैव नाडीव्रणत्वमतस्तदनन्तरं

२ नृशिरोस्थिभस्म हविषा चत्वारिंशद्दिनानि परिलीढम्[२] ।
क्षरदस्थिशलाकमपि क्षिणोति नाडीव्रणं ब्रूमः ॥ २ ॥
३ सौभाग्यक्षारसिन्दूरकम्पिल्लकयवानिकाः ।
पृथक् पिचून्मिताः[३] सिक्थसर्जौ षट्तोलकौ[४] तथा ॥ ३ ॥
तालं तुत्थं च मरिचं निम्बमज्जा शवोपलम्[६] ।
ककेरकच्छदाः सूतो निर्दिष्टा द्विद्विमाषकाः ॥ ४ ॥
चतस्रः शुक्तयः क्षुद्रा गन्धकात् सप्त वल्लकाः ।
माषैकं रामठं किं च शशी द्वादशमाषकः ॥ ५ ॥
सर्पिषः कुडवे सर्वं यथारीति विमर्दयेत् ।
न स्युर्मलहरादस्मान्नाडीप्रभृतयो व्रणाः ॥ ६ ॥
४ षष्टिमाषो मरुद्धूपः सिक्थमष्टादशोन्मितम् ।
कत्थं मस्तङ्गिका स्यातां प्रत्येकं दशमाषके ॥ ७ ॥

भर मात्रा में) केसर लेना चाहिये । अर्थात् यदि व्रण एक वर्ष पुराणा हो तो केसर एक तोला (अथवा एक शाण) दो वर्ष पुराणा हो तो दो तोला (अथवा दो शाण) इत्यादि । प्रयोगकाल में लवणवर्जित रूक्ष - फुलके - रोटी पथ्य है ॥ १ ॥ मनुष्य - मस्तक की अस्थि - भस्म को मधु के साथ चालीस दिवस पर्यंत लेने से अथवा इसके लेप से अस्थिक्षय करने वाला नाडीव्रण भी दूर हो जाता है । अस्थिचूर्ण की मात्रा एक माषा भर है । तैल, नमक तथा अम्लपदार्थ वर्ज्य हैं ॥ २ ॥

सौभाग्य, सज्जीखार, सिंदूर, कपीला, अजवायन प्रत्येक नौ माषा; सिक्थ तथा सर्जरस प्रत्येक छह तोला; ताल, तुत्थ, मरिच, निंबोली की मज्जा, मुरदासींग, ककेज के पत्ते तथा पारद प्रत्येक दो दो माषा; छोटी शुक्ति नग चार; गंधक तीन माषा (सात-वालः—तीन माषा से एक वाल अधिक); हींग एक माषा; कपूर बारह माषा तथा घी सोलह माषा - इन सभी औषधीयद्रव्यों को लेकर इनका निम्नविधि से मलहर निर्माण कर लें । प्रथम सिक्थ को सोलह तोला घी में पिघलालें । फिर, पारद गंधक की कज्जली सहित, टंकणादिद्रव्य - समूह के सूक्ष्म - कपडछान चूर्ण को इस द्रव में मिलाकर खरल में खूब घोटलें । इस मलहर से नाडी आदिके व्रण शीघ्र भर जाते हैं ॥ ३–६ ॥

राल साठ माषा, सिक्थ अठारह माषा, कत्था और रूमीमस्तगी प्रत्येक दश

तच्चिकित्सितमुच्यते । ६–कुङ्कुमम् । ७–'हंसराज' इति नाम्ना प्रसिद्धेन तृणविशेषेण सहितम् । ८–नाडीव्रणवारणकारीत्यर्थः । ९–अत्राक्षशब्दस्तोलकपरः, मात्रा चास्य शाण-प्रमाणा । अलवणरूक्षपोलिका पथ्यम् ।

१–मात्रा चास्य माषैकमिता, पथ्यं तैलाम्ललवणवर्जम् । २–परिलीढमित्युपलक्षणं, तेन लेपोऽपि विधेयः । ३–पिचुरत्र नवमाषको विवक्षितः । ४–पृथगित्यर्थः । ५–निम्बफला-स्थिमज्जा । ६–मुर्दासीङ्गी । ७–'ककोडा' इति नाम्ना लोकज्ञेयस्य वृक्षविशेषस्य पत्राणि । ८–रीतिरत्रेयं–तप्तघृते शिक्थं द्रवीकृत्य, टङ्कणक्षारादि सर्वं द्रव्यजातं मसृणीकृतं मेलयित्वा, दृढं खल्वे मर्दयित्वा, समवचारयेदिति । ९–रालः ।

षण्माष॰ शवपाषाणहङ्कणं दरदं पुन॰ ।
सिन्दूरमेकमाषाणि घृतं कुडवमात्रकम् ॥ ८ ॥
विनिक्षिपेद्घृते तप्ते चूर्णमेतद्यथायथम् ।
किंचिद्विश्रम्य वसनपूतं पात्रे निधापयेत् ॥ ९ ॥
एष सिद्धो मलहरः परिपूरणलेपनैः ।
नाडीव्रणक्षतस्फोटपिटिकाग्रन्थिघस्मर॰ ॥ १० ॥

५ आर्कमंकुष्ठद्विदलं पयोभिराप्लाव्य सप्ताहमय॰प्रभृष्टम् ।
घृतेन पिष्ट्वा परिलेपितं तन्निहन्ति नाडीव्रणमप्यसाध्यम् ॥ ११ ॥

६ मदनफलबीजकलितो गुग्गुलुरेको जलेन सपिष्ट॰ ।
नाडीव्रणमुत्तान लेपेन हन्ति गभीरमपि वर्त्या ॥ १२ ॥

७ नरगजनखरककेलकंकिशलययादामसिक्थमुर्दारम् ।
प्रत्नघृतभर्जितमयसि घृष्टमरिष्टेन नाडीघ्नम् ॥ १३ ॥

मापा, मुरदामींगी छह मापा, टंकण हिंगुल और सिंदूर प्रत्येक एक मापा तथा घृत सोलह तोला लेवें । प्रथम, सिक्थ को गरम घी में पिघलालें, फिर इसमें उपरोक्त औषधीय द्रव्यो का वस्त्रपूत सूक्ष्मचूर्ण मिला देवें । कुछ समय पश्चात्, इन सबको वस्त्र में से छानकर पात्र में भरदें । इसके पर्याप्त-लेप से नाडीव्रण, क्षतस्फोट, फुन्सिया तथा ग्रथिया नष्ट हो जाती हैं ॥ ७–१० ॥

लोहकढाह में भर्जित-जौकुट-मकुष्ठ को, एक सप्ताह पर्यंत आकडे के दूध में भिगोकर रखदें । फिर इसको, लोह के खरल में घी मिलाकर खूब घोटलें । इसके लेप से असाध्य नाडीव्रण भी मिट जाता है ॥ ११ ॥ मदनफल के बीज के साथ केवल गुग्गुल को ही पानी से पीसकर, उसकी वर्ति बना लेप करने से प्रवृद्ध तथा गभीर नाडीव्रण भी नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥ मनुष्य तथा हाथी के नख प्रत्येक २–२ माषा, ककेरक पत्र ३ तोला, बादाम की गुठी नग १, सिक्थ और मुर्दासींगी प्रत्येक १–१ माषा तथा पुराणा घी छह तोला-इनको लेकर, प्रथम, घी को कढाह में पिघला कर उसमें दोनों प्रकार के नख डाल देवें, फिर, ककेरक के पत्ते, फिर, यथाक्रम मुर्दासींगी, सिक्थ एव बादाम की गुठी डालकर इन सभी द्रव्यों को भूनलें । तत्पश्चात्, कढाहगत औषधीय द्रव्यों को, एक दिवस भर, निंबकी स्थूल शाखा से हिलाते रहें ।

१–पेषणमपि लोहपात्र एव । २–'ककेरा' इति ख्यातस्य कण्टकिनो वृक्षविशेषस्य किशलयानि, प्रक्रिया चास्य दशवर्षोषित पुराणघृत षट्तोलकं, तदर्धमानसितानि ककेरकपत्राणि, नरद्वय पृथग् द्विद्विमाष, शिक्थमुर्दारे पृथङ्माषिके, बादामगुल्यैकेति । प्रक्रिया च अधिस्टाहमधिश्रृते घृते पूर्वं नरद्वय, तत किसलयानि, ततो मुर्दारम्, अनु शिक्थ, पश्चाद्बादामगुल्यि निक्षिप्य भर्जयेत्, ततो निम्बकाष्ठेन तस्मिन्नेव कटाहे दिनमेकं विमर्द्य, पट्पूत निधाय, नाडीव्रणे पूरयेत्, यत्र पटावलम्ब रिक्त भवेत् तद्गुन्थ्यादिलेपेऽवचरेत् ।

८ कूर्मकपालास्थिकृतं भस्म शिलायां विशिष्य घृतघृष्टम् ।
पूरयति गभीरमपि प्रसह्य नाडीव्रणं ब्रूमः ॥ १४ ॥
९ जन्तुफलवल्कमध्यं कल्कीकृत्य किल सुरभिमूत्रेण[1] ।
विधिवद्[2]विधान कोष्णं गम्भीरादृष्टनाडिकाशान्त्यै ॥ १५ ॥
१० विरचय मलहरराजं छोहाराभस्म सर्पिषाऽऽमर्द्य ।
नाडी नश्यति निभृता तेन प्लोतप्रलिप्तेन ॥ १६ ॥
११ धूमयन्त्रसमुच्छि[3]ष्टकांक्षी[4]वातारिपल्लवैः ।
धूमयन्त्राम्बुना बद्धा वट्यो[5] नाडीव्रणापहाः ॥ १७ ॥

— इति नाडीव्रणचिकित्सितम् । —

अथ भगन्दर[6]चिकित्सितम् ।

भगन्दरः प्रांशुविशीर्णकेशो विशिष्य हृन्नाभिविबन्धभीष्मः ।
महाबलीवर्दघनोन्नतांसः पीठासनः पङ्गुररीन् हिनस्तु ॥ १ ॥

अंत में, वस्त्रपूत करके, इस विधि से सिद्ध इस द्रव-द्रव्य को नाडीव्रण में भरदें । वस्त्र-संलग्न किट्ट का उपयोग ग्रंथि आदि के प्रलेप में करें । इससे नाडीव्रण नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥ कूर्म के कपालास्थि की भस्म बना कर, शिलापर घी के साथ अच्छी तरह पीसलें । यह गहरे नाडीव्रण को भी संपूर्णतया भर देती है । हम प्रमाण हैं । ॥ १४ ॥ गोमूत्र से उदुम्बर की छाल का कल्क करके उसे थोडा घी में भून लेवें । इसे कवोष्ण करके व्रण पर बांध देवें । यह गहरे तथा अदृष्ट नाडीव्रण को शमन कर देता है ॥ १५ ॥ छुहारे की भस्म को घृत से मर्दित करके 'मलहरराज' निर्माण करलें । इस मलहर से प्रलिप्त-प्लोत को व्रण पर बांधदें । इससे नाडीव्रण चुपचाप नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥ हुक्का का गुल, खरेंटी के बीज तथा एरंड के पत्ते इनको हुक्के के जल से पीसकर वटी बनालें । इस वटी से लिप्त प्लोत को बांधने से नाडीव्रण मिट जाता है ॥ १७ ॥ — नाडीव्रणचिकित्सा समाप्त —

— भगन्दरचिकित्सा (कुल प्रयोग ३) —

अस्तव्यस्त बिखरे हुये दीर्घकेशों से युक्त, महाबलिष्ठ बैल के कठिन तथा उन्नत ककुद्म के समान स्कंधवाला, हृदय तथा नाभि भाग के विबंध से अत्यंत भयंकर, पीठ पर आसीन, पंगु-भगंदर शत्रुओं का संहार करे ॥ १ ॥

१—गोमूत्रेण । २—गोमूत्रेण कल्कीकृत्य घृते मनागभर्जयित्वोपनह्यात् । ३—धूमयन्त्र-समुच्छिष्टं 'हुक्कागुल' इति प्रसिद्धम् । ४—बलाभेदस्य लौकिकसंज्ञेयम् । ५—धूमयन्त्रजलेन घृष्ट्वा प्लोतद्वारोपयुक्ताः । ६—नाडीव्रणस्यैव स्थानप्रभावाद्भगन्दरशब्दाभिधेयस्य स्वरूपवर्णन-पुरःसरमुच्यते चिकित्सितम् ।

१ नरास्थिभित्तजतुषा तैलेन परिपूरितः ।
भगन्दरः शमं याति दैवं चेन्न पराङ्मुखम् ॥ २ ॥
२ मार्जारास्थिकृतो लेपो नकुलास्थिकृतोऽथवा ।
धूपितो निम्बजाङ्गारैर्विनिहन्ति भगन्दरम् ॥ ३ ॥
३ रौमं जतु त्र्यहं पिष्टं जलार्द्रं पटलेपितम् ।
भगन्दरोपरि न्यस्तं पूयस्रावं विशोषयेत् ॥ ४ ॥

– इति भगन्दरचिकित्सा –

अथ सौजाकोपदंशचिकित्सा ।

सौजाकमान्तरं केचिदुपदंशं हि मेनिरे ।
मेहमाहुः परे चान्ये बस्तिद्वारस्थविद्रधिम् ॥ १ ॥
सौश्रुता केऽपि भिषजः पित्तशुक्रं शशङ्किरे ।
वयं मूत्रविकारत्वादुष्णवातं प्रचक्ष्महे ॥ २ ॥
१ त्रियामं घृतसेकेन कटाहे मन्दवह्निना ।
गद्याणत्रितयोन्मानं रसचन्द्रं विशोधयेत् ॥ ३ ॥

मनुष्य के अस्थिखण्डोंद्वारा सिद्ध किये गये तैल से भगन्दर को परिपूरित करदें। यदि दैव विमुख न हो तो, इससे भगन्दर शमित हो जाता है ॥ २ ॥ मार्जार अथवा नकुल की अस्थि चूर्ण के लेप से अथवा निंबू को जलाकर उसके अंगारों की धूप देने से भगन्दर नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥ रूमीमस्तगी को तीन दिवसपर्यंत पीसकर उसके चूर्ण को पानी में अच्छी तरह घोलकर उससे प्रलिप्त-वस्त्र-पट को भगन्दर पर रखने से पूयस्राव विशोषित हो जाता है ॥ ४ ॥ – भगन्दरचिकित्सा समाप्त –

– सौजाकोपदंशचिकित्सा (कुल प्रयोग ४९) –

अमुक प्राणाचार्य उपदंश को सौजाक का ही अपररूप मानते हैं। कितने ही इसको प्रमेह कहते हैं। अन्य, इसे बस्तिद्वार की विद्रधि बताते हैं। सुश्रुत, सम्प्रदाय के कितने ही वैद्य, इसमें पित्तशुक्र की आशंका करते हैं। हमारे मत में, मूत्र विकार की प्रधानता के कारण, यह वास्तव में 'उष्ण वात' रोग है ॥ १–२ ॥ अठारह माषा रसकर्पूर को, लोहकटाह में घृत द्वारा, तीन प्रहर पर्यंत मंदाग्नि देकर शुद्ध करलें।

१–'भित्त शकलम्' इति कोश । २–तैलं च पातालयन्त्ररीत्या निष्कासनीयम् । ३–रूमीमस्तगी । ४–शुष्कमेव त्र्यहं पिष्ट्वा, जलेन सघोल्य, पटलिप्तं कृत्वा भगन्दरव्रणोपरि न्यसेदिति । ५–व्रणचिकित्सितेऽभिहिते पारिशेष्यादुपदंशचिकित्सितमभिधीयते, तत्साधर्म्याच्च तदधिकार एव सौजाकस्याप्यभिधानं, तत्रापि प्रथमं सौजाकस्य निर्णयः–सौजाकमान्तरमित्यादिना । ६–रसकर्पूरम् ।

इति शुद्धं रसविधुं लवङ्गत्रुटिचूर्णकैः[1]।
खल्वे पिष्ट्वा सार्धमाषमदन्तस्पर्शमाहरेत् ॥ ४ ॥
उपदंशगलत्कुष्ठतालुकोथव्रणादिषु।
गोधूमचूर्णमं[2] पथ्यं लवणाम्लादि वर्जयेत् ॥ ५ ॥
२ पात्रे चतुःपलघृते रसचन्द्रमक्षं
सार्धं[3] द्विबिल्वकलवङ्गरजोभिघातैः[4]।
चुल्ल्यां विपाच्य पुनरुल्मुकतः प्रदीप्य
निष्काश्य[5] गोमयपुटे परितः पिधाय ॥ ६ ॥
प्रक्षाल्य शीतलजलैरनु सार्धमुष्टिं
सच्छालिभिः सह विमर्द्य वटीर्विधान[6]।
एकां घृतेन पिहितां गिल मुञ्च कौ[7] द्वौ
स्फोटोपदंशगदतो बहु चेद्बिभेषि ॥ ७ ॥
३ भाण्डे योग्यजलावापविकासितसुधाढके।
रसेन्द्राम्रमहोरात्रं दोलया शनकैः पचेत् ॥ ८ ॥

इस तरह शुद्ध किये गये रसचंद्र को, इसके समान भाग में लविंग तथा इलायची के चूर्ण सहित खरल करें। इसमें से १½ माषा चूर्ण का सेवन करें। चूर्ण लेते समय उसे दंतस्पर्श न हो यह ध्यान में रखना चाहिये। इस चूर्ण का प्रयोग उपदंश, गलित-कुष्ठ, तालु-छिद्रकोथ, व्रण आदि में करें। इसमें चूर्ण के समान वर्णवाला गेहूं का चूरमा, गेहूं की पोलिका, बाटी आदि पथ्य हैं। कटाहसिद्ध भोज्य द्रव्य वर्ज्य हैं ॥ ३–४ ॥ करीब डेढ तोला रससिंदूर को कटाहगत सोलह तोला घी में डाल दें। लौंग के दस तोला सूक्ष्म चूर्ण को, ठहर ठहर कर अल्पाल्प मात्रा से एक सो आठ वार, उपरोक्त कटाह में प्रक्षिप्त करते हुये रसकर्पूर को पकावें। अब, प्रदीप्त मशाल से उसको प्रज्वलित करके, एक थाली को उस पर ढक अग्नि को शांत करदें। फिर, रसकपूर को बाहर निकाल उसे चारों ओर गोमय से ढकदें। तत्पश्चात्, इसे पानी से धोकर, साडे चार तोला भर उत्तम जाति के शालि चांवलों सहित इसको खरल में खूब घोटकर मरिच तुल्य छोटी छोटी गोलियां बांधलें। यदि आप स्फोट तथा उपदंश रोग से भयभीत हैं तो एक गोली को घृत में रखकर निगीर्ण कर जायें। प्रयोगकाल में (दो 'क' कार) कूष्मांड तथा केला अपथ्य हैं। वाल की दाल (झालर) भी वर्ज्य है ॥ ६–७ ॥

भाण्डगत २५६ तोला सुधाखंड को, पानी डालकर, खिला लेवें। सुधाखंड को खिलाने के पूर्व ही, चार तोला रसकपूर को दोलायंत्र से, उस भाण्ड में, लटका देना

१–रसचन्द्रसममानैः। २–चूर्णस्येव मा छविर्यस्य, तल्लोके चूरमानाम्ना प्रसिद्धं भक्ष्यम्। किंच गोधूमपोलिकाङ्गारमण्डकावपि देयम्। कटाहसिद्धं न किमपि देयमिति नियमः। ३–सार्धमक्षमिति संबन्धः। ४–दशतोलकमितलवङ्गरजसामभिघाताः, ते चाष्टोत्तरशतसंख्याका विरम्य विरम्य देयाः। ५–स्थालिकया ज्वालां निर्वाप्य पश्चान्निष्का-

गृहीत्वाऽध्यर्धमाषं तं पृथक्तुल्यसुमोषणम् ।
चत्वारिंशत्फणिलतादलोद्गतरसैः सह ॥ ९ ॥
तावद्धि मर्दयेद्यावत् स रसः शुष्कतां व्रजेत् ।
सदुग्धाम्भोनुपानेन सार्धमाषममुं रसम् ॥ १० ॥
गिलेद्रदनसंस्पर्शं प्रातः प्रातस्त्रिवासरम् ।
नासाकोथोपदंशार्तिर्नाडीग्रन्थ्यनिलार्दितः ॥ ११ ॥
एवं कृतेऽपि चेज्जातु मुखपाकः समुद्भवेत् ।
संघर्ष्य तुत्थकत्थैला लाला मुञ्चेत् सुखाप्तये ॥ १२ ॥

चाहिये। अब मदाग्नि से, दोला-गत रसकपूर को तब तक पकावें जब तक भाण्डगत जल निःशेष न हो जाये। इस तरह शुद्ध किये गये रसकपूर में से १½ माषा भर जितना भाग लेकर उसमें, लौंग तथा मरिच प्रत्येक डेढ माषा, मिला देवें। अब नागरवेल के चालीस पत्र-स्वरस से इनको एकत्र खरल में तब तक घोटते ही रहें जब तक यह रस सूख न जाये। इस रस को, प्रति प्रातःकाल, डेढ माषा मात्रा में तीन दिवस पर्यंत, दूध या जल के साथ, दांतों का इनको स्पर्श न हो इस तरह, निगीर्ण करें। नासिकागत व्रण, उपदंश जन्य वेदना, नाडीव्रण, ग्रंथि, वात आदि से ग्रस्त इसका पथ्यपूर्वक सेवन करें। इस प्रयोग से कदाच् कभी मुखपाक हो जाये तो मुंह में तुत्थ, कत्था तथा इलायची का चूर्ण लगाकर लालास्राव करना चाहिये। इससे स्वास्थ्य प्राप्ति होती है। (रसकपूरका दांतों से स्पर्श होनेपर दांत शीर्ण हो जाते हैं। अतः रसकपूरको गले के भीतर क्षिप्त करके पानी से नीचे उतार देना चाहिये। इसको निगीर्ण करने पर विरेचन होता है। रसकपूर का सेवन प्रमेह पिडिका तथा पीठगत गहरे स्फोट में लाभकारी है। इसके प्रयोग काल में गेहूं की चपाती, बाटी, मण्ड, यवागू, खीले, फूले आदि घृत तथा लवण से रहित, लेना चाहिये। आठ दिवस पीछे यथेच्छ मात्रा में घी का, पंदरह दिवस पीछे अत्यल्प

सयेत्। ६–मरिचामां। ७–कदलीफलकूष्माण्डौ, 'झालर' इति गुर्जरप्रसिद्धधान्यं च। ८–यद्यप्याटकोक्तिस्तथाऽप्यत्र प्रस्थोत्तरं आटकं समतं। ९–द्वादशयामं वेति विकल्पः। अत्राय विचारः—भाण्डान्तरसमृतं जलं यावता कालेन यन्त्रभाण्डे क्षयं व्रजेत्तावन्तं कालं पचेदिति। १०–अत्रेदमवधेयं–सुधाखण्डविकाशसमसमयमेव भाण्डे रसगर्भादोलाऽवलम्बनीया, यद्वा रसगर्भदोलावलम्बनानन्तरं सुधाखण्डानि विकाशयेदिति।

१–पूर्वविधया शुद्धम्। २–अधिकण्ठमूलं रसं क्षिप्त्वाऽनुपानेन गिलेदिति सम्प्रदायः। गिलनानन्तरं विरेको भविष्यतीत्यनुभवः। ३–उपलक्षणत्वादस्य गम्भीरपृष्ठस्फोटप्रमेहादिपीडितोऽपि गिलेदिति। पथ्यमत्र गोधूमभवपोलिकाक्षारमण्डकधानायवागूसयावकुल्माषादन्यतमं, तच्चापि सर्वथा रूक्षमेव, का वार्ता पुनर्लवणलेशस्यापि। ततोऽष्टमदिनमारभ्य यथेच्छं घृतं मनाक्सैन्धवं च यावत्पक्षं शीलयेत्, पक्षादनन्तरं शनैः शनैः सामुद्रलवणाभ्यासो, मासानन्तरं शर्कराप्रभृतीनामभ्यासः, ततो निर्यन्त्रणो यथेच्छं विहरेदिति। ४–तुत्थं च मृष्टं ग्राह्यम्।

४ त्रिशाणं रसकर्पूरं पृथङ्माषत्रयोन्मितैः ।
भद्रैलाबीजकुसुमैरधिखल्वं प्रपेषितम् ॥ १३ ॥
मन्दाग्निना सगोदुग्धं ताम्रे ताम्रेण घर्षयेत् ।
तत्किट्टघटिता वट्यो मुग्धाः सन्मुद्गमेदुराः ॥ १४ ॥
उपदंशमरुच्छ्लेष्मकासश्वासोदरव्यथाः[१] ।
घ्नन्ति तैलादियोगेऽपि मुखपाकं न तन्वते ॥ १५ ॥
भङ्गार्द्रमुद्गसूपादि[२] वस्तुजातं न भक्षयेत् ।
दुग्धं रसेन्दुघर्षार्थं कुडवं गुरुणोदितम् ॥ १६ ॥
५ रसशीतनवसागरदरदानि[३] पृथक् त्रिटङ्कतुलितानि ।
अधिडमरु समुड्डाप्य[४] स्फीतमुपरिगं रजो गृहाण शनैः[५] ॥ १७ ॥
शवशृङ्गीकत्थैलास्तत्र[६] प्रक्षिप पृथक् त्रिभिः कोलैः ।
पिष्ट्वा[७] चतुष्टयमिदं वारा वटिका बधान गुञ्जाभाः ॥ १८ ॥

मात्रा में सैंधव का, तदनन्तर सामुद्र-लवण ग्रहण करना चाहिये। एकमास पीछे शर्करा का अभ्यास करना चाहिये। मासानन्तर फिर कोई नियंत्रण नहीं) ॥ ८-१२ ॥

रसकपूर नौ माषा, बडी इलायची, बिहीदाना तथा लवँग प्रत्येक तीन माषा- इनको एकत्र खरल करलें। फिर इसे, ताम्रपात्र में, मंदाग्निपूर्वक, गोदुग्ध से पकाते हुये ताम्र की कढछी से घिसते रहें। जब सब मिलकर किट्ट जैसे घट्ट हो जायें, तब इस किट्ट की मूंग जैसी गुटिकायें बांध लेवें। यह उपदंश, वातकफजन्य कास तथा श्वास, पार्श्वशूल आदि को नष्ट कर देती हैं। इसमें विशेषता यह है कि यदि इसके सेवनकाल में कदाच् तैलादि का योग हो भी गया हो तो उससे मुख-पाक नहीं होता। भांग, आर्द्रक, मुद्गसूप, त्रिकटु तथा तीक्ष्ण-द्रव्यों का सेवन वर्ज्य है। लाल मिर्च यथा प्रकृति ली जा सकती है। उपरोक्त प्रयोग में रसकपूर को घोटने के लिये दूध सोलह तोला ग्रहण करना चाहिये। यह रहस्य मुझे श्रीगुरुदेवने समझाया था ॥ १३-१६ ॥

रसकपूर, कपूर, नवसादर तथा शुद्ध हिंगुल प्रत्येक करीब बारह माषा लेकर जोकुट करलें। (यहां, हंसपाद नामक उत्तम हिंगुल को ही उपयोग में लेवें।) इनमें एकवाल भर दाल-चिक्कण-विष भी मिलादें। अब, इनको डमरुयंत्र में रखकर, संधिरोध करके, २½ मुहूर्त मध्यमाग्नि से उडालें। डमरु-यंत्र के शिरोभाग को आर्द्र-वस्त्र-खंड से

१-उदरव्यथाशब्देन पार्श्वशूलग्रहणम्। २-आदिशब्देन त्रिकटुप्रभृतीनि तीक्ष्ण-द्रव्याणि च न भक्षयेत्, पित्तकारिणीं तु यथाप्रकृति भक्षयेत्। किं च यस्य पूर्वं जातु रसकर्पूरसेवनान्मुखपाकादि जातं तस्मै इदमौषधं न देयमिति वृद्धवैद्यनियमः। ३-दरदं च हंसपाकाख्यमादेयम्, उत्तमत्वात्; एकवल्लमितमनुक्तमपि दालचिक्कणं प्रक्षेप्यम्। ४-रस-कर्पूरादीनि यवस्थूलं क्षोदयित्वा यन्त्रे निधाय संधिरोधं च विधाय सार्धमुहूर्तद्वयं मध्याग्निना समुड्डाययेत्, किं च यन्त्रशिरस्यार्द्रप्लोतं निदध्यादिति। ५-स्वाङ्गशीतमिति शेषः। ६-कत्थं धवलं लघु च परीक्ष्य ग्राह्यम्। ७-द्वित्रियामम्।

एकामुषसि तथैकां गिल सायं पाथसा रदै॰ स्पृश मा।
उपदंशमेहनाडीग्रन्थिमरुत्कुष्ठमण्डलक्षतये ॥ १९ ॥
गोधूमकुल्हिकाद्यान् सौम्यपदार्थान् घृतोत्तरान् भुङ्क्ष्व।
तैलाम्लपट्टपलमधुप्रभृतीनि जहीहि तीक्ष्णवस्तूनि ॥ २० ॥
यदि हन्त मनागपि वा वदनविपाकः कदाऽपि बाधेत।
तर्हि सितोपलया सह सुखाय पिब तन्दुलीयमूलाम्भ॰ ॥ २१ ॥
६ दरद टङ्कण रूक्षं प्रत्येक खेटहेमकर्षम्।
बीजानि किञ्च मदनफलद्वितयजान्यपि ॥ २२ ॥
पृथक् पिष्ट्वाऽम्बुना कुर्याद्विनीय दश चक्रिका॰।
तासु त्रिसन्ध्यमेकैका धयेद् प्राग्धूमपर्यन्त ॥ २३ ॥
अशक्तो हि सकृद्वाऽपि धयेत् पथ्यी यथाबलम्।
समनन्तरमेवाशु विदधीत विधामिमाम् ॥ २४ ॥

आच्छादित रखें। स्वांगशीतल होने पर यन्त्र के ऊपर के तल-भाग में लगे हुये स्वच्छ-रज कणों को सावधानीपूर्वक धीरे धीरे एकत्रित करलें। मुरदासींगी, वजन में हलका श्वेत-कत्था तथा इलायची प्रत्येक एक एक तोला लेकर इनके सूक्ष्म वस्त्र-पूत चूर्ण को, उपरोक्त यन्त्र-समाहित रस-द्रव्य में, मिला देवें। फिर, इनको दो तीन प्रहर पानी में पीसकर गुंजा-तुल्य वटिकायें बनालें। एक वटी प्रात तथा एक सांझ के समय जल के साथ दांतों का स्पर्श न हो इस तरह निगल जायें। इससे उपदंश, प्रमेह, नाडीव्रण, ग्रंथि, वात, कुष्ट-समूह तथा तालुछिद्र, बहुमूत्रता, भगन्दर आदि विकार क्षीण हो जाते हैं। गोधूमकुल्हिका, मूग का यूष, सूरमा, शर्करा, दूध, घृत आदि सौम्य पदार्थ पथ्य हैं। तैल, खटाई, मधु, कटाहसिद्ध-व्यंजन, चने, ताम्बूल, धान्य, जीरक प्रभृति तीक्ष्ण-उष्ण आहार तथा आतप, भ्रमण, विषाद, श्रम आदि विहार वर्ज्य हैं। कदाच्, अधिक अथवा अल्प मुख-पाक, पीड़ा आदि उत्पन्न हो जाये तो सादलजा के मूल-स्वरस में मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। इससे मुख-स्वास्थ्य-लाभ होगा ॥ १७—२१ ॥

हिंगुल, टंकण और मरिच प्रत्येक एक एक तोला, तथा दो तोलाभर मदन-फल में से जितने बीज निकलें, उतने बीज, प्रथम, इन सबको अलग अलग पीसकर, फिर यथामात्रा जल के साथ, एकत्र खरल करके, इनकी दस टिकियाये बाधलें। इनमें से एक एक टिकिया को हुक्के में रखकर, दिवस में तीन बार-सुबह, मध्याह्न तथा सांझ, उसकी

१—तालुच्छिद्रबहुमूत्रताभगन्दरादिष्वपि दीयते। २—मुद्गसूप-चूर्ण-शर्करा दुग्ध-घृत भक्तादीन्। ३—कटाहसिद्धाञ्चणकनागपर्णधान्यजीरकप्रभृतीनि, आतपभ्रमणश्रमविषाद-प्रभृतीनि तादृशानि विहाराण्यपि। ४—तोलकमितम्। ५—अपिशब्दाद्वितोलकमितानां मदन-फलानां यावन्ति बीजानि निःसरेयुस्तावन्ति सर्वाण्येवात्र ग्राह्याणीति मतान्तरं गृहीत भवति, साधीयश्चेद पूर्वमतापेक्षया। ६—सर्वाणि पृथक् पिष्ट्वाऽधिजलं 'समेत्य योगेन जलेन चक्रिका कार्या। ७—तद्धूम पिबेदित्यर्थ। ८—'हुक्का' इति प्रसिद्धा नालिकाद् ॥

पञ्चप्रस्थैरपां कृत्वा गण्डूषान् किङ्किरातजम्[1] ।
संचर्व्य दन्तपवनं पुनर्गण्डूषकांश्चरेत् ॥ २५ ॥
पथ्यं[2] गोधूमजं चूर्णं घृतं गव्यं च शर्करा ।
एवं कृतेऽपि चेज्जातु मुखपाको भवेत्तदा ॥ २६ ॥
सलिलैस्तुत्थमालोड्य गण्डूषान् सम्यगाचरेत् ।
हन्ति कण्ठस्रजं[3] दद्रुं गम्भीरमुपदंशकम् ॥
ग्रन्थिवातं प्रयोगोऽयं नात्र कार्या विचारणा ॥ २७ ॥
७ जाती[4] जातीफलं कत्थं तुत्थं[5] पुष्पं च कुङ्कमम् ।
प्रत्येकं शाणिकानि स्युर्दरदं कोलसंमितम् ॥ २८ ॥
कस्तूरी सार्धमाषैव क्रमुकद्वयकोकिलाः ।
लौहे लौहेन निम्बूकचतुष्टयरसैर्दिनम् ॥ २९ ॥
संपिष्य वटकान् कुर्याद्धरिमन्थसहोदरान् ।
गिलेद्[6] द्विसन्ध्यमेकैकं प्रथमे तु दिनेऽम्भसा ॥ ३० ॥
ततो द्विसन्ध्यमेकैकवृद्धिः पञ्चदिनावधिः ।
अव्यक्तलवणं पथ्यमुपदंशी समभ्यसेत् ॥ ३१ ॥

धूम का पान करें। रोग से यदि अशक्ति आगयी हो, तो दो वार अथवा एक ही वार धूम-पान करें। धूम-पान के पश्चात् रुग्ण शीघ्र ही, विधिपूर्वक, करीब ३२० तोला जल से कुल्ले करके बबूल-शाखा को चबाकर दंत-धावन करे। तत्पश्चात्, पूर्ववत् पुनः जल से कुल्ले करले। पथ्यरूप से नित्य गोधूम, शर्करा तथा गोघृत-प्रत्येक सोलह तोला लेकर, भोजन करे। इतना करने पर भी यदि मुख-पाक का शमन न हो तो फुलाये हुये तुत्थ को जल में घोलकर उसके यथेच्छ कुल्ले करे। गंडमाल, दद्रु तथा गंभीर स्थिति को प्राप्त उपदंश, ग्रंथिवात आदि को भी यह प्रयोग नष्ट कर देता है। इसमें जरा भी शंका नहीं करनी चाहिये ॥ २२-२७ ॥

जावित्री, जायफल, कत्था, फुलाया हुआ तुत्थ, लविंग तथा केसर प्रत्येक ३-३ माषा, हिंगुल एक तोला, कस्तूरी डेढ माषा तथा दो सुपारीके कोयले इन सबका सूक्ष्म चूर्ण करके, निंबू के रस से, लोहेके खरल में लोहे के दस्ते से, एक दिवसपर्यंत खूब घोटकर चने प्रमाण गोलियां बनालें। प्रथम दिवस, सुबह, सांझ एक एक वटी पानी के साथ निगल जायें। दूसरे दिन, दोनों वार एक एक वटी अधिक लेवें। इस

१—किङ्किरातजं दन्तपवनमिति सम्बन्धः। किङ्किरातश्च बम्बूलः। २—कुडवं गोधूमचूर्णं कुडवं घृतं कुडवा शर्करा चेति प्रतिदिनमवश्यं भक्षयेत्, अन्यथा व्यापत्तिः स्यात्। ३—गण्डमालाम्। ४—जातिपत्रिका। ५—मृष्टम्। ६—प्रारम्भदिने प्रातः सायमेकैकं वटकं शीताम्भसा गिलेत्, द्वितीयदिने द्विसंध्यं द्वौ द्वौ, तृतीयदिने त्रींस्त्रीन्, चतुर्थे चतुरश्चतुरः, पञ्चमे पञ्च पञ्च द्विसंध्यं गिलेदित्यर्थः।

८ कस्तूर्या रक्तिकामेकां त्रुटेर्वांश्या॰ पिचुं पिचुम्[1]।
पिष्ट्वा पटीरतैलेन[2] वटीस्तिस्र॰ प्रकल्पयेत् ॥ ३२ ॥
एकस्मिन्नेव दिवसे सन्ध्यासु तिसृषु क्रमात्।
निगीर्य शीतसलिलशरावं[3] प्रयत[4] पिबेत् ॥ ३३ ॥
उपदंशविशेषार्तिर्विशिष्य[5] खलु नश्यति।
वर्जयेद्दुग्धमधुरतैलाम्ललवणादिकम्[6] ॥ ३४ ॥
९ भानुभागं[7] मयोर्वाण[8] सर्जं सागरभागिकम्[9]।
पिष्ट्वा पटीरतैलेन वटी[10] कल्पय माषिकीं ॥ ३५ ॥
दाडिमीशार्करेणैव प्रात॰ सायं सखे! गिल।
तेन ते हन्त सौजाकव्याधि॰ प्रशममेष्यति ॥ ३६ ॥
तैलाम्लतीक्ष्णलवणदुग्धवृन्ताकमुत्स्यजें[11]।
स्वामिना रघुनाथेन योगोऽयमुपढौकित ॥ ३७ ॥

बारह पाच दिवस तक, दोनो बार एक एक वटी मात्रा बढाते हुये प्रयोग करें। लवणाधिक्य रहित भोजनादि पथ्यपूर्वक लें। इससे उपदश शमित होता है ॥ २८–३१ ॥

कस्तूरी एक रत्ती, इलायची तथा वशलोचन एक एक तोला (अथवा वशलोचन आधा तोला) इन सबको एकत्र बारह माषा चदनतैल में पीसकर बराबर वजन की तीन वटिया बनालें। अब, ब्रह्मचर्यपूर्वक अधिक भोजन न करते हुये, एक ही दिवस के तीनों सधिकाल में एक एक वटी को क्रमश सकोरे में भरे हुये शीतल जल के साथ निगीर्ण करें। इसके प्रयोग से, विशेषतया सौजाकजन्य वेदना मिट जाती है। दूध, शर्करा, तैल, लवण, अम्ल, धूप, भ्रमण, मैथुन आदि सर्वथा वर्ज्य है ॥ ३२–३४ ॥

बारह माषा कोडिया लोबान तथा चार माषा सर्जरस दोनों को चदनतैल में पीस कर एक एक माषा भर पदरह गोलिया बनालें (सोलह माषा द्रव्य मे से करीब एक माषा भर शिलादि से लगकर न्यून होजाने से कुल औषधीय-पिष्ट करीब १५ माषा ही रह जाता है।) इन गोलियों का दाडिमी-शार्कर-('शार्कर' निर्माण विधि 'ज्वर चिकित्सा' के ४५ वें श्लोक मे देख लें।) के साथ सुबह साम सेवन करने से, हे मित्र! आपकी सौजाक व्याधि प्रशमित हो जायेगी। तैल, अम्ल, लवण, दूध, वृन्ताक, गुड आदि को त्याग दें। यह प्रयोग मुझे स्वामी रघुनाथ ने अर्पण किया है ॥ ३५–३७ ॥

१–पिचुरत्र द्वादशमाषक। २–अत्र तु तदर्धमानपरो विवक्षित॰। ३–चन्दनतैलेन द्वादशमाषेणाथवा यावता गुट्य सुखावन्मानेन। ४–ब्रह्मचारी भोजनालोलुपश्च। ५–सौजाकरोग। ६–आदिशब्दादातपाध्वादीनां ग्रहणम्। ७–द्वादशमाषम्। ८–लोहवाणनाम्ना प्रसिद्धम्। तच्च कोडियोपपद ग्राह्यम्। तत्स्विममपि भवति, तदनादेयम्। ९–चतुर्माषम्। १०–इति प्रमाणकथनेन पञ्चदशगुटिका भविष्यन्ति, एकमाषोन्मितद्रव्यस्य शिलालेपादिना व्ययितत्वात्। ११–गुडमपि।

१० मायाफलानि त्रुटिकत्थवांशीः पटीरतैलेन वटीर्विधाय ।
सिताद्भिरुष्णे, पयसा तु शीते गिलेद् द्विसन्ध्यं चिरमुष्णवाती ॥ ३८ ॥

११ भूरिमाषं मलयजं मञ्जुकत्थौ तु माषकौ ।
क्षोदः सचन्दनस्नेहः शाणः सेव्यः सिताम्भसा ॥ ३९ ॥
अहो अहोभिर्नवभिः स्यादन्तरुपदंशजित् ।
प्राज्याज्या पोलिका पथ्या गोधूमचणकोद्भवा ॥ ४० ॥

१२ रसाञ्जनक्काथपुराणपूगमायाफलानां विरचय्य चूर्णम् ।
गिलाङ्कमाषं ज्वलदुष्णवाते सितासखीभिश्चणकत्वगद्भिः ॥ ४१ ॥

१३ एकढब्बूकतः क्रीताः कोकिलाक्षास्तदर्धतः ।
अस्थिसंहारिका किंच त्वगप्यत्र तदर्धतः ॥ ४२ ॥
ढब्बूकद्वन्द्वतश्श्रीणीशर्करेति कृतं रजः ।
सायं प्रातर्गिलेद्दुग्धैश्चतुर्दश दिनानि यः ॥ ४३ ॥
न तस्य जातु सौजाकः प्रकोपमुपगच्छति ।
विना तैलाम्ललवणं पथ्यमत्र प्रकीर्तितम् ॥ ४४ ॥

मांजूफल, इलायची, कत्था तथा वंशलोचन इनको लेकर चंदनतैल से वटियां बांधलें। उष्णकाल में मिश्री के शर्बत के साथ तथा शीतकाल में दूध के साथ-दो बार नित्य दो वटी निगीर्ण करें। इससे जीर्ण उष्ण-वात शमन हो जाता है ॥ ३८ ॥ श्वेतचंदन चूर्ण चौवीस माषा, मांजूफल और कत्था प्रत्येक छह माषा, इनके चूर्ण को, एक तोला चंदन तैल में मिलाकर, तीन माषा-मात्रा में, मिश्रीमिश्रित जल के साथ सेवन करें। अहो! नवदिवस में ही (अहोभिः) अन्तर्गत-उपदंश शांत हो जाता है। प्रचुरघृतयुक्त किंतु लवणरहित गेहूं और चने की चपाती, चूरमा आदि का भोजन इसमें पथ्य है ॥३९-४०॥ चने के तुष (फोलरा) से सिद्ध मिश्रीमिश्रित जल के साथ, अठारह दिवस पर्यंत, रसांजन, कत्था, पुराणी सुपारी तथा मांजूफल इनके चूर्ण की नौ माषा भर फांकी लेने से प्रज्वलित उष्णवात शांत हो जाता है ॥ ४१ ॥

एक ढब्बूक से जितने खरीद में मिलें उतने प्रमाण में तालमखाना, इनसे आधी मात्रा में मैदालकडी, इससे आधी मात्रा में तज तथा दो ढब्बूक-मूल्य जितनी चीनी शक्कर इन सबका एकत्र चूर्ण बनालें। चौदह दिवस पर्यंत दूध के साथ इस

१-'माजूफल' इति प्रसिद्धानि । २-गोदुग्धेन कोष्णेन धारोष्णेन वा । ३-चतुर्विंशतिमाषम् । ४-श्वेतचन्दनचूर्णम् । ५-मञ्जु मायाफलम् । ६-पृथक्षण्माषौ । ७-तोलप्रमाणचन्दनतैलसहितः । ८-अलवणेति शेषः । ९-क्वाथशब्देनात्र कत्थम् । १०-नवमाषम् । ११-चणकतुषाद्भिः । चणकतुषाणि च जयपुरादिदेशे 'फोलरा' नाम्ना प्रसिद्धानि । प्रयोगसेवा च वसुभूदिनानि । १२-अत्र-ढब्बूकादि मूल्यपरं, न तु मानपरम् । १३-'मैदालकडी' इति प्रसिद्धा ।

१४ धौतानि माषविदलानि वसुप्रकुञ्चा-
न्याभावितानि बब्बुरशलाटुरसेन विभावितानि ।
[1]बिल्वैः पृथक्[2]मुशलिके[3]क्षुरबीजव[4]न्धै-
र्युक्तानि लोचनपलेन[5] च सालिमेन ॥ ४५ ॥
मध्येघरट्टमधिकं मसृणीकृतानि
निष्कत्रयत्रपुविभूतिविभासितानि[6] ।
सेवेत तानि पयसा ससितेन मासं
सौजाकमेहयुगलस्य[7]जबोधनानि ॥ ४६ ॥
१५ सह[10]वीर्या मुशली कचचं तोदरीक्षुरम् ।
प्रवाल रूप्यमेतेषां प्रत्येकं सप्त माषका ॥ ४७ ॥
विदारी द्राविडी [11]कण्टमभ्रं गद्याणसंमितम् ।
पीयूषसत्त्वम[13]मलं भद्रैला शाणमात्रया ॥ ४८ ॥
कतीरगुन्द्रकं मोचं[14]श्चन्दनं माषकै[15]स्त्रयम् ।
सालिमाख्यं द्विगद्याणं तत्समानं शिलाजतु ॥ ४९ ॥
शीतलम[16]क्षि तीक्ष्णानि निर्यास कि च शाल्मल ।
स्यातामेकैकगद्याणौ वङ्गं कोलप्रमाणकम् ॥ ५० ॥

चूर्ण की, सुबह तथा साम को, फांकी लेनेसे, सौजाक कभी प्रकुपित नहीं होता। तैल, लवण, अम्लादि वर्जित भोजन यहा पथ्य माना गया है ॥ ४२–४४ ॥

पानी से धोकर स्वच्छ की गयी उड़द की दाल बत्तीस तोला लेकर उसको बबूल के कच्चे फल रस की भावना देवें। श्वेतमूलवाली मुशली, तालमखाना तथा बीजबन्ध प्रत्येक चार तोला तथा सालिम आठ तोला प्रमाण में लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को उपरोक्त विधि से भावित उड़द की दाल में मिलाकर शिलापर खूब बारीक पीस, उसमें तीन तोला वंग भस्म मिला, मिश्री-मधुर-दुग्ध के साथ एक मास पर्यंत सेवन करें। चौसठ तोला शृतशीत दूध में बत्तीस तोला मिश्री मिलावें। यह योग सौजाक और प्रमेह को मिटाकर कामोद्दीपन करता है ॥ ४५–४६ ॥ शतावरी, मुशली कौंच, तोदरीसुर्ख, तालमखाना, प्रवालपिष्टी तथा रजतभस्म प्रत्येक सात माषा, विदारीकद, छोटी इलायची, गोखरू, मुस्ता, प्रत्येक छ माषा, गुडूची सत्व, बड़ी इलायची प्रत्येक तीन माषा, कतीरा गूंद, सेमल, चदन प्रत्येक तीन माषा, सालिम बारह माषा

१–आमा यम्बूल तस्यामफलिकारसेन। २–पृथक् पलप्रमाणैः। ३–श्वेतमूला ग्राह्या। ४–'बीजबन्ध' इति लौकिकसंज्ञेयम्। ५–द्विपलिकेन। ६–शाणत्रयोन्मितवङ्गभस्मसहितानि। ७–शृतशीतेन प्रस्थप्रमाणदुग्धेनाष्टाशसितासहितेन। ८–सौजाकमेहयुगिनि कर्तृपदम्। ९–कामोद्दीपनानि। १०–शतावरी। ११–गोक्षुरम्। १२–अत्रापि प्रत्येकमिति सबध्यते। १३–गुडूचीसत्त्वम्। १४–मोचरस। १५–प्रत्येक द्रव्यप्रधानत्वान्निर्देशस्य। १६–शीतलमरिचानीत्यर्थः।

सितोपलायाः कुडवश्चूर्णमेषां प्रदापयेत् ।
सौजाकपित्तमेहार्तौ दाडिमीशार्करादिभिः ॥ ५१ ॥
वांशी विरोजसः[1] सत्त्वं रालः कहरवाभिधम्[2] ।
अनुक्तान्यपि चूर्णेऽस्मिन्नाधिकाणि विनिक्षिपेत् ॥ ५२ ॥
१६ रालाश्मकृष्णनिर्यासाः[3][4] स्युरष्टादशभागिकाः ।
वंशजा जीरयुगलं प्रत्येकं नवभागिकम् ॥ ५३ ॥
द्रोणविड्यो[5] विंशतिः सिह्लसत्त्वं[6] द्वादशभागिकम् ।
शर्करा षष्टिभागा स्यात् सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ५४ ॥
चूर्णमेतत् पिचून्मानमजादुग्धानुपानतः ।
सौजाकं साधु जयति तैलाम्ललवणत्यजाम् ॥ ५५ ॥
१७ गद्याणतुलिता[7] वांशी त्रुटिर्वंशजया समा ।
त्वचस्तु नव गद्याणाः सिताया द्वादशैव ते ॥ ५६ ॥
गद्याणौ कलसोराद्बौ सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
पुँड्यः पञ्चदशैव स्युरेकैकामिति योजयेत् ॥ ५७ ॥

और इतने ही प्रमाण में शिलाजीत; शीतल मिर्च, शाल्मली निर्यास (मोचरस) प्रत्येक छह माषा; वंगभस्म एक तोला; मिश्री सोलह तोला-इन सभी औषधीय द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बनालें। सौजाक तथा पित्तज-प्रमेह से पीडित को, यह चूर्ण 'दाडिमी-शार्कर' के साथ सेवन करायें। वंशलोचन, गंधाबिरोजा तथा कहरवा पिष्टी ये द्रव्य इस योग में अनुक्त हैं तथापि इनके एक एक तोले भर चूर्ण को भी उपरोक्त चूर्ण में मिला लेवें ॥ ४७—५२ ॥

राल, घीयाभाटा (घृताश्म), कूटशाल्मली का निर्यास प्रत्येक अठारह भाग; बंशलोचन तथा दोनों प्रकारके जीरे प्रत्येक नौ भाग; स्थूल इलायची नग बीस; बिरोजा का सत्व बारह भाग; शर्करा साठ भाग-इन सबका एकत्र चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को, दो तोला माषा में अजा-दूध के साथ सेवन करें। यह सौजाक का पूर्णतया शमन कर देता है। तैल, अम्ल, लवण, प्रभृति अपथ्य है ॥ ५३—५५ ॥ वंशलोचन छह माषा, इतनी ही मात्रा में छोटी इलायची, तज चौपन माषा, मिश्री ७२ माषा, कलमी सोरा बारह माषा-इनका एकत्र वस्त्र-पूत चूर्ण करलें। इनकी पंदरह पुडियां (Doses) बनायें। एक एक पुडी को, प्रातः तीन पतासे के चूर्ण से युक्त लस्सी के साथ तथा, एक पुडी को, सांझ के समय, शीतल जल के साथ लेवें। लवण, अम्ल,

---

१—'गंधा बेरजा' इति प्रसिद्धनिर्यासस्य सत्त्वम्। २—अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धस्तृण-ग्राही निर्यासविशेषः, 'रत्नभेदः' इति केचित्। ३—अश्मशब्देन घृताश्मा 'घाईभाटा' इति ख्यातः। ४—कृष्णनिर्यासः शाल्मलीगुन्द्रः। ५—एलाः। ६—बिरोजसः सत्त्वम्। ७—मात्राविशेषाः।

तत्र प्रातर्गिलेल्लस्या त्रिसितावृद्धदाढ्यया ।
शीतेन वारिणा साय पथ्यं चात्र पैट्टूज्झितम् ॥ ५८ ॥
उपदंशमुखा रोगा बाह्याभ्यन्तरभेदजाः ।
लीयन्ते तूर्णमर्णोदविलासा इव शारदः ॥ ५९ ॥

१८ सौरं धवलस्फटिकां कुडव कुडव विमुच्य मृद्भाण्डे ।
पच रे कलोनकरटिनि विमर्दय स्वाङ्गशीतमधिखल्वम् ॥ ६० ॥
अस्य पुनस्त्रीनंशानेकाश द्राविडीरजमः ।
गद्याणमिता मात्रा प्रगे गिलेदुष्णवातवान् पयसा ॥ ६१ ॥

१९ लवणाम्बुयोगविगतच्छल्लं दक्षाण्डवल्कमम्लस्थम् ।
त्रिभिरिभपुटैर्विपक्व नवनीतेन परिहन्ति सोजाकम् ॥ ६२ ॥

२० संस्कृतो घृतपाषाणः पञ्चरक्तिप्रमाणकः ।
दशगद्याणमानानि शीतादिमरिचान्यपि ॥ ६३ ॥
सर्वमेकत्र संचूर्ण्य मात्रा पञ्च प्रकल्पयेत् ।
अनुप्रदोषमेकैका देया सौजाकशान्तये ॥ ६४ ॥
अनुपान प्रदातव्य त्र्यहं मद्यसत्त्व दधि ।
त्र्यहं तदनु दध्येव पयोभ्यांमश्मसस्कृतिः ॥ ६५ ॥

गुड, मरिच आदि से रहित पथ्य भोजन करें। इससे बाहर तथा भीतर के उपदश जन्य विकार, शरदृतु में मेघमाला की तरह विलीन हो जाते हैं ॥ ५६–५९ ॥

कलमी सोरा तथा श्वेत स्फटी दोनो को १६-१६ तोला भर लेकर, इन्हें मिट्टी के पात्र में रख, उसे कपड-मिट्टी करके गजपुट से कुछ न्यूनपुट की आच में फूक दें। स्वाग-शीतल होने पर इसे खरल करलें। इस भस्म में इलायची के चूर्ण को इस अनुपात में मिलावें, कि यदि भस्म तीन भाग हो तो इलायची चूर्ण एक भाग हो। अब इस मिश्रण में से छ माषा भर मात्रा लेकर, धारोष्ण गो-दुग्ध के साथ, प्रातः-काल, उष्ण वात-पीडित रुग्ण सेवन करे ॥ ६०–६१ ॥ मुर्गी के अडे की उपरिगत त्वक् को, लवणमिश्रित जल से पृथक् करके, उसको निंबूरस में घोट कर, तीन बार गजपुट में फूकें। नवनीत के साथ सेवित यह भस्म सौजाक को नष्ट करती है ॥ ६२ ॥ शुद्ध किया हुआ घीयाभाटा (घृताश्म) पाच रत्ती, शीतल मरिच साठ माषा-इनका

१–मिलितजलदुग्धरूपया। २–गद्वित्युपलक्षण, तेन तैलाम्लगुडपित्तकारिणीप्रभृतीनां ग्रहणम्। किंचास्मिन्नधिकारे यत्र प्रयोगे पथ्ये किंचिन्न कृता तत्र पट्वादिवर्जमेव पथ्य दातव्यमित्युपदेश। ३–मनागूने गजपुटे। ४–भागान्। ५–प्रात। ६–धारोष्णगव्यदुग्धेन। ७–निम्बूरसस्थम्। ८–द्विराकृष्ट मद्य सप्ततोलक सुजात गव्य दधि कुडवमानमिति द्वय समेल्यानुपिबेदित्येकदिनानुपानम्, एवं त्र्यहम्। ९–एकैककुडवमेव, एवकारान्मद्यव्युदास। १०–अश्मशेषाद् दुग्धजलाभ्यामित्यर्थ, तयोर्मान च क्रमात् प्रस्थ कुडव इति। किं त्विद मान तोलकप्रमाणघृतपाषाणेऽवधेयम्।

२१ कन्यारसेन द्विगुणेन पिष्टं सौवीरमन्तःसमितं विधाय ।
पुटेद्दशप्रस्थवनोपलान्तस्तथैव वारा दधिजेन तोलम् ॥ ६६ ॥
गुञ्जप्रमाणं नवनीतलीढं सौजाकमञ्जो जयति प्रचण्डम् ।
भक्तं सदुग्धाज्यसितं सुखाश भुञ्जीत केनाप्युपदिष्टमेतत् ॥ ६७ ॥
२२ कणिका मसृणीकृत्य स्फारं स्फीतस्य नागस्य ।
नवनीतेन विलीढा गुञ्जासदृशी हिनस्ति सौजाकम् ॥ ६८ ॥
२३ यदनुत्पन्नास्थि फलं शेलोस्तच्चूर्णमाजदुग्धेन ।
निर्गाल्य पटे ससितं हन्त्युपदंशार्तिमन्तरक्षतजाम् ॥ ६९ ॥
२४ परिज्वलन्तं वटपर्णमर्णःक्षेपेन निर्वाप्य गृहाण भस्म ।
साध्यर्धमाषं छदतः पृदाकोर्द्विसन्ध्यमद्यादुपदंशरोगी ॥ ७० ॥
२५ कर्षप्रमाणे प्रत्येकं कुटजत्वक्सितोपले ।
जलैः सप्तदिनं पीते हन्यातामुपदंशकम् ॥ ७१ ॥

एकत्र चूर्ण करके, उसकी पांच मात्रा बनालें। एक एक मात्रा सांझ को लेने से सौजाक शांत हो जाता है। गोदुग्ध के सोलह तोला दही में, दो बार परिस्रुत मद्य को सात तोलाभर मात्रा से, मिलाकर, नित्यप्रति, उपरोक्त चूर्ण के अनुपान रूप में, तीन दिवस पर्यंत लेवें। फिर दो दिवस, केवल सोलह तोला दही के अनुपान के साथ लें। एक तोला घृताश्म को, प्रथम चौसठ तोला दूध में पकाकर, फिर, सोलह तोला पानी में पका लेवें। इस तरह से, वह शुद्ध हो जाता है ॥ ६३-६५ ॥

सफेद सुरमे को-उससे द्विगुणित गवारपाठे के रससे-खरल करके, संपुटित करदें। फिर, ५४० तोला वन्य-गोबरी में फूंक दें। इस भस्म में से एक माषा भर मात्रा को नवनीत के साथ चाटकर ऊपर से दधि-मंड (मस्तु) अनुपानरूप से पीयें। यह प्रयोग उग्र-सौजाक का भी शमन कर देता है। दूध, घी, शक्कर आदि के व्यंजन यथेच्छ मात्रा में निर्भय खाने चाहिये। यह प्रयोग मुझे पंजाब के मेरे छात्र शंभुदत्त ने बताया है ॥ ६६-६७ ॥ शुद्ध किये हुये रांगे को खरल में खूब बारीक पीसकर उसका मुलायम चूर्ण करलें। एक गुंजाभर मात्रा में नवनीत के साथ इसको लेनेसे सौजाक शमित हो जाता है। यहां, दूध-घृत-शर्करा-मिश्रित-भात का भोजन पथ्य है ॥६८॥

लिसोढे के सूखे कच्चे फल के चूर्ण को अजादुग्ध में मिला, वस्त्र पूत करके, उसमें मिश्री मिलाकर पीने से अन्तः व्रणजन्य उपदंश वेदना प्रशमित हो जाती है ॥ ६९ ॥ वटवृक्ष के शुष्क, प्रज्वलित पत्र को जलक्षेप से बुझाकर, उसकी भस्म बनालें। डेढ रत्ती भस्म को नागरवेल पान के साथ दो बार-सुबह-सांझ उपदंशरोगी सेवन करें। तैलाम्ल प्रभृति द्रव्य अपथ्य हैं ॥ ७० ॥ कुटज त्वक् तथा मिश्रीचूर्ण प्रत्येक एक

१-'श्वेतसुरमा' इति प्रसिद्धम्। २-पञ्चनददेशीयशम्भुदत्तशर्मणा। ३-खल्व इति शेषः। ४-पथ्यं सदुग्धाज्यसितं भक्तम्। ५-शलाटु इत्यर्थः। ६-शुष्कमिति शेषः। तैलाम्लवर्जं पथ्यमत्र।

२६ कर्षं निरस्थि खर्जूरं तत्प्रमाणा मृकण्डजा ।
कर्षार्धं शवपाषाणं चूर्णं स्यादुपदंशनुत् ॥ ७२ ॥
२७ कत्थमुर्दारतुत्थानि तुल्यान्यैरण्डपर्णतः ।
पयस्यावर्तनात् सान्द्रे कास्ये कास्येन घर्षयेत् ॥ ७३ ॥
त्रिचतुस्तोलसमिताफुल्लिकाभक्षणादनु ।
पर्णेन भक्षयन्मापमुपदंशाद्विमुच्यते ॥ ७४ ॥
यामा द्वादश संघर्षः स्रावनार्हं घनं पयः ।
वर्जयित्वा पयोमुद्गो पथ्यमत्र प्रचक्ष्महे ॥ ७५ ॥
२८ हेमाह्वापादखण्डानि पिष्ट्वा त्रीण्यूषणैस्त्रिभिः ।
पाथःपलेन विस्राव्य पिबेत् प्रातस्त्रिवासरम् ॥ ७६ ॥
योगराजेष सौजाकमपि हन्यात्त्रिवार्षिकम् ।
पथ्य विलवणा पूरी दुग्ध सप्तदिनावधि ॥ ७७ ॥
अष्टमेऽहनि वृन्ताक स्वच्छन्दमुपशीलयेत् ।
यदि स्यात् पुनरुद्भेदो योग पूर्ववदभ्यसेत् ॥ ७८ ॥

एक तोला लेकर, जलके साथ सात दिवस पीने से उपदंश शांत होता है ॥ ७१ ॥ गुठली रहित खजूर तथा सनाय प्रत्येक एक तोला, आधा तोला मुर्दार, इनका चूर्ण उपदंश को दूर करता है। चूर्ण की मात्रा पांच से छह मापा है। प्रात, शीतल जल के साथ लेना चाहिये। घृत, लवण, गेहूं के फूले तथा उड़द की दाल पथ्य है। उड़द की दाल में अनुत्कट लवणादि निर्भयरूप से सेवन कराये जा सकते हैं ॥ ७२ ॥

एरण्डपत्र तथा समान वजन मे कत्था, मुर्दार और तुत्थ-सब को एकत्र लेकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को दूध मे खूब मसलकर, फिर कास्य-पात्र में कास्य दड या कटोरी के पेंदे से इसको घिसें। अब, तीन चार तोला गोधूम के फूले खा लेने के उपरात उपरोक्त औषधीय द्रव्य को नागरवेल पान के साथ सेवन करें। उपदंश से छुटकारा मिलता है। बारह प्रहर तक घर्षण करने से जब दूध गाढ़ा बन जाये, तब इसको लेना चाहिये। दूध तथा मुद्ग, उपदंश में पथ्य माने गये हैं, किंतु उपरोक्त प्रयोगकाल मे, वे अपथ्य हैं। इन दो के अतिरिक्त, अन्य व्यजन पथ्य कहे गये हैं ॥ ७३-७५ ॥ स्वर्णक्षीरी मूल के तीन टुकड़ो को तीन मरिच के साथ पीसलें, फिर एक तोला जल में घोल छानकर, प्रतिदिन, प्रात, तीन दिवस तक पीयें। यह 'योगराट्' तीन वर्ष पुराने सुजाक को भी मिटा देता है। औषधप्रयोग के दिवस से, प्रथम सात दिवस लवण रहित पूरी और दूध का ही भोजन करें। आठवें दिवस से वृन्ताक का

१-कर्षोऽत्र द्वादशमाषको विवक्षित । २-खर्जूरं 'छोहारा' इति ख्यातफलम् । ३-माषाऽत्र पञ्चषमाषिका प्रातर्देया शिशिराम्भसा । पथ्यमत्र सघृतलवणगोधूमफुल्लिका माषसूपोऽपि, माषसूपे लवणादिकमनुत्कटं निःशङ्कं देयमित्याशा । ४-स्पष्टमिदम् । ५-हेमाह्वा स्वर्णक्षीरी, तस्या मूलशकलानि । ६-सौजाकस्येति शेष ।

२९ बदरीमूलविभूतिं तैलस्राविणि[1] रसालसंधाने।
उपयुज्याम्बु पिबेदनु शिशिरं तीव्रान्तरोपदंशार्तौ॥ ७९॥
३० माकन्दचर्मकल्कं[2] पयसा संगाल्य[3] शर्करामधुरम्[4]।
सौजाकजन्यशुक्रक्षरणक्षपणाय पिब पक्षम्॥ ८०॥
३१ प्रातः पिबेद्दाडिमवल्कफाण्टकं सौजाकवान् कर्करशर्करासखम्[5]।
निधेहि[6] नीरे कुडवे द्विकर्षं वल्कं प्रकुञ्चं क्षिप शर्करायाः॥ ८१॥
३२ सहस्रद्रुच्छदान्नव्यान् पिष्ट्वा विरलवेल्लजान्।
पिबन्तु लुलितानद्भिः सौजाकरुधिरार्शसोः॥ ८२॥
३३ जलं जपागोक्षुरयोः सपर्णया विलोलयेदन्यतरस्य शाखया।
यदा भवेन्मन्ददधीव तच्छ्लथं तदा निपीतं स्मृतमुष्णवातनुत्॥ ८३॥

शाक यथेच्छ खायें। कदाचित् सुजाक पुनः उत्पन्न हो तो उपरोक्त 'योगराट्' का पुनः प्रयोग करें॥ ७६-७८॥

बदरीमूल-त्वक् की भस्म को तैल से प्लावित आम के आचार के साथ लेकर ऊपर से शीतल जल पीयें। इससे अन्तः उपदंशजन्य वेदना शांत हो जाती है। यह 'कण्ठीरव' श्रीकृष्णराम गुरुमहोदय की कंठोक्ति (व्यक्तिगत-प्रामाण्य) है। इसमें संशय न करें। क्योंकि तैलाम्ल वर्जन इस रोग में पथ्य माना जाता है और यहां तैलमय पदार्थ लेने की अनुज्ञा है। इतना ही नहीं, उसपर शीतल जल के अनुपान की भी!!!॥ ७९॥ आम्र वृक्ष की अन्तर्छाल छह माषा लेकर उसका कल्क बनालें। इस कल्क को धारोष्ण दूध में घोल कर वस्त्रपूत कर लें। दूध को दो तोला करकर-शक्कर से मधुर बना, एक पक्ष पर्यंत, सौजाकजन्य शुक्रस्राव को बंद करने के लिये पीयें।॥ ८०॥ सौजाक पीडित रुग्ण प्रातःकाल, करकर-खांड से युक्त, दाडिम-त्वक् के फाण्ट का पान करे। यहां दाडिम-त्वक् दो तोला लेकर, सांझ को सोलह तोला पानी में भिगो देवें। करकर-खांड भी चार तोला साथ ही में मिलादें। यह फाण्ट तीन दिवस पर्यंत पीना चाहिये॥ ८१॥ गुलहजारा की नूतन पत्तियों को थोडे मरिच के दानों के साथ पीसलें। फिर, इनको जल में घोलकर, सौजाक तथा रक्तार्श में इसका पान करें॥ ८२॥ जपापुष्प अथवा गोखरू इनमें से किसी एक की सपत्र-शाखा द्वारा पानी को खूब हिलायें। इस तरह हिलाते हिलाते जब पानी अर्ध जमे हुये दही जैसा श्लथगाढा हो जावे तब उसको पीजाने से उष्णवात शांत हो जाता है॥ ८३॥

१-अत्र तु तैलाम्लानुपानस्य कण्ठरवोक्तिः संशयो न कार्यः, पथ्यं तु तैलाम्लवर्जमेवोपदेशविरोधात्। २-आम्रवृक्षस्यान्तरा त्वग्गद्याणमिता। ३-कुडवमितेन सद्योदुग्धेन। ४-शर्कराया मानं द्वित्रितोलकम्। ५-'कडकड खांड' इति लोकप्रसिद्धिः। ६-सायं वल्कं मनाक् संक्षुद्य सशर्करं मृत्पात्रे यथोक्तजले मज्जयित्वा प्रातः प्रमृद्य पटपूतं पिबेत् त्र्यहम्। ७-लोके 'हजारा' इति नाम्नोपवनेषु प्रसिद्धः पीतपुष्पः क्षुपकः, तत्किसलयानि। ८-औड्रम्। यच्च 'भोडल' इति मध्यदेशे, 'जासूदी' इति गुर्जरे प्रसिद्धम्॥

३४ करीरपदकोकिलो मृदुविरेचिनी शर्करा
प्रकुञ्चयुगयोजिता भुवनमेषज पोडेंगी ।
पिचुत्रितयमूषणं सलिलमेभिरुद्वासित
दलावधि पिपासिताश्चुलुकयन्तु सौजाकिन. ॥ ८४ ॥

३५ कुष्ठजीरगुडैर्गुल्यो गीर्णा. सौजाकनाशनाः ।

३६ कि वा केवलकुष्ठस्य धूम पीतस्तदर्थकृत् ॥ ८५ ॥

३७ प्रव्यक्तरक्तोष्णसमीरदूना. पक्त्वा सिताम्भोभिरदन्तु पोलीम् ।
कर्के सधान्येश्वरवोलवारिण्युपस्थमस्वस्थदशं दिशन्तु ॥ ८६ ॥

३८ विरोजैसं शैलरजोविमिश्रित निधाय यन्त्रे डमरुण्यरन्ध्रके ।
मन्दाग्निना तैलवरं समुद्धरेत्तद्धिन्दवो घ्नन्त्युपदंशमान्तरम् ॥ ८७ ॥

३९ पादोनशाणिकं खण्ड तावती स्फटिका स्फुटा ।
लसीकया पिबेत् प्रात' सौजाके लिङ्गरेकदम् ॥ ८८ ॥

करीरमूल को जलाकर किये गये कोयले, सनाय और शर्करा प्रत्येक दश रुपये भार, सूठ चार तोला, मरिच तीन तोला-इनको एकत्र पोटली में बाधकर, ६४० तोला जल मे भिगोकर रखदें । अब, पदरह दिवस पर्यंत, सौजाक-पीडित को तृषा लगनेपर, यही पानी पिलाते रहें । आठ दिवस पीछे पोटली बदल देनी चाहिये अर्थात् नूतन पोटली रखनी चाहिये तथा लवणादिसे परहेज रखना चाहिये ॥ ८४ ॥ कूठ, जीरा और गुड इनकी गोलिया बना जल के साथ निगीर्ण करने से सौजाक शात होता है। अथवा, केवल कूठ का धूम पीने से उपरोक्त अर्थ सिद्ध हो जाता है ॥ ८५ ॥ उष्णवात से पीडितो को, शक्कर-मिश्रित जल से बनायीं गयीं गेहू के आटे की रोटिया खानी चाहिये । धनिया एव ईसबगुल से उद्वासित-जल पूर्ण-मृत्पात्र में अपने अस्वस्थ-उपस्थ को मग्न करना चाहिये ॥ ८६ ॥ अतिसूक्ष्म रध्रवाले डमरु-यन्त्र में गधाविरोजा को ककरीली रेती में मिलाकर भरदें । फिर, मदाग्नि से तैल निकाल लेवें । इस तैल को लगाने से अत -उपदश नष्ट हो जाते हैं । इसी तैल को कान मे डालने से कर्णशूल स्रावादि भी शात होते हैं ॥ ८७ ॥ करीब अठारह रत्ती शक्कर, इतनी ही मात्रा में भृष्टस्फटी-दोनो को मिलाकर प्रात लस्सी के साथ पीने से सुजाकस्थिति में मूत्रविरेक

१-मरुद्रुमूलकोकिलानि । २-मार्कण्डी । ३-पृथक् द्विपला । अत्र पलशब्देन रूप्यकपञ्चकमभिप्रेत, तेन दशरूप्यकमिता प्रत्येक ग्राह्या । ४-शुण्ठी । ५-पलम् । ६-दशप्रस्थमित जलम् । ७-पोट्टलिकावद्धैरिति शेष । ८-पञ्चदशदिनावधि । ९-पिबन्तु । १०-सौजाकिभिर्लवणादि त्याज्यम् । अष्टाहात् पोट्टलिका परिवर्तनीयेति रहस्यम् । ११-उष्णवात । १२-निमज्जयन्तु इत्यर्थ । १३-विरोजसस्तैलनिष्कासनविधिरयम् । १४-शैलप्रान्तभूमिभवा कर्करिकाप्राया शर्करामृत् । १५-अनेपदर्थे नञ्, तेन सूक्ष्मरन्ध्रे इति प्रतिपादित भवति, अन्यथा तैल कुतश्च्योतेत् । १६-उपदशमित्युपलक्षण, तेन कर्णपूरणात् कर्णरुक्स्रावादिष्वपि योज्यम् । १७-मूत्ररेकप्रकारोऽयम् ।

४० सितामुष्टिर्लसीकायाः पात्रं पिचुं[2] मिषित्रुटि ।
शतमावर्त्य पुरतः[3] पेयं बस्तिविशोधनम् ॥ ८९ ॥
४१ द्विसिन्धुद्रम्मजलैः[4] समुद्रशरमाषसौधजलकलितैः[5] ।
दत्तत्रिमाषतुत्थैः क्षालनमुपदंशमुपहन्ति[6] ॥ ९० ॥
४२ कोलिमूलत्वचां[7] प्रस्थं द्व्याढकेऽपां शनैः पचेत् ।
क्वाथेनार्धावशिष्टेन क्षालयेल्लिङ्गगान् व्रणान् ॥ ९१ ॥
४३ सितकर्ज्जलतः[8] कर्षं हिङ्गुलं माषपञ्चकम् ।
कर्पूरं शाणिकं धौतहविषा मसृणीकृतम्[9] ॥ ९२ ॥
लेपयेच्छनकैर्विष्वग्द्वित्रिवारं प्रयत्नतः ।
शाम्यन्ति तेन तत्रत्या व्रणा दाहोत्तरार्तयः ॥ ९३ ॥
४४ शीतलमरिचद्वितयं[10] त्रुटिरेका वल्लसंमितं तुत्थम् ।
शतधौते नवनीते[11] विनीय[12] लिङ्गं समालिम्प ॥ ९४ ॥
४५ शवाश्मरालतुत्थानि तैलपृक्तानि वारिभिः ।
शतधौतानि लेपेन[13] विनिघ्नन्त्युपदंशकम् ॥ ९५ ॥

होता है ॥ ८८ ॥ मिश्री चार तोला, लस्सी २५६ तोला, सौंफ और इलायची एक तोला इनको सोवार हिलाकर पीजायें । यह पेय बस्तिको शुद्ध करता है ॥ ८९ ॥ बेतालीस कलदार रुपयाभार जल में, विगलित सुधाखंड के उपरि-भाग-गत, पिस्तालीस-माषा स्वच्छ जल मिलादें । यहां कुछ पुराणे सुधा-खंडोंका उपयोग करें । फिर, इसमें तीन माषा प्रमाण में तुत्थचूर्ण डालकर उपरोक्त जल-द्वय में अच्छी तरह मिला लेवें । इस जलद्वारा प्रक्षालन करने से उपदंश तथा व्रणादि शांत हो जाते हैं ॥ ९० ॥ बोर झडी (बदरी-मूल-त्वक्) चौसठ तोला लेकर उसे ५१२ तोले पानी में उकालें । अर्धावशेष रहनेपर उतारलें । इससे उपस्थ-गत व्रणों को धोने से उनका शमन होता है ॥ ९१ ॥ कासगरी सफेदा एक तोला, हिंगुल पांच माषा तथा कपूर तीन माषा इनमें घृत मिलाकर पीछे कांस्य-पात्र में अनेक बार धोकर मुलायम बनालें । फिर, इसको धीरे धीरे यत्नपूर्वक दो तीन बार, चारों ओर प्रलेप करें । इससे उपदंश-व्रण तथा दाहजन्य वेदना शांत हो जाती है ॥ ९२–९३ ॥ दो शीतल मरिच, एक इलायची, एक वाल-तुत्थ इनको नवनीत से कांस्य-पात्र में शतवार प्रक्षालित करें । फिर, निंब की शाखा से लिंगपर लेप करें ॥ ९४ ॥ मुर्दार, राल, तुत्थ इनको तैल में सिक्त करके

१–आढकम् । २–पिचुरत्र तोलकपरः । ३–प्रथमम् । ४–द्विचत्वारिंशत्कलदाररूप्यप्रमितजलैः । ५–चतुःपञ्चाशन्माषतुलितकलिकोपरिस्थाच्छजलकलितैः । जलं च पुराणकलिकोत्थं ग्राह्यम् । ६–व्रणसामान्यमपि । ७–वदरीमूलवल्कलानां लोके ‘बोरझडी’ इति प्रसिद्धानाम् । ८–‘कासगरी सफेदा’ इति लोकख्यातात् । ९–कांस्यपात्रे इति शेषः । घृतेनौषधं संमेल्य पश्चाज्जलेन बहुशः प्रक्षालयेदिति । १०–आकृतिमानादेव ग्रहणम् । एवं त्रुटेरपि । ११–पञ्चतोलकमिते । १२–निम्बकाष्ठशलाकयेति शेषः । १३–लेपं कृत्वा पट्टं बध्नीयात् ।

४६ क्षीरिणीच्छत्रभसितंमायागैरिककत्थकर्म् ।
गलेवशदलाम्भोभिरचिताम्रं विमर्दयेत् ॥ ९६ ॥
अस्य प्रलेपमात्रेण दाहार्तिश्वयथूत्तरा ।
उपदंशव्रणा घोरा प्रणश्यन्ति न संशय ॥ ९७ ॥
४७ प्रशमयति तन्दुलीयस्वर्णच्छदर्कदिपत कल्क ।
पिडिकामुपस्थजातां दवोल्वणां पट्टखण्डसंनद्ध ॥ ९८ ॥
४८ पोदीफणिज्झौ रसमार्षकौ पृथक् पलं सितायाः मरिचानि विंशति ।
प्रपिष्य चन्द्रोडुहिमेन वारिणा निर्गाल्य कल्ये पिब पारदार्तिषु ॥ ९९ ॥
४९ हंसराजतृणं किंच कुङ्कुमं जातिपत्रिकाम् ।
पिष्ट्वाऽम्भसा वटी कुर्यात् प्रस्रवद्व्रणशोषिणी ॥ १०० ॥

इति सौजाकोपदंशचिकित्सा ।

शतवार प्रक्षालित करलें । इसके लेप से उपदंश शान्त हो जाता है । प्रलेपोपरान्त, पट्टी बांध देनी चाहिये ॥ ९५ ॥ खिरणीपर उत्पन्न छत्रक को छायाशुष्क करके उसकी भस्म बनालें । माजूफल, गैरिक, श्वेतकत्था तथा छत्रक की भस्म इनको एकत्र लेकर, गुलैवास के पत्र-स्वरस से, ताम्रपात्र में मर्दन करें । इसके लेपमात्र से उपदंश के घोर व्रण तथा तज्जन्य दाह, वेदना, श्वयथु आदि प्रनष्ट हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ९६–९७ ॥

चौलाई, सोनापाठा तथा धतूरा इनके पत्तों का कल्क बनालें । इस कल्क को पट्टी से युक्तिपूर्वक बांध दें । इससे दाहातिशययुक्त उपस्थ-पिडिकायें प्रशमित हो जाती हैं ॥९८॥ पोदीना तथा मरवा प्रत्येक छह माशा, मिश्री चार तोला, मरिच नग बीस इनको एकत्र पीसकर 'चन्द्र-नक्षत्र' से शीतल जल में घोल, वस्त्रपूत करके पीयें । इसका प्रयोग, अशुद्ध रसकपूर, हिंगुल, पारद आदि के भक्षण से, अथवा दुराचरण से उत्पन्न विकृति में, परम प्रशस्त है ॥९९॥ हंसराजतृण, केसर तथा जावित्री इनको, पानी में घोटकर, वटिया बनालें । यह वटिया, असम्यक्-मारित धातुके सेवन से उत्पन्न स्रावयुक्त व्रणों का, अथवा दोषजन्य स्रावसह व्रणों का शोषण करके उन्हें सुखा देती है ॥ १०० ॥

— सौजाक उपदंश चिकित्सा समाप्त —



१–'खिरणी' इति प्रसिद्धपादपोत्पन्न छिलीन्ध्र शुष्कं कृत्वा भस्म कार्यम् । २–मायाफलानि । ३–सुवर्णगैरिकम् । ४–श्वेतकत्थम् । ५–'गुलैवास' इति प्रसिद्धस्य पत्रस्वरसे । ६–तन्दुलीयवत्तूरदलकल्कदिग्धपत्त । ७–रसकर्पूरहरितालपारदभक्षणाद्दुराचारितादुत्पन्नायां विकृतावस्य प्रयोग इष्यते । पोदी 'पोदीना' इति प्रसिद्ध । फणिज्झो मरुवक 'मरवा' इति ख्यात । ८–पञ्चमाषिकौ पृथक् । ९–प्रात काले । १०–असम्यङ्मारितधातुजन्यस्रवद्व्रणशोषिणीदोषव्रणशोषिणीश्च ॥

कुष्ठरोगचिकित्सितम्[1] ।

१ साधितं[2] वालुकायन्त्रे तृणप्रज्वलनावधि ।
तुत्थं निहन्ति पर्णेन कुष्ठमुत्थं समग्रशः ॥ १ ॥
२ ऐन्द्री[3]आसनं रजो लेह्यं हविषा मधुसंयुजा ।
अशेषकुष्ठशमनं नास्त्यतः परमौषधम् ॥ २ ॥
३ पालाशबीजगन्धाग्नीन्[4] दुग्धे संस्वेद्य निर्भरम् ।
विशोष्य साधु संचूर्ण्य चालयेत् सूक्ष्मवाससा ॥ ३ ॥
तच्चूर्णं माषयुगलं जलेन सह साधितम् ।
निहन्ति मण्डलं कुष्ठं मासमात्रप्रयोगतः ॥ ४ ॥
४ संभाव्य देवदालीं[5] सौधार्कैः सप्तधा पृथग्दुग्धैः ।
कुष्ठेषु वल्लमानां पिब पयसा त्यज पटुप्रभृतीन् ॥ ५ ॥
५ आर्द्राणि निम्बपर्णानि गिलेत् प्रातर्हिमाम्बुभिः ।
मासमात्रप्रयोगेण कुष्ठं हन्त्यहितैस्त्यजाम् ॥ ६ ॥
६ द्विपलं निम्बजं कल्कं प्रत्यूषे गिलतां नृणाम् ।
प्रभिन्नमपि वातास्रं व्येति पथ्यघृताशिनाम् ॥ ७ ॥

— कुष्ठरोग चिकित्सा (कुल प्रयोग ३५) —

तुत्थ को वालुकायंत्र में अथवा संपुट में रखकर, तृण प्रज्वलित रहे तब तक अग्नि देकर सिद्ध करलें। फिर, एक चांवल जितनी मात्रा में पान के साथ इसको लेने से समग्र शरीर में व्याप्त कुष्ट नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ भंगा के चूर्ण को मधु तथा घृत के साथ दीर्घकाल तक लेने से, समग्र कुष्ट शांत हो जाते हैं। कुष्ठ की इससे अधिक उत्तम अन्य औषधि नहीं है ॥ २ ॥ पलाशबीज, गंधक तथा चित्रक इनको दूध में यथेच्छ उकाल लेवें। फिर इनको सुखाकर वस्त्रपूत चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को दो माषा भर मात्रा में पानी के साथ एक मास पर्यंत लेने से मंडल कुष्ठ प्रशमित हो जाता है ॥ ३-४ ॥ देवदाली के फल को सुधाजल की तथा अर्कदूध की पृथक् पृथक् सात भावनायें देवें। कुष्ठ-विकारों में दूध के साथ इसको एक वाल्लभर मात्रा लेवें। प्रयोगकाल में लवणाम्ल प्रभृति को त्याग दें ॥ ५ ॥ निंब की ताजा आर्द्र कोंपलों को, प्रातः शीतल जलानुपानसह, एकमासपर्यंत, पथ्यपूर्वक लेने से, कुष्ठ शांत हो जाते हैं ॥ ६ ॥ निंब की आठ तोला नूतन कोंपलों के कल्क को प्रातः सेवन करने से, तथा

१—अधुना क्रमप्राप्तं कुष्ठरोगचिकित्सितमभिधीयते । २—तुत्थखण्डं [illegible] वालुकान्तः साधयेदिति । मात्रा चास्य तण्डुलोन्माना । ३—[illegible] फलदम् । ४—पालाशबीजगन्धकचित्रकान् । ५—'देवदाली' [illegible] फलम् । ६—कर्षप्रमाणानि । ७—गुडतैलदुग्धादीन्यहितानि [illegible] ८—निम्बसंवर्तिकाजम् । ९—तैलाम्लादिवर्जं घृतं [illegible]

७ तिक्तभृङ्गमरुद्वल्लीरसो निम्बमदान्वय. ।
सक्षौद्रोऽष्टाहमष्युष्णं सिद्ध' कुष्ठास्रसूदनः ॥ ८ ॥
८ तोलद्वयं सिताया जुङ्गयास्तोलो निशाऽर्धतोलेव ।
मरिचानि निशार्धानि प्रत्येक सर्वमेतदापिष्य ॥ ९ ॥
पाणौ यथोपदेशं प्रकल्प्य फाये गिलेद्दिनै. षड्भि. ।
हिममम्बु पिबेच्चानु क्षपणाय प्रदुष्टरक्तस्य ॥ १० ॥
९ सिताप्रयोगान्मधुरीकृत मनाग्जीरप्रयोगात् सुरभीकृत पुनः ।
रसं पलाण्डो. पलसंमितं प्रगे पिबन्तु पामाव्यथमानपाणयः ॥ ११ ॥
१० बदराङ्घ्रिवल्कलजनुपि शिशिरेऽश्रुते तन्दुलानि संसाध्य ।
गव्यघृतशर्कराभ्यां इन्युर्भुक्तानि पामार्तिम् ॥ १२ ॥
११ प्रपिष्य गन्धममलसारंभिषं भिषग्वर. ।
दद्यात् क्षौद्रेण शाणार्धं कण्डूपामादिरोगिणे ॥ १३ ॥

पथ्यरूप से तैलाम्लादि के त्यागपूर्वक, सोलह तोले घी का पथ्यरूप से प्रतिदिन भोजन करते हुये, प्रवृद्ध वात-रक्त भी शमित होता है ॥ ७ ॥ चिरायता, भृंगराज तथा अमरवेल इनके प्रत्येक के बत्तीस तोला स्वरस में, करीब बत्तीस तोला निंब-मद मिलावें। फिर, बत्तीस तोला शहद के साथ इनको एक काच-कुपी में भरकर सूर्य के ताप में अठारह दिवस पर्यंत रहने दें। यह सिद्ध-रसायन कुष्ठ तथा रक्त-पित्त का नाश कर देता है। इसकी मात्रा चार तोला भर है। नमकरहित केवल चने के आटे की रोटियो के अतिरिक्त अन्य सभी पदार्थ वर्ज्य हैं ॥ ८ ॥ मिश्री दो तोला, मजिष्ठा एक तोला, हरिद्रा अर्ध तोला, मरिच तीन माषा इन प्रत्येक को एकत्र पीस लें। इसके चूर्ण को, हस्त-तल में रखकर, षड्-दिवस पर्यंत नियमित फाक जायें। ऊपर से शीतल जल पीयें। इससे रक्त-दुष्टिजन्य पामा का क्षय हो जाता है ॥ ९–१० ॥

प्रथम मिश्री मिलाकर मधुर किया गये, फिर, जीरक-चूर्ण से सुगंधित बनाये गये पलाण्डुरस को, पामापीडित पुरुष, एक पलमात्रा में, प्रात काल पीयें ॥ ११ ॥ बदरी मूल-त्वक् के, अनग्नि-सिद्ध हिम-कषाय से चावलों को पकाकर सिद्ध करलें। फिर, इसमें गाय का घी और शक्कर मिलाकर भोजन करें। इससे पामा की पीडा पराजित हो जाती है ॥ १२ ॥ आमलासार गंधक को पीसकर, उसमें से डेढ माषाभर

१–तिक्त किरात, भृङ्ग भृङ्गराज, मरुद्वल्ली अमरवल्ली, एतत्स्वरसो निम्बवृक्षस्रावश्च। २–एते सर्वे द्रवा प्रत्येक शरावमिता ग्राह्या। ३–काचकूपीमध्ये भृत्वाऽऽतपे संस्थाप्य, सिद्धे मात्रा पल, पथ्य च केवलचणकरोटिका विलवणा नान्यत्किंचिदपि। ४–मञ्जिष्ठाया। ५–प्रोक्तक्रमेण। ६–प्रदुष्टरक्तजपामाया इत्यर्थ, कार्ये कारणोपचारात्। ७–लवणादिवर्जमन पथ्यम्। ८–हिमकषाये अनग्निसिद्धे इति यावत्। ९–अनि स्तनमण्डानीति शेष। १०–'आमलासार' इति नाम्ना प्रसिद्धगन्धकविशेषादन्यो गन्धक आदेय।

१२ बाकुची[1]गन्धपाषाणौ क्रीतौ ढब्बू[2]केशुल्कतः ।
कर्के[3] निक्षिप्य सजले सायं सौधोपरि न्यसेत् ॥ १४ ॥
उत्थाय तज्जलं प्रातर्निपीय पटपावितम् ।
पटस्थं वक्सं तैले[4] पिष्ट्वा लिप्त्वाऽऽतपं भजेत् ॥ १५ ॥
विधाविति कृते पामा दिनेनैकेन नश्यति ।
अहानि त्रीणि सेवेत भक्तं दुग्धेन केवलम् ॥ १६ ॥
१३ कम्पिल्लब[5]स्तगन्धामृताश्मबलितुत्थजं चूर्णम् ।
मसृणं घृतेन लेपात् पामां हन्त्यातपे निषण्णस्य ॥ १७ ॥
१४ चूर्णं[6] पलं सिश्रितनक्त[7]शाणं संनीय तैले[8]न रुबूद्भवेन ।
धौतं पयोभिः शतशः क्षिणोति पामाप्रकोपं त्रिभिरेव लेपैः ॥ १८ ॥
१५ मधूकपुष्पाणि पयः[9]प्लुतानि बद्धानि पामोपरि कर्पटेन ।
तत्तादृगुद्रिक्ततदीयदाहपीडाप्रभृत्यापदमाक्षिपन्ति ॥ १९ ॥
१६ श्वेतगुञ्जार[11]सा[10]फूकसिन्दूरोषणशुक्तिकम् ।
पिष्ट्वा बधान तैलेन मोदकं वैद्यमोदकम् ॥ २० ॥

मात्रा का, वैद्य-श्रेष्ठ, कण्डूपामादि से पीडित रोगी को सेवन कराये ॥ १३ ॥ मालिवापची (बाकुची) तथा गन्धक दोनों को एक ढब्बू के मूल्य से जितने मिलें उतनी मात्रा में लेकर जल-पूर्ण सकोरे में भिगोकर, सांझ को, छतपर रखदें। सुबह, सकोरे के जल को वस्त्रपूत करके पीजायें। फिर, वस्त्रलग्न-भूसे को, तैल अथवा घी में पीसकर हाथों पर प्रलेप करके धूप में बैठ जायें। विधिपूर्वक इस तरह करने से एक ही दिवस में लाभ दीख पडेगा। यह प्रयोग तीन दिवस पर्यंत करें। भोजन में केवल दूध ही पीयें। (इस प्रयोग को यथोपदिष्ट विधिपूर्वक करने से ही लाभ होगा, अन्यथा नहीं ॥ १४–१६ ॥ कपिला, बाकुची, मुर्दार, गन्धक और तुत्थ इनके चूर्ण को घी में घोट कर मुलायम बनालें। इसका प्रलेप करके धूप में बैठ जायें। इससे पामा शांत हो जाता है ॥ १७ ॥ कलिकाचूर्ण चार तोला तथा हरिद्रा तीन माषा इनको एकत्र चार तोला भर एरंडतैल में पीसलें। फिर, पानी से सोवार प्रक्षालन करें। इसके तीन वार प्रलेप से पामा का प्रकोप क्षीण हो जाता है ॥ १८ ॥ मधूकपुष्पों के जल-पिष्ट कल्क को पामा के ऊपर प्रलिप्त करके पट्टी से बांध दें। प्रवृद्ध पामा तथा तज्जन्य दाह, वेदना प्रभृति संकट को यह क्षीण कर देता है ॥१९॥ श्वेत गुंजा, पारद, अफीम, सिंदूर, मरिच तथा शुक्ति इनको एकत्र तैल में पीसकर, फिर, वैद्य को मोद देनेवाला मोदक बनाकर,

१–बाकुची 'मालिवापर्चा' इति जयपुरे प्रथिता । २–एकेनैव ढब्बूकेनोभयमपि वणिगापणतः क्रीत्वा समानेतव्यम् । यथोपदेशं कृते प्रयोगे फलं नान्यथेति । ३–'करवा' इति प्रसिद्धमृत्पात्रे । ४–घृतेऽपीति मतान्तरम् । ५–'मालीवापची' इति प्रसिद्धा । ६–कलिकाखण्डोत्थम् । ७–संमेल्तितहरिद्राशाणम् । ८–पलमानेन । ९–जलैः । १०–जलेन कल्कीकृतानि । ११रसः पारदः ।

तप्ते चतुर्गुणे तैले पच फेनोद्गमावधि ।
मर्दितस्यास्य लेपेन पामाऽपैति त्रिभिर्दिनैः ॥ २१ ॥
१७ पारदटङ्कणगन्धयुगकज्जलिका भवतीह ।
घृतलुलिता लेपैस्त्रिभि· पामादद्रुहरी है ॥ २२ ॥
१८ दद्रू वन्योपलैः कृत्वा मनागुद्गतशोणिताम् ।
भृशं लिप्त्वैङ्गुदैर्मांसैर्विकीर्योपरि शर्कराम् ॥ २३ ॥
आच्छाद्य स्विन्नपत्रास्यच्छदैः पट्टं विबन्धयेत् ।
अष्टयामात् पुन कुर्यात् पट्टान्त सकल विधिम् ॥ २४ ॥
एवं पट्टैस्त्रिभिर्दद्रूर्भवेदुत्सन्नकण्डुरा ।
शाम्यत्युद्गम्य सा जन्तूञ्जलस्पर्शं विवर्जयेत् ॥ २५ ॥
१९ तूलं निम्बाम्बुसंसिक्त घृतेन तलित भृशम् ।
दद्रूपरि पट्टैर्बद्ध दद्रुं तक्षति पक्षत ॥ २६ ॥
२० लिप्तः संघृष्य तैलेन बलिरामलसार्गर ।
उग्रानं दद्रूगदानत्ति तार्क्ष्य कद्रूसुतानिव ॥ २७ ॥
२१ सौभाग्यगन्धसादरसितोपला पीतनिर्म्बुकस्वरसाः ।
अधिपानीय पिष्टा लेपात्त्रिघ्नन्ति दद्रूणि ॥ २८ ॥

इसको, इससे चतुर्गुण तैल में तब तक पकावें, जब तक तैल में से फेन निकलना बंद न हो जाये । इसके लेप से मर्दित पामा तीन ही दिवस में दूर हो जाता है ॥ २०–२१ ॥

टंकण, पारद, गंधयुग, कज्जलिका घृतघृष्ट ।
करती तीन-प्रलेप में, पामा, दद्रु, विनष्ट ॥ २२ ॥

वन्य-उपल से दद्रु को घिसकर उसमें से रक्त निकाल लें । फिर, उसपर इङ्गुदी फल की मज्जा का यथेच्छ लेप करके उसपर मिश्री चूर्ण भुरकाकर, ऊपर से, एरंड के स्विन्न पत्तों को बिछा दें और पट्टी बांध दें । इस तरह तीन बार पट्टी बांधने से दद्रु-जन्य खुजली मिट जाती है । तथा तत्-गत कृमियों के बाहर निकल जाने पर वह स्वयमेव शांत हो जाता है । इसके प्रयोगकाल में जल-स्पर्श वर्ज्य है ॥ २३–२५ ॥ कपास को निंबू रस से सिक्त करके घृत में खूब तल लेवें । इसको दद्रु के ऊपर वस्त्र पट्टी से अच्छी तरह बांध देवें । इससे दद्रु एकपक्ष में विशीर्ण हो जाता है ॥ २६ ॥ गंधक तथा आमलासार गंधक दोनों को तैल में अच्छी तरह पीस लेवें । यह लेप उग्र दद्रु, पामा आदि का उसी तरह भक्षण कर जाता है, जिस तरह गरुड ने कद्रूपुत्रों का किया था ॥ २७ ॥ टंकण, गंधक, नवसादर और मिश्री इनके चूर्ण को निंबूरस की भावना

१—'आमलासार, छाटिया' इति लोकप्रसिद्ध गन्धकयुग्मम् । २—ह इत्याश्चर्ये । ३—'हिंगोटा' इति प्रसिद्धफलमध्यभाग । ४—दण्डशब्दवाच्याम् । ५—पट्ट मोक्षसमये तु जलस्रोतेन समार्ज्य ले ।दिक कृत्वा पट्ट यथेतेति पद्धति । ६—तन्दुलमित सौर देयमेवेति नामह । ७—पामामपि हन्ति । ८—निम्बूकरसभाविता इत्यर्थ ।

२२ रालटङ्कणदैत्येन्द्रपारसीकयवानिकाः
पिष्ट्वा जलेन वटिकीकृता दद्रुं जयन्ति हि ॥ २९ ॥

२३ स्फुटटङ्कणबलिमार्तिक[1]सर्जास्तुल्याः सिता समा सर्वैः।
मसृणं विमर्द्य पयसा लेपो दद्रून् विलोपयति ॥ ३० ॥

२४ पीतमृत्स्नां सलवणां[2] कोष्णैरुत्क्वाथ्य शंवरैः[3]।
लेपोऽवचारयेदुच्चैर्दद्रूविध्वंससिद्धये ॥ ३१ ॥

२५ पिच्छिला[4]त्वक्कषायप्लुतप्लोतेन सचेतः।
दद्रुरश्रान्तमभ्यक्ता प्रणश्यति शनैः शनैः ॥ ३२ ॥

२६ धात्रीफलप्रपुन्नाटबीजजीरककल्पितः।
प्रलेपो वितरत्यद्धा दद्रुदारिद्र्यमुच्चकैः ॥ ३३ ॥

२७ हेमक्षीरीरसो यद्वा रसोन[5]कलिकोद्भवः।
क्षोदो वा लोहकिट्टस्य दद्रुद्रावी प्रलेपतः ॥ ३४ ॥

२८ दद्रुघ्नः[8] कोलिनिर्यास[6]श्छागक्षीरेण लेपितः।
मृत्स्ना[7]मरिचचूर्णं वा गोदुग्धेन तथा स्मृतः ॥ ३५ ॥

देवें। फिर पानी में पीसकर इसका लेप करनेसे दद्रु आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ २८ ॥ राल, गंधक, टंकण, खुरासानी अजवायन इनको जल में पीसकर वटी बनालें। इससे दद्रु पर विजय मिलती है ॥ २९ ॥ भृष्ट टंकण, गंधक, मटिया राल प्रत्येक समान भाग तथा इनसे समान भाग मिश्रीचूर्ण इन सबको एकत्र पानी में बारीक पीसलें। इसका प्रलेप दद्रुओं का विलोप कर देता है ॥ ३० ॥ लवण सहित पीली मिट्टी को, कवोष्ण-क्षार-जल में पकावें। दद्रु विध्वंसरूपी उच्च सिद्धी के लिये इसका लेप करें ॥ ३१ ॥

चौसठ तोला शिंशिपामूल-त्वक् को जौकुट करके ५१२ तोला जल में उकाल कर ६४ तोला जलके अवशिष्ट रहनेपर उतार लें। इस क्वाथ के प्लोत से दद्रु को निरंतर सिक्त रखने से वह शनैः शनैः नष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥ आंवला, पवांड के वीज तथा जीरा इनका प्रलेप शीघ्र ही दद्रु के दारिद्र्य को नितांत स्पष्ट कर देता है ॥ ३३ ॥ स्वर्णक्षीरी का रस अथवा शुद्ध किये गये लहसुन की कलियों का रस, अथवा लोहकिट्ट का चूर्ण इनमें से किसी एक के प्रलेप से दद्रु द्रवीभूत हो जाता है ॥ ३४ ॥ बदरी वृक्ष के गूंद का, अजादुग्ध के साथ प्रलेप दद्रु का नाश कर देता है। इसी तरह मुलतानी मिट्टी और मरिच चूर्ण का गोदुग्ध के साथ प्रलेप भी यही प्रभाव दिखाता है ॥ ३५ ॥

१—मार्तिकसर्जो मृत्तिकावर्णो रालः। स च 'मटिया राल' इति प्रसिद्धः। २—लवणमत्र शाकमम्भरीयम्। ३—क्षारपानीयैर्न तु मधुरैरिति यावत्। ४—पिच्छिला शिंशिपा, तस्या वल्कलं द्विप्रस्थं यवस्थूलं विधाय द्वाढकजले संक्वाथ्य द्विप्रस्थं शेषयेत्। तत्प्लोतेन म्रक्षिता दद्रूर्नश्यतीति। ५—शुद्धरसोनभवो रस इत्यर्थः। ६—बदरीगुन्द्रम्। ७—मृत्स्ना च मुलतानदेशोद्भवा। ८—दद्रुघ्न इत्यर्थः।

२९ तेजोवा साधनद्रव्यवकसं लिम्पतां नृणाम् ।
दद्रुविचर्चिकाचिन्ता न जातुचन मुञ्चति ॥ ३६ ॥
३० आवाप्य तप्ततैलान्तः पादिकं सिक्थमुत्तमम् ।
शतकृत्वो जलैर्धौत फुल्लमो नाम सिध्यति ॥ ३७ ॥
विपादिकामयं लेपमात्रेणैव व्यपोहति ।
दद्रुं शवाश्मसंगत्या दाह कर्पूरसंस्कृत. ॥ ३८ ॥
३१ शुष्क रज. सुधाज विमथ्य तैलेन मर्दिते गात्रे ।
कुष्ठं विभूतिसञ्ज्ञं कष्टमपि हहा भवति नष्टम् ॥ ३९ ॥
३२ मलयोद्भवकर्पूरकल्पितो लेपसत्तम ।
विभूतिं रंहसा हन्ति परां काष्ठा गतामपि ॥ ४० ॥
३३ नीरे द्विनल्वणे प्रस्थान् वरांया दश पञ्च च ।
भाण्डे निक्षिप्य संमुद्र्य स्थापयेद्दिवसाष्टकम् ॥ ४१ ॥
अर्कं जातरसात्तस्मादुन्नयेन्नल्वणोन्मितम् ।
पथ्यांपटुगुटीं तेन गिलेच्छ्विविचित्रित. ॥ ४२ ॥

जिन द्रव्यों से तेजाप बनता है, उन द्रव्यो के अर्थात् नवसादर, स्फटिका, कासीस आदि के धुंके के लेप से दद्रु विचर्चिका की चिंतासे मनुष्य को मुक्ति न मिले यह कदापि सभव नहीं ॥ ३६ ॥ प्रतप्त तैल में तैल से चतुर्थांश उत्तम सिक्थ डालकर पिघलालें । फिर जल से शतवार प्रक्षालित करें । यह सिद्ध औषधि 'फुल्लम' कहलाता है । पाददारी इसके प्रलेपमात्र से विदारित हो जाती है । मुर्दार के साथ इसका प्रलेप दद्रु को तथा कपूर के साथ, दाह को मिटा देता है ॥ ३७-३८ ॥ सुधाचूर्ण को तैल में मथकर शरीरपर लगाने से, कष्टपूर्ण सिध्म भी, अहो ! नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥ श्वेतचदन के साथ कपूर को घिसकर बनाया गया लेप अत्यत प्रवृद्ध सिध्म को भी मिटा देता है ॥ ४० ॥ अस्सी प्रस्थ पानी में पदरह प्रस्थ त्रिफला के चूर्ण को मिला एक मृत्पात्र में भरकर उसके मुख को सपुटित करके आठ दिवस पर्यंत रहने दें । फिर, इसमें से करीब चालीस प्रस्थ जितना अर्क निकाल लेवें । अब, हरडे तथा सैंधव दोनों समान भाग लेकर, जल से पीसकर एक माषा प्रमाण गुटी बाध उपरोक्त अर्क के साथ उसको निगीर्ण कर जायें । वर्षमात्र के प्रयोग द्वारा मैंने इसका प्रत्यक्ष चमत्कार कहीं भी देखा है । श्वित्रकुष्ठ से पीडित मानव जाति के उपकारार्थ यह प्रयोग मैं यहा

१-तेजोवा तेजापसञ्ज्ञक, तस्य साधनद्रव्याणि नवसादरस्फटिकाकासीसप्रभृतीनि, तेषां वकसम् । २-मधूच्छिष्टम् । ३-पाददारीम् । ४-सिध्मापरपर्यायम् । ५-अधुना श्वित्रसञ्ज्ञस्य चिकित्सोच्यते । ६-नल्वणोऽत्र चत्वारिंशत्प्रस्थप्रमाणो विवक्षित । ७-त्रिफलाया । ८-पथ्यां सैन्धवं च सम गृहीत्वा जलेन पिष्ट्वा माषोन्मिता गुटी कार्या । स्पष्टमन्यत् ।

काऽपि दृष्टचमत्कारो वर्षमात्रप्रयोगतः ।
श्वित्रिणामुपकाराय प्रयोगोऽत्र प्रकाशितः ॥ ४३ ॥
पीते परं तद्वदर्कं पुनर्निष्काश्य वर्तयेत् ।
मात्राऽस्य कुडवोन्माना पथ्यमप्यल्पसैन्धवम् ॥ ४४ ॥
३४ सच्छिद्रकाचमसृणितंकरके भृत्वा शिरोरुहप्रस्थम् ।
तदुपरि विकीर्य तुत्थं तोलकमेकं विमुद्र्य करकास्यम् ॥ ४५ ॥
पातालयन्त्रयुक्त्या किमपि प्रच्यावितं तैलम् ।
अहह विनिहन्ति नाम प्रलेपतः श्वित्रसितिमानम् ॥ ४६ ॥
३५ चत्वारिंशद्दिनानि स्त्रीसूत्रे ज्योतिष्मती स्रुता ।
तत्तैलं यन्त्रतः कृष्ट्वा लिम्पेच्छ्वित्रोपरि द्रुतम् ॥ ४७ ॥

इति कुष्ठचिकित्सा ।

अथ शीतपित्तचिकित्सितम् ।

१ शितिजीरशरीजीरे पृथग्गद्याणसंमिते ।
प्रसृतेऽम्भसि निःक्वाथ्य पादोनमवतारयेत् ॥ १ ॥

प्रकाशित करता हूं । अर्क यदि पीते पीते निःशेष हो जाये तो पुनः उपरोक्त विधि से निकाल कर उपयोग करें । इस अर्क की मात्रा नित्य सोलह तोला भर है । अल्प सैंधव पथ्य है ॥ ४१–४४ ॥

एक करवे के भीतरी भाग में काच का घोल चढाकर उसे मुलायम बनालें । फिर, इसके तल भाग में एक सूक्ष्म छिद्र कर दें । अब, इस करवे में सिर के करीब चौसठ तोले बाल- केश बिछाकर उनके ऊपर एक तोला तुत्थ का चूर्ण फैलादें । करवे के मुख को कपडमिट्टी करदें । अब, १२८ तोले उपलों की अग्नि देकर, पातालयंत्र-विधि से युक्तिपूर्वक तैल टपका लें । अहो ! इस तैल के प्रलेप से श्वेतवर्णता को प्राप्त होता हुआ श्वित्र नष्ट हो जाता है ॥ ४५–४६ ॥

चालीस दिवस पर्यंत स्त्रीसूत्र में मालकांगनी भिगोकर रखदें । फिर इसमें से पातालयंत्र द्वारा तैल निकाल लेवें । इसका श्वित्र पर प्रलेप करने से वह शीघ्र शमित हो जाता है ॥ ४७ ॥　　– कुष्ठचिकित्सा समाप्त –

– शीतपित्त चिकित्सा (कुल प्रयोग ३)

श्वेतजीरा तथा शरीजीरा प्रत्येक छह माषा लेकर उनको ८ तोले जल में उकालें ।

१–करकस्याधस्तले स्वल्पं छिद्रं कार्यं तैलच्यावनार्थम् । काचघोलेन च तदभ्यन्तरे प्रलेपो मसृणः कारयितव्यः । २–अग्निरत्र द्विप्रस्थगोमयैर्देयः । ३–'मालकांगनी' इति ख्याता । ४–पातालयन्त्रतः । ५–त्वगादिदुष्टिसाधर्म्याच्छीतपित्तम् । ६–शितिजीरं कृष्ण-जीरकम् । शरीजीरं लामज्जकशरीजीरम् ।

पटपूते क्षिपेत्तत्र खण्डं कर्षार्धमुज्ज्वलम् ।
द्वित्रिवारं निपीतं तत् कोठोदर्दौ व्यपोहति ॥ २ ॥

२ चूर्णगर्भं नरो भुक्त्वा शर्करावुद्बुदं महत् ।
अवश्यं तत्क्षणादेव मुच्यते शीतपित्ततः ॥ ३ ॥

३ पटुतैलभवां पिष्टिमधिपोपरि विभ्रतः ।
सद्य एव विलीयन्ते कोठोदर्दादिवेदनाः ॥ ४ ॥

इति शीतपित्तचिकित्सा ।

स्नायुकरोगचिकित्सितम्[3] ।

१ निर्मोकवन्योपलजालजा वटीं प्रातर्गिलेज्जीर्णगुडप्रकल्पिताम् ।
स्नायुव्यथार्तोऽपटुमेकधान्यजा त्र्यहं हि भुञ्जीत गुडेन पोलिकाम् ॥ १ ॥

चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छानलें। इसमें छह माशा मिश्री मिलाकर पीयें। इस तरह दो तीन बार पीने से कोठ तथा उदर्द दूर हो जाते हैं ॥ १–२ ॥ एक बड़े पताशे में सुधाचूर्ण खाकर मनुष्य उसी क्षण शीत-पित्त से मुक्त हो जाता है ॥ ३ ॥ मस्तक पर, जहा सिरा सन्निपात होता है वहा, रोमावर्त नामक जो मर्म विशेष है उस मर्मपर सैंधव तथा तैल दोनों की पिष्टी का लेप करने से कोठ, उदर्द आदि वेदनायें शीघ्र ही विलीन हो जाती हैं ॥ ४ ॥

– शीतपित्त चिकित्सा समाप्त –

– स्नायुकरोग चिकित्सा (कुल प्रयोग १२) –

(स्नायुक रोग का 'रोगविज्ञान' में वर्णन नहीं मिलता, अतः इस रोग के लक्षण के विषय में वृन्द ने जो कहा है वह यहा उद्धृत करते हैं। शाखाओं में प्रकुपित वायु विसर्प की तरह शोफ उत्पन्न करके जब उस शोफ को विशीर्ण कर देता है तब

१–सुधाचूर्णम् । २–शिरासंधिसंनिपात उपरिष्टाद्रोमावर्त इत्युक्तस्वरूपमस्तकस्थमर्मविशेषोपरिष्टादित्यर्थः । ३–स्नायुकरोगो रुग्विनिश्चये नोक्तः, अतो वृन्दोक्तं तल्लक्षणमत्रापि प्रदर्श्यते । यथा–"शाखासु कुपितो वायुः शोफं कृत्वा विसर्पवत् । भित्त्वैव तं क्षते तत्र सोष्मा मांसं विशोष्य च ॥ कुर्यात्तन्तुनिभं सूत्रं तत्पिण्डैस्तत्क्रमक्तुजैः । स्रित्वा शनैः क्षतादेति च्छेदात्तत् कोपमावहेत् ॥ तत्पाताच्छोथशान्तिः स्यात् पुनः स्थानान्तरे भवेत् । रोगः स्यात् स्नायुको नाम्ना तन्तुकश्च प्रकीर्तितः ॥" इति । लोके च 'वालो' इति नाम्ना ख्यातः । ४–निर्मोकः सर्पकञ्चुकम् । तच्च द्व्यङ्गुलप्रमाणम् । वन्योपलजालं च जुञ्जुनीशब्दवाच्यं कर्षं सपादकर्षं वा, जालं चेद् प्राचीनवनोपलसमूहेषु शिथिलाकारविलक्षणं सम्भवति । ५–पूर्वाभिमुखः सूर्यं प्रणम्य बटुकुमारिकाभ्यो यथाशक्ति गुडं विभज्य श्रद्धया गिलेदित्याशयः । ६–गुडः चोभाभ्यां चतुर्गुणं पञ्चगुणं वा देयम् ।

२ मर्कटिवलक्षजालं प्रत्नेन गुडेन साधु संनीय ।
प्रातर्गिलेत्त्रिघस्रं स्नायुकतन्तोर्निवृत्त्यर्थम् ॥ २ ॥
३ भल्लातकं वृन्तविहीनमेकं पिष्ट्वा क्षिपक्तु सूक्ष्मतरं शिलायाम् ।
मिश्रं गुडेन द्विगुणेन भुक्तं निहन्त्ययं स्नायुकमुग्रशूलम् ॥ ३ ॥
४ कर्पूरस्य त्रिगुंजस्य सगुडा वटकास्त्रयः ।
प्रातः पृथङ्निगीर्णास्ते स्नायुकं घ्नन्ति दुःसहम् ॥ ४ ॥
५ माषा वज्रकजाच्चूर्णाज्जया जीर्णगुडात्तथा ।
खेटा निर्जरवल्ल्याः सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ ५ ॥

वहां क्षत उत्पन्न हो जाता है। क्षतस्थ मांस जब ऊष्मा से शुष्क होता है तब उस क्षत में तन्तु जैसा सूत्र बन जाता है। इस तन्तु-सूत्र पर सक्तु तथा तक्र योग से बनायी गयी पिष्टी का शनैः शनैः लेप करने से वह सूत्र क्षत से बाहर निकल आता है। सूत्र का छेद नहीं करना चाहिये, क्योंकि इससे वह प्रकुपित होता है। सूत्र के निकल जाने पर तत्रस्थ शोथ अवश्य शमित हो जाता है, किंतु वह वहां शांत होकर अन्यत्र स्थान पर पुनः उत्पन्न हो आता है। इस प्रकार का रोग 'स्नायुक' अथवा 'तन्तुक' नाम से प्रसिद्ध है। लोकभाषा में यह रोग 'वाला' नाम से प्रख्यात है।)

दो अंगुल जितनी सर्पकंचुकी तथा एक तोला भर जुंजुनी (पुराणे वन्य-उपलों के ढेर में छाये हुये श्वेत-जाल विशेष) इन दोनों को मिलाकर वटी बनालें। स्नायुक व्यथा से पीडित-रुग्ण, प्रातःकाल, पूर्वाभिमुख होकर, सूर्य को प्रणाम करके तथा यथाशक्ति कुमार एवं कुमारिकाओं को गुड वितरण करके, सश्रद्धा, पूर्वोक्त वटी को, इसमें, चतुर्गुण अथवा पंचगुण पुराणा गुड मिलाकर, निगीर्ण कर जायें। इस तरह तीन दिवस प्रयोग करें। लवणादि के त्यागपूर्वक पथ्य में केवल एक ही धान्य की गुडनिर्मित चपातियों का सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥ मकडी के श्वेतजाले को पुराणे गुड में अच्छी तरह मिलाकर, तीन दिवसपर्यंत, प्रातः लेने से स्नायुक की निवृत्ति हो जाती है ॥ २ ॥ वृंतरहित एक भिलावे को लेकर, उसे शिलापर खूब बारीक पीस लेवें। फिर उसमें द्विगुणित गुड मिलाकर निगीर्ण कर जाये। इससे शीघ्र ही स्नायुक-जनित उग्रपीडा शमित हो जाती है ॥ ३ ॥ गुडमिश्रित, तीन या चार गुंजाभर कपूर की तीन वटिकायें बांधकर, प्रातः एक के पीछे एक इस तरह तीनों वटियों को निगीर्ण कर जायें। यह दुःसह स्नायुक को भी नष्ट कर देती हैं। यहां रहस्य यह है, कि एक वटी को निगल कर सो डग चलकर फिर दूसरी को निगीर्ण कर जायें; फिर, सो डग चलकर तीसरी को; निगीर्ण करते समय वटी को दंत-स्पर्श न होने दें तथा शीतल जल से निगीर्ण करें ॥ ४ ॥ बाजरे का चूर्ण एक माषा, पुराणा गुड अठारह माषा, आकाशवल्ली बारह माषा, इनको एकत्र पीस लें। इनकी तीन वटियां बनावें। प्रतिदिन एक को निगीर्ण

१–'मकडी' इति नाम्ना प्रसिद्धायाः शुभ्रजालकम्। २–त्रिगुञ्जेत्युपलक्षणं, तेन चतुर्गुञ्जमपि ग्राह्यम्। अत्रेदं रहस्यम्–एकां गुटीं निगीर्य शतपदं गत्वा पुनरेकां गिलेत्, एवं

कृत्वा तिस्रो वटीस्तासामेकैका निर्गिलेत्र्यहम् ।
लीयते स्नायुकः किं तु बध्नीयाद्बिल्वजं दलम् ॥ ६ ॥
६ बर्हिणो बर्हमाद्यन्तवर्जं दग्ध्वा गिलेज्जले ।
त्रिभिरेव दिनैर्ब्रूमः स्नायुको विलयं व्रजेत् ॥ ७ ॥
७ बोलं गुडेन जीर्णेन विनीय गुटिकीकृतम् ।
त्रिसन्ध्यं निर्गिलेदेव सद्यः स्नायुकशान्तये ॥ ८ ॥
८ जतुस्तोलककापोतशकृतः सगुडा गुडाः ।
सैप्त सप्तदिनैरेव स्नायुकं ध्नन्ति कृत्स्नशः ॥ ९ ॥
९ गरुडविशेषस्य गरुद्यपगतनलिकं विचूर्ण्य तस्यार्धम् ।
सगुडीकृत्य निगीर्णं स्नायुकमल्पैरहोभिरपहरति ॥ १० ॥
१० दग्ध्वा तैलेऽग्निकं तेन छित्वा स्नायुं छदान् धरे ।
पट्टं बध्वाऽष्टदिवसैर्मुञ्च तद्धसलिद्धये ॥ ११ ॥
११ स्नायुकोपरि संबद्धा चन्द्रवाह्लीकचक्रिका ।
समूलमुन्मूलयति स्नायुकं नात्र संशयः ॥ १२ ॥

करें। इस तरह तीन दिवस में ही स्नायुक विलीन हो जाता है, किंतु स्नायुक पर बिल्व-पत्र बांध देना चाहिये ॥ ५-६ ॥ मयूर-पिच्छ का आदि और अन्त का भाग निकाल कर अवशिष्ट भाग को जलाकर भस्म बनालें। इस भस्म को तीन दिवस जल के साथ फाकें। हम कहते हैं कि तीन दिवस में ही स्नायुक विलीन हो जायेगा ॥ ७ ॥ रक्तबोल को गुड में अच्छी तरह मिलाकर दिवस में तीन बार, प्रातः, मध्याह्न तथा सायं को, निगीर्ण करने से, स्नायुक शीघ्र शांत हो जाता है ॥ ८ ॥ लाख, वन्यकपोत की विष्ठा तथा गुड प्रत्येक एक तोला लेकर इनकी गुडाएं बना, सात गुडक, प्रति दिवस, सात दिवस तक लेने से स्नायुक संपूर्णतः मिट जाता है। पक्षावधि लवण मरीचादि वर्ज्य है ॥ ९ ॥ नीलडास नामक पक्षी के पंखों को लेकर उसकी नसें निकाल लें फिर उसका चूरा करके उसमें से अर्ध भाग चूरे को गुड में मिलाकर निगीर्ण कर जायें। इस प्रयोग से कुछ ही दिवसों में स्नायुक दूर हो जाता है ॥ १० ॥ भल्लातक को तैल में जलाकर, उसकी भस्म को स्नायुक पर मल देवें तथा उसपर नागरवेल के पत्तों को पट्टी से बांध देवें। आठ दिवस पीछे पट्टी खोलें। इससे स्नायुक नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥ हिंगु तथा हिंगुलमिश्रित टिकिया स्नायुक पर बांध दें। यह स्नायुक का समूल नाश कर देती है

वारत्रयमदन्तस्पर्शं गिलेदिति । ३—'बाजरी' इति ख्यातधान्यविशेषचूर्णाज्जया माषा इति योजनीयम्। जया इत्यष्टादश। ४—अष्टादश माषा इत्यर्थः। ५—द्वादश माषाः। ६—आकाशवल्लीतन्तूनाम्।

१—मयूरस्य। २—कपोतश्च वन्योऽभिप्रेतः। ३—गुडकसप्तकेयम्। ४—अग्नीलस्यर्थः। अत्र लवणमरिचादिकं सर्वथा हेयं पक्षावधि। ५—'नील डास' इति ख्यातस्य पक्षिणः। ६—भल्लातकम्। ७—नागवल्लीच्छदानित्यर्थः। ८—कर्पूरहिङ्गुचक्रिका।

१२ कल्कमिषीकां[1]स्नुग्जं समतं[2]कशृतं पटेन [3]बध्नीत ।
सप्तदिवसप्रयोगात् प्रणश्यति स्नायुकस्तन्तुः ॥ १२ ॥

– इति स्नायुकचिकित्सितम् –

अथ क्षुद्ररोग[4]चिकित्सा ।

१ विं[5]शतिवर्षोऽपि यतिः कूष्माण्डस्वरससंस्कृतश्मश्रुः ।
ललितपलितकलिततया लज्जयतितरामशीतिवर्षीयम् ॥ १ ॥

२ [6]चूर्णं धात्रीचूर्णं सजलमयसि सीसकेन घृष्ट्वाऽलम् ।
तल्लेपतो लसन्ति श्यामाः केशा रुबुच्छदच्छन्नाः ॥ २ ॥

३ केनापि मह्यमुपदिष्टमिदं रहस्यं कृत्वा कदाऽपि सकृदेव मयाऽनुभूतम् ।
सिन्दूरचूर्णविहितो व[7]हलः प्रलेपः केशान् करोत्यलिनिभान् वटपत्रबद्धः ३

४ एला [8]गन्धशटी मांसी मुस्ता कृष्णागुरुर्नखम् ।
धात्रीफलानि शैलेयं कार्षिकाणि पृथक् पृथक् ॥ ४ ॥

इसमें शंका नहीं ॥ १२ ॥ चार तोला भर तुलिया थोर के कल्क को, दहि में चतुर्थांश जल मिला कर निर्मित की गयी छाछ में उकाल लेवें । फिर, इसको स्नायुक पर पट्टी से बांध दें । सात दिवस तक इस प्रयोग से स्नायुक-तन्तु नष्ट हो जाता है । इस कल्क को दिन में एक बार बदल लेना चाहिये ॥ १२ ॥

– स्नायुक चिकित्सा समाप्त –

– क्षुद्ररोग चिकित्सा (कुल प्रयोग २५) –

बीस वर्षीय युवा यति के दाढी-मूंछ के कृष्ण-वर्ण केश भी, कूष्मांड-स्वरस से साफ किये जाने पर इतने सफेद-पलित हो जाते हैं कि अस्सी-वर्षीय वृद्ध के बाल भी उसके सामने कुछ माल नहीं ॥ १ ॥ सुधाचूर्ण तथा हरडे के चूर्ण को, लोह खरल में जल के साथ, सीसे के भरथे से यथेच्छ मर्दित करें । फिर, इसका केशों पर लेप करके उनको एरंडपत्र से आच्छादित कर कपडे से बांध दें । इससे केश श्याम हो जाते हैं ॥ २ ॥

सिंदूर चूर्ण का केशोंपर गाढ प्रलेप करके उनको वट-पत्रों से बांध देवें । इससे केश भ्रमर जैसे कृष्ण-वर्ण हो जाते हैं । यह रहस्य-पूर्ण प्रयोग मुझे किसी ने भी बताया है और इसको केवल एक बार, कभी अपने ही ऊपर अजमाकर, मैंने प्रत्यक्ष अनुभव भी किया है ॥ ३ ॥ इलायची, कपूरकाचरी, मोथा, कृष्ण-अगुरु, नखला,

---

१–तुलियास्नुहीजं पलप्रमाणम् । २–तक्रमद्भिजलं घनं ग्राह्यम् । ३–स्नायुकस्फोटोपरि अहोरात्रं एकवारं कल्कः परिवर्तनीयः । अत्र भोज्यविषये परिहारो नास्तीति । ४–क्रमप्राप्तक्षुद्ररोगचिकित्सितमभिधीयते । ५–तत्रादौ पापण्डिजटिलैर्लोकवञ्चनार्थं क्रियमाण आयुःप्रकर्षप्रत्यायकप्रकारोऽयम् । ६–सुधाचूर्णम् । ७–घनः । ८–'कपूरकचरी' इति प्रसिद्धा ।

तरुणी पंत्रिका सेव्यं द्विद्विकर्षाणि कल्पयेत् ।
श्रीखण्डं शिंशपाखण्डं प्रत्येकं पलसंमितम् ॥ ५ ॥
इत्येभिर्वासितं तैलमष्टाहं प्रस्थमानतः ।
घटे संभृत्य सच्छिद्रशरावेण विमुद्रयेत् ॥ ६ ॥
गुरूपदिष्टपातालयन्त्रयोगेन पातयेत् ।
तैलं मनोहरामोदं धूपेलं केश्यमुच्यते ॥ ७ ॥
निष्कैकमत्र कर्पूरं क्षिपेदामोदवृद्धये ।
आमतैलनिरोधार्थं गुडापेक्षाऽपि वर्तते ॥ ८ ॥

५ सिद्धार्थवातादवचापटूनां व्यङ्गस्य विध्वंसविधौ पटूनाम् ।
लेपं कृतानां जलतो वटीना सौन्दर्यदानाद्दयिता नटीनाम् ॥ ९ ॥

६ दुग्धेन सद्योजनुषा प्रलेपो विनिर्मितो मूलककारणानाम् ।
छायां मुखस्या हरते मुखं स्यात् प्रभाभृतं शारदशीतरश्मेः ॥ १० ॥

७ आर्द्रीकृतानि गजदन्तरजःकटोलधात्रीफलान्यमरवल्लरिकारसेन ।
तैले पचेत्तिलभवे परिमर्दनेन श्मश्रूणि तस्य सुदृशामपि विस्फुरन्ति ११

आंवला तथा शिलाजीत प्रत्येक एक एक तोला, गुलाब, पनडी और उशीर प्रत्येक दो तोला, चदन, शिंशपाकाष्ठ प्रत्येक चार तोला-इन द्रव्यों को चौसठ तोला तैल में डालकर आठ दिवस पर्यंत इसी तरह रहने दें। अब, इनको एक घट में भरकर घटमुख को, छिद्रयुक्त शराव से ढक, मुद्रित कर दें। गुरूक्तविधि अनुसार, इसका पातालयंत्र द्वारा तैल टपका लें। मनोहारी सुगंध से युक्त यह केश्य तैल 'धूपेल' कहलाता है। कच्चा तैल ही छिद्रमें से बाहर न निकल जाये इस आग्रह से, छिद्र को आवरित करने के लिये गुड की भी अपेक्षा रहती है। तैलमें सुगंध बढाने के लिये, एक तोला कपूर डाल देना चाहिये ॥ ४-८ ॥

पीत-सर्षप, बादाम, वचा तथा सैंधव इनको जल में पीसकर बटिया बाधलें। इसके प्रलेप से व्यङ्ग नष्ट हो जाते हैं। सौंदर्य में वृद्धि करने के कारण यह वटिया नटियों को भी प्रिय हैं ॥ ९ ॥ धारोष्ण-दूध के साथ मूली के बीजों को पीसकर लेप करने से मुह-गत-छाया-मुखासे दूर होती हैं तथा मुख शरद्-चन्द्र के समान कांतिमय हो जाता है ॥ १० ॥ हाथीदांत का चूर्ण, कटोल तथा आवला इनके चूर्ण को अमरबेल के रस में भिगोकर, तिल्तैल में उकाल लेवें। इस तैल को चिबुक आदि पर मसलें

१-मस्त्यध्वजा 'पनडी' इति ख्याता गन्धौषधि । २-गुर्जरप्रचरिता सञ्ज्ञेयम् । ३-जलत कृतानां वटीनां लेप इति सबन्ध । ४-प्रिय इत्यर्थ । ५-धारोष्णेन । ६-मूलकबीजानाम् । ७-'कटोल' इति नाम्नैव प्रसिद्ध केशोपयोगी द्रव्यविशेष । ८-स्त्रीणामपि किमुत पुरुषाणामित्यर्थ ।

८ कटुना चूतसंधानतैलेन[1] परिलेपितम्।
इन्द्रलुप्तं शमं याति केशा रोहन्ति कृत्स्नशः॥ १२॥
९ निम्बुसंधानतैलेन रङ्गपत्रीरजोजुषा[2]।
लेपयेत् कोथविक्लेदपिडिकापीडितं शिरः॥ १३॥
१० वप्रप्रसादमुर्दारलाक्षाकार्पासभूतयः[3]।
प्रत्येकमेकगद्याणाः कम्पिल्लं भस्म केशजम्॥ १४॥
वेल्लजान्याक्षिकाणि[4] स्युस्तुत्थकं माषपञ्चकम्।
दग्धं पूगीफलं तिस्रो दग्धाः पीतवराटिकाः॥ १५॥
चतुःपञ्चाङ्गुलैरौरभ्रकम्बलस्य[5] विभूतिका।
सर्वमेकत्र संचूर्ण्य पटपूतं विधाय च॥ १६॥
चतुर्गुणेन हविषा शतधौतेन योजयेत्।
एष सिद्धो मलहरः शीर्षकोथप्रपाकजित्॥ १७॥
११ एकं सुधाश्मखण्डं बलिं पलं द्व्याढके जलस्य पचेत्।
लिम्पेदरुंषिकार्तं तेन शिरोऽर्धावशिष्टेन॥ १८॥
१२ मौक्तिकतन्दुलचूर्णं[6] चिञ्चाजललोलितं लिप्त्वा।
भजतो व्यजनसदागतिमरुंषिकाः ग्रीष्मजाः प्रणश्यन्ति॥ १९॥

इस तरह करने से सुनयनाओं के भी दाढी उग आती है फिर पुरुषों की तो बात ही क्या? ॥ ११॥ आम्र-संधान के सर्षपतैल में थोडा तिलतैल भी मिलादें। फिर इसका लेप करने से, इन्द्रलुप्त शमन हो जाता है तथा वहां केश उत्पन्न हो आते हैं॥१२॥ मेहंदी को निंबू संधान के तैल में पीसकर उसका लेप खोरी अथवा स्रावयुक्त फुन्सियों से पीडित मस्तक पर करना चाहिये॥ १३॥

सफेदा, मुर्दार, लाख, रुई इन प्रत्येक की छह छह माषा भस्म; कबीला, केश-भस्म, तथा मरिच प्रत्येक एक एक तोला; तुत्थ पांच माषा; जलायी हुई (दग्ध) सुपारी तथा पीत वराटिका प्रत्येक तीन तीन नग; चार या पांच अंगुल लंबे-चकमा-नामक कंबल की भस्म-इनको एकत्र लेकर, सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण बनालें। इस चूर्ण में चतुर्गुण घृत मिलाकर, पानी से शत वार प्रक्षालित करलें। इस विधि से सिद्ध यह 'मलहर' शीर्षजन्य कोथ तथा प्रपाक का शमन कर देता है॥ १४–१७॥

कली का एक टांक्या (चूर्णोपल नग एक) तथा गंधक चार तोला-इनको ५१२ तोला जल में उकाल लेवें। अर्धावशेष रहने पर, उतार कर इसका प्रलेप अरुंषिका से पीडित मस्तक पर करें॥१८॥ ज्वार को इमली के जल में पीसकर लेप करने से, ग्रीष्म-जन्य अलाई शमन हो जाती है। लेप करके सतत पंखे की हवा खानी चाहिये॥१९॥

१–अत्र तिलतैलमपि किंचिन्मेलनीयम्। २–मदयन्ती 'मेहंदी' इति ख्याता। ३–वप्रस्य सीसकस्य प्रसादः, स च लोके 'सफेदा' इति नाम्ना ख्यातः। ४–मरिचानि। ५–औरभ्रकम्बलं लोके 'चकमा' इति प्रसिद्धं मालपुरादिग्रामेषु प्रायो भवति, तच्च

१३ समरिचवातामैला पटेन खलु येन गाल्यते गञ्जा ।
तेन पटेन शरीरप्रोञ्छनमपहन्ति लूकदोषार्तिम् ॥ २० ॥
१४ साधारणपिडिका॰ परं तासामुपरि धृतेन ।
प्रणश्यन्ति शावश्रृङ्गिकासंसृष्टेन घृतेन ॥ २१ ॥
१५ तक्रेण मसृण पिष्टैरधिसरलं शिरोरुहैः ।
लेपश्चिमननिर्दिष्टो वह्निदग्धे प्रशस्यते ॥ २२ ॥
१६ स्वर्जिकाचूर्णयोर्लेपान्मशका यान्ति सक्षयम् ।
शिरस्थास्तु ज्वलत्पर्णनलिकापरिवर्तनात् ॥ २३ ॥
१७ कण्टकविद्धं स्थानं किमपि खनित्वा शलाकया शनकैः ।
तत्र क्षिप्तसिपीकासुक्क्षीर कण्टक समुन्नयति ॥ २४ ॥
१८ भृष्टै॰ सदम्लिकाबीजैर्जलघृष्टै॰ प्रलेपितम् ।
अधो न भ्रशते जातु गुदचक्र प्रवेशितम् ॥ २५ ॥
१९ क्षारेण युक्तं द्विपलोन्मितेन प्रस्थद्वयं धेनुजलं घटस्थम् ।
संमुद्य घर्मे त्रिदिन प्रतीक्ष्येद्धन्त्यप्रलेप्या ध्रुवमुग्रकच्छुम् ॥ २६ ॥

जिस वस्त्र से, मरिच, बादाम, इलायची सहित भंगा को घोटकर उसकी ठंडाई छानते हैं उस वस्त्रद्वारा शरीर को पोंछने से लू जन्य व्यथा शमित हो जाती है। जिस वस्त्र से ठंडाई छानने में आती है, उस वस्त्रखंड का पारिभाषिक नाम 'सफाई' है। उपरोक्त प्रयोग अनुभवसिद्ध है ॥ २० ॥ मुरदासींगी को घृत से घिसकर लगाने से शरीर की साधारण फुंसियों में आराम मिलता है ॥ २१ ॥ केशों को, सरल में, तक्र के साथ खूब मर्दन करके, उनको वह्निदग्ध भाग पर लगाने से लाभ होता है। यह सिद्धप्रयोग 'चिमन' ने बताया है ॥ २२ ॥ सज्जीखार तथा सुधाचूर्ण का प्रलेप करने से मस्से नष्ट हो जाते हैं। कागजघटित भूंगली को प्रज्वलित करके मस्तकपर फिराने से तत्रस्थ मस्से मिट जाते हैं ॥ २३ ॥ शरीर के जिस भाग में कांटा घुस गया हो, उस स्थान को शलाका से थोड़ा कुरेद कर, तुलिया थोर का दूध लगादें। इससे कांटा बाहर निकल आता है ॥ २४ ॥ इमली के बीजों को भूनकर जल के साथ पीस लें। इसका लेप करके गुदाचक्र को अन्दर चलादें। इस तरह करने से गुदनिःसरण नहीं होता ॥ २५ ॥ १२८ तोला गोमूत्र को, आठ तोला सज्जीखार के साथ एक घट में भरकर उसके मुख को मुद्रित करके तीन दिवस पर्यंत सूर्य-ताप में रखदें। इस द्रव

चतुरङ्गुल पश्चाहृत्त वा दग्ध्वा भस्म कार्यम्। ६—मौक्तिकतन्दुल 'जुवार' इति प्रसिद्धो धान्यविशेष। ७—क्षुद्रपिडिका 'अलाइ' इति प्रसिद्धा।

१—भङ्गा "भङ्गा गञ्जा मातुलानी मादिनी विजया जया" इति निघण्टु। २—प्रचण्डग्रीष्मोष्णवाता लूशब्देन लोकैरुच्यते। ३—कागदघटिता नलिका। ४—मनागिलर्धं। ५—गुदभ्रंशचिकित्सेयम्। ६—लेपस्तु द्वित्रिदिनावधि कार्य। ७—स्वर्जिकाक्षारेण। ८—गोमूत्रम्। ९—वृषणकच्छुम्।

२० कर्पूरगन्धपाषाणपटीरैः परिकल्पितः ।
लेपो वृषणकण्डूतिखण्डने खलु पण्डितः ॥ २७ ॥

२१ गुग्गुलोर्गन्धसौभाग्यक्षारमिश्रस्य वर्तिका ।
निहन्ति लेपविधिना कच्छुदद्रुं निरन्तराम् ॥ २८ ॥

२२ दुरालभाधरानिम्बौ वसुसागरमापकौ ।
आर्द्रीकृत्य जले सायं रात्रावावृत्य विन्यसेत् ॥ २९ ॥
कल्कं तयोः पिबेत् प्रातर्दुग्धेन पटपावितम् ।
चिरन्तनाऽप्यलं कच्छूः शाम्यत्येव न संशयः ॥ ३० ॥

२३ शाकशोणे जटावल्लं शतमल्लमतल्लकम् ।
तैलेऽतस्याः श्रृतं लेपात् पृष्ठविस्फोटघस्मरम् ॥ ३१ ॥

२४ साबुजपिण्डीकणपुरलोहितजतुवलयशकलानि ।
मसृणीकृत्य विलेपः कक्षाग्रन्थीन् विलोपयति ॥ ३२ ॥

के आठ लेप करने से वृषणगत उग्र कण्डू शमित हो जाता है ॥ २६ ॥ कपूर, गंधक, धीयामाटा तथा चंदन इनके चूर्ण का लेप वृपण के दाह युक्त कण्डू को खंडित कर देता है ॥ २७ ॥ गंधक, तेलिया सुहागा तथा सज्जीखार इनमें गंधक मिलाकर, वर्तिकायें बनालें । इस वर्ति का निरंतर लेप करते रहने से खुजली और दाद दोनों नष्ट हो जाते हैं । उपरोक्त योग में अमुक वैद्य कत्था भी मिलाते हैं ॥ २८ ॥ जवासा और चिरायता क्रमशः आठ तथा चार माषा लेकर सांझ को जल में भिगोकर रखदें । प्रातः इसके कल्क को छानकर दूध के साथ पीयें । इससे जीर्ण खुजली भी निःसंदेह नष्ट हो जाती है ॥ २९ ॥ अठारह वाल भर शुद्ध मल्ल को ४५ माषा राल में मिलाकर अतसी के तैल में पकावें । फिर, इसका लेप करने से पीठ-गत-विस्फोट-अदीठ शांत हो जाता है ॥३०॥

साबुदाना, गंधक तथा लाख की चूडियों के टुकडे इनके बारीक चूर्ण का लेप कांख की ग्रंथियों का विलोप कर देता है ॥ ३१ ॥ प्रस्तुत श्लोक में साबुन-निर्माण-विधि बताई गयी है :-

जलप्रक्षेप से विगलित होते हुये सुधा-खंडों में उसी समय उनसे द्विगुणित उत्तम प्रकार की खार डाल देवें । इस द्रव-मिश्रण को तीन दिवस सूर्य की कडी धूप में रहने दें । तत्पश्चात् इस द्रव को कई बार वस्त्र से छानें । वस्त्रपूत इस तैजसजल को, फिर उकालें । उकलते हुये जब यह घट्ट बनने लगे तब इसमें अर्धमात्रा प्रमाण में

१–सदाहकण्डूतौ कार्योऽयं लेपः । २–सौभाग्यं तेलियोपपदं ग्राह्यम् । केचित् कत्थमप्यत्र क्षिपन्ति । ३–यवासभूनिम्बौ । ४–वस्त्रादिना पिधाय । ५–पञ्चदशशाणे । ६–अष्टादशवल्लप्रमाणम् । ७–क्षुमायाः । ८–पृष्ठविस्फोटः 'अदीठ' इति लोकख्यातः । ९–लोके साबुनाम्ना प्रसिद्धा । १०–लोहितेति वलयविशेषणम् । जतुवलयानि च 'चूडी' इति प्रसिद्धानि ।

२५ विकसत्सु जलक्षेपात् सुधाखण्डेषु तत्क्षणम्।
दत्त्वाऽच्छ द्विगुणं क्षारं त्र्यहं तीव्रातपे धर ॥ ३३ ॥
विस्राव्य बहून् वारान् पटात्तत्तैजसं जलम्।
तस्मिन् पाकात् ससरम्भे तैलं क्षिप तदर्धकम् ॥ ३४ ॥
दर्वीलेपक्षमं बुद्ध्वा वसनोपरि ढालय।
अमुष्य कत्तलिकया दिह देहं शनैः शनैः ॥ ३५ ॥
कण्डूस्वेदोत्थपिडिकायूकात्वङ्मलशान्तये।
सुगन्धस्य चिकीर्षा चेन्मनाक्कर्पूरमावप ॥ ३६ ॥
क्षारोत्तैर सुधाक्षोदं भाण्डयन्त्रे नियन्त्रितम्।
द्वित्रिशः स्रावयेत् सर्वभारादष्टगुणाम्भसा ॥ ३७ ॥
तदम्भस्तैजसमधो भाण्डे विप्लुत्य संचितम्।
साधैतैलं समावर्त्य सान्द्रं शीतं च ढालयेत् ॥ ३८ ॥

— इति क्षुद्ररोगचिकित्सितम्। —

तैल डालकर कलछी से हिलाते रहें। जब द्रव सान्द्र होकर कलछी से चोटने लगे, तब उसे निकाल कर एक स्वच्छ वस्त्रपर ढाल देवें। जमजाने पर इसमें से एक चकती काट लें और इसको शरीर पर धीरे धीरे घिसें। इससे खुजली, पसीना, फुन्सिया, जू, त्वचागत मल आदि दूर होते हैं। यदि सुगन्ध की इच्छा हो तो इसमें थोड़ा कपूर मिला देवें। उपरोक्त तैजस् जल के निर्माण की दूसरी प्रक्रिया —क्षारयुक्त सुधाचूर्ण को एक भाण्ड में भरदें। इन दोनों से अष्टगुणित जल ऊपर से डालकर दो तीन बार खूब मथ कर घोल लें। इस भाण्ड के तलगत सूक्ष्म छिद्र में से, अन्यभाण्ड में, उपरोक्त तैजस् जल टपका लें। इस तरह प्राप्त तैजस् जल यदि २५६ तोला प्रमाण में हो तो उसमें उससे अर्ध मात्रा में-अर्थात् १२८ तोला भर तैल डालना चाहिये। इस १२८ तोला तैल में से अर्ध मात्रा तैल तैजस् जल के साथ ही उसे उकालने के पूर्व ही-डाल दें। अवशिष्ट तैल को जब तैजस् जल उकलकर आधा रह जाये तब, डाल देवें। जब तैजस् जल उकल कर घट्ट बन जाये तब उतार कर कुछ शीतल होने पर उसे वस्त्र पर ढाल दें ॥ ३२–३८ ॥

— क्षुद्ररोग चिकित्सा समाप्त —



१–अधुना साबुकर्तव्यतैवोच्यते। राजार्थमारम्भयेदनैव जलस्थाने तरुणीकेतक-कुसुमजल क्षेप्यं, तैलस्थाने च जात्यादिपुष्पतैलम्। २–तैजसजलविधाने प्रकारान्तरम्। अनोर्ध्वभाण्ड सच्छिद्र कार्यं, कथमन्यथा तैजस जल स्रवेत्। ३–आढकतैजसजले तैल द्विप्रस्थं क्षिपेत्। परन्तु सार्ध्यर्धप्रस्थ तैलं सहैव क्षिपेत्। शेषशरावतैलमर्धक्वथिते क्षिपेदिति प्रक्रिया।

अथ मुखरोग[1]चिकित्सितम् ।

सो[2]ष्णीषो विकटमुखः कपालमालादुर्दर्शः करकलितोग्रकुन्तपाशः ।
हाराणामलघुरुचां विशिष्य धर्ता निर्णीतः श्रितगलगह्वरो विकराः ॥१॥

१ मधुमधुरं गव्यं पयः कुन्दसहोदरदं[3]न्ति ! ।
त्रुटिमधुकप्रतिसारितं कण्ठगदं लघु हन्ति ॥ २ ॥

२ नक्तं सौधाग्रगं कुम्भे[4] सलिलं सैलवालु[5]कम् ।
पटप्रच्यावितं प्रातर्गण्डूषैश्छल्लका[6]ञ्जयेत् ॥ ३ ॥

३ कलसोरः स्फटी रक्ता पृथगाम्रद्वयं द्वयम् ।
पलं तुत्थस्य संक्षोद्य स्थाल्यां मन्दाग्निना पचेत् ॥ ४ ॥
क्षोदे शनैर्द्रवीभूय शुष्कतां किंचिदीयुषि ।
प[7]लार्धं तत्र कर्पूरं क्षिप्त्वा कांस्येन रोधयेत् ॥ ५ ॥
कांस्ये संलग्नमुद्धीय तदन्तः पुनरावपेत् ।
पिष्ट्वेदमौषधं सिद्धमाढकेऽपां परं पचेत् ॥ ६ ॥
पूतमर्धावशिष्टं तद्गण्डूषेष्ववचारयेत्[8] ।
मुखतालुगलच्छिद्रग्रन्थिकोथप्रपाकनुत् ॥ ७ ॥

– मुखरोगचिकित्सा (कुल प्रयोग ३७) –

प्रस्तुत श्लोक में मुखरोग के स्वरूप का वर्णन किया गया है । विकट मुखवाला तथा कपालमाला के कारण दुर्दर्शनीय मुखरोग गले की गुहा में निवास करता है । मस्तक पर उष्णीष है । लंबे चमकदार हारों को पहिने हुये है तथा हाथ में त्रिशूल और पाश सुशोभित हैं ॥ १ ॥

हे कुन्दसमान सुंदर दंतपंक्तिवाली ! मधुमिश्रित मधुर गोदुग्ध में इलायची तथा मुलेठी चूर्ण मिलाकर पीने से कण्ठरोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ रात्रि को, छतपर, शीतलमरिच (कबाबचीनी) युक्त जल से मृत्पात्र को भरकर रखदें । प्रातः, वस्त्र से छानकर इसके गंडूष लेने से मुह के छाले मिट जाते हैं । यहां शीतल मरिच चार तोला तथा जल २५६ तोला लेवें ॥ ३ ॥ कलमीसोरा और लाल फिटकरी प्रत्येक आठ तोला तथा तुत्थ चार तोला इनके चूर्ण को मंदाग्नि से एक थाली में पकावें । इस तरह पकाने से जब चूर्ण थोडा द्रवित होकर सूखने लगे तब इसमें दो तोला कपूर डालकर उसपर एक कांसी की कटोरी को औंधी ढकदें । कांसी की कटोरी के पैंदे में

१–प्रागतः प्रायः कायचिकित्साऽभिहिता, अधुना चोर्ध्वजत्रुगा रोगा अभिधेयाः, तन्मुखे मुखरोगचिकित्साभिधानमुचितमेवेति । २–मुखरोगमूर्तिवर्णनम् । ३–संबुद्धिरियम् । ४–नूतनमृद्घटे । ५–'एलवालुकं, शीतलमरिच' इति ख्यातं, तस्य पलं संचूर्ण्य सलिलाढके निक्षिप्य लोलयित्वा सौधोपरि न्यसेत् । ६–मुखव्रणान् । ७–यद्यपि पलार्धोक्तिस्तथाऽपि पलमेव ग्राह्यम् । ८–द्वित्रिवेलमवचारयेदित्यर्थः ॥

४ कण्ठग्रन्थिच्छल्लकदाहमुखासु मुखपीडासु ।
द्विक्षीररोजवृक्षकाथेन कुरुष्व गण्डूषान् ॥ ८ ॥
५ रसनाश्वयथौ ससितो लुलायकन्यौविशो रसः पेयः ।
कण्ठस्य समन्तादुपनाहोऽपि तथैव कर्तव्यः ॥ ९ ॥
६ रालक्षौद्रगुडास्तैले पक्त्वा मलहरः कृतः ।
जिह्वादरणविस्फोटपूयप्रभृतिषु श्रुतः ॥ १० ॥
७ घृताश्मगैरिकक्षोदो मुखपाकार्तिग्रस्मरः ।
किं पुनर्यदि युज्येत त्रुटिप्रभृतिभिः सखे ! ॥ ११ ॥
८ मुखदन्तवेष्टपाकप्रमेहपित्तास्रदाहादीन् ।
एलागैरिकगौरीपाषाणैरजः सवंशजं जयति ॥ १२ ॥
९ भृष्टतुत्थखदिरत्रुटिकणादग्धलोहतलपर्पटिकानाम् ।
सारणं कफसमीरसमुत्थं हन्ति दन्तरसनागलपाकम् ॥ १३ ॥
१० गोत्रागर्भचिरोपितकोकिलतण्डुलं कुरु द्विगुणम् ।
अवचार्य तच्चूर्णं तूर्णं छल्लप्रशान्त्यर्थम् ॥ १४ ॥

उडकर लगे हुये कणों को एकत्रित करलें। फिर इन कणों को बारीक पीसकर २०६ तोला जल में उबाल लेवें। अर्धावशेष रहनेपर जल को उतार उससे गड्डूष लेवें। इससे मुख, तालु तथा गले में पड़े हुये छिद्र, प्रथिवेदना एवं परिपाक शमन होते हैं ॥४-७॥ ग्रथि, छाले तथा दाहप्रमुख मुख तथा कंठ के विकारों में दूध तथा जल से सिद्ध अमलतास के क्वाथ से गड्डूष करें ॥ ८ ॥

जिह्वा के शोथ में, तथा पित्तोल्वण कंठरोग में भी, महिषी-वत्सा के गोबर को पानी में घोलकर तथा उसमें शक्कर मिलाकर पीवें, एवं उसी का उपनाह कंठ के चारों ओर लगावें ॥९॥ राल, शहद तथा गुड को तैल में पकाकर सिद्ध किया गया 'मलहर' उपजिह्वा, स्फोट, पूय आदि में उपकारक है ॥ १० ॥ धीयामाटा तथा गैरिक इनका चूर्ण मुख पाकजन्य वेदना को शमन करता है। इलायची आदि के साथ यदि इसका उपयोग किया जाये तो हे मित्र! फिर कहना ही क्या? ॥ ११ ॥ इलायची, गैरिक तथा धीयामाटा इनका एकत्र चूर्ण मुख और मसूड़ों के पाक को तथा सदाह प्रमेह, रक्तपित्त आदि को उनके वंशजोसहित अर्थात् तज्जन्य विकारों को पराभूत कर देता है ॥ १२ ॥ फुलाया हुआ तुत्थ, खदिर, इलायची, पिप्पली तथा जले हुये लोह-तल की पर्पटी इनके चूर्णद्वारा सारण करने से, दांत, जिह्वा तथा कण्ठ के कफ वात-जन्य पाक नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ पृथ्वी के गर्भ में चिरकाल तक गाडकर रखे हुये कोयले,

१–दुग्ध जल च । २–पित्तोल्वणे कण्ठरोगेऽपि । ३–महिषीवत्सापुरीषस्य । ४–खरगाभावे जलं क्षिप्त्वा निमथ्य कल्पनीयं । ५–शनैरित्युपदेशः । ६–घृताश्मा "धाईमाटा" इति नाम्ना प्रसिद्धः । ७–गौरीपाषाणो घृताश्मा । ८–गोत्रा पृथ्वी तद्गर्भे चिरोपितानि कोकिलानि ।

११ चतुर्गुणाम्बरन्यस्तचतुरर्कदलान्तरे ।
अङ्गारवर्णमश्मानं धृत्वा बध्नीत पोट्टलीम् ॥ १५ ॥
स्वेदं तया प्रकुर्वीत कपोलफलकोपरि ।
दुस्तराऽपि शमं याति दंष्ट्रार्तिरनिलोल्वणा ॥ १६ ॥
१२ गरलाकारकरभतुत्थाफूकाम्रगन्धिकाः ।
मलनाद्विनियच्छन्ति दंष्ट्रामयमुदित्वरम् ॥ १७ ॥
१३ द्रवीभूते[3] स्फटीखण्डे फेनमर्धमहेः क्षिपेत् ।
तद्द्रवस्य क्रमाच्छोषे जायमानेऽवतारयेत् ॥ १८ ॥
पादांशं तीक्ष्णकृष्णाग्निचूर्णं तत्र समावपेत् ।
अनेन मलनान्मङ्क्षु दंष्ट्रार्तिः शान्तिमृच्छति ॥ १९ ॥
१४ स्वर्जीस्फटीसुधाफूनवसागरतुत्थसौरबाह्लीकम् ।
तूलपिहितमुत मलितं रन्ध्रधृतं वा लिहन्ति दंष्ट्रार्तिम् ॥ २० ॥
१५ नवसादरगर्भो वा स्फटिकागर्भोऽथवा पिचुस्तौलः ।
दंष्ट्राधःस्थः स्थगयति लालास्रावेण तद्रुजं जवतः ॥ २१ ॥

तथा इनसें द्विगुणित टंकण, इनके एकत्र चूर्ण को मुंह में मलने से तत्गत छाले शीघ्र शांत हो जाते हैं ॥ १४ ॥ एक वस्त्रखंड की चार तह करके उससें, एक के ऊपर एक के क्रम से, आकडे के चार पत्ते रखदें। अब, इन पत्तों में अङ्गारवत् परितप्त-पत्थर के टुकडे को रखकर पोटली बांध, कपोल-फलक पर स्वेदन करें। इससे दंष्ट्रा की वात-जन्य दुःसाध्य वेदना शांत हो जाती है ॥ १५–१६ ॥ शृंगी-विष, अकलकरा, तुत्थ, अफीम तथा आंबाहलदी इनके चूर्ण को मलने से दंष्ट्रा-जन्य वेदना शीघ्र ही दूर हो जाती है ॥ १७ ॥ अग्नि-योग से द्रवित-स्फटिका में, इससे अर्ध-मात्रा प्रमाण में, अफीम डाल देवें। फिर, क्रमशः द्रव के शुष्क हो जाने पर इन्हें उतारलें। इन दोनों से चतुर्थांश मरिच, पिप्पली तथा चित्रक लेकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को उपरोक्त मिश्रण में मिलाकर दंष्ट्रापर मसलें। इससे दंष्ट्रा की वेदना शीघ्र शांत होती है ॥१८–१९॥ सज्जीखार, स्फटी, कलिका, अफीम, नवसादर, तुत्थ सौवीर तथा हींग इनके चूर्ण को कपास में लपेटकर, अथवा इस चूर्ण की, जल-पिष्ट छोटी सी गुटि को दंष्ट्रारंध्र में रखने से, अथवा इस चूर्ण को मलने से दंष्ट्रा की वेदना शमित हो जाती है। गुटि को अथवा तूल-पिहित चूर्ण को दंष्ट्रारंध्र में रखकर सिक्थ से मुद्रित करदें। यदि लाला-स्राव हो तो उसे मुंहसे बाहर थूंकते रहें ॥ २० ॥

नवसादर के चूर्ण को अथवा स्फटीचूर्ण को, कपास के फोहे में लपेटकर, दंष्ट्रा के

१–गरलं शृङ्गिकविषम् । २–आम्रगन्धिहरिद्रा । ३–अग्नियोगादिति शेषः । ४–शीघ्रम् । ५–सुधा कलिका । ६–बाह्लीकमित्युपलक्षणं, तेन ग्रन्थिकाकल्ककण्टकारी-फलविडङ्गादीनामपि ग्रहणम् । ७–जलेन गुटीं कृत्वा दन्तच्छिद्रे दत्वा तदुपरि सिक्थेन मुद्रां रचयित्वा गुटीप्रभावाल्लालास्रावो भवेत्तं निष्ठीवेदिति । ८–दंष्ट्राजन्तूनपि ।

१६ इङ्गुदीफलजो मज्जा दंष्ट्रयोरन्तरे धृतः ।
निहन्ति परमां पीडां ताटकामिव राघवः ॥ २२ ॥

१७ रुचिरमरिचरचितं रजो मसृणवसनपूतपाति ।
शनकैः परिमलनोद्दलं दंष्ट्रागतगदघाति ॥ २३ ॥

१८ लोकैपिष्टी सकर्पूरा व्यत्ययेन विघर्षिता ।
दंष्ट्रार्तिं खण्डयत्याशु दंष्ट्रेव चणकादिकम् ॥ २४ ॥

१९ पेर्णे चूर्णं सादरं चापि किंचिद्दत्त्वा वीटीमेकवक्त्रां विदध्यात् ।
तामाघ्राय प्रौढदंष्ट्राशिरोऽर्तिः सद्यः स्वास्थ्यं को न विन्दत्यमन्दम् ॥२५

२० मस्तङ्गीपूगकत्थानि शाणिकानि पृथक् पृथक् ।
दलैश्चतुर्भिः संपिष्य ताम्बूल्याः पाकपिञ्जरैः ॥ २६ ॥
गुटिकाश्चणकोन्माना विदधीत विधानवित् ।
ता हन्युर्दन्तवेष्टस्थाञ्छूलशोथादिकान् गदान् ॥ २७ ॥

२१ पूगखदिरवैदेहिमरिचोद्भवभूतिभिः ।
घर्षणाद्रसनादन्तवेष्टजा रुक् प्रशाम्यति ॥ २८ ॥

२२ लवणं कुडवैः षड्भिर्भल्ली तु कुडवोन्मिता ।
युक्त्या न्यस्य द्वयं स्थाल्यां मुद्रयित्वा दहेद्देहो ॥ २९ ॥

नीचे रखकर, लालास्राव करने से, तत्‌गत वेदना शीघ्र शांत हो जाती है ॥ २१ ॥ दंष्ट्रा-रन्ध्र-गत इंगुदीफल की मज्जा, दंष्ट्रा की परम पीडा का उसी तरह संहार कर देती है जिस तरह राम ने ताटका का कर दिया था ॥ २२ ॥ मरिच के वस्त्रपूत चूर्ण को धीरे धीरे मलने से दंष्ट्रागत-वेदना का शमन होता है ॥ २३ ॥ कपूरसहित शुण्ठी चूर्ण का घर्षण, दंष्ट्रा की पीडा को उसी तरह पीस डालता है जिस तरह दंष्ट्रा चने को ॥ २४ ॥ पलाशपत्र में नवसादर का चूर्ण रखकर, उसकी, एक ओर से खुले मुख वाली, वीटिका बनालें। फिर उसे सूंघे। इस तरह करने से दंष्ट्रा तथा मस्तक की उग्र वेदना में किसे अत्यन्त शांति नहीं मिलती ? ॥ २५ ॥ रूमीमस्तगी, सुपारी तथा कत्था प्रत्येक तीन तीन माषा लेकर चूर्ण बनालें। फिर, ताम्बूल के परिपक्व चार पत्तों के साथ इसे पीसकर चने-प्रमाण गुटिया बाधलें। यह दंतवेष्ट-गत शूल तथा शोथ आदि को नष्टकर देती है २६–२७ सुपारी, खैरसार, पिप्पली और मरिच इनको जलाकर राख करलें, इस राख के घर्षण से रसना एवं मसूडों की वेदना दूर होती है ॥ २८ ॥ लवण ९६ तोला, भिलावा सोलह तोला लेवें। प्रथम, एक थाली में लवण फैलाकर, उस पर भिलावे के टुकडे बिछादें। इस थाली को मुद्रित करके, सोलह सेर गोवरी की आंच का पुट देवें।

१–'हिंगोटा' इति प्रसिद्धस्य फलमज्जा। २–परिमर्दनात्। ३–शुण्ठीचूर्णम्। ४–पालाशपलाशे। ५–मुखे धृता सन्त्य। ६–पिप्पली। ७–मितमिति शेषः। ८–भल्लातकम्। ९–दशप्रस्थोन्मितैश्छगणैर्दहेदिति।

स्वाङ्गशीता विभूतिः सा दातव्या दन्तमार्जने ।
निरुध्यतेऽसृजः स्रावो दृढताऽपि समेधते ॥ ३० ॥

२३ सार्धत्रिमाषा स्फटिका[1] स्फुटीकृता सप्तैव माषा लवणस्य[2] सार्धकाः ।
वृक्षाम्लमक्षं[3] सपयोधि[4]गुञ्जं रक्तं रदानां मलनाद्रजो हरेत् ॥ ३१ ॥

२४ त्र्यक्षं कालिङ्गमज्जा[5]नमष्टाहं चर्वयन्नरः ।
मुच्यते दन्तनिर्यत्नानिर्यद्रुधिरनिर्झरैः ॥ ३२ ॥

२५ घटं सरन्ध्रं तलपार्श्वभागयो[6]र्न्युब्जं निदध्यादधितोयभाजनम् ।
प्रतप्तदर्वीधृततैलसिंहिका[7]हिङ्ग्वादिधूमं क्रिमिदन्तवान् पिबेत् ॥ ३३ ॥

२६ नखम्पचोष्मसंस्पर्शैः क्वाथैः काश्मीर[8]कल्पितैः ।
गण्डूषा दन्तसंरम्भशूलदौर्गन्ध्यदस्यवः ॥ ३४ ॥

२७ जटामांस्या विदधतां रजसा दन्तघर्षणम् ।
मुखे वैशद्यसौगन्ध्यमुखाः स्युर्गणशो गुणाः ॥ ३५ ॥

स्वांगशीतल होने पर, इसकी भस्म से दंत-मंजन करें। यह रक्त-स्राव का निरोध करता तथा दांतों को मजबूत बनाता है ॥ २९–३० ॥ फुलाई हुई रक्त-स्फटी ३½ माषा तथा सेका हुआ लवण ७½ माषा, वृक्षाम्ल १ तोला, सीमाकभस्म १½ तोला-इनके चूर्ण को मलने से, दंत-गत रक्त-स्राव बंद होता है ॥ ३१ ॥ बहेडा की तीन तोला मज्जाचूर्ण को प्रतिदिन, एक सप्ताहपर्यंत, मलने से, दंतगत स्वतः प्रवृत्त रक्तस्राव बंद हो जाता है ॥ ३२ ॥ एक घट लेवें जिसके तल तथा पार्श्वभाग में छिद्र हो। एक दूसरा घट लेवें, जिसमें करीब एक आढक जल भरदें। पार्श्व-तल-छिद्रयुक्त-घट को सजल घट पर औंधा रखदें। अब, एक प्रतप्त कढछी में तैल, कण्टकारी-फल, हींग आदि औषधीय द्रव्य डालकर उसे उपरोक्त घट के पार्श्वछिद्र में से, भीतर चलादें। 'कृमिदंत' रोग से पीडित व्यक्ति, तलछिद्र में से निकलते हुये उपरोक्त द्रव्यों के धूम का पान करे। छिद्रपर मुख लगाकर पान करने से, दंत-गत-कृमि, अधःस्थित जलपूर्ण घट में गिरे हुये दीख पडेंगे। अर्श-गत क्रिमियों में भी यह धूम-पान लाभ देता है ॥ ३३ ॥ दांतों को आक्रांत करनेवाले शूल, दौर्गन्ध्य आदि को केसर क्वाथ के कवोष्ण-गंडूष, दूर कर देते हैं (हर लेते हैं) ॥ ३४ ॥ जटामांसी के चूर्ण को दांतोंपर मलने से, स्वच्छता, सुगंध आदि प्रमुख-गुणगणों से मुख सुशोभित हो जाता है ॥ ३५ ॥

१–स्फटिका चारुणवर्णा। २–लवणं शाकम्भरीसमुत्पन्नम्। तदपि भृष्टं ग्राह्यम्। ३–द्वीपान्तरीयतिन्तिडीकं सीमाकमिति नाम्ना प्रसिद्धम्। ४–रक्तिचतुष्टयसहितमक्षमिति योजना। ५–बिभीतकमज्जानम्। त्र्यक्षमित्येकदिनमात्रा। ६–तलपार्श्वयोः सरन्ध्रं घटमिति योजना। ७–कण्टकारीफलम्। आदिशब्दादेतादृशान्यन्यान्यपि बोद्धव्यानि। चेदर्शःसु क्रिमयस्तदा तत्राप्युपयोजनीयमेतत्। ८–काश्मीरं कुङ्कुमम्।

२८ कूपतलचिरतरोषितमार्तिकशकलानि तुल्यबकुलानि ।
मसृणीकृतैरमीभिर्दन्ताः प्रभवन्ति वज्रसमुदन्ताः ॥ ३६ ॥

२९ त्रिपुटाकत्थबकुलफलधूलिः शनैर्विघर्षिता नित्यम् ।
छुरिकेव कलमकलशीं चलदन्तापत्तिमुद्धरति ॥ ३७ ॥

३० इह हन्त दन्तमूलक्षयचलदन्तेषु दन्तेषु ।
बकुलरजोऽपि ददन्ते विदितमिदं ते वृथाऽत्र विवदन्ते ॥ ३८ ॥

३१ आटरूपरसैः क्षौद्रमाणिमन्थविमर्दितैः ।
घर्षयेद्दन्तश्रेणीं दार्ढ्यभावविवृद्धये ॥ ३९ ॥

३२ यवभससीसकृते रजोभिरनवरतमभिमलनात् ।
लोहचणकचयचर्वणचण्डोऽन्ताश्चलन्ति न च दन्ताः ॥ ४० ॥

'सीसाना ये भस्म सारा जवोनी घूंटी सीसीकाचानीमां भरोनी ।
आ मिस्सीना ग्राहको छे घणाजी चाची नाखे लोहना जे चणाजी' ॥

चिरकाल तक कूप में पड़े हुये मृत्पात्र के टुकड़े तथा बकुल फल दोनों को समभाग लेकर सूक्ष्मचूर्ण बनावें। इस चूर्ण को मलने से दांत वज्र की सीमा को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३६ ॥

बकुलफल, इससे चतुर्थांश कत्था, तथा कत्थे से अर्ध भाग इलायची - इनके चूर्ण द्वारा, नित्य शनैः शनैः घर्षण से, छुरिका के घर्षण से कलम के अग्रभाग की तरह, चल-दंत रोग तराश दिया जाता है। चाकू से कलम के अग्रभाग को धीरे धीरे घिसने से जिस तरह एक नुकीलापन उद्धरित निर्मित-होता है, उसी तरह उपरोक्त चूर्ण को दांतों पर नित्य शनैः शनैः मलने से चलदंतरोग उद्धरित-नष्ट-हो जाता है। उद्धरित का अर्थ निर्माण करना अर्थात् आकृति देना तथा निकालकर दूर करना अर्थात् नष्ट करना दोनों ही है ॥ ३७ ॥ दंत के, दंतमूल क्षय करने वाले चल-दंत विकार में बकुल चूर्ण दिया जाता है। अहो! यह तुझे विदित है तो फिर, यह वृथा विवाद क्यों? ॥ ३८ ॥ सैंधव तथा शहद में अडूसे का रस मिलाकर घर्षण करने से दंतपंक्ति दृढ होती है ॥ ३९ ॥ यवभस्म तथा सीसे की भस्म दोनों को मिलाकर निरंतर मर्दन करने से लोह के प्रचंड चणक चयका चर्वण करने पर भी दंत चलित नहीं होते, यह प्रयोग पित्तरक्तजन्य दंत-विकार में ही करना चाहिये। कफवातजन्य दंत विकार में अभिवृद्धि करने के कारण वहां इसका प्रयोग निषिद्ध है। अग्रिम गुजराती-पद्य इसी श्लोक का अनुवाद मात्र है। गुर्जरदेश के होने के कारण स्व भट्टजी का इस भाषा पर पर्याप्त अधिकार था ॥ ४० ॥ अग्नि से फुलायी हुई रक्तस्फटी, बबूल के फल का सुखाया हुआ पिच्छिल-द्रव 'अका-

१—बकुलफलेभ्यः कत्थं चतुर्थांशं, त्रुटिश्च कत्थार्धांशेति विवेचनीयम्। २—छुरिका कलमाग्रनिरवधिनिमृता कलशीमुद्धरतीति चित्रमपि दर्शितमनयोपमया। ३—माणिमन्थं सैन्धवम्। ४—अयं योगः पित्तरक्तजदन्तरोगेऽनुचार्यो न कफवातदन्तरोगे, वर्धकत्वात्। ५—पूर्वोक्त एव योगो गुर्जरभाषया निबध्य प्रदर्शितः।

३३ अग्नियोगविकचारुणस्फटी किङ्किरातफलपिच्छिलद्रवः[1] ।
दाडिमीकुसुममामलं[2] फलं दन्तदार्ढ्यजननं विमर्दनात् ॥ ४२ ॥

३४ मञ्जिष्ठाकत्थकासीसं रूमनिर्याससङ्गतम् ।
प्रत्येकमेकभागं स्यात्तुत्थं पादोन[3]भागिकम् ॥ ४३ ॥
फलेभ्यो मञ्जु[4]पूर्वेभ्यो ग्राह्यं भागचतुष्टयम् ।
सर्वमेकत्र संक्षुण्णं प्रशस्तं दन्तमञ्जनम् ॥ ४४ ॥

३५ पूगभसितमस्तङ्गीमञ्जुफलानां पृथक् तमाषाः[5] स्युः ।
अरुणस्फटिकातुत्थौ शिखि[6]फुल्लौ राममाषौ[7] स्तः ॥ ४५ ॥
कत्थोषणं ग[8]र्माषं पेष्यमदः सर्वमेकत्र ।
चूर्णेनानेन नृणां चलिता दन्ता भवन्ति पवि[9]कल्पाः ॥ ४६ ॥

३६ दाडिमी[10]वल्ककुसुममञ्जिष्ठातिन्तिडीफलम् ।
धातकीरूमनिर्यास[11]शमीग्रन्थिसकुण्ड[12]कम् ॥ ४७ ॥
[13]कासीसं र[14]ङ्गवरतं भद्रैला कुन्दुरुस्तथा ।
[15]मञ्जूनि गन्ध[16]शटिका पृथग्गद्याणमात्रकाः ॥ ४८ ॥

किया', दाडिम के पुष्प तथा आंवला–इनके चूर्णद्वारा मर्दन करने से दांत मजबूत होते हैं ॥ ४१ ॥ मंजिष्ठा, कत्था, कासीस, रूमीमस्तगी प्रत्येक एक एक भाग, तुत्थ आधा भाग, मायाफल चार भाग इन सबका एकत्र वस्त्रपूत चूर्ण दंतमंजन रूप से प्रशस्त है ॥ ४२–४३ ॥ सुपारी भस्म, रूमीमस्तगी, मायाफल प्रत्येक छह छह माषा, अग्निपर फुलायी गयी रक्तस्फटी तथा तुत्थ प्रत्येक तीन तीन माषा, कत्था तथा पिप्पली प्रत्येक तीन तीन माषा इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनालें । इस चूर्ण से हिलते दांत भी वज्रतुल्य दृढ हो जाते हैं ॥४४–४५॥ दाडिम की कलियां, लवंग, मंजिष्ठा, वृक्षाम्ल के फल, धाय के फूल, असली रूमीमस्तगी, शमी, पिप्पलीमूल, शोभांजनफल (जो रंगारियों के उपयोग में आता है-और जो शिंबी से भिन्न होता है) हीरा कासीस, रङ्गवरत, बडी इलायची, कुन्दरु, मांजूफल और कपूर काचरी प्रत्येक छह छह माषा, जवाहरडे, फुलाया हुआ तुत्थ और शीतल मरिच प्रत्येक तीन तीन माषा, वज्रदंती एक तोला, फूलायी हुई

१–बब्बूलफलपिच्छिलद्रवः, स च शुष्को ग्राह्यः, यस्य च यवनमते 'अकाकिया' इति प्रसिद्धिः । २–धात्रीफलम् । ३–अर्धभागं वा । ४–मायाफलेभ्यः । ५–षण्माषाः । ६–वह्निभृष्टौ । ७–पृथक्त्रिमाषौ । ८–पृथक्त्रिमाषम् । ९–वज्रसमा इत्यर्थः । १०–दाडिमकलिका । ११–रूमनिर्यासो 'मस्तंगी' इति प्रसिद्धः । स च प्रशस्तो ग्राह्यः । १२–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धं रङ्गकारोपयोगिशोभाञ्जनफलम् । तच्च शिम्बीव्यतिरिक्तं भवति । १३–धातुकासीसं 'हीराकसीस' इति प्रसिद्धम् । १४–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धं रक्तवर्णं द्रव्यं भवति । १५–मायाफलानि । १६–लोके 'कपूरकाचरी' इति प्रसिद्धा, सा च यद्यपि गद्याणमितोक्ता तथाऽपि शाणिकैव गृह्यते ।

खर्वा हरीतकी भ्रष्टतुत्थकं शीतलोपणम् ।
पृथक् शाणप्रमाणा स्युर्वेज्रंदन्ती पिचून्मिता ॥ ४९ ॥
व्याकोशस्फटिका मज्जा चिञ्चाफलसमुद्भव ।
घृताश्मा क्रमुकं चेति पृथग्द्वादशधान्यकाः ॥ ५० ॥
श्लक्ष्णमेषा रजो दन्तदार्ढ्यकारि विघर्षणात् ।
मायाफलक्रमुकयो॰ कोकिलान्यत्र योजयेत् ॥ ५१ ॥
३७ मासी मुस्ता स्फटी तुत्थमाकल्लं धाकुलं फलम् ।
पृथग्गद्याणमानानि जरणं पूगजं फलम् ॥ ५२ ॥
कासीस रङ्गचरतं निर्यास॰ किङ्किरातज ।
दाडिमीवल्कलगिलेरमनीवज्रदन्तिका॰ ॥ ५३ ॥
प्रत्येकशस्त्रिमाषाणि शाणिकं माजुजं फलम् ।
पञ्चभिस्तुलिता माषैरत्र स्याच्चोकचुन्निका ॥ ५४ ॥
मस्तङ्गी खर्वेकायस्था सारजं मसृणं रज ।
पृथक् वस्वेकमाषाणि पट्टुकत्थे पिचून्मिते ॥ ५५ ॥
सर्वाण्येकत्र सचूर्ण्य तेन घर्षयता सदा ।
चला अपि रदा पुंसामचला॰ स्युरसंशयम् ॥ ५६ ॥

– इति मुखरोगचिकित्सा –

स्फटी, इमली के फल की मज्जा, धीयामाटा तथा सुपारी प्रत्येक एक तोला इनके सूक्ष्म चूर्ण द्वारा घर्षण करने से दात दृढ होते हैं । इस प्रयोग में माजूफल तथा सुपारी को पृथक् पृथक् जला उनके कोयलों की भस्म बनाकर उपयोग में लें । उपरोक्त योग में कपूरकाचरी छह माषा प्रमाण में लेने को कहा गया है तथापि उसे तीन माषा भर ही ग्रहण करें ॥ ४६–५० ॥

जटामासी, मुस्ता, भृष्टस्फटी, तुत्थ, अकलकरा और बकुलफल, प्रत्येक छह छह माषा, जीरा, सुपारी, कसीस, रगबरत, बबूल का गूद, दाडिम की कलियां, गिलेअरमनी (एक प्रकार की प्रसिद्ध मिट्टीविशेष) और वज्रदती प्रत्येक तीन तीन माषा, माजूफल तीन माषा, चोकचूना पाच माषा, मस्तगी, जवाहरडे और लोहचूर्ण प्रत्येक अठारह माषा, लवण और कत्था प्रत्येक एक तोला इन सबको एकत्र पीसकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें । इस चूर्ण को नियमित लगाते रहने से चलित दात भी निःसदेह स्थिर हो जाते हैं ॥ ५०–५५ ॥

– मुखरोग चिकित्सा समाप्त –

१–अनेनैव नाम्ना ख्याता । २–द्वादश माषका । ३–भृष्टा । ४–'गिले अरमनी' इति नाम्ना प्रसिद्धा काचिन्मृत् । ५–लोहजम् । ६–अष्टादशमाषप्रमाणानि ।

अथ कर्णरोगचिकित्सितम् ।

प्रतिक्षणं क्वणद्घण्टाशङ्खभेरीमृदङ्गकः ।
कपालपाणिराम्नातो नाम्ना कर्णामयो मया ॥ १ ॥

१ श्रवोविकारक्षतये भिषग्भि 'वृथा कहैहे नुकसे हजारां' ।
सशूलपूयश्रुतिभाजिकर्णे 'देना जरासा रस गुलहजारा' ॥ २ ॥

२ सक्षौद्रोषणकृष्णेन निम्बपल्लवपाथसा ।
कोष्णेन पूरणं ब्रूमः कर्णशूलनिवर्हणम् ॥ ३ ॥

३ अस्त्यालस्य कवोष्णस्य क्षौद्रस्य द्वित्रिविप्रुषः ।
कर्णे निपतिता युक्त्या शूलार्तिं घ्नन्ति निश्चितम् ॥ ४ ॥

४ अद्भिर्घृष्ट्वा वचाखण्डं निम्बूकाद्भिर्द्रवीकृतम् ।
मनागुष्णीकृतं कर्णे भृतं शूलहरं परम् ॥ ५ ॥

५ ताम्बूलवीटिकापीकगण्डूषं श्रवणे किरेत् ।
निश्चितं तेन तत्रत्यशूलार्तिर्मङ्क्षु नश्यति ॥ ६ ॥

६ पुरलशुनकारवीणां धूमो यन्त्रेण योजितः कर्णे ।
शूलं हरति समूलं किंतु दुकूलं शयीत संतत्य ॥ ७ ॥

– कर्णरोगचिकित्सा (कुल प्रयोग १५) –

हाथ में मुंड को धारण किये हुये तथा प्रतिक्षण घंटा, शंख, भेरी एवं मृदंग की ध्वनि करनेवाले विकार को मैं 'कर्णामय' नामसे जानता आया हूं ॥ १ ॥

कर्ण-रोग के शमनार्थ वैद्यों ने व्यर्थ में ही हजारों नुसखे लिख मारे !!! क्योंकि हजारे-पुष्प के रस की कुछ ही बूंदें कर्णगत शूल को तथा पूयस्राव को नष्ट कर देती हैं ॥ २ ॥ निंब की कोंपलों के स्वरस में शहदसहित काली मरिच पीस कर कवोष्ण करके कान में डालने से शूल निवृत्त हो जाता है ॥ ३ ॥ अग्निपर शहद को कुछ पतला बनाकर उसके दो तीन कवोष्ण बिंदुओं को युक्तिपूर्वक कान में डालने से तत्-गत शूल वेदना निश्चित नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥ वचा के टुकडे को पानी में पीसकर फिर, उसमें निंबू रस मिलाकर पतला बनालें। इस द्रव को कुछ गरम करके कान में भरदें। यह परम शूलहर प्रयोग है ॥ ५ ॥ तांबूल की पीक को कर्ण में डालने से, उसकी वेदना शीघ्र शमित हो जाती है ॥ ६ ॥ गंधक, लहसुन तथा अजमोदा इनकी धूम को नाडीयंत्रद्वारा कर्ण में लेने से, शूल समूल नष्ट हो जाता है। किंतु, धूम सेवन के तुरन्त पीछे, वस्त्र को आपाद-मस्तक

१–अथ मुखरोगचिकित्सानन्तरं कर्णरोगचिकित्सारम्भः, तत्रादौ तत्स्वरूपवर्णनम् ।
२–चित्रकाव्योदाहरणम् । ३–बिन्दवः । ४–नाडीयन्त्रेण ।

७ श्रोत्रशूलहरं रक्तकाकणन्तीशृतं घृतम् ।
घृतं विडालपदकं काकणन्त्योऽपि षोडश ॥ ८ ॥
८ तैलं शनैर्विपक्वं चतुर्गुणे शालमर्कटस्वरसे ।
अपहरति कर्णशूलं बालमुकुन्देन मह्यमुपदिष्टम् ॥ ९ ॥
९ श्लक्ष्णाम्बुकल्कीकृतजीरमाष सरक्तिसिन्दूरमुमोत्थतैलम् ।
श्लक्ष्णं प्रपक्वं श्रुतिशूलचेप्यदद्रूशिरःकोथहरं प्रयोगात् ॥ १० ॥
१० मयूरपादकल्केन साधितस्तैलतल्लजः ।
अधिकर्णं प्रणयनात् पूयस्रावनिरोधनः ॥ ११ ॥
११ कुक्कुटाण्डत्वचश्चूर्णं प्रतिसार्यं कथचन ।
पूरयेन्निम्बुकरसैः पूतिपूयस्रुती श्रुती ॥ १२ ॥
१२ सौभाग्यकम्पिल्लहरीतकीनां हरीतकीवारिविमर्दितानाम् ।
श्रवोव्रणस्रावजिदाज्यघृष्टा गुटी समापूरणलेपनाभ्याम् ॥ १३ ॥
१३ मुहूर्तं निहितः स्रोतो नवसागरचूर्णयोः ।
दोषं विरेच्य सहसा दत्ते श्रवणलाघवम् ॥ १४ ॥

ओढकर सो जाना चाहिये ॥ ७ ॥ रक्त-गुंजा से सिद्ध किया गया घृत कर्णशूल को मिटाता है । यहा, घृत एक तोला तथा रक्तगुंजा सोलह तोला लेनी चाहिये तथा घी को, अन्य द्रवपदार्थ मिलाये विना, केवल गुंजा में ही सिद्ध करना चाहिये ॥ ८ ॥ मूली के चतुर्गुण-स्वरस में तैल को धीरे धीरे उकालकर पकावें । यह तैल कर्णशूल को मिटा देता है । यह प्रयोग मुझे कामवन-निवासी वैद्य बालमुकुन्द ने बताया है ॥ ९ ॥ एक माषा भर श्वेत जीरा तथा एक गुंजाभर सिंदूर इन दोनों को दो तोला पानी से तीन घटे तक खरल करके कल्क बनालें । इस कल्क को अतसी के दो तोलाभर तैल में पकालें । आश्च्योतन, प्रलेप आदि विधि से प्रयुक्त यह तैल कर्णशूल, चेप्य, दद्रू तथा शिरोगत कोथ को दूर कर देता है ॥ १० ॥ मयूर-पग के कल्क से सिद्ध-तैल-श्रेष्ठ को कान में डालने से पूयस्राव बंद हो जाता है । मयूर-पग को गोमूत्र में पीसकर कल्क बना लेना चाहिये ॥ ११ ॥ कुक्कुटाण्ड-त्वचा के चूर्ण को कान में भुरकाकर उसमें ऊपर से निंबूरस भरदें । इससे कर्णगत दुर्गंधमय पूयस्राव मिट जाता है ॥ १२ ॥ टंकण, कपीला तथा हरडे इनको हरडे के क्वाथ से अच्छी तरह पीसलें । तदनन्तर, इनकी गुटी बना उसको घृत में घिसकर, लेप करने से अथवा भरने से, कर्णगत व्रणस्राव का शमन होता है ॥ १३ ॥ नवसादर तथा सुधा-चूर्ण इनके द्रव

१–अत्र विनैव द्रवं घृतस्य पाकः करणीयः । २–मूलकस्वरसे । ३–कामवनवासिना वैद्येन । ४–शुक्लजीरकमाषं श्लक्ष्णाम्बुना खल्वे यामं कल्कीकृत्य सर्वं तैले निक्षिपेत् । ५–ससिन्दूरगुञ्जमतसीतैलमित्यर्थः । ६–एतन्नाम्नैव प्रसिद्धो विसर्पणशीलो व्याधिविशेषः । ७–आश्च्योतनलेपान्यतररूपात् । ८–मयूरस्य पक्षिणश्चरणकल्केन । गोमूत्रमप्यत्र क्षेप्यम् । ९–पूतिपूयं स्रवत इति विग्रहवाक्यम् । १०–हरीतकीवारि च क्वथनेन निष्पाद्यम् ।

१४-१५ शिखिपादभवोऽधिश्रुति फूत्कारेण प्रवेशितः क्षोदः ।
निरुणद्धितरां तरसा पूयस्रावं पयोधिफेन इव ॥ १५ ॥

– इति कर्णरोगचिकित्सितम् –

अथ नासारोग[2]चिकित्सा ।

१ माषास्त्रयो मधुकभेषजयोः षडेला
द्व्यक्षा सिता पिचुसिताः ससितातुषाः स्युः ।
एभिः शनैर्विरचितो रुचिरः कषायो
नस्ते[3] निपातयति शीर्षकफं विपाच्य ॥ १ ॥

२ पिष्ट्वा धत्तूरबीजा[4]नि कुष्ठतोयैर्दिनाष्टकम् ।
गुञ्जाङ्घ्रिसंमिता वर्त्त्यो ग्राहिण्यः पीनसापहाः ॥ २ ॥

३ नासानिर्व्यथ[5]ने बाढं संनिरुद्धे बलासतः ।
कारवीपोट्टलीं जिघ्रेन्मनागुष्णीकृतां कृती ॥ ३ ॥

४ सुजातजातीफलपुष्पविश्वाकस्तूरिकाभिर्युगरक्तिका[6]भिः ।
प्रकल्पिता पोट्टलिका हिनस्ति घ्राता प्रतिश्यायभवां शिरोर्तिम् ॥ ४ ॥

से सिक्त-फौहे को, एक मुहूर्तभर कर्ण में रखने से, सहसा दोषविरेचन पूर्वक श्रवण-शक्ति सचेत हो उठती है ॥ १४ ॥ मयूरचरण के चूर्ण को, अथवा समुद्रफेन के चूर्ण को, कान में फूत्कारद्वारा चला देने से, पूयस्राव सहसा उसी तरह निरुद्ध हो जाता है जिस तरह पवन फूत्कार से समुद्रफेन ॥ १५ ॥ – कर्णरोग चिकित्सा समाप्त –

– नासारोग चिकित्सा (कुल प्रयोग ६) –

मधूक तथा शुण्ठी प्रत्येक तीन माषा, इलायची नग ६, मिश्री दो तोला, तुष दो तोला, इनका एकत्र रुचिकर कषाय निर्माण करलें । इसका नस्य शीर्षगत कफ को पकाकर बाहर निकाल देता है ॥ १ ॥ आठ दिवसपर्यंत, कृष्ण धत्तूरे के शुद्ध बीजों को कूठ के पानी से (कषाय से) खरल करके ¼ गुंजा प्रमाण वटियां बांधलें । ये वटियां ग्राही तथा पीनसरोग को मिटानेवाली होती है ॥ २ ॥ नासिका-रंध्रमें कफ के अत्यंत रुद्ध हो जाने पर, कुशल रोगी को, अजमोदा की पोटली, कुछ गरम करके, सुंघानी चाहिये ॥ ३ ॥ अच्छे वजनदार जायफल, लवंग, सूंठ, कस्तूरी प्रत्येक दो गुंजा इनको एकत्र एक पोटली में बांधकर सूंघने से प्रतिश्यायजन्य शिरोवेदना नष्ट

१–उपमया द्वितीयो योगः प्रदर्शितः । २–संग्रहानुसारेण कर्णरोगानन्तरं घ्राणरोग-चिकित्सारम्भः, तत्रादौ प्रतिश्यायप्रतिषेधः । ३–नासाविवरे । ४–कृष्णधत्तूरबीजानि, तान्यपि पूर्वोक्तविधिशुद्धानि । ५–" छिद्रं निर्व्यथनं रोकम् " इत्यभिधानम् । ६–प्रत्येकं द्विगुञ्जाभिः ।

५ छिक्किकोकट्फलारब्धं नस्य छिकाप्रवर्तनम् ।
कट्फलं छिक्किकाचूर्णादल्पमेव विनिक्षिपेत् ॥ ५ ॥

६ प्रज्वाल्य गोपुरीषं निर्वाप्य पयोभिरर्कसंभूतैः ।
विरचय्य वस्त्रपूतं नस्यं छिका प्रवर्तयति ॥ ६ ॥

— इति नासारोगचिकित्सितम् —

अथ नेत्ररोग[3]चिकित्सा ।

तूणीरपाशहस्तो निविडतमःस्तोमलब्धदृष्टिगतिः ।
चणकविकृतिविद्वेषी विद्वेषिषु चक्षुरामय स्फुरतु ॥ १ ॥

१ तूलस्रोत जलार्द्रं जलभृतनवमृत्कुम्भपार्श्वे प्रदत्तं
तस्मादुत्पाट्य कृत्वा गुडजललुलितं तत्र भूयोऽपि दद्यात् ।
दर्वीकुक्षौ कदुष्णीकृतमनलशिखायोगतो वैद्यराट् तं
पीडाशान्त्यै निदध्यादुपरि नयनयोस्तीव्रसंरम्भभाजोः ॥ २ ॥

२ पादाङ्गुष्ठद्वितयं विवेष्ट्य रुबुतैलतूलतस्तदनु ।
मदयन्तीदलकल्कं बध्नीत हन्ति दृगामयी यामम् ॥ ३ ॥

हो जाती है ॥ ४ ॥ नकछीकनी तथा कट्फल से प्रयुक्त किया गया नस्य, छींक लाता है । इस योग में कट्फल-चूर्ण, नकछींकनी से कुछ अल्प मात्रा में ही ले ॥ ५ ॥ गाय की शुष्क गोबरी को जलाकर तथा आकड़े के दूध से बुझा, वस्त्रपूत करके, नस्य लेने से, छींक की प्रवृत्ति होती है ॥ ६ ॥ — नासारोग चिकित्सा समाप्त —

— नेत्ररोग चिकित्सा (कुल प्रयोग ३४) —

निविड अंधकार में भी देखनेवाला, हाथ में तूणीर तथा पाश धारण किये हुये, चणकविकृति का सेवन करनेवालों से विद्वेष रखने वाला 'चक्षु रोग' हमसे विद्वेष करनेवालों को ही दर्शन दे ('स्फुरतु' का अर्थ नष्ट करनेवाला भी होता है) ॥ १ ॥

जलपूर्ण मिट्टी के नूतन घट के पार्श्व में जलार्द्र-कपास के स्रोत को लगाकर रखदें । कुछ समय पीछे उसे वहां से हटाकर, गुड के जल में लथपथ करके, उसी घट पर पुन रखदें । तत्पश्चात् चमचे के भीतर उस स्रोत को रखकर अग्नि से थोडा गरम करलें । अब इस स्रोत को, तीव्र वेदनासे पीडित चक्षुरोगी की शान्ति के लिये, उसके, नेत्रों पर कुशल-वैद्य रख देवे ॥ २ ॥ नेत्ररोगी के पैर के दोनों अँगूठों को, एरंड तैल से सिक्त

१–छिक्किका 'नकछीकनी' इति लोकप्रसिद्धा काचिदौषधिः । २–गव्यं शुष्कवनोपलम् । ३–इन्द्रियाधिष्ठानेषु पारिशेष्यान्नासासन्निहितत्वाच्च नासारोगानन्तरं नेत्रगतरोगाणां चिकित्साऽभिधीयते । तत्रादौ तत्स्वरूपवर्णनम् । ४–कृत्स्ननेत्ररोगाणां प्रायोनिदानभूतत्वादभिष्यन्दस्यादौ साधनम् । ५–पट्टबन्धनेनेति शेषः ।

३ अङ्गारे संफुल्लं लवङ्गमेकं विचूर्णितं खल्वे ।
भृतमधिशार्करबुद्बुदमक्ष्णोराश्च्योतयार्द्रपटनद्धम् ॥ ४ ॥
४ खाखसं कोलकलितं माषैका क्षुद्रचेतकी ।
गुञ्जोन्माना स्फटी चेति सर्वैरेकत्र चूर्णितैः ॥ ५ ॥
बद्धां पोट्टलिकामार्द्रां[1] भ्रामयेल्लोचनोपरि ।
शूलसंरम्भविक्लेदलौहित्यानि विनाशयेत् ॥ ६ ॥
५ वल्लवलक्षस्फटिकामप्सु समावाप्य मुष्टिमानासु[2] ।
तद्बिन्दवो हरन्ते हठेन दुःखानि चक्षुषोः क्षिप्ताः ॥ ७ ॥
६ पचेद्द्रवीकृत्य सितामतल्लिकां समाननिम्बूकरसैः पयोभिः ।
पयःक्षये तत्पृषतः[3] सुशीतलाः क्षिप्ता दृशोर्दृग्बलमारभन्ते ॥ ८ ॥
७ पृथगष्टादश भागाः स्फुटितस्फटिकासितासिताञ्जनतः[4] ।
स्फुटतुत्थात् सार्धैको[5] निम्ब्वम्बुकृता दृगार्तिजिद्वटिका[6] ॥ ९ ॥
८ क्लेदकालुष्यलौहित्यविकारपरिशान्तये ।
एकमेव खलु क्षौद्रं नेत्रयोर्द्विस्त्रिरञ्जयेत् ॥ १० ॥
९ रसे प्रस्थार्धतुलिते मदयन्त्या निशोषिते ।
रसाञ्जनस्य कुडवं कृत्वा पित्तलपात्रके ॥ ११ ॥

फौहे से लपेट उस पर मेंहदी कल्क को चुपडकर, वस्त्र की पट्टी से मजबूत बांध देवें । इसको एक प्रहर तक रहने दें ॥ ३ ॥ अंगारपर एक लविंग फुलाकर उसे खरल करलें । इस चूर्ण को एक पतासे में भरकर, तथा पतासे को आर्द्रपट में लपेटकर, उससे नेत्रों पर आश्च्योतन करें ॥ ४ ॥ पोस्त के डोडे १ तोला, जवाहरडे एक माषा, स्फटी एक गुंजा इनका एकत्र चूर्ण बनालें । इस चूर्ण को पोटली में बांधकर तथा गुलाबजल से सिक्त करके आखों पर फेरें । इससे नेत्रगत शूल, क्लेद, रतास आदि दूर हो जाते हैं ॥ ५–६ ॥ एक वालभर श्वेतस्फटी को चार तोले भर पानी में भिगो दें । इस द्रव के विन्दुओंको आंख में डालने से उसकी वेदना दूर हो जाती है ॥ ७ ॥ उत्तम मिश्री के चूर्ण को, समभाग निंबूरस तथा जल में मिलाकर पकावें । जब जलांश निःशेष हो जाये तब, स्वांगशीतल होनेपर, उसके विन्दुओं को नेत्र में टपकादें । इससे दृष्टि तीक्ष्ण हो होती है ॥ ८ ॥ भृष्ट-स्फटी, मिश्री तथा सफेद सुरमा प्रत्येक अठारहभाग, भृष्टतुत्थ १½ भाग इनको एकत्र लेकर निंबूरस में पीसकर वटिका बनालें । इस वटिका को, कान्तलोहपात्रमें जल से घिसकर नेत्रों में आंजें । इससे पीडा का शमन हो जाता है ॥ ९ ॥ एक मात्र शहद को दो तीन बार आंजने से नेत्रगत क्लेद, मल, लालिमा आदि विकार शमन हो जाते हैं ॥ १० ॥ मेंहदी के ३२ तोला रसमें, २५६ तोला रसांजन को

१–तरुणीपुष्पार्कैरार्द्राम् । २–मुष्टिः पलम् । ३–पृषतो विन्दवः । ४–सिता सितोपला, सिताञ्जनं श्वेताञ्जनं 'सुफेद सुरमा' इति लोकख्यातम् । ५–भाग इत्यावर्तनीयम् । ६–गुटिका च कान्तलौहे जले घृष्ट्वाऽञ्जनीया ।

वासरं न्युसदव्वूकनिम्बदण्डेन घर्षयेत् ।
एषा रसक्रिया हन्ति नेत्रयोर्दु:खमञ्जनात् ॥ १२ ॥

१० रसाञ्जनं स्फटी फुल्ला सिता चेति त्रिकं पृथक् ।
कार्षिकं सर्पफेनस्य माषाः पञ्चाथ तुत्थकम् ॥ १३ ॥
सार्धद्विमाषकं भृष्टं विधानमधुनोच्यते ।
रसाञ्जनं सिताफूकं द्रवीकृत्य जले पृथक् ॥ १४ ॥
अयःपात्रे समावाप्य स्फटीं तुत्थं च निक्षिपेत् ।
हसन्तीस्थं पचेन्मन्दं लोहदण्डेन घर्षयेत् ॥ १५ ॥
अर्धावशिष्टमुत्तार्य पुनर्यामं निघर्षयेत् ।
एषा रसक्रिया सद्यो नयनार्तिं नियच्छति ॥ १६ ॥

११ शुष्काशुष्कं शकृद्गर्ते गर्दभस्य प्रदीपय ।
न्युब्जं भाण्डं तदुपरि गर्भच्छिद्रं समावप ॥ १७ ॥
छिद्रोपरि पुनर्न्युब्जं कांस्यपात्रं पिधापय ।
यः शकृद्धूमजः कश्चित् स्वेदः स्यात् कांस्यपात्रगः ॥ १८ ॥
तुल्यं तत्र घृतं धौतमेकविंशतिधा क्षिप ।
निम्बदण्डेन दव्वूकचुम्बिताग्रेण मर्दय ॥ १९ ॥

रातभर भिगोकर रखदें। फिर इनको, एक पित्तल के पात्र में डालकर, निंब-शाखा के, ताम्र-मुद्रा जटित अग्रभाग से, एक दिवसपर्यंत खूब घर्षण करें। इस 'रसक्रिया' के अंजन से नेत्रपीडा का भंजन हो जाता है ॥ ११-१२ ॥ रसांजन, भृष्ट-स्फटी तथा मिश्री प्रत्येक एक एक तोला, अफीम पांच माषा, भृष्ट तुत्थ २½ माषा, इन औषधीय द्रव्यों से, निम्नविधिपूर्वक, सिद्ध प्रयोग निर्माण करलें। रसांजन, मिश्री तथा अफीम को अलग अलग जलमें घोलकर एक रस बनालें। इस रस को लोहपात्र में डालकर उसमें स्फटी तथा तुत्थचूर्ण मिला देवें। अब, इस लोहपात्र को एक अंगीठीपर रखकर, मंदाग्नि से, तद्-गत रस को पकावें तथा लोह-दंड से द्रव को हिलाते रहें। अर्धरस शेष रहने पर उतारलें तथा एक प्रहर तक पुनः लोहदंड से इस द्रव को, निरंतर घोटते रहें। यह 'रसक्रिया' नेत्रवेदना को शीघ्र शमित कर देती है ॥ १३-१६ ॥

एक गर्त में गदहे की लीद डाल देवें। लीद का अर्धभाग शुष्क तथा अर्धभाग आर्द्र होना चाहिये। अब, इस लीद को प्रज्वलित करदें। इसी गर्त के ऊपर तलछिद्र-वाले एक घट को औंधा ढकदें। घटगत छिद्र के ऊपर एक कांस्यपात्र औंधा रखदें। इस कांस्यपात्र के तलभाग में, धूमसे उत्पन्न कुछ स्वेदकण जमा होंगे। इन स्वेदकणों में, इनसे समानभाग २१ वार धौत-घृत मिलादें। अब, घृतसहित इन स्वेदकणों को,

१-बहुव्रीहिगर्भितकर्मधारय। २-फुल्लम्। ३-अर्धं सर्वथा शुष्कमर्धं चार्द्रमिति द्वय मेलयित्वा प्रज्वाल्यम्।

इमां रसक्रियां विद्धि प्राप्तामादित्यरामतः ।
दृक्पक्ष्मकोप[1]लौहित्यकण्डूक्लेदेषु वर्तय ॥ २० ॥

१२ आफूकपूगस्फटिका[2]प्रलेपो निम्बूकनीरैरसकृत्प्रणीतः ।
संरम्भमुत्सार्य सशोणभावमह्लाय शं लोचनयोर्विधत्ते ॥ २१ ॥

१३ विकसितशोणस्फटिकां विमर्द्य[3] निम्बूकसंवरैर्विहिता ।
मसृणशलाका शमयति शनकैर्व्यापारिता दृशोर्दुःखम्[4] ॥ २२ ॥

१४ भस्म दक्षिणगोकण्टभवं सार्धद्विमाषकम् ।
तीक्ष्णानि[5] सार्धमाषाणि सैन्धवं साङ्घ्रिमाषकम् ॥ २३ ॥

वलक्षकज्जलं[6] चात्र स्यादष्टादशमाषकम् ।
त्र्यहं विमर्द्य खल्वान्तरञ्जयेद्दुःखितेक्षणः ॥ २४ ॥

१५ चतुर्दशैव गद्याणान् पीतपथ्योत्थवल्कतः ।
कृष्णामरिचतो द्वौ द्वौ गद्याणौ पुनराहर ॥ २५ ॥

धात्रीरसशरावेण विमर्द्य कुरु वर्तिकाः ।
अजस्रमञ्जय दृशोः प्रसूनतिमिरार्तिषु ॥ २६ ॥

निंबशाखा के ताम्रमुद्राजटित-अग्रभाग से, मर्दन करें । यह 'रसक्रिया' मुझे आदित्य-राम से प्राप्त हुई है । इसका प्रयोग पक्ष्मकोप, रताश, खुजली, क्लेद आदि नेत्र के विविध विकारों में करना चाहिये ॥ १७–२० ॥

अफीम, सुपारी तथा स्फटी इनको निंबूरस में घोलकर एकरस बनालें । इस रसके कतिपय बिंदु, सहसा, बलात् नेत्रों में टपकादें । यह तत्-गत लालिमा को हटाकर शांतिप्रदान करता है । इस योग में स्फटी को, अफीम तथा सुपारीसे, कुछ न्यून मात्रा में लेवें ॥ २१ ॥ भृष्ट-रक्त-स्फटी को निंबूरस में दो दिन तक खूब खरल करें । इसको एक कोमल शलाका से नेत्रों में आंजिये । यह नेत्र-गत स्राव, कण्डू, फूला आदि से उत्पन्न वेदना को दूर कर देती है । (अथवा, उपरोक्त स्फटी को निंबूरस में खरल करके उसकी शलाका निर्माण करें। इस शलाका को नेत्र में धीरे से आंजें) ॥२२॥ दक्षिणदेशके गोखरू २½ माषा लेकर उनकी भस्म बनालें। पूर्वदेशोद्भव काली मरिच १½ माषा, सैंधव १¼ माषा तथा श्वेतांजन अठारह माषा-इनके सूक्ष्म चूर्ण को उपरोक्त भस्म में मिलाकर तीन दिन तक खूब खरल करें। इसका अंजन नेत्रपीडा को दूर करता है ॥ २३–२४ ॥ पीली हरडे की छाल ८४ माषा, पिप्पली तथा मरिच प्रत्येक बारह

१–पक्ष्मकोपस्य लक्षणं च "पक्ष्माशयगता दोषास्तीक्ष्णाग्राणि खराणि च । निर्वर्तयन्ति पक्ष्माणि तैर्जुष्टं चाक्षि दूयते ॥ उत्पाटितैः पुनः शान्तिः पक्ष्मभिश्चोपजायते । वातातपानलद्वेषी पक्ष्मकोपः स उच्यते ॥" इति शालाक्यनिगदितं द्रष्टव्यम् । २–अत्र स्फटिका आफूकपूगापेक्षया किञ्चिदल्पा ग्राह्या, खर्जूभयात् । ३–द्व्यहमिति शेषः । ४–स्रावकण्डूपुष्पादिजनितम् । ५–पूर्वदेशोद्भवानि मरिचानि । ६–श्वेताञ्जनम् ।

१६ न्युप्तं पञ्चदशाहानि निम्बमूले स्वयुक्तित ।
स्रोतोऽञ्जनं जना॰ शुद्धं विलोचनरुजापहम् ॥ २७ ॥

१७ निम्बे किच कदल्यां पाथस्येकैकवर्षमप्युषितम् ।
कृष्णाञ्जनस्य शकलं शलाकया हन्ति दृग्व्याधीन् ॥ २८ ॥

१८ नागं पात्रगतं चतुर्गुणबलिप्रक्षेपसंस्कारितं
दग्ध्वा काष्ठकृशानुना स्थलपयोजन्माम्बुभिर्मर्दयेत् ।
सिद्धोऽसौ मसृणीकृतो रसवरः प्रातर्दृशोरञ्जितो
धत्ते दुर्धरदृष्टिदोषपरिषच्छार्दूलविक्रीडितम् ॥ २९ ॥

१९ षोडशगुणा सिताया नवजातीकुसुमनालिका पिष्टा ।
तत्कल्कजवर्तिरुषसि विवर्तिता भवति चक्षुष्या ॥ ३० ॥

२० चपलस्तुर्यांशपल पृषत्कपलिकाश्च मालतीकलिका॰ ।
मसृणीकृतसिद्धमञ्जनमान्ध्यमपि निहन्ति नित्यमुपयोगात् ॥ ३१ ॥

२१ नवसादरमुड्डाय्यँ प्रपिष्य ढब्बूकत॰ प्रहरम् ।
दत्त शलाकया दृशि हन्ति शनैरान्ध्यमपि नियतम् ॥ ३२ ॥

मापा इनको एकत्र लेकर, आवले के बत्तीस तोला रस में खरल करके वर्ति बनालें । -फूला, तिमिर आदि से उत्पन्न पीडा में इस वर्तिका नित्य अजन करें ॥ २५-२६ ॥ कालेसुरमे को, निंबवृक्ष के मूल में युक्तिपूर्वक गाडकर, पदरह दिवस पर्यंत रहने दें । यह नेत्रवेदना को मिटा देता है ॥ २७ ॥ निंब-कोंपलों के रस में तथा कदली-रसमें काले सुरमे के टुकडे को, क्रमश एक एक वर्ष तक रहने दें। फिर, इसको निकालकर तीन दिवस तक खरल करके सीसे की शलाका से आजें । यह नेत्र व्याधियों को दूर कर देता है ॥ २८ ॥ एक पात्रस्थित जसद को, उसमें उससे, चतुर्गुण गधक मिलाकर, काष्ठाग्नि से जला डालें । इस तरह शुद्ध किये गये जसद को गुलाब-जल से खरल में खूब घोटें । घोटकर मुलायम बनाये गये इस सिद्ध-रसश्रेष्ठ को प्रात नेत्रों में आजने से, दृष्टिगत तीव्र-विकार-समूहरूपी शार्दूलविक्रीडन शात हो जाता है । (इस छद का नाम भी 'शार्दूल-विक्रीडित' है। छद में, छद के नाम को यथा अर्थ बिठाना, कवि की प्रौढ-काव्यकुशलता का निर्देश करता है) ॥ २९ ॥ मिश्री में, उससे सोलह गुने अधिक, नूतन जातिपुष्प के डण्ठल मिलाकर, खूब बारीक पीसकर, वर्ति बनालें। प्रात -काल इसको लगायें । यह वर्ति चक्षुष्य है ॥ ३० ॥ पारद एक तोला, मालतीपुष्प की कलिया बीस तोला-इनको बारीक मुलायम पीसकर अजन बनालें । इसके नित्य उपयोग से अंधापना भी दूर होता है ॥ ३१ ॥ डमरुयत्र में नवसादर को उडालें । फिर,

१-कृष्णाञ्जन 'काला सुरमा' इति प्रसिद्धम् । २-निदिनं खल्वयित्वा वङ्गदशला-कया अञ्जितम् । ३-तरुणीपुष्पार्कैं । ४-पारद । ५-तुर्योऽश पलायस्येति व्यधिकरण-बहुव्रीहि पलचतुर्थांश इत्यर्थ । ६-पञ्चपलिका । ७-डमर्वादिना ।

२२ त्रिचतुःपञ्चवर्षीया शर्करा मसृणीकृता।
चक्षुषोरञ्जनादान्ध्यं जित्वा ज्योतिः प्रयच्छति ॥ ३३ ॥

२३ मसृणं माक्षिकरजः[1] किंचिन्माक्षिकसाक्षिकम्।
द्वित्रिवेलं दृशोर्दत्तं विकाराणां निकृन्तनम् ॥ ३४ ॥

२४ ताम्रादक्षं पटोर्गन्धात् पञ्च प्रत्येकमक्षकान्।
द्विनिम्बुनीरं संभृत्य काचकूपे पिधाय च ॥ ३५ ॥
मासं संस्थाप्य घर्मान्तस्ततः सूक्ष्मं प्रपेषयेत्।
मेषीक्षीरसरस्निग्धदृशोरञ्जनमाचरेत् ॥ ३६ ॥
लिहन् पलघृतं प्रातस्तीक्ष्णतैलगुडाम्लमुक्।
आन्ध्याद्विमुच्यते पथ्याभ्यासी कतिपयैर्दिनैः ॥ ३७ ॥

२५ सापामार्गरसे[3] कांस्ये ज्वालयेत् खण्डमैन्दवम्।
असकृद्धर्तयेद्युक्त्या यावत्तस्य क्षयो भवेत् ॥ ३८ ॥
पात्रस्थं रसकिट्टं तदञ्जयेन्मसृणीकृतम्।
हन्यादप्यान्ध्यमभ्यासात् का पुनर्दृग्रुजां कथा ॥ ३९ ॥

एक प्रहर, इसको ताम्र मुद्रासे घिसें। इसको शलाकाद्वारा आंख में आंजनें से, नेत्रगत अन्य विकारों सहित धीरे धीरे अंधापना भी निःसंदेह दूर हो जाता है ॥ ३२ ॥ तीन चार अथवा पांच वर्ष पुरातन मिश्री के बारीक चूर्ण को आंजने से आंध्य दूर होता तथा ज्योति प्राप्त होती है ॥ ३३ ॥ थोडा शहद मिलाकर स्वर्णमाक्षिक के सूक्ष्म मुलायम चूर्ण को, दो तीन वार आंजने से दृष्टिविकार दूर हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

ताम्र एक तोला, लवण तथा गंधक प्रत्येक पांच तोला, तथा दो निंबू का रस- इन सबको काचकूपी में भरकर उसके मुख को बंद करदें। एक मासपर्यंत उसे सूर्यताप में रहने दें। फिर, निकालकर, इन सभी द्रव्यों को सूक्ष्म पीस लेवें। अब, भेड के दूध की मलाई को, प्रथम, पांच दिवसपर्यंत नित्य आंखों पर बांधें। फिर, छठे दिवस से उपरोक्त अंजन लगाना प्रारंभ करें। प्रयोगकाल में, प्रातः, चार तोलाभर ताजा गो-घृत चाट लेना चाहिये, तथा तीक्ष्ण पदार्थ तैल, गुड, प्रभृति त्याग देना चाहिये। इस तरह पथ्यपूर्वक रहने से कुछही दिवसों में, आंध्यसे मुक्ति मिल जाती है ॥ ३५-३७ ॥ चार या पांच तोले भर अपामार्ग-स्वरस को, कांस्यपात्र में भरकर, उसमें एक तोला कर्पूरखंड प्रज्वलित करके डाल देवें। इसी कर्पूरखंड को, पात्र में से पुनः निकालकर, पुनः जलाकर डाल दें। इस तरह पुनः पुनः जलाकर डालते रहने से, कर्पूरखंड निःशेष हो जायेगा; अब, पात्रस्थ किट्ट को निकालकर बारीक पीस लें। इसको आंजने से, आंध्य भी जब दूर हो सकता है, तब नेत्र के अन्य विकारों की तो कथा ही क्या? ॥ ३८-३९ ॥

१-स्वर्णमाक्षिकचूर्णम्। २-मेषीक्षीरसंतानिकाबन्धनमञ्जनात् पूर्वमेव पञ्चाहं कार्यम्। ३-चतुस्तोलके पञ्चतोलके वाऽपामार्गस्वरसे कर्पूरखण्डं तोलकमितम्।

२६ सौभाग्यं सादर. सौर. स्फटिका सैन्धवोत्तमम् ।
एषा पातालयन्त्रोत्थं सत्त्व शुक्रनिकृन्तनम् ॥ ४० ॥
२७ हेमक्षीरीपयो घृष्टं कास्यपात्रे शनै शनै. ।
अञ्जितं चक्षुषोर्मङ्क्षु नवं कृन्तति पुष्पकम् ॥ ४१ ॥
२८ मृगपित्ते न्यस्य कणा घृतभृतकर्केऽधिभूमि निदधीत ।
मासान्ते ताः पिष्ट्वा घ्नन्तितरां पटलमञ्जनत. ॥ ४२ ॥
२९ पुनर्नवाया रजसो गृहीत्वा नस्यं पुन. पायकमश्नतो नुः ।
निःसंशय सप्तभिरेव घस्रै प्रयाति शङ्खभ्रुकुटीव्यथाऽस्तम् ॥ ४३ ॥
३० मुष्टिं कलिञ्जिकायाः जीर्णेन गुडेन साधु सन्नीय ।
वटिका सप्त विधेया भ्रूशूलं दृष्टिघस्मरं हरति ॥ ४४ ॥
३१ अत्यल्पसाबुजक्षारपिण्डीं घृष्ट्वाऽञ्जयेन्मनाक् ।
विनाशयति नक्तान्ध्यं त्रिभिरेव दिनैरहो ॥ ४५ ॥
३२ चूर्णं ताम्रारवं श्लक्ष्णपिष्टं वस्त्रेण गालितम् ।
नेत्रयोरञ्जनाद्धन्ति नक्तान्ध्यं कतिभिर्दिनै. ॥ ४६ ॥
३३ सदैव दन्तपवनभक्षणं वामदंष्ट्रया ।
हन्ति हंहो दृशोर्दु.खं संशयश्चेत् परीक्ष्यताम् ॥ ४७ ॥

सौभाग्य, नवसादर, कलमी सोरा, स्फटिका तथा काच-जाति का उत्तम सैंधव, इनका पातालयन्त्रद्वारा निकाला गया सत्त्व आख के फूले को काट देता है ॥ ४० ॥ स्वर्णक्षीरी के दूध को कास्यपात्र में धीरे धीरे खूब घिसें। इस दूध को आख में आजने से, नूतन फूला कट जाता है ॥ ४१ ॥ मृगपित्त में पिप्पली मिलाकर घृतपूर्ण करवे में भरकर, भू-गर्भ में गाड देवें। एक मास पीछे इसको निकालकर, पीसकर अजन करें। यह 'नेत्र-पटल' को शीघ्र दूर कर देता है ॥ ४२ ॥ पुनर्नवा-मूलत्वक् के चूर्ण का नस्य लेकर, फिर ऊपर से हलवे का भोजन करनेवाले मनुष्य के शङ्ख-प्रदेश तथा भ्रुकुटी की वेदना सात दिवस में ही अस्त हो जाती है ॥ ४३ ॥ एकमुष्टि भर (एकपल) कलौंजी को पुराणे गुड में अच्छी तरह मिलाकर सात वटिकायें बनालें। यह वटिकायें, दृष्टि को क्षीण करने वाले भ्रुकुटीशूल का शमन करती हैं ॥ ४४ ॥ साबुन के क्षार-पिण्डी को घिसकर अत्यल्पमात्रा में आजने से, अहो ! तीन दिन में ही नक्तान्ध्य नष्ट हो जाता है ॥ ४५ ॥ तमाखूपत्र के वस्त्रपूत सूक्ष्म मुलायम चूर्ण को आख में आजने से कुछ ही दिनों में नक्तान्ध्य मिट जाता है ॥ ४६ ॥ अहो ! वाम-दंष्ट्रापर नित्य प्रति दंत-पवन (दातुन) करने से नेत्रपीडा का शमन हो जाता है। यदि इसमें शका हो तो परीक्षा करके देख लीजिये ॥ ४७ ॥

१–काचभाहुरं सैन्धवलवणम्। २–'फूला' इति प्रसिद्धम्। ३–नरस्य। ४–"घस्रो दिनाहनी वा तु" इति कोष। ५–लोके 'कलौंजी' इति ख्याताया। ६–तमाखोरिदं तामाखवम्।

३४ मौञ्जं[1] गुणं परिभ्राम्य सप्तधा मस्तकोपरि ।
क्षिप्त्वा चतुष्पथे सायं गृह्णीयाल्लोकलङ्घितम् ॥ ४८ ॥
प्रान्तवेष्टिततूलं तं कृत्वा तैलनिमज्जितम् ।
न्युब्जं धृत्वा शिशौ दुःस्थे[2]दृशि पश्यति दीपयेत् ॥ ४९ ॥
रुधिरेण[3] सहैवाक्ष्णोस्तेन तैलस्य बिन्दवः ।
पतन्ति सचटत्कारं भाजने भृतपाथसि ॥ ५० ॥
त्रिभिरेव दिनैरेवं प्रणश्यति दृशोरसृक् ।
तन्त्रे किं त्वत्र योषिद्भिरुद्दिष्टः सावरो मनुः ॥ ५१ ॥

इति नेत्ररोगचिकित्सा ।

अथ शिरोरोग[4]चिकित्सितम् ।

१ नवसादरभृतगर्भं सितोपलाबुद्बुदं निगीर्यानु ।
मिषिगोधूमसितानां भुञ्जीत शिरोगदेऽपूपान् ॥ १ ॥

मूंज को बटकर रस्सी बनालें । इस रस्सी को मस्तक के ऊपर चारों तरफ घुमाकर प्रातःकाल में ही चौराहे पर रखदें । इस तरह, मार्ग पर आवागमन करने वाले मनुष्यों से उल्लंघित इस रस्सी को सांझ के समय उठा लावें । अब, इस रस्सी के एक छोर पर कापूस लपेटकर उसे तैल में भिगोकर सिक्त करलें । रस्सी के दूसरे छोर को हाथ में लेकर कापूस वाला छोर नीचे लटका दें । इस तैल-सिक्त कपासवाले छोर को, अपनी पीडित आंखों से इसको देखते हुये बालक के आगे, प्रज्वलित कर दें । नीचे एक, जलपूर्ण थाली रख दें । इस जल पूर्ण थाली में चट चट ध्वनि करते हुये तैल-बिंदु, सामने बैठे हुये बालक के नेत्र-गत दूषित-रुधिर के साथ ही, गिरने लगेंगे । (साक्षात् रुधिरबिंदु तो नहीं गिरते किंतु तैलबिंदुओं के गिरने के साथ क्रमशः नेत्रगत रुधिराक्तता अवश्य अल्प होती रहती है ।) इस तरह तीन दिवस पर्यंत करने से नेत्रगत रुधिर-दोष मिट जाता है। इस 'तंत्र' का उपदेश महिलाओं ने 'सावर' मनु को दिया था ॥ ४८–५१ ॥

– नेत्ररोग चिकित्सा समाप्त –

– शिरोरोग चिकित्सा (कुल प्रयोग १७) –

शीर्ष-विकार में, मिश्री के पताशे में नवसादर चूर्ण भरकर निगीर्ण करके उसके ऊपर, सौंफ तथा मिश्रीमिश्रित गेहूं के आटे से निर्मित मालपूये का भोजन करें ॥ १ ॥

१—अधुना लोकदृष्टमुपायमभिदधति श्रीगुरवः । २—अभिष्यन्ननेत्रे । ३—न त्वत्र तादात्विकं साक्षाद्रुधिरपतनं किंतु कृते ह्यस्मिंस्तन्त्रे क्रमेण नेत्रलौहित्यमपयाति । ४—ऊर्ध्वाङ्गरोगेषु शिरोरोगस्यैव पारिशेष्यात्तच्चिकित्सारम्भः ।

२ सितोपलाघुसृणयोर्लिप्ति किंचिदिवोष्णयो ।
ग्रसतेऽनन्तवातार्ति कुड्यमत्स्यीव मक्षिकाम् ॥ २ ॥

३ छदनरसनिबद्धै राजकोशातकीनां
तवकृतलविपक्वैर्बालगोधूमचूर्णैः ।
रचितमुचितसर्पि शर्करोल्लासि लड्डु
भ्रुकुटिभिदमनन्तं लम्भयेद्वातमन्तम् ॥ ३ ॥

४ मज्जानो हविषि दशाङ्गुलस्य किंचित्संभ्रष्टा पुनरुषिता रसे सितायाः ।
पीयूषादपि रुचिमद्भुतां दधाना मस्तिष्कं सपदि विशिष्य बृंहयन्ति ४

५ प्रत्यग्रकट्फलरजो भृतनारिकेलदुग्धाढकं क्वथनतो नय पिण्डभावम् ।
पिष्ट्वा घृते तलितमुत्तवलक्षखण्डं वातामकुङ्कुमसखं भज मूर्धरुक्षु ॥५॥

६ जातीदलफलदरदोधटाक्षैर्पाघातकीसुमाफूकम् ।
सितकरवीरसुमाद्भिर्विमर्द्य गुटकीकृतं शिरोर्तिहरम् ॥ ६ ॥

मिश्री तथा केसर को पीसकर, उसका मस्तक पर कवोष्ण लेप, शीर्षवेदना को (अनन्त-वात-पीड़ा को) उसी तरह ग्रसित कर लेता है जिस तरह छिपकली मक्खी को ('अनन्तवात' दोषत्रय-प्रकोपजन्य, शीर्षविकार विशेष है। इस रोग में तीनों दोष प्रकुपित होकर मन्या में पीड़ा उत्पन्न करते हुये चक्षु, भौंह तथा शंख प्रदेश में अपनी स्थिति कर लेते हैं। परिणामतः, गण्डस्थल में तीव्र वेदना होने लगती है। हनु स्तंभित हो जाती है तथा विविधप्रकार के नेत्ररोग उत्पन्न होते हैं) ॥ २ ॥ तुरई-पत्तों के स्वरस से गेहूं के आटे को बांधकर उसकी बाटियां बना तवे पर सेकलें। फिर, इन बाटियों को चूरकर उसमें घी और शक्कर मिला उसके लड्डू बांधलें। इनका सेवन करने से भ्रुकुटि का भेदन करने वाले 'अनन्तवात' का अन्त हो जाता है ॥ ३ ॥ खरबूजे की मज्जा को घी से थोड़ी भूनकर, शर्करा की चासनी में डाल देवें। अमृत से भी अधिक अद्भुतरुचि उत्पन्न करने वाला यह रसायन मस्तिष्क का शीघ्र बृंहण करता है ॥ ४ ॥ नारियल के २५६ तोला दूध को, ताजा कट्फलचूर्ण सहित खूब उकालकर, मावे जैसा पिंड बनालें। फिर इसको घी में भूनकर, मिश्री मिला, बादाम, केसर आदि डालकर, शीर्षवेदना में सेवन करें ॥ ५ ॥ जावित्री, जायफल, हिंगुल, डहिंगण के बीज, गागेरुकी-त्वक् (गगेरन), धाय के फूल लविंग, अफीम इन औषधीय द्रव्यों को, श्वेतकरवीर-पुष्परस में घोटकर, गुटी बनालें।

१—घुसृणं कुङ्कुमम्। २—अनन्तवातलक्षणं च सुश्रुतोत्तरे यथा—"दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां सपीड्य घाटासु रुजां सुतीव्राम्। कुर्वन्ति साक्षिभ्रुवशङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु॥ गण्डस्य पार्श्वेषु करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान्। अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम्॥" इति। ३—'गिलगिल तोन्यू' इति ख्यातानाम्। ४—अनन्तवातनामकं रोगम्। ५—'खर्बूजा' इति प्रसिद्धस्य। ६—तन्दुलीहृपे। ७—उकदा

७ एलेयवीकाद्विपटुप्रपूर्णं निम्बूकखण्डं परिपाच्य युक्त्या ।
संचूषयन्नुद्गतपित्ततप्तशिरःकपालः सुखमेति सद्यः ॥ ७ ॥

८ 'लेना दोस्त बदाम पोस्तफलके दानां चिरोंजी तिली
राई ओ पिसता खरी वजनसें एकैक पैसाभरी ।
छै माषे पुनि लोहवान कुचिला पोंनेजु तोलासही
घीमांही करि लूपरी मगजके दर्दांकु काफी कही' ॥ ८ ॥

९ प्रलेपो राजशणिकास्वरसैरुपयोजितैः ।
विध्वंसयति दुःसाध्यामपि मस्तकवेदनाम् ॥ ९ ॥

१० शुण्ठीलवङ्गकर्पूरैः सममर्जुनचन्दनम् ।
शिरोर्तिघस्मरो लेपः कृत्रिमेण हिमेन वै ॥ १० ॥

यह शीर्षवेदना को मिटा देती है। इस गुटी को, रात्रि के समय, शक्कर-निर्मित सीरे में लपेट कर लेनी चाहिये। इसको लेकर ऊपर से सीरे के ४५ कवल खाने चाहिये। प्रयोग-काल में अम्ल पदार्थ वर्ज्य हैं ॥६॥ एलिया, वीकामाली और दोनों नमक (सामुद्र तथा सैंधव) इनको निंबू के एक टुकडे में भरदें। फिर, इस नींबू-खंडको युक्तिपूर्वक अग्नि के ऊपर पकाकर उसके रस को चूसें। इसके द्वारा पित्त से परितप्त मस्तक तथा कपाल को शीघ्र शांति मिलती है ॥ ७ ॥ हे मित्र! बादाम, पोस्त के दाने, चिरोंजी, तिली, राई तथा पिस्ता प्रत्येक एक एक पैसाभर, लोबान छह माषा तथा कुचला नौ माषा इन सबको लेकर इनकी घी में लूपरी बना मस्तक पर लगायें। शीर्षवेदना में यह प्रयोग पर्याप्त है ॥ ८ ॥ रायसणी के (रायसींगणी गुर्जर नाम है। यह पीतपुष्प-वाली एक सिद्ध औषधि है। इसके पत्ते ठीक इमली के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। यह औषधि बहुधा घर की दीवारों पर अथवा बाडपर उग आती है।) पत्र-स्वरस का प्रलेप मस्तक की दृष्टि-विध्वंसनी-वेदना को, दुःसाध्य हो तो भी, मिटा देता है। यह प्रयोग शिशिर में ही दो तीन बार करना चाहिये अधिक नहीं ॥ ९ ॥ सूंठ, लौंग, कपूर, अर्जुनत्वक् तथा श्वेत चंदन-इनका बरफ से शीतल

'उटींगण' इति ख्याता, तस्या बीजान्यत्र ग्राह्याणि; झषा गाङ्गेरुकीत्वक्; धातकीसुमं 'धाय-फूल' इति ख्यातम्। ८-इदं च शार्करपावकग्रासे निशि सेवनीयम्। तदुपरिष्टाच्च चतुःपञ्च-पावकग्रासान् भक्षयेत्। अम्लादिकं च वर्जयेत्।

१-वीका 'वीकामाली' इति ख्याता। द्विपटुशब्देन सामुद्रसैन्धवे ग्राह्ये। २-रेक-द्वारा शं प्राप्नोति। एतत्पित्तज्वरेऽपि देयम्। ३-नव माषा इत्यर्थः। ४-उपनाहस्य लौकि-कसंज्ञेयम्। ५-'रायसणी, रायसींगणी' इति गुर्जरे ख्याता पीतशबलपुष्पा काचिद्वाटी-रोहिणी सिद्धौषधिर्भवति, यस्याः पत्राणि चिञ्चापत्रसपत्नानि भवन्ति। ६-शिशिर एव द्वित्रिवारं कल्पितः। ७-दृष्टिविध्वंसिनीमिति शेषः। ८-श्वेतचन्दनम्। ९-'बरफ' इति प्रसिद्धेन ॥

११ नवसादरपानीयप्लुतप्लोतावृतं शिरः ।
व्यथया त्यज्यते सद्यो नपुंसक इव स्त्रिया ॥ ११ ॥
१२ त्रिपुटे भद्रत्रिपुटा कर्पूरमिति प्रकल्पितो लेपः ।
दुस्तरशिरोर्तितापक्षपणे क्षिप्रं समद्यदवलेपः ॥ १२ ॥
१३ संभृष्टहरिमन्थाना पोट्टलीं साधु जिघ्रताम् ।
शिरःपीडाप्रभृतयः कफोत्था व्यापदः कुतः ॥ १३ ॥
१४ कूपे निक्षिप्तमष्टाहं त्रिफलाक्षोदपोट्टलम् ।
तेन पक्त्वा दृढं सर्पिः कर्पटेन पवित्रयेत् ॥ १४ ॥
लेपनस्याञ्जने शस्तं शिरोनासाक्षिरुक्षु तत् ।
तत्कल्कजं पुनः किट्टं म्रक्षयेद्दारुणादिषु ॥ १५ ॥
१५ अतितिक्ततुम्बगर्भैश्छायाशुष्कैर्विचूर्णितैर्नस्यम् ।
विनिहन्ति शिरोविकृतश्लेष्मस्रवदूषिताक्षिदुःखानि ॥ १६ ॥

किया गया लेप, शिरोवेदना को मिटाता है ॥ १० ॥ नवसादरके पानी में भीगे हुये वस्त्रखंड से मस्तक को आवृत रखने वाले की व्यथा उसको उसी तरह त्याग देती है, जिस तरह नपुंसक को सुंदरी ॥ ११ ॥ दो छोटी इलायची, एक बडी इलायची - इनको एक मापाभर कपूर के साथ पीसकर, लेप करने से, दुःसाध्य शिरोवेदना, तथा ताप का अवलेप शीघ्र ही शमित होजाता है। (यहा छिलके सहित इलायची का उपयोग करना चाहिये केवल दानों का नहीं) ॥ १२ ॥ चनों को भूनने के समनतर ही पोटली में शीघ्र भरकर, जोर से सूंघने वाले को सिर की पीडा आदि तथा कफजन्य (शीर्ष की) आपद कहा ? ॥ १३ ॥ त्रिफलाचूर्ण की पोटली को कूप में आठ दिवसपर्यंत जलमग्न रहने दें। फिर, इस त्रिफला से घृत सिद्ध करके उसको छानलें। यह घृत क्रमशः - मस्तक, नाक तथा नेत्र के लेप, नस्य तथा अंजन में प्रशस्त है। वस्त्रगत किट्ट का उपयोग शरीर के केशोत्पत्ति-स्थानगत विकारों में हितावह है। केशोत्पत्ति भागपर इस किट्ट का मर्दन करना चाहिये ॥ १४–१५ ॥ अत्यंत तिक्त तुंबी के भीतर का गूदा निकाल उसे छायाशुष्क बनालें। फिर, इसके चूर्ण का नस्य लेवें। इससे मस्तकगत दूषित कफ का स्राव तथा आंखका दुखावा आदि दूर हो जाते हैं। यहा नस्य लेने के तुरत पीछे, तुल्य-घृत-शर्करा-निर्मित

१–द्वे सूक्ष्मैले, एका महैला, माषमानं कर्पूरं पिष्ट्वा, हिम एव लेपोऽवचार्यः । एलानां फलानि ग्राह्याणि न तु केवल तद्बीजान्येवेति रहस्यम् । २–भर्जनान्तरमेव पोट्टली कार्या, विलम्बे गुणहानिरिति भावः । ३–तेन त्रिफलाक्षोदेनेत्यर्थः । त्रिफलातः सर्पिश्चतुर्गुणमादेयम् । ४–केशभूमिभवरोगविशेषेषु । ५–अत्र नस्यसमनन्तरमेव तुल्यघृताधिकशर्करं पायकं भक्षयेत् ।

१६ कणाश्चतस्रो मदनं तथैकं फेनं द्विगुञ्जं फणिनो विचूर्ण्य ।
संभर्ज्य ताम्र्यां मसृणीकृतं स्यान्नस्यं महामस्तकयातनासु ॥ १७ ॥

१७ मरिचं दरदं विश्वा चपला छिक्कका मिषिः ।
पत्रं सेव्यमिदं नस्यं सेव्यं शीर्षाक्षिरोगिणाम् ॥ १८ ॥

— इति शिरोरोगचिकित्सा —

अथासृग्दरचिकित्सितम् ।

१ उच्चा हस्तप्रमाणेन त्रिचतुःपञ्चशाखिका ।
खरदीर्घदला मृद्वी प्रायः पर्वतभूमिजा ॥ १ ॥
निम्नगर्भं मनाङ्नीलं श्लिष्टपञ्चाङ्गवर्तुलम् ।
पञ्चास्रोच्छूनकिञ्जल्कं यस्याः पुष्पमगन्धकम् ॥ २ ॥
ओषधिः सा विदेहोक्ता नाम्ना प्रदरदारिणी ।
परंपरोपदेशेन मयाऽप्यज्ञायि यत्नतः ॥ ३ ॥

हलवे का भोजन करना चाहिये ॥ १६ ॥ पिप्पली नग ४, मदनफल नग १ तथा अफीम दो गुंजा, इनके चूर्ण को ताम्रपात्र में भूनलें । फिर, सूक्ष्म पीसकर, मस्तकगत उग्र विकारों में-सूर्यावर्त आदि में-इसका नस्य लेवें। इसके प्रयोगकाल में, पथ्यरूप से, चासनीयुक्त मधुर दूध का पान तथा गोधूम की फुलिकाओं का सेवन अवश्य करना चाहिये ॥१७॥ मस्तक तथा नेत्रविकारों से ग्रस्त मनुष्यों को, मरिच, हिंगुल, सूंठ, पिप्पली, नकछीकनी, सौंफ, तमालपत्र तथा उशीर के चूर्ण का नस्य लेना चाहिये ॥ १८ ॥

— शिरोरोग चिकित्सा समाप्त —

— असृग्दरचिकित्सा (कुल प्रयोग १२) —

'प्रदरदारिणी' इस नाम से विदेह प्रोक्त सुप्रसिद्ध एक औषधि है । इस औषधि के विषय में, मैं अपनी कुलपरंपरा से, बहुत सुनता आया हूं तथा प्रयत्नपूर्वक मैंने स्वयं इसकी प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त की है । यह औषधि एक हाथ ऊंची तथा तीन, चार अथवा पांच शाखाओं से युक्त होती है । इसके पत्ते दीर्घ खुरदरे होते हैं । स्वयं कोमल होती है । प्रायः पर्वतीयभूमि में उगती है । इसका पुष्प मध्य में निम्न, कुछ नीले वर्ण

१—फणिनः फेनमिति योजना । २—सूर्यावर्तप्रभृतिषु । पथ्यमत्र जलवलितन्तुलीमधुरं दुग्धं, फुल्लिकाद्यपि च । ३—तमालपत्रं 'पत्रज' इति प्रसिद्धम् । ४—उशीरम् । ५—सामान्यतः स्त्रीपुंसदेहभवान् रोगानभिधायेदानीं स्त्रीदेहमात्रभाविनः कांश्चिद्रोगविशेषानभिदधति । तत्र पूर्वं प्रदररोगचिकित्सा । तत्रापि प्रथमं कस्याश्चिन्महौषध्याः प्रदरदारिणीति कल्पितनामधेयायाः स्वरूपप्रदर्शनपुरःसरः प्रयोगः प्रदर्श्यते चतुर्भिः पद्यैरुच्चेत्यादिकैः ॥

दलं प्रदरदारिण्याः सकत्थं परिपेषयेत् । ४
माषप्रमाणा वटिका प्रदरार्तिं नियच्छति ॥ ४ ॥

२ गद्याणद्वितयं ब्रह्मदण्डीपञ्चाङ्गमिष्यते ।
गद्याणमात्रमेवात्र रसाञ्जनमिह ध्रुवम् ॥ ५ ॥
गद्याणषट्कतुलिता सितेस्येकत्र कल्कयेत् ।
पलद्वयेन पयसा विप्लाव्य शुचिवस्त्रत ॥ ६ ॥
पिबेद्बहु·साध्यविविधप्रदरार्ता नितम्बिनी ।
शीते शृतं तथा ग्रीष्मे शीतमेव प्रयोजयेत् ॥ ७ ॥

३ ऐडे·[१] पयोभिर्लुलितानि पीत्वा कणान्वितान्याखुशकृद्रजांसि ।
योनिस्रवच्छोणिरपूरदिग्धगृहाङ्गणाऽथैति सुखं मृगाक्षी ॥ ८ ॥

४ प्राचीनचिक्कणविभाण्डतलस्य यद्वा चूर्णीकृतानि शकलान्यरुणेष्टिकाया·।
पीतानि षष्टिकजलैः सह सुन्दरीभि· शोणप्रभ प्रदरमुग्रदर हरन्ति ॥९॥

५ प्रलेष्टिकारसमश्नुत् सितोपलासारसाक्षिक· पीत ।
किमु तर्हि सुन्दरीणां समुदीर्णदरं दर न दारयति ॥ १० ॥

का, गोलाकार, परस्पर जुडे हुये पाच विभागवाला, केसर के पाच उभरे हुये रेशों से युक्त, गंधरहित होता है। इस प्रदरदारिणी के एक पत्ते को दो तीन रत्तिभर कत्थे में पीसकर एक माषा प्रमाण वटिका बनालें। इसके सेवन से प्रदरजन्य वेदना दूर होती है ॥१–४॥

ब्रह्मदण्डी (तिलकुटा) का पंचाग बारह माषा, रसाजन छह माषा तथा मिश्री ३६ माषा इनको एकत्र दस तोला जल में घोलकर वस्त्रपूत करलें। अनेक वर्ण के दु साध्य प्रदर से पीडित महिला इसका पान करें। शीतऋतु में गरम करके तथा ग्रीष्मऋतु में शीतल ही इसका उपयोग करना चाहिये ॥ ५–७ ॥

दो रत्ति पिप्पली एवं मूषक की शुष्क लींडी के चूर्ण को भेपीदूध से मिलाकर पीने से योनि में से झरते हुये रुधिर पूर से सिक्त घरके आगनवाली मृगनयनी सुखसे रह सकती है। मूषक की लींडी दो तीन गुजाभर ही लेनी चाहिये। इसी लींडी के चूर्ण को मलाई के साथ लेने से प्रमेह में भी लाभ होता है ॥८॥ प्राचीन चिकने घट के तल की ठीकरियों का अथवा अर्थात् पुरानी लाल ईंट के खडका चूर्ण इनमें से किसी एक के ४ रत्ती चूर्ण को षष्टिक चावल के ४ तोला धोवन के साथ लेने से युवतियोंका उग्र-रक्तप्रदर शांत हो जाता है ॥ ९ ॥ पुराणी ईंट के चूर्ण को निरन्तर जलकी भावना देते

१–ब्रह्मदण्डी लोके 'तिलकुटा' इति नाम्ना प्रसिद्धा। तस्या पञ्चाङ्गानि पत्रपुष्पमूलादीनि। २–जलेन। ३–नानावर्णप्रदरपीडिता। ४–मेषीभवै। ५–आध्मानभयाद् द्वित्रिगुञ्जाधिकानि नाददीत। दुग्धसन्तानिकालीढानि प्रमेहं घ्नन्तीत्यपि बोध्यम्। ६–इष्टिकाऽपि प्राचीनैवादेया। ७–षष्टिकतन्दुलभावितैर्जलैः। ८–षष्टिकजलैः सह चिक्कणभाण्डखण्डानि सुन्दरीभि पीतानीत्यन्वय। ९–प्रलेष्टिकाचूर्णस्य चिरं जलभावनया रसो निष्पाद्य।

६ पृथग्दारुकलोध्राब्धिशोषाः स्युः समभागिकाः ।
सिता सर्वसमा चूर्णं श्वेतप्रदरदारणम् ॥ ११ ॥

७ ससितं समुद्रशोषं किंचित्पाणिं निषेव्य सलिलेन ।
प्रदराद्नेकवर्णात् सयोनिशूलाद्विमुच्यते नारी ॥ १२ ॥

८ सार्धधांशा कृष्णगुन्द्रस्य मुष्टिर्मुष्टिर्दुग्ध्यो जीरकं च द्विमुष्टि ।
वट्यो बद्धाः सप्त सर्पिःसिताभ्यां ध्वंसाय स्युः शुक्लदीप्तेर्दरस्य ॥ १३ ॥

९ प्रातर्गीर्णा जीर्णारण्योपलभस्मभाविताम्भोभिः ।
तक्षककलेडिकातलपर्पटिका प्रदरमुपहन्ति ॥ १४ ॥

१० कुडवकलितयवचूर्णं पाणितलोन्मानकृष्णनिर्यासम् ।
संनीय कृता पोली सघृतोष्णा द्यति दरार्तिमभ्यासात् ॥ १५ ॥

११ नागं गालितमग्निना वरसिताप्रक्षेपपूतं मुहु-
मृत्पात्रे दृढकेतकीलकुडतः संघर्षयेद्वैद्यराट् ।
भस्मीभूतमुदीक्ष्य वल्लतुलितं क्षौद्रेण दद्यादमुं
दुर्वारप्रदरव्यथाप्रहृतये नागेश्वराख्यं रसम् ॥ १६ ॥

रहने से वह पानी में घुलकर एक रस जैसी हो सकेगी । इष्टिका के इस रस में मिश्री तथा कलमी सोरा मिलाकर यदि रुग्णायें पीयें, तो क्या उनका उग्र-प्रदर दारित नहीं होगा ? ॥ १० ॥ वृद्धदारु, लोध्र तथा समुद्रशोष यह तीनों समभाग तथा इनसे समानभाग मिश्री इनका चूर्ण श्वेतप्रदर मिटाता है ॥ ११ ॥ मिश्रीसहित एक तोला समुद्रशोष को पानी के साथ लेने से योनि-शूलसहित अनेक-वर्ण-प्रदर से स्त्री को मुक्ति मिलती है ॥१२॥ काली-गूंद १½ मुष्टी, दुग्धी १ मुष्टी तथा जीरा दो मुष्टी इनकी घृत तथा मिश्री मिलाकर सात वटिकायें बांधकर उनको सात दिवसपर्यंत लेने से श्वेतप्रदर का विध्वंस हो जाता है ॥ १३ ॥ पुराने जंगली उपलों की भस्म से भावित-पानी के साथ खाती की कलेडी के तलभाग की पापडी मिलाकर, प्रातः, लेने से प्रदर नष्ट होता है ॥ १४ ॥ यव के सोलह तोला चूर्ण में पाणि-तलभर (अर्थात् एक कर्ष) लाडली गूंद मिलाकर पोलिका बनालें । इसको गरम गरम घी के साथ नित्यप्रति खाने से प्रदरपीडा दूर होती है ॥ १५ ॥ शुद्ध सीसे को एक मिट्टी के पात्र में रखकर अग्नियोग से पिघला लेवें । फिर, मिश्रीचूर्ण के पुनः पुनः प्रक्षेपपूर्वक केतकी के एक सुदृढ डण्डे से, कुशल वैद्य, इस द्रवित सीसे को घिसता रहे । जब, अंतमें, इस तरह, उसकी अच्छी भस्म बनजाये, तब इस भस्म को एक वालभर मात्रा में शहद के साथ चाटें । इस नागेश्वर रस से दुश्चिकित्स्य प्रदर पीडा मिट जाती है ॥ १६ ॥

१–दारुको वृद्धदारुकः । अब्धिशोषः 'समुद्रशोष' इति लोकख्यातः । २–विचित्पाणिः कर्षपर्यायः । ३–सार्धा मुष्टिरित्यर्थः । ४–'लाडलीगूंद' इति नाम्ना प्रसिद्धस्य । ५–दुग्धी च स्वल्पा ग्राह्या । ६–सर्पिःसिताभ्यां बद्धा इति योजना । ७–शुद्धसीसकम् ।

१२ कदलीफलजं गर्भं गव्यं सर्पि सितोपलाम् ।
त्रयमेकत्र मथितं खजेन कुडवं पृथक् ॥ १७ ॥
तत्र दारुसितां सार्धतोलां तोलं च लोध्रकम् ।
धातकीपुष्पभद्रैले पृथग्गद्याणकल्पने ॥ १८ ॥
जगदौषधतः कोलं त्रिमाषं मार्जवं फलम् ।
पृथगेतानि संपिष्य क्षिप्त्वा लेहं प्रकल्पयेत् ॥ १९ ॥
लेहो ह्यक्षप्रमाणोऽयं रजतच्छदचन्द्रिरः ।
सुन्दरीणां दरव्याधिं निवारयति रहसा ॥ २० ॥

— इति प्रदरचिकित्सितम् —

अथ स्त्रीरोगचिकित्सितम् ।

१ साय निक्षिप्य संजले कर्के कोलमितां वचाम् ।
प्रातर्वट्यो कृतास्तिस्रो नवनीतेन लेपयेत् ॥ १ ॥
स्नाता केशस्रवत्तोया नारी नियतमानसा ।
अर्धोदितं रविं नत्वा गिलेदभिमुखं स्थिता ॥ २ ॥

केले का गूदा, गाय का घी तथा मिश्री प्रत्येक सोलह तोला-इनको एकत्र मिलाकर मथनी से अच्छी तरह मथलें। फिर, इसमें दालचीनी १½ तोला, लोध्र एक तोला, धाय के फूल और बडी इलायची प्रत्येक छह छह मापा, सूठ एक तोला तथा माजूफल तीन मापा, इन सबके वस्त्र-पूत सूक्ष्म चूर्ण को उपरोक्त मथित-द्रवमें प्रक्षिप्त करके अवलेह बनालें। चांदी के वरकसे युक्त अत एव चकचकित यह अवलेह युवतियों की प्रदर-व्याधि को शीघ्रतया निवृत्त कर देता है ॥ १७–२० ॥

— प्रदरचिकित्सा समाप्त —

— स्त्रीरोग-चिकित्सा (कुल प्रयोग १७) —

वचा-चूर्ण एक तोला भर लेकर साय समय उसमें इतना जल मिला देवें जितने से वह सम्यक्तया आर्द्र हो जाये। फिर, प्रात काल इसे पीसकर तीन वटिकायें बनालें। इन वटियों को नवनीत में लपेट लेवें। अब, स्नान करने के तुरन्त पीछे, जल-बिन्दु-प्रस्रुत केशों से युक्त युवती, स्थिर-चित्त-पूर्वक, अर्धोदित सूर्य के सम्मुख नमस्कार करके उपरोक्त वटी को निगीर्ण कर जाये। इस विधान के पूर्व, प्रसन्नता पूर्वक 'आदित्य-हृदय-

---

१–'दालचीनी' इति प्रसिद्धाम्। २–लोध्रमत्र पट्टिकोपपद ग्राह्मम्। ३–शुण्ठीत। ४–'माजूफल' इति प्रसिद्धम्। ५–प्रदरानन्तरं योनिरोगपूर्वकमुच्यते चिकित्सितम्। तत्र पूर्वं गर्भधारणोपाय। ६–जलं च यावता सम्यगार्द्रता तावत्। ७–लोके 'घोडावच' इति ख्याताम्। म०ऽश कृतामिति शेष। ८–स्थिरचित्ता।

स्थापयेदर्कहृदयपाठार्थं ब्राह्मणान्मुदा।
सत्येवं वमनैरस्याः शुद्धिः स्याद्गर्भकारणम् ॥ ३ ॥
दुग्धमन्धोघृतं किंचित् पथ्यं केवलमाहरेत्।
संकल्पं कारयेत् सिद्धौ भोजयिष्ये द्विजानिति ॥ ४ ॥
२ वृद्धदारुकमक्षांशं ह्यक्षां पर्कटिनो जटाम्।
संकाथ्य स्त्री पिबेदह्नां हित्वा त्रयमृतावृतौ ॥ ५ ॥
सत्येवं लभतेऽपत्यमेकसंवत्सरान्तरे।
किं तु प्राक् तुत्थकणिकां खादेत् संयावबेष्टिताम् ॥ ६ ॥
३ ह्यक्षाणि वेणुपर्वाणि शुकपुष्पा पलोन्मिता।
गुडेन मधुरः क्वाथः प्रवर्तयति वै रजः ॥ ७ ॥
४ पलाशबीजसितयोः सोमसागरभागयोः।
रजांसि द्वित्रिमाषाणि योनिदाहे जलैर्गिलेत् ॥ ८ ॥
५ समितारेवतीक्षोदैर्लेपः कोष्णः प्रशस्यते।
इष्टिकास्वेदितो योनिकण्डूग्रन्थिषु वर्ष्मसु ॥ ९ ॥

स्तोत्र' के पारायणार्थ आठ ब्राह्मणों को बिठा देना चाहिये। इस वटी के सेवन से उक्त युवति को कुछ देर बाद वमन तथा विरेचन होगा। इस तरह गर्भ-संपादन-योग्य कोष्ठशुद्धि हो जायेगी। उस दिन शर्करा रहित केवल दूध, भात तथा घी का भोजन पथ्य-रूप से करे; तथा 'गर्भ-धारण रूपी कार्यसिद्धि होने पर मैं ब्राह्मणों को भोजन दूंगी' ऐसा संकल्प भी साथ में करना चाहिये ॥१-४॥ वृद्धदारुक एक तोला तथा पर्कटी नामक पिप्पल-वृक्ष की जटा इन दोनों के एकत्र क्वाथ को, ऋतु के तीन दिवस छोडकर, प्रतिदिन नियमित पीने से, युवती को एक वर्ष उपरांत संतान प्राप्ति होती है। किंतु संतानोत्पत्ति-योग्यता कारक उक्त क्वाथ पान के पूर्व, तुत्थकणिका को मीठी थुली में, अथवा सीरे में मिलाकर खानी चाहिये। इस थुली में एक तोलाभर वेणु के पर्वका चूर्ण भी मिलाना चाहिये। तुत्थ-कणिका केवल एक चांवल-भर ही मिलानी चाहिये, क्योंकि इससे गर्भाशय का शोधन हो जाता है ॥५-६॥ वांसके पर्व दो तोला, सोया चार तोला, इनका गुड से मधुर-क्वाथ रजःप्रवृत्ति करता है। जिस स्त्री को ऋतु में भी आर्तव न आता हो उसी को यह प्रयोग करना चाहिये ॥ ७ ॥ पलाश के बीज तथा मिश्री क्रमशः एक भाग तथा चार भाग लेकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को, योनि-दाह में, जल के साथ दो या तीन माषा मात्रा से फांकना चाहिये ॥ ८ ॥ गेहूं का आटा तथा रेवंदचीनी के चूर्ण

१-आदित्यहृदयाख्यस्तोत्रविशेषस्य पाठाय। २-विरेचनमप्यस्माद्भवति। ३-भक्तम्। ४-शर्करारहितमित्यर्थः। ५-जटायुक्तस्य पिप्पलविशेषस्य। ६-संयावः पावकः; केचित्तु द्वितीयगुच्छप्रतिपादितस्वरूपां मिष्टथुल्लिकामाहुः। तुत्थकणिका च तन्दुलाधिका न गिल-नीया। अत्र वेणुपर्वाण्यपि तोलकप्रमाणानि प्रक्षेप्याणीति रहस्यम्। ७-'सूवा' इति ख्यातः शतपुष्पाभेदः। ८-यस्या ऋतावप्यार्तवं न स्रवति तस्यै देयोऽयं योगः। ९-रेवती 'रेवतचीनी' इति ख्याता ॥

६ सुजातगव्यतक्रेण प्रक्षालनविधानतः ।
सुदु सहमपि क्षिप्रं योनिशूलं प्रशाम्यति ॥ १० ॥
७ तगरव्याघ्रनखीगदसैन्धवसुरदारुसिद्धतैलार्द्रः ।
मदनोदचसितशूलं जयति समूलं पिचु कोष्णः ॥ ११ ॥
८ वारणवुषाम्बुमसृणं शौविदंशूकालचूर्णजं चूर्णम् ।
लोमानि लघु विलासिनि ! वहलविलेपाद्विलोपयति ॥ १२ ॥
९ निरस्तबीजानि सुरोपितानि मायाफलानि क्षितिगर्भगानि ।
सूक्ष्मीकृतानि प्रतिसारितानि भगस्य संकोचविधायकानि ॥ १३ ॥
१० स्थूलगोधूमचूर्णस्य पलं कर्षार्धगैरिकम् ।
विनीय वारि सगुडे चक्षुतैले विपाचितान् ॥ १४ ॥
अपूपान् केवलानेव भक्षयित्वा नितम्बिनी ।
अपत्यं सुखतः सूते नात्र कार्या विचारणा ॥ १५ ॥
११ घृष्ट कुसुम्भिकामूलं द्व्यक्षं वा त्र्यक्षमम्भसा ।
गर्भसंगवतीं नारीं पाययेत् सुखसूतये ॥ १६ ॥
मौनी दिगम्बरो भूत्वा भेषजोत्पाटनं चरेत् ।
सकृद् द्विर्वा प्रदातव्यं मुक्तिः स्यादेकयामतः ॥ १७ ॥

का कवोष्ण लेप लगाकर गरम ईंट से स्वेदन करें। इससे- योनि-कण्डु, ग्रंथि तथा चर्म-विकार मिट जाते हैं ॥ ९ ॥ अच्छी तरह जमाये गये गव्य-दूध के दही की छाछद्वारा प्रक्षालन से दु सह योनि-शूल भी शीघ्र शांत हो जाता है ॥ १० ॥ तगर, कण्टकारी, भृंगीविष अथवा कूठ, सैंधव, देवदारु इनसे सिद्ध किये गये तैल से सिक्त कोष्ण फौहे को धारण करने से योनि प्रदेश-गत-तीव्र-शूल समूल नष्ट हो जाता है ॥११॥ शल्लकी के कांटे, हरिताल तथा सुधाचूर्ण को कदली रस में बारीक पीसकर गाढा प्रलेप करने से-युवतियों के योनि-परिसर के रोम-समूह का शीघ्र विलोप हो जाता है ॥१२॥ बीज निकाल कर माजूफल को सुरा में भिगोकर भू-गर्भ में गाड देवें। फिर, इनके बारीक चूर्ण को धारण करने से योनिसंकोचन होता है ॥ १३ ॥ गेहूं का स्थूल चूर्ण चार तोला, गैरिक आधा तोला-इनके चूर्ण को गुड के पानी में मिलाकर खूब मसल लेवें। फिर, एरंड तैल में तल कर इसके अपूप उतार लें। केवल इन अपूपों का भोजन करके, स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है। इसमें जरा भी विचार नहीं करना चाहिये ॥१४-१५॥ कसुम्भी (सकटक पीत पुष्पाबूटी) के दो या तीन तोलाभर मूल को पानी में अच्छी तरह घोटलें। सुख-प्रसव के लिये स्त्री को यह पिला देना चाहिये। वैद्य को

१-व्याघ्रनखी कण्टकारी। २-"कदली वारणवुषा" इत्यभिधानम्। ३-शौविदंशूकं शल्लकीकण्टकम्, आलं हरितालं, चूर्णं कलिकोत्थं, तैः कृतं चूर्णम्। ४-योनिपरिसरजातानि। ५-शीघ्रम्। ६-अधुना सुखप्रसवोपाया कथ्यन्ते। ७-सप्तम्यन्तम्। ८-कुसुम्भिका 'कसुमी' इति लोकख्यात क्षुपक ।

१२ धेनोः कुमार्याः पटपोट्टलीस्थं पुरीषमम्भोगलितं निपीय।
अपत्यमञ्जः प्रमदा प्रसूते श्रीजीवनाथस्य गुरोर्नियोगः ॥ १८ ॥
१३ अध्यर्धमासमर्धिके रजसि रजन्या दिवानिशं सुता।
प्रतिपद्यते प्रजाता जितकाञ्चनकुङ्कुमं रूपम् ॥ १९ ॥
१४ पिप्पली पिप्पलीमूलं गोधूमा इति वै त्रिकम्।
भ्राष्ट्रे पक्त्वा पृथक्कुर्याद्गोधूमेभ्यो द्वयं पुनः ॥ २० ॥
क्षोदं सगैरिकं कृत्या गुडद्रावेण लेहयेत्।
सूतिकानां ज्वरं हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ २१ ॥
१५ सततं परिपीय तक्रतो मिषिसौवर्चलजीरजं रजः।
अपि वन्ध्यवधूः पयोभरैः कुचयुग्मं विदधाति तुन्दिलम् ॥ २२ ॥
१६ शतावरी तन्दुलचूर्णजीरकैर्गवां पयोभिर्गिलितैर्निरन्तरम्।
पयः स्तनाभ्यां सुदृशां स्रवत्यलं गिरेर्यथा नैर्झरमम्बु शृङ्गतः ॥ २३ ॥

निर्वस्त्र होकर तथा मौन रहते हुये इस औषधि के मूल उखाडने चाहिये। आसन्न प्रसवा को यह औषधि एक या दो बार से अधिक नहीं पिलानी चाहिये। पीने के तीन घंटे पीछे ही इसके द्वारा प्रसव पीडा से मुक्ति मिल जाती है ॥१६–१७॥ मेरे पूज्य गुरुश्री जीवननाथजी का आदेश है कि 'गोवत्सा वछडी के गोबर को जल में घोलकर फिर वस्त्रपूत करके पीने से स्त्री को शीघ्र ही प्रसव होता है' ॥१८॥ हरिद्रा के ५१२ तोले सूक्ष्म चूर्ण में, डेढ मासपर्यंत रात-दिवस शयन करने से स्त्रीका वर्ण, स्वर्ण तथा केसर को भी पराजित करनेवाला, उत्तम हो जाता है ॥१९॥ पिप्पली, पिप्पलीमूल तथा गेहूं इन तीनों को एकत्र भाड में भूनलें। फिर, पिप्पली तथा पिप्पली मूल को गेंहू से पृथक् करके, इन दोनों का, थोडा गैरिक मिलाकर, चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को गुडद्राव (पिघले हुये गुड) के साथ चाटने से, सूतिका-ज्वर नष्ट हो जाता है, इसमें जरा भी विचार नहीं करना चाहिये ॥ २०–२१ ॥ सौंफ, सौवर्चल तथा जीरा इनके एकत्र चूर्ण को तक्र के अनुपान पूर्वक सतत पीते रहने से वन्ध्या स्त्री के भी कुच-युगल दुग्ध-भार से भर जाते हैं ॥ २२ ॥ शतावरी, चांवलों का चूर्ण तथा जीरा इनके एकत्र चूर्ण को गोदुग्ध के साथ निरंतर सेवन करने से, युवतियों के स्तन युगल से दूध की धारायें, ऊंचे पर्वत शिखर से निर्झर के जल-प्रवाह की तरह, प्रस्रवित होने लगती हैं ॥२३॥ काकवल्ली-फलके चूर्णकी,

१–गोवत्सायाः। २–इमे षट्शास्त्रशिक्षानिपुणाः साहित्यशास्त्रे गुरुगुरवो धर्मशास्त्रे मद्गुरवः पण्डिततल्लजाः गुरुभिर्वर्णिता जयपुरविलासे। यथा–"वादिप्रोढतमिस्रखण्डनविधौ मार्तण्डबिम्बोदयः, काणादादिसमस्तशास्त्रविपिनप्रोद्दामकण्ठीरवः। संसारव्यवहाररत्नजलधिर्वाक्सारिकापञ्जरः, क्षीराम्भोनिधिफेनपाण्डुरयशाः श्रीजीवनाथो गुरुः॥" ३–प्रसूताया विलासिन्याः सौन्दर्यातिशयोत्पादनप्रकारोऽयम्। ४–भ्राढके इत्यर्थः। ५–पिप्पलीपिप्पलीमूलचूर्णम्। ६–ईषद्गैरिकम्। ७–क्षीरवृद्ध्युपायः। ८–तन्दुलानामेव चूर्णम्।

१७ भुवनेन रंजो ललना कलयति या काकवल्लरीफलजम् ।
अनुभूय वमनरेकावपवादकर जहाति सा गर्भम् ॥ २४ ॥

— इति स्त्रीरोगचिकित्सितम् —

अथ बालरोगचिकित्सितम् ।

१ उदरापदनुत्पत्त्यै कुरङ्गकणिकां किरेत् कनकसूच्या ।
सद्योभवस्य नाभावालस्य मुदस्य बालस्य ॥ १ ॥

२ व्यतिक्रान्तैकशरदं शिशुमाश्वास्य नीरुजम् ।
स्कन्धादधः सुधापाणिः समुल्लिख्य शलाकया ॥ २ ॥
दत्त्वा सुजातविस्फोटच्छल्कं वारिपेषितम् ।
सर्वथा वर्जयेत् स्त्रीणामशुद्धानां गतागतम् ॥ ३ ॥
ज्वरपूर्वस्ततः स्फोटो जायते सौम्यदर्शनः ।
तस्मिन् पतति संशुष्य निर्दिशेच्छीतलार्चनम् ॥ ४ ॥

जल-सह फाकी लेने से, निन्दित-गर्भ स्रवित हो जाता है। इस चूर्ण से तीव्र वमन पूर्वक विरेचन होता है। इस चूर्ण की मात्रा तीन छह माशा से अधिक नहीं है ॥२४॥

— स्त्रीरोग चिकित्सा समाप्त —

— बालरोग चिकित्सा (कुल प्रयोग ३२) —

सद्योजात शिशु की नाल काटते समय आलस्य को निरस्त करके (अर्थात् तत्काल ही) उसके नाभि-प्रदेश में, उदर विकार की अनुत्पत्ति के लिये, स्वर्णसूचिकाद्वारा कस्तूरी के कण विकीर्ण करने चाहिये ॥ १ ॥ टीका लगाने का स्वानुमत प्रकार —बालक जब एक वर्ष का हो जाये, तब यदि वह स्वस्थ हो तो, आश्वासन देते हुये कुशल वैद्य उसके स्कधप्रदेश से नीचे भुजा को स्वर्णशलाका से गोदकर एक वर्तुलाकार विस्फोट बनाकर उसे, पहिले से सुरक्षित 'शुष्क मसूरिका स्फोट त्वक् चूर्ण' को पानी में पीसकर, मल देवे। ऐसे समय, शिशु के शयनकक्ष में, ऋतुमती, अस्नात एवं अशुद्ध स्त्रियों के आवागमन को सर्वथा रोक देना चाहिये। तदनन्तर, प्राय २–३ दिनमें शिशु के भुजागत उत्कीर्ण-प्रदेश पर ज्वरपूर्वक एक सौम्य आकृति का स्फोट उत्पन्न होगा। यह विस्फोट कुछ शमित होकर जब सूख जाये, तब 'शीतला' की अर्चना करनी चाहिये। इस तरह करने से, बालक को कभी शीतला रोग नहीं होगा। और कदाच् हो भी जाये

१–मयाणाधिक न देयम्। अस्य विशेषव्याख्यान न स्फुटीक्रियते भ्रूणहत्याप्रसङ्गात्। अभिधानं चास्य गर्भिण्या एतादृशतीक्ष्णवस्तुभ्यो रक्षणार्थम्। २–पूर्वाधिकारे गर्भोत्पादोपाय प्रदर्शितो गर्भस्यैव च बहिर्निःसृतस्य 'बाल' इति सज्ञा, "स जातो बाल उच्यते" इत्यादिवचनात्, अतस्तद्रोगाधिकारस्य वक्तुमौचित्यमेवेति। ३–कस्तूरीकणिकामित्यर्थ। ४–द्वीपान्तरीयवैद्यैर्डाक्टरसंज्ञैर्लोकप्रचारितस्य दृष्टफलत्वाच्च स्वानुमतस्योपायस्य प्रदर्शनमेतत्। ५–कृतयोग्य इत्यर्थ ॥

एवं कृते विधौ भूयः शीतला नैव संभवेत् ।
यदि जातु भवेत् क्वापि तदा स्याद्विरलोदया ॥ ५ ॥
३ यूकां विपोथ्य नखतस्तदसृग्लिप्तनखधावनाम्बु मनाक् ।
अविचारयन् ददीत प्रेक्ष्य कृती शीतलाविकृतिम् ॥ ६ ॥
४ जलैः सपथ्यं[1] विषनारिकेलं[2] विघृष्य दद्यात् खलु शीतमेव ।
प्रदुष्टरक्तक्रिमिशोणभावविस्फोटपीडाशमनं शिशुभ्यः[3] ॥ ७ ॥
५ मिषितन्मूलजन्तुघ्नकृतमालमृकण्डजाः ।
हरीतक्यौ[4] वचाञ्जीरयवानीतरुणीसुमम्[5] ॥ ८ ॥
पलाशबीजमृद्वीकाहवुषा[6]गुडटङ्कणम् ।
सौवर्चलप्रतीवापा बालानां जन्मघुण्टिका[7] ॥ ९ ॥
६ संचूर्ण्य सर्पिषि शनैः परिभर्ज्य जाती-
मायाफलानि[8] कवलग्रहसंसितानि ।
दृष्टीन्दुतिन्दुकसिताशबलानि दुग्धै-
र्दद्यात् प्रगे बलचमत्कृतये शिशुभ्यः ॥ १० ॥
७ सौवर्चलप्रचारं जलमुष्णं कृष्णकोकिलादलजम्[11] ।
वान्ति मुहुरुद्वाव्य श्लेष्माणं हन्ति बालानाम् ॥ ११ ॥

तो वह अल्पवेग वाला ही होगा ॥ २–५ ॥ शीतला की विकृति को देखते ही, कुशल वैद्य, जूं को नख से मसलकर, तत्-रक्त-लिप्त-नख के धावन का थोडा पानी, बिना शंका किये, शिशु को पिला देवे ॥ ६ ॥ वजनदार हरडे तथा जहरी खोपरे (दरियाई नारियल) को जल में घिसकर, बालकों को (युवाओं को भी) शीतल ही सेवन कराने से दूषितरक्त, क्रिमि, रक्तचाठे, विस्फोट तथा पीडा आदि का शमन होता है ॥ ७ ॥

सौंफ, सौंफके मूल, वायविडंग, अमलतास, सनाय, छोटी-बडी हरडे, वचा, अंजीर, अजमोदा, गुलाब पुष्प, पलाशबीज, मुनक्का, उन्नाब, गुड और टंकण इनमें सौवर्चल ऊपर से और मिलादें । बालकों के विकार शमन के लिये यह 'जन्म-घुण्टिका' है ॥ ८–९ ॥ एक 'कर्ष' प्रमाण में जायफल तथा मांजूफल लेकर, उनका एकत्र चूर्ण बनालें । इस चूर्ण को धीरे धीरे घी में भूनें । इस चूर्ण को, बारह तोले-भर मिश्री चूर्ण से मधुर करलें, फिर एक मासा की मात्रा में दूध के साथ प्रातःकाल, बालकों को, बल वृद्धि के लिये, देवें ॥१०॥ कालीकोइल के (एक चम्मच भर) पत्र-स्वरस में थोडा (दो रत्तिभर) कालानमक मिलाकर उसको कवोष्ण सेवन कराने से, बालकों का, पुनः पुनः वमनपूर्वक, कफ नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥ कफप्रधान खांसी यदि

१–पथ्या हरीतकी, सा च गुर्वी ग्राह्या । २–लोके जहरीखोपराभिधम् । ३–उपलक्षणमिदं, तेन महद्भ्योऽपि देयम् । ४–द्विवचनेन बृहत्स्वल्पभेदाद्द्विविधहरीतकीग्रहणम् । ५–गुलाबपुष्पम् । ६–हवुषाशब्देनात्र लोके 'उन्नाब' इति लोकप्रसिद्धस्य बदरविशेषस्य ग्रहणम् । ७–योगस्यास्य लोके 'जन्मघुण्टी' इति संज्ञा । ८–जातीफलानि मायाफलानि च ।

८ बलासोल्लासित कासो बालानाकुलयेद्यदि ।
रसोनसंभवं भस्म दीयतां कासघस्मरम् ॥ १२ ॥

९ स्नुहुण्डदण्डमुत्कीर्य तीर्ण्णे न्यस्य पिधाय च ।
त्र्यहं संस्थाप्य तदनु तस्य कोकिलमाचरेत् ॥ १३ ॥
बल्लोन्मानं रजस्तस्य सितया शिशुकासजित् ।
अनुपेयं पयः शीतं योगोऽय दुर्लभः परम् ॥ १४ ॥

१० उत्फुल्लिकासमुद्रेके किमन्यैरौषधैरिह ।
एकैव रोचना धात्रीक्षीरैर्घृष्ट्वा प्रदीयताम् ॥ १५ ॥

११ ध्वस्तोदरश्वसनकासविपद्गणानि
पिष्ट्वा लवङ्गतुलसीदलटङ्कणानि ।
संपाययेत् कफकृतज्वरकर्षणानि
बालान् प्रदर्श्य वरकाञ्चनकङ्कणानि ॥ १६ ॥

१२ स्फुटसौभाग्यस्फटिकारजोभिराक्तं स्तनं पयोमृदितै ।
अतिकासक्लेशवते धात्री बालाय वत वितरेत् ॥ १७ ॥

बालकों को बेचैन कर देती हो तो लहसुन की जलाकर उसकी भस्म ½ रत्ती दीजिये। यह खासी को मिटा देती है ॥ १२ ॥ स्नुही-काष्ठको उत्कीर्ण करके उसमें मरिच के दाने रख पूर्ववत् बंद करदें। इन मरिच दानों को इसी तरह तीन दिवस पर्यंत रहने दें। फिर निकालकर, जला करके इनके कोयले बनालें। इनकी इस भस्म को एक वालभर मिश्री के साथ देवें। यह बालकों की खासी मिटा देती है। इसके ऊपर शीतल दूध पिलाना चाहिये। यह योग परम दुर्लभ अवएव सद्य फलदायी है ॥१३-१४॥ बालकों के उत्फुल्लिका विकार की तीव्रता में अन्य औषधियोंसे क्या प्रयोजन ? केवल एक ही गोरोचना को माता के दूध में घिसकर पिला दीजिये ॥ १५॥ उदरविकार, श्वास, कास आदि विपद्-समूह को ध्वस्त करनेवाले, तथा कफ-जन्य-ज्वर को जर्जरित कर देनेवाले लवंग, तुलसीपत्र तथा टंकण के चूर्ण को पानी में मिलाकर, बालकों को स्वर्णकंकण दिखाते हुये (अर्थात् उनका ध्यान बदलते हुए) पिला दीजिये ॥ १६ ॥ तेलिया-टंकण तथा स्फटी दोनों को फुलाकर चूर्ण बनालें। एक तण्डुलमान इस चूर्ण को माता के दूध में घिसकर, उसका प्रलेप माता के स्तनों पर कर दें। फिर लेप के शुष्क होने पर, माता अपने इन स्तनों को, कास से अत्यंत पीडित बालक को पिलाये ॥ १७ ॥

९-द्वादशरूपमितसितासहितानि । १०-प्रात । ११-कृष्णकोकिला 'कालीकोइल' इति ख्याता वल्ली, तस्याः पत्रज स्वरसम्। सैव विष्णुकान्ताशब्देनाभिधीयते इति केचित् ।

१-मरिचम् । २-उत्फुल्लिका द्वितीयगुच्छाभिहितलक्षणो रोगविशेष । ३-वरकाञ्चनकङ्कणानि प्रदर्श्येति लोभनप्रक्रिया । ४-अग्निफुल्ल कलादोपयोगि टङ्कण, फुल्ला श्वेतस्फटिका, तयो रजोभिराक्त लिप्तम् । ५-धात्रीदुग्धमृदितै । मात्रा तन्दुलमाना ।

१३ उष्णच्छगणभस्मान्तर्युतपीतार्कपत्रजः।
उत्फुल्लिकाकफध्वंसी रसो माक्षिकसाक्षिकः ॥ १८ ॥
१४ घृष्ट्वा मदनबीजानि पयोभिर्लवणोत्तरैः।
कोष्णीकृत्य कफोद्रेके वमनार्थं प्रयोजयेत् ॥ १९ ॥
१५ दन्तीबीजदलाढ्यं माषं नारायणस्य चूर्णस्य।
तुलितं सलिलैरुष्णैरुत्फुल्लीं हन्ति वान्तिरेकाभ्याम् ॥ २० ॥
१६ हिङ्गूलजातीफलजातिपत्रिकागोरोचनाभिर्जयपालकं समम्।
विभाव्य निम्बूकरसैः कृता गुटीरौत्फुल्लिके बालगदे गदन्ति २१
१७ पुररसबद्धविशालाफलगर्भवटीं पटीयसीं दद्यात्।
द्वित्रिपवित्रैरुष्णैर्गोमूत्रैः फुल्लिकाभेदे ॥ २२ ॥
१८ टङ्कणलवणकणोषणवन्ध्याकङ्कुष्ठहिङ्गुसंवलितः।
शमयति दर्भं भ्राष्ट्रस्विन्नपीकास्नुहीस्वरसः ॥ २३ ॥
१९ पुटस्विन्नस्नुहीकाण्डस्वरसो रसशाणिकैः।
गौरीकङ्कुष्ठकस्तूरीपटुगर्भोऽस्ति दर्भभित् ॥ २४ ॥
२० आर्द्रकजैः करणीया नीरैर्नेपालमरिचयोर्गुटिका।
कफतन्तुजालगर्भं दर्भमदभ्रं भिनत्ति बालानाम् ॥ २५ ॥

कंडों की गरम गरम राख में आकडे के पीत-पत्र को स्विन्न करके रस निकाल लेवें। फिर, २-३ बिन्दुमात्र इस रस में थोडा शहद मिलाकर पिलाने से बालक की उत्फुल्लिका तथा कफ नष्ट हो जाते हैं ॥ १८ ॥ लवणोदक से मदन-फल के बीजों को घिसकर, कवोष्ण करके, कफाधिक्य में, वमनार्थ प्रयोग करें ॥ १९॥ शुद्ध दन्ती-बीज के एक दल को एक माषाभर नारायण चूर्ण में मिलाकर, कवोष्ण करके लेने से, वमन तथा विरेचन पूर्वक, उत्फुल्लिका नष्ट हो जाती है ॥ २० ॥ हिंगुल, जायफल, जावित्री तथा गोरोचन एवं इन सबके एकत्र वजन के समान शुद्ध जयपाल, इनको निंबू-रस की सात भावना देकर खरल करलें। इनकी सर्षप समान गुटियां, उत्फुल्लिका नामक बाल-रोग में वैद्यों द्वारा प्रशंसित हैं ॥२१॥ विशाला-फल (इन्द्रवारुणी) के गूदे को, गंधक पारद की कज्जली में मिलाकर खरल करके वटिका बांधलें। उत्फुल्लिका विकार में प्रभावशाली इस वटी को दो तीन बार वस्त्रपूत-उष्ण-गोमूत्र के साथ दीजिये ॥ २२ ॥ भट्टी में स्विन्न करके तुलिया थोर में से निकाले गये स्वरस में टंकण, लवण, पिप्पली, मरिच, गोरोचन, उसारे रेवन तथा हींग मिलाकर, खरल करके उपयोग में लें। इससे उत्फुल्लिका रोग शमित होता है ॥ २३ ॥ संपुट में स्विन्न करके स्नुही-कांड से निकाले गये अठारह माषा रस में, गोरोचन, कंकुष्ठ, कस्तूरी तथा सैंधव इनके चूर्ण को खरल करलें। यह उत्फुल्लिका को नष्ट करता है ॥२४॥ शुद्ध नेपाळ (जयपाल) तथा मरिच को आर्द्रक रस में खरल करके गुटिकायें बनालें। ये

१-सर्वत्रायुर्वेदे प्रसिद्धस्य। २-वैद्या इत्याक्षिप्यते। ३-वन्ध्या गोरोचना। ४-उत्फुल्लिकायाः संज्ञान्तरमिदम्। ५-षट्शाणप्रमाणः। ६-गोरोचना। ७-नेपालं दन्तीबीजम्।

अथ विषचिकित्सितम्।

१ मारीचकन्दकर्षं जलेन पीतं निहन्त्यहेः क्ष्वेडम्।
२ तद्वदथ बर्हिणाण्डत्वचोऽपि मरिचैः समं पीताः ॥ १ ॥
३ यन्त्रेण लघु निपीतो बोधिद्रुममूलवल्कजो धूमः।
वृश्चिकविद्धस्य परं वान्तिद्वारा सुखं धत्ते ॥ २ ॥
४ पृदाकुभुग्गरुद्धूमं यन्त्रेण पिबतो नरात्।
शीघ्रमेवावतरति शूककीटमहाविषं ॥ ३ ॥
५ त्र्यंशा हरितालस्य त्वेकांशः सागरस्य च।
पिष्ट्वाऽर्कपयसा लेपो वृश्चिकार्तिं व्यपोहति ॥ ४ ॥

— विषचिकित्सा (कुल प्रयोग २२) —

एक कर्ष-भर नागपहाड़ीकन्द को जल में घोलकर पीने से एक ही दिन में सर्प-विष उतर जाता है। नागपहाड़ी को मरिचयाकन्द भी कहते हैं। यह स्नुही थोर में से उत्पन्न होता है। एक अथवा आधा तोलाभर लेकर उसका कल्क करके ८ या १२ तोला पानी में घोलकर पिलाना चाहिये। गोधा-दंश में इसका नस्य लेना चाहिये। तैल-अम्ल-प्रभृति अपथ्य तथा घृतादिक द्रव-पदार्थ पथ्य हैं। इस कंद में से यदि रस न निकले तो जल में पीसकर स्वरस बना लेना चाहिये। नस्य के लिये इसी रस को उपयोग में ले। सर्प-दंश में, तीन घंटे के भीतर भीतर इसका प्रयोग हितावह है। गोधादंश में एक मुहूर्त के अन्दर ही नस्य लेने का विधान है। इसी तरह, मोर के अंडे की छह मापाभर ऊपरी त्वचा को २१ काली मरिच के चूर्ण में मिलाकर ४५ पैसेभर पानी के साथ पीने से सर्प-विष शमित हो जाता है ॥ १ ॥

पिप्पल-वृक्ष की मूल-त्वक् की धूम को हुक्केद्वारा पीने से, वृश्चिकदंश पीड़ित को, वमन-पूर्वक, शांति मिलती है ॥२॥ मयूर-पिच्छ की धूम को हुक्के द्वारा पीने से शूक-कीट (वृश्चिकविशेष) का महाविष शीघ्र उतर जाता है ॥३॥ हरिताल तीन भाग, नव-सादर एक भाग, दोनों को आकड़े के दूध में पीसकर लेप करने से वृश्चिक विष की पीड़ा

१—पारिशेष्यादधुना विषचिकित्सितम्। तत्र महाफलस्य कस्यापि कन्दस्यादौ प्रयोगः।
२—मरिचयाकन्दनाम्ना प्रसिद्धः, स च सेहुण्डगुल्मसंभवो ग्राह्यः। अस्य प्राकृतपर्यायान्तरं 'नागपहाडी' इति। ३—पानप्रक्रिया च कर्षं कर्षार्धं वा कन्दखण्डं कल्कीकृत्य द्वित्रिपल-जलेन सघोल्य पुरुषं पाययेत्। गोधादष्टे एतत्कन्दरसेन नस्यं दातव्यम्। तैलाम्लवर्जं घृतादिकं द्रवप्रायं पथ्यम्। नावने च स्वरसासंभवे जलेन पिष्ट्वा कार्यं स्वरसम्। सर्पदंशे प्रहरयामाभ्यन्तर एव देयो, गोधादंशे च मुहूर्ताभ्यन्तरं इति। ४—षण्मापिका। मरि-चान्यत्रैकविंशतिसंख्यानि। पानं च चतुःपञ्चाशट्टङ्कमितजलेन। ५—हुक्कायन्त्रेण। ६—मयूरबर्हधूमम्। ७—वृश्चिकाख्यो जन्तुविशेषः। ८—नवसादरस्य।

६ कपिशाखुमारसागरदन्तीवीजानि निम्बुपिष्टानि[1]।
लिप्त्वा[3] दंशमुखोपरि वृश्चिकविद्धः सुखं शेते॥ ५॥
७ दत्तं दंशमुखोपरि सलिलेन मनाग्विघृष्य कतकफलम्।
कृतजीवितसंशयमपि विषशूकविषं विशिष्य चूषयति॥ ६॥
८ कटुशर्करकन्दीकृतलेपो[4] वृश्चिकविषं निहन्तितराम्।
करुणाशंकरगुरुणा करुणावरुणालयेन कथितं मे॥ ७॥
९ दक्षे वृश्चिकदंशश्चेद्वामे कर्णे द्रुतं भर।
वामेऽङ्गे यदि तद्दंशो दक्षे सलवणं जलम्॥ ८॥
१० सोम[5]स्वर्णक्षीरीमूलं संनीय मोदका गुडतः।
कुक्कुरदंष्ट्रागरलं हरन्ति पथ्याशिभिस्त्र्यहं गीर्णाः॥ ९॥
११ हेमाह्वामूलहेमानि[6] प्रायस्त्र्यंशमरिचान्यहो[7]।
शरावतक्रपीतानि[8] घ्नन्त्यलर्कविषं[9] भृशम्॥ १०॥

दूर हो जाती है॥४॥ पीतवर्ण-शत-मल्ल(संखिया), नवसादर तथा नेपाल-बीज इनको निंबू रसमें खरल करलें। दंशमुख पर इसका लेप करके फिर अंगार-ताप से सेक करें। इससे वृश्चिक-दष्ट व्यक्ति सुखपूर्वक सोता है॥५॥ कतक-फलको जलमें थोडा घिसकर दंशमुख पर रख दें। यह जीवन को संशय में डाल देनेवाले शूक-विष को चूस लेता है॥ ६॥ कटु-शकरकन्दी का लेप वृश्चिक-विष को नष्ट कर देता है। इस प्रयोग को मुझे करुणा के सागर गुरु करुणाशंकर ने बताया है। कडवी शकरकंदी स्वनाम प्रसिद्ध कोटर छिद्रवाली एक शाक जातीय द्रव्य है। यह आकृति में सामान्य शकरकंदी से मिलती जुलती है। इसको छाया-शुष्क कर के उपयोग में लेवें॥ ७॥ शरीर का वाम भाग यदि वृश्चिकदंश से दष्ट हुवा हो तो दाहिने कान में, और यदि दक्षिण भाग दष्ट हुआ हो तो वामकर्ण में, शीघ्र ही सजल-लवण भर देना चाहिये॥ ८॥ बावची तथा स्वर्णक्षीरी-मूल एक एक माषा भर लेवें। इनके, गुड मिलाकर, मोदक बनालें। यह एक मात्रा है। पथ्य में रहते हुये तीन दिवस पर्यंत एक एक मात्रा लेने से श्वान-दंष्ट्रा-जन्य विष उतर जाता है॥ ९॥ स्वर्णक्षीरी-मूल ग्यारह अथवा बारह

१—कपिशाखुमारः पीतशतमल्लः। २—नास्ति प्रायोऽत्र निम्बुकापेक्षा। ३—लेपानन्तरमङ्गारताप इति शेषः। ४—"कडी शकर कन्दी" इति प्रसिद्धा सकोटरच्छिद्रा भवति। साच छायाशुष्का ग्राह्या। ५—सोमः लोके "बापची" इति ख्यातः। उभाभ्यां पृथक् माषो ग्राह्यः। इयमेकदिनमात्रा। ६—हेमाह्वामूलस्य स्वर्णक्षीरमूलस्य हेमानि माषकाः। प्रायश्चैकादशधा द्वादश माषका ग्राह्याः। ७—सप्तमरिचानि। ८—पादोनप्रस्थतक्रपीतानि वा। दंशदिनमारभ्य पञ्च दिनानि यावत्पानम्। ९—कौक्कुरं विषम्। पथ्यं तैलाम्लादिवर्जं किंच द्विमासपर्यन्तं कटाहसिद्धान्नमपि वर्जयेत्। अनेनैव योगेन वमनविरेचनद्वारा विषमशेषं निःसरिष्यति।

१२ हरिद्वनितभित्तानि रूप्यहेमानि पेपयेत् ।
गोगुणे गुडसुन्मिश्र्य चतस्रः कल्पयेद्वटीः ॥ ११ ॥
गिलेत्रिसन्ध्यमेकैका श्वदष्टः शीतसंवरे ।
क्षरन्ति जन्तवो मूत्रे यावत्तावदयं विधिः ॥ १२ ॥
१३ नासानिर्यासमर्दनाद्दंशोपरि पुनः पुनः ।
द्रुणादिनैकीटानां विषं वर्तरति द्रुतम् ॥ १३ ॥
१४ सहस्रपुष्पवृक्षस्य पत्रकल्कविघर्षणात् ।
वरटीदंशदाहार्तिर्दुःसाध्यापि प्रणश्यति ॥ १४ ॥
१५ लूतां हन्ति घुणोत्कीर्णवेणुरेणुप्रगुण्ठनम् ।
प्रतिष्ठामिव लोकस्य विटगोष्ठीनिषेवणम् ॥ १५ ॥
१६ कवलः कोष्णकूरस्य प्रत्यहं नूतनो धृतः ।
सिंहदंष्ट्राविषं हन्ति जाग्रतां नात्र संशयः ॥ १६ ॥

माशा तथा सात मरिच इनके चूर्ण को बत्तीस तोला तक्र के साथ पीने से श्वान का उग्र विष भी शांत हो जाता है। दश दिवस से लेकर पांच दिवस तक यह पेय लेना चाहिये। तैल अम्लादि अपथ्य है, दो मासपर्यंत कटाहसिद्ध द्रव्य वर्ज्य है। इसके प्रयोग से वमन विरेचनद्वारा सपूर्ण विष बाहर निकल आता है ॥१०॥ हरी बनात के टुकड़े बारह माषा लेकर तिगुने गुड़ में मिलाकर चार वटिकायें बना ले। फिर, दिवस के तीनों संधिकाल में एक एक वटिका को पानी के साथ, श्वान दष्ट व्यक्ति निगल जाये। जब तक मूत्र-द्वारा जन्तुओं का निकलना बंद न हो जाये तब तक यह प्रयोग चालू रखना चाहिये। दसवें श्लोक के अनुवाद में उल्लिखित पथ्य का पालन करना चाहिये ॥ ११–१२ ॥ नासिका-मल (श्लेष्म) को दष्ट-स्थान पर पुनः पुनः मलने से वृश्चिकादि विविध क्षुद्र कीटों का विष शीघ्र उतर जाता है, दूर हो जाता है ॥ १३ ॥ गुल हजारा वृक्ष के पत्र कल्क को दष्ट स्थान पर मलने से मक्षिका, भ्रमरी आदि के दंश से उत्पन्न दाह का दुःसाध्य दुःख भी दूर हो जाता है ॥ १४ ॥ घुण लग जाने के कारण बांस में से गिरी हुई धूलि को दंशपर घिसने से लूता-विष, भडवों की संगति करने से लोक प्रतिष्ठा की तरह, नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥ खिन्न चावल के प्रतिदिन नूतन कवोष्ण कवल को लगाने से तथा जागते रहने से सिंह-दंष्ट्रा का विष नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

१–"हरीबनात" इति ख्यातायाः खण्डानि। २–द्वादश माषाणि। ३–त्रिगुणम्। ४–अनापि पथ्य पूर्वोक्तमेव। ५–नासानिर्यासो नासामलः श्लेष्मरूपः। ६–वृश्चिकादि-विविधक्षुद्रकीटविशेषाणाम्। ७–आगुरिमतेनाकारलोपः। ८–'हजारा' इति ख्यातस्य। ९–वरटी मक्षिका भ्रमरी वा। १०–कवोष्णभक्तस्य।

१७ शुण्ठ्यञ्जिताम्बुसंघृष्टा धत्तूरमदहारिणी ।
१८ वृन्ताकपर्ण[1]निर्यूहस्तद्वदेव समर्थितः ॥ १७ ॥

१९ अतिमात्रं फणिफेने भुक्ते शस्ता वमिः शिलया[2] ।
२० किं च शुकबीजपुञ्जं[3] फणिफेनं मृत्तिकीकुरुते ॥ १८ ॥

२१ अष्टांश[4]सूर्यचरणत्वचि नल्वणेऽपा-
मावर्तनेन[5] खलु तस्थुषि पादशेषे ।
सन्तानिका तरति या विषमुष्टिकानि[6]
प्रक्षिप्य तत्र वटिका फणिफेनमुक्त्यै ॥ १९ ॥

२२ दूर्वाङ्कुरघटितवटी शनकैः संचर्व्य पीतरसा ।
भङ्गामदभङ्गाय प्रकल्प्यते वान्तिमुद्भाव्य ॥ २० ॥

शुण्ठी को पानी में घिसकर अंजन करने से धत्तूर-मद दूर होता है। वृन्ताकपत्र-क्वाथ के अंजन से भी यही लाभ होता है ॥ १७ ॥ अतिमात्रा में अफीम खा जानेवाले को मनःशिला द्वारा वमन कराना प्रशस्त है। अथवा सूवा के बीज अफीम को मिट्टी तुल्य बना देते हैं ॥ १८ ॥ एक मण पानी में-उससे आठवां भाग अर्क-मूल डालकर-खूब उकालें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छानलें। जब क्वाथ स्वांग शीतल हो जाये तब उसपर जमी हुई थर को निकाल उसमें शुद्ध कुचले का थोडासा चूर्ण मिला अच्छी तरह खरल करके वटिकायें बनालें। इनके सेवन से अफीम खाने की आदत से मुक्ति मिल जाती है ॥ १९ ॥ दूर्वा के अंकुरों को पीस कर वटी बनालें। इस वटीका धीरे धीरे चबाकर, रस पीयें, इससे वान्तिपूर्वक भांग का नशा दूर हो जाता है ॥ २० ॥

१—वृन्ताकपत्रक्वाथः । २—मनःशिलया । ३—'सुवा' इति ख्यातस्य शतपुष्पा-भेदस्य बीजपुञ्जम् । ४—यस्य फणिफेनमौचित्यं गमितं तस्य तत्त्यागोपायोऽयम् । मुनि-नाप्युक्तं "उचितादहिताद् धीमान् क्रमशो विरमेन्नरः । हितं क्रमेण सेवेत क्रमश्चात्रोपदि-श्यते ॥ प्रक्षेपापचये ताभ्यां क्रमः पादांशिको भवेत् । एकान्तरं ततश्चोर्ध्वं द्व्यन्तरं त्र्यन्तरं तथा" इति । अष्टांशा सूर्यचरणस्यार्कमूलस्य त्वग्वल्कलं यस्मिन्निति नल्वणविशेषणम् । ५—क्वथनेन । ६—'कुचिला' इति प्रसिद्धानि । किं चास्मिंस्तन्त्रे विषमुष्टिकशब्देन सर्वत्र 'कुचिला' इति ख्यातस्यैव ग्रहणमिति संकेतः । ७—स्पष्टमिदम् । यशश्छटा मे परितः प्रसर्पेत् तृप्येद्धनं वीक्ष्य घनं मनो मे । एवं सखे ! वाञ्छसि तत् प्रयच्छ स्वच्छन्दतः कञ्चि-दपि प्रयोगम् ॥ यः प्राचां भिषजां विवेद महितास्तिस्रोपि ताः संहिताः साहित्यं च सधर्मशास्त्रमभितः स्वच्छन्दवाक् छन्दसि ॥ लक्ष्मीरामसुधीः स एष भिषगाचार्यप्रतिष्ठां वहन् श्रीभैषज्यमणिस्रजो विवृतवान् गुच्छं चतुर्थं परम् ॥

श्रीलछुरामात्मजकुन्दनाद्यो लेभे जनिं कृष्णकवेर्हि तस्य ।
भैषज्यरत्नस्रजि सद्गुणाया गुच्छश्चतुर्थोऽयमवाप पूर्तिम् ॥ २१ ॥

इति सिद्धभेषजमणिमालायां चतुर्थो गुच्छः ।

श्रीलल्लुराम के पुत्र श्रीकुन्दनराम जी से उत्पन्न श्रीकृष्णराम महाकवि-कृत-सद्गुणयुक्त सिद्धभेषजमणिमाला का यह चतुर्थ गुच्छ सपूर्ण हुआ।

सर्वत्र मेरा यश व्याप्त होवे, धनाप्तिसे हो मम चित्त तृप्ति ।
हे मित्र ! ऐसा यदि चाहते हो, प्रयोग कोई उपयोग में लें ।

(उपरोक्त हिंदी-पद्य, टिप्पणीकार श्रीलक्ष्मीरामस्वामीजीद्वारा विरचित इस गुच्छ के समाप्ति-श्लोक का, अनुवाद है।) ॥ २१ ॥

— इति चतुर्थो गुच्छः —



अथ पञ्चमो गुच्छः ।

गतवयसामपि मारद[1]मभिसारद[2]मेकमेव सिद्धीनाम् ।
पारदमामयपारदमुदय[3]व्यापारदं भजे भिषजाम् ॥ १ ॥
रसा[4]ङ्कुशां नमस्कृत्य महाव्याधिगजाङ्कुशाम् ।
श्रीकृष्णः सद्यशस्तृष्णो व्याचष्टे रससंस्क्रियाम् ॥ २ ॥
१ सिक्[5]थे संनीय दरदं कृता वर्तिः स्वयुक्तितः ।
प्रज्वालिता रसं शुद्धं क्षरत्येव न संशयः ॥ ३ ॥
२ शरावगर्भे दरदं पटावृतं प्रज्वाल्य तन्मूर्ध्नि निधाय खर्परम् ।
गृह्णीत शुद्धं रसमम्लमर्दितं ददीत भैषज्यविकल्पनासु ॥ ४ ॥

— पांचवां गुच्छ —

वृद्ध पुरुषों को भी काम-शक्ति अर्पण करने वाले, खेचरत्व तथा अजरामरत्व आदि सिद्धियों की प्राप्ति के एकमात्र साधन, विकारों से मुक्ति देनेवाले तथा दारिद्यादि की निवृत्ति-पूर्वक वैद्यों का अभ्युदय करनेवाले पारद का ध्यान करता हूं ॥ १ ॥

महाव्याधिरूपी गज के लिये साक्षात् अंकुशरूपिणी महादेवी-रसाङ्कुशा को नमस्कार करके, सुयशकी कामना से, मैं, वैद्य श्रीकृष्ण, रस-संस्कार क्रिया का विशिष्ट व्याख्यान करता हूं ॥ २ ॥

मधूच्छिष्ट में हिंगुल मिलाकर, युक्तिपूर्वक, वर्ति-मोमबत्ती-बनालें। इस वर्ति को प्रज्वलित करने से, इसमें से शुद्ध पारद निकल आता है। इसमें शंका नहीं ॥३॥ हिंगुल को वस्त्रखंडों में लपेटकर शराव में रखदें। इन वस्त्रखंडों को प्रज्वलित करके उसपर मिट्टी

यस्मिन् भवोद्भवाभावौ भवनं विभवस्य यः । भूतिभव्यः स भवतां भवताद्भूतये भवः ॥ १ ॥ अथ खलु निखिलायुर्वेदपारङ्गमा हृदयङ्गमकविताप्रसारानुरञ्जितरसिकजना जनतानुजेगीयमानयशोगीतिराशयो रसविद्याप्रवीणा विद्वज्जनधुरीणाः श्रीगुरवः सिद्धभेषजमणिमालायां निबध्य विहतविविधसाध्यव्याधिसरणीन् योगमणीनधुनाऽसाध्यव्याधिष्वप्यप्रतिहतगुणप्रसारान् कतिचिद्रसप्रकारान् प्रदर्शयन्तो रसगुच्छमेव तावन्निबध्नन्ति । तत्रादौ पारदवन्दनं गतवयसामित्यादि । १—कामदम् । २ खेचरत्वादीनाम् । तत्राप्यत्र प्राधान्येन शरीरसिद्धिरेवाभिमता । यदुक्तम्—"आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् । श्रेयः परं किमन्यच्छरीरमजरामरं विहायैकम्" । अजरामरकर्तृत्वं च रसस्य सुप्रसिद्धमेवेति । यथा "एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते" इति । ३—तथा च रसध्यानं "सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्यमिदं जगत् । रसध्यानमिदं प्रोक्तं ब्रह्महत्यादिपापनुत् ॥" इति । ४—एतन्नाम्नीं महादेवीम् । तदुक्तं रसरत्नसमुच्चये "तस्योत्सङ्गे महादेवीमेकवक्त्रां चतुर्भुजाम् । अक्षमालाङ्कुशं दक्षे वामे पाशाभयं शुभम् ॥ दधतीं तप्तहेमाभां पीतवस्त्रां विभावयेत् । वाङ्मयीं श्रीकामराजशक्तिबीजां रसाङ्कुशाम्" । इति । ५—इतः प्रभृति दरदात् पारदाकृष्टयै चतुरः प्रकारान् दर्शयन्ति । सिक्थं मधूच्छिष्टम् ।

३ रजनीहिङ्गुलगर्भां प्रज्वाल्य स्थालिकापुटे पटवर्तिम् ।
निष्कासयेद्विधिज्ञः सूतेन्द्रं सर्वयोगार्हम् ॥ ५ ॥

४ उपरिन्युब्जशरावे घटे तलोत्कीर्णजालविशदनिले ।
वेष्टितचतुर्गुणपटं प्रदीप्य दरदं गृहाण रसमच्छम् ॥ ६ ॥

अथ पारदशोधनम् ।

पारदं दरदाकृष्टं सम्पूज्य शुभवासरे ।
गुणाधानं प्रकुर्वीत विधानं तस्य वक्ष्यते ॥ ७ ॥

का ठीकरा ढकदें । इस प्रकार शुद्ध पारद को निकालकर, अम्लादि द्रव्यों से तरल करके इसका औषधादि निर्माण में उपयोग करें ॥ ४ ॥ हरिद्रा तथा हिंगुल को वस्त्रपट्टियों में अच्छी तरह लपेटकर, एक पात्र मे रख प्रज्वलित करदें । फिर, इसमें से विधिपूर्वक पारद निकाल लेवें । यह पारद सभी प्रयोगों में उपयोगी है ॥ ५ ॥ हिंगुल को चार-तह वाले वस्त्रखंड में लपेट लेवें । अब, हिंगुल-गर्भित इस वस्त्रखंड के गोलक को अग्नि लगाकर एक मिट्टी के घट में स्थापित कर देवें । घट के तल-भाग में, हवा अच्छी तरह प्रवेश कर सके, इसलिये बहुत से छोटे छोटे छिद्र पहिले से ही करदें तथा इसी घट के मुख-भाग पर एक सकोरा औंधा ढक देवें । इस घट के अन्दर अग्नि-प्रज्वलित-वस्त्र-गोलक में से, सकोरे के भीतरी तल-भाग में उड़कर एकत्रित हुये शुद्ध-पारद को सावधानी पूर्वक निकाल ले ॥ ६ ॥

पारद-शोधन

(शास्त्रों में पारद के अठारहविध संस्कारों का उल्लेख मिलता है । इनमें से प्रथम आठ संस्कारों द्वारा अर्थात् स्वेदन, मर्दन, मूर्छन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियमन तथा दीपनद्वारा पारदगत आठ प्रकार के दोषों का अर्थात् नाग, वंग, अग्नि, मल, चपल, विष, गिरि एवं असह्याग्नि दोषों का परिहार किया जाता है । इन संस्कारों को प्राप्त-पारद अजरामरत्वरूप देहसिद्धि देता है । अनुवासन, जारण, ग्रास, चारण, गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, रंजन, सारण, क्रामण, और वेधन-रूप अवशिष्ट दस-संस्कारों से

१–पूर्वोक्तविध्यन्यतमेन विद्याधरडमर्वादियन्त्रद्वारा वा हिङ्गुलतः पृथक्कृतम् । तथा च रसशास्त्रे–"विद्याधराख्ययन्त्रस्थादार्द्रकद्रावमर्दितात् । समाकृष्टो रसो योऽसौ हिङ्गुलाकृष्ट उच्यते" ॥ अत्र विद्याधरयन्त्र इत्युपलक्षणम् । विद्याधरयन्त्रलक्षणं च—"यन्त्रं विद्याधरं ज्ञेयं स्थालीद्वितयसम्पुटात्" इत्यादिर्बोध्यम् । २–"अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः" इति मन्त्रेण पूजनं, रसाङ्कुशादिसभैरवजापश्च, ततो बटुककुमारिकाभोजनमिति कृत्वेत्यर्थः । अन्यत्राप्युक्तं—"मन्त्रयन्त्ररसपादुकाञ्जनस्वर्णनागभुवनादिसिद्धयः । तं श्रयन्ति पुरुषं महेश्वरो येन दिव्यतपसा हि तोषितः ॥" इति । ३–दरदाकृष्टस्य मलापकर्षणं नास्ति शुद्धत्वादिति तदुपेक्ष्य गुणाधानमित्यभिधानम् ।

शुद्ध पारद स्वर्णरूपी लोह-सिद्धि अर्पण करता है। दोलायंत्र में, क्षार एवं अम्लद्रव्यों से पारद का उत्क्कथन 'स्वेदन' कहलाता है। यह पारदगत मलको शिथिल कर देता है। औषधीय चूर्ण एवं रसोंद्वारा खरल में, मर्दक से, पारद को घोटना 'मर्दन' कहाता है। इसके द्वारा पारद बहिर्मल से मुक्त हो जाता है। मर्दन संस्कारोक्त औषधीय द्रव्यों से पारद को 'नष्ट-पिष्ट' बनाना 'मूर्छन' संस्कार है। इससे पारद के बहिर्विषादि दोष की निवृत्ति अवश्य होती है तथापि पारद में नष्ट-पिष्टत्व रूप मूर्छाव्यापत्ति आ जाती है। पारद की इस मूर्छावस्था को हटाकर उसको पूर्वावस्था में लाने के लिये, उसे पुनः सचेतन करने के लिये, कांजिका आदि अम्ल द्रव्यों से पारद का प्रक्षालन 'उत्थापन' संस्कार कहलाता है। तदनन्तर, ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक् पातन द्वारा पारद का 'पातन' संस्कार किया जाता है। इस तरह के त्रिविध पातनद्वारा अपने कृत्रिम (योगिक) दोषों से मुक्त पारद कदर्थित तथा निर्वीर्य बन जाता है। पारद की इस षंढत्वनिवृत्ति के लिये आचरित संस्कार 'बोधन' कहलाता है। षोडश-वर्षीया अरुण-युवति के आर्तव आदि में पारद को निमग्न करके तीन दिवसपर्यंत भूगर्भ में रहने देने से पारद का बोधनसंस्कार संपादित किया जाता है-'अनेन सूतराजोऽयं षण्ढभावं विमुंचति'। बोधनसंस्कार से प्रबलवीर्यसंपन्न पारद प्रदीप्त हो उठता है। अतः उसे वश में करने के लिये, उसकी चपलत्व निवृत्ति के लिये, सर्पाक्षी, अम्लिका, भृंगराज, धत्तूरा आदि शास्त्रोक्त औषधीय द्रव्यों के रस से एक दिन पर्यंत स्वेदन करने से पारद स्थिरता को प्राप्त हो जाता है। पारद का यह 'नियमन' संस्कार है। इस तरह नियमित पारद अग्निसह बन जाता है। अग्नितप्त होने पर भी उडता नहीं, तथा निर्धूम रहता है। 'नियामतो न प्रयाति तथा धूमगतिं प्रिये!' तदनन्तर, धातु-पाषाण-मूलादि द्रव्यों से परिपूर्ण घट के मध्य में स्थापित पारद का, तीन दिवस पर्यंत स्वेदनद्वारा, 'दीपन' संस्कार किया जाता है। दीपन-संस्कार से पारद में तीव्रत्व, वेगकारित्व, व्यापकत्व, बुभुक्षितत्व तथा निर्मलत्व गुणों की उत्पत्ति होती है। दीपित पारद को, जंभीरादि के रस से पूर्ण-मृत्पात्र में स्थापित करके-एक दिनभर धूप में रखकर 'अनुवासन' संस्कार निष्पन्न किया जाता है। इस तरह अनुवासनान्त नव संस्कारों से संपन्न रस-राज पारद वह्नि-सम-प्रभाव से उद्दीप्त हो उठता है।

तदनन्तर, पारद का 'जारण' संस्कार करना चाहिये। ऊर्ध्व-पातन-यंत्रादिद्वारा पातन के विना तथा वस्त्रादि से गालनविना, अभ्रक-स्वर्णादि के भक्षणोपरांत भी पारद की स्व-स्वरूप में अवस्थिति 'जारणा' कहलाती है। 'जारणा हि नाम पातनगालनव्यतिरेकेण घनहेमादिग्रासपूर्वक पूर्वावस्थाप्रतिपन्नत्वम्' अर्थात् जारण-संस्कार से रहित भी पारद स्वर्णादि का भक्षण करता है; किंतु वस्त्र आदि से परिगालनद्वारा स्वर्ण तथा पारद पृथक् किये जा सकते हैं। इसी तरह, कज्जली-गत पारद आपाततः गंधक में विलीन सा हो जाता है किंतु, ऊर्ध्वयंत्रद्वारा वह पृथक् निकाला जा सकता है। तदुपरांत, उपरोक्त दोनों अवस्थाओं में पारद का वजन भी बढ जाता है; किंतु जारण-संस्कार-

त्रिपत्रिका मृगखुरी चाङ्गेरी मेषशृङ्गिका ।
भृङ्गराजः शिखिशिखा काकमाची कुमारिका ॥ ८ ॥
अर्कः सेहुण्डधत्तूरौ दुग्धी मण्डूकपर्णिका ।
धामार्गवो बला शिग्रुर्लशुनं वह्निमूलके ॥ ९ ॥

प्राप्त-पारद कज्जलीगत होने पर अथवा स्वर्णादि भक्षण कर लेने पर न तो वजन में बढ़ता है, न गालन पातनद्वारा गंधक-स्वर्णादि से पृथक् किया जा सकता है, अर्थात् कज्जलीगत अथवा स्वर्णादि-भुक्त-जारित-पारद गालन-पातन किये जाने पर भी, पूर्वावस्थापन्न-स्वस्वरूप-में ही रहता है। इस सम्कार को प्राप्त पारद अद्भुत-शक्ति समन्वित होता है। इस तरह से सिद्ध किये गये पारदसेवन के, 'कृतक्षेत्रीकरण' अर्थात् रसायन-सेवन योग्य-परिष्कृतदेह से युक्त व्यक्ति ही, अधिकारी कहे गये हैं, 'घनहेमादिजीर्णस्य कृतक्षेत्रीकरणानामेव शरीरिणां भक्षणेऽधिकार '।

प्रस्तुतप्रकरण में पारद के जारणावधि सस्कारों की विधि बताई गई है। शास्त्रों का आधार लेकर अध्ययनात्मक व्याख्या कर देना, एक बात है। किंतु, शास्त्रोल्लिखित विधान को क्रियात्मक रूप में प्रत्यक्ष करके, प्रत्यक्षीकृत उसी सत्य को, उसके मौलिक स्वरूप में, अपने अनुभव का पुट लगाकर प्रस्तुत करने से, आर्ष शास्त्रों के प्रतिश्रद्धा में अभिवृद्धि होती है। और इसी में उस ज्ञान को प्रस्तुत करने वाला अपनी कृतकृत्यता समझता है। आत्मज्ञान से साक्षात् करने वाले, ब्रह्मसूत्र के व्याख्याता श्री शंकराचार्य, वेदव्यास से कदापि न्यून नहीं हैं। आयुर्वेदविज्ञान-वारिधि स्व श्री भट्टजी-नागार्जुनादि रस वैज्ञानिकों की समकक्षा के उद्भट विद्वान थे। क्योंकि, बीसवीं-शताब्दि में सर्व प्रथम वही एक ऐसा रस-विद्या-वैज्ञानिक रहा, जिसने रस-ज्ञान के विषय में अपना यह परिचय दिया 'सूते गंधकजारणावधिकृता येन क्रिया नैकश ')।

हिंगुल में से निकाले गये पारद की शुभ दिवस में पूजा करके उसमें गुणाधान करना चाहिये। जिसकी विधि इस तरह है। (हिंगुल में से निकाला गया पारद शुद्ध होता है। अत उसके मलापकर्षण की आवश्यकता नहीं रहती) ॥ ७ ॥

तिपत्ति, मृगखुरी, अम्ललोणिका, मेषशृगी, भागरा, मयूरशिखा, काकमाची, गवारपाठा, आकडा, स्नुही, धत्तूरा, दूधी, मण्डूकपर्णी, कोशातकी, बला, सहजना, लशुन, चित्रक, मूली, कचनार, शतावरी, निंब, अजमोदा, अजवायन, खुरासानी अजवाइन, त्रिकटु, त्रिफला, लाजवती, मजेठी, कण्टकारी तथा अम्लवर्ग (अम्लवेत, जंभीर, निंबू, बीजपूर, चांगेरी, चणकाम्ल, इमली, कोल, दाडिम, अंबष्ठा, वृक्षाम्ल, नारंगी, रसपत्रिका, करमर्द आदि) इन सभी औषधीय द्रव्यों के रस से पारद का तीन-दिवस-पर्यंत दोलायंत्र से स्वेदन करके फिर, तीन दिवस पर्यंत उसका मर्दन करें। फिर, अतसी, मालकागनी, दंतीबीज, भिलावा, राई, कालाजीरा तथा अजमोदा इन

१–'तिपत्ती' इति ख्याता। २–अम्ललोणिका। ३–मयूरशिखानामौषधि प्रायः पर्वतभूमौ प्ररोहति। ४–पाषाणभेद।

काञ्चनारो वरी निम्बोऽजमोदा कारवीद्वयम्[1]।
त्रिकटु त्रिफला लज्जा[2] मत्स्याक्षी[3] कण्टकारिका ॥ १० ॥
अम्लवर्गो[4] रसैरेषां स्वेदयेन्मर्दयेत् त्र्यहम्।
उमा[6] ज्योतिष्मती[7] दन्तीबीजभल्लातराजिकाः ॥ ११ ॥
कारवी दीप्यकं चेति[8] तैले प्रत्येकशः पचेत्[9]।
गोमूत्रे हिङ्गुपयसि काञ्जिके तैजसे द्रवे ॥ १२ ॥
सूतं निबध्य दोलायां[10] मासं मासं पृथक् पचेत्।
विषैरुपविषैः[11] शस्तं मर्दनं तप्तखल्वके ॥ १३ ॥

प्रत्येक के तैल में पारद को तीन तीन दिवस पर्यंत पकावें। फिर, तीन-तह वाले वस्त्र में भूर्जपत्र रखकर, उसमें पारद स्थापित करके पोटली वांध लें; इस पोटली को दोलायंत्र में लटका कर, तदन्तर्गत पारद को, गोमूत्र में, हींग के पानी में, कांजिका में तथा तेजो जल में पृथक् पृथक् एक एक मासपर्यंत पकावें। फिर, विषों तथा उप-विषोंद्वारा तप्त-खल्व में, सातदिवस तक पारद का मर्दन करें। विषोंद्वारा मर्दन से पारद में, पक्षच्छेदपूर्वक वह्नि तथा मुख उत्पन्न होते हैं। तदनन्तर, तेजोजल से क्षालन तथा उत्क्वथनद्वारा पारद का प्रतिस्वेदन मर्दन कर लें। तेजोजल का निर्माण छहों प्रकार के लवण तथा आठों प्रकार के क्षार से किया जाता है। इन लवणों तथा क्षारों को एकत्र लेकर उनको लघुपुट (वाराह, कौक्कुट आदि) की आंच में फूंक दें। कपिलवर्ण की भूमि के जल को क्षारजल कहते हैं। इस क्षार जल को, प्रथम थोडा, उकाल लेवें, जब पक कर गरम हो जाये तब उसमें उपरोक्त लवण तथा क्षार भस्म मिलाकर तीन दिन धूप में रखदें। पात्र तल में, जब भस्म बैठ जाये तब ऊपर का स्वच्छ जल नितार लेवें। इस तरह, अनेकवार नितारने से, अंत में स्वच्छ, घन-द्रव्यरहित तैजस् जल को ग्रहण

१–यवानी पारसीकयवानीति द्वयम्। २–नमस्कारी लोके लज्जालुरिति लप्यते। ३–मछेछीति प्रसिद्धा। अत्रानुक्तामपि प्रसारिणीं प्रक्षिपन्ति वैद्याः। ४–"अम्लवेतसजम्बीरनिम्बूकबीजपूरकम्। चाङ्गेरी चणकाम्लं च अम्लीका कोलदाडिमम्॥ अम्बष्ठा तिन्तिडीकं च नारङ्गं रसपत्रिका। करमर्दं तथा चान्यदम्लवर्गः प्रकीर्तितः॥" इति रसशास्त्रोक्तः। ५–दोलायन्त्रेणेति शेषः। ६–अतसी। ७–मालकाङ्गुनीति ख्याता। ८–इतीत्येषाम्। ९–त्र्यहमिति पूर्वोक्तमत्रापि योजनीयम्। १०–"निबद्धमौषधैः सूतं भूर्जे तत्त्रिगुणाम्बरे। रसपोटलिकां काष्ठे दृढं बद्ध्वा गुणेन हि॥ संधानपूर्णकुम्भान्तः स्वावलम्बनसंस्थिताम्। अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं तत्तदुक्तक्रमेण हि॥ दोलायन्त्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनाख्यं तदेव हि॥" इत्युक्तस्वरूपायाम्। ११–अम्लवर्गेण सहेति शेषः। विषाण्युपविषाणि तन्त्रान्तरे प्रोक्तानि। यथा–"शृङ्गिकं कालकूटं च वत्सनाभं सकृत्रिमम्। पित्तं च विषवर्गोऽयं प्रवरः परिकीर्तितः॥" इति। तथा "लाङ्गली विषमुष्टिश्च करवीरं जपा तथा। तिलकः कनकोऽर्कश्च वर्गो ह्युपविषात्मकः॥" इति। एभिः सह मर्दनाद्धि जायते पारदस्य वह्निः पक्षच्छेदो मुखं च; यथोक्तं–"विषोपविषकैर्मर्द्यः प्रत्येकं दिनसप्तकम्। तेनास्य जायते वह्निः पक्षच्छेदो मुखं

तेजोऽद्भिः क्षालनोत्काथौ प्रतिसेदनमर्दनम् ॥
लवणक्षारवर्गं प्राक् कनीयसि पुटे पचेत् ॥ १४ ॥
शृतोष्णे क्षारसलिले क्षिप्त्वा घर्मे त्र्यहं न्यसेत् ।
परिस्राव्य बहून् वारान् गृह्णीयात्तैजसं द्रवम् ॥ १५ ॥
प्रतिसंस्कारममुना पारदोत्कथनं स्मृतम् ।
सृष्ट्यम्बुजप्रभृतिषु विनिमज्ज्याधिपात्रकम् ॥ १६ ॥
सप्ताहं पूरयेद्गर्ते राजहस्तप्रमाणतः ।
क्षिप्त्वाऽम्ले सैन्धवशिलागर्ते नियमनं चरेत् ॥ १७ ॥
मातुलुङ्गरसे न्यस्य घर्मान्तरनुवासयेत् ।
वालुकाकूर्मकुधरगर्भाद्यन्यतमे दृढे ।
यन्त्रे दशांशगरलं षड्गुणं जारयेद्बलिम् ॥ १८ ॥

करके काचकूपी में भर दे। इस तैजस-द्रवद्वारा पारद का प्रति संस्कार, 'उत्कथन' कहलाता है। तदनन्तर, षोडश वर्षीया तरुण युवति के आर्तव आदि से युक्त-घट में पारद को स्थापित करके, उसे तीस-अंगुल गहरे भू-गर्त में, एक सप्ताह पर्यंत गाड़ कर रख दें। पारद का यह 'बोधन' संस्कार कहलाता है। फिर, सैंधव-शिलागर्त में पारद को पधराकर, अम्लवर्गोक्त औषधीय द्रव्य-रसों से पारद का 'नियमन' संस्कार संपादित करना चाहिये। तदनन्तर, मातुलुंग-रस में पारद को डालकर, सूर्य-ताप में स्थापित करके उसका 'अनुवासन' संस्कार करलें। अब, इस तरह सुसंस्कृत पारद को वालुका, कच्छप, भूधर अथवा गर्भ आदि किसी एक यन्त्र में स्थापित करें। फिर, पारद से षड्गुण अधिक, अत्यल्प मात्रा में गरल-मिश्रित गंधक को लेवें-इस गंधक को, उपरोक्त पारद में, थोडी थोडी मात्रा से प्रक्षिप्त करते हुये, जारित करें ॥ ८–१८ ॥

तथा ॥" इति। तप्तखल्वलक्षणं च स्मरणीयम्। यथा–"अजाशकृत्तुषाग्निं च भूगर्भे निखनेत् क्षिपेत्। तस्योपरि स्थितं खल्वं तप्तखल्वमिति स्मृतम् ॥" इति। तथाऽन्यत्र–"लौहो नवाङ्गुलः खल्वो निम्नत्वे च षडङ्गुलः। मर्दकोऽष्टाङ्गुलश्चैव तप्तखल्वाभिधो ह्ययम् ॥ कृत्वा खल्वाकृतिं चुल्लीमङ्गारैः परिपूरिताम्। तस्यां निवेशितं खल्वं पार्श्वे भस्त्रिकया धमेत् ॥" इति।

१–समनन्तरमेवाभिधीयमानविधानाभिः। २–"लवणानि षडुच्यन्ते सामुद्रं सैन्धवं विडम्। सौवर्चलं रोमकं च चुल्लिकालवणं तथा ॥ क्षारत्रयं समाख्यातं यवजस्वर्जिटङ्कणम्। पलाशमुष्ककक्षारो यवक्षारः सुवर्चिका ॥ तिलनालोद्भवः क्षारः सप्रोक्तः क्षारपञ्चकम् ॥" इत्यादि तन्त्रान्तरोक्तम्। ३–वाराहकौक्कुटाद्यन्यतमे। ४–कपिलवर्णभूमिमिव जलं तादृशं भवति। यदुक्तं चरके–"श्वेते कषायं भवति पाण्डुरे स्यात्तु तिक्तकम्। कपिले क्षारसंसृष्टं मूषरे लवणान्वितम् ॥ कटु पर्वतविस्तारे मधुरं कृष्णमृत्तिके। एतत्षाड्गुण्यमाख्यातं महीस्थस्य जलस्य हि ॥" इति। ५–संस्कारस्यास्य बोधनमिति सञ्ज्ञा शास्त्रे। सृष्ट्यम्बुजं चार्तवमिति सङ्केतः। ६–विशामित्रकपालकाचकूप्याद्यन्यतमपात्रे। ७–"बोधनाल्लब्धवीर्यस्य चपलत्वनिवृत्तये। क्रियते पारदे स्वेदः प्रोक्तं नियमनं हि तत्" इत्युक्तरूपम्। ८–अनुवासनमिदम्। ९–विहितपूर्वोक्तविधानस्य पारदस्य यथा गन्धकजारणं विधेयं तद्दर्शयन्ति–वालु-

सद्भाण्डे धूलिगर्भे चषकमतिभृतं गन्धचूर्णैर्निदध्यात् ।
स्फीतां लौहीं त्रिपादीं तदुपरि चषकालङ्कृतां न्यस्य विद्वान् ।
तत्र प्रक्षिप्य सूतं त्रिगुणमथ मृदाऽऽयोज्य भाण्डे पिधानं
दत्ते वह्नौ पिधानात् पतितमिति रसे जारयेद्गन्धधूमम् ॥ १९ ॥
तेजोद्भिर्वक्ष्यमाणाभिः क्वथनं प्रतिजारणम् ।
उपादानानि तासां तु क्षाराः सर्वे पटूनि च ॥ २० ॥

प्रस्तुतश्लोक में गर्भ-यंत्रद्वारा पारद की गन्धक-धूम से, जारण-विधि प्रदर्शित की गयी है । यह स-गन्ध-अन्तर्धूम मूर्च्छना का प्रकार है-इस प्रक्रिया को परम सावधानतया संपादित करें । एक विशाल-घट लेकर उसमें, उसके मध्यभाग से कुछ ऊपर तक, धूलि भरदें । इस धूलि-गर्भ घट के भीतर एक चषक स्थापित करें-चषक को आमुख गंधक-चूर्ण से लबालब भरदें । इस चषक के ऊपर एक ऊंची लोहमयी त्रिपादी तथा त्रिपादी पर, गंधक से त्रिगुणित पारद-पूर्ण चषक स्थापित करें । अब, घट के मुख को एक ढक्कन से बंध करके चारों ओर कपडमिट्टी करदें । घट के नीचे अग्नि-प्रज्वलित करें । ढक्कन के मुख से टकरा कर, पारदपर पतित गंधकीय धूमद्वारा 'जारण' संस्कार संपादित करलें ॥ १९ ॥

जिन तैजस् जलों से पारद का क्वथन तथा प्रतिजारण करने में आता है, उनके

केत्यादि । षड्गुणगन्धकजीर्णस्य रसराजस्य रोगमात्रहन्तृत्वमुपजायते "षड्गुणे गन्धके जीर्णे रसो भवति रोगहा । अवश्यमित्युवाचेदं देवीं श्रीभैरवः स्वयम्" इत्युक्तेः । वालुकायन्त्र-स्वरूपं च यथा-"भाण्डे वितस्तिगम्भीरे मध्ये निहितकूपिके । कूपिकाकण्ठपर्यन्तं वालुका-भिश्च पूरिते ॥ भेषजं कूपिकासंस्थं वह्निना यत्र पच्यते । वालुकायन्त्रमेतद्धि यन्त्रं तत्र बुधैः स्मृतम्" । तथा कच्छपयन्त्रलक्षणमपि यथा-"जलपूर्णपात्रमध्ये दत्त्वा वै खर्परं सुविस्ती-र्णम् । तदुपरि बिडमध्यगतः स्थाप्यः सूतः कृतः कोष्ठ्याम् ॥ लघुलोहकटोरिकया कृतपट-मृत्संधिलेपयाऽऽच्छाद्य । पूर्णतरैर्घटखर्परमध्येऽङ्गारैश्च खदिरकोलमयैः ॥ स्वेदनतो मर्दनतः कच्छपयन्त्रस्थितो रसो जरति" । तथैव च भूधराह्वयं यन्त्रमुक्तं—"वालुकागूढसर्वाङ्गां गर्ते मूषां रसान्विताम् । दीप्तोत्पलैः संवृणुयाद्यन्त्रं तद्भूधराह्वयम्" इति । गर्भयन्त्रस्वरूपं च समनन्तरं स्वयमेवोच्यमानम् । आदिशब्दादिष्टिकायन्त्रादि बोध्यम् । यदुक्तमन्यत्र-"विधाय वर्तुलं गर्तं मल्लमत्र निधाय च । विनिधायेष्टिकां तत्र मध्यगर्तवर्तीं शुभाम् ॥ गर्तस्य परितः कुर्यात् पालिकामङ्गुलोच्छ्र्याम् । गर्ते सूतं विनिक्षिप्य गर्तास्ये वदनं क्षिपेत् ॥ निक्षिपेद्गन्धकं तत्र मल्लेनास्यं निरुध्य च । मल्लपालिकयोर्मध्यं मृदा सम्यङ्निरुध्य च ॥ वनोत्पलैः पुटं देयं कपोताख्यं न चाधिकम् ॥ इष्टिकायन्त्रमेतत्स्याद्गन्धकं तेन जारयेत्" इत्यादि । गरलप्रक्षेप-श्चात्र सम्यक्तया गन्धकजारणार्थं गुणाधानार्थं च । षड्गुणबलिश्च क्रमेण देयो न त्वेकदैव, समं समं बलिं दत्त्वा षट्कृत्वो जारयेदित्यर्थः ।

१-कटोरीमित्यनर्थान्तरम् । तथा च रसरत्नसमुच्चये "चषकं च कटोरी च वाटिका खारिका तथा । कचोली ग्राहिका चेति नामान्येकार्थकानि हि" । २-तेजोपाम् ।

किंचिद्विदाह्य संगाल्य प्रत्येकं सत्त्वमुद्धरेत् ।
सुधाखण्डानि पादोनं स्वर्जिकासत्त्वमुत्तमम् ॥ २१ ॥
ततोऽर्धमर्कज सत्त्वं तदर्धान्यपराण्यपि ।
सत्त्वजातमतिक्षारे कूपक्षीरेऽभिगालयेत् ॥ २२ ॥
अष्टाहमातपे धृत्वा तीक्ष्णतां तत्र साधयेत् ।
तेजोजलं शनैर्नीत्वा पुनस्तत्र जलं क्षिपेत् ॥ २३ ॥
न्यस्यातपे पुनरपि द्रवं पूर्ववदुद्धरेत् ।
द्वित्रिवारमिति प्राज्ञः कृत्वा तद्वकसं त्यजेत् ॥ २४ ॥
तेजोजलं तदेकध्यं विस्राव्य पटतोऽसकृत् ।
मुक्काच्छं काचगं रक्षेत् सौरसागरसिद्धये ॥ २५ ॥
कलमं सौरमादाय यथाविधि विशोधितम् ।
तेजोजले पचेत्तावद्यावद्वह्निक्षमं भवेत् ॥ २६ ॥

निर्माण की सविस्तर विधि प्रस्तुत श्लोकों से बताई जाती है। तैजस् जलों का निर्माण सभी प्रकार के क्षार तथा लवणों के सत्वों से किया जाता है। (लवण छह प्रकार के कहे गये हैं-सामुद्र, सैंधव, विड, सौवर्चल, रोमक तथा पांशुज, क्षार आठ प्रकार के कहे गये हैं-स्नुही, पलाश, अपामार्ग, चिंचा, अर्क, तिलनाल, स्वर्जिका तथा यवक्षार। सभी प्रकार के क्षारों में टंकण का भी ग्रहण किया जाना चाहिये।) प्रथम, प्रत्येक क्षार को तथा प्रत्येक लवण को किंचित् गरम करके वस्त्रपूत करलें। फिर, सत्व निर्माणविधि से प्रत्येक में से अलग अलग सत्व निकाल लेवें। अब, एक भाग सुधाखंड, इससे एक चतुर्थांश उत्तम सर्जिकाक्षार का सत्व, इससे अर्धमात्रा में अर्कक्षार का सत्व तथा इससे अर्ध मात्रा में, उपरोक्त विधि से निर्मित लवण और क्षार के सत्वों को लेवें। इस सत्व-समूह को कूपजल से छानकर आठ दिवसपर्यंत कड़ी धूप में रहने दें। तदनन्तर, अत्यंत सावधानी से, पात्र जरा भी हिलने न पाये इस तरह से, धीरे धीरे ऊपर से तैजस्-जल को निथारलें। इस निथरे हुये तेजोजल में पुन: कूपजल मिलाकर पुन: आठ दिन तक धूप में रखदें। नवमें दिन, पात्र हिलने न पाये इस तरह, पूर्ववत्, ऊपर का द्रव-भाग निथारलें। इस तरह दो तीन बार करके, द्रवभाग को निकालकर, तल-लग्न किट्ट को अलग फैंक दें। अब, इस तरह प्राप्त-तेजो जल को कई बार वस्त्रपूत करें। परिणामत:, मोती के समान स्वच्छ एवं उज्ज्वल तथा वह्निक्षमत्व सिद्धि से युक्त इस तेजोजल को, काच की शीशी में भरकर सुरक्षित रख देवें ॥ २०-२५ ॥

कलमी सोरे को वह्नि-क्षम बनाने की विधि—उत्तम जाति के कलमी सोरे का यथाविधि शोधन करके, उसे तेजो-जल में, वह्निक्षम न बन जाये तब तक उकालते ही

१—सुधाखण्डापेक्षयेत्यर्थ । २—पूर्वोक्तविधिविहितानि लवणक्षारसत्त्वानि । ३—"नीरक्षीराम्बु शम्बरम्" इत्यभिधानम् । ४—निष्कम्पमित्यर्थ । ५—वह्निक्षमत्वरूपा ऽदि तत्सिद्धि । ६—सौरविशेषणमिद, तस्य चोत्कृष्टजातेरियं सज्ञा । ७—पूर्वोक्ते ।

कूप्यां निधाय तं सिद्धं मुखं कूप्याः पिधाय च
गर्ते हयशकृद्गर्भे निदधीत त्रिमासकम् ॥ २७ ॥
सागरं[1] विंशतिगुणसुधाक्षोदान्तरस्थितम् ।
दहेदिभपुटे सिद्धं निर्गाल्य स्रावयेत् पटात् ॥ २८ ॥
तं पक्त्वा घनतां नीतं पुटेल्लघुपुटे पुनः ।
ततो निर्गाल्य[2] निस्राव्य स्वच्छतामुपलम्भयेत् ॥ २९ ॥
तं पाकात् किञ्चिदाश्यानं[3] पचेत्तेजोजलोच्चयैः ।
चाङ्गेरीजम्भ[4]जरसैः पुनरावर्त्य शोषयेत् ॥ ३० ॥
कूप्यां संभृत्य संमुद्य स्थापयेद्भुवि सौरवत् ॥ ३१ ॥
सौरं[5] यवानीविजया[6]समन्वयात् कूपीटयोनि[7]क्षमतां प्रलम्भयेत् ।
तदन्तरावापितमग्निदानतः सिद्धं भवेद्धिङ्गुलमल्लतालकम् ॥ ३२ ॥

रहें। इस विधि से सिद्ध इस द्रव को काच कूपी में भर, उसके मुख को दृढतया मुद्रित करके, अश्व की लीद से पूर्ण भूगर्त में-तीन मास पर्यंत गाडकर रख देवें ॥२६-२७॥ सागर अर्थात् चुल्हिका लवण (नौसादर) को वह्निक्षम करने की विधिः-सागर को उससे बीस गुणित सुधा-चूर्ण में दबाकर गज-पुटकी आंच में फूंक दें। तदुपरांत, इसको पानी में घोलकर वस्त्र-पूत करके, पुनः वस्त्र में से टपकालें। इस द्रव को अग्नियोग से पकाकर-घट्ट बनालें तथा पुनः एक लघु पुट देवें। इसे पुनः पानी में मिलाकर वस्त्र से छानलें। फिर, पात्र में रखकर, ऊपर के द्रवभाग को नितारलें। इस तरह पुनः-पुनः नितारकर केवल स्वच्छ भाग ग्रहण करें। इस स्वच्छ द्रव को पुनः पकावें, किंचित् घन होनेपर, तेजो जल-राशि-मिलाकर इसे पुनः उकालें। तत्पश्चात्, इस द्रव के पुनः घन होनेपर, इसमें चांगेरी तथा जंभीर का रस डालकर, इनका रस निःशेष न हो जाये तब तक, इसे उकालते रहें। अंतमें, कूपीमें भरकर, मुखको मुद्रित करके, सोरे की तरह, तीन मास पर्यंत, अश्व-लीदसे पूर्ण भूगर्भ में स्थापित करके, रहने दें ॥ २८-३१ ॥

सोरे को वह्नि-क्षम बनाने का दूसरा-प्रकार तथा उसका उपयोगः-भांग तथा अजवायन के सम्बन्ध से सोरा वह्नि-क्षम बन जाता है। इस प्रकार के वह्निक्षम-सोरक में आवापित किये गये (अर्थात् अन्दर दबाये गये) हिंगुल, मल्ल तथा हरिताल, अग्नि-

---

१-सौरसिद्धिमभिधाय सागरस्यापि स्वच्छताविधानपूर्वकः सिद्धिविधिरभिधीयते, सागरं चुल्हिकालवणम्। २-जलेनेति शेषः। ३-ईषद्घनीभूतमिति यावत्। "पथश्चाश्यान-कर्दमान्" इति रघुवंशे। ४-जम्भो जम्बीरः। ५-प्रकारान्तरेणापि सौरस्य वह्निक्षमत्वं तथा तादृशस्य कुत्रोपयोग इत्यभिधीयते। ६-"भङ्गा गञ्जा मातुलानी मादिनी विजया जया" इति निघण्टुः। ७-कूपीटस्य जलस्य योनिः कारणं वह्निरित्यर्थः। "वायोरग्निरग्ने-रापः" इति श्रुतेः।

भङ्गायवानीपिहितः प्रदीपितः सोरो वृहद्भानुसहो भविष्यति ।
गूढं तदन्तर्दरदालमल्लकं चुल्ल्यग्निना सेत्स्यति नोड्डयिष्यते ३३ ॥

अथ रसयोगाः –

१ अम्लै रसशतमल्लौ विमर्दितौ पातयेच्छत वारान् ।
एष प्रशमयति रसो बलासपवमानसंरम्भम् ॥ ३४ ॥
२ छिक्कायाः संदृशि रसं पिष्टाया द्विगुणगन्धतेजोद्भिः ।
निक्षिप्य चतुर्याम कुप्या पक्त्वाऽऽददीत रसभस्म ॥ ३५ ॥
३ रसौरसविधू नवाक्षौ सार्धेषु चतु:सुवर्णवलिमल्लौ । –
कूप्या द्व्यह परिपचेत् पवनकफौ हन्ति मल्लसिन्दूरः ॥ ३६ ॥
४ रसभागा रसतः पुनरेकैकस्तालमल्लगन्धकतः ।
कूप्यां द्व्यहं परिपचेत् पवनकफौ हन्ति तालसिन्दूरः ॥ ३७ ॥
५ त्रिपलश्चपलो गन्धः पलार्धैः कज्जलीं द्वयोः ।
कूप्यां भृत्वाऽऽलेमाम्रार्धमुपर्याकीर्य कम्पयेत् ॥ ३८ ॥
विमुख्य वालुकायन्त्रे पचेद् द्वादशयामकम् ।
जायते रससिन्दूरः सिन्दूरसदृशच्छविः ॥ ३९ ॥

योग से सिद्ध हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ सोरे को भाग तथा अजवायन के भीतर रखकर, क्रमवृद्ध अग्नि से प्रज्वलित करें, यह वह्नि-क्षम बन जायेगा । चूल्हे की सतत आंच देनेपर भी यह सोरा कदापि नहीं उडेगा, इतना ही नहीं–इस सोरे के भीतर रखे गये-हिंगुल, हरिताल तथा मल्ल सिद्ध भी हो जायेंगे ॥ ३३ ॥

रस योग –(कुल प्रयोग ८३)–निंबू, जंभीर, बीजपूर आदि के अम्ल–रसों में अच्छी तरह खरल करके, पारद तथा शतमल्ल का शत बार ऊर्ध्व-पातन करलें । यह ‘रस’ कफ तथा वात के वेग को प्रशमित कर देता है ॥ ३४ ॥ द्विगुणित गंधक तथा तेजोजल से पीसी गई नकछीकनी में समान भाग पारद मिला, काच कूपी में भरकर, बारह-घंटे वालुका यन्त्रद्वारा पकावें । इस ‘रस-भस्म’ को उपयोग में लें ॥ ३५ ॥ पारद तथा-रसकपूर प्रत्येक नौ तोला, गंधक ६½ तोला तथा शतमल्ल ४½ तोला इनको एकत्र, दो दिवस पर्यंत, काचकूपी में, क्रमवृद्ध अग्नि-द्वारा पकावें । यह ‘मल्ल-सिंदूर’ वात-कफ को नष्ट कर देता है ॥३६॥ पारद छह भाग तथा हरिताल, मल्ल और गंधक प्रत्येक एक एक भाग-इनको एकत्र पीस कूपी में भरकर दो दिन तक पकावें । यह ‘ताल-सिंदूर’ वात तथा कफ को दूर करता है ॥ ३७ ॥ पारद बारह तोला तथा गंधक दो तोला, इनकी कज्जली बनाकर कूपी में भरदें । फिर, ऊपर से दो तोला

१–जम्बीरनिम्बूकबीजपूरादिभि । २–ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण । ३–समानायाम् । ४–वालुकायन्त्रेणेति शेष । ५–पारदरसकर्पूरौ । ६–अर्धपञ्चकर्षो बलि, सार्धचतुष्कर्ष-शतमल्ल इति । ७–षड्भागाः । ८–पारद । ९–हरितालम् ।

अमुष्य नित्यमभ्यासाच्छ्रेयः संपद्यते ध्रुवम्।
चीण्या विशालया यामं घृष्ट्वाऽम्लैः क्षालयेद्रसम् ॥ ४० ॥

६ कूपीं काचमयीं मृदम्बरदृढां चूर्णैश्चतुर्मुष्टिभि-
र्भृत्वा हिङ्गुलजैः समावप यथादेशं हसन्त्यां सखे।
ज्वाला यर्हि विनिःसरेद्वदनतः कूप्यास्तदा वारिणा
नालीं प्रोक्ष्य ततो गृहाण सहसा चन्द्रोदयं नालिकम् ॥ ४१ ॥

सुवर्णगर्भता नक्तमुदञ्चच्चाकचक्यता।
भासुरारुणवर्णत्वं प्रत्यग्रोदितचन्द्रवत् ॥ ४२ ॥
तैलस्थता मनोज्ञत्वं मार्दवं गुणशालिता।
न यत्र सप्तलिङ्गानि तं न चन्द्रोदयं वदेत् ॥ ४३ ॥

हरिताल चूर्ण भुरका कूपी को अच्छी तरह हिला लेवें। अब, कूपी मुख को मुद्रित करके, वालुकायंत्र में रखकर ३६ घण्टे तक पकावें। सिंदूर के समान रक्ताभ 'रस-सिंदूर' सिद्ध हो जायेगा। इस रस के नियमित सेवन से, निःसंदेह आरोग्य रूप सुख की प्राप्ति होती है। यहां पारद को, प्रथम इन्द्रवारुणी फल-रस तथा शक्कर-चूर्ण से तीन प्रहर तक खरल करके अम्ल रसों से प्रक्षालित करें। इस तरह शोधित पारद का उपरोक्त रस-सिंदूर में उपयोग करें ॥ ३८–४० ॥

हिंगुल के वीस तोला चूर्ण को, एक काचकूपी में भरकर, उसके चारों ओर दृढ कपडमिट्टी करलें। इस कूपी को प्रज्वलित-अंगीठी पर रख देवें। कूपी के मुख में से जब ज्वाला निकलने लगे, तब उसकी नालीपर पानी छिटकदें तथा शीघ्र ही नलिका-लग्न 'चंद्रोदय' को निकाल लें। इस तरह, उपरोक्त विधि से बनाया गया चंद्रोदय, वस्तुतः 'चंद्रोदय' नहीं है, तथापि अमुक वंचक-वैद्य इस तरह सरल-विधि से तथा-कथित चंद्रोदय बना लेते हैं। इस प्रकार से निर्मित चंद्रोदय का, अनुभवी-सद्वैद्य कदापि उपयोग न करें। वंचक-वैद्यों से सावधान करने के लिये ही यह प्रयोग यहां लिखा गया है ॥ ४१ ॥

विधिपूर्वक सिद्ध किये गये चंद्रोदय के लक्षण यहां दिये जाते हैं। निम्न लिखित सातों लक्षणों से रहित चंद्रोदय को कदापि शुद्ध न समझें। १–जिसके गर्भ में स्वर्ण हो; २–जो रात्रि में प्रकाश युक्त रहे; ३–जो नवोदित चंद्रमा के समान चकचकित अरुण-वर्ण वाला हो; ४–जिसमें तलस्थता हो; ५–जो मनोरम, ६–मृदु तथा ७–गुण

१–पूर्वोक्तरससिन्दूरकरणाय पारदशोधनप्रक्रियेयम्। सिता चात्र चीणीशब्दार्थः। विशालायाः फलरसो गृह्यते। २–वञ्चकवैद्यविधीयमानचन्द्रोदयप्रकारोऽयमत्यन्तावधान-पूर्वकप्रवृत्त्यर्थं भिषजां प्राकाश्यं नीतः। ३–"काचायोमृद्वराटानां कूपिका चषकानि च" इत्यतो गृह्यमाणानां मृदादिकूपीनां व्युदासार्थं काचशब्दोपन्यासः। तत्राप्यरुणपिञ्जरसितान्यतमकाचघटिताम्। ४–व्यावहारिकविंशतितोलकमितैः। ५–अङ्गारधानिकायाम्।

७ रसबलिरविरजतकनकमुक्तातालप्रवाललोहाभ्रम् ।
वद्ध्वा पटे विपक्वा बलितैले हेमगर्भपोट्टलिका ॥ ४४ ॥

८ एको मुक्ताफलजरजसः कुङ्कुमं च त्रिभागं
जातीजातीफलमृगभुवां द्वौ विभागौ पृथक् स्त ।
हेम्नो मुक्तावदमलबलिः पारदोऽपि त्रिभाग
सारे मद्यः क्षयकसनकफान् हन्ति खल्लीरसोऽयम् ॥ ४५ ॥

९ स्थालीसंपुटनिर्गतो दरदतः सूतो भवेत् संस्कृत
सप्ताह नवसादरेण सहितैर्मायूरपोटीरसैः ।
आम्रं तस्य बलिः समो मृदु तयोस्तुल्य दलं काञ्चनं
मुक्तायोऽभ्रकवज्रभस्म विमल कर्षप्रमाण पृथक् ॥ ४६ ॥
खल्वे तत् सकल विमर्द्य मसृणं कृत्वाऽग्निना द्रावित
रम्भापत्रपुटे निधाय झटिति प्रोत्पीडयेद्वस्त्रतः ।
सिद्ध काञ्चनपर्पटीरसवरः कृष्णासखः सेवितो
दाडिम्याः स्वरसेन हन्ति हठतो मन्दाग्निमूलामयान् ॥ ४७ ॥

युक्त हो—वही सिद्ध चन्द्रोदय है । तलस्थता-गुण तभी आ सकेगा जब सु-संस्कृत एवं षड्गुण जारित, अत एव वह्नि-क्षमता को प्राप्त पारदद्वारा ही चन्द्रोदय सिद्ध किया गया हो । चन्द्रोदय में स्वर्ण-गर्भता तभी संभवित है जब उसमें तलस्थता हो, अतः पूर्वोक्त विधि से यदि पारद को, प्रथम बुभुक्षित न बना लिया हो, तो तल भाग में स्वर्ण की कृष्णवर्ण भस्म शेष रह जायेगी । स्वर्ण ऊपर उड़कर नहीं चढ़ेगा ॥ ४२—४३ ॥

पारद, गंधक, ताम्र, रजत, स्वर्ण, मुक्ता, हरिताल, प्रवाल, लोह तथा अभ्रक इनको एकत्र कौशेयादि वस्त्र से पोटली में बांधलें । फिर इसको द्रव-भूत गंधक द्वारा अभियोग से पकावें । इस विधि से 'हेमगर्भ पोट्टलिका' निर्माण करें ॥ ४४ ॥ मुक्ता-भस्म तथा स्वर्ण-भस्म १-१ भाग, जावित्री, जायफल तथा कस्तूरी २-२ भाग, केसर, शुद्ध-गंधक तथा पारद ३-३ भाग, इनको एकत्र लेकर दूध में से निकाले गये नव-नीत में खरल करलें । यह 'खल्ली-रस' क्षय-कास तथा कफ को नष्ट कर देता है ॥ ४५ ॥ हिंगुल में से, स्थाली-संपुटद्वारा निकाले गये पारद को, एक सप्ताह पर्यंत, मयूरशिखा के स्वरससहित नवसादर से खरल करलें, इस विधि से वह शुद्ध हो जाता

६—यथाविधिविहितस्य चन्द्रोदयस्य लक्षण द्वाभ्याम् । तत्प्रक्रिया च प्रसिद्धत्वादुपेक्षिता ।
७—पूर्वोक्तषड्गुणगन्धजारणा तद्विधया वह्निक्षमत्वमुपलम्भितेन पारदेन क्रियमाणस्यैव चन्द्रोदयस्य तलस्थत्व संभवति । अथवा रसेन्द्रचिन्तामण्युक्तद्वितीयवालुकायन्त्रेणापि । तलस्थत्वेनैव च सुवर्णगर्भताऽपि भवितु शक्या नान्यथा, सुवर्णस्योड्डयनासंभवादित्यभिप्रायः ।

१—कौशेयादिवस्त्रे । २—गन्धकचूर्णेऽभियोगाद्द्रुते । ३—मृगभूः कस्तूरी । ४—दुग्धोत्थनवनीते । ५—मयूरशिखारसैः । ६—एव संस्कृतस्य दरदाकृष्टसूतस्य ।

१० पलमितपरिमाणे निर्मलीबीजकल्के[1]
धृतममलसुवर्णं मुद्रयित्वा द्विमाषम् ।
अथ सुरभिशकृद्भिः पाचयेत्तत्त्रिवारं
बलकृदखिलकार्ये योजयेत् सिद्धमेतत् ॥ ४८ ॥

अथान्ययोगाः—

११ दहेदपामार्गजकल्कगर्भितां गर्तेऽष्टकृत्वो दशगोमयोत्पलैः ।
आकल्लकल्केऽपि तथैव राजतीं[2] मुद्रामयं रूप्यरसो महागुणः ॥ ४९ ॥
१२ तापं तापं रवेः[3] खण्डं मरुशाखिप्रसूनजे[4] ।
रसे निर्वापयेत् पञ्चशतकृत्वः समाहितः ॥ ५० ॥
तद्बुक्कसं[5]जकल्कस्थं द्विस्त्रि[6]र्गजपुटैः पुटेत् ।
तद्भस्म[7] धवलप्रख्यं बलं धत्ते घृताशिनाम् ॥ ५१ ॥

है । इस तरह संशोधित पारद चार तोला तथा समभाग गंधक, इनको लेकर कज्जली निर्माण करें । फिर, कज्जली-तुल्य-प्रमाण में सोने के बरक तथा मुक्ता भस्म, लोह-भस्म, अभ्रक भस्म और हीरक-भस्म प्रत्येक १-१ तोला लेकर कज्जली में मिला, खरल में मर्दित करके खूब मुलायम बनालें । फिर, अग्नियोग से इस मिश्रण को पिघला, कदली-दलपर फैलाकर ऊपर दूसरा कदली पत्र रख शीघ्र ही वस्त्र से खूब दबादें । इस विधि से सिद्ध यह रसश्रेष्ठ 'कांचन-पर्पटी' कहलाता है । दाडिम-रस के अनुपान पूर्वक, पिप्पली चूर्ण में मिलाकर, इसका सेवन करने से, मंदाग्नि-जन्य विकार शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ ४६-४७ ॥ कतक-बीजों के चार तोलाभर कल्क में दो माषाभर शुद्ध स्वर्ण रखकर शराव-संपुटित करके गोवरी की आंच के तीन कपोत पुट देवें । बल देने वाले इस सिद्ध वर्ण का सभी अवस्थाओं में-औषधादि कार्यों में-उपयोग करें ॥ ४८ ॥

— अन्य-प्रयोग-(कुल-प्रयोग-८३)—

अपामार्ग के २० तोले कल्क में, जयपुरीय झाडशाही रुपये को रखदें । फिर, एक गर्त में, दश गोमय उपलों की अग्निद्वारा दस बार पकावें । पुनः इसी तरह अकलकरे के कल्क में रखकर दस वार, उपरोक्त-विधि से, पुट देवें । यह 'रूप-रस' महान् गुण दर्शाता है ॥ ४९ ॥ एक ताम्र मुद्रा को अग्नि में तपाकर, पांच-सो वार, करीर-पुष्प के स्वरस में बुझावें । इस बुझावे वाले स्वरस में, करीर-पुष्प के बुक्कस को (उपरोक्त स्वरस निकाल लेने पर अवशिष्ट-बुक्कस-भुक्की को) मिलाकर कल्क बनालें । अब, इस कल्क में उपरोक्त ताम्र मुद्रा स्थापित करके, उसे दो या तीन गजपुट की आंच में फूंक देवें । श्वेत-वर्ण की इस भस्म को एक चांवल-भर मात्रा में लेने से

१-कतकबीजकल्के । २-रूप्यकं जयपुरीयं, तस्यैव प्रशस्तत्वात् । ३-ताम्रीं मुद्रामित्यर्थः । ४-करीरपुष्पस्वरसे । ५-मरुशाखिपुष्पबुक्कसे निर्वापणावशिष्टं रसं निक्षिप्य कल्कयेदिति । ६-विकल्पोऽयम् । ७-तन्दुलाधिकं न देयम् ।

१३ प्रस्थैकगण्डीररसे श्रवस्थं निर्वाप्य ढब्बूकमनेकवारम्।
तद्गर्भसान्तश्छगणोत्तमाभ्यां पचेन दिक्प्रस्थसमुद्धृताभ्याम् ॥ ५२ ॥
पर प्रयोगोऽद्भुतशक्तिधारी मुमूर्षता प्राणगते प्रणेता।
मत्यपि सारस्वतशम्भुदत्तविद्यार्थिना पञ्चनदालयेन ॥ ५३ ॥
१४ पिष्ट्वा यजार्कदुग्धेन पृथगक्षावयोरसो।
सपुटे न्यस्य संमुद्य सप्तप्रस्थोपलै: पुटेत् ॥ ५४ ॥
त्रिभि पुटैर्भवेद्भस्म पक्वदाडिमसंनिभम्।
भक्षयेत्तन्दुलमित पीतताम्बूलयोगत ॥ ५५ ॥
त्रिभिर्दिनैर्भवेत् कामी यदि पश्येत् स्त्रियं न हि।
रक्तपित्तं जयेत् सिंहशार्करेण निषेवितम् ॥ ५६ ॥
१५ करकं न्यस्य हसन्त्या तत्र च यसदं द्रवीकृत्य।
तदुपरि तदर्धमान त्रि किर चिरयन् पुनर्नवामूलम् ॥ ५७ ॥
तदनु तदर्धं तत्र त्रि क्षिप पूर्वमिव शृङ्गविषम्।
सिद्धमिति यसदभसितं वल्लमित वा ततो मनागूनम् ॥ ५८ ॥

तथा पथ्य में घृत सेवन से बल में वृद्धि होती है ॥ ५०-५१ ॥ राई के चौसठ तोला भर गण्डीर-स्वरस में, एक ताम्र मुद्रा को तपा तपा कर, अनेकों-(शतवार) बुझावे दें। फिर, इस मुद्रा को निष्पीडित-गण्डीर-शुल्म में स्थापित करके, ५-५ सेर की दो पाथियों में रखकर २५६ तोला शुष्क उपले की अग्नि में फूंक दें। यह प्रयोग अद्भुत शक्ति देता है। यहा तक कि मरणासन्न व्यक्ति के प्राणों की भी यह रक्षा करता है। मेरे ही छात्र, पजाब-निवासी शम्भुदत्त सारस्वत ने यह प्रयोग मुझे बताया है ॥ ५२-५३ ॥ लोह-भस्म तथा पारद प्रत्येक एक एक तोला लेकर दोनो को उदुबर के दूध से खूब घोटले। फिर, शराव-सपुट में रखकर कपडमिट्टी करके, ४४८ तोला उपले में फूक दें। इस तरह तीन ही पुटो मे पक्व दाडिम-फल क समान वर्णवाली उत्तम भस्म बन जायेगी। इसकी एक चावल-भर मात्रा को ताबूल के साथ लेने से तीन दिवस मे ही, स्त्री की ओर दृष्टि न करने पर भी काम स्वत उत्पन्न होने लगता है। इसेही, रक्त-पित्त की शान्ति के लिए 'आटरूपक (अरडूसा) शार्कर' के साथ, सेवन करना चाहिये ॥ ५४-५६ ॥ अगीठी पर एक करवे (मृत्पात्र) में यशद को पिघला लेवें। यशद से अर्ध-मात्रा में पुनर्नवा मूल के चूर्ण को, कुछ देर ठहर ठहर कर, तीन वार, द्रवित यशद पर प्रक्षिप्त करदें। तदनन्तर, अर्ध-मात्रा भर शृगी विष के चूर्ण को भी, इसी तरह डाल देवें। इस विधि से यशद-भस्म सिद्ध हो जायेगी। इस भस्म को एक वाल-मात्रा में अथवा इससे कुछ न्यूनमात्रा मे-ताबूल के साथ

१-राजिकाया प्रस्थगण्डीरस्य 'गांदल' इति प्रसिद्धस्य रसे। २-गोमयरचितशुष्केन दिक्प्रस्थमितेन छगणद्वयेनेति। ३-पञ्चनद 'पजाब' इति प्रसिद्धो भारतभाग। ४-औदुम्बरदुग्धेन। ५-शरावयोरिति शेष। ६-आटरूपकशार्करेणेत्यर्थ। ७-निक्षिप्त्वेत्यर्थ।

दलगं निषेव्य तदुपरि कवलय गुडपावकं स्मरोद्दीप्त्यै।
रससेवनमर्यादा दिनानि नव तैलवर्जितं पथ्यम्॥ ५९॥

१६ भागैकमहिफेनस्य नागभागचतुष्टयम्।
घर्षणान्निम्बकाष्ठेन मन्दवह्निप्रदानतः॥ ६०॥
नागभूतिर्भवेद्भव्या मनाक् पीतहरित्प्रभा।
शस्ता मेहादिरोगेषु वीर्यदार्ढ्यकरी मता॥ ६१॥

१७ तालं ज्योतिष्मतीतैले मज्जयित्वा मुहुर्मुहुः।
द्रुतनागोपरि प्राज्ञः क्षिप्रं विष्वग्विवर्तयेत्॥ ६२॥
सर्वतैलक्षये जाते तत्तालं प्राप्तसंस्कृति।
विशालाफलगर्भस्थं त्रिभिश्छगणकैः पुटेत्॥ ६३॥
एवं शतपुटैस्तालं सिद्धिमालम्बते पराम्।
सार्धप्रस्थं ब्रुवे तैलं नागं तालं त्विहाभ्रकम्॥ ६४॥

१८ शाणाः शिलातो दश तालतोऽपि ते
खण्डात् खरामा दधि साम्लमाढकम्।

लेकर, उसपर गुड-निर्मित सीरे का भोजन करें। यह भस्म तीव्र विरेचनपूर्वक कामोद्दीपन करती है। यह अनुभव सिद्ध है। इस रस के सेवन की अवधि नव दिवस तक ही है। तैलवर्जित पथ्य है॥ ५७–५९॥ एक भाग अफीम तथा चार भाग सीसा लेवें। सीसे को एक मिट्टी की कडाही में पिघला लें-फिर, उसमें शनैः शनैः अल्पाल्प-मात्रा से अफीम-चूर्ण का प्रक्षेप करते हुये, निंब-काष्ठ से उसे रगडते रहें। इस प्रकार मंदाग्निद्वारा, किञ्चित् पीत-हरित-प्रभा से युक्त उत्तम नागभस्म सिद्ध हो जायेगी। प्रमेहादि रोगों में यह प्रशस्त है, तथा वीर्य को गाढा करती है॥ ६०–६१॥ हरताल को ज्योतिष्मती के तैल में पुनः पुनः बुझाकर, इस तैल लिप्त हरताल को चीमटे से पकड कर से पिघले हुये सीसे पर चारों तरफ से तपावें। तैल के संपूर्ण जल जाने पर हरिताल का संस्कार हो जाता है। इस तरह शोधित हरताल को, इन्द्रवारुणी-फल के गूदे में रखकर तीन उपलों का पुट देवें। इस तरह शतपुट देनेपर ताल परम सिद्धि को प्राप्त होता है। उपरोक्तविधि में तैल तथा नाग प्रत्येक ९६ तोला लेवें तथा ताल चार अथवा दो तोलाभर लेवें॥६२–६४॥ मनःशिला तथा हरताल प्रत्येक तीस-माषा, शक्कर ९० माषा, किंचित् खटासयुक्त दही २५६ तोला-इन सब को एकत्र पात्र में भर

१–ताम्बूलपत्रसहितम्। २–इदं यसदभस्म महान्तं विरेकमुद्भाव्य स्मरोद्दीपनं करोतीत्यनुभवः। ३–खर्परस्थे द्राविते निम्बकाष्ठेन घृष्यमाणे सीसके शनैः शनैरहिफेनप्रक्षेपपरम्परा कार्या। ४–हरितालम्। ५–संदंशादियन्त्रेण गृहीत्वेति शेषः। ६–नागमपि सार्धप्रस्थमेव। ७–पलं पलार्धं वा। ८–मनःशिलाया दशशाणा इत्यर्थः। ९–त्रिंशच्छाणा इत्यर्थः। १०–ईषदम्लम्।

निखातमह्नां भुवि विंशतिं ततो
मथान निक्षिप्य रसस्य तिन्दुकम् ॥ ६५ ॥
उदेति यत् सर्पिरहिच्छदे तद्‌द्याद्द्विगुञ्जं लवणादि जह्यात् ।
अनेन वृद्धोऽपि दिनैः कियद्भी रतौ युवेव प्रमदा धिनोति ॥ ६६ ॥

१९ द्विगुणोपकं कटाहे मल्लं सलिलेन सान्द्रमावर्त्य ।
पातालयन्त्रपतितं श्वोतनकं हन्ति वातकफौ ॥ ६७ ॥

२० सितकरवीरकिसलयप्रस्थपिहितसाभिमुष्टिमल्लस्य
वलिरसंभयन्त्रविच्युतमभ्यङ्गात् पुंस्त्वदीपनं तैलम् ॥ ६८ ॥

२१ शतमल्लसिद्धपयसः प्रणीय दधि तज्जमाज्यमाकृष्य ।
वल्लं वयस्य कवलय शतं दिनानि शतमल्लतुल्यः स्याः ॥ ६९ ॥

२२ अन्तर्निमग्नमल्लं कृशानुना साधयेदुमातैलम् ।
तत्तैलं स च मल्लो लिङ्गे लेप्यं वलासरुजि भक्ष्यः ॥ ७० ॥

२३ वियदनलदिनानि स्थापितं सैरशाणे
पयसि वसुकुमाषं दौह्वमल्लस्य खण्डम् ।

कर भूगर्त में गाड दें। तथा बीस दिवस पर्यंत इसी तरह रहने देवें। फिर, इनको निकालकर, एक तोला पारद डालकर खूब मथे। मथने से जो घी निकले उसको दो गुंजा मात्रा में नागरबेल-पान के साथ सेवन करें। लवणाम्ल तैल प्रभृति द्रव्यों का त्याग करें। एकबीस दिवस तक, इसके प्रयोग से वृद्ध भी युवा की तरह, तरुणियों को रति-क्रीडा में अभिभूत कर देता है। यह क्षय, कास आदि विकारों को भी मिटाता है ॥६५-६६॥ शतमल्ल तथा इससे द्विगुणित-उपक (क्षार-मृत्तिका विशेष) इन दोनों को एक कटाह में, जल में मिलाकर, घोल लेवें। फिर, पाताल यन्त्रद्वारा इसको टपका लें। यह श्वोतनक-अर्क-वात तथा कफ को नष्ट कर देता है ॥ ६७ ॥ अर्ध-तोला मल्ल को, श्वेत करवीरकी ६४ तोला कोपलों में ढककर, उसका पाताल-यन्त्रद्वारा तैल टपका लें। इस तैल की मालिश से पुंस्त्व की प्राप्तिपूर्वक कामोत्तेजना बढती है ॥ ६८ ॥ मेषी-दूध को शतमल्ल से सिद्ध करके, उसका दही जमालें। इस दही को मथकर निकाले गये घृत का, हे मित्र, एक वाल-मात्रा में प्रतिदिन, शतदिवस पर्यंत-सेवन करने से शत-मल्लों के तुल्य बल की प्राप्ति होती है ॥ ६९ ॥ अतसी के तैल में मल्ल को पकावें, इस तैल का लिङ्ग पर मर्दन करें, तथा मल्ल का कफ-विकार में उपयोग करें ॥ ७० ॥ शङ्खतुल्य श्वेतमल्ल को अठारह माषा भर मात्रा में लेकर तुलिया थोरके

१-पारदस्य कर्षं निक्षिप्य मथानेत्यन्वयः । २-नागवल्लीदले । ३-एकविंशत्या । ४-उपलक्षणमात्रमिद, तेन क्षयकासादिष्वपीव यौगिकमिदम् । ५-शतमल्लम् । ६-पातालयन्त्रद्वारा विच्युतम् । ७-पयोऽत्र केचिन्मेषीभव गृह्णन्ति । ८-अतसीतैलम् । ९-तैलं लेप्यं, मल्लश्च भक्ष्य इत्यन्वयः । १०-त्रिंशद्दिनानि । ११-इषीकासुहीभवे । १२-अष्टादशमाषम् । १३-शङ्खवत् स्वच्छस्य मल्लस्य ।

सकनकमृदि[1] भाण्डे संपुटस्थं[2] द्विसन्ध्यं
किंयदपि[3] पच पक्षं जायते हीरहारि ॥ ७१ ॥
परिणतफणिवल्लीपर्णखण्डेन गुञ्जा-
सदृशमुषसि शस्तं पञ्च वा षड् दिनानि ।
वितर यदि पिपासा दुग्धमेव द्वियामं
तदनु सघृतमन्नं पुंस्त्वपुष्ट्यै प्रयच्छ ॥ ७२ ॥

२४ गोमूत्रे क्वथितः स्नुहीपयसि च न्यस्तस्ततः क्षालितो
मल्लः[4] सन्मदिराभिषेकविधितः सिद्धोऽग्निना खर्परे ।
मान्द्यश्लेष्मसमीररुक्सनकश्वासामहिक्काज्वर-
क्लैब्यातङ्ककुरङ्गकेषु कुरुते शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ७३ ॥
गोमूत्रं[5] कुडवं स्नुह्याः क्षीरे पक्षमवस्थितिः ।
मद्यं प्रस्थं पिचुर्मल्लः पद्मकोशोपमः शिखी[6] ॥ ७४ ॥

२५ विशालाफलमध्यं[7] स्यात्त्रिंशन्माषप्रमाणकम् ।
सार्धद्विमाषको मल्लः कुन्दुरुर्वार्धितोलकः[8] ॥ ७५ ॥

दूध में तीस दिवस पर्यंत रहने दें। फिर इसको, ३२० तोला भर पीली चिकनी मिट्टी से पूर्ण पात्र में शराव-संपुटित करके रख देवें। अब, इसे, सुबह तथा सांझ को-दो वार अग्नि से, शराव संपुट जब तक गरम न हो जाये तब तक, पकावें। इस तरह पंदरह दिवस तक पुट देनेपर, मल्ल की, हीरक-प्रभा को हरनेवाली भस्म सिद्ध हो जायेगी। इस भस्म को एक गुंजा-भर मात्रा में नागरवेल के परिपक्व पत्र के साथ, प्रातः, पांच या छह दिवस तक सेवन करें। यदि प्यास लगे तो दूध ही पीना चाहिये। दोनों समय घृत-मिश्रित अन्न का भोजन करें। यह पुंस्त्व तथा पुष्टि अर्पण करता है ॥ ७१–७२ ॥

मल्ल को, प्रथम, गोमूत्र में उकालें; फिर, उसे स्नुही-क्षीर में डुबोकर रखदें। पंदरह दिवस पीछे उसको निकाल कर प्रक्षालित करें। अब, इस मल्लको एक मिट्टी की तावडी में रखकर-नीचे से अग्नि देते हुये, ऊपर से उत्तम मदिरा की धारा से अभिषेक करें। इस विधि से सिद्ध किया गया मल्ल अग्नि-मांद्य, कफ-वात जन्य विकार, आंव, हिक्का, ज्वर तथा नपुंसकता आदि रोग-रूपी मृग-समूह में शार्दूल-तुल्य क्रीडा करता है। (शार्दूल-विक्रीडितम्)। इस योग में गोमूत्र सोलह तोला लें। स्नुही-क्षीर में पंदरह दिवस रहने दें। मद्य ६४ तोला तथा मल्ल दो तोला लेवें। कमलोदर-लालिमा तुल्य अग्नि की तीव्रता रखें तथा एक चांवल भर मात्रा में पतासे के साथ सेवन करें ॥ ७३–७४ ॥

इन्द्रावारुणी-फल का बीजरहित-गूदा तीस माषा, मल्ल २½ माषा तथा कुन्दरु

१–कनकमृत् पीतवर्णा स्निग्धा च मृत्, तस्याः प्रमाणं पञ्चप्रस्थमितम्। २–शराव-संपुटस्थम्। ३–यावता कालेनौष्ण्यं भवेद्यन्त्रस्य तावन्तं कालमित्यर्थः। ४–तन्दुलप्रमाण-सितावुद्बुदेन देयः। मद्यं चात्र द्विवाराकृष्टं महर्घमादेयम्। ५–पूर्वोक्तयोगस्य प्रमाणादिव्या-ख्यानमिदम्। ६–अग्निः। ७–बीजरहितं ग्राह्यम्। ८–चतुस्तोलकः।

सर्वं संमर्द्य सप्ताहं काकणन्तीसमा वटी ।
गीर्णा दुग्धानुपानेन पाण्ड्यशोथविबन्धनुत् ॥ ७६ ॥
२६ पञ्चाशदब्दोत्तरमप्यखण्डितां सखे ! समस्तेन्द्रियशक्तिमीहसे ।
अशुद्धमेवोन्दुरमारमद्धि रे तिल तिल द्वादशवत्सरावधि ॥ ७७ ॥
२७ मल्लाहिफेनदरदं वटपयसाऽऽपिष्य निर्मिता वल्लैः ।
सघृतसितदुग्धगीर्णा संग्राहिण्य सरा वितीर्णबला ॥ ७८ ॥
२८ जातीफलं जातिपत्रीं सर्पफेनं लवङ्गकम् ।
तोलं तोलं पृथक्कृत्वा सर्वमेकत्र कल्कयेत् ॥ ७९ ॥
कल्कान्तः कल्कतुलितं न्युप्त्वा हिङ्गुलखण्डकम् ।
कल्कस्य गोलकं बद्ध्वा वस्त्रग्रन्थौ शिखायुजि ॥ ८० ॥
तैलान्तरागलं ग्रन्थिं मज्जयित्वा शरावके ।
दीपवज्ज्वालयेन्मूर्ध्नि वासरानेकविंशतिम् ॥ ८१ ॥

चार तोला, इन सबको एकत्र एक सप्ताह तक खूब खरल करके गुन्जा-भर गुटिकायें बनालें। दुग्धानुपान-पूर्वक एक वटी को प्रातः निगल जायें। इसकी सेवनावधि पन्द्रह दिवस तक है। यह नपुंसकता, शोथ तथा विबन्ध को दूर करती है ॥ ७५ ॥ हे मित्र ! पचास वर्ष की वय के उपरान्त भी, यदि तुम अपनी इन्द्रिय समूह की सम्पूर्ण शक्ति को अखण्डित रखना चाहते हो, तो पथ्य-रूपसे घृतप्रचुर भोजन करते हुये, बारह वर्ष तक, अरे ! एक एक तिल-जितनी मात्रा में अशुद्ध मल्लका ही सेवन करते रहो ॥ ७६-७७ ॥ मल्ल, अफीम तथा हिंगुल को वट-दुग्ध में घोटकर मूंग-तुल्य गुटिकायें बनालें। मिश्री तथा घृतयुक्त दूध के साथ सेवन करने से यह बल देती है। बद्ध मल का निःसरण करती है। भिन्न-मल को रोकती है अर्थात् अतिसार में लाभ देती है। इस गुटी का यह अचिन्त्य-प्रभाव है ॥ ७८ ॥ जायफल, जावित्री, अफीम तथा लविंग प्रत्येक १-१ तोला लेकर इनका एकत्र कल्क बनालें। इस कल्क में तुल्य वजन जितना हिंगुल का खड रखदें तथा कल्क का गोला बनालें। इस गोलक को वस्त्र-पोटली में बांधलें-तथा पोटली के दोनों सिरों को एकत्र उमेठकर वर्तिकाकार बनालें। अब, इस पोटली को आमुख (अर्थात् पोटली की ग्रंथि तक), तैलपूर्ण शराव में रखकर, पोटली के वर्तिकाकार सिरे को दीपक की तरह प्रज्वलित कर दें। इस तरह इक्कीस दिवस पर्यंत पुनः पुनः तैल डालकर इसको प्रदीप्त-स्थिति में रहने दें। तदनन्तर, कल्क-गोलक में से सिद्ध हिंगुल-खड को निकाल लेवें। इस हिंगुल-खड को पुनः धतूरे के शुद्ध किये गये बीजों के कल्क में रखदें। अब, इस हिंगुल-खड-गर्भित कल्क-गोलक को मोमल

१-प्रातरिति शेषः । सेवनमर्यादा पञ्चदश दिनानि । २-शतमल्लम् । घृताशिना चात्र भवितव्यम् । ३-मुद्गप्रमाणा । ४-भिन्नवर्चसां समाहिण्यो, बद्धवर्चसां सरा, इति विषयभेदादत्र निरोधः, प्रभावस्याचिन्त्यत्वाच्च सर्वं संघटते इति । ५-आकृष्य । ६-वस्त्रप्रान्तयोर्वर्तनेन शिखा कार्या । ७-शिखा गलादधोवर्तिनि तैले पुनरन्यत्तैलं प्रक्षेप्यम् ।

कल्कगोलात्ततः कृष्ट्वा सिद्धं हिङ्गुलखण्डकम् ।
शुद्धधत्तूरबीजानां कल्कं कृत्वा तदन्तरे ॥ ८२ ॥
निधाय कोष्णभसितैस्त्रिवारमवकूलयेत् ।
कुङ्कुमाम्बरकस्तूरीकाञ्चनानि यथाक्रमम् ॥ ८३ ॥
द्वात्रिंशदष्टषट्सप्तवल्लानि परिचूर्णयेत् ।
नागवल्लीदलरसैर्विभाव्य वटिकाः कृताः ॥ ८४ ॥
बलासवातमन्दाग्निप्रमेहमथनक्षमाः ।
यथोचितानुपानेन प्रयोज्या भिषगुत्तमैः ॥ ८५ ॥

२९ स्विन्नक्षीरैर्महिष्या वटपयसि पुनर्व्यालफेनेन पिष्टं
धृत्वा स्वाद्वीफलान्तर्द्विगुणितदरदं युङ्क्ष्व गोधूमलोप्त्रीम् ।
गव्याज्ये साधु पक्त्वा मसृणय दरदं नागवल्लीपयोभि-
र्गुञ्जामञ्जुं तदीयां निशि गिल गुलिकां चेच्चिरं रन्तुमिच्छा ॥ ८६ ॥

३० त्रिघटे पलाण्डुजरसे पक्तव्यं दोलया पलं दरदम् ।
अष्टाहमुषितमवनौ गुञ्जैकं कामकारिपर्णेन ॥ ८७ ॥

(चूल्हे की गरम राख) से आच्छादित करदें; इस तरह गरम-राख से तीन बार आच्छादित करें। अन्त में, कल्क में से हिंगुल-खंड को निकाल लेवें। अब केसर, अंबर, कस्तूरी तथा स्वर्ण-पत्र को क्रमशः बत्तीस, आठ, छ तथा सात वालभर प्रमाण में लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण बनालें। अब, इस चूर्णसहित हिंगुल को एकत्र खरल में, नागरवेल के पत्र-स्वरस की भावना देकर खूब मर्दन करके वटिकायें बांधलें। यह टिकायें मंदाग्नि, कफ, वात तथा प्रमेह का मथन कर देती हैं। श्रेष्ठ वैद्यों को यथोचित अनुपानपूर्वक इसका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७८–८५ ॥

एक तोला हिंगुल को, भैंस के १२८ तोला दूध में, दोलायंत्र-द्वारा, स्विन्न करलें। दोला को इस तरह लटकाना चाहिये कि जिससे दूध के उफान का फेन भी उसे स्पर्श न कर सके। अर्थात् दुग्धोद्भूत-बाष्पद्वारा ही हिंगुल का स्वेदन करें। जबतक दूध घट्ट न हो जाये तब तक स्वेदन करते रहें। फिर, वट के एक तोला भर दूध में छह माषा अफीम घोलकर, इस द्रव-मिश्रण से, स्विन्न हिंगुल को खरल में खूब मर्दित कर लें। इस तरह मर्दित हिंगुल को, छुहारे में भर देवें-तथा इसके चारों ओर गेहूं के आटे की लपरी चुपडकर, गाय के सोलह तोला घी में अच्छी तरह पकावें। तदनन्तर, नागरवेल पत्र स्वरस में इसको खूब बारीक घोटकर, एक गुंजाभर मात्रा से चिररमणार्थ-रात्रि के समय लेवें ॥ ८६ ॥ चार तोला हिंगुल को, प्याज के तीन द्रोण रस में, दोलायंत्र द्वारा-पकावें। तदुपरांत, इसे आठ दिन तक भू-गर्त में गाड दें।

१–'भोभल' इति प्रसिद्धः। २–आच्छादयेत्। ३–काञ्चनस्य सूक्ष्मतरदलानि ग्राह्याणि। ४–दोलायन्त्रेण स्वेदः। दोला च तथा लम्बनीया यथोत्तिष्ठद्भिः फेनैरपि दोलास्पर्शो न भवेत्। दुग्धस्य सान्द्रतावधिस्वेदः। दुग्धं च प्रस्थद्वयम्। ५–तोलकमिते

३१ जातीफलस्य फणिफेनभृतोदरस्य लिप्तस्य सत्पुटमृदा परिपाचितस्य ।
पलैकुरङ्गसुमकुङ्कुमहिङ्गुलाढ्या रेतो रुणद्धि गुटिका पयसा निपीता ॥

३२ आकल्लजातीफलजातिकैलाकस्तूरिकाकुङ्कुमहिङ्गुलानाम् ।
पटे पटुः पोट्टलिका प्रणीय निक्षिप्य दुग्धे विपचेद्वसन्त्या ॥ ८९ ॥
ज्ञात्वाऽर्धशेषं ससितं पयस्तन्निष्काश्य तां पोट्टलिकां पिबेद्यः ।
भवन्ति भोगाय न तस्य शक्ताः प्रचण्डकामाः शतशोऽपि रामाः ॥९०॥

३३ भङ्गाबीजलवङ्गहिङ्गुलविषाकल्लत्रिकट्वश्वजि-
जातीसालिमजातिकाफलमिषेर्माषा स्युरष्टौ पृथक् ।
पिष्ट्वा स्थाप्य च नारिकेरजठरे संसाध्य दुग्धाढके
खण्डे पञ्चगुणे क्षिपेत् पलमिता वट्यो महापुष्टिदाः ॥ ९१ ॥

३४ निमज्जितानि त्रिदिनं घृतान्तः खण्डानि वै शाम्बरशृङ्गजानि ।
दिक्प्रस्थके काननगोमयानां दुग्धोजकल्के पच साधु षोढा ॥ ९२ ॥

नागरवेल-पत्र में एक गुञ्जा मात्रा से सेवन करें ॥ ८७ ॥ जायफल के भीतर अफीम भरकर कपडमिट्टी करके उसे अच्छी तरह पकालें। तदुपरान्त, इलायची, कस्तूरी, लौंग, केसर तथा हिंगुल-इनको एकत्र जायफल-तुल्य-वजन में लेकर, उपरोक्त सिद्ध जायफल के साथ खरल में घोट लें। दूध के साथ इस गुटी को लेने से वीर्य-स्तंभित होता है ॥ ८८ ॥ अकल्करा, जायफल, जावित्री, इलायची, कस्तूरी, केसर तथा हिंगुल-इनको एकत्र एक पोटली में अच्छी तरह बांधकर तथा इसे दूध में रखकर, अगीठि ऊपर पकावें। जब दूध आधा रह जाये तब उसमें से पोटली निकाल लेवें। मिश्री मिलाकर इस दूध को पीने वाले की भोग-शक्ति के लिये, काम-वेगसे पीडित शत-युवतियां भी, पर्याप्त नहीं हैं ॥ ८९-९० ॥

भांग के बीज, लौंग, हिंगुल, शृंगीविष, अकल्करा, त्रिकटु, करवीर, जावित्री, सालिम, जायफल तथा सौंफ प्रत्येक आठ तोला लेकर-इनका वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण बनाकर, नारियेल की गुलिका के भीतर भर देवें। फिर, २५६ तोला दूध में इसे पकाकर सिद्ध करलें। अब, इस नारियेल को, पांच गुणा मिश्री मिलाकर, पीसलें, तथा चार तोला वजन की वटिकायें बांधलें। यह वटियां महापुष्टि अर्पण करती हैं ॥ ९१ ॥ घृत में तीन दिवस पर्यंत डुबोकर रखे गये सोलह तोला शम्बर-शृंग के टुकडों को, दूधी के चौसठ तोला कल्क में रखकर, छह सो चालीस (अथवा तीन सो चौस) तोला वन्य-

---

चटदुग्धे षण्मापेणाहिफेनेन सह तोलकमितं हिङ्गुलं पिष्ट्वा खाद्दीफलान्तर्धृत्वा तदुपरि गोधूम-लोप्त्री युङ्क्ष्वेति योजना । ६-कुडवमिते । ७-द्रोणत्रयमिते ।

१-एलादिसमारो जातीफलसमो ग्राह्य । अत्र कुरङ्गशब्देन कस्तूरी, सुमशब्देन च लवङ्गं ग्राह्यम् । २-जातिका जातिपत्री । ३-विष शृङ्गीकम् । ४-अश्वजित् करवीर । जाती जातिपत्री । ५-कुडवमितानि । ६-शम्बरो विकटबहुविषाण शरदि शृङ्गत्यागी कश्चिन्मृगविशेष । ७-सौष्ठुने, तेन चरकानुमतपयप्रस्थैरेवेति । ८-प्रस्थमिते ।

ततः स्नुहीसूर्यपयःसु देहि पुटं द्विपेन्द्राभिधमेकमेव ।
सिद्धं सितं भस्म भजस्व मापं प्रभूतदुग्धं यदि पातुमिच्छा ॥ ९३ ॥

३५ वब्बूललम्बिकण्टकगृहगतकीटं विदाह्य घृतकर्के ।
तद्भस्म तन्दुलमितं संतानिकया तनोत्यतनुमतनुम् ॥ ९४ ॥

३६ स्वाद्वीफलान्यधिपयो ब्रुडितान्यनस्थी-
न्यन्तःक्षुराणि पच सर्पिषि लोप्त्रिगानि ।
सक्षौद्रभाण्डनिहितानि खनाधिचुल्लि-
भूद्द्विदिनान्यनुपयांसि भजस्व पुष्ट्यै ॥ ९५ ॥

३७ छोहाराफलमज्जा विभज्य पयसा पिचून्मितः पीतः ।
पुष्णाति वपुषि वीर्यं किं च क्लिश्नात्यतीसारम् ॥ ९६ ॥

३८ भावितात् स्वरसैः सप्तवारं गोक्षुरकात् पलम् ।
वर्याकल्कभैषज्यमुशलीतः पृथक् पलम् ॥ ९७ ॥

गोवरी की आंच से छह वार अच्छी तरह पकावें। फिर स्नुही तथा आकडे के दूध में रख कर एक गजपुट से फूंक दें। इससे शम्बर -सींगों की श्वेतभस्म सिद्ध हो जायेगी। यदि, अधिक प्रमाण में दूध पीकर उसे पचा जाने की इच्छा हो तो इस भस्म को एक माषा प्रमाण में नागरवेल पत्र के साथ लेवें ॥ ९२-९३ ॥ बबूल के कांटों पर निर्मित-कोषगत कीट को, घृत स्निग्ध एवं लाक्षा तथा विष से लिप्त, छोटे से मुलायम करवे में रखकर, करीब २½ प्रस्थ कंडों की अग्नि से जला देवें। एक चांवल-भर इस भस्म को दूध की मलाई के साथ लेने से प्रबलकामोत्तेजना होती है ॥९४॥ गुठली रहित छुहारों को दूध में भिगो देवें। फिर, उनमें तालमखाने के बीज भरकर-तथा इनको, चारों ओर से गोधूम आटे की लूपरी से प्रलिप्त करके, घी में पकावें। तदुपरांत, इन छुहारों को, इनसे चतुर्गुणशहद पूर्ण-पात्र में निमग्न करदें। अब, इस पात्र को, चूल्हे में गर्त खोदकर गाड देवें। इस तरह करने से, इस पात्र को नित्य प्रति चूल्हे की अग्नि का ताप लगता रहेगा। इस पात्र को एक वीस दिवस पर्यंत इसी तरह गर्त में रहने दें। तदुपरांत, पात्र को निकाल कर, एक एक छुहारे को दूध के साथ, चबाकर पीजायें। इससे पुष्टि मिलती है ॥ ९५ ॥

छुहारे के फल की मज्जा को दूध में मसलकर, दो तोला मात्रा में पीने से, शरीर में वीर्य की वृद्धि होती है तथा अतिसार मिटता है। इसी छुहारे को जल में मसलकर लेने से विबंध दूर होता है ॥ ९६ ॥ चार तोला गोखरू को, उसी के स्वरस की सात

१-गजपुटम् । २-नागवल्लीदलादिनेति शेषः । ३-अध्यर्धसेटकद्वयमितैरछगणकैरिति । ४-घृतस्निग्धे लाक्षाविषलिप्ते स्वल्पमृद्भाण्डे । ५-दुग्धोत्थया । ६-बहुलं काममित्यर्थः । ७-'छोहारा' इति प्रसिद्धानि । ८-क्षुरः कोकिलाक्षः 'तालमखाना' इति लोकप्रसिद्धः । ९-स्वाद्वीफलापेक्षया क्षौद्रं चतुर्गुणम् । १०-तथाकरणेन प्रतिदिनं तापसंभवः । ११-एकविंशतिदिनानि । १२-पुष्टिकामो दुग्धेन, विबन्धकामो जलेनेति विभागः । १३-वरी शतावरी, भैषज्यं शुण्ठी ।

मापाः पट् कुङ्कुमात् खण्डं सर्वतुल्यं समीरितम् ।
पयसैतद्रज॰ पीतं पुष्टिद भवति ध्रुवम् ॥ ९८ ॥

३९ उच्चटामूलचूर्णानि पीत्वा दुग्धै॰ सितासखै॰ ।
जीर्णप्रायोऽपि भवति समुद्दीपितदर्पकः ॥ ९९ ॥

४० शाणौ नवाकल्लकवानरीजौ गुञ्जा॰ सिता॰ शाणमिता विचूर्ण्य ।
प्रस्थे पयस्यर्धशृते प्रपाच्य योऽश्नाति योषासु स नैति तृप्तिम् ॥१००॥

४१ शुण्ठीशाल्मलिनिर्यासौ गद्याणावस्थिशृङ्खला ।
आकारकरभश्चोभावर्धगद्याणकौ पृथक् ॥ १०१ ॥
लोहवाण द्विगद्याणमष्टगद्याणकास्तिलाः ।
चपलौ चाब्धिगद्याणा सर्वतुल्या सितोपला ॥ १०२ ॥
चूर्णमुत्तमरामाख्य बलवीर्यकृदुत्तमम् ।
पराऽस्य कार्पिकी मात्रा ह्यनुपान सितापयः ॥ १०३ ॥

४२ विश्वशाल्मलिनिर्यासलोहवाणजनू रज॰ ।
सशर्कर पय पीतं धातुपुष्टिकर परम् ॥ १०४ ॥

भावनायें देवें। फिर शतावरी, अकलकरा, सूठ तथा मुशली प्रत्येक चार तोला तथा केसर छह मापा लेकर, गोखरूसहित इनका एकत्र सूक्ष्म कपडछान चूर्ण बनालें। तदुपरात, इस चूर्ण में चूर्णसमान वजन में मिश्रीचूर्ण मिलाकर, दूध के साथ सेवन करने से निश्चय पुष्टि मिलती है ॥ ९७–९८ ॥ उटींगण मूल के चूर्ण को मिश्रीमिश्रित दूध के साथ पीकर, वृद्धत्व को प्राप्त भी, काम-भाव से उद्दीप्त हो उठता है ॥९९॥ नूतन-अकल्करा तथा कौंच प्रत्येक तीन तीन मापा तथा श्वेतगुंजा तीन मापा इनको लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को चौसठ तोला दूध में पकावें। अर्धावशेष रहने पर, दूध को उतार, उसमें शक्कर मिलाकर पीनेवाला अतृप्त की तरह रमणियों से रमण करता है ॥ १०० ॥ सूठ तथा शाल्मलिनिर्यास-प्रत्येक छह मापा, मैंदालकडी तथा अकल्करा प्रत्येक तीन मापा, लोहवाण बारह मापा, तिल अडतालीस मापा, पिप्पली चौबीस मापा तथा इन सभी द्रव्यों से समान-भाग में मिश्री, इनका एकत्र सूक्ष्म चूर्ण करलें। बल तथा वीर्य की वृद्धि करने वाला यह 'उत्तम चूर्ण' उत्तमराम से प्राप्त होने के कारण 'उत्तम राम' नाम से प्रसिद्ध है। इसकी उत्तम-मात्रा एक तोला है, तथा अनुपान है, मिश्री-मिश्रित-मधुर-दूध ॥१०१–१०३॥ सूठ, शाल्मलि निर्यास तथा लोहवाण से निर्मित चूर्ण को, शर्करा-मिश्रित दूध के साथ पीने से

१–'उटींगण' इति प्रसिद्धस्य मूलचूर्णानि दुग्ध कोष्ण चेदेतच्चूर्णक्षेपेनोत्पणतीति। २–"कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्ग" इति कोश। ३–श्वेतवर्णा गुञ्जा इति रुबध। ४–'मैदालकडी' इति ख्याता। ५–आकल्लकम् 'अकरकरा' इति ख्यातम्। ६–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्ध धूपोपयोगि सुगन्धि द्रव्यम्। ७–पिप्पली। ८–चूर्णम् ॥

४३ समं शाल्मलिनिर्यासैर्लोहबाणं सितोत्तरम् ।
नक्तं पयोनुपानेन द्विवल्लं[1] तुष्टिपुष्टिदम् ॥ १०५ ॥

४४ कपर्दोपपदं[2] लोहबाणं द्वादशतोलकम् ।
जातीफललवङ्गालं[3] प्रत्येकं वार्धितोलकम्[4] ॥ १०६ ॥

काचकोशभृताद्द्रव्यकोशात्[5] तैलं समुद्धरेत् ।
तत्तैलाक्तशरीदत्तबीजाङ्कं[6] पर्णतल्लजम्[7] ॥ १०७ ॥

त्रिसन्ध्यमुपयुञ्जीत त्र्यहमेव गतस्मरः ।
पथ्यं गोधूमदुग्धाज्यशर्कराप्रभृति स्मृतम् ॥ १०८ ॥

कार्यमत्र गुरुप्रोक्तमधोभुवनयन्त्रकम् ।
आलकस्याज्यदुग्धाभ्यां त्रिवारं शुद्धिरिष्यते ॥ १०९ ॥

४५ तैलाक्तप्रत्नपादत्रैर्दध्नोऽमंत्रे[8][9] प्रपूरयेत् ।
तन्मुखे चीनचषकं न्युब्जं संयोज्य मृत्पटैः ॥ ११० ॥

पश्चात् पातालविधिना गृह्णीयात्तैलमुत्तमम् ।
तत्तैलमर्दनाद्भङ्गो ध्वजभङ्गस्य जायते ॥ १११ ॥

धातुओं की परम-पुष्टि होती है ॥ १०४ ॥ शाल्मलि-निर्यास में समान-भाग लोह-बान मिलाकर, इनके चूर्ण का दो वाल मात्रा में मिश्रीयुक्त दूध के अनुपान पूर्वक सेवन, पुष्टि तथा तुष्टि देता है ॥ १०५ ॥

कोडिया-लोहबान बारह तोला, जायफल, लौंग तथा हरिताल प्रत्येक चार तोला–इनको एकत्र काचकूपी में भरकर, पाताल-यंत्रद्वारा तैल निकाल लें। इस तैल से सिक्त-सींकद्वारा एक के अंक से अंकित नागरवेल का पान खायें (अर्थात् तैल सिक्त एक सींक-भर मात्रा से पान के साथ लेवें)। इस तरह दिवस में तीन बार लेवें। तीन दिवस-पर्यंत, इसके सेवन से ही, काम का आविर्भाव होता है। प्रयोग-काल में गोधूम, घृत, दूध, शक्कर आदि पथ्य हैं। इस तैल को गुरु-प्रोक्त, अधोभुवन (पाताल-यंत्र) द्वारा निकालें। इसयोग में हरिताल को, प्रथम, घृत तथा दूध द्वारा तीन वार शुद्ध करके, फिर उपयोग में लेना चाहिये ॥ १०६-१०९ ॥ तैल में सिक्त पुराणी जूतियों को, दहि-मंथन भांड में, भर देवें। फिर, भांड मुखपर चीनी कटोरी औंधी ढककर संधि को कपड-मिट्टी करदें। अब, पाताल-यंत्र-विधिद्वारा इसमें से उत्तम तैल टपकालें। इस तैल के मर्दन से ध्वज-भंग-भग्न हो जाता है। धूपैल-तैल-निर्माण-प्रसंग में उपवर्णित पाताल-यंत्र-विधि ही यहां उपयोग में लेवें। अर्थात् तैल

१–षड्रक्तिकम् । "त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते" इत्युक्तेः । २–'कोडिया लोहबाण' इति प्रसिद्धम् । ३–आलं हरितालम् । ४–चतुस्तोलकमित्यर्थः । ५–द्रव्यसमूहात् । ६–तत्तैलमग्ना या शरीषीका तया दत्तो लिखितो बीजाङ्क एकाङ्को यस्मिंस्तत्तथाभूतम् । ७–नागवल्लीदलम् । ८–पुराणोपानद्भिः । ९–दधिमन्थनभाण्डमित्यर्थः ।

यन्त्रन्यासो विपर्यस्ते कार्यो धूपेलयन्त्रवत् ।
कोकिलैर्दलगणैर्वह्नि पृथक् पाण्डवसेटकं ॥ ११२ ॥
तथाऽत्र कौशलं कार्यं यथा तैलस्य न क्षयः ।
तैलार्थीकृत्य पात्राण्यतिप्रत्नानि कारयेत् ॥ ११३ ॥

४६ "भङ्ग सेरै दुरुस्त पावै वरकेगोमा द्विमासे भरी
आफू सबै मिलाय तेल कचिया तोला तहा छ कँहा ।
पीछै तैल पतालयन्त्रविधितैं सीसीविषे खींचके
कीजे मर्दन मर्दकी फिरसही तेजी जगे क्यों नहीं" ॥ ११४ ॥

४७ वातामजस्नेहपिचौ मृगोत्थाकाश्मीरजातीफलजातिपत्रिका ।
एकैकशो वल्लसिताः प्रणीय विमर्द्य यामं विदधीत कूप्याम् ॥ ११५ ॥
ततः प्रलिम्पेच्छनकैरपस्थं खादेत् पृष्ठीकुव्रततिच्छदेन ।
नश्येच्छ्लथत्वं करकर्मजात तृतीयमुच्चै रचयेत् पुमर्थम् ॥ ११६ ॥

४८ पातालयन्त्रपतितं तैलं वानरविड्भवम् ।
भक्षयन्म्रक्षयन् माप भवेद्भूयो युवा नरः ॥ ११७ ॥

निकालते समय, भाण्डमुख-भाग (अर्थात् चीनी-कटोरी वाला भाग) नीचे-तथा जूतियोंवाला भाग ऊपर रखना चाहिये। उपरोक्त विधि में, करीब ३२० तोला कोयलों की तथा इतने ही वनभर कंडों की आंच देनी चाहिये। तैल को सावधानीपूर्वक इस तरह निकाले, जिससे तैल यथामात्रा में नष्ट हुये बिना, निकल सके। यहां, जूतियों को पहिले ही से वलमिच्च करके रख देनी चाहिये जिससे समय बीतने पर वह पुरानी भी हो जायेगी ॥ ११०–११३ ॥ धोकर साफ की गयी भाग एक सेर, वट-शुग पावभर, अफीम दो माशा इनको एकत्र लेकर, छह तोला कचिया तैल में निमग्न करदें। फिर, पाताल-यन्त्र विधि से, शीशी में तैल निकाल लें। इसके मर्दन से ध्वज-भंग दूर होता है तथा नवयौवन सुलभ 'ताजगी' जागृत हो उठती है ॥ ११४ ॥

बादाम के एक तोलाभर तैल में, कस्तूरी, केसर, जायफल तथा जावित्री प्रत्येक एक वाल भर मिला, एक दिन तक खरल करलें। फिर, शीशी में भरकर, सावधान-तया धीरे धीरे उपस्थपर इसका प्रलेप करें तथा पान में एक रत्ति मात्रा से सेवन भी करें। यह हस्तमैथुनोद्भूत शिथिलता को मिटाता तथा मनुष्य के तीसरे अर्थ (काम) का प्रचुर-मात्रा में संपादन करता है ॥ ११५–११६ ॥ वानर-पुरीष में से पाताल-यन्त्रद्वारा तैल-टपका लें। इसके लेप तथा भक्षण से मनुष्य नवयौवन प्राप्त

१–यथा चीनचषकमयत्वाद्भूतपादत्रभाण्ड चोपरिष्टाद्भवेत्तया कार्यम्। धूपेलतैलं च क्षुद्ररोगाधिकारे पठितम्। २–पञ्चप्रस्थमानैः । ३–प्रस्थमितैलार्थं । ४–धौतेति यावत्। ५–कुडव-मितानि। ६४–वटशुङ्गानि। ७–पट्। ८–वातामस्नेहकर्षे। ९–कस्तूरी। १०–रत्ति-प्रमाणमिति शेषः। ११–कामाभिधानम्। १२–उपस्थ इति शेषः।

४९ निष्पीतकृष्णगर्दभवृषणरुधिरया जलौकया पक्वम् ।
तैलं करनिधुवनकृतशेफःशैथिल्यहारि निर्दिष्टम् ॥ ११८ ॥

५० दक्षाण्डसारवडवापीयूषार्द्रं पटं निबध्नाति ।
भूभृद्भिरहोभिरहो पुरुषः पौरुषमवाप्नोति ॥ ११९ ॥

५१ ब्रूहात् स्खलनशीलेन केनापि यवनेन मे ।
ऋक्षजं कौक्कुरं शेफः शेफोदार्ढ्ये समीरितम् ॥ १२० ॥

५२ त्रिर्मज्जितं रविपयसि कर्पटमभिषिच्य सर्पिषा किमपि ।
प्रज्वाल्य पातयेत् सर्पिर्लिम्पेत लिङ्गदार्ढ्याय ॥ १२१ ॥

५३ शिलापृष्ठे पिष्ट्वा पलतुलितमाकारकरभं
वटीः कुर्यात् पश्चाच्छतधवलवार्ताकजरसैः ।
तया लिङ्गं लिप्त्वा सह मदिरया योऽभिरमयेत्
स्त्रियं सा सर्वस्वं वितरति च तस्मै स्पृहयति ॥ १२२ ॥

५४ साकल्लकैर्नारघसैः प्रसूनैर्लिङ्गं विलासी निशि मर्दयित्वा ।
भुङ्क्ते प्रियां यः स्खलितेऽपि शुक्रे न शिश्नशैथिल्यमुरीकरोति ॥ १२३॥

करता है ॥ ११७ ॥ तरुण तथा उन्मत्त कृष्णवर्ण - गर्दभ के वृषण - गत रुधिर का पान करवा कर जलौका को तैल में पकावें । इस तैल की मालिश से, हस्तमैथुन से उत्पन्न शिथिलता दूर होती है ॥ ११८ ॥ दक्षपक्षी के अंडे के भीतरी द्रव से तथा प्रथम प्रसूता अश्वी (घोडी) के प्रथम ही प्रथम दोहे गये दूध से, वस्त्र को आर्द्र कर उपस्थ-पर बांधने से, सात दिवस में ही पुरुष, पौरुष को प्राप्त करता है ॥ ११९॥ निम्न - प्रयोग मुझे एक पंगु - यवन ने बताया है । रींछ तथा श्वान के उपस्थ से सिद्ध जल का लेप करने से मनुष्य का लिंग दृढ होता है । रींछ के उपस्थ में मोगरे के इत्र को मिलाकर, उसका लेप करके संभोग करने से स्त्रियों को परम आह्लाद प्राप्त होता है । श्वान के शेफ - जल का प्रलेप, स्तंभन के साथ, लिंगवृद्धि करता है ॥ १२० ॥ एक वस्त्र - खंड को आकडे के दूध में तीन दिवस तक भिगोकर रखदें । फिर, इसको घी से थोडा सिक्त करलें । अब, इस वस्त्र को जलाकर घी टपकालें । उपस्थ की दृढता के लिये इस घी का प्रलेप करें ॥ १२१ ॥ एक शिलापर चार तोला अकलकरे को वार्ताक - रस में पीसकर वटी बनालें । फिर, इसे मदिरा में घिसकर लेप करके रमण करने से, परम आसक्ति-पूर्वक युवति उसको अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है ॥१२२॥ अकलकरे को नरगिस-पुष्प - रस से पीसलें । अब, रात्रि को इसका लेप करके, विलासी पुरुष स्त्री से संभोग

१—कृष्णवर्णो गर्दभो मत्तस्तरुणश्च गवेषणीयः । २—दक्षाण्डद्रवस्तथा सूताया वडवायाः प्रथमदुग्धं पीयूषस्ताभ्यामार्द्रम् । ३—सप्तभिः । ४—खञ्जेन । ५—अत्रायं विशेषः । ऋक्षशेफसः केनाप्यत्तरेण सह लेपः । गुणश्च स्त्रीणां महानानन्दोदयः । श्वशेफसो जलेन लेपः, तेन स्तम्भनं वृद्धिश्च । ६—स्पष्टमिदम् । ७—नरघसनाम्ना प्रसिद्धस्य वृक्षविशेषस्य पुष्पैः ।

५५ प्रात पर्युषितमुखो दारुसिता किमपि संचर्व्य ।
तल्लालया प्रलेपाज्जायेत ध्वजसमुच्छ्राय· ॥ १२४ ॥

५६ वटदुग्ध[2]पयस· प्रसृतौ फणिफेन[3]पलं तथैव वातामम् ।
संपिष्य कृता वटिका बन्धं वीर्यस्य विदधाति ॥ १२५ ॥

५७ आकल्ल कुङ्कुमं जातीफल प्रत्येकमाक्षिकम् ।
त्रिर्भावित वटक्षीरै रजो भङ्गाविशेषजम्[4] ॥ १२६ ॥
पञ्चकार्षिकमेकत्र समस्तं साधु चूर्णयेत् ।
सविभाव्य वटक्षीरैर्वटी कुर्याच्चणोपमा ॥ १२७ ॥
सायं सेवेत वटिकामनुपानं घनं पय ।
तरुणस्तरुणीं गच्छेद्[5]तोरोधसमुद्धतः ॥ १२८ ॥

५८ फेनं[6] व्यालस्य कर्षं नववटविटप कोरयित्वा तदन्ता
रुन्ध्याद्यत्नेन पक्षे गतवति च तमुद्धृत्य माषप्रमाणम् ।
प्रत्येकं कुङ्कुमैलाविधुं[7]हरिणमदात् त्रीणि जातीफलानि
स्वर्णं शाण गुटीय द्विचणकतुलिता वीर्यरोध विधत्ते ॥ १२९ ॥

५९ प्रत्येकं विरचय्य माषतुलिताज्जातीभ[8]कुम्भोद्गल-
द्दानाकल्लककुङ्कुमत्रुटिकणावर्येणगन्धाहिजान्[9] ।

करे । इससे शुक्र-स्खलन होने पर भी शिश्न मे शैथिल्य नहीं आयेगा ॥१२३॥ प्रात · बासी मुख ही थोडी दालचीनी चबाकर तज्जन्य लाला से, उपस्थ को लिप्त करें। इससे ध्वज ऊचा होता है ॥ १२४ ॥ वटदुग्ध सोलह तोला, पोस्त तथा बादाम-प्रत्येक चार तोला लेकर-एकत्र पीसकर वटी बनालें । यह वीर्य का स्तम्भन करती है ॥ १२५ ॥

अकल्लकरा, केसर तथा जायफल प्रत्येक एक तोला, इनको वटदुग्ध की तीन भावनायें दें । श्याम-पत्र-गाजेका चूर्ण पाच तोला लेवें । अब, इन सबका एकत्र सूक्ष्म-चूर्ण बना, पुन वटक्षीर में खरल करके, चने-समान वटिया बाधलें । गाढे दूध के अनुपानपूर्वक, साझ को, एक वटी का सेवन करें । फिर दो तीन घटे पीछे युवक, शुक्रस्तम्भन-सुलभ अभिमान से, युवति के साथ क्रीडा करे ॥ १२६–१२८ ॥ नूतन वटवृक्ष के स्तम्भ को एक जगह से काटकर, उसके भीतर एक तोला अफीम युक्तिपूर्वक रखदें, फिर, काटकर निकाले गये वट के पढ को, उस पर यथावत् बिठा दें । एक पक्ष पीछे, अफीम निकाल लेवें । अब केसर, इलायची, कपूर तथा कस्तूरी प्रत्येक एक मापा, तथा जायफल तीन नग, सोने के बरक या भस्म तीन मापा-इनको एकत्र उपरोक्त अफीम के साथ घोटकर दो-चणक तुल्य गुटिया बाधलें । ये शुक्र का निरोध करती हैं ॥ १२९ ॥ गज-गड-स्खलित मद-जल, जावित्री, अकल्करा,

१–'दालचिनी' इति ख्याताम् । २–वटदुग्धस्य । ३–खाखससज्ञम् । ४–लोके गाजा शब्दवाच्यं, तच्च श्यामपत्र माह्यम् । ५–द्विनिघटिकानन्तर गच्छेत् । ६–सर्पफेनम् । ७–विधुः कर्पूरम् । हरिणमद कस्तूरी । ८–गजगण्डस्थलगलित मदजलम् । ९–अहिजम् आफूकम् ।

कार्याः पञ्चदशैव रम्यगुटिका एकां पिबेत्तासु यः
सक्षीरां प्रहरत्रयं रमयते रेतोऽतिरोधाद्वधूः ॥ १३० ॥

६० कद्रूकुमाराशनवाहलाङ्कवतंसविद्वेषिगुरोः पदस्यं ।
तैलं मनाक् पादतले प्रघृष्टं कामाहवे दैत्यगुरुं रुणद्धि ॥ १३१ ॥

६१ मायाफलानि स्वरसेन जम्बूसंवर्तिकानां परिपिष्य बद्धाः ।
रुन्धन्ति वस्यो हरिमन्थमाना रेतोभगप्रस्रवणातिसारान् ॥ १३२ ॥

६२ धत्तूरबीजविषमुष्टिकगन्धसूत-
जातीफलानि सलिलेन पृदाकुवल्ल्याः ।
पिष्ट्वा विशिष्य मसृणं गुटिकीकृतानि
रुन्धन्ति धातुमधिमन्मथकेलि यूनाम् ॥ १३३ ॥

६३ बीजेषु वास्तूकभवेषु सत्सु क्षौद्रेण सत्यामपि यष्टिकायाम् ।
पुनः प्रकामं किमहो यतन्ते चिरप्रयोगार्थममी युवानः ॥ १३४ ॥

केसर, इलायची, पिप्पली, शतावरी, कस्तूरी तथा अफीम प्रत्येक एक माषा लेवें। इनको एकत्र पीसकर, पंदरह सुंदर वटिकायें बनालें। इनमें से एक वटी को दूध के साथ निगीर्ण करें। शुक्र के अत्यंत निरोध के कारण, वधू-सह तीन प्रहर तक रति-क्रीडा की जा सकती है ॥ १३० ॥

कद्रु-कुमार अर्थात् सर्प, सर्प का अशन-भोजन करने वाला मयूर, मयूर है वाहन जिसका अर्थात् कार्तिकेय, कार्तिकेय के अंस-स्कंध-प्रदेश का भूषण अर्थात् बाण (बाण–असुर), बाणासुर का विद्वेषी अर्थात् विष्णु, विष्णु का पद अर्थात् वियद् अर्थात् अंबर, अर्थात् अंबर नामक सुगंधित-द्रव्य में से निष्कासित तैल को पादतल पर थोडा मलकर-रति-संग्राम करने से-अर्थात् काम-युद्ध में (काम तथा बाणासुर युद्ध में) जिस तरह शुक्राचार्य गतिरुद्ध हो गये थे उसी तरह दैत्य-गुरु अर्थात् शुक्र का निरोध होता है ॥ १३१ ॥

जामुन के नूतन पत्तों के स्वरस में, मांजूफल को पीसकर, चणे तुल्य गोलियां बांधलें। ये शुक्र, योनिस्राव तथा अतिसार को रोकती हैं ॥ १३२ ॥ धत्तूरे के वीज, शुद्ध कुचला, गंधक, पारद तथा जायफल, इनको नागरवेल के पत्र-स्वरस में खरल करके सूक्ष्म तथा मुलायम बनालें। इसकी गुटिकायें मन्मथ-क्रीडा-रत युवकों के शुक्र को रोकती है ॥ १३३ ॥ जब, वास्तूक के बीजों का तथा मधु-सहित मधुयष्टि का अस्तित्व है-तो फिर, ये युवक, विलंब से प्राप्य-प्रयोगों के लिये, अहो! व्यर्थ में

१–विष्णोः। २–अम्बरस्येत्यर्थः। 'वियद्विष्णुपदं वाऽपि" इति कोशः। तन्नाम्नः सुगन्धिद्रव्यस्येति फलितोऽर्थः। ३–शुक्रम्। ४–'मांजूफल' इति प्रसिद्धानि। ५–जम्बू-नवदलानाम्। ६–विषमुष्टिकं 'कुचिला' इति प्रसिद्धम्। तच्च शुद्धमादेयम्। ७–स्वर-सेन। ८–गुञ्जाप्रमाणानि।

६४ कारवीवटकैर्गव्य घृत पक्त्वा समुद्धरेत् ।
तद्घृतं मान्यमाहत्य कन्दर्पमपि बोधयेत् ॥ १३५ ॥
६५ वटीर्विदारीकपिकच्छुगोक्षुरैर्विधाय सक्षौद्रघृतेन भो जना. ।।
सदैव योऽश्नाति मृषा न वर्णये तदीयवीर्येण जिता नभोजना. ॥१३६॥
६६ वटशुङ्गभङ्गसङ्गं त्रिभातमारभ्य वासर कथितम् ।
साय पिब सह सितया तृतीयपुरुषार्थसिद्धये दुग्धम् ॥ १३७ ॥
६७ क्षौद्रेण सममानेन पलाण्डुरस तिन्दुकम् ।
पिबता पक्षदर्शाभिर्दिनैर्दैन्यं न दृश्यते ॥ १३८ ॥
६८ पलाण्डुक्षोदसंमिश्रैर्मुद्गद्विगुणतन्दुलै ।
प्रकल्पिता विना नीर कृशरा कृशपूजिता ॥ १३९ ॥
६९ बहुलालस्यवशंवद ! चिकलयिषसि चेच्चमत्कारम् ।
गिल तिन्दुकतूर्यांशां स्फटीं क्षपा च गुडपावकेन सह ॥ १४० ॥

ही क्यों भटक रहे हैं-प्रयत्न कर रहे हैं ? ॥ १३४ ॥ अजगायन से निर्मित वटकों से गाय के घी को सिद्ध करलें । मधु-सह यह घृत जटरानल के साथ साथ कामानल को भी उद्दीप्त करता है ॥१३५॥ विदारीकद, कौंच तथा गोखरू-इनको एकत्र पीसकर वटिया बनालें । वटियों के वजनतुल्य उनमें घी तथा शहद मिला देवें । इन वटियों का नित्य सेवन करनेवाला अपने वीर्य से देवोंपर भी विजय प्राप्त कर लेता है-मेरा यह कथन असत्य नहीं है ॥ १३६ ॥ वटशुग तथा भाग को एकत्र, सुबह से लेकर दिनभर, उकालते रहें । फिर, साझ को, मिश्रीमधुर दूध के साथ इसके सेवन से तीसरे पुरुषार्थ-काम-की सिद्धि होती है ॥ १३७ ॥ एक तोला पलाण्डु स्वरस को समभाग शहद अथवा घृत में मिलाकर, एक पक्ष अथवा मास पर्यंत सेवन करनेवाले का दैन्य अदृश्य हो जाता है ॥ १३८ ॥ मूग से द्विगुणित चावल लेकर, दोनो को मिला लेवें । अब, एक तपेली में, प्रथम प्याज के कचूमर को फैलाकर उसपर मूगसहित चावल की तह जमादें । इस तरह, इस तह के ऊपर, पुन प्याज के कचूमर की तह फैलादें । इस तरह एक के ऊपर एक तह जमाते जायें । तपेली का मुख थाली से ढकदें । नीचे से मन्दाग्नि दें । इस तरह जल के विना ही खिचडी सिद्ध हो जायेगी । ऊपर से हींग, लौंग, आदू, लवण, हरिद्रा आदि के प्रक्षेप सहित घृत भी मिला देवें । इस तरह निर्मित कृशरा (खिचडी) कृशता को दूर कर देती है । यहा प्याज के कचूमर को खीचडी से डेढ गुणा अधिक लेवें ॥ १३९ ॥ अत्यत आलस्य के वशीभूत हे मानव ! यदि आपको चमत्कार देखने की इच्छा हो तो स्फटी तथा हरिद्रा प्रत्येक तीन मापा लेकर चूर्ण बनालें, तथा इसका गुड के सीरे के साथ सेवन करें ॥ १४० ॥

१-पूर्वोक्तविधिविहितैर्यवानिकावटकै । २-यावता वटीभावस्तावत्प्रमाणमत्र क्षौद्रघृतम् । तच्च परस्परमतुल्यांशम् । ३-देवा । ४-प्रभातमारभ्य सर्वदिन क्वथितम् । ५-कामोद्दीप्त्यै । ६-घृतेनेति पाठान्तरम् । ७-पलाण्डुस्वरसम् । ८-निशादिनैरिति पर।

७० भल्लातेषु शनैः शनैरधिघृतं[1] पक्वेषु मन्दाग्निना
रुन्ध्यादुल्मुकतो[2] घृतं कियदपि प्रज्वाल्य युक्त्या शिखाम् ।
पूतं तत्तिलनालिकेरशकलैर्भुक्तं सितासंगतं
वातं हन्ति बलं ददाति मदनं प्रोद्बोधयत्यन्वहम्[3] ॥ १४१ ॥

७१ भल्लातगर्भगुलिकातिलनालिकेर-
वातामचारुल[4]मुकूलककन्दरालम् ।
दुग्धैः प्रपिष्य घृतभर्जितमुत्तखण्ड[5]-
द्रावं निषेव्य सुरते वनिता भरालम् ॥ १४२ ॥

७२ भल्लातार्क[6]सखं सखे ! क्वथनतो गव्यं पवित्रं पयः
सान्द्रीकृत्य सिताद्रवे[7] क्षिप पुनः स्थाल्यां द्रुतं ढालय ।
चन्द्रैलातिलनारिकेलशकलान्याकीर्य तस्योपरि
स्फीतां स्वीकुरु[8] मात्रया कतलिकां चेद्वृष्यतामीहसे ॥ १४३ ॥

भिलावों को उनसे द्विगुणित घृत में मंदाग्नि से, धीरे धीरे पकावें। जब भिलावे पक जायें तब जलते हुये अंगारों द्वारा अवशिष्ट घी को प्रज्वलित करदें। इस तरह घी के कुछ अंश को जलाकर, ऊपर उठती हुई अग्नि-शिखा को, पात्रादिद्वारा ढककर युक्तिपूर्वक शांत करदें। अब, इस घृत को वस्त्र में से छानकर, मिश्री में मिला सेवन करें-साथ में तिल तथा नारियेल के छोटे छोटे टुकडों को मिलाकर खायें। यह प्रयोग वायु को दूर करता तथा बल देता है तथा प्रतिदिन कामभाव को उद्दीप्त करता रहता है ॥ १४१ ॥ भिलावे की मींगी, तिल, नारियेल, बादाम, प्रियालमज्जा, पिस्ता तथा अखरोट, इनको दूध में घोटकर घी में भूनलें। फिर, मिश्री की चासनी में मिला देवें। यह रसायन रति प्रसंग में अनेकों वनिताओं के लिये पर्याप्त है ॥ १४२ ॥ यंत्रद्वारा भिलावे का अर्क निकाल लेवें। इस अर्क को गाय के पवित्र-दूध में उकालें। जब दूध घट्ट हो जाये, तब उसमें मिश्री की तितारी चासनी मिलाकर, शीघ्र ही थाली में जमादें-ढालदें। इसके ऊपर कपूर, तिल तथा नारियेल का भुक्का भुरका देवें। यदि वृष्यत्व चाहते हो तो यथामात्रा से इसकी एक स्वच्छ चकत्ती का नियमित सेवन करें ॥ १४३ ॥

काष्ठा। ९-पलाण्डुक्षोदः कृशरोपादानादध्यर्धैकगुणस्तेन संमिश्रैरिति उपर्युपरि पटलत्वेन विन्यस्तैः। हिङ्गुलवङ्गार्द्रखण्डलवणहरिद्राक्षेप उपरिष्टात् घृतप्रक्षेपश्च ततो मुद्राकल्पनेति। १०-कर्षचतुर्थांशाम्।

१-अष्टगुणे घृते। २-ज्वलदङ्गारतः। कियदपि घृतं प्रज्वाल्य युक्त्या पिधानादिरूपया शिखां रुन्ध्यादित्यन्वयः। ३-प्रतिदिनम्। ४-चारुलः प्रियालमज्जा। मुकुलको दन्तीबीजसदृशः 'पिस्ता' इति ख्यातः। कन्दरालोऽक्षोटः लोके 'अखरोट' इति ख्यात औत्तरापथिकः। ५-घृतभर्जितं सितातन्तुल्या संमेल्य निषेवणीयम्। ६-भल्लातानां यन्त्रद्वारा निष्कासितो योऽर्कस्तद्युक्तमित्यर्थः। ७-त्रिचतुस्तन्तूद्गमायां सितातन्तुल्याम्। ८-आस्वादयेत्यर्थः।

७३ भर्जयित्वा घृतप्रस्थे वरीस्वरससाधिते ।
तुल्यां स्वार्धपयःपिण्डां शुद्धगोधूमसूजिकाम् ॥ १४४ ॥
द्विप्रस्थखण्डतन्तुल्या शीतायां च क्षिपेद्धि ताम् ।
ततो यथायथं चैवचूर्णानीमानि दापयेत् ॥ १४५ ॥
जातीफलं जातिपत्रीं व्योषं पुष्पं त्वचं दलम् ।
प्रत्येकं कोलमात्राणि सालिमं मुसलीं वरीम् ॥ १४६ ॥
पृथग्द्वितोलमानानि त्रिपुटा च त्रितोलका ।
कुङ्कुमं शाणिकं माषं कस्तूर्यम्बरचन्द्रतः ॥ १४७ ॥
वातादं नारिकेरं च मुकूलं च पृथक् पलम् ।
वङ्गप्रवालहेमाभ्रं पृथक् गद्याणसम्मितम् ॥ १४८ ॥
सर्वं संमेल्य तन्तुल्यां ढालयेद्रौप्यभाजने ।
इत्येष साधितः पाकः स्वर्णपर्णरलङ्कृतः ॥ १४९ ॥
एनं प्राश्य पुरा कृष्णः स्त्रीसहस्राण्यरीरमत् ।
ध्याढकोऽत्र रसो वर्यास्तन्तुल्या दाडिमीरसः ॥ १५० ॥
एवं तुरगगन्धाया मुशल्याः शालिमस्य वा ।
चोपचिन्या विदार्या वा पाको गोक्षुरकस्य वा ॥ १५१ ॥

शतावरी स्वरस में चौसठ तोला घी सिद्ध करके, उसमें चौसठ तोला गेहूं की सूजी तथा बत्तीस तोला मावा भूनलें। अब, १२८ तोला शक्कर की तितारी चासनी बनालें। चासनी के शीतल होनेपर, उसमें उपरोक्त द्रव्य डाल देवें। तदुपरान्त, जातीफल, जावित्री, त्रिकटु, लौंग, तज तथा तालपत्र प्रत्येक एक एक तोला, सालिममिश्री, मुसली तथा शतावरी प्रत्येक दो तोला, छोटी इलायची तीन तोला, केसर तीन माषा, कस्तूरी, अंबर तथा कपूर प्रत्येक एक माषा, बादाम, नारियेल तथा पिस्ता प्रत्येक चार तोला, वंगभस्म, प्रवालभस्म, स्वर्णभस्म तथा अभ्रकभस्म प्रत्येक छह माषा - इन सभी औषधीय द्रव्यों का यथावत् प्रक्षेप करके, चासनी में अच्छी तरह मिश्र एक चांदी की थाली में ढाल दें। इस तरह सिद्ध किये गये पाक को स्वर्णपत्रों से अलंकृत कर देवें। उपरोक्त पाक में, शतावरी का रस ५१२ तोला लेवें तथा चासनी को दाडिमरस से सिद्ध करें। अतीतयुग में, इस पाक का सेवन करके श्रीकृष्ण ने एक सहस्र युवतियों के साथ रमण करने की शक्ति प्राप्त की थी। इसी विधि से, असगंध, मुशली, सालिम, चोपचीनी, विदारीकंद अथवा गोखरू आदि का पाक बना लेना चाहिये ॥ १४४–१५१ ॥

१–पयःपिण्डमभिसंयोगात् पिण्डाकारं पय इत्यर्थः । २–'सूजी' इति ख्यातं गोधूमचूर्णम् । ३–लवङ्गम् । ४–तालपत्रम् । ५–द्राक्षेति । ६–पृथगिति शेषः । ७–एषां नित्यं निश्चन्द्र च भस्म ग्राह्यम् । ८–घृतसाधने । ९–दाडिमबीजरसः । १०–अश्वगन्धायाः ।

७४ उद्वेगानि[1] सुजातानि[2] वपेत् प्रस्थप्रमाणतः ।
जलार्द्रगौरमृत्स्नायामिन्दु[3]दृग्दिवसावधि ॥ १५२ ॥
जलैः[4] प्रक्षाल्य तदनु सकृद्द्विर्भावयेत् क्रमात्[5] ।
द्वित्रिप्रस्थप्रमाणाभ्यां रसाभ्यां लुङ्गजम्भयोः ॥ १५३ ॥
भावनैका स्नुहीक्षीरकर्षैः सप्रस्थवारिभिः[6] ।
एकादश[7] ततो द्विर्द्विप्रस्थैर्निम्बूकजै रसैः ॥ १५४ ॥
विभावनाभिराभिः स्युरुच्छूनानि मृदून्यपि ।
तदा तानि[9] सितापङ्के तरुणी[10]केतकार्कजे ॥ १५५ ॥
चन्द्रकुङ्कुमसौरभ्ये सैलारजसि मज्जयेत् ।
त्रिः[11] सितैलापलं चन्द्रो[12] वल्लः[13] शाणं च कुङ्कुमम् ॥ १५६ ॥
सिद्धेष्वेकैकमासाद्य सितापङ्कपरिप्लुतम् ।
को न विन्दति तत्त्वज्ञस्तुष्टिं पुष्टिं रुचिं बलम् ॥ १५७ ॥

चौसठ तोला अच्छी सुपारियां लेकर, जलार्द्र श्वेत मिट्टी में, इक्कीस दिवसपर्यंत, गाडकर, रहने दें। तदुपरांत, इनको निकाल, पानी से धोकर साफ कर लें। फिर, इनको, मातुलुंग के दो प्रस्थ रस की एक भावना तथा जंभीरी निंबू के तीन प्रस्थ-रस की दो भावनायें देवें। स्नुही के एक तोला दूध को एक प्रस्थ जल में अच्छी तरह घोलकर, उसकी भी एक भावना देवें। फिर, निंबू के दो दो प्रस्थ रस से ग्यारह भावनायें देवें। इन भावनाओं से पूगी-फल फूल जायेंगे तथा कोमल हो जायेंगे। अब, इनको केतकी के अर्क से प्रक्षालित करलें। गुलाब तथा केतकी पुष्प के अर्क में मिश्री मिलाकर चासनी बनायें; चासनी में बरास, केसर तथा इलायची चूर्ण का प्रक्षेप करके, सुगंधित बनालें। अब, इस चासनी में, उपरोक्त, पूगीफल निमग्न कर देवें। इस तरह सिद्ध किये गये पूगीफलों में से, चासनी द्रव से परिप्लुत एक नग लेकर, सेवन करने से, किस तत्त्वज्ञ को तुष्टि, पुष्टि रुचि तथा बल की प्राप्ति नहीं होगी? उपरोक्त चासनी-निर्माण में, तीन-प्रस्थ मिश्री चूर्ण लेना चाहिये तथा प्रक्षेप द्रव्यों

१–पूगफलानि। २–प्रशस्तानि लोके 'श्रीवर्धिनी', 'छालिया' इति च प्रसिद्धानि। ३–एकविंशतिदिनावधि। ४–अक्षारैरिति शेषः। ५–द्विप्रस्थेन लुङ्गरसेनैका भावना, त्रिप्रस्थेन जम्भरसेन च द्वे भावने इति क्रमः। ६–प्रस्थाम्भोलुलितैः स्नुहीक्षीरैरित्यर्थः। ७–भावना इति शेषः। ८–प्रतिभावनां द्विप्रस्थैरिति वीप्सार्थः। ९–केतकार्केण प्रक्षालितानि। १०–सितातन्तुल्यां द्रवस्थाने तरुणीकेतकयोरर्क आदेय इति तात्पर्यार्थः। ११–अनन्तरोक्तद्रव्याणां मानकथनम्। तत्रोद्वेगमानतस्त्रिगुणा त्रिप्रस्था सिता ग्राह्या। १२–'भीमसेनी कर्पूर' इति लोकप्रसिद्धः। १३–वल्ल इत्युपलक्षणं, तेन पञ्चगुञ्जातोऽधिकक्षेपो न कार्य इति बोध्यम्।

७५ मधुराम्लं सामिसितं सकुङ्कुमं दुग्धसद्धि दधि पूतम्।
आम्रनिशारससुरभिणि घटे निभृतमनुकरोति चूतरसम् ॥ १५८ ॥

७६ गर्जराणि सुजातानि दशो नीरे निमज्जयेत्।
सभस्मानि ततस्तोये स्वेदयन्मार्दवावधि ॥ १५९ ॥
निष्कुलीकृत्य शकलान्यस्थिवर्जं प्रकल्पयेत्।
तलयेद्धृत एकस्मिन् यथा नश्येन्न मार्दवम् ॥ १६० ॥
द्विखण्डे लोठयेत् किंवा खण्डपङ्के निमज्जयेत्।
सैलामुकूलवातामः पाकः स्याद्गार्जरोऽद्भुतः ॥ १६१ ॥
वयो वृष्यः परं स्वादु राजार्हः किंच नाशयेत्।
दाहप्रमेहपित्तास्रपिपासाप्रदरादिकान् ॥ १६२ ॥

७७ क्लीवाजमुण्डगर्भं द्रम्मकेलार्धाहृतोष्मसंस्कारम्।
संसाध्य घृतशरावं मन्दोष्णं पिब समस्तमेव शनैः ॥ १६३ ॥

में बरास, अधिक से अधिक पांच गुंजा कम से कम एक वाल, इलायची चार तोला तथा केसर तीन माषा लेवें ॥ १५२-१५७ ॥

किंचित् खटासयुक्त मधुर दही में थोडा दूध तथा दही से अर्धमात्रा में मिश्री-चूर्ण एवं यथामात्रा में केशर मिलाकर वस्त्र में से छान लेवें। अब, इसको आमाहलदी के रस से प्रक्षालित अतएव तत्सुलभ सौरभ से उद्वासित एक मिट्टी के कोरे पात्र में भर दें। यह आम्र-रस का यथार्थ-अनुकरण करता है ॥ १५८ ॥ दश-प्रस्थ उत्तम जाति की गाजर को, प्रक्षालित करके, पानी में बाफ लें। फिर, इसमें से अस्थियों को निकाल कर टुकडे करके छूंद लेवें। अब, इस छूंदे को, एक प्रस्थ-भर घृत में, इस तरह भूनें जिससे इसकी मृदुता नष्ट न हो जाये। फिर, इसी छूंदे को मिश्री के चूर्ण से अच्छी तरह सानलें अथवा, मिश्रीचूर्ण की केशर रंजित चासनी में निमग्न करदें। ऊपर से इलायची, बादाम तथा पिस्ताचूर्ण का प्रक्षेप करें। यह अद्भुत 'गार्जर-पाक' परम सुस्वादु, बलकारक तथा वृष्य एवं राजपुरुषोपभोग्य है। विशेषतः यह दाह, प्रमेह, रक्तपित्त, प्यास, प्रदर आदि विकारों को नष्ट कर देता है ॥१५९-१६२॥ क्लीब बकरे के मुंड-गर्भ का सोलह तोला घी में शोरबा सिद्ध करलें। फिर थोडा गरम मसाला (दो पैसों के मूल्य से जितना मिले उतना) उसमें भुरका कर, कवोष्ण होने पर, धीरे धीरे इस शोरबे को पीजायें। इस तरह सेवन करने से,

१-आम्ररसानुकारप्रकारः। २-आम्रनिशा 'आमीहलदी' इति प्रसिद्धा। तद्घृष्टजलक्षालित इत्यर्थः। ३-दशप्रस्थोन्मितानि। ४-एकप्रस्थमिते घृते। ५-द्विगुणितखण्डे। ६-कुङ्कुमसंस्कृते सितापङ्के। ७-अर्धाणकक्रीतमुष्मकम्। उष्मकशब्देन 'गरम मसाला' इति लोकप्रसिद्धं द्रव्यजातम्।

दवचण्डरक्तमण्डलखण्डनताण्डवमखण्डमारभते ।
पथ्यं कृशरा सघृता ससैन्धवा पोलिका वाऽपि ॥ १६४ ॥
रसकर्पूरशवाश्मक्षोदसखीभिः प्रलिम्प वपुरद्भिः ।
योगेनानेन परं पथ्याशी मण्डलं प्रयुक्तेन ॥ १६५ ॥
यावज्जीवं जन्तुः स्त्रीराजीर्याति वाजीव ।
प्रयतेत पिपाचयितुं किं तु व्यायामतः सर्पिः ॥ १६६ ॥
७८ मरिचैः सचमत्कारमुत्स्विन्नं कोलजं पलम् ।
दक्षाण्डत्रुटिवाताममुकूलदधिपिण्डकैः ॥ १६७ ॥
मौक्तिकाम्बरकस्तूरीस्वर्णविद्रुमकुङ्कुमैः ।
कल्कीकृत्य घृतं दत्त्वा पाणिभ्यां बहु मर्दयेत् ॥ १६८ ॥
वटिकाश्चास्य शनकैस्तलिताः प्राज्यसर्पिषि ।
अत्यच्छकाब्बुलोत्पन्नदाडिमीशार्करे क्षिपेत् ॥ १६९ ॥
काञ्चनच्छदसौरभ्यनिक्षेपकृतसंस्क्रियाः ।
सेवेत वटिकाः सायं पयोऽनु ससितं पिबेत् ॥ १७० ॥

शरीरगत प्रचंड दाह तथा रक्तमंडल को खंडित कर देनेवाले अखंड-तांडवनृत्य का प्रारंभ हो जाता है। गोधूम की पोलिका, ससैंधव-घृतसिक्त खीचडी पथ्य है। शरीरपर रसकर्पूर तथा मुरदासींगी के चूर्ण से भावित जल का लेप करना चाहिये। इस प्रयोग को, परम पथ्यपूर्वक चालीस दिवस तक करने से, मनुष्य जीवन पर्यंत स्त्रीसमूह से अश्व की तरह रमण करने की सामर्थ्य प्राप्त करता है। इस प्रयोगकाल में व्यायाम आदि द्वारा घी को पचाने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये ॥ १६३—१६६ ॥

चार तोला वाराह-मांस को मरिचचूर्ण से, स्विन्न करलें। (मरिचचूर्ण डालने से मांस अच्छी तरह पक जाता है।) इस स्विन्न मांस में दक्ष-कुकुट पक्षी के अंडे, इलायची, बादाम, पिस्ता, जलनिष्कासित दही का पिण्ड, मुक्ताभस्म, अंबर, कस्तूरी, स्वर्णभस्म, प्रवालभस्म तथा केसर आदि यथोचित मात्रा में मिलाकर, कल्क बनालें। फिर घी डाल कर इस कल्क को हाथ से खूब मसल लेवें। अब, इनकी वटिकायें बना, प्रचुर घी में अच्छी तरह तलकर काबुली दाडिमस्वरस में सिद्ध की गयी चासनी में डाल देवें। इसमें, ऊपर से सौरभार्थ इलायची-चूर्ण का प्रक्षेप करके, स्वर्णपत्र भी मिला देवें। सायंकाल को, मिश्रीयुक्त मधुर-दूध के अनुपानपूर्वक इन वटिकाओं का सेवन करें। इससे मनुष्य अश्व की तरह प्रबल काम वेगपूर्वक, प्रमदा समूह को, रतिरस से तृप्त

१—दवो दवथुः। २—शवाश्मा 'मुरदासींग' इति ख्यातः। ३—चत्वारिंशद्दिनावधि। ४—वाराहमांसम्। ५—दक्षाण्डं कुकुटाण्डम्। एतैः सर्वैर्यथोचितं कल्पितप्रमाणैः। ६—स्वर्णस्य भस्म, तदभावे स्वर्णपत्राणि। ७—दाडिमीरसकृते सितापङ्के इत्यर्थः। ८—सौरभ्यमेलादिकम्।

वाजीव प्रमदाराजीस्तर्पयेदूर्जितस्मर ।
शतावरीरसे क्षीरगर्भं संसाधयेद्घृतम् ॥ १७१ ॥
चटिकातलने तत् स्यादुपयोगि महागुणम् ।
माषपर्णभृताया गोर्दुग्धं दधि घृतं स्मृतम् ॥ १७२ ॥
७९ दक्षाण्डसारभावितमर्सकृत्तिलसाङ्गभृङ्गज चूर्णम् ।
स्वाब्धिदिनानि निपीत मदिरामुष्ट्या स्मरं प्रबोधयति ॥ १७३ ॥
८० कृत्तपुच्छाङ्घ्रिवक्रान्तं सण्डं सर्पिषि पाचितम् ।
श्रीमदुत्थारुच्छदा शुष्काश्चूर्णं कुर्यात् समद्वयम् ॥ १७४ ॥
गिलेद्धारोष्णपयसा तच्चूर्णं तुल्यशर्करम् ।
पुष्ट्यै कोलोन्मिता मात्रा भोजने सैन्धवं मनाक् ॥ १७५ ॥
८१ विपाच्य पादार्धवटाङ्कुरच्छटं पलद्वयं मांसमजस्य गोघृते ।
त्वक्पत्रपुष्पोषणजीरसैन्धवैश्चमत्कृतं भुंक्ष्व मनोजवृद्धये ॥ १७६ ॥
८२ अर्क वक्ष्ये शुभोदर्कं पुंसां पुंस्त्वविवर्धनम् ।
कुङ्कुमाम्बरकस्तूरीजातीजातीफलानि भो ॥ १७७ ॥

कर देता है। उपरोक्त योग से, घृत को, दूध में मिलाकर, शतावरी के रस से सिद्ध करना चाहिये। वटिकाओं के तलने में भी, परम गुणकारी इसी सिद्ध-घृत का उपयोग करें तथा यहां माषपर्ण से (वन उड़द के पत्ते खाकर) परिपुष्ट बनी हुयी गाय का ही घी, दूध तथा दही ग्रहण करें ॥ १६७–१७२ ॥

पचाग सहित भांगरे का चूर्ण तथा तिल इनको एकत्र लेकर, सात दिवसपर्यंत, कुक्कुट के अंडे के भीतरी द्रव से भावना देवें। चालीस दिवस तक, चार तोला मदिरा के साथ, इसका सेवन करें। इससे काम प्रदीप्त होता है ॥ १७३ ॥ सांडा के मुख, पूंछ तथा पैररहित, अवशिष्ट भाग को घी में भूनलें। सिरू-वृक्ष के शुष्क पत्तों का चूर्ण बनावें। इन दोनों को समान भाग में लेकर, दोनों के वजन-तुल्य, इनमें, शर्करा मिलाकर, धारोष्ण दूध के साथ पीजावें। इसकी मात्रा एक तोलाभर है। भोजन में, सैन्धव अल्प मात्रा से ही लें। यह प्रयोग पुष्टिकारक है ॥ १७४–१७५ ॥ बकरे के आठ तोला मांस में, वट के दो तोला भर शुङ्ग-चूर्ण को मिलाकर, गाय के घी में पकावें। फिर, इसमें तज, तेजपात, लौंग, मिर्च, जीरा तथा सैंधव यथोचित मात्रा में प्रक्षिप्त करके, कामोद्दीप्ति-चमत्कार के लिये सेवन करें ॥ १७६ ॥

पुरुषों के पुंस्त्व में अभिवृद्धि करने वाले, उनके भावी कल्याण के लिये, अब

१–पूर्वोक्तयोगस्य परिभाषाल्पोऽयं सार्धं श्लोक । २–कुक्कुटाण्डगर्भद्रवेण भावितम् । ३–सप्तचत्वारिंशदिनानि इत्युपदेश । ४–साङ्गपञ्चाङ्गसहितो भृङ्गो मार्कव । ५–मुष्टि पलम् । ६–'सांडा' इति लोकप्रसिद्धम् । ७–'सिरू' इति लोकप्रसिद्धस्योपवनभूषणभूतस्य तद्विशेषस्य पत्राणि । ८–द्विकर्षोन्मितवटशुङ्गसहितम् ।

लवङ्गाकल्लमल्लै[1]लास्त्वक् श्वेतकरवीरजा[2] ।
सारलः स्फीत[3]निर्यासः शङ्खोऽपि शुभलक्षणः ॥ १७८ ॥

शृङ्गिकं च[4]ञ्चुजो मज्जा मज्जा हरिणभूभृतः[5] ।
नालं[6] किमुचितं नालं[7] कोलघण्टिकमत्स्ययोः[8] ॥ १७९ ॥

द्रव्याणीमानि मानेन माषिकाणि प्रकल्पयेत्[9] ।
उशीरं नूतनं शुष्कं कुडवं तनु कर्तयेत्[10] ॥ १८० ॥

तत् सर्वं गर्भयन्त्रान्त[11]र्विरचय्य यथाक्रमम्[12] ।
निष्कासयेदनम्भोऽर्कमलसेन[13] कृशानुना ॥ १८१ ॥

भाण्डे त्रिपादिकां[14] तत्र चषकं विपुलोदरम् ।
भाण्डास्ये सपयः पात्रं गर्भयन्त्रमिति स्मृतम् ॥ १८२ ॥

८३ पादोनमाढकं मांसात्[15] सेवामरु[16]द्गर्जरात् ।
तोलकानि त्रयस्त्रिंशत् पृथगक्षं[17] द्विजीरतः[18] ॥ १८३ ॥

मैं, एक 'अर्क' का प्रयोग बताता हूं। केसर, अंबर, कस्तूरी, जावित्री, जायफल, लौंग, अकलकरा, मल्ल, इलायची, श्वेतकरवीर की मूल-त्वक्, सरल-निर्यास, कोडिया लोहबान, शुभ-चिह्नोंवाला श्वेत शंख, शृंगीविष, एरंड फल की मज्जा, सिंह की मज्जा तथा कोल और घंटिक संज्ञक मत्स्यों का मेहन, इस अंतिम-द्रव्य का ग्रहण अनुचित नहीं मानना चाहिये, इन प्रत्येक को एक एक माषा भर लेकर, जौकुट करलें। अब, सोलह तोलाभर नूतन किंतु शुष्क उशीर लेकर, कैंची से काटकर, सूक्ष्म टुकडे बनालें। फिर, एक पात्र में, प्रथम उशीर के इन सूक्ष्म तृणों को बिछा दें। फिर, इन पर काष्ठौषधि-द्रव्य, इस पर सुगंधित द्रव्य तथा सब से ऊपर मांस-मज्जा आदि द्रव्य यथाक्रम फैला दें। अब, जल के योग विना, गर्भ-यंत्रद्वारा, मंदाग्नि से, इनका अर्क निकाल लेवें। उपरोक्त भाण्ड में, प्रथम एक छोटी सी तिपाई रखदें। इस तिपाई पर एक गहरे पैंदे वाली विशाल कटोरी रखकर, भांडमुख को जलपूर्ण पात्र से ढक देवें। यह गर्भ-यंत्र कहलाता है ॥ १७७–१८२ ॥

अजा अथवा वाराहमांस १९२ तोला, सेव, अमरूद और गाजर इन प्रत्येक

१–मल्लः शतमल्लः। २–करवीरमूलजेति संप्रदायः। ३–स्फीतविशेषणात् कपर्दोपपदोऽयोबाणः 'कोडिआ लोहबाण' इति प्रसिद्धः। ४–एरण्डफलजः। ५–सिंहस्य। ६–अल्मुचितं न किम्? अर्थादुचितमेवेति। ७–मेहनम्। ८–घण्टिकमत्स्यो 'घरीआर' इति ख्यातो मत्स्यविशेषः। ९–यवस्थूलानि कारयेदित्यर्थः। १०–कर्तयेति शेषः। ११–गर्भयन्त्रं समनन्तरमेव वक्ष्यमाणस्वरूपम्। १२–अत्रायं क्रमः–भाण्डे कर्तितमुशीरं प्रसार्य, तदुपरि काष्ठौषधं, ततोऽप्युपरि सौरभद्रव्यं, ततश्च मांसमिति। १३–मन्देन। १४–त्रिपादिकां परित औषधसंभारः। १५–आजाच्छौकराद्वा। १६–सेवामरुदौ स्वनाम प्रसिद्धौ फलविशेषौ, गर्जरं च कन्दविशेषम्। १७–पृथगिति पूर्वोत्तरं सर्वत्र संबध्यते। १८–यद्यपि जीरद्वयं कथितं तथाऽपि कृष्णजीरमेव नवमाषोन्मितं क्षेप्यमिति रहस्यम्।

एकस्तु कुक्कुट प्रौढ सर्वमेकत्र संनयेत् ।
ततो निष्कासयेदर्कमेनं मो गर्भयन्त्रत. ॥ १८४ ॥

त्रिजातकप्रतीवापं दाडिमीशार्करोत्तरम् ।
पलमस्योपयुञ्जीत द्विसन्ध्यं मण्डलावधि ॥ १८५ ॥

अर्क एष पर रुच्यो वृष्य' संतानवर्धन' ।
ग्रहणीदोषयक्ष्मघ्नो रक्तपित्तप्रसाधन. ॥ १८६ ॥

अन्येऽपि बहव. सन्ति योगा गुरुमुखोद्गता ।
ते विस्तरभयात् सर्वे मया नात्र प्रकाशिताः ॥ १८७ ॥

सुधाकुम्भं हस्ते दधदमरतार्थं सुमनसा
रहस्यं जिह्वाग्रे गदहरमथर्वोपनिषदाम् ।
मणिं श्रीवत्साङ्के हृदि जलनिधेर्योऽजनि पुरा
विनिघ्नन् विघ्नं व सुखयतु स धन्वन्तरिविभुः ॥ १८८ ॥

का तेतीस तोला गूदा, श्वेत तथा कृष्णजीरक प्रत्येक एक तोला (यद्यपि यहा दोनों प्रकार के जीरक-ग्रहण करने का विधान बताया है, तथापि केवल नौ माषा भर कृष्ण-जीरक ही लेना उपयुक्त होगा) तथा एक प्रौढ कुक्कुट-इन सबको एकत्र लेकर, गर्भ-यंत्र द्वारा अर्क निकाल लेवें। फिर, इस अर्क का, त्रिजात-चूर्ण से युक्त 'दाडिमी-शार्कर' के साथ सुबह तथा साझ को दो बार नित्य चार-तोला मात्रा में, पैंतालीस दिवस पर्यंत प्रयोग करें। यह अर्क अत्यत रुचिकर, वृष्य तथा सतंतियों की अभिवृद्धि करनेवाला, ग्रहणीविकार तथा यक्ष्मा का सहारक एव रक्त-पित्त का प्रसाधक कहा गया है। ग्रहणी विकार यदि हो तो उपरोक्त योग में, त्रिजात का प्रक्षेप न करें ॥ १८३-१८६ ॥

गुरुमुख से उपदिष्ट और भी, अनेकों प्रयोग मैं जानता हू, किंतु उन सभी प्रयोगों को मैं विस्तारभय से, यहा प्रकाशित नहीं करूगा ॥ १८७ ॥

इस तरह विस्तारभय से, श्रीगुरु इस 'माला' का यहा उपसहार करते हैं—

हितार्थी देवों के, अमि-कलश धारे उदधि से—
अथर्वन् छदों के प्रथम-अगदकार-प्रकटे।
सुहाये श्रीवत्साङ्कित-हृदय पै कौस्तुभ-मणी—
मिटा के विघ्नों को, सुखद विभु धन्वन्तरि बनें ॥ १८८ ॥

१—ग्रहण्यां प्रतीवापो वर्ज्य इति। २—व्यासमीरखो गुरवो मालामुपसहरन्ति। ३—चरममङ्गलमिदम्।

श्रीमद्धुण्ढारदेशे हसितसुरपुरी प्राज्ञसङ्घैः समेता
गुप्ता श्रीमाधवेन स्फुरति जयपुरी काऽपि यत्र स्थितेन ।
श्रीकृष्णाख्येन वैद्यागमनिगमविदा विद्वदापद्विपत्त्यै
यत्नात् सङ्गुम्फितेयं ललतु बुधगले सिद्धभैषज्यमाला ॥ १८९ ॥

येनाशिक्षि स जीवनाथगुरुतः काव्यप्रकाशाशय-
श्छन्दश्चन्दनदासतः सगणितं वैद्यागमस्तातत: ।
सूते गन्धकजारणावधि कृता येन क्रिया नैकशः
सोऽहं नैकनवीनकाव्यकृदिह श्रीकृष्णशर्मा कविः ॥ १९० ॥

श्रीकृष्णकल्पितामेतां श्रीकृष्णः कृतिमुत्तमाम् ।
खलारब्धपरीवादादव्यादव्याजतो विभुः ॥ १९१ ॥

त्रिपञ्चनवचन्द्राब्दे फाल्गुनस्य सिते दले ।
भैषज्यमणिमालाऽसौ परिपूर्णाऽभवत् खलु ॥ १९२ ॥

श्रीमद् ढुण्ढारदेश में, स्वर्ग का उपहास करने वाली, प्रखर-पंडितों की निवास-भूमि, श्रीमाधव-भूपति से परिपालित सुप्रसिद्ध जयपुरी नामक नगरी है। इसी नगरी के निवासी, वैद्य-शास्त्र के परम-ज्ञाता श्रीकृष्ण ने, विद्वानों की विपदा को दूर करने वाली इस 'सिद्ध-भैषज्य-मणि-माला' को यत्न-पूर्वक गूंथा है। यह पंडितों के कंठप्रदेश की शोभा में अभिवृद्धि करे ॥ १८९ ॥

अनेकों नूतन काव्यों का रचयिता मैं वही सुप्रसिद्ध श्रीकृष्णशर्मा महाकवि हूं जिसने श्रीजीवनाथ गुरु से स-रहस्य काव्य प्रकाश का, श्रीचंदनदास से गणितसहित छन्दःशास्त्र का तथा अपने ही पूज्य पिता से आयुर्वेद विज्ञान का अध्ययन किया एवं जिसने पारद में गन्धक-जारण-पर्यंत संस्कारों से संबंध रखनेवाली प्रात्यक्षिक-क्रियाओं को अनेक प्रकार से संपादित करी ॥ १९० ॥

भगवान् श्रीकृष्ण अनुग्रह-पूर्वक, श्रीकृष्ण-विरचित इस उत्तम-ग्रंथ की, दुष्टजनों के अपवाद से रक्षा करें ॥ १९१ ॥

संवत् १९५३ फाल्गुन-शुक्ल-पक्ष की पूर्णिमा को यह 'सिद्ध-भैषज्य-मणि-माला' परिपूर्ण हुई ॥ १९२ ॥

१—अस्मद्दीक्षागुरूणां संज्ञेयम्। एते सिद्धप्रयोगाः प्रथितगुणगणा योगतो ध्वस्तरोगाः प्राप्तास्तत्तद्गुरुभ्यः पुरुतरकरुणाचारुचर्याचरुभ्यः। श्रीकृष्णाख्यैर्दिगन्तप्रसृमरसुयशोराशिभिर्व्याधितानां-वैद्यानां चेष्टसिद्ध्यै बुधवरगुरुभिर्गुम्फिताः संस्फुरन्ति ॥१॥ वैद्यानामुपकारिणी गुरुनियोगनिघ्नेन । टिप्पणिका रचिता मया पूर्णा चाविघ्नेन ॥ २ ॥ आसीद्दादुमहर्षिदर्शितपथे संजातदीक्षाक्रमश्छन्दःशास्त्रविचक्षणः सुभिषजामग्रेसरश्चन्दनः। तेनायं परिलालितो निजसुतप्रेम्णाऽऽप्तविद्योदयो लक्ष्मीरामशिशुः सदैव विदुषां भूयात् कृपाभाजनम् ॥ ३ ॥ यथोपदेशं विहितां यथास्थानं निवेशिताम् । कृतिं मदीयां संप्रेक्ष्य श्रीकृष्णः संप्रसीदतु ॥४॥ यः प्राचां भिषजां विवेद महितास्तिस्रोऽपि ताः संहिताः साहित्यं च सधर्मशास्त्रमभितः

श्रीलल्लुरामात्मजकुन्दनाद्यो लेभे जनिं कृष्णकविर्हि तस्य ।
भैषज्यरत्नस्रजि सद्गुणाया पूर्णोऽभवत् पञ्चमगुच्छ एष. ॥ १९३ ॥

इति राजवैद्यमहाकविश्रीकृष्णरामभट्टविरचितायां
सिद्धभैषज्यमणिमालाया पञ्चमो गुच्छ ।

श्रीलल्लुरामजी के आत्मज श्रीकुन्दनरामजी के पुत्र, उदार-चरित्र
श्रीकृष्ण-कवि-विरचित सद्-गुण-युक्त भैषज्य-रत्न
माला का यह पंचम-गुच्छ सपूर्ण हुआ ॥ १९३ ॥

वैद्यराज महाकवि श्रीकृष्णराम भट्ट विरचित सिद्ध-भैषज्य-मणि मालाका
पचम-गुच्छ सपूर्ण ।

– अनुवाद-सपूर्ति मङ्गल-श्लोक –

आसीन्महाकवि साक्षाद्धन्वन्तरिरिवापर । ज्ञानप्रदीप श्रीकृष्णो गुनैरो भूमिनिर्जर ॥१॥
चत्वारस्तनुजा जातास्तत्सुतात् श्रीकलाधरात् । तृतीयस्तेष्वहं श्रीमद्डोकारप्रभुनामक २
सोऽहमाराल्यतो बालकविश्च बालरामभट । इति नानाभिधानैस्तु सर्वतो विश्रुतोऽभवम् ३
सरहस्यायुषो वेदकाव्यशास्त्रकलादिभि । मा देवानिव चाऽपुष्यत् स्वकलाभि कलाधर ४
श्रीमद्दुर्गाप्रसादाच्च तच्छिष्योत् बुधवल्लभात् ।
बाल्य एवाविद साङ्ग ससारस्य ज्योतिष त्रयीम् ॥ ५ ॥
आद्रत्नवाङ्मयसर्वोच्चपदारूढ कृपास्पदम् । सोऽहं कृतार्थो मालाया कृतार्थं पितुराज्ञया ६
भिषक्पते कृष्णकवे सुतस्य कलाधरस्येव कलाधरेण ।
कृत्वा कृतार्थेन सुतेन पूर्णा मणिस्रगेषा स्फुरितप्रकाशा ॥ ७ ॥
मालामनूनामिह वैजयन्त्यास्तामेव कृष्णाय पुन समक्त्या ।
वैश्वानराख्याय निवेदयामि सपूर्णपूर्णो यदनुग्रहेण ॥ ८ ॥

–हिंदी–अनुवाद सपूर्ण–

॥ समाप्तेयं सिद्धभैषजमणिमाला ॥

सच्छन्दवाक् छन्दसि । लक्ष्मीरामसुधी स एष भिषगाचार्यप्रशस्तिं वहन् श्रीभैषज्यमणिस्रजो विवृतवान् गुच्छ परं पञ्चमम् ॥ ५ ॥

इति आयुर्वेदाचार्य–श्रीलक्ष्मीरामस्वामिविरचितायां सिद्धभैषजमणिमाला-
टिप्पण्यां पञ्चमो गुच्छ ।

१–गुजरात प्रात के निकट डाकोर-क्षेत्र में विराजमान भगवान श्रीरणछोडरायजी । २–स्व पू पिता श्रीकलाधरजी को 'चरक-सहिता' अनुलोम विलोम गति से कण्ठाग्र थी । चित्रकला एव वीणादिवादन में परम निष्णात थे । आपकी स्मरणशक्ति अद्भुत थी । ३–स्वनामधन्य महामहोपाध्याय स्व श्रीदुर्गाप्रसादजी । ४–परमपूज्य स्व श्रीचद्रशेखरजी प्रखर-वेद और व्याकरणके अप्रतिम-विद्वान ।

चरकोक्त पंचाशत्-महाकषायाः

श्लोकयिता—'कविरत्न' र. कलाकर भट्ट

मुनिप्रोक्तकषायाणां हरिदत्तनियोगतः ।
छन्दोबन्धप्रयोगोऽयं सुखस्मृत्यै कृतो नवः ।

जीवकर्षभकौ-मेदे-काकोल्यौ-मधुकं-सहे ।
जीवन्ती जीवनीयानि दशेमानि जयन्त्यहो ! ॥ १ ॥

भारद्वाजी-पयस्येक्षुवाजिगंधे च दुग्धिका ।
काकोल्यौ बृंहणीयोऽयं सवाट्याक्षीरिणीबलाः ॥ २ ॥

चिरबिल्वो-वचा-तिक्ता-चित्रकातिविषा-निशाः ।
लेखनीयो गणो मुस्ता-कुष्ठ-हैमवतीवचा ॥ ३ ॥

स्वर्णक्षीरी-त्रिवृत्-वह्निमुखी-चित्रार्क-चित्रकाः ।
करंजः कटुकैरण्डौ भेदनीयानि शंखिनी ॥ ४ ॥

कट्फलं-फलिनी-पिच्छा-समंगा-पृश्निपर्णिका ।
सलोध्राऽम्बष्ठकी-यष्टी संधानो धातकी-मधु ॥ ५ ॥

मरिचं-नागरं-चुक्रं यवानीचव्यचित्रकम् ।
कणातन्मूलभल्लातरामठं दीपनो गणः ॥ ६ ॥

इति षट्कः कषायवर्गः ।

रोहिणी-ऋषभी-ऋष्यप्रोक्ता चातिरसा स्थिरा ।
पयस्यैंद्र्यश्वगंधेति गणो बल्यो बलाद्वयम् ॥ ७ ॥

मंजिष्ठा मधुकं तुंगं चन्दनोशीरपद्मकम् ।
क्षीरकाकोलिकाऽनन्ता गणो वर्ण्यो लता सिता ॥ ८ ॥

हंसपादी विदारी च सारिवा कट्फलं कणा ।
यष्टी द्राक्षेक्षुमूलानि कण्ठ्यानि बृहतीयुगम् ॥ ९ ॥

रुचकं लकुचं कोलमाम्रमाम्रातकं गणम् ।
हृद्यं सवदराऽम्लचुक्रवृक्षाम्लदाडिमम् ॥ १० ॥

इति चतुष्कः कषायवर्गः ।

शुण्ठीमुस्तापटोलाऽग्निचव्योष्णावेल्लजानि च ।
तृप्तिघ्नानि दशेमानि वचा-मूर्वा-रसायनी ॥ ११ ॥

विषावचानिशायासबिल्वाऽग्निवत्सकानि च ।
अर्शोघ्नानि दशेमानि शुण्ठी चव्यं-हरीतकी ॥ १२ ॥

गायत्री शारदाऽग्निदार्वी भल्लातकाऽभयाः ।
कुष्ठघ्नाः कृमिजिज्जातीप्रवालाऽमलकारग्वधाः ॥ १३ ॥

दार्वीसर्षपशम्याककुटजोशीरचंदनम् ।
कण्डूघ्नोऽय गणो निंबयष्टीघनकरंजकम् ॥ १४ ॥
वृषाऽखुपर्णी निर्गुण्डी गण्डीराऽक्षीवकेतुकम् ।
गण. कृमिघ्न किणिही कृमिघ्नोपणगोक्षुरम् ॥ १५ ॥
श्लेष्मातकशिरीषैला-श्यामा-शेफालिका-निशा ।
गणो विषघ्नो मंजिष्ठा रास्नाकवककचंदनम् ॥ १६ ॥
इति षट्क कषायवर्ग ।

दर्भेक्षुवालिकेक्षूणां गुन्द्रस्य कुशकाशयो ।
षष्टिकेत्कटशीराणा मूलानि स्तन्यवृद्धये ॥ १७ ॥
दारुपाठाऽमृता मूर्वा कलिंगौषधसारिवा ।
किराततकुका तिक्ता स्तन्यशुद्धिकरो गण ॥ १८ ॥
कुलिंगो जटिला मेदा जीवकर्षभकौ वरी ।
काकोल्यौ सूर्पपर्ण्यौ च वर्गो वीर्यकरो मत ॥ १९ ॥
क्षब्धिफेनेक्षुकाण्डेक्षुकुष्ठैलवालुकेक्षुरै ।
कदम्बवसुकोशीरै शुक्र शुद्ध्येत् सकटफलै ॥ २० ॥
इति चतुष्क कषायवर्ग ।

काकोल्यौ जीवको द्राक्षा मधुक मधुपर्णिका ।
स्नेहोपगास्तु जीवन्ती स्थिरा मेदा विदारिका ॥ २१ ॥
अर्क कुलत्थ एरंडो यवो माष पुनर्नवा ।
वर्ग स्वेदोपग शिग्रुवृश्चीरो बदरस्तिल ॥ २२ ॥
नीपापामार्गबिम्ब्यर्क विदुल मधुक मधु ।
काचनौ शणपुष्पी च गणोऽय वमनोपग ॥ २३ ॥
रेकोपगो गणो द्राक्षापथ्याक्षा सपरूषकम् ।
धात्रीबदरकर्कंधुकोलकाश्मर्यपीलुकम् ॥ २४ ॥
शतपुष्पा त्रिवृद्बिल्ववचावत्सकसर्षपम् ।
पिप्पलीमधुकं कुष्ठ फलमास्थापनोपगम् ॥ २५ ॥
शताह्वा गोक्षुरो दारु फल बिल्व पुनर्नवे ।
श्योनाकोऽरणिको रास्ना गणोऽनुवासनोपग ॥ २६ ॥
क्षवक शिखरी पथ्याविडगोपणसर्षपा ।
श्वेतायुग कणाशिग्रु शिरोरेकोपगो गण ॥ २७ ॥
जम्बाम्रदलमृल्लाजायवाम्लकोलदाडिमम् ।
षष्टिकोशीररुचक छर्दिनिग्रहणोपगम् ॥ २८ ॥

घनचंदनशुण्ठ्यंबु पटोलीपर्पटाऽमृताः
किरातकच्छुराछत्रास्तृष्णा निग्रहणो गणः ॥ २९ ॥

द्विबृहत्यभयायासशटीशृंगीकणाऽमृताः ।
पौष्करं कोलमज्जा च हिक्कानिग्रहणे हिताः ॥ ३० ॥

इति त्रिकः कषायवर्गः ।

पद्मापद्माद्रजोऽनन्ता-समंगा-लोध्रटिण्डुकाः ।
प्रियंग्वाम्रास्थिधातक्यः पिच्छा विड्ग्रहणो गणः ॥ ३१ ॥

पयस्याभृष्टमृद्यासश्र्याह्वशल्लकिपिच्छिलाः ।
विड्विरेककरो जंबू यष्टी नीलोत्पलं तिलः ॥ ३२ ॥

जम्ब्वाम्राऽश्मन्तकाऽश्वत्थभल्लातककपीतनम् ।
न्यग्रोधः खदिरः प्लक्षो मूत्रं गृह्णात्युदुम्बरः ॥ ३३ ॥

कह्लार-धातकी-गुन्द्रा-यष्टी-नलिनकैरवैः ।
पद्मोत्पलशतश्वेतैर्मूत्रं याति विरागताम् ॥ ३४ ॥

वशिरो वसुको वन्दा गुन्द्रा गोकण्टकेत्कटम् ।
मूत्रस्य भेदको दर्भकुशकाशाऽश्मभेदकाः ॥ ३५ ॥

इति पंचकः कषायवर्गः ।

पथ्यातामलकी शृङ्गी कच्छुरामलकीकणाः ।
कासं निघ्नंति वृश्चीर क्षुद्रा द्राक्षा पुनर्नवाः ॥ ३६ ॥

सुरसाऽगुरुचंडैलातामलक्यम्लवेतसाः ।
श्वासं हरन्ति जीवन्ती शटी बाह्लीकपौष्करम् ॥ ३७ ॥

पाटलाऽरणिकाश्मर्यबिल्वं क्षुद्रे स्थिरे नटः ।
शोथस्योन्मूलने शूलं दशमूलं सगोक्षुरम् ॥ ३८ ॥

मंजिष्ठा सारिवाऽम्बष्ठा द्राक्षा पीलु परूषकम् ।
साऽमृता त्रिफला चायं गणो जीर्णयति ज्वरम् ॥ ३९ ॥

यवषष्टिकखर्जूरं प्रियालेक्षुपरूषकम् ।
गणः श्रमघ्नः स-द्राक्षाफल्गुबदरदाडिमम् ॥ ४० ॥

इति पंचकः कषायवर्गः ।

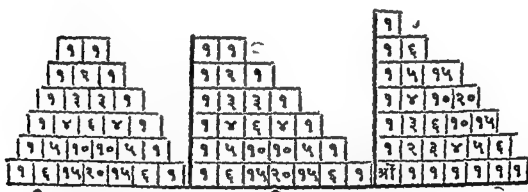
चंदनोशीरकाश्मर्यह्रीबेरमधुकोत्पलम् ।
दाहापहाः स्मृताः लाजा शर्करासारिवाऽमृताः ॥ ४१ ॥

भूतीकपिप्पलीव्याघ्री वाचाविश्वाऽरणिनताः ।
शमयन्त्यचिरात् शीतं श्योनाकाऽगुरुधान्यकाः ॥ ४२ ॥

(तृतीय गुच्छ के ६० वें श्लोक की टिप्पणी तथा मेरु-यन्त्र)

१—'एकरसादि षड्रसपर्यन्त स्वस्वप्रस्तारे कियन्त सर्वरसभेदा, कियन्त पञ्चचतुरादिरसभेदा, कति च रसाभावभेदा, कियती वा प्रस्तारसंख्या' इति प्रश्ने मेरुणा प्रत्युत्तर देयम्। तत्र प्रथममेकरसे कोष्ठद्वय, द्विरसे कोष्ठकत्रयम्, इति प्रतिरसमेकैककोष्ठकवृद्धया मेरु निर्माय सर्वत्र चाद्यन्त्यकोष्ठयोरेकाङ्कमङ्कयेत्। पश्चादुपरितनकोष्ठद्वयाङ्क शृङ्खलाबन्धन्यायेनैकीकृत्यावशिष्टकोष्ठकान्यपि पूरयेत्। एव पूरितेषु कोष्ठेषु एकरसप्रस्तारे आदौ एकरसभेद, तदन्ते च रसाभावभेद, इति संकेत। द्विरसप्रस्तारे त्वादौ सर्वरसभेद, मध्ये चैकरसभेदौ, अन्ते च रसाभाव। त्रिरसप्रस्तारे आदौ सर्वरसभेद, ततो द्विरसभेदा, तदग्रे चैकरसभेदा, अन्ते रसाभाव। चतूरसे चादौ सर्वरसभेद, ततस्त्रिरसा, ततो द्विरसा, तत एकरसभेदा, अन्ते रसाभाव। पञ्चरसेऽप्यादौ सर्वरस, ततश्चतूरसा, त्रिरसा, द्विरसा, ततश्चैकरसभेदा यथाक्रम, पश्चिमे च रसाभाव। षड्रसप्रस्तारे आदौ सर्वरसभेद, तत पञ्चरसभेदा, ततश्चतूरसभेदा, ततस्त्रिरसभेदा, ततो द्विरसभेदा, तत एकरसभेदा, अन्ते रसाभाव इति विभावनीयम्। अत्राङ्कयोगेन संख्याङ्का भवन्तीति च अङ्कपूरणप्रकारस्फुटीकरणार्थं यन्त्रन्यास —

मेरुयन्त्र—१



१	१					
१	२	१				
१	३	३	१			
१	४	६	४	१		
१	५	१०	१०	५	१	
१	६	१५	२०	१५	६	१

१	१					
१	२	१				
१	३	३	१			
१	४	६	४	१		
१	५	१०	१०	५	१	
१	६	१५	२०	१५	६	१

१						
१	६					
१	५	१५				
१	४	१०	२०			
१	३	६	१०	१५		
१	२	३	४	५	६	
अं	१	१	१	१	१	१

अत्र तृतीये यन्त्रेऽधस्तादूर्ध्वगत्याऽङ्कद्वयसंकलनमिति दिक्। विस्तरभयादधिक न प्रपञ्चितम्।

अथ केवलषड्रसप्रस्तारे सकलरसादिभेदज्ञानार्थमेकावलीमेरोर्दण्डमेरुवेपरनाम्न करणसूत्रमत्रोच्यते। यथा—"सैकरसमितैकाङ्कानूर्ध्वाध स्थान् क्रमात् क्षिपोर्ध्वोर्ध्वम्। मुखान्त्यमुपान्त्यादवतर पुनरारोह तद्वदवतर रे॥ एव पुन पुन कुरु यावदभीष्ट भवेत् सिद्धम्। सकलरसात् पूर्वस्मात् पञ्चचतुष्ट्यादिरसभेदा॥"

अस्यार्थः-एकेनाधिकेन सहितान् रससंख्यानेकाङ्कानूर्ध्वाधःस्थितान् कुर्यात्, न तु नष्टोद्दिष्टबद्धताक्षरक्रमेणेति भावः। यथा १ तत एकद्वित्र्यादिक्रमेणोपर्युपर्यङ्कं क्षिपेत्।

१
१
१
१
१
१

प्रथममेकं द्वितीयाङ्केन संयोज्य द्वितीयस्थाने द्व्यङ्कं कुर्यात्। तृतीयाङ्केन संयोज्य तृतीयस्थाने त्र्यंकं, चतुर्थेन संयोज्य चतुर्थस्थाने चतुरङ्कं कुर्यादिति, एवमुत्तरोत्तरं कर्तव्यं; किं तूपान्त्यमङ्कमन्त्याङ्केन न मेलयेदित्यर्थः। प्रथमावृत्तौ इयमा १ कृतिः सिद्धा। द्वितीययोजनायां च

६
५
४
३
२
१

सर्वोपरितनाधःस्थस्यान्त्यत्वमिति क्रमेणाधोऽधःस्थितानां तत्तद्योजनायां सर्वेषामन्त्यत्वं ज्ञेयम्। द्वितीयावृत्तौ कृतायामित्थं

१
६
१५
१०
६
३
१

सिध्यति। एवं पुनः पुनः कृते मेर्वाकृतिः सिद्धा भवति। सा चैतादृशी

१
६
१५
२०
१५
६
१

१–पताकासूत्रम् । पताकाप्रयोजनं च मेरौ षड्रसप्रस्तारस्यैको भेदः सर्वरस, पट् पञ्चरसा, पञ्चदश चतूरसा, विंशतिस्त्रिरसा, पञ्चदश द्विरसा, षडेकरसा, एको रसभावात्मकोऽस्ति । तत्र चतुःषष्टिभेदभिन्ने षड्रसप्रस्तारे कतमस्थले सर्वरसभेदः कतमस्थले च पञ्चरसात्मकाः कतमस्थले चतूरसात्मका इत्यादिप्रश्ने पताकयोत्तरं दातव्यमिति गुरुमुखादवगतम् । भरणप्रकारश्चेत्थ–तत्र मेरौ यावती रसाद्यङ्कसंख्या भविष्यति तावन्त्येव कोष्ठकानि पताकाया लेखनीयानीति युक्त्या सिध्यति । अथोद्दिष्टाङ्क क्रमादधोधः स्थितैर्दण्डभरणं विधाय सर्वाधः स्थिताङ्के ऊर्ध्वस्थितानङ्कान् क्रमेण हृत्वा शिष्टमङ्कं लिखेत् । किं च पूर्वलिखितमङ्कं न कुत्रापि लिखेत् । इदमुक्तं भवति–आदौ तावत् यत्संख्यरसानां पताका चिकीर्षिता तत्संख्या उद्दिष्टवदुत्तरोत्तरं द्विगुणिता अङ्का दण्डे स्थाप्याः, पश्चान्मेरुप्रस्ताराङ्कसंख्यया पताकाकोष्ठा वर्धनीयाः, ततः क्रमात् प्रान्तस्थिताङ्केषूपरिस्थान् सर्वानङ्कान् हरेत् । हृत्वा हृत्वाऽवशिष्टमवशिष्टमङ्कं क्रमात् पुरःस्थितकोष्ठकेषु लिखेत् । पूर्वं कुत्रापि लिखितमङ्कं शेषक्रमेण पुनरायान्तमपि तत्संख्याङ्कं नैव स्थापयेत् । यथा षड्रसपताकायामेकद्विचतुरष्टषोडशद्वात्रिंशच्चतुःषष्ट्यङ्कैरुद्दिष्टरूपैर्दण्डं रचयित्वा प्रान्तस्थिते चतुःषष्ट्यङ्के द्वात्रिंशद्धरणाच्छिष्टा अपि द्वात्रिंशत्, ते च लिखिता एवेति न पुनर्लिख्यन्ते । पुनः षोडशहरणादवशिष्टचत्वारिंशदङ्को द्वात्रिंशदग्रस्थिते कोष्ठके लिखेत् । ततस्तस्मिन्नेवाष्टाङ्कहरणात् शिष्टं षट्पञ्चाशदङ्कोऽष्टचत्वारिंशदग्रकोष्ठके लिखेत् । ततश्चतुर्हरणात् शिष्टं षष्ट्यङ्कं, तदग्रे पुनर्द्व्यङ्कहरणात् द्विषष्टिं, तदग्रे एकहरणात् त्रिषष्टिमस्याप्यग्रे लेख्या, एवमेकपङ्क्तिः सिद्धा भवति । ततश्च प्रान्ताङ्का द्वात्रिंशदग्रपङ्क्तिस्थाः सर्व एव मन्तव्याः, तेषु क्रमादूर्ध्वाङ्कहरणं सर्वेषु कर्तव्यम् । यथा–द्वात्रिंशदङ्के षोडशहरणात् शिष्टाः षोडश पूर्वस्थिता अत्र स्थाप्यन्ते, ततोऽष्टाङ्कहरणेन शिष्टश्चतुर्विंशत्यङ्कः षोडशाङ्ककोष्ठकाग्रस्थितकोष्ठमालाया प्रथमकोष्ठके लिखितुं योग्यः, ततश्चतुर्हरणादष्टाविंशतिं तदग्रकोष्ठके, ततो द्विहरणात्त्रिंशदङ्कं तदग्रे, तत एकहरणादेकत्रिंशत्, तत्पुरस्तात् पुनरष्टचत्वारिंशदङ्के षोडशहरणादवशिष्टो द्वात्रिंशदङ्क आगच्छन्नपि पूर्वलिखितत्वादुपेक्ष्यते, ततोऽष्टाङ्कहरणाच्चत्वारिंशत्, एकत्रिंशदग्रकोष्ठे स्थाप्य । एवं क्रमेण चतुर्हरणाच्चतुश्चत्वारिंशत्, द्विहरणात् षट्चत्वारिंशत्, एकहरणात्सप्तचत्वारिंशदग्राग्रकोष्ठेषु लेख्याः, ततः षट्पञ्चाशदादिप्रान्ताङ्केषु हरणशेषाङ्का लेख्याः, ततः तृतीयपङ्क्तिरचनाय द्वितीयपङ्क्तिस्थाः सर्वे प्रान्ताङ्का, ततस्तेष्वपि तथैव कर्तव्यम् । एवं पुनः पुनः कृते पताका सिद्धा भवति ।

६	१	१																			
५	६	२	३	५	९	१७	३३														
४	१५	४	६	७	१०	११	१३	१८	१९	२१	२५	३४	३५	३७	४१	४९					
३	२०	८	१२	१४	१५	२०	२२	२३	२६	२७	२९	३६	३८	३९	४२	४३	४५	५०	५१	५३	५७
२	१५	१६	२४	२८	३०	३१	४०	४४	४६	४७	५२	५४	५५	५८	५९	६१					
१	६	३२	४८	५६	६०	६२	६३														
०	१	६४																			
रस	भेद	०																			

प्रकारान्तरेणापि पताका पूर्यते । स प्रकारश्चैवमवधार्यः–आदावुद्दिष्टाङ्कान् क्रमेण पङ्क्त्याकारं लिखेत्, तत आद्यपराङ्कयोगं कृत्वा पताकाकोष्ठकेषु यथाक्रमं लिखेदिति । आद्याङ्काश्च पूरयितव्यपङ्क्तेः प्रधानाङ्कस्य पश्चात् स्थिता अवगन्तव्याः । मेरूक्तप्रस्तारसंख्यया पताकाङ्का वर्धयितव्यास्तदुत्तरमागच्छन्तोऽप्यङ्का न लेख्या एवेति तावतैव पङ्क्तिपूर्तिः करणीयाः । किंच भेदाङ्कादूर्ध्वतना अङ्का अप्यागच्छन्तो न लेख्याः, तद्भेदेषु तत्संख्याभावात् पूर्वाङ्कितमङ्कमपि न लिखेच्चेति संप्रदायः । यथा–षड्रसपताकाभरणे पूर्वं यथाक्रममुद्दिष्टाङ्का एकादिद्वात्रिंशदन्ताः स्थाप्याः, तत एकाङ्कस्य पूर्वाङ्कासंभवाद्द्वितीयाङ्कमारभ्य पङ्क्तिरचना; तत्राद्याङ्क एकाङ्क एव, तस्य परे द्वितीयादयः, ते चाव्यवहितानतिक्रमेण संकलय्य कोष्ठेषु समर्प्यन्ते, तथा चैकेन द्वाभ्यां मिलित्वा त्र्यङ्को द्वितीयाङ्काधः स्थाप्यः, तत एकेन चतुर्भिर्मिलित्वा पञ्चाङ्कस्त्र्यङ्काधः, तत एकेनाष्टभिः सह योगान्नवाङ्कः पञ्चाङ्काधः तत एकेन षोडशभिः सप्तदश नवाङ्काधः, तत एकद्वात्रिंशद्योगात् त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशाधः स्थाप्याः, ततः पङ्क्तिपूर्तिः । अथ चतुरङ्कस्याधस्तथैवाङ्का लेख्याः; तत्र द्वाभ्यां चतुर्भिर्मिलित्वा षट् चतुरङ्कस्याधः, द्वाभ्यामष्टाभिश्च दश, तदधः द्वाभ्यां षोडशभिरष्टादश, दशाधः द्वाभ्यां द्वात्रिंशता च चतुस्त्रिंशत्तदधः ततः पूर्वस्थितेनैव त्र्यङ्केन षोडशभिरेकोनविंशतिस्तदधः, त्र्यङ्केन द्वात्रिंशता पञ्चत्रिंशत्तदधः, ततस्त्र्यङ्काधःस्थितपञ्चाङ्केनाद्यभूतेन चतुर्भिर्मिलित्वा आगच्छन्नवाङ्कः पूर्वलिखितत्वान्न लिख्यते, पञ्चभिरष्टाभिस्त्रयोदश पञ्चत्रिंशदधः, पञ्चभिः षोडशभिरेकविंशतिस्तदधः, पञ्चभिर्द्वात्रिंशता सप्तत्रिंशत्, ततो नवभिश्चतुर्भिस्त्रयोदश पूर्वमागता अतो न लिख्यन्ते । तथा नवभिरष्टाभिः सप्तदशापि तथैव । नवभिः षोडशभिः पञ्चविंशतिः सप्तत्रिंशदधः, नवभिर्द्वात्रिंशतैकचत्वारिंशत्तदधः, सप्तदशभिश्चतुर्भिरेकविंशतिः पूर्वमागताः । सप्तदशभिरष्टाभिः पञ्चविंशतिरपि तथैव, सप्तदश षोडश योगात् त्रयस्त्रिंशदपि पूर्वं लिखिताः । सप्तदशभिर्द्वात्रिंशता चोनपञ्चाशदेकचत्वारिंशदधः, ततः प्रस्तारसंख्यासमाप्तेः पङ्क्तिरपि समाप्यैव । एवमेव सर्वा पताका पूरणीया । सर्वाग्रे च रसाभावरूपश्चतुःषष्ट्यङ्कः पश्चाल्लेख्यः । एतत्प्रकारदर्शकं पद्यमपि रचितम् । यथा–

"अङ्कानुद्दिष्टवद्दत्त्वा योगेनाद्यपराङ्कयोः ।
पताकां कुरु किंच प्राक्सिद्धमङ्कं परित्यजेत् ॥" **इति पताकाग्रन्थः ।**

यन्त्रद्वयेऽपि मेरुणोक्तः सर्वरसभेद एक प्रथम एवेति पताकयोत्तरं पञ्चरसभेदाः द्वितीयपङ्क्तिसंख्याकाः षट्, चतूरसभेदाः पञ्चदश, चतुरङ्काधःस्थपङ्क्तिदर्शितसंख्या इत्यादि । अन्येऽपि बहवः प्रकारा तथा सूचीमर्कट्याद्यप्रत्ययान्तराण्यपि विस्तरभयादरुचिप्रवर्तकत्वाच्च नेह प्रदर्श्यन्ते ।

पताका यंत्र- २

१	२	४	८	१६	३२	६४
	३	६	१२	२४	४८	
	५	१०	२०	४०	५६	
	९	१८	३६	२८	६०	
	१७	३४	१४	४४	६२	
	३३	७	२२	५२	६३	
		११	३८	३०		
		१९	२६	४६		
		३५	४२	५४		
		१३	५०	५८		
		२१	१५	३१		
		३७	२३	४७		
		२५	३९	५५		
		४१	२७	५९		
		४९	४३	६१		
			५१			
			२९			
			४५			
			५३			
			५७			

(तृतीय गुच्छ के ९८ वें श्लोक की टिप्पणी)

तदपि रसिकानां दृष्टिपथमवतारयामि। अथालौकिकप्राकृतव्याकृतिं व्याचिख्यासुरेतदारम्भे प्रत्यूहव्यपोहाय स्वेष्टदेवतानमोरूप मङ्गल सव्यवहाराय सञ्ज्ञासूत्रं च सम समुपन्यस्यति–श्रीमृढ इत्यादि। मङ्गले 'प्रणम्यते' इत्याक्षिप्यते। प्रकृते च श्रीप्रमृतयो यादृच्छिका सज्ञा अर्थापन्हवसिद्धिमात्रफलका, ईकारादय सुखोच्चारणार्थंःनादविवक्षिता। श्रीप्रमृतय सञ्ज्ञिनो वेति। क्रमप्राप्ततया सञ्ज्ञिन सञ्ज्ञा वा सूत्रयति–कखगघौ चच्छजझा टाठाडाढाणतौ थधदौ। धनपाफो बभमायो रोल श ष सहोक्षश्री। सनाखिव सञ्ज्ञिप्यनरादय पूर्ववद्विवक्षिता बवयोरैक्यम्। कादीनां सञ्ज्ञात्वमपि। वर्गसख्यासूत्रमाह–'चत्वारो वर्गा'। वर्गा वक्ष्यमाणास्ते चत्वार एव न तु पञ्चेति सूत्रारम्भ वर्गसञ्ज्ञासूत्रम्। 'शृङ्गभृङ्गर्द्दुर्द्दुन्द्रुरूर्द्द'वर्गा इत्यनुवर्तते। तेषां च यथासख्य सञ्ज्ञासञ्ज्ञित्वम्। ऋकारो वर्णाष्टकग्रहणार्थं। भवतश्चात्र श्लोकौ–श्री क ब्रवीति मदपा लगघान्यया भो। छथङ्कमेण गटगाश्छजक्षांस्तथा भो। क्षष्ट ब्रवीति थकराण्डडान् यथा भो। फोण क्रमेण णशधास्तथदांस्तथा भो। धो मेन किं च नपफा कथिता सतच्चैर्वोऽयेन जेन ग्लु भोऽपि मयौ यदाभ्याम्। घोर्ं नल क्ष इह शसति श तु च प व स लह वदति ह क्षमिवाह ठ' श्रीम ॥ २॥ स्वरक्रममनु लोकादवगन्तव्य। इत्याह–'लोकात् स्वरक्रमस्य च सिद्धि'। अमातृका योगा योगवाहिनो लोकात् प्रत्येतव्या इति चार्थ। 'पर प्रकृतिभेद' नामधातो रेव भेदो यथा धेयज्वादय, न तु सुतिबादिप्रत्ययानाम्। 'सयोगे प्रथमविकृति'। यथा–'स्व' इति, वक्तव्ये 'न्व' इति, 'न्व' इति वक्तव्ये 'स्व' इति। शेषप्रक्रिया तु व्याकरणान्तरात्' पाणिनीयसारस्वतान्यतरस्मात्। उदाहरणमप्यस्य यथा–देव नमामि नित्यं सिन्दूरगोभिगण्डमिभवदनम्। यस्य भजनमात्रादपि रिपव सहारमायान्ति॥ एतस्मिन् पद्ये वाच्ये लेख्ये वा प्रोक्तन्यायेन–'धेय सयामि सिष्य विन्धूरक्षोजिडङ्कमिजयधसम्। मस्य धमलरात्रादधि ढिधसो नक्षाढमामान्ति॥ इति सिद्ध भवति। अत्रोदाहरणे पूर्वार्धे पूर्वप्रकार, उत्तरार्धे द्वितीयप्रकार सदर्शित।

प्रथमः प्रकारः																																
वाचकाः	श्री	मृ	ङः	प्री	ढ	ख	द्वा	ज्ञो	ज्ञ	षा	ङ्का	रिः	फ	णी	श	धः	भ	सि	ता	च्छो	थ	ज	य	दो	ध	ना	क्ष	श्च	व	ली	ह	ठी
वाच्याः	क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	श	ष	स	ह	क्ष	श्रीः
द्वितीयः प्रकारः																																
वाचकाः	क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	श	ष	स	ह	क्ष	श्री
वाच्याः	श्री	मृ	ङः	प्री	ढ	ख	द्वां	गो	ज्ञ	षां	का	रिः	फ	णी	श	धः	भ	सि	ता	च्छो	थ	ज	य	दो	ध	ना	क्ष	श्च	व	ली	ह	ठी
तृतीयः प्रकारः																																
क्रमाङ्कः	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
श्लोकाक्षराणि	श्री	मृ	ङः	प्री	ढ	ख	द्वां	गो	ज्ञ	षां	का	रिः	फ	णी	श	धः	भ	सि	ता	च्छो	थ	ज	य	दो	ध	ना	क्ष	श्च	व	ली	ह	ठी

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं	हिंदी अनु पंक्ति	शुद्ध
प्रमार्जिनी	५	–	८	प्रमार्जनी
पटोलपत्र पित्तघ्न	८	–	६	पित्तघ्नं
ओर	९	–	नीचेसे ३	और
एवमेते ।	९	–	टिप्पणी	एवमेते
श्लेष्मपदार्थं	१०	१६	–	श्लेष्मलपदार्थं
रसायिनी	१२	–	१०	रसायनी
एवमामलकेऽपि ..	१३	–	टिप्पणी	एवमामलकेऽपि -कर्पार्धमान
इसके	१८	–	१७	इनके
पाण्डु	१९	–	१६	पाण्डु, कफ,
फूल	१९	–	२५	फल
अमेध्य, अवृष्य	२०	–	१५	मेध्य, वृष्य
फुफ्फुस,	२४	–	५	फुफ्फुस-कलाशोथ
त्वचाका	२४	–	१७	वचाका
विपायति	४२	१०७	–	विपादयति
सारभ्य	४४	–	टिप्पणी	सौरभ्य
जलमें न डूबे	४५	–	९	जलमें डूबे
हिंगूद्राविढ	५०	–	६	हिंगूम्राविढ
गुणोंसे युक्त,	६३	–	नीचेसे ५	गुणों से युक्त, देव-राज से भी प्रार्थित
पयोभिरार्द्रा	६४	१९२	–	पयोभिरार्द्रां
समीर	७४	२४१	–	समीरे
नष्ट करने में	७४	–	४	करने में
विजेता वीर	७४	–	४	विजेता वीर एव पित्तकारक है ।
रुक्षस्तया	७६	२४७	–	रूक्षस्तथा
लघु	८१	–	नीचेसे १	लघु तथा रोचक
मूत्रकृच्छ्र,	८१	–	नीचेसे १	मूत्रकृच्छ्र, पथरी और
रुचि	८४	–	नीचेसे १	अरुचि
पाल्य	८६	–	नीचेसे ५	पाल्वल
वातपित्त	८८	–	नीचेसे ८	कफ-पित्त

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं.	हिंदी अनु.पंक्ति	शुद्ध
मुखरोग	८८	–	नीचेसे १	मुखरोग, विषविकार
गर्वी	८९	२९६	–	गुर्वी
बलाल	९०	२९८	–	बलास
किं	९०	२९८	–	कं
मृतधातु...	९०	–	११	मृतधातु अर्थात् मृन-- शुक्रकीटाणुओंको
सहा	९०	३००	–	सदा
दोष,	९१	–	९	दोष, शोष,
रूक्ष,	९१	–	५	रूक्ष, मानस-रोगों में प्रशस्त,
अर्क	९३	–	४	अर्क अर्थात् ताम्र
संभालकर	९३	–	६	संभालकर तल में से अर्क अर्थात् ताम्र...
सिकता नामक...	९३	–	१०	सिकता नामक मूत्र-शर्करा...
द्विगुणमिति	९३	–	टिप्पणी	द्विगुणामिति
(नोसादर)...	९३	–	नीचेसे २	नोसादर) प्रवाहिका तथा प्रतिश्यायको मिटानेवाला...
द्वितीयोऽगमद्द्वितीयः	९४	अं. श्लो. पं.	–	द्वितीयोऽगमदद्वितीयः।
श्रीसिंहावतारस्य	९५	–	टिप्पणी	श्रीनृसिंहावतारस्य
ताप और...	१०५	–	१०	धूमसे
मनोक्षं	१५४	४१	–	मनोज्ञं
सत्यभामा	१५५	–	नीचेसे ४	रुक्मिणी
साथ	१५६	–	२	स्थान में
फूले	१६१	–	नीचेसे ४	फुलके
सुभ्रष्टक	१६६	९७	–	सुमृष्ट
खरल करके	१६७	–	६	खरल करके एक एक रत्तिकी
पात्रस्तिथा	१७१	२२७	–	पात्रस्थिता
	१७७	पृष्ठ के २७ वें श्लोकानुवाद को इस तरह पढ़ें—अफीम दो रत्ति, खदिर सार चार रत्ति तथा सूंठ आठ रत्ति और तीन इलायची इनकी तीन मात्रा बना चांवल के धोवन सह सेवन करनेसे अतिसार शमन हो जाता है।		
केसर	१९७	–	५	नागकेसर

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं	हिंदी अनु पंक्ति	शुद्ध
रवमूल	१९८	३३	–	रविमूल
सीसेको	१९९	–	१०	कासीसको,
उनकी	१९९	–	१३	उसकी अर्थात् हिरे की ..
	२०५	पृष्ठ गत छठे श्लोकके अनुवादमें दोनों माक्षिक ('स्वर्ण माक्षिक तथा रूप्यमाक्षिक)' की जगह 'द्विगुणितमधु' पढ़ें।		
निष्याल्य	२१२	१९	–	निधायाल्प
क्षपणानिरुभवन्ति	२१२	२०	–	क्षपणानि भवन्ति
पस्तर	२१९	–	४	प्रस्तर
लिहितां	२२०	२३	–	लिहता
कोष्ठाशुद्धि	२२२	३	–	कोष्ठशुद्धिं
	२३४	व पृष्ठ की चतुर्थ पंक्ति को इस तरह पढ़ें–खर्पर (विस खपरा नामक पुनर्नवा भेद) के .		
	२३६	वें पृष्ठ की चतुर्थ पंक्ति में ' सकोरा औंधा ढकदें' इससे आगे इतना और पढ़ें–"तदनन्तर, चार तोला सैंधव में एक तोला कतीरा गूद मिला जलसे पीस चीनीपात्र के चारों ओर सधि लेप करके सुखालें। फिर, इनको तीन प्रहरतक तैल के दीपक की मद मद		
मयूरपिच्छ	२४१	–	११	मयूरपिच्छ चंद्रिका के मध्य भाग की
घृतमें थोडे. .	२४४	–	१	घृतमें भूने गये शुद्ध कुचले का किंचित् चूर्ण .
पार्श्वशूल	२४५	–	८	पक्वाशयशूल
गूज	२६२	–	नीचेसे २	मूजकी सींकें,
बबूल,	२६३	–	१	बबूलकी फली,
यकृदोदर	२६४	–	नीचेसे ५	यकृदुदर
कज्जिका	२६५	१८	–	कज्जलिका
भेदि	२६७	२८	–	भेदी
चांवलों	२७०	–	७	चौलाई
स्नुही-क्षीरसे	२७१	–	७	स्नुही-स्वरस से
गोरख मुंडी का फल	२७१	–	अ र्थ	गोरखमुंडी चार तोला, सैंधव दो तोला ..
मुन्या पर्ले	२७२	२	–	मुण्ड्या पर्ल

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं.	हिंदी अनु.पंक्ति	शुद्ध
कषाय को ४५ दिवस	२७२	–	१	कषाय को ४ या ५ दिवस
चश्चि	२७२	६	–	चञ्चु
नखम्पजो	२७३	३	–	नखम्पचो...
शिलारस	२७३	–	नीचेसे ४	शिलारस तथा सिंदूर...
निंबू	२८२	–	३	नीम
रससिंदूर	२८३	–	६	रसकपूर
शाल्मलः	२९०	५०	–	शाल्मलेः
गंधाबिरोजा	२९१	–	४	गंधाबिरोजा, राल
सफेद सुरमे	२९३	–	७	एक तोला सफेद सुरमे

२९३ पृष्ठ पर ८ वीं पं. का वाक्य इस तरह पढें–'फिर, ६४० वन्य-गोवरी में फूंकदें। इसी तरह दो तोला दधिमंड से खरल करके पुनः दस सेर गोवरी में फूंकदें। इस भस्म मे से एक गुंजाभर मात्रा को नवनीत के साथ चाट जायें। ...दूध, घी, शक्कर से युक्त भात...

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं.	हिंदी अनु.पंक्ति	शुद्ध
रांगेको	२९३	–	१२	सीसेको
पिस्तालीस	२९७	–	३	चौपन
...तृण प्रज्वलित रहें	२९९	–	१	उसपर तृण प्रज्वलित होने लगें...
रक्त निकाल लें	३०२	–	५	किंचित् रक्त निकाललें
एरंड	३०२	–	६	अरडूसा
निंबू	३०२	–	१०	नीम
श्वेतजीरा	३०५	–	अं. पं.	कृष्णजीरा
हरडै	३०९	–	७	आमले
कपूरकाचरी...	३०९	–	अं. पं.	कपूरकाचरी, जटामांसी,
शिलाजीत	३१०	–	१	शिलापुष्प (छरीला)

३११ वें पृष्ठ-गत 'इस चूर्ण में' इस नवमी पं. को इस तरह पढें ... इस चूर्ण में इससे चतुर्गुण शतधौत घृत मिलादें।

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं.	हिंदी अनु.पंक्ति	शुद्ध
...गंधक,	३१३	–	३	गूगल, गंधक
साबुदाना, गंधक	३१३	–	१०	साबुन, कणगूगली,

३१३ वें पृष्ठ पर हिंदी अनुवादके २९ अंक के आगे ३० और लिखलें। ३० की जगह ३१ तथा ३१ की जगह ३२ करलें।...

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं	हिंदी अनु पंक्ति	शुद्ध
विकरा	३१५	१	–	विकार
जलको उतार	३१६	–	२	जलको उतार वस्त्रपूत करके
पलाशपत्र में	३१८	–	६	पलाशपत्र में चूना तथा
कालिङ्ग	३१९	३२	–	कलिंद
सौगन्धमुस्ता	३१९	३५	–	सौगन्ध्यमुस्ता
वृक्षाम्ल १ तोला,	३१९	३५	–	वृक्षाम्ल (सीमाकं)
सीमाकभस्म १½ तो			–	१ तोला ४ रत्ति–
दन्तदर्व्य	३२१	४७	–	दन्तदार्व्य
चूर्ण को	३२४	–	११	चूर्णको अथवा समुद्र-फेन चूर्णको
२५६ तोला रसांजन	३२७	–	अ प	१६ तोला रसांजन को

३३० वें पृष्ठ गत २९ वें श्लोकके हिंदी अनुवाद में जसद की जगह सीसा पढें।

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं	हिंदी अनु पंक्ति	शुद्ध
तीव्र विकारसमूहरूप	३३०	–	१०	तीव्र-विकार-समूह का
इस तत्र का	३३३	–	अ पं	इस तन्त्रमें, सात्वर मनु (मंत्र) का उपदेश महिलाओंमें दिया है।
४५	३३५	–	२	४ या ५
स्थानगत	३३६	–	११	स्थानगत दारुणक आदि
डोकार प्रभु	३९२	२	–	डाकोरप्रभु
बालवाग्भट	३९२	३	–	शिशुवाग्भट